धन्यवादः ।

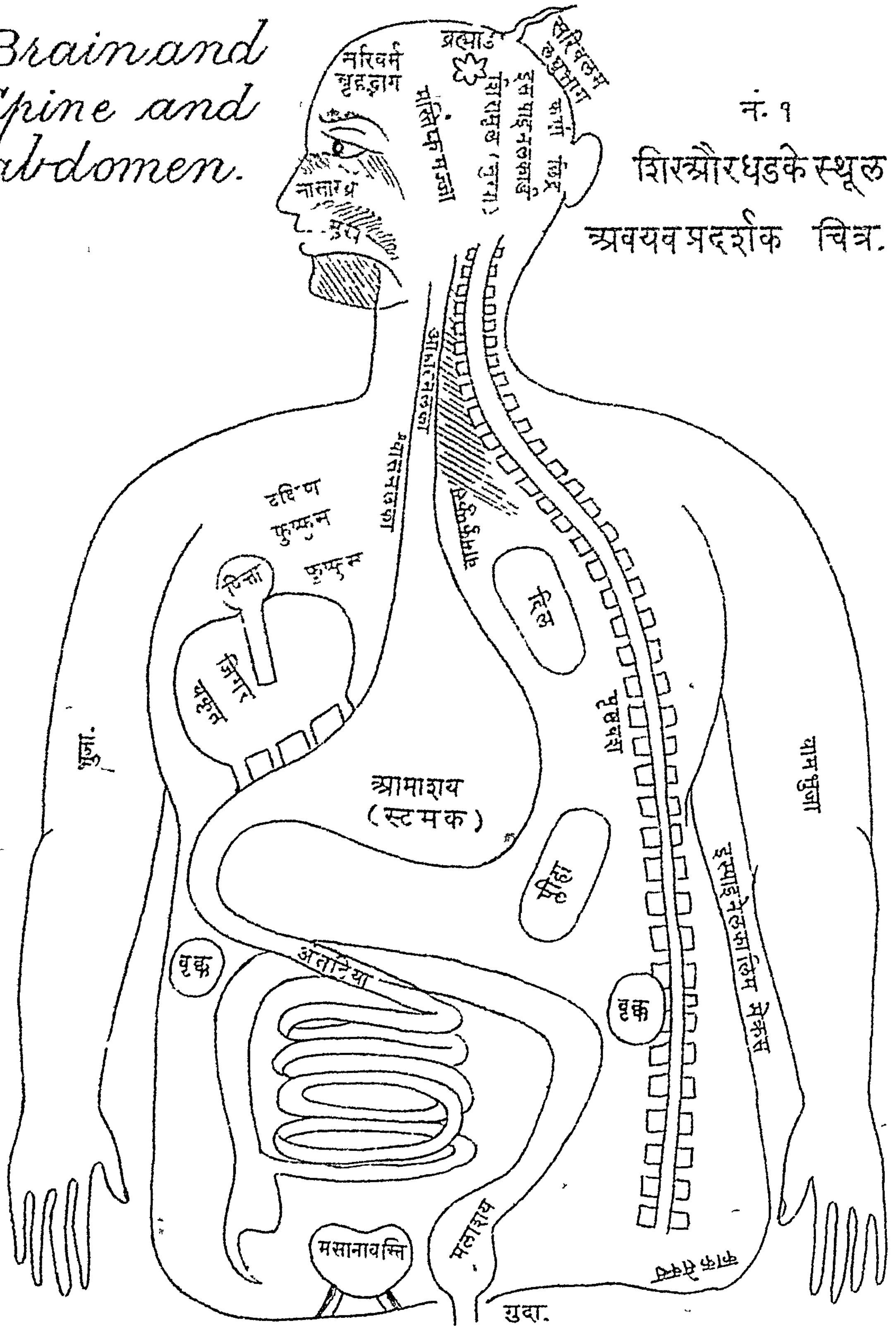
सन्तु तस्मै भगवते धन्वन्तरये पीयूषपाणयेऽगदंकारवर्याय सकलदेवजीवातुसमर्पणैकावतारकृत्याय काशीपतये सहस्रान्ता धन्यवादाः । येन भगवता परमकारुणिकेन धन्वन्तरिणा सकललोकोपकृतये वेदसागरं निजबुद्धिमन्दरेण निर्मथ्यायुर्वेदपीयूषमुत्पादितम् । यद्विज्ञानमात्रतोऽस्मिन्भूतले विविधरोगातुरजनजीवनाय कल्पन्ते भिषग्गणाः । सोऽयमस्यायुर्वेदप्रवर्तकाचार्यवर्यस्य श्रीमतो धन्वन्तरिभगवतो भूयानेवोपकारः ।

तथैव च तच्छिष्यवर्याय सुश्रुतमुनये संतु भूयांसो धन्यवादाः।येन श्रीमता सुश्रुतेन श्रीधन्वन्तरिगुरुमुखारविन्दाद्यथाक्रममुपदिष्टमायुर्वेदं निशम्य श्रवणानुक्रमेण ग्रन्थो निर्मितः। यथार्थं खल्वस्याभिधेयं 'सुश्रुत'इति। यथा गुरुः शिष्यं पाठयति तथायं ग्रंथो विलेखित इति सुबोधास्य सूत्रसरणिः।

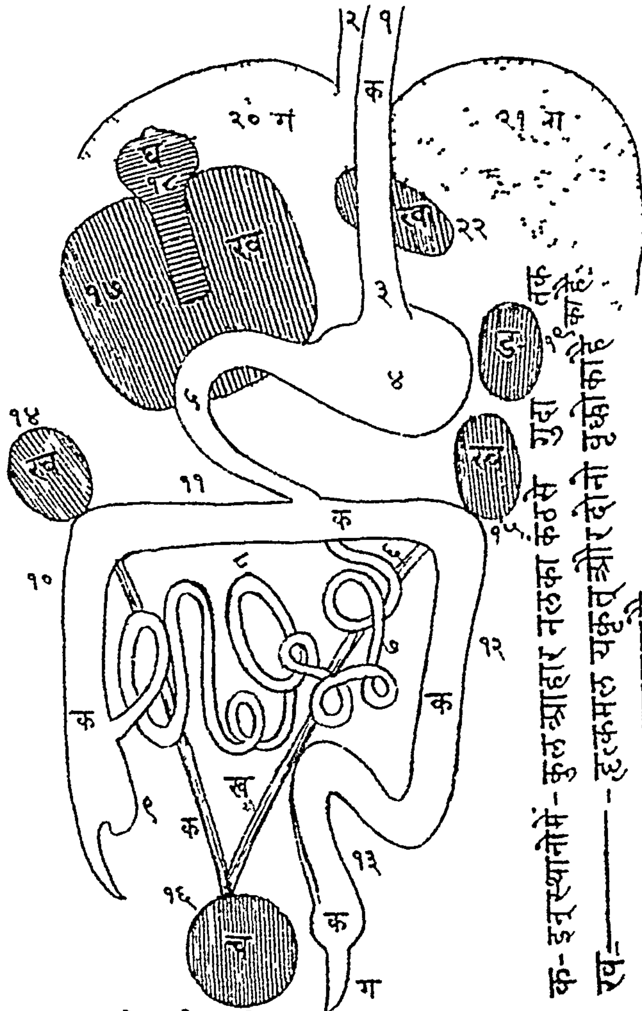
एतादृशोऽप्ययं सुश्रुतग्रन्थः सांप्रतं मन्दबुद्धीनां प्राकृतानां भिषग्गणानां न तादृशं साहाय्यमावहतीति निपुणं विचार्यास्य ग्रंथस्य सुबोधतया भाषाटीकाऽवश्यं कारयितव्येति मे मनसि महती समुत्कण्ठा महतः कालादासीत् । परमेतादृशं महत्कार्यं कर्तुं तीक्ष्णबुद्धीन्विदुषोऽन्वेषयितुं भूयान्कालो व्यतीयाय। ततश्च भरतखण्डस्थभिषग्गणभूरिभागधेयेनास्मिन्कार्ये सुतरां निपुणाः फर्रुखनगरनिवासिन आरोग्यसुधाकरसंपादकाः पण्डितमण्डलीमण्डनायमाना राजवैद्याः श्रीपण्डितमुरलीधरशर्माणो मया प्रार्थिताः। तैश्च मदीयां प्रार्थनामूरीकृत्य सकललोकानुजिघृक्षया महता परिश्रमेण विमलया बुद्ध्याऽस्य ग्रन्थस्यातिसुबोधा सरला-सान्वया-सटिप्पणीका-सपरिशिष्टा-भाषाटीका यथावस्थितार्थबोधनोपयुक्तविस्तारपूर्वकं विरचिता। अयमेतेषां पण्डितवर्याणामस्मिन्भूतले भूयानेवोपकारः। अतो यावन्तो धन्यवादाः श्रीमद्भ्य एभ्यः श्रीमुरलीधरपण्डितेभ्यो दद्यास्तावन्तोऽपि ते न्यूना एव। एभिः पण्डितवर्यैरेतत्सुश्रुतसंहिताया लोकोपकारबुद्ध्या भाषाटीकां विधाय मुद्रणार्थमस्माकं समीपे संप्रेषिता। सैषास्माभिः स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशिता । अत्रार्थे-श्रीमुरलीधरपण्डितराजवैद्यैर्योऽयं भाषाकरणे परिश्रमः कृतोऽस्ति तस्य साफल्यं कर्तुं विद्वांस एवार्हन्ति वैद्यकशास्त्रमधिजिगामिषवः प्राकृताः सरलबुद्धयश्च । अतो ये चास्य ग्रन्थस्य वाचनपुरःसरं तदुक्तोपाययोजनायां तत्परा भविष्यंति तेभ्यः सर्वेभ्योऽपि सन्त्वनेके धन्यवादाः । परमदयालुं भगवंतं च समभ्यर्थयामहे-यदेतच्छ्रीमुरलीधराऽबुधवराननवरतं सुखशान्तिभाजनं करोत्विति शं सर्वतः ॥

बुधजनप्रेमाभिलाषी-

क्षेमराज-श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाध्यक्षो-मुम्बयी-स्थः ।


Brain and Spine and abdomen.
नं. १
शिरऔर धडके स्थूल अवयव प्रदर्शक चित्र.
आमाशय (स्टमक)
दिल
प्लीहा
वृक्क
वृक्क
मसानावस्ति
मलाशय
गुदा.
भुजा.
वाम भुजा
दक्षिण फुप्फुस
फुप्फुस
जिगर
अंतड़िया

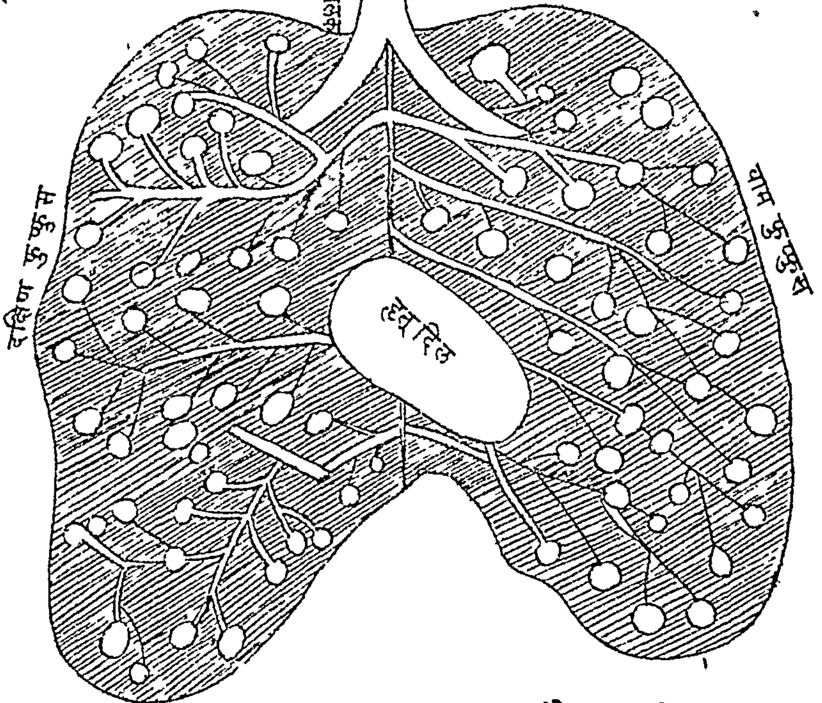
अंत्र (आंतडे) प्रदर्शक चित्र जिसमे कंठसे मलाशयतक कुल आहार नलका (एलीमेटरी कनाल *Alimentary Canal* का स्फुट आकार है.



इस चित्रमे १ के चिन्हसे ३ के अंक तक आहार नलका *Œsophagus* है ४ आमाशय *Stomach* है ५ से ६ तक तन्वंत्रका ऊपरी भाग ७ यह जिज्यूनम और ८ एलिअम इन तीनोको तन्वंत्र बारीक आंते *Small Intestines* कहते हे ९ इसे स्थूलांत्रका अधोभाग - सीकम और १० यह एसिडेंग कोलन और ११ ट्रासवर्स कोलन १२ डिसेडिग कोलन कहलाती है. इनको स्थूलात्र मोटी आंते *Large Intestines* कहते हैं - १३ को मलाशय *Rectum* कहते हे - १४-१५ ये दोनो वृक्क *Kidney* हैं १६ वस्तिमूत्राशय *Bladder* है १७ यकृत् *Liver* है १८ पित्ता *Gall-bladder* है १९ प्लीहा *Spleen* है तथा जहां २ का अंक है वह कंठकी दूसरी श्वासनलका TRACHEA है २० और २१ ये दोनो फुफ्फुस *Lungs* है. और २२ यह हृत्कमल *Heart.* है तथा कं और खं दोनो मुख्य मूत्रनली है और "गं" गुदा तथा मलद्वार है.

फुप्फुस-फेंफडोंकाचित्र.

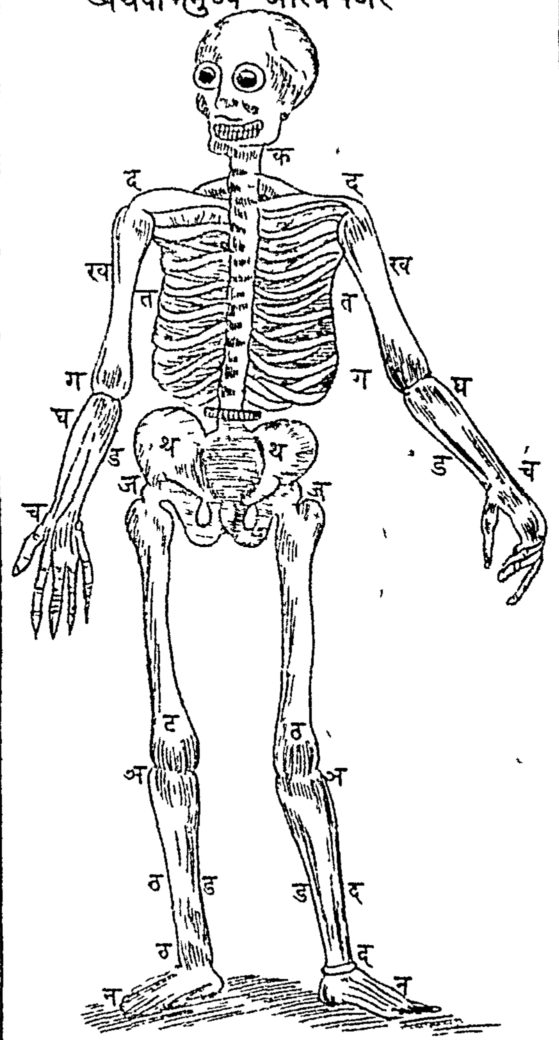
अँगरेजीमें फेफडोको लग्‌स कहते है और अरबीमे रीया कहते हैं- बाहरका वायु श्वासद्वारा इसीमे प्रवेश करता है. (*Lungs.*)

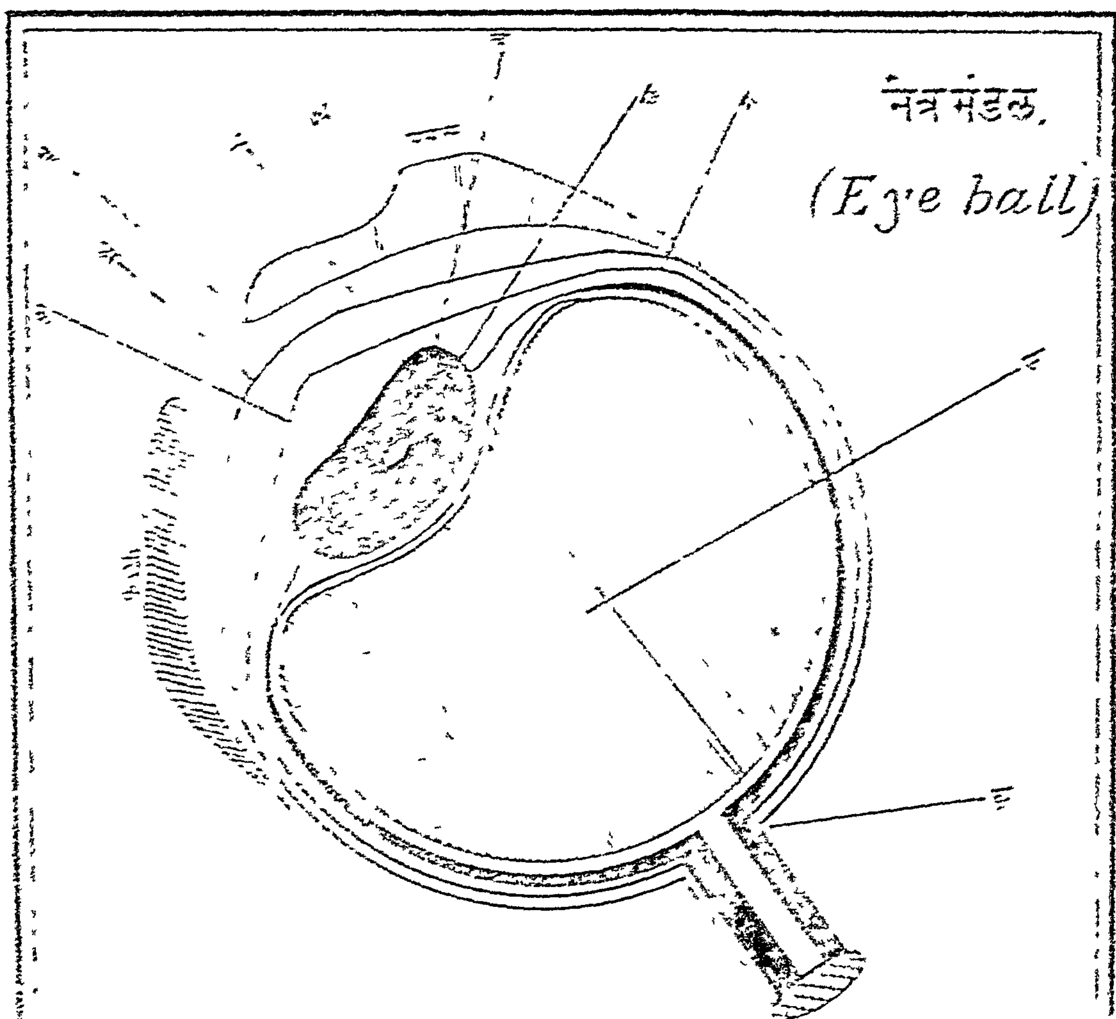


इसमें जो श्वास नल काहे यह आहार नलकासे जुदी है अर्थात् यहश्वास नलका अ-गाडी होती है और इससे पीछे आहारनलका दूसरी होती है जो मुहसे आमाशय को जाती है.

नरकङ्काल. *Skeleton*

अथवा मनुष्य अस्थिपंजर





इसमें "अ" [illegible] अर्थात् [illegible]

"क" [illegible] भाग.

"ख" [illegible] द्वितीय पटल अर्थात् [illegible].

"ग" [illegible] भाग

"घ" [illegible] जहां [illegible] है.

"ङ" तृतीय पटल अर्थात् पुतलीवाला पर्दा.

"च" पुतली अर्थात् कृष्ण भाग.

"छ" [illegible] चतुर्थ अर्थात् आंखका [illegible].

"ज" [illegible] अर्थात् [illegible]

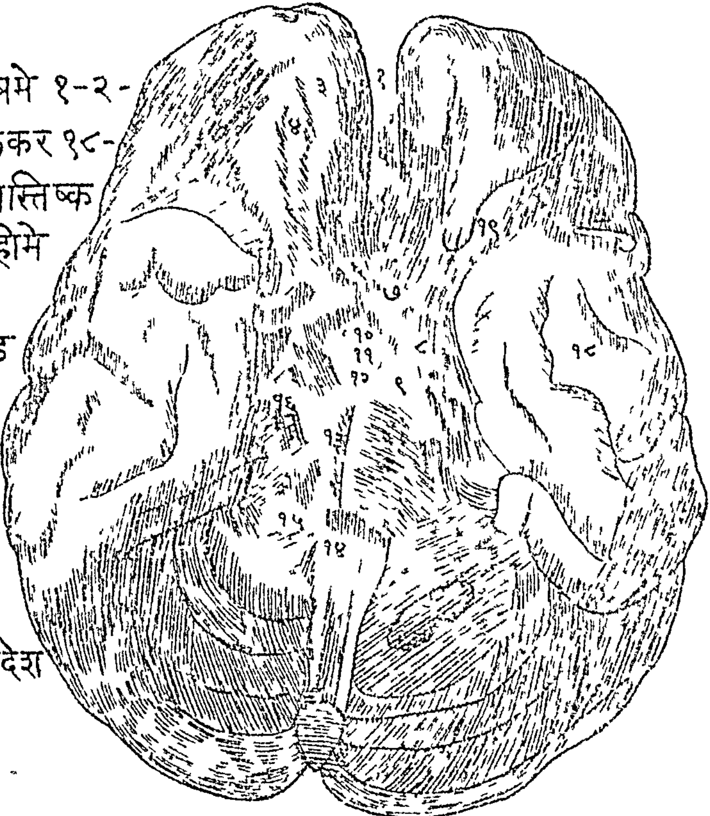
"झ" [illegible] नाड़ीकी रग.

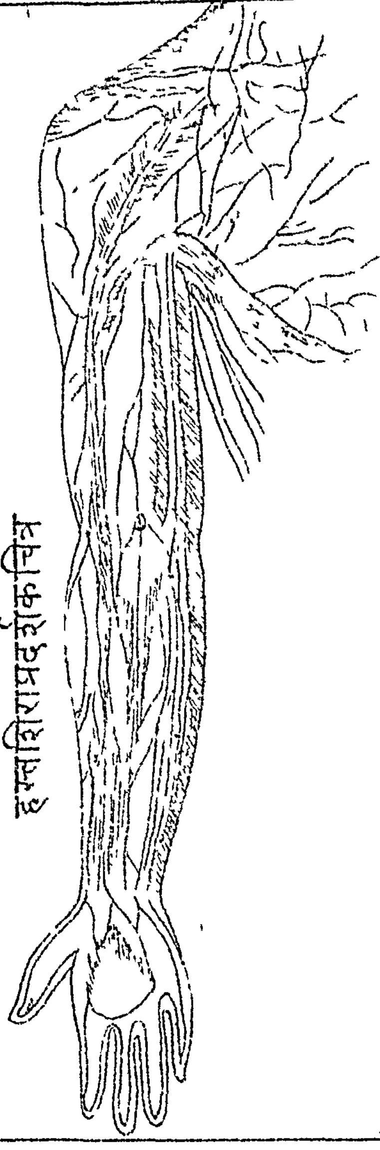
[illegible] वैद्य नेत्रमें चार पटल (पर्दे) मानते हैं और यूनानी हकीम [illegible] मानते हैं और डाक्टर तीनही पर्दे मानते हैं.

मस्तिष्क संबन्धिचित्र. (*Brain*)

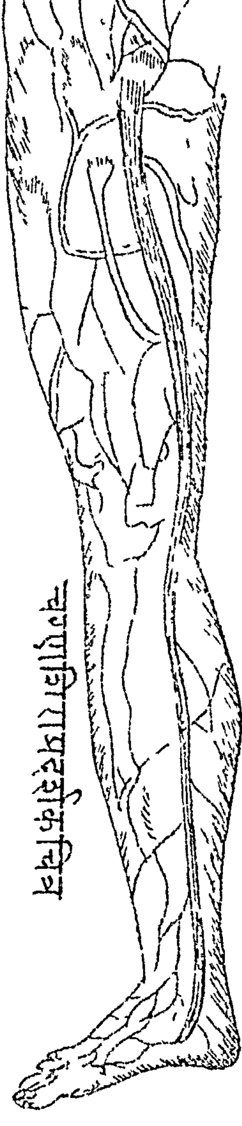
इस मस्तिष्क संबधी चित्रमे १-२-
३-४ चिन्ह इत्यादिसे लेकर १८-
१९-२० चिन्हपर्यंत मस्तिष्क
का नीचेका प्रतिरूप तिन्होमे

१ क्षुद्रमस्तिष्क
३ मस्तिष्कका अग्रखंड
४ घ्राणस्नायु
७ दर्शनस्नायु
८ दर्शनस्नायुप्रदेश
९ नेत्रस्पंदक स्नायु
१० दृष्टिसन्धि
१२ पश्चाच्छिद्रान्वितप्रदेश





हस्तशिराप्रदर्शकचित्र

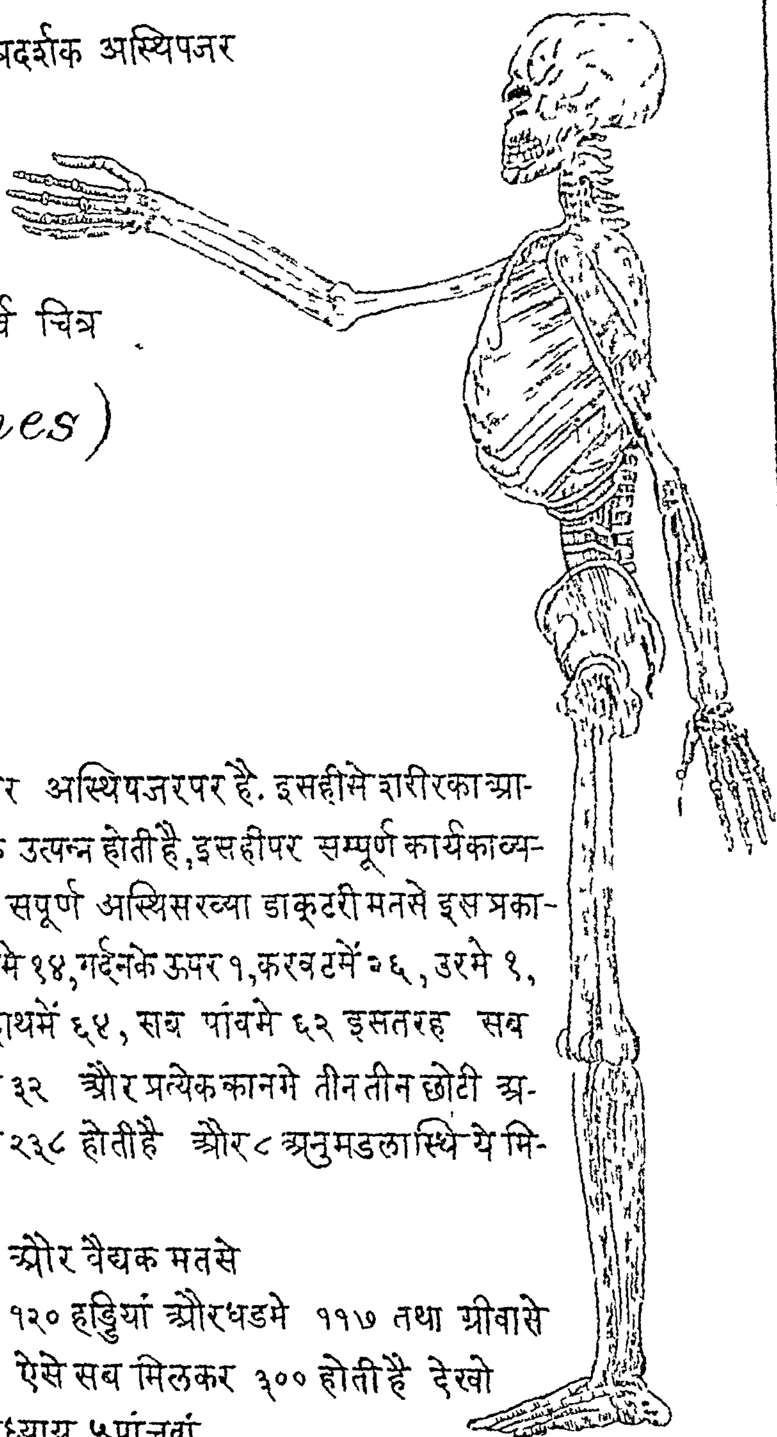


चरणशिराप्रदर्शकचित्र

पार्श्वप्रदर्शक अस्थिपजर

अस्थिप्रदर्शक पार्श्व चित्र

(Bones)



शरीरका मुख्य आधार अस्थिपजरपर है. इसहीमे शरीरका आकार, दृढता, गमनशक्ति उत्पन्न होती है, इसहीपर सम्पूर्ण कार्यकाव्यवहार निर्भरहै शरीरमे सपूर्ण अस्थिसख्या डाक्टरी मतसे इस प्रकारहै खोपडीमें ८, चहरामे १४, गर्दनके ऊपर १, करवटमें २६, उरमे १, पासूमे २४, सम्पूर्ण हाथमें ६४, सब पांवमे ६२ इसतरह सब मिलकर २००हैं दात ३२ और प्रत्येक कानमे तीन तीन छोटी अस्थिहै सबमिलकर २३८ होतीहै और ८ अनुमडलास्थि ये मिलकर २४६ है.

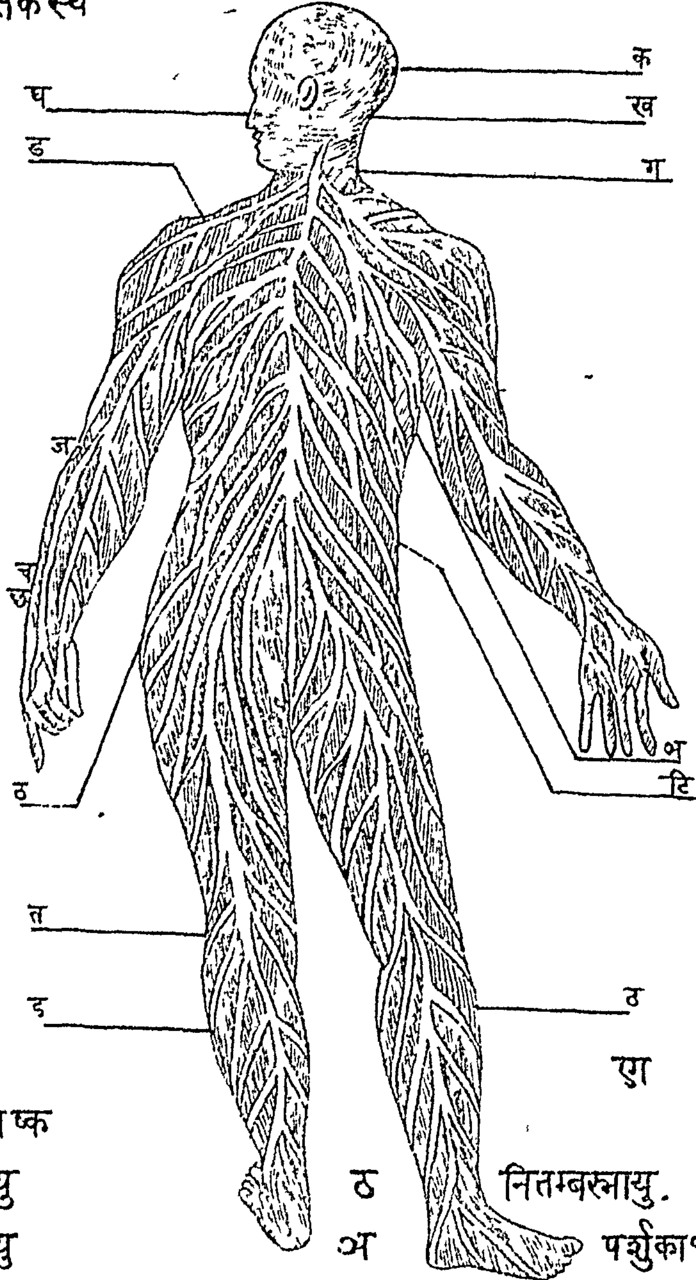
और वैद्यक मतसे

चारो हाथ पावोमे १२० हड्डियां औरधडमे ११७ तथा ग्रीवासे ऊपर६३ हड्डियाहैं ऐसे सब मिलकर ३०० होतीहै देखो शारीरक स्थान अध्याय ५पांचवां

स्नायु प्रदर्शक चित्र. (*Nervous*)

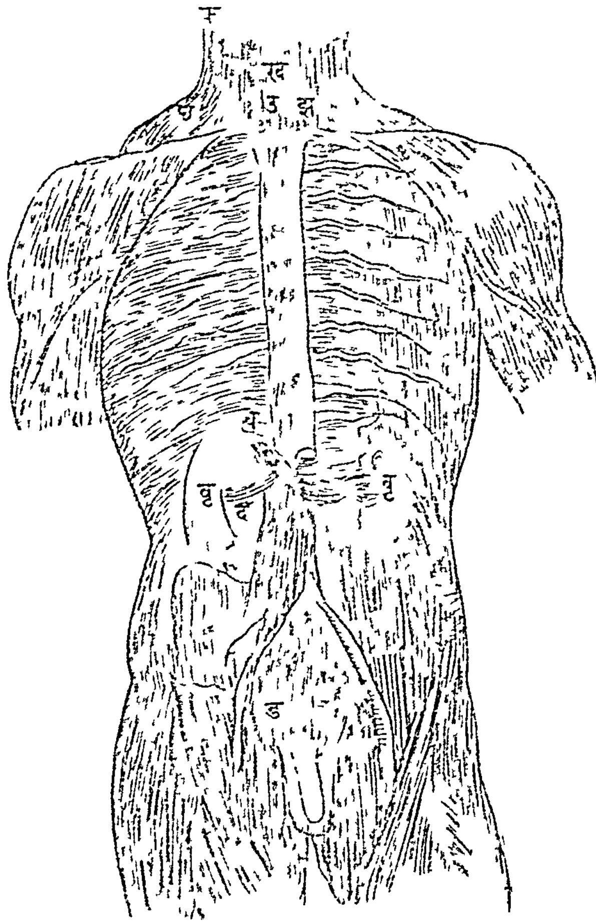
इस चित्रमें क मस्तकस्थ

बृहत् मस्तिष्क



ख	क्षुद्रमस्तिष्क		
ग	ग्रीवास्नायु	ठ	नितम्बस्नायु.
घ	वदनस्नायु	भ	पर्शुकाभ्यतर स्नायु
ङ:	प्रगंडसन्धिस्नायु	ड	जानुपश्चात्स्नायु.
ज	प्रगंडस्नायु	ट	जान्वभिमुखस्नायु
च	प्रकोष्ठस्नायु	ण	पदतलस्नायु.
छ	प्रकोष्ठनिम्नस्नायु	टि	कटिस्नायु
झ	करतलस्नायु	त	ऊरूस्नायु.

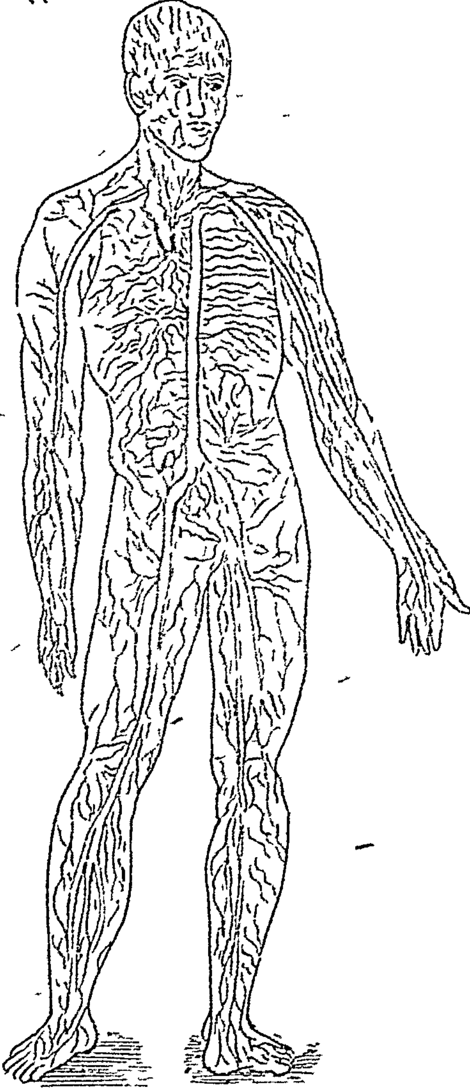
शिराप्रदर्शक चित्र.



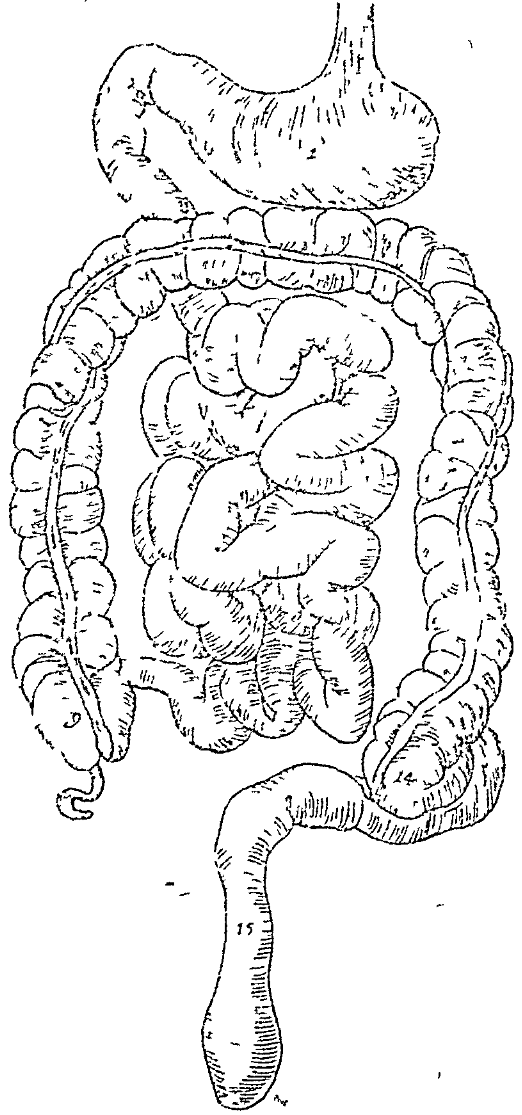
इस शिराप्रदर्शक चित्रमे क रव ग्रीवा पार्श्वस्थ बाह्य तथा अभ्यंतर कंठशिरा

ग	अनारव्यातशिरा
घ	जत्रुनिम्नशिरा
वृ	वृक्कद्वय
द	वृक्कशिरा.
ध	ऊर्द्ध्ववृक्कग्रंथिशिरा
ड	रेतोरज्जूशिरा
थ	बाह्यवस्तिशिरा.

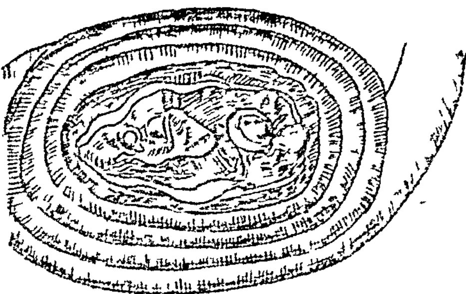
जत्रुके नीचे ऊर्द्ध्वस्थ महाशिरा तथा वस्तीसे अधस्थ महाशिरा.



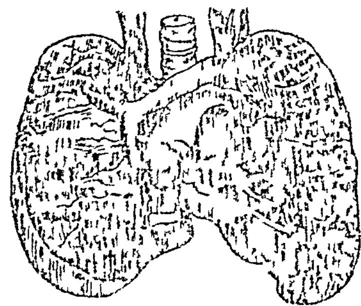
धमनी प्रदर्शक चित्र



अंत्र (आंतडें) प्रदर्शक चित्र.

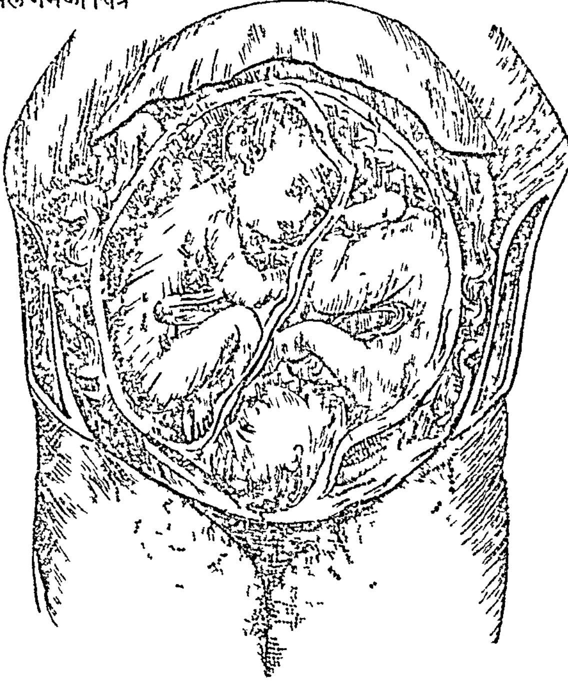


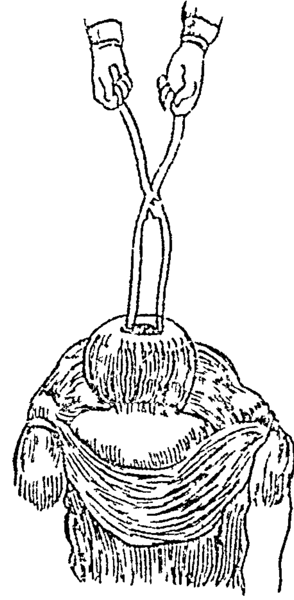
गर्भाशयका चित्र.



फुप्फुस (फेफडा)

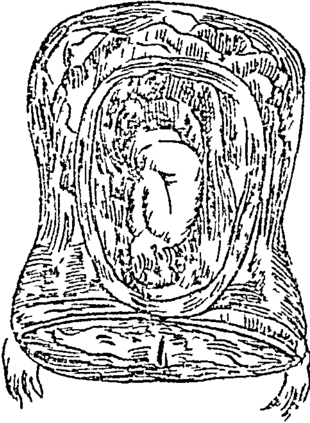
यमल गर्भका चित्र

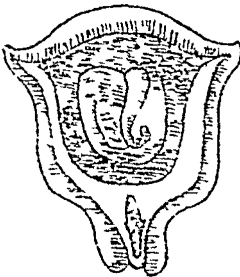




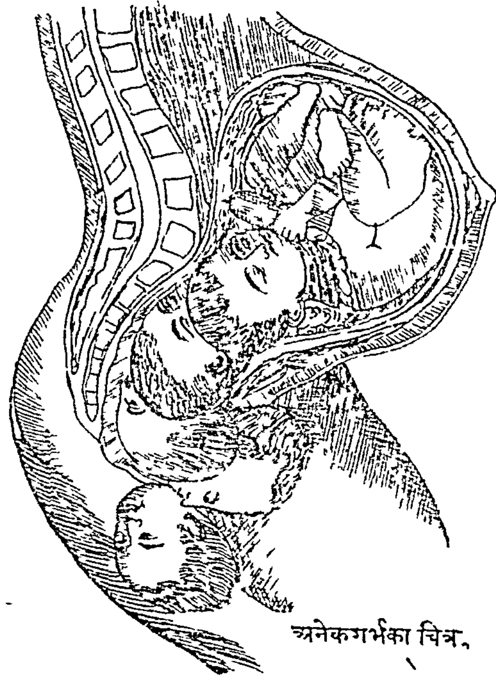
मूढगर्भ निकालनेका चित्र

मूढगर्भ प्रदर्शक चित्र

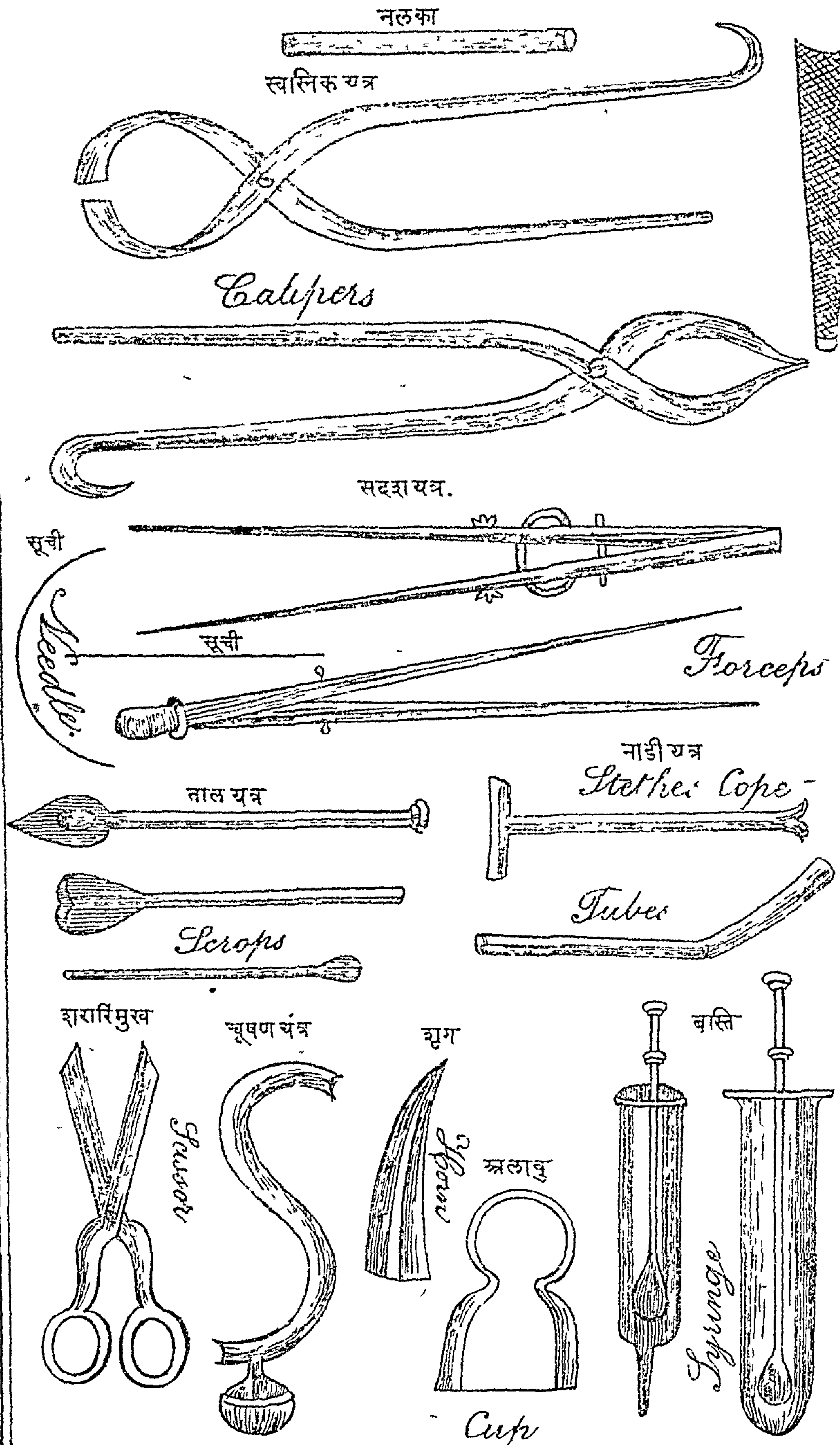




भ्रूणगर्भस्थितिप्रदर्शक चित्र



अनेकगर्भका चित्र.


नलका
स्वस्तिक यंत्र
Calipers
संदंश यंत्र.
सूची
Needle
सूची
Forceps
नाडी यंत्र
Stethes Cope
ताल यंत्र
Tubes
Scrops
शरारिमुख
चूषण यंत्र
शृंग
बस्ति
Scissor
Horn
अलाबु
Syringe
Cup

त्रिकूर्चक
Scarificator
शलाका
कुठारिका
अन्तर्मुख
Gum Lancet
Lancet
Probes
व्रीहिमुख
Puncture needle
मडलाग्र
करपत्र
वृद्धिपत्र
नखशस्त्र
दन्तशंकु
एषणी
Dagger
वेतसपत्र
Saw
Large Knife
Nail Lancet
मुद्रिका
आरा
उत्पल पत्र
Scope
बडिश
Hook
अर्ध अर्द्धधारा
Knife

भूमिका।

जब विचारकर देखा जाता है तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन सबका कारण शरीरही प्रतीत होता है और शरीरके नीरोग होने तथा स्थित रहनेहीसे इन सबका साधन होसकता है। आयुर्वेदविद्याका यही प्रधान उद्देश है कि, स्वस्थ शरीरकी रक्षा और रोगशांतिका प्रयत्न यथोचित रीतिसे किया जाय। यद्यपि इसका वर्णन प्रत्येक सद्वैद्यक ग्रन्थोंमे कियागयाहै तथापि सर्वगुणसंपन्न सर्व क्रियाओंका यथोचित प्रकाशक श्रीभगवान् धन्वतरिप्रणीत इस "सुश्रुतसंहिता" नामक ग्रंथमे जिस प्रकार उत्तमरीतिसे वर्णन कियागयाहै उसप्रकार अन्यमें नहीं है। आयुर्वेदविद्यामें १ चरक २ सुश्रुत ३ वाग्भट्ट ये तीन ग्रथ बहुत प्रसिद्ध और सर्वमान्य है इनमेभी सुश्रुत सर्वोत्तम है। जिसका कारण यह है कि चरकमें प्रत्येक विषयका प्रायः थोडा वर्णन है, शल्यतन्त्र और शारीरकभी सुश्रुतके समान नहीं और न रोगसख्या तथा उनकी चिकित्सा इतनी है जितनी कि इस सुश्रुतमें है और वाग्भट्ट तो मानो चरक और सुश्रुतका छायारूप ही है और इन्हींसे सग्रह किया गया है. सारांश यह है कि, आयुर्वेद (वैद्यक) विद्यामें इस सुश्रुतसहिताके समान कोई ग्रथ उत्तम नहीं है। यद्यपि संस्कृतमें इसपर भाष्य और कई टिकायें भी है तथापि इस समय सस्कृतभाषाकी बहुधा अनभिज्ञता और इस परमोपयोगी सुश्रुत संहिताके पठन पाठनका यथोचित प्रबंध न होनेसे इसके उत्तमोत्तम अमूल्य तत्त्व लुप्तप्राय होतेचले जारहे है. जिससे देशकी महती हानि होरही है। अस्तु, अब इस विद्याके तत्त्व और गुणगौरवका प्रकाश करना हम अपना मुख्य कर्तव्य और देशका परम उपकार समझते है इसी लिये लोकप्रसिद्ध आर्ष ग्रथकी ऐसी उत्तम टीका बनानेका उद्योग किया गया है कि, जिसमें ऊपर मूल है और मूलके ऊपर (सरलान्वयको छोड) अकसख्यामें अन्वयप्रकाश किया गया है. और कठिनशब्दों तथा गूढ आशयोंपर निबधसग्रहादि इसकी टीकाओंसे तथा चरक, वाग्भट्ट, हारीत, भावप्रकाश आदि अन्य आयुर्वेदीय प्रामाणिक पुस्तकोंमे तथा निघटुवों ओर वाचस्पत्य बृहदभिधान, शब्दस्तोममहानिधि, शब्दार्थचितामणि, मेदिनी, अमर आदि कोशोंसे एव अन्यान्य शास्त्रोंके अनेकानेक पुस्तकोंसे गभीर टिप्पनीरूप सस्कृतमें व्याख्यान कियागया है और फिर सरल हिंदी भाषामें टीका की गई है जो मूलके अनुसार अनुवादरूप अक्षरार्थ तथा भावार्थको अच्छे प्रकार द्योतन करती है इसके सिवाय जो कोई विशेष बात कथनयोग्य होती है वह वक्तव्यरूपमे कही गई है और इन सबके अतिरिक्त विशेष उत्तमता यह कीगई है कि, कदाचित् कोई वार्ता इसमें नहीं भी है और वह इस समय वैद्योंके लिये उपकारक है तो वह ग्रथांतरसे संग्रह करके इसके साथ परिशिष्ट रूपमें लिखीगई है तथा अनेक जगह डाक्टरी और यूनानीकाभी आशय लिखा गया है।

मुझे पूर्ण आशा है कि इस समयके वैद्यकविद्यारसिक वैद्य तथा देशहितैषी सज्जन हमारे इस परिश्रमसे लाभ उठाकर देशका उपकार करेंगे।

अंतमें हम यहभी प्रार्थना करते है कि, हमारी तथा प्रेसके कर्मचारियोंकी भूलचूकसे कहीं कुछ अशुद्धि या न्यूनाधिकता या अस्तव्यस्तता आदि त्रुटियाँ रहगई हों तो उन्हें सारग्राही सज्जन क्षमा करें और मुझे सूचित करे जिससे अन्य आवृत्तिमे ठीक कर दीजावें।

और अबकी बार द्वितीयावृत्तिमें फिर भी सशोधनकर उत्तम व्यवस्थासे यह ग्रन्थ मुद्रित हुआ है। आशा है कि वैद्यगण शीघ्र इसे ग्रहण कर स्वय लाभ उठावेंगे और हमारे परिश्रमको सफल करेंगे।

पाठकोंका अनुचर,
पं० मुरलीधर शर्मा रा. वै.
संपादक आरोग्यसुधाकर,
फर्रुख-नगर-निवासी.

समझनेके संकेत ।

१ (सू०) इससे सूत्रसंख्या समझना यद्यपि सूत्रादिकी ठीक २ संख्या अनेक पुस्तकोंमे भिन्न भिन्न मिलती है जिससे ठीक निश्चय नही होता तोभी बहुत विचार करके सूत्रादिकी संख्या लिखी गई है.

२ (श्लो०) श्लोक समझना.

३ (ग०) गद्य समझना.

४(१,२,३,४,) आदि अंक जो मूलपर सूक्ष्मरूपमें लिखेगये है वे अन्वयके क्रमको सूचित करते हैं। जहां कही ऊपर ये सूक्ष्म अंक नहीं हैं उसे सरलान्वय (सीधा) समझो.

५(नि०सं०) से निबंध संग्रह सुश्रुतकी टीका समझो.

६ (डल्हन:) डल्हनाचार्य इसका टीकाकार हुआहै.

७ (वृ०भ०) वृद्धवाग्भट्ट (अष्टांगसंग्रह)

८(वा०भ०) वाग्भट्ट (अष्टांगहृदय)

९ (भा०प्र०) भावप्रकाश–भावमिश्रकृत संहिता है.

१०(भा०मि०)भावप्रकाशकार भावमिश्र.

११ (चरक:) चरकमुनिप्रणीत चरकसंहिता.

१२ (हारीत) हारीतसंहिता.

१३ (मेदिनी) मेदिनीनामक कोश.

१४(श०स्तो०)शब्दस्तोममहानिधिनामक बृहत्कोश.

१५(वाचस्पति)तारानाथतर्कवाचस्पतिप्रणीत संस्कृत बृहदभिधान (बडा कोश)

१६(वा० बृ०) एवमेव.

१७(म०पा०) मदनपाल निघंटु.

१८ (र०स०) रसरत्नसमुच्चय, वाग्भट्टप्रणीत रसशास्त्रका ग्रंथ.

१९ (जैज्जट:) जैज्जटाचार्य सुश्रुतके प्राचीन संस्कृतटीकाकार.

२० (गय:) गयदासाचार्य; यह भी इसके प्राचीन टीकाकार है।

॥ श्रीः ॥

अथ सुश्रुतसंहितासूत्रस्थान-

विषयाऽनुक्रमणिका।



विषय — पृष्ठांक

अध्याय १.

टीकाकारोक्तमंगलाचरण १
आरंभिकश्लोक ... ... ,,
वेदोत्पत्ति अध्याय २
आयुर्वेदोत्पत्तिप्रकारवर्णन ... ... ,,
आयुर्वेदके आठ अंग (भाग)... ... ३
शल्यादि प्रत्यंगोंका लक्षण ४
आयुर्वेदसिद्धांतभेदवर्णन ७
पुरुषादिक सर्वपदार्थोत्पत्तिवर्णन ८
चतुर्विधभूतग्रामवर्णन .. ... ,,
शारीरागतुरोगभेदकथन ११
पांच स्थानोंका वर्णन १२

अध्याय २.

शिष्योपनयनीयाध्याय १३
वैद्यकदीक्षामें उपनयनाधिकारियोंका कथन... ,,
उपनयनका प्रकार ... ... ,,

अध्याय ३.

अध्ययनसंप्रदानीयाध्याय १६
अध्यायोंके आशयोंकी संक्षिप्त सूची ... १७

अध्याय ४.

प्रभापणीय अध्याय २५
अध्ययन करके अर्थज्ञानकी आवश्यकता ... २५

अध्याय ५.

अग्रोपहरणीय अध्याय २७
शस्त्रकर्मकी प्रधानता और उसके आठ भेद... ,,
सामग्रीसंपादन २८
शस्त्रकर्मारंभ .. .. .. ,,
श्रेष्ठ घावके लक्षण २९

विषय. — पृष्ठांक

शस्त्र कर्ममें श्रेष्ठ वैद्य २९
व्रणविधान ... ... ,,
व्रणितका उपचार ३०
व्रणितकी रक्षा ३१
रक्षामंत्र ... ... ,,

अध्याय ६.

ऋतुचर्या अध्याय ३४
काललक्षण ३५
समयका प्रमाण ... ... ,,
ऋतु ३६
अयनविभाग ... ... ,,
प्रकारांतरसे ऋतुविभाग ३७
ऋतुपरत्वमें औषधियोंके गुणदोष ... ३८
दोषशांतिका समय ४०
एक दिन रात्रिमें ऋतुविभाग ... ... ,,
ऋतुओंके लक्षण ४२
हेमंतऋतु... ... ... ,,
शिशिर ऋतु ... ... ,,
वसंतऋतु... ... ... ,,
ग्रीष्मऋतु ४३
प्रावृट् ऋतु ... ... ,,
वर्षाऋतु ... ... ,,
शरद् ऋतु ४४
ऋतुपरत्वसे दोपशांतिका यत्न ... ... ,,
परिशिष्ट ... ... ,,
ऋतुओंकी प्रकृति ... ... ,,
ऋतुओंके पथ्य और अपथ्य ४५
देशांतरीय ऋतुविभाग ... ... ,,

विषय.	पृष्ठांक.
अध्याय ७.	
यंत्रविधि अध्याय	४६
यत्रके प्रकार	”
स्वस्तिक यत्र	४७
संदंश यंत्र	४८
तालयत्र	४९
नाडी यंत्र	”
शलाका यत्र	५०
उपयंत्र	५१
यंत्रोंके कार्यके प्रकार	५२
यत्रोंके दूषण	५३
अध्याय ८.	
शस्त्रावचारणीय अध्याय	५४
शस्त्रोंके भेद	”
शस्त्रोंके कार्य	”
शस्त्रोंकी आकृति	५६
श्रेष्ठशस्त्र	५७
दूषितशस्त्र	”
शस्त्रोंकी धारका प्रमाण	”
शस्त्रधारकी परीक्षा	५८
अनुशस्त्र	”
अनुशस्त्रोंका बरताव	”
अध्याय ९.	
योग्यासूत्रीय अध्याय	५९
अभ्यास करानेकी विधि	६०
अध्याय १०.	
विशिखानुप्रवेशनीय अध्याय	६१
वैद्यकी योग्यता	६२
रोगपरिज्ञान	”
कर्ण इंद्रियसे जानने योग्य रोग	६३
स्पर्शविज्ञान	”
नेत्रोंसे जानने योग्य रोग	”
रसनाविज्ञान	”
घ्राणविज्ञान	”
प्रश्नविज्ञान	६४
परिशिष्ट	६५
नाडीपरीक्षा	”
प्रकारांतर (भा. प्र.)	६६
कतिपय रोगोंपर नाडी	६७
असाध्य रोगीकी नाडी	”
अन्यच्च	”
डाक्टरी नाडी परीक्षा	
यूनानी	६८
मूत्रपरीक्षा	”
प्रकारांतरसे मूत्रपरीक्षा	६९
तेलसे मूत्रपरीक्षा	”
साध्य और असाध्य परीक्षा	”
यूनानी	७०
डाक्टरी परीक्षा	”
प्रसंगवशान्मलपरीक्षा	७१
अन्यच्च	”
जिह्वापरीक्षा	”
नेत्रपरीक्षा	”
मुखपरीक्षा	७२
अध्याय ११.	
क्षारपाकविधि अध्याय	”
क्षार लक्षण	”
क्षार योजना	७३
क्षारका निषेध	७४
क्षारोंके साधनकी विधि	”
क्षारके गुण और दोष	७७
क्षारके उपयोग करनेकी विधि	”
क्षारदग्धपर अम्ल योजनामें शंका	७८
इसका समाधान	”
अध्याय १२.	
अग्निकर्मविधि अध्याय	८०
अग्निकर्म करनेके योग्य व्याधि	८२
चार प्रकारसे अग्निकर्म	”
अग्निकर्ममें वर्जित रोगी	८३
चार प्रकारका अग्निदग्ध	८४
अग्निदग्धका प्रतिकार	८५
दुर्दग्धका यत्न	”
सम्यक् दग्धका यत्न	”
अतिदग्धका यत्न	८६
लूआदिके मारेहुओंका यत्न	८७
परिशिष्ट	८८

विषय.	पृष्ठांक.
अध्याय १३.	
जलौकावचारणीय अध्याय	८८
जोंखोंका वर्णन	८९
विषयुक्त जोंख	,,
निर्विष जोंख	९०
दूषित जलौका	९२
जलौका लगानेकी विधि	,,
अध्याय १४.	
शोणितवर्णनीय अध्याय	९४
वायु पित्त और कफसे बिगडे रक्तके लक्षण .	९८
रक्त नहीं निकालने योग्य	९९
रक्तस्राव	,,
ठीक रक्त निकलनेकी पहँचान	१००
अल्प रक्त निकलने या न निकले तो यत्न ...	१०१
विशेष रक्त निकलनेपर यत्न	,,
रक्त शेष रखनेकी आज्ञा	१०३
अध्याय १५.	
दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीय अध्याय ..	१०४
दोषधात्वादिकी क्षीणताके लक्षण... ...	१०६
दोषधात्वादिकी वृद्धताके लक्षण . .	१०८
बल और ओजके लक्षण	११०
ओजका स्वरूप	१११
परिशिष्ट श्लोक	११४
स्थूलता	११५
समताकी श्रेष्ठता	११७
दोषधात्वादिकी अपरिमाणता	११८
अध्याय १६.	
कर्णव्यधबंधविधि अध्याय	११९
कर्णवेधके कारण और विधि	,,
कर्णबंधनकी पंद्रह आकृति	१२१
आकृतियोंके लक्षण	,,
संक्षिप्तादि आकृतियोंकी असाध्यता ..	१२२
कर्णबंधकी परीक्षा	,,
शुद्ध कर्णके बढानेके अर्थ अभ्यंग ...	१२४
कर्णपालीके रोग	१२६
कर्णपालीके उपद्रव	,,
उपद्रवोंके उपचार	१२७
नासिका	१२८
अध्याय १७.	
आमपक्वैषणीय अध्याय	१२९
शोफके लक्षण	१३०
पच्यमान लक्षण	१३१
छेदनकी आज्ञा	१३२
व्रणके सात कर्म	१३४
अध्याय १८.	
व्रणालेपनबंधविधि अध्याय	१३५
व्रणके उपचार	,,
तीन प्रकारके लेप	,,
व्रणबंधनके पदार्थ	१३७
बंधोंके भेद	१३८
अबंध्यरोग	१४१
व्रणबंधके प्रकीर्ण उपदेश	१४२
अध्याय १९.	
व्रणितोपासनीय अध्याय	१४३
व्रणीकी स्थानादि व्यवस्था	,,
व्रणीको त्याज्य पदार्थ	१४४
व्रणीकी रक्षा	१४७
अध्याय २०.	
हिताहितीय अध्याय... . ..	१४९
आहारके निमित्त हितवर्ग	१५०
क्वचित् विरुद्धका प्रयोग	१५२
संयोगसे अहित पदार्थ	,,
कर्मविरुद्ध	१५४
मानविरुद्ध	,,
विरुद्ध पदार्थोंके अवगुण	१५५
विरुद्ध भुक्तका प्रतीकार	१५६
पूर्वका पवन	१५७
दक्षिणका पवन	१५८
पश्चिमका पवन	,,
उत्तरका पवन	,,
परिशिष्ट	,,
आग्नेय पवनके गुण	,,
नैर्ऋत्यका पवन	१५९

विषय.	पृष्ठांक
वायव्यका पवन	१५९
ईशानका पवन	,,

अध्याय २१.

विषय.	पृष्ठांक
व्रणप्रश्न अध्याय	१५९
पित्तही अग्नि है या पृथक्	१६१
पाचक पित्त	१६२
रञ्जक पित्त	,,
साधक पित्त	१६३
आलोचक पित्त	,,
भ्राजक पित्त	,,
पित्तका स्वरूप	,,
क्लेदन	१६४
अवलंबन..	,,
रसन	,,
स्नेहन	१६५
श्लेष्मण	,,
कफका स्वरूप	,,
रक्तका स्वरूप	,,
दोषसंचय	१६६
वायुकोपकारक आहार विहार	,,
पित्तकोपकारक आहार विहार	१६७
कफकोपकारक आहार विहार	१६८
रक्तकोपकारक आहार विहार	,,
दोषकोपके चिह्न	१६९
दोषोंका प्रसर	,,
स्थानांतर्गत दोषोंका प्रतीकार	१७१
प्रकुपित वायुपित्तकफके चिह्न	,,
व्याधिका स्पष्टरूप दर्शन	१७३
संसर्गमें चिकित्साक्रम	१७५

अध्याय २२.

विषय.	पृष्ठांक
व्रणस्रावविज्ञानीय अध्याय	१७५
व्रणके स्थान	,,
दुष्ट व्रणके लक्षण	१७६
सब प्रकारके स्रावके लक्षण	१७७
असाध्य स्राव	१७९
वातव्रणवेदना	,,
पित्तव्रणवेदना	१८०
कफव्रणवेदना	,,
सन्निपातव्रण	१८१
व्रणोंके वर्ण	,,

अध्याय २३.

विषय.	पृष्ठांक
कृत्याकृत्यविधि अध्याय	१८१
सुखसाध्य व्रण	१८२
दु:साध्य व्रणके लक्षण	,,
असाध्य व्रण लक्षण	१८४
शुद्ध व्रणके लक्षण	१८६

अध्याय २४.

विषय.	पृष्ठांक
व्याधिसमुद्देशीय अध्याय	१८७
व्याधियोंके ७ भेद	१८८
आदिबल प्रवृत्तके लक्षण	,,
जन्मबलप्रवृत्त	,,
दोषबलप्रवृत्त	,,
संघातबलप्रवृत्त	१८९
कालबलप्रवृत्त . ..	,,
दैवबलप्रवृत्त	,,
स्वभावबलप्रवृत्त	,,
व्याधियोंके कारण	१९०
रससे होनेवाले रोग	,,
रक्तदोषके रोग	१९१
मांसदोषज रोग	,,
मेदोदोषके विकार	,,
अस्थिदोषके विकार	,,
मज्जादोषजनित विकार	१९२
शुक्रदोषजन्य विकार	,,
ज्वरादिकोंका संबधपरिच्छेदविचार ..	,,

अध्याय २५.

विषय.	पृष्ठांक
अष्टविध शस्त्रकर्म अध्याय	१९४
छेद्य रोग...	,,
भेद्य रोग	,,
लेख्य रोग	१९५
वेध्य और एष्यरोग	,,
आहार्य रोग	,,
स्राव्य रोग	,,
सीव्य रोग	१९६
सीमनेकी विधि	,,

विषय.	पृष्ठांक.
शस्त्रकर्ममें वैद्यकी योग्यता	१९८
दुष्ट शस्त्रकर्मसे होनेवाली व्याधि ...	”

अध्याय २६.

प्रनष्टशल्यविज्ञानीय अध्याय	२०१
शल्य लक्षण	”
शरके भेद	”
शरीरगत शल्यके सामान्य और विशेष लक्षण	२०२
त्वगागत शल्य विज्ञान	२०४
मांस कोष्ठादिगत शल्य विज्ञान	”
शल्यरहितके लक्षण	२०६
शल्यभेद	”

अध्याय २७.

शल्यापनयनीय अध्याय	२०८
शल्यभेद	”
शल्य निकालनेके हेतु	”
शल्य निकालनेकी विधि	”
शल्यापनयनसे उत्तर क्रिया	२१०

अध्याय २८.

विपरीताविपरीतव्रणविज्ञानीय अध्याय ...	२१४
साध्यासाध्य व्रणके लक्षण	२१५

अध्याय २९.

विपरीताविपरीत–दूत–शकुन–स्वप्ननिदर्शनीय अध्याय	२१७
दूतके लक्षण	२१८
दूतकी श्रेष्ठता	२२१
शकुनविज्ञान	”
स्वप्नविचार	२२६
स्वप्नकी विफलता	२२८
नियत रोगोंमें नियत स्वप्नारिष्ट	”
खोटे स्वप्नका परिहार	”

अध्याय ३०.

पंचेंद्रियार्थविप्रतिपत्ति अध्याय	२३०
रोगीकी प्रकृतिसे शुभाशुभज्ञान	”

अध्याय ३१.

छायाविप्रतिपत्ति अध्याय	२३४
कांतिसे और अवयवोंसे रोगीकी परीक्षा ..	”
रोगीके असाध्य लक्षण	२३६

विषय.	पृष्ठांक.

अध्याय ३२.

स्वभावविप्रतिपत्ति अध्याय	२३८
अकस्मात् वैपरीत्यसे शुभाशुभ ज्ञान ...	२३९
निंदितस्थानस्थ ग्रहोंसे अरिष्टकी सूचना ...	२४१
परिशिष्ट	२४२

अध्याय ३३.

अवारणीय अध्याय	२४६
महाव्याधि	”
वातव्याधिकी असाध्यता	२४७
प्रमेहका असाध्यरूप	”
कुष्ठकी असाध्यता	”
अर्शकी असाध्यता	२४८
भगदरकी असाध्यता...	”
अश्मरीकी असाध्यता...	”
मूढगर्भकी असाध्यता	”
उदररोगोंकी असाध्यता	२४९
ज्वरकी असाध्यता	”
अतिसारकी असाध्यता .. .	”
राजयक्ष्माकी असाध्यता	२५०
गुल्मकी असाध्यता	”
विद्रधिकी असाध्यता...	”
पाण्डुरोगकी असाध्यता	”
रक्तपित्तकी असाध्यता	”
उन्मादकी असाध्यता	२५१
अपस्मारकी असाध्यता	”
परिशिष्ट	”
शोथरोगकी असाध्यता .. .	”
शूलका अरिष्ट	”
श्वास रोगका अरिष्ट...	”

अध्याय ३४.

युक्तसेनीय अध्याय	२५२
सेनानियुक्त वैद्यको उपदेश	”
राजरक्षणके हेतु	”
चिकित्साके चार पाद...	२५४

अध्याय ३५.

आतुरोपक्रमणीय अध्याय	२५५
आयुके लक्षण	२५६

विषय.	पृष्ठांक.
दीर्घायुके लक्षण	२५७
मध्यमायुके लक्षण	२५८
अल्पायुके लक्षण	”
अंग प्रत्यग	२५९
धातुओंके सारका वर्णन	२६२
औपसर्गिकादिके लक्षण	२६४
जठराग्नि भेद	२६५
विषमाग्नि	२६६
तीक्ष्णाग्नि	”
मदाग्नि	”
विषमादि अग्निसे होनेवाले रोग	२६७
बालादि अवस्थाओंके लक्षण	”
देहका विचार	२६९
बलविचार	”
सत्त्वविचार	२७०
सात्म्यविचार	”
देशविचार	२७१

अध्याय ३६.

विषय.	पृष्ठांक.
मिश्रक अध्याय	२७३
विम्लापन (शोथहरण)	”
व्रणपाचन	२७४
पक्वव्रणदारण	”
व्रणपीडन	२७५
व्रणशोधन	”
व्रणधूपन.	२७६
व्रणरोपण...	”
व्रणका उत्सादन (निचाई भरन)	२७७
व्रणकी चकानपर ऊंचाई हो तो घटाना	२७८

अध्याय ३७.

विषय.	पृष्ठांक.
भूमिप्रविभागविज्ञानीय अध्याय	२७८
औषधार्थ सामान्य भूमि	”
विशेष गुणवाली भूमि	२७९
प्राप्तद्रव्योंका विचार...	२८२

अध्याय ३८.

विषय.	पृष्ठांक.
द्रव्यसंग्रहणीय अध्याय	२८३
द्रव्योंके गण भेद	”
१ विदार्यादिगण	”
२ आरग्वधादिगण	२८४
३ वरुणादिगण	२८५
४ वीरतर्वादिगण	”
५ सालसारादिगण	२८६
६ रोध्रादिगण	”
७ अर्कादिगण	२८७
८ सुरसादिगण	”
९ मुष्ककादिगण	२८८
१० पिप्पल्यादिगण	”
११ एलादिगण	”
१२ वचादि १३ हरिद्रादिगण	२८९
१४ श्यामादिगण	”
१५ बृहत्यादिगण	२९०
१६ पटोलादिगण	”
१७ काकोल्यादिगण	२९१
१८ ऊषकादिगण	”
१९ सारिवादिगण	”
२० अंजनादिगण	२९२
२१ परूपकादिगण	”
२२ प्रियग्वादि और २३ अंवष्ठादिगण	”
२४ न्यग्रोधादिगण	२९३
२५ गुडूच्यादिगण	२९४
२६ उत्पलादिगण	”
२७ मुस्तादिगण	”
२८ त्रिफला	२९५
२९ त्रिकटु	”
३० आमलक्यादिगण	”
३१ त्रप्वादिगण	”
३२ लाक्षादिगण	२९६
३३ लघुपंचमूल	”
३४ बृहत्पंचमूल	२९७
३५ वल्लीपचक और ३६ कटकपचमूल	”
३७ तृणपचमूल	”

अध्याय ३९.

विषय.	पृष्ठांक.
संशोधनसंशमनीय अध्याय	२९९
वमन द्रव्य	”
विरेचन द्रव्य	”
वमनविरेचनद्रव्य	३००

विषय.	पृष्ठांक.
शिरोविरेचन द्रव्य	३००
वातशमनवर्ग	३०१
पित्तशमनवर्ग	३०२
कफशमनवर्ग	३०३
औषधोंकी मात्राकल्पना	"

अध्याय ४०.

द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकविज्ञानीय अध्याय ...	३०४
द्रव्यकी प्रधानता	३०५
रसकी प्रधानता	३०७
वीर्यकी प्रधानता	३०८
वीर्यके भेद	"
वीर्यभेदके गुण	३०९
विपाककी प्रधानता	३१०
विपाकनिर्णय	"
विपाकसिद्धांत	३११
द्रव्य-रस-गुण आदिके साराशमें धन्वंतरिजीका मत	३१२

अध्याय ४१.

द्रव्यविशेषविज्ञानीय अध्याय	३१४
पार्थिवके लक्षण	"
आप्यलक्षण	३१५
तैजस पदार्थके लक्षण	"
वायवीयद्रव्यलक्षण	"
आकाशीय द्रव्य	३१६
द्रव्यप्रयोजन	"
द्रव्यके काल-कर्म आदिके लक्षण ...	"

अध्याय ४२.

रसविशेषविज्ञानीय अध्याय	३२०
रसके छह भेद	३२१
रसोंके गुण	३२२
मधुरादि षड्रसोंके लक्षण	३२४
मधुररस लक्षण	"
अम्लरस लक्षण	"
लवणरस लक्षण	"
कटुकरस लक्षण	"
तिक्तरस लक्षण	३२५
कषायरस लक्षण	"

विषय.	पृष्ठांक
मधुरवर्ग	३२८
अम्लवर्ग	३२९
लवणवर्ग	"
कटुकवर्ग	३३०
तिक्तवर्ग	"
कषायवर्ग	३३१
सयोगसे होनेवाले भेद	"

अध्याय ४३.

वमनद्रव्यविकल्पविज्ञानीय अध्याय .	३३२
वमन द्रव्य	"
आशिष मंत्र	३३३
वमन करनेकी विधि	"
मैनफलादि औषधोंकी विधि	३३४

अध्याय ४४.

विरेचनद्रव्यविकल्पविज्ञानीय अध्याय ...	३३५
विरेचनीय द्रव्य	"
विरेचनीय चूर्ण गुटिका और मोदक आदि ...	"
विरेचनीय आसव	३४१
दतीद्रवंतीकी विधि	३४४
तिल्वकविधान	३४६
हरीतकीविधान	३४७
बृहत्पंचमूलकी विधि	३४९
सप्तलादिकी विधि	३५०
द्रवद्रव्यविधि अध्याय	"

जलवर्ग.

भूमिके रंगसे जलके गुण	३५२
आंतरिक्ष जलके भेद	३५३
गाग जलके गुण	"
सामुद्र जलके गुण	३५४
भौम जलके भेद	३५५
नवीन जलका निषेध..	"
दूषित जलके दोष	३५६
दूषित जलकी शुद्धि	३५७
अशुद्ध जलसे होनेवाली व्याधि	"
जलका निर्मलीकरण	३५८
जलपात्र रखनेकी वस्तु	"
जल ठंडा करनेकी विधि	"

विषय.	पृष्ठांक
उत्तम जल ...	३५९
नदियोंके जलके गुण ...	,,
भौमजलग्रहणकाल ...	३६०
चन्द्रकान्तीय जल ...	३६१
शीत जलपानविधि ...	,,
शीतजलपाननिषेध ...	,,
नदीसरोवरादिके जलके गुण ...	३६२
उष्ण जलके गुण ...	३६३
बासी जलका निषेध...	,,
शृतशीत जलविधि ...	३६४
नारियलके जलके गुण ...	,,

दुग्धवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक
दुग्धके भेद ...	३६४
सामान्य दुग्धके गुण...	३६५
गोदुग्धादिके विशेष गुण ...	३६६
कच्चे और पक्के दूधके गुण ...	३६८
वर्जित दुग्ध ...	,,

दधिवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक
दधिके सामान्य गुण...	३६८
गौमहिषी आदिके दधिके गुण ...	३६९
भेडके दहीके गुण ...	,,
स्त्रीके दहीके गुण ...	३७०
गौके दहीकी सबसे उत्तमता ...	,,
निचोडेहुए दहीके गुण ...	,,
औटाये दूधका दही ...	,,
दहीके सरके गुण ...	,,
मस्तुके गुण ...	३७१
दधिसेवन और निषेधकी ऋतु ...	,,

तक्रवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक
तक्रके सामान्य गुण ...	३७२
छाछ और घोलके लक्षण ...	,,
छाछका निषेध ...	,,
तक्रकी योजना ...	,,
मधुरादि तक्रके गुण ...	३७३
माखनके गुण ...	,,
गौके दूधका माखन ...	३७४
किलाटिका ...	,,

घृतवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
सामान्य घृतके गुण ...	३७४
गोघृतके गुण ...	३७५
बकरीका घृत ...	,,
भैसका घृत ...	,,
ऊंटनीका घृत ...	३७६
भेडका घृत ...	,,
एक खुरे पशुका घृत ...	,,
नारी दुग्धघृत ...	,,
हथिनीके दूधका घृत ...	,,
कच्चे दूधके माखनका घृत ...	३७७
घृतका मड ...	,,
पुराणा घृत ...	,,

तैलवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
सामान्य तैलके गुण ...	३७८
तिलतैलके गुण ...	३७९
एरंडका तेल ...	,,
कुछ न्यारे न्यारे तैलोंके गुण	३८०

मधुवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
सामान्य मधुके गुण ...	३८३
मधुकी ८ जाति ...	३८४
सब प्रकारके मधुके न्यारे २ गुण ...	३८५
नवीन पुराण पक्के कच्चे शहतके गुण ...	३८६

इक्षुवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
सामान्य इक्षुके गुण और इक्षुके भेद ...	३८७
पौण्ड्रकादि इक्षुके गुण ...	३८८
ईखका रस ...	,,
राव और गुडके गुण...	३८९
पुराने गुडके गुण ...	,,
शर्कराके गुण ...	,,
मधुशर्कराके गुण ...	३९०

मद्यवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
मद्यके सामान्य गुण ...	३९१
द्राक्षाकी मद्य ...	,,
छुहारेकी मद्य ...	,,
सुराओंके गुण ...	३९२
जगल और बक्कस ...	३९३

विषय.	पृष्ठांक.
सीधु	३९३
आसव	३९४
नव पुराणा मद्य	"
दूषित मद्य	३९५
सैन्यमद्य	३९६
मद	"
निजप्रकृतिसे मदभेद	"
शुक्त (सिरका)	३९७

मूत्रवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
मूत्रके भेद और सामान्यतासे गुण ...	३९८
गोमूत्रके गुण	"
महिषी आदिके मूत्र...	३९९
परिशिष्ट	"

अध्याय ४६.

विषय.	पृष्ठांक.
अन्नपानविधि अध्याय	४००
प्रणामपूर्वक अन्नादिज्ञानका प्रश्न	"

शालिवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
शालि धान्यकी जाति	४०१
शालिधान्यके गुण	४०२
षष्ठिकके भेद	"
षष्ठिकके गुण	४०३
व्रीहिभेद और गुण	"

कुधान्यवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
कुधान्यके भेद और गुण	४०५
मुद्गगण	४०६
मसूरादिके गुण	"
माषगुण	४०७
कवचबीज शिंबी कुलत्थ वनकुलत्थगुण ...	"
तिलगुण	४०८
जौके गुण	"
गेहूंके गुण	४०९
फलीके धान्य	"
कुसुंभके बीज और सरसोंके गुण ...	४१०
अनार्तवादि धान्योंका निषेध	"

मांसवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
मांसके प्रकार	४११
इसमें जांगलके ८ भेद	"
जंघाल	४११
विष्किर	४१३
प्रतुद	४१४
गुहाशय	४१५
प्रसह पक्षी	४१६
पर्णमृग	"
बिलेशय	४१
ग्राम्य	४१८
आनूप	४१९
कूलचर	"
हाथीआदि पशुओंका मांस	"
हंसआदि पक्षी	४२१
मत्स्य	४२२
दूषित मांस	४२४

फलवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
फलोंके नाम	४२५
अम्लरस फलोंके गुण	"
दाडिमगुणवर्णन	४२८
आमलक गुण	"
बदरादिगुणकथन	"
कपित्थादि फलोंके गुण	"
आम्रादि फलोंके गुण	४२९
भव्य (कमरख) आदि फलोंके गुण ...	४३०
कोशाम्रआदिके गुण...	"
क्षीरवृक्षफलादिके गुण	४३१
अजीर आदि फलोंके गुण वर्णन... ...	४३२
तालफलादिके गुण कथन	४३३
द्राक्षादिकोंके गुण वर्णन	"
बादामादिके गुण	४३४
लवलीफलादिके गुण...	"
करीरादिफलोंके गुण कथन	४३५
अभयाआदि फलोंके गुण	४३६
पूगफलादिकोंके गुण	"
चिरौंजीआदि फलोके गुण	"
पक्कफलोंके गुण	४३७
दूषितफलकथन	"

शाकवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
सामान्यतासे शाकके गुण दोष	४३८

विषय.	पृष्ठांक.
कूष्माण्डआदिकोंके गुण	४३८
ककडीआदिकोंके गुण	४३९
पिप्पलीआदिकोंके गुण	,,
सौंफ आदि शाकोंके गुण	४४१
सुरसा और कासमर्दादिके गुण	४४२
बडी मूली आदिके गुण	४४३
लहसुनके गुण	,,
प्याजके गुण	४४४
कलाय शाकादिके गुण	,,
तण्डुलीयकादिके गुण	४४५
मण्डूकपर्णी आदिके गुण	४४६
ताम्बूलपत्रके गुण	४४९

पुष्पवर्ग.

कोविदारादिके पुष्पोंके गुण	४५०
सिन्दुवारादिके पुष्पोंके गुण	,,
मधुशिग्रु आदिके फूलोंके गुण	४५१

कन्दवर्ग.

विदारीकन्दादिके गुण	४५३
परिशिष्ट ...	,,
शृङ्गाटक और कसेरु आदिके गुण	४५४
सूरणके गुण	,,
परिशिष्ट ...	४५५
गाजरके गुण	,,
केलाकन्दके गुण	,,

लवणवर्ग.

सैन्धवादि लवणोंके गुण	४५६
यवक्षारादिके गुण	४५७
परिशिष्ट ...	,,
नवसार और फतकडीका वर्णन	,,
सुवर्णादि धातुओंके गुण	४५८
प्रकीर्ण उपदेश	४५९

कृतान्नवर्ग.

विषय.	पृष्ठांक.
यवागूके गुण	४६१
मण्ड, पेया, विलेपी आदिके लक्षण	,,
मांसके गुण	४६४
मुद्गादिकोंके यूषके गुण	४६५
मसालादिके गुण	४६७

भक्ष्यवर्ग.

क्षीरकृत भक्ष्यादिकोंके गुण	४६८
लाजा और पृथुकादिकोंके गुण	४७१

अनुपान वर्ग.

अम्लादि रसोंसे व्याकुलहुए मनुष्यके लिये यत्न	४७२
सब अनुपानोंमें श्रेष्ठ अनुपान	,,
स्नेहादिकोंमें अनुपान.	४७३
प्रत्येक वर्गके पृथक् २ अनुपान...	४७४

आहारविधि ।

महानसादिके विषयमें वर्णन	४७७
आहारकी समस्त उपकल्पनाका वर्णन	४७८
भोजनपात्रविवेचन आदि	,,
भोजननियमादि	४८१
अजीर्णका कारण	४८६
चार प्रकारके अजीर्णके संक्षिप्त लक्षण	४८८
अजीर्णका उपद्रव	,,
अजीर्णका संक्षिप्त प्रतिकार	,,
समाशन विषमाशन तथा अध्यशनके लक्षण	४८९
शीत-उष्णादि गुणोंके कर्म्मोंका वर्णन	४९०
परिशिष्ट ...	४९२
दीपनपाचनादिक	,,
सुश्रुतपढनेका महत्त्व...	४९६

इति सुश्रुतसंहितासूत्रस्थानविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

अथ सुश्रुतसंहिता ।

सान्वयभाषाटीकासहिता ।

सूत्रस्थानम्.

अथादौ टीकाकारोक्तं मङ्गलाचरणम् ।

यस्यागाधदयोदधेरणुकणस्त्रैलोक्यसौख्यालयो यद्वात्सल्यमनल्पकल्पजनिताधिव्याधिसद्भेषजम् ॥ यल्लीलांगमनेककोटिगणितब्रह्माण्डकोद्घाटनं शं दद्यात्स कृपानिधिः परभिषग्लोकेश्वरः केशवः ॥ १ ॥

जिस सच्चिदानन्द आनन्दकन्द परमेश्वरकी दयाके अगाध समुद्रका एक छोटासा कणका त्रिलोकीके सुखका आधार है और जिसकी वत्सलता बहुत कल्पजनित आधि और व्याधियोंकी सिद्ध औषध है और जिसकी लीलाका एक अंग अनेक करोड़ ब्रह्मांडोंका उद्घाटन (प्रगट) करना है वह कृपानिधि परम वैद्य समस्त लोकोंका स्वामी केशव परमेश्वर कल्याण प्रदान करो ॥ १ ॥

आरंभिकश्लोकाः ।

उपदिष्टा तु या सम्यग्धन्वंतरिमहर्षिणा ॥ सुश्रुताय सुशिष्याय लोकानां हितवांछया ॥ २ ॥ सर्वत्र भुवि विख्याता नाम्ना सुश्रुतसंहिता ॥ आयुर्वेदत्रयीमध्ये श्रेष्ठा मान्या तथोत्तमा ॥ ३ ॥ सा च नागार्जुनेनैव ग्रथिता ग्रन्थरूपतः ॥ तस्या एवं सुबोधायं टीका च क्रियते मया ॥ ४ ॥ सुपदा सान्वया स्पष्टभाषयार्थप्रकाशिनी ॥ यत्र तत्र च गूढार्थबोधिनीटिप्पणीयुता ॥ ५ ॥

(श्लो० १)–लीलाया अंग लीलांग, शार्दूलविक्रीडित छंदः श्लोकेऽस्मिन् । दद्यात् 'देयात्' इति वा पाठः ॥
(श्लो० ५) सर्वाणि पदानि पूर्वश्लोकांतर्गतटीकापदस्य विशेषणानि । एतेषां चतुर्णां श्लोकानामनुष्टु छंदः

इस संहिताको महर्षि धन्वंतरि (काशिराज महाराज) ने जगत्के कल्याणकी इच्छासे अपने सुशिष्य सुश्रुत ऋषिके प्रति सम्यक् रीतिसे वर्णन किया ॥ २॥ समस्त पृथ्वीपर यह सुश्रुतसंहिता नामसे विख्यात हुई और आयुर्वेदत्रयी (चरक सुश्रुत और वाग्भट्ट इन) में श्रेष्ठ और मान्य तथा उत्तम समझी गई ॥ ३ ॥ इसीको महात्मा नागार्जुनने ग्रंथरूपसे ग्रथित किया, अब उसीकी इस समयके वैद्योंके बोधके अर्थ में टीका करता हूं ॥ ४॥ जो मैं टीका करता हूं वह कैसी है कि, सुपद और अन्वयसहित तथा देशभाषामें अर्थ प्रकाश करनेवाली और जहां तहां गूढ शब्दार्थोंपर टिप्पणीसंयुक्त है॥५ ॥

प्रथमोऽध्यायः १.

नमो ब्रह्मप्रजापत्यश्विबलभिद्धन्वंतरिसुश्रुतप्रभृतिभ्यः ।

प्रथम नागार्जुन-ब्रह्मा, दक्षप्रजापति, अश्विनीकुमार, इंद्र, धन्वंतरि और सुश्रुत आदिको प्रणाम करते हैं ॥

अथाऽतो वेदोत्पत्तिं नामाऽध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

यथोवाच भगवान्धन्वन्तरिः सुश्रुताय ॥ २ ॥

प्रथम समारम्भमें वेदोत्पत्ति (आयुर्वेदोत्पत्ति) नामक अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥ १ ॥ जैसे श्रीधन्वन्तरि भगवान्ने सुश्रुतके प्रति वर्णन किया ॥ २ ॥

अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगणपरिवृतमाश्रमस्थं काशिराजं दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनववैतरणौरभ्रपौष्कलावतकरवीर्यगोपुररक्षितसुश्रुतप्रभृतय ऊचुः ॥ ३ ॥

(एक समय) ऋषियों सहित आश्रममें विराजेहुए काशिराज दिवोदास नाम देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् धन्वंतरि महाराजसे औपधेनव, वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य, गोपुर, रक्षित, सुश्रुत आदिक ऋषि पूंछतेभये ॥ ३ ॥

भगवन् ! शारीरमानसागंतुस्वाभाविकैर्व्याधिभिर्विविधवेदनाभिघातोपद्रुतान् सनाथानप्यनाथवद्विचेष्टमानान्विक्रोशतश्च मानवानभिसमीक्ष्य मनसि नः पीडा भवति तेषां सुखैषिणां रोगोपशमार्थमात्मनः प्राणयात्रार्थञ्च प्रजाहितहेतोरायुर्वेदं श्रोतुमिच्छाम इहोपादिश्यमानम् ॥ ४ ॥

(सूत्र १) अथशब्दो मंगलद्योतनायादौ प्रयुक्तः । उक्तं च-"अथाथो मंगले स्यातामधिकारे च संशये। विकल्पानंतरप्रश्नकात्स्न्यारंभसमुच्चये" इति मेदिनी ॥ (सूत्र २) सुश्रुतो विश्वामित्रात्मजस्तस्मै धन्वंतरी राजर्षिः।(सूत्र ४) शारीरादिव्याधिलक्षणान्यग्रे वक्ष्यते । प्राणयात्रार्थमित्यत्र 'प्राणत्राणार्थम्' इति पाठः॥

हे भगवन् ! शारीरक, मानस, आगंतुक और स्वाभाविक व्याधियोंसे नाना प्रकारकी पीड़ाके क्लेशसे दुःखित व सनाथ होकरभी अनाथकी भांति तड़फते और विलाप करते हुए मनुष्योंको देखकर हम सबके मनमें खेद होताहै इससे उन सुख चाहनेवाले रोगियोंके रोगशांतिके लिये और सुखसे अपना जीवन व्यतीत करनेको तथा प्रजाके कल्याणके अर्थ जैसे आप उपदेश करेंगे आयुर्वेद (वैद्यक-शास्त्र) के सुननेकी हम सब इच्छा करते हैं ॥ ४ ॥

अत्राऽऽयत्तमैहिकमामुष्मिकञ्च श्रेयः ॥ ५ ॥

इस शास्त्रद्वारा (हमारा) सांसारिक और पारलौकिक कल्याण सन्निहित है॥५॥

तद्भगवंतमुपपन्नाः स्मः शिष्यत्वेनेति ॥ ६ ॥

तिस कारणसे हम शिष्यभाव करके आपकी शरणमें आयेहैं ॥ ६ ॥

तानुवाच भगवान्, स्वागतं वः ॥ ७ ॥ सर्वे एवं मीमांस्या अध्याप्याश्च भवन्तो वत्साः ॥ ८ ॥

भगवान् धन्वन्तरिने उनसे कहा कि, तुम्हारा आगमन बहुत श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ तुम सब शिष्य प्रामाणिक और पढ़ानेयोग्य हो ॥ ८ ॥

इह खल्वाऽऽयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्याऽनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकं शतसहस्रमध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयंभूः ॥९॥

यह संपूर्ण आयुर्वेदनामक शास्त्र जो अथर्ववेदका उपांग है उसको लक्ष श्लोकों और हजार अध्यायोंमें स्वयंभू भगवान् सृष्टिकी रचनासे पहलेही निर्माण करतेभये॥९॥

ततोऽल्पायुष्कमल्पमेधस्त्वं चाऽवलोक्य नराणां भूयोऽष्टधा प्रविभक्तवान् ॥ १० ॥

फिर मनुष्योंकी स्वल्प आयु और अल्प बुद्धि देखकर पुनः (विधाताने) उसके आठभाग करदिये ॥ १० ॥

तद्यथा-शल्यं शालाक्यं कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्यमगदतन्त्रं रसायनतंत्रं वाजीकरणतंत्रमिति ॥ ११ ॥

वे आठभाग (प्रत्यंग) इसप्रकार हैं,-(१) शल्यतंत्र, (२) शालाक्यतंत्र, (३) कायचिकित्सा, (४) भूतविद्या, (५) कौमारभृत्य, (६) अगदतंत्र, (७) रसायनतंत्र, (८) वाजीकरणतंत्र ॥ ११ ॥

(सूत्र ९ पद २) "खलु स्याद्वाक्यभूषायां जिज्ञासायां च सांत्वने । वीप्सामाननिषेधे च पूरणे पदवाक्ययोः ॥"

अथाऽस्य प्रत्यंगलक्षणसमासः ।

अब उपरोक्त आठों प्रत्यंगोंके संक्षिप्त लक्षण कहतेहैं ।

तत्र शल्यं नाम विविधतृणकाष्ठपाषाणपांशुलोहलोष्टास्थिबालनखपूयास्रावान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानं व्रणविनिश्चयार्थश्च ॥ १२ ॥

उन ८ भागोंमेंसे (१) जहां नाना प्रकारके तृण, काष्ठ, पत्थर, छिण, लोह और अन्य तीक्ष्णधातु तथा हाड, बाल, नख आदि अथवा शस्त्र अस्त्रके टुकड़े राध रुधिरादिके अंतर्गत हों या गर्भादि आशयोंके अंतर्गत मृतगर्भ तथा काष्ठ लोष्टादि किसी कारण प्रविष्ट हों उनके निकालनेके लिये, अथवा दुष्ट राध लोहू निकालनेके कष्ट निवृत्तिके लिये अथवा घावके निश्चय करनेके अर्थ जो यंत्र, शस्त्र, क्षार और अग्निका संनिधान उपयोग कियाजाय उसे शल्यचिकित्सा वा शल्यतंत्र कहते हैं ॥ १२ ॥

शालाक्यं नाम ऊर्ध्वजत्रुगतानां रोगाणां श्रवणनयनवदनघ्राणादिसंश्रितानां व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥ १३ ॥

(२) ऊर्ध्वजत्रु ऊपरके जोतोंमें प्राप्तहुए रोगोंके व कर्ण नेत्र मुख नासिकादिमें व्याप्तहुई व्याधियोंके उपशमन (शांति) के अर्थ जो यत्न कियाजाय उसका नाम शालाक्य है ॥ १३ ॥

कायचिकित्सा नाम सर्वांगसंसृतानां व्याधीनां ज्वरातीसाररक्तपित्तशोषोन्मादापस्मारकुष्ठमेहादीनामुपशमनार्थम् ॥ १४ ॥

(३) संपूर्ण अंगमें आसृत हुए ज्वर, अतिसार, रक्तपित्त, शोष, उन्माद, अपस्मार (मृगी) कुष्ठ, प्रमेह, आदि रोगोंकी शांतिके अर्थ जो यत्न कियाजाय वह कायाचिकित्सा है ॥ १४ ॥

भूतविद्या नाम देवासुरगन्धर्वयक्षरक्षःपितृपिशाचनागग्रहाद्युपसृष्टचेतसां शांतिकर्म बलिहरणादि ग्रहोपशमनार्थम् ॥ १५ ॥

(सूत्र १२) तृणाद्युद्धरणार्थं व्रणनिश्चयार्थं यन्त्रादिप्रणिधानं शल्य नामेति । पूय अस्र अवांतर्गर्भ इति च्छेदः । 'शल्य तु न स्त्रियां शंकौ क्लीब क्ष्वेडेषुतोमरे' ॥ (सूत्र १३) ऊर्ध्वजत्रुगतानां रोगाणामुपशमनार्थं किं कर्म शालाक्यमित्यपेक्षायां हारीतः—"तेषां प्रतीकारकर्म नासावर्त्यंजनानि च । अभ्यंगमुखगंडूषक्रिया शालाक्यनामिका ॥"॥ (सूत्र १४) "कषायचूर्णगुटिकापंचभिः शोधनानि च । कोष्ठामयानां शमनी क्रिया कायचिकित्सनम् ॥" पंचभिर्वमनविरेचनादिभिः ॥ (सूत्र १५) "ग्रहभूतपिशाचाश्च डाकीनीशाकिनीग्रहाः । एतेषां निग्रहः सम्यग् भूतविद्या निगद्यते ॥" ग्रहशब्दस्य पुनरुक्तत्वात् सूर्यादयो ग्रहाः बालग्रहाश्च, अथवा केचिद्गृहभूत इति पठति ॥

(४) देवता, असुर, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पितृ, पिशाच नाग और नवग्रह सूर्यादि (तथा बालग्रह) इनकरके पीडित चित्तवाले मनुष्योंके ग्रह आदिदोष दूरकरनेके अर्थ शांतिकर्म बलिदान आदिकर्म भूतविद्या कहलाता है ॥ १५ ॥

कौमारभृत्यं नाम कुमारभरणधात्रीक्षीरदोषसंशोधनार्थं दुष्टस्तन्यग्रहसमुत्थानां च व्याधीनामुपशमनार्थम् ॥ १६ ॥

(५) बालकको दूध आदि पिलाने और धात्री (धाय) के दूधके दोष शोधन करने, दुष्ट दुग्ध पीने तथा बालग्रहादिसे उत्पन्न बालरोगोंकी शांति आदिके लिये यत्न करना कुमारभृत्य कहलाता है ॥ १६ ॥

अगदतंत्रं नाम सर्पकीटलूतावृश्चिकमूषिकादिदष्टविषव्यञ्जनार्थं विविधविषसंयोगविषोपहतोपशमनार्थम् ॥ १७ ॥

(६) सर्प, अनेक विषैले कीड़े, लूता, विच्छू, मूषिका आदि विषैले जंतुवों करके डसे हुवोंके विष दूर करनेके लिये तथा अनेक प्रकारके स्वयंविष और संयोगविष इन करके उपहत (मनुष्यों) के विषशांतिके अर्थ जो उपाय किया जाय वह अगदतंत्र है ॥ १७ ॥

रसायनतंत्रं नाम वयस्थापनमायुर्मेधाबलकरं रोगापहरणसामर्थ्यं च ॥ १८ ॥

(७) अवस्थाकी स्थिति, आयु, बुद्धि और बलकी वृद्धि करनेवाली क्रिया तथा रोगोंसे बचे रहनेकी सामर्थ्य इसे रसायनतन्त्र कहते हैं ॥ १८ ॥

वाजीकरणतन्त्रं नाम अल्पदुष्टविशुष्कक्षीणरेतसामाप्यायनप्रसादोपचयजननिमित्तं प्रहर्षजननार्थञ्च ॥ १९ ॥

(८) अल्पवीर्यवाले, दुष्टवीर्य, शुष्कवीर्य, क्षीणवीर्य मनुष्योंको वीर्योत्पादन, वीर्यशोधन, वीर्यवृद्धिके निमित्त और (स्त्रियोंमें) हर्ष उत्पादनके अर्थ जो यत्न किया जाय वह वाजीकरण कहाता है ॥ १९ ॥

एवमयमायुर्वेदोऽष्टांग उपदिश्यते। अत्र कस्मै किमुच्यताम्॥२०॥

(सूत्र १६) "गर्भोपक्रमविज्ञानं-सूतिकोपक्रमस्तथा । बालाना रोगशमनंक्रिया बालचिकित्सनम् ॥" उभयत्र ग्रहशब्दः पठितस्तेन औषधादिभ्यो बालग्रहशमनं कौमारभृत्यं बलिदानादिभिस्तस्य निग्रहो भूतविद्या च । (सूत्र १८) "देहस्येंद्रियदंतानां दृढीकरणमेव च । वलीपलितखालित्यवर्जनेऽपि च या क्रिया॥ पूर्ववैद्यैः प्रणीत हि तद्रसायनमुच्यते" ॥ (सूत्र १९) "क्षीणानां चाल्पवीर्याणा बृंहण बलवर्द्धनम् । तर्पण समधातूनां वाजीकरणमुच्यते ॥"

इस प्रकार यह आयुर्वेद अष्टांग कहलाता है, इसमेंसे किस २ को क्या उपदेश किया जावे ॥ २० ॥

तं ऊचुरस्माकं सर्वेषामेव शल्यज्ञानमूलं कृत्वोपादिशतु भवान् ॥ २१ ॥ स उवाचैवमस्त्विति ॥ २२ ॥

सब शिष्य बोले-हम सबहीको शल्यज्ञान प्रथम मूलकरके आप उपदेश कीजिये ॥ २१ ॥ भगवान् धन्वंतरिने कहा ऐसेही होगा ॥ २२ ॥

त ऊचुर्भूयोऽपि भगवंतम् ॥ २३ ॥ अस्माकमेकमतीनां मतमभिसमीक्ष्य सुश्रुतो भगवंतं प्रक्ष्यति ॥ २४ ॥ अस्मै चोपदिश्यमानं वयमप्युपधारयिष्यामः॥२५॥ स होवाचैवमस्त्विति॥२६॥

सब शिष्य फिर धन्वन्तरि भगवान्से बोले ॥ २३ ॥ एकमतिवाले हम सबका मत देखकर (समझकर) सुश्रुत आपसे प्रश्न करेगा ॥ २४ ॥ और इसके वास्ते जो आप उपदेश करेंगे हम सबी उसको धारण करेंगे-(समझते रहेंगे) ॥ २५ ॥ फिर धन्वन्तरि महाराज बोले अच्छा ऐसेही होगा ॥ २६ ॥

वत्स ! सुश्रुत ! इह खल्वाऽऽयुर्वेदप्रयोजनं व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य रक्षणं च ॥ २७ ॥

हे पुत्र ! सुश्रुत ! इस समस्त आयुर्वेदका यह प्रयोजन है कि, रोगसे पीडित मनुष्योंका रोग निवारण करना और स्वस्थमनुष्योंके (स्वास्थ्य) की रक्षा करनी ॥ २७ ॥

आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विंदतीत्याऽऽयुर्वेदः ॥ २८ ॥

जिस शास्त्रद्वारा आयुः विद्यमान रहे अथवा जिससे आयुका ज्ञान हो उसे आयुर्वेद कहते हैं ॥ २८ ॥

अङ्गवतोऽस्यारम्भाद्यमागमप्रत्यक्षानुमानोपमानैरविरुद्धमुच्यमानमुपधारय ॥ २९ ॥

आगम (शास्त्रोपदेश), प्रत्यक्ष, अनुमान और उपमान इन चार प्रमाणोंसे अविरुद्ध वर्णन होनेवाले अष्टांगी आयुर्वेदके आरंभके आद्य अंग शल्यतंत्रको श्रवण (धारण) करो ॥ २९ ॥

(सूत्र २४) सुष्ठु श्रुतमनेनेति सुश्रुतोऽस्मादेव सर्वैः श्रवणकथनार्थं स निर्द्धारितः ॥ (सूत्र २८) "आयुर्हिताहितव्याधेर्निदानं शमनं तथा । विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते " (भा. प्र) ॥ (सूत्र २९) ननु चरकेण त्रिविधं प्रमाणमुक्तम् । उपदेशः प्रत्यक्षमनुमानं च, नैवोपमानग्रहणं कृतमिति । वस्तुतस्तु विनोपमानेन सादृश्यदार्ष्टान्तिकप्रमाणाभावात् कार्यसिद्धेरभाव एतस्मादत्रोपमानग्रहणम् । नैयायिकैरपि प्रत्यक्षानुमानोपमानशाब्दभेदात्प्रमाणचतुष्टयमंगीकृतम् ॥

एतच्छल्यांगं प्रथमं प्रागभिघातव्रणसंरोहाद्यज्ञशिरःसंधानाच्च ॥ ३० ॥ श्रूयते हि यथा--रुद्रेण यज्ञस्य शिरश्छिन्नमिति ततो देवा अश्विनावभिगम्योचुः ॥ ३१ ॥

पूर्व अभिघातजन्य व्रणके आरोहण (भरलाने) तथा यज्ञ (दक्ष) के शिर (कटे) को जोडदेनेसे यह शल्यअंगही प्रथम (उत्कृष्ट) है ॥ ३० ॥ ऐसा सुना जाताहै कि, रुद्र (शिवजी) ने यज्ञ (दक्षप्रजापति) का शिर काट दियाथा तब समस्त देवता अश्विनीकुमारोंके पास जाकर कहने लगे ॥ ३१ ॥

भगवंतौ नः श्रेष्ठतमौ युवां भविष्यथः ॥३२॥ भवद्भ्यां यज्ञस्य शिरः संधातव्यम् ॥ ३३ ॥ तावूचतुरेवमस्त्विति ॥ ३४ ॥

आप दोनों भगवन् हमारेसे अत्यंत श्रेष्ठ हो ॥ ३२ ॥ आपको यज्ञका (कटा) शिर जोडना चाहिये ॥ ३३ ॥ दोनों अश्विनीकुमार बोले-अच्छा, ऐसाही होजायगा ॥ ३४ ॥

अथ तयोरर्थे देवा इन्द्रं यज्ञभागेन प्रासादयन् ॥ ३५ ॥ ताभ्यां यज्ञस्य शिरः संहितमिति ॥ ३६ ॥

तदनंतर उन दोनोंको यज्ञका भाग मिलनेके लिये देवता इन्द्रको प्रसन्न करतेभये ॥३५॥ उन दोनों अश्विनीकुमारों (देववैद्योंने) यज्ञ (दक्ष) का शिर जोड़दिया ॥ ३६ ॥

अष्टास्वपि चाऽऽयुर्वेदतन्त्रेष्वेतदेवाधिकमभिमतमाऽऽशुक्रियाकरणाद्यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निप्रणिधानात् सर्वतन्त्रसामान्याच्च ॥ ३७ ॥ तदिदं शाश्वतं पुण्यं स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं वृत्तिकरञ्चेति ॥ ३८ ॥

आयुर्वेदके आठों तन्त्रोंमें यंत्र शस्त्र क्षार अग्निकर्मके प्रणिधान (व्यवहार) करके शीघ्र क्रियाकरण(साध्य)होनेसे और सब तन्त्रोंके सामान्य होनेसे यही शल्यतंत्र अधिक अभिमत मान्य और उत्कृष्ट है ॥ ३७ ॥ और यही विशेषकर कल्याणकारी, पुण्य और स्वर्गका देनेवाला, यश फैलानेवाला तथा आयु बढानेवाला और वृत्तिकर (द्रव्योपार्जनका परमसाधन) है ॥ ३८ ॥

ब्रह्मा प्रोवाच, ततः प्रजापतिरधिजगे, तस्मादश्विनावश्विभ्यामिन्द्रः, इन्द्रादहमं, मया त्विह प्रदेयमर्थिभ्यः प्रजाहितहेतोः ॥ ३९ ॥ भवति चाऽत्र--अहं हि धन्वन्तरिरादि-

देवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम् ॥ शल्यांगमंगैरपरैरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गां भूय इहोपदेष्टुम् ॥ ४० ॥

इस आयुर्वेदको पहले ब्रह्माजी वर्णन करते भये और ब्रह्मासे दक्षप्रजापति ग्रहण करते (पढते) भये, फिर दक्षप्रजापतिसे अश्विनीकुमार पढते भये, दोनों अश्विनीकुमारोंसे इन्द्र पढते भये; (धन्वंतरिजी कहतेहैं कि) इन्द्रसे मैं पढता भया, अब मुझको प्रजाके कल्याणके वास्ते विद्यार्थियोंके लिये देना (पढाना) उचित है ॥ ३९ ॥ इसमें यों है कि,मैं देवताओंकी वृद्धअवस्था(बुढापा) रोग और मृत्युका नाशकरनेवाला आदिदेव धन्वंतरि अपर आठों अंगोंकरके सहित शल्यअंगके वारंवार उपदेश करनेको इस समय पृथिवीपर प्राप्त हुवाहूं ॥ ४० ॥

अस्मिञ्शास्त्रे पञ्चमहाभूतशरीरिसमवायः पुरुष इत्युच्यते ॥४१॥

इस शास्त्रमें पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और जीवका समवाय संबंध पुरुष कहलाता है ॥ ४१ ॥

तस्मिन् क्रिया साऽधिष्ठानं कस्माल्लोकस्य द्वैविध्यात् ॥ ४२ ॥ लोको हि द्विविधः स्थावरो जङ्गमश्च ॥ ४३ ॥ द्विविधात्मक एवाऽग्नेयः सौम्यश्च तद्भूयस्त्वात् ॥ ४४ ॥ पञ्चात्मको वा ॥ ४५ ॥

पंचमहाभूतोंका जीवसे यथार्थ संबंध होने और रहनेमें क्रियाही मुख्य अधिष्ठान है; क्योंकि जगत् दो प्रकारका होनेसे ॥ ४२ ॥ जगतके दो भेद हैं स्थावर और जंगम ॥ ४३ ॥ और उष्ण तथा शीतकी अधिकतासे आग्नेय तथा सौम्य द्विविधात्मक जगत् है ॥ ४४ ॥ अथवा पार्थिव, आप्य, आग्नेय, वायवीय और आकाशीय इसभांति संसार पंचात्मक है ॥ ४५ ॥

तत्र चतुर्विधो भूतग्रामः॥ ४६॥ स्वेदजाण्डजोद्भिज्जजरायुजसंज्ञः ॥ ४७ ॥ तत्र पुरुषः प्रधानं तस्योपकरणमन्यत् ॥ ४८ ॥ तस्मात्पुरुषोऽधिष्ठानम् ॥ ४९ ॥

संसारमें प्राणिगण चार प्रकारकेहैं ॥ ४६ ॥ प्रथम स्वेदज-पसीनेसे पैदा होनेवाले, (२) अंडज-अंडेसे पैदा होनेवाले, (३) उद्भिज्ज-पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले, (४) जरायुज जेरसे पैदा होनेवाले ॥४७॥ उन सबमें मनुष्य प्रधानहैं और अन्य सब इसके उपकरण साधन हैं ॥४८॥ इसकारणसे मनुष्य (सबका) आधार है॥ ४९ ॥

(सूत्र ४०) रुजा आप्प्रत्ययांतः । "आपं चैव हलतानां यथा वाचा निशा दिशा" इति ॥
(सूत्र ४३) "अग्नीषोमात्मक जगत्" इति श्रुतेः ।

तद्दुःखसंयोगा व्याधय इत्युच्यन्ते॥ ५०॥ ते चतुर्विधा आगंतवः शारीरा मानसाः स्वाभाविकाश्चेति ॥५१॥ तेषामागंतवोऽभिघातनिमित्ताः॥५२॥ शारीरास्त्वन्नपानमूला वातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः ॥५३॥ मानसास्तु क्रोधशोकभयहर्षविषादेर्ष्यासूयादैन्यमात्सर्यलोभकामप्रभृतय इच्छाद्वेषभेदैर्भवन्ति ॥ ५४ ॥ स्वाभाविकाः क्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतयः ॥ ५५ ॥

इस मनुष्यका दुःखोंसे संयोग होना रोग कहा है ॥ ५० ॥ वे रोग चार प्रकारके हैं-१ आगन्तुक, २ शारीरक, ३ मानस, ४ स्वाभाविक॥ ५१ ॥ उनमेंसे आगंतुक चोट आदि लगने शरीरको उपरित खेद पहुचने अग्नितापं तुषार शैत्य-आदिसे होते हैं ॥ ५२ ॥ और जो खान पान आदिसे वात पित्त कफ रुधिर तथा सन्निपात आदि एक या कइयोंकी विषमता (बिगाड) करके उत्पन्न हों वे शारीरक रोग कहलाते हैं ॥ ५३॥ और जो क्रोध शोक भय आनन्द विषाद ईर्ष्या निंदा दरिद्र मत्सरता लोभ और काम आदिके उद्वेग हैं और इच्छा अथवा द्वेषसे उत्पन्न होते हैं वे मानस व्याधि (खेद) कहलाते हैं ॥ ५४ ॥ तथा क्षुधा, तृषा, बुढापा, निद्रा, मृत्यु आदि उपाधि स्वाभाविक खेद कहलाते हैं ॥ ५५ ॥

त एतेमनःशरीराधिष्ठानाः ॥ ५६ ॥ तेषां संशोधनसंशमनाहाराचाराः सम्यक्प्रयुक्ता निग्रहहेतवः ॥ ५७ ॥

वे चारों प्रकारकी व्याधि मन और शरीरके आश्रयभूत हैं अर्थात् मानस व्याधियोंका आधार मन और शारीरक आगन्तुक और स्वाभाविकका आधार शरीर है ॥ ५६ ॥ यथार्थ नियुक्त कियेहुए शोधन शमन और आहार तथा आचार इन चारोंके अवरोध (रुकाव) का हेतु होते हैं और व्याधियोंसे बचाते हैं ॥ ५७ ॥

प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च षट्सु रसेष्वायत्तो रसाः पुनर्द्रव्याश्रयाः ॥ ५८ ॥

और फिर समस्त जीवों और उनके बलरूप ओज आदिका मूल आहार है और वह आहार छहों रसोंके आधीन है और छहों रस द्रव्य अर्थात् पदार्थोंके आश्रय हैं॥५८॥

द्रव्याणि पुनरोषधयस्ता द्विविधा स्थावरा जंगमाश्च ॥ ५९ ॥ तासां स्थावराश्चतुर्विधाः ॥ ६० ॥ वनस्पतयो वृक्षा वीरुध ओषधय इति ॥ ६१ ॥

वैद्यकशास्त्रमें ओषधियोंको द्रव्य कहते हैं उनके दो भेद हैं स्थावर और जंगम ॥५९॥ स्थावरके चार भेद हैं ॥६०॥ वनस्पति, वृक्ष, वीरुध और ओषधि ॥ ६१ ॥

तास्वपुष्पाः फलवंतो वनस्पतयः ॥६२॥ पुष्पफलवन्तो वृक्षाः ॥६३॥ प्रतानवत्यः स्तम्बिन्यश्च वीरुधः ॥६४ ॥ फलपाकनष्टा ओषधय इति ॥ ६५ ॥

इनमेंसे पुष्पके विना फलवाली अर्थात् जिसके पुष्प न हों और फल होजायँ वे वनस्पति हैं ॥६२॥ और जिनके फूलभी हों और फलभी हों वे वृक्ष हैं ॥ ६३ ॥ तथा जो फैलनेवाली या किसीके सहारे ऊपरको चढनेवाली हैं उन्हें (लता) वीरुध कहते हैं ॥६४॥ और जो एकवारही फलके पकजानेपर नष्ट होजायँ (सूखजायँ) उनकी ओषधि संज्ञा है ॥६५ ॥

जंगमास्त्वपि चतुर्विधा जरायुजाण्डजस्वेदजोद्भिज्जाः ॥६६ ॥

जंगम (चलनेवाले) भी चारप्रकारके हैं-जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज ॥ ६६ ॥

तत्र मनुष्यपशुव्यालादयो जरायुजाः ॥६७॥ खगसर्पसरीसृपप्रभृतयोऽण्डजाः ॥ ६८ ॥ कृमिकीटपिपीलिकाप्रभृतयः स्वेदजाः ॥६९॥ इन्द्रगोपमंडूकप्रभृतय उद्भिज्जाः ॥ ७० ॥

उनमेंसे मनुष्य पशु (गोमहिषादि) तथा गोधा मूषकादि जरायुज हैं ॥ ६७ ॥ पक्षी, सर्प, भ्रमर, मीनादि अण्डज हैं ॥६८॥ कृमि (जूवे लीख आदि) कीट, कीडे तथा पिपीलिका स्वेदज हैं ॥ ६९ ॥ इन्द्रगोप (वीरवहूटी) मण्डूक आदि तथा अनेक पार्थिव कृमिआदि उद्भिज्ज कहलाते हैं ॥ ७० ॥

तत्र स्थावरेभ्यस्त्वक्पत्रपुष्पफलमूलकन्दनिर्यासस्वरसादयः प्रयोजनवन्तो जंगमेभ्यश्चर्मनखरोमरुधिरादयः ॥ ७१॥

जिनमें स्थावरों (वृक्षादिकों) के छाल, पत्ते, फूल, फल, जड, कंद, गोंद, रस आदिक प्रयोजनमें आते हैं। और जंगमोंके चर्म, नख, रोम, रक्त आदि (मांस मूत्र दुग्ध) कार्यमें लायेजाते हैं ॥ ७१ ॥

पार्थिवाः सुवर्णरजतमणिमुक्तामनःशिलामृत्कपालादयः॥७२॥

(सूत्र ६४) वीरुधो लता विटपाश्च-"वीरुल्लताविटपयोः स्त्रियाम्" इति मेदिनी ॥ (सूत्र ६७) "व्यालो दुष्टगजे सर्पे श्वापदेनान्यवत्खले" इति मेदिनी। 'पशुमनुष्यव्याघ्रादयः'इति वा पाठः । (सूत्र ७२) मुक्तात्र भूमिजा मुक्ता ग्राह्याः। वंशजाः शरमूलजाद्याः ॥

कालकृतास्तु प्रवातनिवाताऽऽतपच्छायाज्योत्स्नातमःशीतोष्णवर्षाऽहोरात्रपक्षमासर्त्वयनादयः संवत्सरविशेषाः ॥ ७३ ॥

पार्थिव पृथिवीसे उत्पन्न होनेवाले सुवर्ण, रौप्य, मणि, मुक्ता, मैनशिल आदि धातु उपधातु, मिट्टी, ठिकरी, पत्थर आदि पदार्थ हैं। और इनमें पृथ्वीका सत्त्व अधिकहै ॥७२॥ अति वायु चलना, वायु बंध होना, धूप, छाया, चाँदनीरात, अंधेरा, सरदी, गरमी, वर्षा, दिन, रात्री, पक्ष, महीना, ऋतु और अयन और संवत्सर विशेष ये सब काल (समय) के कियेहुए होते हैं ॥ ७३ ॥

त एते स्वभावत एव दोषाणां सञ्चयप्रकोपप्रशमप्रतीकारहेतवः प्रयोजनवंतश्च ॥ ७४ ॥ भवंति चात्र--शारीराणां विकाराणामेष वर्गश्चतुर्विधः ॥ चये कोपे शमे चैव हेतुरुक्तश्चिकित्सकैः ॥ ७५ ॥

ये सब स्वभावहीसे दोषों (वात पित्त कफ आदि) के संचय कोप और शांति तथा इनके प्रतिकारके हेतु होतेहैं तथा प्रयोजनवाले होते हैं ॥ ७४ ॥ इसमें यों हैं कि, पूर्व चिकित्सकोंने यही चार प्रकारका वर्ग (स्थावर जंगम पार्थिव और कालकृत) मनुष्योंके विकारोंके संचय, कोप और शांतिका कारण वर्णन किया है ॥ ७५ ॥

आगंतवश्च ये रोगास्ते द्विधा निपतंति हि ॥ मनस्यन्ये शरीरेऽन्ये तेषां तु द्विविधा क्रिया ॥ ७६ ॥ शरीरपतितानां तु शरीरवदुपक्रमः ॥ मानसानां तु शब्दादिरिष्टो वर्गः सुखावहः ॥ ७७ ॥

आगंतुक जो रोग हैं वे दोप्रकारसे स्थित होतेहैं कोई तो मनमें स्थित होतेहैं और कोई शरीरमें और उनका दोही प्रकारका यत्न है ॥ ७६ ॥ जो शरीरमें स्थितहों उनका शरीरके अनुकूल औषधादि करना और जो मनमें हों उनका शब्द आदिकसे प्रतीकार करना सुखदायक होता है ॥ ७७ ॥

एवमेतत्पुरुषो व्याधिरौषधं क्रिया काल इति चतुष्टयं समासेन व्याख्यातम् ॥ ७८ ॥

ऐसे यह पुरुष व्याधि और औषध, क्रिया और काल ऐसे चतुष्टय संक्षेपसे वर्णन किया ॥ ७८ ॥

(श्लो० ७५) एषा पद्यानामनुष्टुप् छंदः ॥

तंत्र पुरुषग्रहणात्तत्सम्भवद्रव्यसमूहो भूतादिरुक्तस्तदंगप्रत्यं-
गविकल्पाश्च त्वङ्मांसशिरास्नायुप्रभृतयः ॥ ७९ ॥

यहां पुरुषके ग्रहणसे उससे उत्पन्न हुए द्रव्य मूत्र नख केशादि तथा पंच महाभूत (पृथिव्यादि) कहे हैं। और उसके अंग प्रत्यंग विभाग त्वचा मांस शिरा स्नायु आदि समझे जाते हैं ॥ ७९ ॥

व्याधिग्रहणाद्वातपित्तकफशोणितसन्निपातवैषम्यनिमित्ताः
सर्व एव व्याधयो व्याख्याताः ॥ ८० ॥

व्याधिके ग्रहणसे वायु, पित्त कफ, रक्त, सन्निपात इनमेंसे एक या अधिककी विषमतासे उत्पन्न होनेवाली संपूर्ण (चारोंप्रकारकी) व्याधि समझीजातीहैं ॥८०॥

ओषधिग्रहणाद्द्रव्यगुणरसवीर्यविपाकप्रभावाणामादेशः ॥८१॥
क्रियाग्रहणाच्छेद्यादीनि स्नेहादीनि च कर्माणि व्याख्यातानि
॥ ८२ ॥ कालग्रहणात्सर्वक्रियाकालानामादेशः ॥ ८३ ॥

ओषधीके ग्रहणसे द्रव्य और गुण (दीपन पाचन आदि) तथा रस (मधुर आदि) वीर्य (शीतवीर्य उष्णवीर्य) विपाक (पचनेकी अवस्थापर मधुर अम्लकटु) प्रभाव शक्ति इन सबका ग्रहण कियाजाता है ॥ ८१ ॥ क्रियाके ग्रहणसे काटना, भेदन करना, स्नेहन करना आदि सब कर्म ग्रहण कियेजाते हैं॥८२॥ और कालके ग्रहणसे समस्त क्रियाओंका समय (पल घटी अहोरात्र वर्षादि ऋतु सब) का ग्रहण होताहै ८३

भवति चात्र--बीजं चिकित्सितस्यैतत्समासेन प्रकीर्तितम्॥स-
विंशमध्यायशतमस्य व्याख्या भविष्यति ॥८४॥तच्च सविंशम-
ध्यायशतं पञ्चसु स्थानेषु॥८५॥तत्र सूत्रस्थाननिदानशारीरचि-
कित्सितकल्पेष्वर्थवशात्संविभज्योत्तरे तन्त्रे शेषानर्थान्व्या-
ख्यास्यामः ॥ ८६ ॥

इसपर धन्वन्तरिजीने कहा कि, यह संपूर्ण चिकित्साशास्त्रका बीज संक्षेपमात्रसे वर्णन कियाहै। एकसो बीस अध्यायोंमें इसकी (विस्तारपूर्वक) व्याख्या होगी ॥ ८४ ॥ वे एकसौबीस अध्याय पांच स्थानोंमें (विभक्त) होंगे ॥ ८५ ॥ तिनमें अर्थवश करके सूत्रस्थान, निदान, शारीरक, चिकित्सित और कल्पस्थान ऐसे विभाग करके शेष अर्थोंको उत्तर तंत्रमें व्याख्यान करेंगे। उत्तर तंत्रके छासठ अध्याय पृथक् हैं। इसप्रकार सब १८६ अध्याय होंगे॥ ८६ ॥

(सूत्र ८४) श्लोकस्यास्याऽनुष्टुप् छंदः ॥

भवति चात्र—स्वयंभुवा प्रोक्तमिदं सनातनं पठेद्धि यः काशिपतिप्रकाशितम् ॥ स पुण्यकर्मा भुवि पूजितो नृपैरसुक्षये शक्रसलोकतां व्रजेत् ॥ ८७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

यह सनातन आयुर्वेद जिसको ब्रह्माजीने वर्णन किया और काशिराज धन्वन्तरिजीने प्रकाश किया उसे जो पढेंगे वे पृथ्वीपर पुण्यकर्मा और राजावों करके पूजित होंगे और अंतमें इंद्रलोकमें प्राप्त होंगे ॥ ८७ ॥

इति पण्डितमुरलीधरशर्मवैद्यविरचितायां सुश्रुतसंहितायाः सान्वयभाषाटीकायां सूत्रस्थाने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथाऽतः शिष्योपनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

अब यहांसे शिष्योपनीय शिष्योंके उपनयन संस्कार और उपदेश करण अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥ १ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यानामन्यतममन्वयवयःशीलशौर्यशौचाचारविनयशक्तिबलमेधाधृतिस्मृतिमतिप्रतिपत्तियुक्तं तनुजिह्वौष्ठदन्ताग्रमृजुवक्राक्षिनासं प्रसन्नचित्तवाक्चेष्टं क्लेशसहं च भिषक् शिष्यमुपनयेत् ॥ २॥ अतो विपरीतगुणं नोपनयेत्॥३ ॥

वैद्यको उचित है कि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंमेंसे किसीको (तथा जो इन्हींकी अनुलोमज जाति है उनमें किसीको) जो अच्छे वंश और योग्य अवस्था तथा पुरुषार्थ, पवित्रता, आचार, नम्रता, सामर्थ्य, बल और बुद्धि धारणाशक्ति तथा स्मरणशक्ति और मति और विद्वत्ता आदि गुणोंसे युक्त हो तथा जिसके जिह्वा होंठ और दातोंका अग्रभाग ये पतले हों और मुह आंख नाक सीधे हों तथा जिसके चित्त वाणी और चेष्टा अच्छे हों और क्लेश सहनेकी शक्ति रखताहो ऐसे शिष्यको इस शास्त्रका उपदेश करे ॥ २ ॥ और इनसे विरुद्ध गुणवाले मनुष्योंको इसका उपदेश कदापि न करे ॥ ३ ॥

उपनीयस्तु ब्राह्मणः प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्त्तनक्षत्रेषु प्रशस्तायां दिशि शुचौ समे देशे चतुर्हस्तं चतुरस्रं स्थण्डिलमु-

(श्लो० ८७) अस्य वंशस्थच्छन्दः ॥

परिलिप्य गोमयेन दर्भैः संस्तीर्य पुष्पैर्लाजभक्तै रत्नैश्च देवताः पूजयित्वा विप्रान्भिषजश्च तत्रोल्लिख्याऽभ्युक्ष्य च दक्षिणतो ब्रह्माणं स्थापयित्वाऽग्निमुपसमाधाय खदिरपलाशदेवदारुबिल्वानां समिद्भिश्चतुर्णां वा क्षीरवृक्षाणां न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थमधूकानां दधिमधुघृताक्ताभिर्दार्वीहोमिकेन विधिना स्रुवेणाऽऽज्याहुतीर्जुहुयात् ॥ ४ ॥

उपनयन करनेवाला जो ब्राह्मण है वह श्रेष्ठ तिथि वार करण नक्षत्रोंमें अच्छी दिशा और पवित्र और समान (अनुकूल) देशमें चार हाथ लंबा चौडा चौकोना स्थंडिल बना उसे गोमयसे लेपनकर ऊपर कुशा बिछा अच्छे पुष्पों और धानकी खीलों और सुंदर रत्नों आदिसे देवताओं और ब्राह्मणों तथा वैद्योंका पूजन करके फिर उल्लेखन और जलका अभ्युक्षण करके दक्षिणको ब्रह्माका स्थापन करके अग्निस्थापनकर खैर ढाक देवदारु तथा बिल्वकी समिधोंसे अथवा वड गूलर पिप्पल और महुवा इन चार दूधवाले वृक्षोंकी दही शहत और घृतसे लिप्त लकडियोंसे दार्वीहोमकी विधि करके स्रुवेसे घृतकी आहुति देवे ॥ ४ ॥

सप्रणवाभिर्महाव्याहृतिभिस्ततः प्रतिदैवतमृषींश्च स्वाहाकारं च कुर्यात् शिष्यमपि कारयेत् ॥ ५ ॥

और प्रणव (ओंकार) सहित महाव्याहृतियों करके प्रतिदेवता और प्रतिऋषि स्वाहाकार उच्चारण करे और शिष्यसे भी करावे ॥ ५ ॥

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्तुमर्हति राजन्यो द्वयस्य वैश्यो वैश्यस्यैवेति ॥ ६ ॥

ब्राह्मण तीनों वर्णोंको उपदेश करे, क्षत्रिय दो वर्णों (क्षत्रिय और वैश्य) को वैश्य केवल एक वैश्यवर्णको ॥ ६ ॥

शूद्रमपि कुलगुणसंपन्नं मंत्रवर्ज्यमनुपनीतमध्यापयेदित्येके ॥ ७ ॥ ततोऽग्निं त्रिःपरिणीयाऽग्निसाक्षिकं शिष्यं ब्रूयात् ॥ ८ ॥

जो अच्छे कुलका और गुणोंकरके संपन्न शूद्र हो उसको भी विना उपनयन संस्कार किये और वेदका मंत्रभाग छोडकर अन्य वैद्यक शास्त्रका उपदेश करे ऐसा कई आचार्योंका मत है ॥ ७ ॥ फिर अग्निकी तीन परिक्रमा करके अग्निकी साक्षीसे शिष्यसे कहे ॥ ८ ॥

(सूत्र ४) ब्रह्माणमित्यत्र कुमारमिति वा पाठः, ब्राह्मणं चेति वा ॥

कामक्रोधलोभमोहमानाऽहंकारेर्ष्यापारुष्यपैशुन्याऽनृतालस्या-
यशस्यानि हित्वा नीचनखरोम्णा शुचिना काषायवाससा
सत्यव्रतब्रह्मचर्याऽभिवादनतत्परेणाऽवश्यं भवितव्यं मदनुम-
तस्थानगमनशयनासनभोजनाऽध्ययनपरेण भूत्वा मत्प्रियहि-
तेषु वर्तितव्यमतोऽन्यथा ते वर्त्तमानस्याऽधर्मो भवत्यफला
च विद्या न च प्राकाश्यं प्राप्नोति ॥ ९ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान, अहंकार, कठोरता, नीचता, झूठ, आलस्य और यशके नाशवाले कार्य इन सबको छोड़कर तथा नख और केश नीचे रखकर पवित्र सादेवस्त्र पहिनकर सत्यसंकल्प हो ब्रह्मचर्य धारणकर अभिवादन-प्रणाम आदिमें तत्पर अवश्य रहना चाहिये। और मेरी अनुमतिके अनुसार स्थिति और गमन सोना और बैठना भोजन करना और पढना इनमें तत्पर होकर मेरे प्रिय कार्योंमें वर्तमान होना योग्य है। और जो इनसे विपरीत वर्त्ताव करेगा तो तेरा धर्म नष्ट और क्रिया निष्फल होगी और तेरी विद्याभी प्रकाश न होगी ॥ ९ ॥

अहं वा त्वयि सम्यग्वर्तमाने यद्यन्यथादर्शी स्यामेनोभा-
ग्भवेयमफलविद्यश्च ॥ १० ॥ द्विजगुरुदरिद्रमित्रप्रव्रजितो-
पनतसाध्वनाथाऽभ्युपगतानां चाऽऽत्मबांधवानामिव स्वभेष-
जैः प्रतिकर्तव्यमेवं साधु भवति ॥ ११ ॥

तेरे यथोचित बरताव करनेपर भी यदि मैं यथोक्त विद्या न पढाऊं तो मैं पापका भागी हूंगा और मेरी विद्या निष्फल होजायगी ॥ १० ॥ ब्राह्मण, गुरु, दरिद्री, मित्र, परदेशी, नम्रता करनेवाला, साधु, अनाथ और अभ्यागत इनकी निज बांधवोंके तुल्य अपनेही पासकी औषधसे चिकित्सा करना यही श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥

व्याधशाकुनिकपतितपापकारिणां न च प्रतिकर्तव्यमेवं विद्या
प्रकाशते मित्रयशोधर्मार्थकामांश्च प्राप्नोति ॥ १२ ॥

हिंसक पारधी पतित पापीजनोंकी चिकित्सा करनी योग्य नहीं, ऐसे करनेसे विद्या प्रकाश होती है और मित्र, यश, धर्म, अर्थ, काम इन सबकी प्राप्ति होतीहै ॥ १२ ॥

भवतश्चाऽत्र-कृष्णेऽष्टमी तन्निधनेऽहनी द्वे कृष्णेतरेऽप्येवं-
महर्द्धिसंध्यम् ॥ अकालविद्युत्स्तनयित्नुघोषे स्वतंत्ररोष्ट्रक्षिति-

पर्व्यथासु ॥ १३ ॥ श्मशानयानायतनाहवेषु महोत्सवौत्पातिकदर्शनेषु ॥ नाऽध्येयमन्येषु च येषु विप्रा नाऽधीयते नाऽशुचिना च नित्यम् ॥ १४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कृष्णपक्षकी अष्टमी और उसकी समाप्तिके दो दिन चतुर्दशी और अमावस्या इसी भांति शुक्लपक्षमें अष्टमी और चतुर्दशी पूर्णिमा तथा दिनकी दोनों संधि प्रभात और सायंकाल तथा जब वेऋतुमें बिजली और गरजका शब्द हो तथा जब स्वतंत्र राजाको कुछ व्यथा हो ॥ १३ ॥ तथा जिस दिन श्मशानमें गमन हो और युद्धके दिन महोत्सव और उत्पातके दिन पढ़ना पढ़ाना योग्य नहीं। तथा जिन दिनोंमें ब्राह्मण नहीं पढ़ते जैसे प्रतिपत् उन दिनोंमें नहीं पढ़ना और अशुद्ध होकर किसी दिन भी न पढ़े ॥ १४ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं०भा०टी०सूत्रस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथातोऽध्ययनसंप्रदानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

अब यहांसे अध्ययनसंप्रदानीय अध्यायका व्याख्यान करते हैं अर्थात् जिस क्रमसे धन्वन्तरि भगवान् अपने शिष्योंको अध्ययन प्रदान करेंगे (पढ़ावेंगे) उसका व्याख्यान करते हैं ॥ १ ॥

प्रागभिहितं सविंशमध्यायशतं पंचसु स्थानेषु ॥ २ ॥ तत्र सूत्रस्थानमध्यायाः षट्चत्वारिंशत् ॥ ३ ॥ षोडश निदानानि ॥ ४ ॥ दश शारीराणि ॥ ५ ॥ चत्वारिंशच्चिकित्सितानि ॥ ६ ॥ अष्टौ कल्पाः ॥ ७ ॥ तदुत्तरं षट्षष्टिः ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त एक सौ बीस अध्याय इसप्रकार पांच स्थानोंमें विभक्त होंगे ॥ २ ॥ जिनमेंसे चालीस अध्यायका सूत्रस्थान ॥ ३ ॥ सोलह अध्यायका निदानस्थान ॥ ४ ॥ दश अध्यायका शारीरकस्थान ॥ ५ ॥ चालीस अध्यायका चिकित्सितस्थान ॥ ६ ॥ और आठ अध्यायका कल्पस्थान ॥ ७ ॥ (इसप्रकार १२० अध्याय हुए) तथा इनसे उत्तर छासठ अध्यायका उत्तरतंत्र ॥ ८ ॥

(श्लो. १३, १४) इन्द्रवज्राच्छन्दसोर्युग्मम्—अन्यानि विप्राणामनध्यायदिनानि प्रतिपच्चन्द्रसूर्योपरागादीनि तत्रापि नाध्येयमिति फलितार्थः ॥ (सूत्र २) विभक्तमिति शेषः ॥ (सूत्र ८) तदुत्तरं सविंशाध्यायशतादुत्तरम् ॥

अध्यायोंके आशयोंकी संक्षिप्त सूची ।

वेदोत्पत्तिः शिष्यनयस्तथाध्ययनदानिकः ॥ प्रभाषणाऽग्रहरणावृतुचर्याऽथ यांत्रिकः ॥९॥ शस्त्रावचारणं योग्या विशिखा क्षारकल्पनम् ॥ अग्निकर्मजलौकाख्यावध्यायौ रक्तवर्णनम् ॥१०॥

(१) वेदोत्पत्ति, (२) शिष्योपनीय, (३) अध्ययनसंप्रदानीय, (४) प्रभाषणीय, (५) अग्रहरणीय, (६) ऋतुचर्या, (७) यंत्रविधि ॥ ९ ॥ (८) शस्त्रावचारणीय, (९) योग्यसूत्रीय, (१०) विशिखानुप्रवेशनीय, (११) क्षारपाकविधि, (१२) अग्निकर्म. (१३) जलौका, (१४) रक्तवर्णन ॥ १० ॥

दोषधातुमलाद्यानां विज्ञानाध्याय एव च ॥ कर्णव्यधामपक्वैषाऽऽलेपोऽव्रण्युपासनम् ॥ ११ ॥ हिताहितौ व्रणप्रश्नौ व्रणास्रावश्च यः पृथक् ॥ कृत्याकृत्यविधिर्व्याधिसमुद्देशीय एव च ॥ १२ ॥ विनिश्चयः शस्त्रविधौ प्रनष्टज्ञानिकस्तथा ॥ शल्योद्धृतिर्व्रणज्ञानं दूतस्वप्ननिदर्शनम् ॥ १३ ॥ पंचेन्द्रियं तथा छाया स्वभावाद्वैकृतं तथा ॥ वारणो युक्तसेनीय आतुरक्रममिश्रकौ ॥ १४ ॥

(१५) दुष्टधातुमलक्षयवृद्धिज्ञानीय, (१६) कर्णव्यधबंध, (१७) आमपक्वैषणीय, (१८) व्रणलेपबंधनादिविधि, (१९) अव्रणितोपासनीय ॥ ११ ॥ (२०) हिताहितीय, (२१) व्रणप्रश्न, (२२) व्रणास्राव, (२३) कृत्याकृत्यविधि, (२४) व्याधिसमुद्देशीय ॥ १२ ॥ (२५) शस्त्रकर्मविधि, (२६) प्रनष्टशल्यविज्ञानीय, (२७) शल्यापनयनीय, (२८) व्रणविज्ञानीय, (२९) दूतस्वप्नादिनिदर्शनीय ॥ १३ ॥ (३०) पंचेंद्रियार्थविप्रतिपत्ति, (३१) छायाविप्रतिपत्ति, (३२) स्वभावविप्रतिपत्ति, (३३) अवारणीय, (३४) युक्तसेनीय, (३५) आतुरोपक्रमणीय, (३६) मिश्रक ॥ १४ ॥

भूमिभागो द्रव्यगणः संशुद्धौ शमने च यः ॥ द्रव्यादीनां च विज्ञानं विशेषो द्रव्यगोऽपरः॥ १५ ॥ रसज्ञानं वमनार्थमध्या-

---

(सूत्र ९) सूचनसूत्रे तथाचाथादीन्यव्ययानि पादपूरणार्थानि । एषु सूत्रेषु चोपरिस्था का अध्यायक्रमसूचकाः संति, न त्वन्वयसूचका अन्वयस्य सरलत्वात् ॥ (श्लो० ११) दोषधातुमलाद्यानां विज्ञानाध्याय इति समस्त--कर्णव्यधामपक्वैषो पदमिदं द्विवचनान्तमध्यायद्वयबोधकं--यत्रयत्र द्विवचनांतानि पदानि तत्रेचाध्यायद्वयबोधकानि समस्तानि च ॥ (श्लो० १५) सशुद्धौ च शमने एक एवाऽध्यायः, तथा द्रव्यादीनां रसादिविज्ञानाध्यायः, अपरो विशेषो द्रव्यगोऽध्यायः ॥

यो रेचनाय च ॥ द्रवद्रव्यविधिस्तद्वदन्नपानविधिस्तथा ॥ ॥ १६ ॥ सूचनात्सूत्रणाच्चैव संधानाच्चार्थसंततेः ॥ षट्चत्वारिंशदध्यायं सूत्रस्थानं प्रचक्षते ॥ १७ ॥

(३७) भूमिविभागीय, (३८) द्रव्यसंग्रहणीय, (३९) शोधनशमनीय, (४०) द्रव्यगुणरसवीर्यविपाकविज्ञानीय, (४१) द्रव्यविशेषविज्ञानीय ॥ १५ ॥ (४२) रसविशेषविज्ञानीय, (४३) वमनद्रव्यविज्ञानीय, (४४) विरेचनविकल्पविज्ञानीय, (४५) द्रवद्रव्यविज्ञानीय, (४६) अन्नपानविधि । (इस प्रकार ४६ अध्यायोंमें सूत्रस्थान है । यहां निदर्शनमात्र इन अध्यायोंके केवल नाममात्र गिनदिये गये हैं इनका भावार्थ अगाडी सब अध्यायोंके आरंभमें यथाक्रम होगा)॥ १६ ॥ सूक्ष्मरूपसे सब आशयोंकी सूचना करने, सबको ग्रथितकरने तथा इसमें सब सूक्ष्मतासे सन्निधान करने (रखने) से इन चालीस अध्यायोंको सूत्रस्थान कहतेहैं॥ १७॥

वातव्याधिकमर्शांसि साश्मरिश्च भगंदरः ॥ कुष्ठमेहोदरामूढविद्रध्यः परिसर्पणम्॥ १८॥ ग्रन्थिवृद्धिभग्नशूकक्षुद्राश्च मुखरोगिकम् ॥ हेतुलक्षणनिर्देशान्निदानानीति षोडश ॥ १९ ॥

दूसरा निदानस्थान है । इसमें (१)वातव्याधिनिदान, (२) अर्श (बवासीर), (३) अश्मरी (पथरी), (४) भगंदर, (५) कुष्ठ, (६) प्रमेह, (७) उदररोग, (८) मूढगर्भ, (९) विद्रधि, (१०) विसर्प ॥ १८ ॥ (११) ग्रंथि, (१२) वृद्धि, (१३) भग्न, (१४) शूकरोग, (१५) क्षुद्र, (१६) मुखरोग ऐसे ये १६ अध्याय निदानस्थानमें हैं । रोगोंके हेतु और लक्षण आदिका निर्देश होनेसे इन १६ अध्यायसंग्रहका नाम निदानस्थान है ॥ १९ ॥

भूतचिंता रजःशुद्धिर्गर्भावक्रांतिरेव च ॥ व्याकरणं च गर्भस्य शरीरस्य च यत्स्मृतम् ॥ २० ॥ प्रत्येकमर्मनिर्देशः शिरावर्णनमेव च ॥ शिराव्यधो धमनीनां गर्भिण्यां व्याकृतिस्तथा ॥ ॥ २१ ॥ निर्दिष्टानि दशैतानि शारीराणि महर्षिणा ॥ विज्ञानार्थं शरीरस्य भिषजां योगिनामपि ॥ २२ ॥

तीसरा शारीरकस्थान है । इसमें (१) भूतचिंता, (२) रजःशुद्धि, (३) गर्भावक्रांति, (४) गर्भव्याकरण, (५) शरीरसंख्या ॥ २० ॥ (६) प्रत्येक-

(श्लो० १७) श्लोकेतिमनुपरिकारया अन्वयसूचकाः ॥ (श्लो० २०) गर्भस्य व्याकरणं-तथा शरीरस्य व्याकरणमिति ॥ (श्लो० २१) धमनीनां व्याकृतिर्व्याकरणं तथा गर्भिण्या व्याकृतिरित्यन्वय । (श्लो० २२) अत्रापि चोपरिस्थाका अन्वयसूचकाः ॥

मर्मनिर्देश, (७) शिरावर्णन, (८) शिराव्यध, (९) धमनीव्याकरण, (१०) गर्भिणीव्याकरण ये दश अध्याय हैं। यह शारीरकके दश अध्याय महर्षि धन्वंतरिने वैद्यों और योगियोंको शरीरके विज्ञानके अर्थ वर्णन करे हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

द्विव्रणीयो व्रणः सद्यो भग्नानां वातरोगिकम्॥महावातिकमर्शांसि साऽश्मरिश्च भगंदरः ॥ २३ ॥ कुष्ठानां महतां चाऽपि मैहिकं पैडिकं तथा ॥ मधुमेहचिकित्सा च तथा चोदरिणामपि ॥ ॥२४॥ मूढगर्भचिकित्सा च विद्रधीनां विसर्पिणाम् ॥ ग्रंथिवृद्ध्युपदंशानां तथा च क्षुद्ररोगिकम् ॥ २५ ॥ शूकदोषचिकित्सा च तथा च मुखरोगिणाम् ॥ शोफस्थानागतानां च निषेधो मिश्रकस्तथा ॥ २६ ॥ वाजीकरं च यत्क्षीणे सर्वघातशमोऽपि वा ॥ मेधायुष्करणीयं च स्वभावव्याधिवारणम्॥२७॥

चौथा चिकित्सितस्थान है। इसमें इस प्रकार अध्याय हैं। (१) द्विव्रणिय चिकित्सित, (२) सद्योव्रणचि०, (३) भग्नचि०, (४) वातव्याधिचि०, (५) महावातव्याधिचि०, (६) अर्शचि०, (७) अश्मरीचि०, (८) भगंदरचि० ॥ २३ ॥ (९) कुष्ठचिकि०, (१०) महाकुष्ठचि०,(११) प्रमेहचि०,(१२)प्रमेहपिडिकाचि०, (१३) मधुप्रमेहचि०, (१४) उदररोगचि० ॥ २४ ॥ (१५) मूढगर्भचि०, (१६) विद्रधिचि०, (१७) विसर्पनाडीस्तनरोगचि०, (१८) ग्रंथ्यपचीअर्बुदगलगंडचि०, (१९) वृद्धिउपदंशश्लीपदचि०, (२०) क्षुद्ररोगचि०, ॥२५॥(२१) शूकरोगिकचि०,(२२)मुखरोगचि०,(२३) शोफचि०, (२४) अनागतव्याधिप्रतिषेध (दिनचर्या), (२५) मिश्रचि० ॥ २६॥ (२६) क्षीणबलीयवाजीकरण, (२७) सर्वोपघातशमनीयरसायन, (२८) मेधायुःकामीयरसायन, (२९) स्वभावव्याधिप्रतिषेध ॥ २७ ॥

निवृत्तसंतापकरं कीर्तितं च रसायनम् ॥ स्नेहोपयौगिकः स्वेदो वमनं सविरेचनम् ॥ २८॥ तयोर्व्यापच्चिकित्सा च नेत्रवस्तिविभागिकः ॥नेत्रवस्तिविपत्सिद्धिस्तथा चोत्तरवस्तिकः॥२९॥

(श्लो० २३) सद्योव्रण इति ॥ (श्लो० २४) महता महत्कुष्ठानाम् ॥ (श्लो० २५) ग्रंथिरोगादीनामेकाध्यायः वृद्ध्युपदंशादीनामेकश्च ॥ (श्लो० २६) अनागतानां निषेध इति ॥ (श्लो० २७) क्षीणे वाजीकरणम् ॥ (श्लो० २८) निवृत्तसंतापकरं रसायनमिति—वमनं सविरेचनमित्येकाध्यायः ॥ (श्लो० २९) तयोर्वमनविरेचनयोर्व्यापच्चिकित्सा ॥

निरूहक्रमसंज्ञश्च तथैवाऽऽतुरसंज्ञकः ॥ धूमनस्यविधिश्चाप्या-श्चत्वारिंशदिति स्मृताः ॥ ३० ॥ प्रायश्चित्तं प्रशमनं चिकित्सा शांतिकर्म च॥पर्य्यायास्तस्य निर्दिष्टाश्चिकित्सास्थानमुच्यते३१

(३०) निवृत्तसंतापीय, (३१) स्नेहोपयौगिक, (३२) स्वेदोपचारणीय, (३३) वमनविरेचनसाध्योपद्रव॥२८॥ (३४) वमनविरेचनव्यापच्चिकि०, (३५) नेत्रवस्तिप्रमाणविभाग, (३६) नेत्रवस्तिव्यापच्चि० (३७) अनुवासनोत्तर-बस्तिचिकि० ॥२९॥ (३८) निरूढोपक्रमचि०, (३९) आतुरोपक्रमचि०, (४०) धूमनस्यकवलग्रहचिकित्सा, यह चालीस अध्यायोंका चिकित्सितस्थान है ॥ ३० ॥ प्रायश्चित्त और प्रशमन और शांतिकर्म ये सब चिकित्साके पर्य्याय शब्द हैं अर्थात् एक प्रकारसे चिकित्साभेदके ही बोधक हैं ॥ ३१ ॥

अन्नस्य रक्षा विज्ञानं स्थावरस्येतरस्य च ॥ सर्पदष्टविषज्ञानं त-स्यैव च चिकित्सितम् ॥३२॥ दुंदुभेर्मूषिकाणां च कीटानां कल्प एव च ॥ अष्टौ कल्पाः समाख्याता विषभेषजकल्पनात्॥३३॥

पाचवाँ कल्पस्थान है । इसमें इस प्रकार आठ अध्याय हैं । (१) अन्नपान-रक्षा, (२) स्थावरविषविज्ञानीय, (३) जंगमविषविज्ञानीय, (४) सर्पदष्ट-विषविज्ञानीय, (५) सर्पदष्टचिकित्सित,॥ ३२ ॥ (६) दुंदुभिस्वनीय (७) मूषिककल्प, (८) कीटकल्प, इनमें विषचिकित्साकी कल्पना होनेसे इन ८ अध्यायोंका नाम कल्पस्थान कहलाता है ॥ ३३ ॥

अध्यायानां शतं विंशमेवमेतदुदीरितम् ॥ अतः परं स्वनाम्नैव तंत्रमुत्तरमुच्यते ॥ ३४ ॥

इस प्रकार यह एकसौ बीस अध्याय (समूह) पञ्चस्थानात्मक वर्णन किया । अब इसके अगाड़ी अपनेही नामसे उत्तरतंत्र (छठा) वर्णन किया जायगा ॥ ३४ ॥

अधिकृत्य कृतं यस्मात्तंत्रमेतदुपद्रवान् ॥ औपद्रविक इत्येष तस्याग्र्यत्वान्निरूप्यते ॥ ३५ ॥

जोकि, उपद्रवोंको अधिकार करके यह तन्त्र रचागया है इस वास्ते इसका अग्रगण्य (१) औपद्रविक अध्याय प्रथम वर्णन होगा ॥ ३५ ॥

(श्लो० ३१) तस्य चिकित्सितस्य पर्यायाः प्रायश्चित्तादयः ॥ (श्लो० ३२) अन्नस्य रक्षा इत्येकस्तथा स्थावरस्य विषस्य विज्ञानमित्येकः, जंगमस्य विषस्य विज्ञानमित्येकश्च ॥ (श्लो० ३३) मूषिकाणां दुंदुभेरिति पदविपर्यय. ॥ (श्लो० ३४-३५) अत्रोपरिष्टाका अन्वयसूचकाः सति परत्वौपद्रविक इत्यस्मिन्नङ्कसंख्यात्मकोकः सोऽध्यायसूचकः ॥

संधौ वर्त्मनि शुक्ले च कृष्णे सर्वत्र दृष्टिषु॥संविज्ञानार्थमध्याया गदानां तु प्रतिप्रति ॥३६॥ चिकित्साप्रविभागीयो वाताभिष्यंदवारणः॥ पैत्तस्य श्लैष्मिकस्यापि रौधिरस्य तथैव च ॥ ३७॥ लेख्यभेद्यनिषेधौ च छेद्यानां वर्त्मदृष्टिषु॥क्रियाकल्पोऽभिघातैश्च कर्णोत्थास्तच्चिकित्सितम् ॥३८ ॥ घ्राणोत्थानां च विज्ञानं तद्गदप्रतिषेधनम् ॥ प्रतिश्यायनिषेधश्च शिरोगदविवेचनम्॥३९॥ चिकित्सा तद्गदानां च शालाक्यं तन्त्रमुच्यते ॥ ४० ॥

(२) संधिगतरोगविज्ञानीय, (३) वर्त्मरोगविज्ञान, (४) शुक्लगतरोगविज्ञान, (५) कृष्णगतरोगविज्ञान, (६) सर्वगतरोगविज्ञान, (७) दृष्टिगतरोगविज्ञान ॥ ३६ ॥ (८) चिकित्सितप्रविभाग, (९) वाताभिष्यंदचिकित्सा, (१०) पित्ताभिष्यंदचि०, (११) कफाभिष्यंदचि०, (१२) रक्ताभिष्यंदचि० ॥ ३७ ॥ (१३) लेख्यरोगप्रतिषेध, (१४) भेद्यरोगानिषेध, (१५) छेद्यरोगानिषेध, (१६) पक्ष्मरोग, (१७) दृष्टिरोग, (१८) क्रियाकल्प, (१९) नयनाभिघात, (२०) कर्णरोगविज्ञान, (२१) कर्णरोगप्रतिषेध ॥ ३८ ॥ (२२) घ्राणरोगविज्ञानीय, (२३) नासरोगप्रतिषेध, (२४) प्रतिश्यायप्रतिषेध, (२५) शिरोरोगविज्ञानीय, (२६) शिरोरोगचिकित्सित ॥ ३९ ॥ इसप्रकार ये (२६) अध्याय शालाक्यतन्त्र कहलाता है ॥ ४० ॥

नवग्रहाकृतिज्ञानं स्कंदस्य च निषेधनम्॥ अपस्मारशकुन्योश्च रेवत्याश्च पुनः पृथक् ॥ ४१ ॥ पूतनायास्तथांधाया भंडिका शीतपूतना ॥ नैगमेयचिकित्सा च ग्रहोत्पत्तिः सयोनिजा॥४२ ॥ कौमारतंत्रमित्येतच्छारीरेषु च कीर्त्तितम् ॥ ४३ ॥

(२७) नवग्रहाकृतिविज्ञान, (२८) स्कंदग्रहप्रतिषेध, (२९) स्कंदापस्मारप्रतिषेध, (३०) शकुनिप्रति०, (३१) रेवतीप्रतिषेध ॥ ४१ ॥ (३२) पूतनाप्रतिषेध, (३३) अंधपूतनाप्रति०, (३४) मुखभंडिकाप्रति०, (३५) शीतपूतनाप्रति०, (३६) नैगमेयप्रति०, (३७) ग्रहोत्पत्तिप्र०, (३८) योनिव्यापत्प्रतिषेध ॥ ४२ ॥

(श्लो० ३६) गदाना प्रतिप्रति सविज्ञानार्थमध्यायाः सधौ वर्त्मनीतिक्रमेण ॥ (श्लो० ३७) पैत्तिकस्य श्लैष्मिकस्य रौधिरस्याभिष्यंदस्य ॥ (श्लो० ३८) लेख्यभेद्यनिषेधौ लेख्यनिषेधो भेद्यनिषेधश्च ॥ (श्लो० ४१) स्कंदस्य निषेधनम्—अपस्मारशकुन्योश्च निषेधनम, स्कदापस्मारनिषेधः शकुनिनिषेधश्च, पुना रेवत्या निषेधः ॥ (श्लो० ४२) अधाया अधपूतनायाः भंडिका मुखमंडिका—मंडिका शीतपूतना नैगमेयचिकित्सेति समस्त पद वा ॥

यह सत्ताईसवें अध्यायसे अडतीसवें अध्यायतक १२ अध्याय कौमारतंत्र (वा कौमारभृत्य) कहलाताहै और शरीरस्थानमेंही कहागयाहै ॥ ४३ ॥

ज्वरातिसारशोषाणां गुल्महृद्रोगिणामपि॥ पांडूनां रक्तपित्तस्य मूर्च्छायाः पानजाश्च ये ॥ ४४ ॥ तृष्णायाश्छर्दिहिक्कानां निषेधः श्वासकासयोः॥ स्वरभेदचिकित्सा च कृम्युदावर्त्तिनोः पृथक्॥४५ विसूचिकाऽरोचकयोर्मूत्राघातविकृच्छ्रयोः ॥ इति कायचिकित्सायाः शेषमत्र प्रकीर्तितम् ॥ ४६ ॥

(३९) ज्वरचिकित्सा, (४०) अतिसारचिकित्सा, (४१) शोषचि०, (४२) गुल्मचि०, (४३) हृद्रोगचि०, (४४) पांडुचि०, (४५) रक्तपित्तचि०, (४६) मूर्च्छाचि०, (४७) पानात्ययचि० ॥४४॥ (४८) तृष्णाचि०, (४९) छर्दिचि०, (५०) हिक्काचि०, (५१) श्वासचि०, (५२) कासचि०, (५३) स्वरभेदचि०, (५४) कृमिरोगचि०, (५५) उदावर्त्तचि० ॥ ४५ ॥ (५६) विसूचिकाचि०, (५७) अरोचकचि०, (५८) मूत्राघातचि०, (५९) मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा इसप्रकार इन अध्यायोंमें कायचिकित्साका शेषभाग वर्णन किया है ॥ ४६ ॥

अमानुषनिषेधश्च तथाऽपस्मारिकोपरः ॥ उन्मादप्रतिषेधश्च भूतविद्या निरुच्यते ॥ ४७ ॥

(६०) अमानुषप्रतिषेध, (६१ (आपस्मारिकप्रतिषेध, (६२) उन्माद प्रतिषेध ऐसे ये तीन अध्याय भूतविद्यातन्त्र कहलाता है ॥ ४७ ॥

रसभेदाः स्वस्थवृत्तिर्युक्तयस्तांत्रिकाश्च याः ॥ दोषभेदा इति ज्ञेया अध्यायास्तंत्रभूषणाः ॥ ४८ ॥

(६३) रसभेदविकल्प, (६४) स्वस्थवृत्त, (६५) यंत्रयुक्ति, (६६) दोषभेदविकल्प ऐसे ये इस उत्तरतंत्रके भूषणरूप (प्रकीर्ण) अध्याय हैं ॥ ४८ ॥

श्रेष्ठत्वादुत्तरं ह्येतत्तंत्रमाहुर्महर्षयः ॥ बह्वर्थसंग्रहाच्छ्रेष्ठमुत्तरं चाऽपि पश्चिमम् ॥ ४९ ॥

श्रेष्ठ अर्थात् सबसे उत्कृष्ट होनेसे तथा इसमें बहुत अर्थोंका संग्रह होने अथवा पिछाड़ी वर्णन हुवा इससे इसको उत्तरतंत्र महर्षिजनोंने वर्णन किया है ॥ ४९ ॥

(श्लो० ४४) ज्वरातिसारशोषाणामिति बहुवचनात्तेन ज्वरस्य अतिसारशोषस्य च पृथक्पृथगध्यायाः गुल्मस्य हृद्रोगिणा च ॥ (श्लो० ४५) छर्दिहिक्काना छर्दिहिक्काना च पृथक् एव । श्वासकासयोर्निषेधः श्वासस्य निषेधः कासस्य निषेधश्च पृथक्पृथगेव । तथैव कृम्युदावर्त्तिनोरपि पृथक्पृथगेव ॥ (श्लो० ४६), एवमेव विसूचिकाऽरोचकयोर्मूत्राघातकृच्छ्रयोरपि पृथक्पृथगेवाध्यायाः ॥ (श्लो० ४८) तान्त्रिकाः युक्तयः यंत्रयुक्तयः ॥ (श्लो० ४९) अत. परमुत्तरशब्दाः अन्वयसूचका एव पश्चिममपि चोत्तर भवतीत्याहुः ॥

शालाक्यतंत्रं कौमारं चिकित्सा कायिकी च या ॥ भूतवि-
द्येति चत्वारि तंत्रे तूत्तरसंज्ञिके ॥ ५० ॥

शालाक्यतन्त्र और कौमारभृत्य तथा कायचिकित्सा और भूतविद्या ये चार विषय प्रायः इस उत्तरतन्त्रमें हैं ॥ ५० ॥

वाजीकरचिकित्सासु रसायनविधिस्तथा॥विषतंत्रं पुनः कल्पाः
शल्यज्ञानं समंततः ॥ ५१॥ इत्यऽष्टांगमिदं तंत्रमादिदेवप्रका-
शितम् ॥ विधिनाऽधीत्य युंजाना भवंति प्राणदा भुवि ॥ ५२ ॥

वाजीकरणतन्त्र और चिकित्सा तथा सुन्दररसायनकी विधि अर्थात् रसायनतन्त्र, विषतन्त्र और कल्प अर्थात् अगदतंत्र और शल्यज्ञान अर्थात् शल्यतन्त्र ॥ ५१ ॥ इसभांति आदिदेव धन्वंतरि भगवान्‌का प्रकाशित कियाहुवा यह अष्टांगतंत्र सुश्रुतसंहिता है जो इसे विधिसे पढ़कर योग करेंगे वे वैद्य पृथ्वीपर मनुष्योंके प्राणोंको देने (बचाने) वाले होंगे ॥ ५२ ॥

एतदवश्यमध्येयमधीत्य च कर्माप्यवश्यमुपासितव्यमुभयज्ञो
हि भिषग्राजार्हो भवति ॥ ५३ ॥

इसको अवश्य पढ़ना चाहिये और पढकर फिर क्रियामेंभी अवश्य अभ्यास (तजरुबा) करना चाहिये क्योंकि दोनोंका जाननेवाला वैद्य राजोंके योग्य (राजवैद्य) होता है ॥ ५३ ॥

भवंति चात्र--यस्तुकेवलशास्त्रज्ञः कर्मस्वपरिनिष्ठितः ॥ स
मुह्यत्यातुरं प्राप्य प्राप्य भीरुरिवाहवम् ॥ ५४ ॥ यस्तु
कर्मसु निष्णातो धाष्टर्याच्छास्त्रबहिष्कृतः ॥ स सत्सु पूजां
नाप्नोति वधं चार्हति राजतः ॥ ५५ ॥

इसपर श्लोक कहेहैं कि, जो वैद्य केवल शास्त्रका जाननेवाला है और क्रिया-ओंमें निपुण नहीं अर्थात् जिसको तजरुबा नहीं है वह रोगीके पास जाकर (चिकित्सा करनेमें) घबराजाता है। जैसे भीरु पुरुष जिसने युद्ध नहीं देखाहो वह संग्राममें जाकर घबराजाताहै कुछ शूरवीरता नहीं करसक्ता ॥५४॥ और जो शास्त्रको नहीं जाननेवाला धृष्टतासे वैद्यक्रियाओंमें नियुक्त हो वह सत्पुरुषोंमें मान्य और सत्कारके योग्य नहीं किंतु राजाकी ओरसे ऐसेको प्राणदण्ड देना योग्य है ॥ ५५ ॥

(श्लो० ५०) भवंतीति शेषः ।

उभावेतावनिपुणावसमर्थौ स्वकर्म्मणि ॥ अर्द्धवेदधरावेतावेकपक्षाविव द्विजौ ॥ ५६ ॥

ये दोनों अपने कार्य शास्त्र और क्रियामें निपुण न हों तो वे अधसीखी विद्यावाले (नीम हकीम) अपने काममें योग्य नहीं होते । जैसे एक एक पंखवाले दो पक्षी हों तो उड़ नहीं सकते ॥ ५६ ॥

ओषध्योऽमृतकल्पास्तु शस्त्राशनिविषोपमाः ॥ भवंत्यज्ञैरुपहतास्तस्मादेतौ विवर्जयेत् ॥ ५७॥ छेद्यादिष्वनभिज्ञो यः स्नेहादिषु च कर्मसु ॥ स निहंति जनं लोभात्कुवैद्यो नृपदोषतः ॥५८॥

मूर्खवैद्यकी उपयोजना कीहुई अमृतके तुल्य ओषधियां भी (प्रायः) शस्त्र और वज्र तथा विषके समान दुःख देनेवाली होजायाकरती हैं इससे इन दोनोंका परित्याग करे ॥५७॥ छेद्य भेद्य आदि तथा स्नेह, स्वेद, वमन, रेचन आदि कर्मोंमें जो वैद्य अनभिज्ञ (अनसमझ) है वह लोभसे मनुष्योंके प्राणोंका नाश कर देताहै और ऐसा राजाके दोषसे होताहै अर्थात् राजाको चाहिये कि, मूर्ख वैद्योंको अयोग्यचिकित्सा करनेसे रोके ॥ ५८ ॥

यस्तूभयज्ञो मतिमान्स समर्थोऽर्थसाधने ॥ आहवे कर्मनिर्वोढुं द्विचक्रः स्यंदनो यथा ॥ ५९ ॥

और जो बुद्धिमान् वैद्य दोनों बातों (शास्त्र और क्रिया) का पूर्ण जाननेवाला है वह प्रयोजन सिद्ध करनेमें समर्थ है । जैसे दो पहियोंका रथ युद्धमें यथार्थ कार्य निर्वाह करसक्ता है ॥ ५९ ॥

अथ वत्स ! तदेतदध्येयं यथा तथोपधारय मया प्रोच्यमानम् ॥६०॥

हे पुत्र सुश्रुत ! जिस प्रकार यह पढना चाहिये, श्रवणकर मैं वर्णन करूं हूं॥ ६०॥

अथ शुचये कृतोत्तरासंगायाव्याकुलायोपस्थितायाऽध्ययनकाले शिष्याय यथाशक्ति गुरुरुपदिशेत् पदं पादं श्लोकं वा ॥ ते च पदपादश्लोका भूयः क्रमेणानुसंधेया एवमेकैकशो घटयेदात्मना चानुपठेत् ॥ ६१ ॥

पवित्र और किया है उत्तरासंग जिसने तथा धैर्य्यवान् ऐसे उपस्थित हुए शिष्यको गुरु यथाशक्ति पद अथवा श्लोकका चरण वा श्लोक पढावे (और शिष्य) पढेहुए पद वा पाद वा श्लोकको क्रमसे वारंवार विचारे, और फिर अपने मनसे पढकर एक एकको घटावे (समझले) ॥ ६१ ॥

(श्लो० ५७) एतौ अज्ञवैद्यस्तदुपहृतौषधं च विवर्जयेत् ॥

अद्रुतमविलम्बितमविशंकितमननुनासिकं व्यक्ताक्षरमपीडित-
वर्णमक्षिभ्रुवौष्टहस्तैरनभिनीतं सुसंस्कृतं नात्युच्चैर्नातिनीचैश्च
स्वरैः पठेन्न चान्तरेण कश्चिद्व्रजेत्तयोरधीयानयोः ॥ ६२॥

न बहुत जलदी २ पढे, न बहुत ठैर ठैरकर ही पढै तथा शंकासे रहित होकर सानुनासिकको सानुनासिक और निरनुनासिकको निरनु-नासिक उच्चारण करै। अक्षरोंको स्पष्ट बोले बिगाडकर न बोले । आँख भ्रुकुटी होठ और हाथों करके विश्रामादिसे सुंदर संस्कार करै और न बहुत ऊँच स्वरसे (चिल्ला २ कर) पढे न बहुत नीचे स्वरसे पढ़े और पढते समय उन दोनों गुरु शिष्यके बीचमें कोई आवे नहीं ॥ ६२ ॥

भवतश्चात्र॥शुचिर्गुरुपरो दक्षस्तन्द्रानिद्राविवर्जितः॥ पठेदेतेन
विधिना शिष्यः शास्त्रान्तमाप्नुयात्॥६३॥ वाक्सौष्ठवेऽर्थविज्ञाने
प्रागल्भ्ये कर्मनैपुणे॥तदभ्यासे च सिद्धौ च यतेताध्ययनान्तगः६४

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

यहां अगाडी दो श्लोक कहते हैं । पवित्र और गुरुभक्त चतुर और तंद्रा निद्रा करके रहित जो शिष्य है वह इस विधिसे पढे तो इस शास्त्रके अंतको प्राप्त होगा ॥६३॥ और जब पूर्ण शास्त्र पढचुके, तब वाणीकी सुन्दरता और अर्थोके विज्ञान और प्रगलभता तथा क्रियाकुशलता और उसके अभ्यास सिद्धिमें सदैव यत्न करतारहै॥ ६४॥

इति श्रीपं०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथातः प्रभाषणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे प्रभाषणीय अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

अधिगतमप्यध्ययनमप्रभाषितमर्थतः॥खरस्य चन्दनभार इव
केवलं श्रमकरं भवति ॥ १ ॥ भवति चात्र-

शास्त्रके संपूर्ण पढ़लेनेपर भी अर्थका तत्त्वज्ञान यदि न हो तो चन्दनके भार वहनेवाले गर्दभके तुल्य केवल परिश्रमही करनेवाला होताहै विद्वान् नहीं होता ॥ १ ॥ यहां श्लोक है कि-

यथा खरश्चन्दनभारवाही भारस्य वेत्ता न तु चन्दनस्य॥एवं हि
शास्त्राणि बहून्यधीत्य चार्थेषु मूढाः खरवद्वहन्ति ॥ २ ॥

जैसे चन्दनका भार उठानेवाला गधा केवल भारको जाननेवाला होताहै चन्दन और उसके गुणोंका जाननेवाला नहीं होता । ऐसेही जो बहुतसे शास्त्रोंको पढलेते और उनके अर्थोंको नहीं समझते वे गर्दभके तुल्य भार उठानेवाले होते हैं ॥ २ ॥

तस्मात्सविंशमध्यायशतमनुपदपादश्लोकार्द्धश्लोकमनुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यं च ॥ ३ ॥

इस कारणसे एकसौ बास अध्यायोंको एक एक पद, चरण, अर्धश्लोक और श्लोक २ के प्रति गुरुको खूब वर्णन करना और शिष्यको खूब श्रवण करना चाहिये ३

कस्मात् सूक्ष्मा हि द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकदोषधातुमलाशयमर्मशिरास्नायुसंध्यस्थिगर्भसंभवद्रव्यसमूहविभागास्तथाप्रणष्टशल्योद्धरव्रणविनिश्चयभग्नविकल्पाः साध्ययाप्यप्रत्याख्येयता च विकाराणामेवमादयश्चान्ये विशेषाः सहस्रशो ये विचिन्त्यमाना विमलविपुलबुद्धेरपि बुद्धिमाकुलीकुर्य्युः किं पुनरल्पबुद्धेः ॥ ४ ॥

क्योंकि द्रव्य, रस, गुण, वीर्य और विपाक तथा दोष वातादिक धातु रस रक्तादिक मल और सातों आशय मर्मस्थान शिरा नाडी नसें संधि और अस्थि तथा गर्भसंभव द्रव्य और उनका समूह और विभाग ये बहुत सूक्ष्म हैं । तथा नष्टशल्यको निकालना व्रणका निश्चय करना भग्नके भेद और रोगोंका साध्य असाध्य कहना इत्यादिक और अन्य हजारों विशेष बातें जिनका विचारना होताहै वे निर्मल और विपुलबुद्धिवाले मनुष्योंकी बुद्धिको भी व्याकुल करदेतेहैं फिर अल्पबुद्धि मनुष्यकी तो क्या गति है ॥ ४ ॥

तस्मादवश्यमनुपदपादश्लोकार्धश्लोकमनुवर्णयितव्यमनुश्रोतव्यञ्च ५

इस हेतु अवश्यही एक एक पद और चरण श्लोकार्द्ध और श्लोकके प्रति खूब वर्णन करना और सुनना चाहिये ॥ ५ ॥

अन्यशास्त्रविषयोपपन्नानां चार्थानामिहोपनिपतितानामर्थवशात्तेषां तद्विधेभ्य एव व्याख्यानमनुश्रोतव्यं कस्मान्न ह्येकस्मिञ्छास्त्रे शक्यः सर्वशास्त्राणामवरोधः कर्तुम् ॥ ६ ॥

भवंति चात्र--

(सूत्र ३) सविंशमध्यायशत सोत्तरमिति ॥ (सूत्र ४) कस्माद्धेतोः ॥

जो अन्य शास्त्रविषयक निष्पन्न अभिप्राय हैं और वे प्रयोजनवश यहां आगये हैं उनको उनही शास्त्रोंसे व्याख्यान २ के प्रति श्रवण करना चाहिये क्योंकि एक शास्त्रमें सब शास्त्रोंका अवरोध कोईभी नहीं करसकता अर्थात् एकमें सब शास्त्रोंको कोई नहीं समासकता ॥ ६ ॥ यहां श्लोक कहे हैं--

एकशास्त्रमधीयानो न विद्याच्छास्त्रनिश्चयम् ॥ तस्माद्बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयाच्चिकित्सकः ॥ ७ ॥ शास्त्रं गुरुमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चाऽसकृत् ॥ यः कर्म कुरुते वैद्यः स वैद्योऽन्ये तु तस्कराः ॥ ८ ॥ औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम् ॥ शेषाणां शल्यतंत्राणां मूलान्येतानि निर्दिशेत् ॥ ९ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥

केवल एक शास्त्रका पढाहुआ शास्त्रके निश्चयको नहीं जान सकता इस हेतु बहुत शास्त्रोंका सुनने पढनेवाला वैद्य चिकित्साशास्त्रको जानता है ॥ ७ ॥ जो वैद्य गुरुमुखसे पढे हुए शास्त्रको अनेक वार उपासना विचार करके कार्य करता-है वही वैद्य है और बाकी तस्करके तुल्य हैं ॥ ८ ॥ औपधेनवतंत्र और भूतंत्र सुश्रुतसंहिता, पौष्कलावतसंहिता इनको अन्य शल्यतंत्रोंका मूल समझे ॥ ९ ॥

इति श्रीप०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थाने चतुर्थोध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथातोऽग्रोपहरणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे अग्रोपहरणीय (अर्थात् वैद्य जिन सामग्रियोंको अगाडी रखकर चिकित्साकार्य आरंभ करे तिस) अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ॥

त्रिविधं कर्म पूर्वकर्म प्रधानकर्म पश्चात्कर्मेति तद्व्याधिं प्रति प्रत्युपदेक्ष्यामः ॥ १ ॥

इस चिकित्साशास्त्रमें तीन प्रकारका कर्म कहाहै १ पूर्वकर्म २ प्रधान-कर्म ३ पश्चात्कर्म उनको रोग २ के प्रति उपदेश करेंगे ॥ १ ॥

शस्त्रकर्मकी प्रधानता और उसके आठ भेद ।

अस्मिञ्छास्त्रे शस्त्रकर्मप्राधान्याच्छस्त्रकर्मैव तावत् पूर्वमुपदेक्ष्यामस्तत्संभारांश्च ॥ २ ॥ तच्च शस्त्रकर्माऽष्टविधं तद्यथा-- छेद्यं भेद्यं लेख्यं वेध्यमेष्यमाहार्यं विस्राव्यं सीव्यमिति॥३॥

इसमें शस्त्रकर्मकी प्रधानता होनेसे प्रथम आरंभमें शस्त्रकर्म का ही उपदेश करते हैं और उसकी सामग्रियोंका ॥ २ ॥ शस्त्रकर्म आठ प्रकारका है-(१) छेद्य (काटना),(२) भेद्य (विदीर्ण करना),(३)लेख्य (खुरचना), (४) वेध्य (बींधना), (५) एष्य (खींचना), (६) आहार्य (निकालना)(७) विश्राव्य (चुवाना), (८) सीव्य (सीना टाँके लगाना) ॥ ३ ॥

सामग्रीसंपादन ।

ततोऽन्यतमं कर्म चिकीर्षता वैद्येन पूर्वमेवोपकल्पयितव्यानि ॥तद्यथा--यन्त्रशस्त्रक्षाराग्निशलाकाशृंगजलौकालाबूजांबवोष्ठपिचुप्लोतसूत्रपत्रपटमधुघृतवसापयस्तैलतर्पणकषायालेपनकल्कव्यजनशीतोष्णोदककटाहादीनि परिकर्मिणश्च स्निग्धाः स्थिरा बलवंतः ॥ ४ ॥

उपर्युक्त कर्म तथा उनसे अन्य किसी कर्म करनेकी इच्छावाले वैद्यको पहलेसेही नीचे लिखी सब सामग्री तयार रखनी चाहिये । जैसे यंत्र नाडी आदि शस्त्र छुरकादि क्षार तेजाब अग्नि शलाका सींग जोंक तौंबा जंबूर रुईका फोहा कपडा सूत पत्ते रेशम शहत घृत चरबी दूध तेल लस्सी काथ लेपकी औषध लुगदी बीजना ठंढा और गरम जल तथा कडाही इत्यादिक सामग्री और अपने प्यारे स्थिरचित्तवाले बलवान् ऐसे परिचारक होनेचाहिये ॥ ४ ॥

शस्त्रकर्मारंभ ।

ततःप्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषु दध्यक्षतान्नपानरत्नैरग्निं विप्रान् भिषजश्चार्चयित्वा कृतबलिमङ्गलस्वस्तिवाचनं लघु भुक्तवन्तं प्राङ्मुखमातुरमुपवेश्य यंत्रयित्वा प्रत्यङ्मुखो वैद्यो मर्मशिरास्नायुसंध्यस्थिधमनीः परिहरन्ननुलोमं शस्त्रं निदध्यादापूयदर्शनात् सकृदेवाऽपहरेच्छस्त्रमाशु च ॥ ५ ॥ महत्स्वपि शस्त्रेषु द्व्यंगुलं त्र्यंगुलं वा शस्त्रपदमुक्तम् ॥ ६ ॥

(सूत्र ५) (वक्तव्यम्) भीरुवृद्धबालदुर्बलक्लीबक्षीणगर्भिणीविषार्दितशस्त्राक्षमेषु पाकोद्धतदोषेषु पीडितेषु संधिमर्माश्रितेष्वल्पेषु वा शोफेषु तीक्ष्णोष्णद्रव्यैर्दारण कुर्वीत, इतरेषु पाटनम् । (वृद्धवाग्भटः) अर्थात् भीरु, वृद्ध व बालादिकके व्रणको तीक्ष्ण औषधसे छेदन करै शस्त्रसे छेदन नही करै औ इनसे इतरका व्रण शस्त्रसे ॥

फिर श्रेष्ठ तिथि करण मुहूर्त्त नक्षत्रोंमें दही अक्षत अन्न और पान तथा रत्नादिसे अग्नि ब्राह्मण और वैद्योंका पूजन कराकर देवादिकोंकी भेंट दे मंगलाचरण और स्वस्तिवाचन करके हलका भोजन किये हुए रोगीको पूर्वाभिमुख बिठलावे और जौनसा अंग या हाथ पाव आदिको जैसे बांधना मोडना आदि करनाहो वैसे करके पश्चिमाभिमुख बैठाहुआ वैद्य मर्मस्थानों बड़ी और छोटी नसों तथा सन्धि और हड्डियां तथा धमनी आदिको बचाकर रोमावलीके अनुकूल शस्त्रकर्म छेदन भेदन आदि कर्तव्य कार्य करे। जहांतक पीप दिखाईदे वहांतक शस्त्र प्रवेशकरे और फिर जल्दीसे एकवार शस्त्रको निकासले ॥ ५ ॥ बहुत बडे २ शस्त्रोंका काम पड़ने पर भी दो अथवा तीन अँगुल गहरा घाव होना चाहिये अधिक नहीं ॥ ६ ॥

श्रेष्ठघावके लक्षण ।

आयतश्च विशालश्च सुविभक्तो निराश्रयः ॥ प्राप्तकालकृत-श्चापि व्रणः कर्मणि शस्यते ॥ ७ ॥

आयत (योग्य विस्तारवाला), विशाल, अच्छे प्रकार विभाग, कियाहुवा निराश्रय तथा योग्य समयपर किया हुवा व्रण शस्त्रकर्ममें श्रेष्ठ होताहै ॥ ७ ॥

शस्त्रकर्ममें श्रेष्ठवैद्य ।

शौर्यमाशुक्रिया शस्त्रतैक्ष्ण्यमस्वेदवेपथू ॥ असंमोहश्च वैद्य-स्य शस्त्रकर्मणि शस्यते ॥ ८ ॥

वैद्यको शस्त्रकर्ममें इतनी बातें श्रेष्ठ हैं-शूरवीरता शीघ्र क्रिया करना शस्त्रकी पैनीधार पसीना न आजाना हाथ पाव न काँपना और धैर्य रखना इन गुणोंसे युक्त वैद्य श्रेष्ठ होताहै ॥ ८ ॥

व्रणविधान ।

एकेन वा व्रणेनाशुध्यमानेनांतराबुद्ध्यावेक्ष्याऽपरान्व्रणान् कुर्य्यात् ॥९॥ भवति चात्र-यतो यतो गतिं विद्यादुत्संगो यत्र यत्र च ॥ तत्र तत्र व्रणं कुर्याद्यथा दोषो न तिष्ठति ॥ १० ॥

यदि एक व्रणसे विकार शुद्ध होजाय तो एकही व्रण करे और जो एकसे शुद्ध न हो तो बुद्धिसे विचारकर एक अथवा कई और भी घाव करे ॥ ९ ॥ इसपर श्लोक कहते है--कि, जहां जहां राध आदिकी गति हो अथवा जहां दुष्टराध रुधिरादिकका उभारहो वहां २ ही शस्त्र लगाकर व्रण कर देना चाहिये जिससे कहीं दुष्टराध रुधिरादि न ठहर जावे और रह नहीं जावे ॥ १० ॥

तत्र भ्रूगंडशंखललाटाक्षिपुटौष्ठदन्तवेष्टकक्षाकुक्षिवंक्षणेषु तिर्यक् छेद उक्तः ॥ ११ ॥ चन्द्रमंडलवच्छेदान् पाणिपादेषु कारयेत् ॥ अर्द्धचंद्राकृतींश्चापि गुदे मेढ्रे च बुद्धिमान् ॥ १२ ॥

दोनों भ्रू कपोल कनपटी मस्तक आँखके ऊपरका पपोटा होंट ममूढा बगल कूख जंघाका जोड इन स्थानोंमें शस्त्र लगाना हो तो तिरछा छेद करे ॥ ११ ॥ हाथों और पावोंमें चंद्रमंडलके समान गोल छेद करे । तथा गुदा और लिंगमें शस्त्र लगानेकी आवश्यकता हो तो बुद्धिमान् वैद्य अर्द्धचंद्राकृति छेद करे ॥ १२ ॥

अन्यथा तु शिरास्नायुछेदनादतिमात्रं वेदना चिरात् व्रणसंरोहो मांसकन्दीप्रादुर्भावश्चेति ॥ १३ ॥ मूढगर्भोदरार्शोऽश्मरीभगंदरमुखरोगेष्वभुक्तवतः कर्म कुर्वीत ॥ १४ ॥

इनसे अन्यथा नाडी नस आदिके कटजानेसे अत्यंत पीडा होती है और बहुत दिनमें घाव भरताहै या भरताही नहीं जिससे नसूर होजाताहै तथा मांसकी ग्रंथि निकल आती है ॥ १३ ॥ मूढगर्भ उदररोग बवासीर पथरी भगंदर और मुखरोगमें विना भोजन कराये शस्त्रकर्म करना चाहिये ॥ १४ ॥

व्रणितका उपचार ।

ततः शस्त्रमवचार्य शीताभिरद्भिरातुरमाश्वास्य समंतात्परिपीडयांगुल्या व्रणमभिमृज्य प्रक्षाल्य कषायेण प्लोतेनोदकमादाय तिलकल्कमधुसर्पिःप्रगाढामौषधयुक्तां वर्त्तिं प्रणिदध्यात् ॥ १५ ॥

शस्त्रको (व्रणसे) निकालकर ठंढेपानीसे रोगीको सांत्वन (ठंढा) करे (अर्थात् रोगीके मुख आदिपर ठंढेपानीके छिडके दे जिससे उसका श्रम और घबराहट दूरहो) फिर घावको चारों ओरसे दबाकर साफ करे और (नरम वस्त्रसे) पोंछे और फिर (त्रिफला निंबादिके) कषायमें कपडा भिगो भिगोकर व्रणको (धोनेकी आवश्यकता हो तो) धोवे फिर तिलोंका कल्क (पीठी) शहत और घृतमें सनी हुई और यथोक्त औषधोंसहित वत्ती बनाकर व्रणमें स्थापन करै ॥ १५ ॥

ततः कल्केनाच्छाद्य नातिस्निग्धां नातिरूक्षां घनां कवलिकां दत्त्वा वस्त्रपट्टेन बध्नीयाद्वेदनारक्षोघ्नैर्धूपैर्धूपयेद्रक्षोघ्नैश्च मंत्रै रक्षां कुर्वीत ॥ १६ ॥

(सूत्र १५) समतादंगुल्या परिपीडय यथा दुष्टपूयादिनिस्सरण भवेत्—औषधयुक्ता यथाविहितौषधयुताम् ॥

(सूत्र. १६) (कवलिका—पुल्टिस) अतिस्नेहात् क्लेदः, अतिरौक्ष्याच्छेदो वेदना चेति (वृद्धवाग्भटः)

फिर थोडी लुगदीसे व्रणको ढाँककर न बहुत चिकनी न बहुत रूखी पुलटिस ऊपर रखकर अच्छे रेशमी कपडेकी पट्टीसे बाँधदे और वेदना तथा राक्षस भूतादिके नाश करनेवाली धूप धूपनकरे और रक्षोभूतघ्न मंत्रोंसे (व्रणितकी) रक्षा करे ॥ १६ ॥

ततो गुग्गुल्वगुरुसर्जरसवचागौरसर्षपचूर्णैर्लवणनिंबपत्रव्या-मिश्रैराज्ययुक्तैर्धूपैर्धूपयेत् ॥ १७ ॥ आज्यशेषेण चास्य प्राणान् समालभेत् ॥ १८ ॥

गुग्गुल, अगर, राल, वच, सुपेद सरसों इनका चूर्ण कर लवण और नींबके पत्ते मिला घृतसहित इस धूपसे धूनी देवे ॥ १७ ॥ और थोड़े घृत करके रोगीके प्राणबलकी स्वस्थता करे जिससे बल बनारहै ॥ १८ ॥

उदककुंभाच्चापो गृहीत्वा प्रोक्षयन् रक्षाकर्म कुर्य्यात् तद्वक्ष्या-मः ॥ १९ ॥ कृत्यानां प्रतिघातार्थं तथा रक्षोभयस्य च ॥ रक्षाकर्म करिष्यामि ब्रह्मा तदनुमन्यताम् ॥ २० ॥

कलशमेंसे जल लेकर रोगीपर छिडकता जावे और वक्ष्यमाण मंत्रोंसे रक्षाकर्म करे ॥ १९ ॥ कहे कि, कृत्या-मूठघात आदि (जादूटोना) तथा रक्षो अर्थात् राक्षस भूत, प्रेत, पिशाच आदि इनके नाश होने (दूर होने) के अर्थ में रक्षाकर्म करता-हू स्वयंभू भगवान् इसमें सहाय करो ॥ २० ॥

नागाः पिशाचा गंधर्वाः पितरो यक्षराक्षसाः ॥ अभिद्रवन्ति ये ये त्वां ब्रह्माद्या घ्नंतु तान्सदा ॥ २१ ॥ पृथिव्यामन्तरिक्षे च ये चरंति निशाचराः ॥ दिक्षु वास्तुनिवासाश्च पांतु त्वां ते नमस्कृताः ॥ २२ ॥

नाग, पिशाच, गंधर्व, पितर, यक्ष, राक्षस जो जो तेरे समीप विचरते हैं (या तेरी ओर आक्रमण करते हैं) उनको सदैव ब्रह्मादिक देवता दूर करो ॥ २१ ॥ जो राक्षस पृथ्वीपर विचरतेहैं तथा आकाशमें और जो दिशाओंमें रहतेहैं तथा वास्तूनमें वे तेरे नमस्कार किये हुए तेरी रक्षा करें ॥ २२ ॥

(वक्तव्य) यद्यपि भूतविद्या चिकित्साका एक अंग है तोभी इस समयके युक्तिपसद नवशिक्षितलोग भूतविद्याका अर्थ पंचमहाभूत-पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश इन तत्वोकी विद्याको भूतविद्या मान इन मत्रोका भावार्थ औरही प्रकारसे निकालनेको पसंद करतेहै जो इस समय युक्तिसे सिद्धहो । जैसे (सूत्र २१मे) नाग-सर्प, पिशाच-नीचमनुष्य, गधर्व-गवय्या, पितर-बूढे आदमी, यक्ष गुह्यक-गुप्तकाम करनेवाले, राक्षस-दुष्ट, ये जो बीमारके पास आवे तो ब्रह्मादिदेवता ।विद्वान् देवस्वरूप लोग उन्हें बीमारके पास न जानेदे । इसीतरह सब मंत्रोंसे युक्तिसिद्ध भावार्थ निकालतेहैं ॥

पांतु त्वां मुनयो ब्राह्मा दिव्या राजर्षयस्तथा ॥ पर्वताश्चैव नद्यश्च सर्वाः सर्वेऽपि सागराः ॥ २३ ॥ अग्नी रक्षंतु ते जिह्वां प्राणान्वायुस्तथैव च ॥ सोमो व्यानमपानं च पर्जन्यः परिरक्षतु ॥२४॥ उदानं विद्युतः पान्तु समानं स्तनयित्नवः॥ बलमिन्द्रो बलपतिर्मनुर्मान्यो मतिं तथा ॥ २५ ॥ कामांस्ते पान्तु गंधर्वास्सत्यमिन्द्रोऽभिरक्षतु ॥ प्रज्ञां ते वरुणो राजा समुद्रो नाभिमंडलम्॥ २६ ॥ वक्षः सूर्यो दिशः श्रोत्रे चंद्रमाः पातु ते मनः ॥ नक्षत्राणि सदा रूपं छायां पातु निशा तव ॥ २७॥ रेतस्त्वाऽऽप्याययंत्वाऽऽपो रोमाण्योषधयस्तथा । आकाशं खानि ते पांतु देहं तव वसुंधरा ॥ २८ ॥ वैश्वानरः शिरः पांतु विष्णुस्तव पराक्रमम् ॥ पौरुषं पुरुषश्रेष्ठो ब्रह्माऽऽत्मानं ध्रुवो भ्रुवौ ॥२९॥ एता देहे विशेषेण तव नित्या हि देवताः ॥ एतास्त्वां सततं पांतु दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥ ३० ॥ स्वस्ति ते भगवान्ब्रह्मा स्वस्ति देवाश्च कुर्वताम् ॥ स्वस्ति ते चंद्रसूर्यौ च स्वस्ति नारदपर्वतौ ॥३१॥ स्वस्त्यग्निश्चैव वायुश्च स्वस्ति देवा महेंद्रगाः ॥ पितामहकृता रक्षा स्वस्त्याऽऽयुर्वर्द्धतां तव ॥ ३२ ॥ ईतयस्ते प्रशाम्यंतु सदा भव गतव्यथः इति स्वाहा ॥ ३३ ॥

हे रोगी ! ब्राह्य और दिव्य मुनि तथा राजऋषि और पर्वत तथा सब नदी और समस्त समुद्र तेरी रक्षा करो ॥ २३ ॥ अग्नि तेरी जिह्वाकी रक्षा करो, वायु प्राणोंकी, सोम व्यानवायुकी, पर्जन्य बादल अपानवायुकी रक्षा करो ॥२४॥ बिजली उदानवायुकी रक्षा करो, मेघ समानवायुकी, इंद्र बलकी और मनु बुद्धिकी रक्षा करो ॥ २५ ॥ गंधर्व कामोंकी, इंद्र सत्यकी, वरुण प्रज्ञाकी, समुद्र नाभिमंडलकी रक्षा करो ॥२६॥ सूर्य वक्षस्थलकी, दिशा कर्णेंद्रियकी, चंद्रमा मनकी, तारागणरूपकी और रात्री छायाकी रक्षा करो ॥२७॥ जल तेरे वीर्यकी वृद्धिकरो, औषधि रोमावलीकी रक्षा करो, आकाश छिद्रोंकी, पृथ्वी तेरे देहकी रक्षा करो ॥२८॥ वैश्वानर तेरे शिरकी, विष्णु

(श्लो० २३) पात्विति क्रियापद सर्वेषु कर्तृपदेषु प्रयोक्तव्यम् ॥ (श्लो० २५) उत्तरार्द्धे पातु इति शेषः॥

पराक्रमकी, पुरुषोत्तम पुरुषार्थकी, ब्रह्मा आत्माकी और ध्रुव दोनों भ्रकुटियोंकी रक्षाकरो ॥२९॥ जितने देवता विशेषकरके तेरे देहमें नित्य वास करतेहैं वे सब निरंतर तेरी रक्षा करो और तू दीर्घायु हो ॥ ३० ॥ भगवान् ब्रह्मा तेरा कल्याण करो, सब देवता तेरा कल्याण करो, चन्द्रमा और सूर्य तेरा कल्याण करो तथा नारद और पर्वत तेरा कल्याण करो॥ ३१॥ अग्नि और वायु तेरा कल्याण करो, महेंद्र आदि सब देवता तेरा कल्याण करो, स्वयंभू भगवान्की करी हुई रक्षा तेरा कल्याण करो और तेरी दीर्घआयु हो ॥ ३२ ॥ और ईतिसंज्ञक सब उपाधि तेरी शांत होजावो और तू सदा व्यथा (रोग) रहित हो और बनारहा इन मंत्रोंको पढ २ कर स्वाहाशब्दका उच्चारण करे ३३॥

एतैर्वेदात्मकैर्मंत्रैः कृत्याव्याधिविनाशनैः ॥ मयैवं कृतरक्षस्त्वं दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥ ३४ ॥

कृत्या अभिचार और व्याधिके नाश करनेवाले वेदात्मक इन मंत्रोंसे मुझ करके रक्षा कियाहुवा तू दीर्घ आयुको प्राप्त हो ॥ ३४ ॥

ततः कृतरक्षमातुरमगारं प्रवेश्याचारिकमादिशेत् ॥ ३५ ॥ ततस्तृतीयेऽह्नि विमुच्यैवं बध्नीयाद्वस्त्रपट्टेन न चैनं त्वरमाणोऽपरेद्युर्मोक्षयेत् ॥ ३६॥ द्वितीयदिवसे परिमोक्षणाद्विग्रथितो व्रणश्चिराद्उपसंरोहति तीव्ररुजश्च भवति॥ ३७ ॥ अत ऊर्द्ध्वं दोषकालबलादीनवेक्ष्य कषायालेपबन्धाहाराचारान्विदध्यात्॥ ३८ ॥ न चैनं त्वरमाणः सांतर्दोषं रोपयेत् स ह्यल्पेनाप्यपचारेणाभ्यंतरमुत्संगं कृत्वा भूयोपि विकरोति ॥ ३९॥ (भवति चात्र) तस्मादंतर्बहिश्चैव संशुद्धं रोपयेद्व्रणम् ॥ रूढेऽप्यजीर्णव्यायामव्यवायादीन् विवर्जयेत्॥ ४० ॥

फिर रक्षाकिये हुए आतुरको स्थानमें लेजावे और यथोक्त आचार (आहार विहारआदि) का उपदेश करता रहे ॥ ३५ ॥ और फिर तीसरे दिन पट्टीको खोलकर (दोषादोष देखे और) फिर उसीभांति मुलायम (या रेशमी) कपड़ेसे

(श्लो० ४०) (अपथ्य व्रणितस्य) नवधान्यमाषकलायकुलत्थनिष्पावशिवीशीतात्बुमद्येक्षुक्षीरपिष्टतिलविकृतिशुष्कशाकपिशितहारितकाम्ललवणकटुक्षारानूपामिषाणि वर्जयेत्। (पथ्य व्रणितस्य) भोजयेच्चैन यथासात्म्यं समातीतशालिषष्टिकयवगोधूमान्यतम मुद्गमसूराढकीसतीनयूषजागलरसोपेत जीवतीसुनिषण्णतंदुलीयकवास्तूकवार्ताकुपटोलकारवेल्लकबालमूलकशाकयुक्त दाडिमामलकसैंधवसहित सर्पिःस्निग्धं लघ्वल्पमुष्णोदकोत्तरं च। (वृद्धवाग्भटः)॥

बांधदे-शीघ्रता करके दूसरेही दिन पट्टी कदाचित् नहीं खोले ॥ ३६ ॥ (क्योंकि) दूसरे दिन खोलनेसे गांठपड़नेकी शंका होतीहै तथा देरसे घाव भरता है वेदनाभी अधिक होतीहै ॥ ३७ ॥ इसके सिवाय दोष, काल, रोगीका बल देखकर (जैसा उचित हो) कषाय लेप कोई वस्तु बांधना और आहार विहारआदिका उपयोग करे ॥ ३८ ॥ और शीघ्रता करके भीतर दोषवाले व्रणको ऊपरसे भर नहीं लावे क्योंकि थोड़ेहीसे अपचार (अयोग्यता) से भीतरके दोष जोरकरके फिर विकार पैदा करतेहैं ॥ ३९ ॥ यहां श्लोक है कि-इसीसे बाहर और भीतरसे साफ हुए व्रणका रोपण (भरना) अंकुर लाना चाहिये और भरे तथा अंकुरआये पीछेभी अजीर्ण, व्यायाम, श्रम, मैथुनआदिसे बचा रहे ॥ ४० ॥

हर्षं क्रोधं भयं चापि यावदास्थैर्यसंभवात् ॥ ४१ ॥ हेमंते शिशिरे चैवं वसंते चापि शोधयेत् ॥ त्र्यहाद्व्यहाच्छरद्ग्रीष्मवर्षास्वपि च बुद्धिमान् ॥ ४२ ॥ अतिपातितरोगेषु नेच्छेद्विधिमिमं भिषक् ॥ प्रदीप्तागारवच्छीघ्रं तत्र कुर्य्यात्प्रतिक्रियाम् ४३॥

हर्ष, क्रोध, भय इत्यादिकोभी जबतक स्थैर्य्य पूरी आरोग्यता न हो तबतक त्याग करे ॥ ४१ ॥ हेमन्त शिशिर और वसन्त ऋतुमेंभी तीसरे दिन व्रण शोधन करे और शरद् ग्रीष्म तथा वर्षाऋतुमें दूसरे दिनही शोधन करता रहै ॥ ४२ ॥ अतिपातित रोगों (जिनमें दोष अत्यन्त कुपित हों विसर्प आदि) में बुद्धिमान् वैद्य इसही विधिके अनुसार न करे किंतु जलतेहुए स्थानके समान बहुत शीघ्र उसका प्रतिकार करना चाहिये ॥ ४३ ॥

या वेदना शस्त्रनिपातजाता तीव्रा शरीरं प्रधुनोति जंतोः ॥ घृतेन सा शांतिमुपैति सिक्ता कोष्णेन यष्टीमधुकान्वितेन ॥४४॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

शस्त्रके लगनेसे जो तीव्रवेदना मनुष्यके शरीरमें ऐसी होतीहै कि, दुःखके मारे शरीर कंपायमान होता है वह वेदना मुलहटी युक्त निवाये २ घृतके लगाने (सेकने) से शांतिको प्राप्त होजातीहै ॥ ४४ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्म वि० सुश्रुतस० भा०टी०सूत्रस्थाने पचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोध्यायः ६.

अथात ऋतुचर्य्याऽध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे ऋतुचर्य्या अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ॥

(श्लो० ४१) वर्जयेदिति पूर्वश्लोकेनान्वयः ॥

कालो हि नाम भगवान् स्वयंभूरनादिमध्यनिधनोऽत्र रसव्यापत्संपत्ती जीवितमरणे च मनुष्याणामायत्ते, स सूक्ष्मामपि कलां न लीयत इति कालः, संकलयति कालयति वा भूतानीति कालः ॥ १ ॥

जिसका नाम काल है वह सब ऐश्वर्यवाला किसीसे उत्पन्न नहीं हुवा है और उस कालके आदि, मध्य और अंत नहीं है और समस्त रसोंकी व्यापत्ति और संपत्ति अर्थात् विरसता और सरसता तथा मनुष्यआदिका जीवन और मरण इस कालहीके आधीन है जो सूक्ष्म कलामात्रभी लयको प्राप्त न हो, सो काल अथवा प्राणियोंको (वा पृथिव्यादिको) संकलन (कर्मोंमें नियुक्त) करै अथवा जीवोंको संहरण करे उसे काल कहतेहैं ॥ १ ॥

तस्य संवत्सरात्मनो भगवानादित्यो गतिविशेषेणाक्षिनिमेषकाष्ठाकलामुहूर्त्ताहोरात्रपक्षमासर्त्वयनसंवत्सरयुगप्रविभागं करोति ॥ २ ॥

उसमें संवत्सरात्मक कालका भगवान् सूर्य अपनी गतिविशेषकरके अक्षिनिमेष काष्ठा कला मुहूर्त दिन रात्रि पक्ष महीना ऋतु अयन संवत्सर और युग इस प्रकार विभाग करताहै ॥ २ ॥

समयका प्रमाण ।

तत्र लघ्वक्षरोच्चारणमात्रोऽक्षिनिमेषः ॥ ३ ॥ पंचदशाक्षिनिमेषाः काष्ठा ॥ ४ ॥ त्रिंशत्काष्ठाः कला ॥ ५ ॥ विंशतिकलो मुहूर्त्तः कलादशभागश्च ॥ ६ ॥ त्रिंशन्मुहूर्त्तमहोरात्रम् ॥ ७ ॥ पञ्चदशाहोरात्राणि पक्षः ॥ ८ ॥ स च द्विविधः शुक्लः कृष्णश्च तौ मासः ॥ ९ ॥

उस कालविभागमेंसे जितने समयमें लघु अक्षरका उच्चारण हो उसको अक्षिनिमेष (विपल) कहतेहैं ॥ ३ ॥ पंदरह निमेषकी एक काष्ठा ॥४॥ और तीस काष्ठाकी एक कला ॥ ५ ॥ और बीस $\frac{1}{10}$ सहित कलाका एक मुहूर्त ॥ ६ ॥ और तीस मुहूर्तका एक अहोरात्र (दिनरात) ॥ ७ ॥ तथा पंदरह अहोरात्रका एक

(सूत्र २) समात्राकाष्ठाकलानाडिकामुहूर्तयामाहोरात्रपक्षमासर्त्वयनवर्षभेदेन द्वादशधा विभज्यते इति त्रृ. वा. ॥ (सूत्र ३ से ८) तत्राक्षिनिमेषो मात्रा, ताः पंचदश काष्ठा, तास्त्रिंशत्कला, ताः दशभागाः विंशतिनाडिका, नाडिकाद्वयं मुहूर्तश्च ते तुल्यरात्रिंदिवे राशिभागे चत्वारः पादोनायामाः तैश्चतुर्भिरहोरात्रश्च पंचदशाहोरात्राः पक्षः, पक्षद्वयं मासः इति । (त्रृ. वा. भ.) ।

पक्ष ॥ ८ ॥ और पक्ष दो होते हैं एक शुक्ल पक्ष, दूसरा कृष्ण पक्ष और वे दोनों पक्ष मिलकर एक मास (महीना) होताहै ॥ ९ ॥

ऋतु ।

तत्र माघादयो द्वादशमासा द्विमासिकमृतुं कृत्वा षड् ऋतवो भवंति ॥१०॥ ते शिशिरवसंतग्रीष्मवर्षाशरद्धेमंताः ॥ ११ ॥ तेषां तपस्तपस्यौ शिशिरः ॥१२॥ मधुमाधवौ वसंतः ॥१३॥ शुचिशुक्रौ ग्रीष्मः ॥ १४ ॥ नभोनभस्यौ वर्षा ॥१५॥ इषोर्जौ शरत् ॥ १६ ॥ सहःसहस्यौ हेमंत इति ॥ १७ ॥

तिस संवत्सरात्मक कालविभागमें माघको आदि ले बारह महीने होते हैं और दो दो महीनेका एक एक ऋतु करके (१२ महीनोंमें) छः ऋतु होते हैं ॥ १० ॥ वे ऋतु इसभांति हैं कि शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् और हेमंत ॥ ११ ॥ उनमेंसे माघ और फाल्गुन शिशिर ॥ १२ ॥ चैत्र वैशाख वसंत ॥ १३ ॥ ज्येष्ठ आषाढ ग्रीष्म ॥ १४ ॥ श्रावण भाद्रपद वर्षा ॥ १५ ॥ आश्विन कार्तिक शरद् ॥ १६ ॥ मार्गशिर पौष हेमंत ऋतु होते हैं ॥ १७ ॥

अयनविभाग ।

त एते शीतोष्णवर्षालक्षणाश्चंद्रादित्ययोः कालविभागकरत्वादयने द्वे भवतो दक्षिणमुत्तरञ्च ॥ १८ ॥ तयोर्दक्षिणं वर्षाशरद्धेमंतास्तेषु भगवानाप्यायते सोमोऽम्ललवणमधुराश्च रसा बलवंतो भवंत्युत्तरोत्तरं च सर्वप्राणिनां बलमभिवर्द्धते ॥१९॥ उत्तरञ्च शिशिरवसंतग्रीष्मास्तेषु भगवानाप्याय्यतेऽर्कस्तिक्तकषायकटुकाश्च रसा बलवन्तो भवन्त्युत्तरोत्तरञ्च सर्वप्राणिनां बलमपहीयते ॥२० ॥

ये ऋतु शर्दी गर्मी और वर्षा इन्हीसे लक्षित होतेहैं (जाने जातेहैं) और चन्द्रमा तथा सूर्यके कालविभाग करनेवाले होनेसे एक वर्षमें दो अयन होतेहैं एक दक्षिणायन दूसरा उत्तरायण ॥ १८ ॥ तिनमेंसे वर्षा शरद् और हेमंत इन तीन

(सूत्र १८ । १९) (वक्तव्य) दक्षिणायनमे प्रतिदिन चद्रमाकी किरणे यहा सीधी पडतीजाती हैं इससे बलवान् होताहै तथा उत्तरायणमे सूर्यकी किरणे प्रतिदिन सीधी पडतीजाती हैं इससे सूर्य बलवान् होताहै । दक्षिणायनमे प्रतिदिन सूर्य दक्षिणको झुकता है और उत्तरायणमे उत्तर (ऊपर) को चढता है । यह क्रम यहाँ उत्तरगोलमे है दक्षिणगोलमे (मध्यरेखाके दक्षिणमे) इससे विपरीत ॥

ऋतुवों (छःमहीने) का दक्षिणायन होताहै इन दक्षिणायनकी तीनों ऋतुवोंमें भगवान् चन्द्रमा वलिष्ठ होताहै और अम्ल लवण मधुर ये रस (क्रमसे) बलवान् होतेहैं और उत्तरोत्तर सब प्राणियोंका बल बढताहै ॥ १९ ॥ और उत्तरायणमें शिशिर वसंत और ग्रीष्म ये तीन ऋतु (छःमास) होतेहैं इनमें सूर्य भगवान् बलिष्ठ होताहै तथा कडुवा कसैला और चरपरा ये रस (क्रमसे) बलवान् होतेहैं तथा उत्तरोत्तर समस्त प्राणियोंका बल घटताजाताहै ॥ २० ॥

भवति चात्र ॥ शीतांशुः क्लेदयत्युर्वीं विवस्वाञ्शोषयत्यपि । तावुभावपि संश्रित्य वायुः पालयति प्रजाः ॥ २१ ॥

यहाँ श्लोक है कि, चंद्रमा पृथ्वीको क्लेदित (आर्द्र) करताहै और सूर्य शोषण (शुष्क) करताहै—इन दोनोंके आश्रय होकर वायु प्रजाका पालन करताहै ॥२१॥

अथ खल्वयने द्वे युगपत्संवत्सरो भवति॥२२॥ ते तु पंच युगमितिसंज्ञा लभंते ॥२३॥ स एष निमेषादिर्युगपर्य्यन्तः कालश्चक्रवत्परिवर्तमानः कालचक्रमुच्यत इत्येके ॥ २४ ॥

और ये दोनों अयन मिलकर एक वर्ष होताहै ॥२२॥ तथा पांच वर्षकी युगसंज्ञा होतीहै ॥ २३ ॥ यह काल निमेषको आदि ले युगपर्यंत चक्रकी भांति परिवर्तमान होताहुवा रहताहै इससे कोई इसको कालचक्र कहतेहैं ॥ २४ ॥

प्रकारांतरसे ऋतुविभाग ।

इह तु वर्षाशरद्धेमंतवसंतग्रीष्मप्रावृषः षडृतवो भवंति दोषोपचयप्रकोपोपशमनिमित्तम्॥२५॥ ते तु भाद्रपदाद्येन द्विमासिकेन व्याख्याताः ॥ २६ ॥ तद्यथा—भाद्रपदाश्विनौ वर्षा ॥ २७ ॥ कार्तिकमार्गशीर्षौ शरद् ॥ २८ ॥ पौषमाघौ हेमन्तः ॥२९॥ फाल्गुनचैत्रौ वसंतः ॥ ३० ॥ वैशाखज्येष्ठौ ग्रीष्मः ॥३१ ॥ आषाढश्रावणौ प्रावृडिति ॥ ३२ ॥

(सूत्र २६) ननु क्षयमासेऽधिमासे च विभागवैषम्याद्रविराशिक्रमेणैव षडृतवो भवति-("ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तः प्रावृड्मिथुनकर्कटौ । सिंहकन्ये स्मृता वर्षा तुलवृश्चिकयोः शरद् ॥ धनुर्ग्राहौ च हेमंतो वसंतः कुंभमीनयोः " इति भावप्रकाशः) अर्थ—मासविभागमें शंका यह है कि, जब महीना टूट या बढ जावे तो ठीक विभाग नही होसकता इससे सूर्यकी संक्रांतिके क्रमसे जो ऋतुविभाग होताहै वह भावप्रकाशसे लिखते हैं यथा-मेष और वृषकी संक्रांति ग्रीष्मऋतु होताहै और मिथुन कर्ककी प्रावृट् तथा सिंह कन्याकी वर्षा ऋतु और तुला वृश्चिककी शरद् तथा धनुष् मकरकी संक्रांति हेमंत, एवं कुंभ और मीनकी संक्रांति वसंत ऋतु समझो ॥

यहां वर्षविभागमें वात पित्त कफ इन दोषोंके संचय, कोप और शांतिके हेतु ये छःऋतु इस भांति होतीहैं वर्षा, शरद्, हेमंत, वसंत, ग्रीष्म और प्रावृट् ॥ २५ ॥ ये भाद्रपदकी आदि ले दो दो मासकी एक २ ऋतु वर्णन करी है ॥ २६॥ जैसे भाद्रपद आश्विन वर्षा ॥ २७॥ कार्तिक मार्गशीर्ष शरद् ॥ २८ ॥ पौष माघ हेमंत ॥ २९ ॥ फाल्गुन चैत्र वसंत ॥ ३० ॥ वैशाख ज्येष्ठ ग्रीष्म ॥ ३१ ॥ तथा आषाढ और श्रावण प्रावृट् ॥ ३२ ॥

तत्र वर्षास्वोषधयस्तरुण्योऽल्पवीर्या आपश्चाऽप्रसन्नाः क्षितिनिर्मलप्रायाः ताः उपयुज्यमाना नभसि मेघावतते जलप्रक्लिन्नायां भूमौ क्लिन्नदेहानां प्राणिनां शीतवातविष्टब्धाग्नीनां विदह्यंते विदाहात् पित्तसंचयमाऽऽपादयंति ॥ स संचयः शरदि प्रविरलमेघे वियत्युपशुष्यति पंकेऽर्ककिरणप्रविलापितः पैत्तिकान्व्याधीञ्जनयति ॥ ३३ ॥

उन ऋतुवोंमेंसे वर्षाऋतुमें ओषधि तरुण (नवीन) और थोडे पराक्रमवाली होतीहैं और जल दूषित तथा पृथ्वी प्रायः मलयुक्त होजाती है । और येही (मनुष्यादिके) उपयोगमें आये हुए जब कि आकाश मेघाच्छादित और पृथिवी आर्द्र (गीली) हो क्लिन्न (गीली कफयुक्त) देहवाले प्राणियोंको शीत वातकरके विष्टब्ध और मंदाग्निवाले मनुष्योंको विदाह पैदा करतेहैं और विदाहके कारण पित्तके संचय करतेहैं । फिर वही पित्तका संचय शरद्ऋतुमें जब बादल नहीं रहते और आकाश शुष्क होजाताहै (उसमें जलकण प्रायः नही रहते) धूप पड़तीहै और कीचडपर सूर्यकी तीक्ष्ण किरणें पडकर उसे सुखातीहैं तब पित्तके रोग पैदा करताहै ३३

(सूत्र ३३) तरुण्यो नवीनाः । स पित्तसंचयः प्रविरलमेघे वियति पंके उपशुष्यति रविकरैः प्रविलापितः सन् पित्तरोगानुत्पादयति । (वक्तव्य)-हम छब्बीसवे सूत्रकी टिप्पणीमे सूर्यकी संक्रांतिके क्रमसेभी ऋतुविभाग लिखआये है परन्तु अब यह बतलाना है कि, एक जगह तो शिशिर लिया प्रावृट् नहीं लिया और दूसरी जगह शिशिर नहीं ग्रहणकिया और प्रावृट् ग्रहणकिया यह कैसे ? इसका समाधान यहहै कि (श्लो०) "गंगाया दक्षिणे देशे वृष्टेर्बहुलभावतः ॥ उभौ मुनिभिराख्यातौ प्रावृड्वर्षाभिधावृतू ॥ १ ॥ तस्या एवोत्तरे देशे हिमप्रचुरभावतः ॥ एतावुभौ समाख्यातौ हेमन्तशिशिरावृतू ॥ २ ॥" (अर्थ) गंगाके दक्षिणकी ओर जो देश हैं उनमें वर्षाके अधिक होनेसे ऋषियोंने प्रावृट् और वर्षा ऐसे दो २ मासकी दो ऋतु विभक्त करदी ॥ १ ॥ और गंगाके उत्तरके देशोंमे जहां सरदी अधिक होती है वहां हेमंत और शिशिर ये दो ऋतु दो २ मासकी ग्रहणकी है ॥ २ ॥ साराश यह कि जहां जहां चार मास (चौमासा) वर्षा होतीहै वहां प्रावृट् ग्रहण करना चाहिये और जहां शीत अधिक पडता हो और वर्षा कम हो वहा शिशिरक्रम ग्रहण करना ॥

ता एवौषधयः कालपरिणामात्परिणतवीर्या बलवत्यो हेमंते भवन्त्याऽऽपश्च प्रसन्नाः स्निग्धा अत्यर्थं गुर्व्यस्ता उपयुज्यमाना मन्दकिरणत्वाद्भानोः सतुषारपवनोपस्तंभितदेहानां देहिना-मविदग्धाः स्नेहाच्छैत्याद्गौरवादुपलेपाच्च श्लेष्मणः सञ्चय-माऽऽपादयन्ति ॥ स संचयो वसंतेऽर्करश्मिप्रविलापित ईष-त्स्तब्धदेहानां देहिनां श्लैष्मिकान्व्याधीञ्जनयति ॥ ३४ ॥

वे समस्त औषधियां समयके परिणामसे हेमन्त ऋतुमें परिपक्व वीर्यवाली और बलवाली होती है जल स्वच्छ चिकना अत्यंत भारी उसके संयोगसे और सूर्यकी मद किरणों करके हिमयुक्त वायुसे शिथिल शरीरवाले प्राणियोंको चिकनाई शीतलता और भारीपन तथा उपलिप्तताके कारण विना विदाहको प्राप्तहुए वेही औषधादि कफका संचय करतेहैं ॥ फिर वह कफका संचय वसंतऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे फैलताहुवा शिथिलशरीरवाले प्राणियोंको कफकी व्याधियां उत्पन्न करताहै ॥ ३४ ॥

ता एवौषधयो निदाघे निःसरा रूक्षा अतिमात्रं लघ्व्यो भवं-त्यापश्च ता उपयुज्यमानाः सूर्यप्रतापोपशोषितदेहानां देहि-नां रौक्ष्याल्लघुत्वाद्वैशद्याच्च वायोः संचयमापादयंति ॥ स संचयः प्रावृषि चात्यर्थं जलोपक्लिन्नायां भूमौ क्लिन्नदेहानां प्रा-णिनां शीतवातवर्षेरितो वातिकान्व्याधीञ्जनयति ॥ ३५ ॥

एवमेष दोषाणां सञ्चयप्रकोपहेतुरुक्तः ॥ ३६ ॥

वेही औषधि ग्रीष्मऋतुमें निर्बल और रूक्ष होती हैं तथा जल अत्यंत हलका और इनका उपयोग होनेसे सूर्यकी प्रचंडधूप गरमीसे शोषितशरीरवाले प्राणियोंको रूखापन, हलकापन आदिसे वायुका संचय करतेहैं । फिर वही वायुका संचय प्रावृट्ऋतुमें जब कि जलसे गीली पृथ्वी हो क्लेदित (सीले) शरीरवाले प्राणियोंको शीत पवन वर्षासे प्रेरितहो वायुके रोग उत्पन्न करताहै ॥ ३५ ॥ इस प्रकार यह दोषों (वायु पित्त कफ) के संचय और कोपका हेतु वर्णन कियागया है ॥ ३६ ॥

तत्र वर्षाहेमंतग्रीष्मेषु संचितानां दोषाणां शरद्वसंतप्रावृट्सुच प्रकुपितानां निर्हरणं कर्तव्यम् ॥ ३७ ॥

(सूत्र ३७) "पित्ते विरेचनं श्रेष्ठं कफे प्रच्छर्दनं हितम् । मर्दनं स्नेहनं बस्तिर्वातस्य परिशांतये "॥

जो दोष वर्षा, हेमंत और ग्रीष्ममें संचय होतहैं तथा जो शरद् और वसंत और प्रावृट्में कोप करें (मनुष्यों को) उनकी शांतिका यत्न करना चाहिये ॥ ३७॥

दोषशांतिका समय ।

तत्र पैत्तिकानां व्याधीनामुपशमो हेमन्ते श्लैष्मिकाणां निदाघे वातिकानां घनात्यये स्वभावत एव त एते संचयप्रकोपोपशमा व्याख्याताः ॥ ३८ ॥

पित्तकोपजनित व्याधियोंकी हेमंतऋतुमें स्वयं शांति होजाती है तथा कफजनितरोगोंकी शांति स्वयं ग्रीष्म ऋतुमें एवं वातजनित व्याधियोंकी शांति शरद्ऋतुमें होतीहै । यह संचय, कोप और शांति स्वभावसे स्वयं ही होतेहैं । ऐसे वर्णन करते हैं ॥ ३८ ॥

एक दिन रात्रिमें ऋतुविभाग ।

तत्र पूर्वाह्णे वसंतस्य लिंगं मध्याह्ने ग्रीष्मस्याऽपराह्णे प्रावृषः प्रदोषे वार्षिकं शारदमर्द्धरात्रे प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् ॥ ॥३९॥ एवमहोरात्रमपि वर्षमिव शीतोष्णवर्षलक्षणं दोषोपचयप्रकोपोपशमैर्जानीयात् ॥ ४० ॥

दिनके प्रथम भागमें वसंत ऋतुका चिह्न (सदैव) प्रतीत होता है और मध्याह्नमें ग्रीष्मका, अपराह्ण (तीसरे प्रहर) प्रावृट्का तथा सायंकाल (संध्या समय) वर्षाका और अर्द्धरात्र शरद् और प्रत्यूषकाल (पिछली रात=तडकाऊ) हेमंतकासा समय सदा प्रतीत होताहै ॥ ३९ ॥ ऐसे अहोरात्रभी वर्षके समान शीत उष्ण वर्षाके चिह्नोंसे दोषों (वात पित्त कफ) के संचय कोप और शांति का हेतु जानना चाहिये ॥ ४० ॥

तत्राऽव्यापन्नेष्वृतुष्वऽव्यापन्ना ओषधयो भवंत्याऽऽपश्च ता उपयुज्यमानाः प्राणायुर्बलवीर्य्यौजस्कर्यो भवंति ॥४१॥ तेषां व्यापदोऽदृष्टकारिताः शीतोष्णवातवर्षाणि खलु विपरीतान्योषधीर्व्यापादयंत्यपश्च तासामुपयोगात् विविधरोगप्रादुर्भावो मारको वा भवेदिति ॥ ४२ ॥

इनमेंसे यथार्थ (शीतोष्णवर्षावाली) ऋतुवोंमें औषधि (अन्न शाक आदि) तथा जलभी ठीक रहतेहैं और वे यथोचित अन्न जलादिक उपयोगमें आये

(सूत्र ४२) अदृष्ट ईश्वरो भाग्यञ्च ॥

हुए (सेवन किये हुए) मनुष्योंको प्राण, आयुर्बल, पराक्रम और ओज यथार्थ उत्पन्न करतेहैं ॥ ४१ ॥ तथा उन ऋतुवोंमें भाग्यवश विपर्य्यय होजाय (जैसे हेमंतमें शीत न पडना, ग्रीष्ममें गरमी न होना तथा वर्षामें जल न बरसना) तो उसमें अन्न और जल आदि बिगड जातेहैं तथा वे बिगडेहुए औषधि जल आदि उपयोगमें आनेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होतेहैं । अथवा महामारी (विसूचिकादि) से मृत्युकारक (समय) होजाताहै ॥ ४२ ॥

तत्राऽव्यापन्नानामोषधीनामपां चोपयोगः ॥ ४३ ॥ कदाचिदव्यापन्नेष्वृतुषु कृत्यापिशाचरक्षःक्रोधाऽधर्मैरुपध्वस्यन्ते जनपदाः ॥ ४४ ॥

इस विकारके समय शुद्धअन्न तथा जलका उपयोग करना उचित है ॥ ४३ ॥ कभी कभी यथार्थ ऋतुमें कृत्या (यन्त्रमन्त्र जादू टोना) पिशाच राक्षसादिकोंके क्रोध तथा अधर्म इन करकेभी देशके देश नष्ट होजाया करतेहैं ॥ ४४ ॥

विषौषधिपुष्पगंधेन वायुनोपनीतेनाऽऽक्रम्यते यो देशस्तत्र दोषप्रकृत्यविशेषेण कासश्वासवमथुप्रतिश्यायशिरोरुग्ज्वरैरुपतप्यंते ॥ ग्रहनक्षत्रचरितैर्वा गृहदारशयनासनयानवाहनमणिरत्नोपकरणगर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावैर्वा ॥ ४५ ॥

जिस प्रांतमें विषका वायु तथा विषैली औषधों और खोटे पुष्पोंका वायु और गंध अधिक आवे तो दोष और प्रकृतिविरुद्ध होनेसे वहांके निवासी मनुष्य खांसी, श्वास, छर्दि, जुखाम, शिरका दर्द और ज्वर आदि रोगोंसे पीडित हो जातेहैं । तथा खोटे ग्रह नक्षत्र आदिके चरित्रों अथवा निकम्मे मैले स्थान प्रकृतिविरुद्ध तथा रोगयुक्तस्त्री, टूटी खराब शय्या, विषमआसन सवारी, अश्व आदि वाहन, बहली आदि तथा दोषयुक्त मणि, रत्नों धारण करने तथा अनुचित साधन करने आदिसेभी रोगोंका प्रादुर्भाव होताहै अर्थात् रोग उत्पन्न होतेहैं ॥ ४५ ॥

तत्र स्थानपरित्यागशांतिकर्मप्रायश्चित्तमंगलजपहोमोपहारेज्यांजलिनमस्कारतपोनियमदयादानदीक्षाऽभ्युपगमदेवताब्राह्मणगुरुपरैर्भवितव्यमेवं साधु भवति ॥ ४६ ॥

उन रोगोंके परिहारके लिये (यदि स्थान अयोग्य हो तो उसका त्याग) विरुद्धस्त्रीसे हो तो ब्रह्मचर्य इसीप्रकार सबके अनुसार शांतिकर्म, प्रायश्चित्त, मंगल, जप, हवन, बलिदान, पूजा, बद्धांजलिनमस्कार, तप, नियम, दया, दान, दीक्षा,

(सूत्र ४३) श्रेयानिति शेषः ॥

शरणआना, देवता, ब्राह्मण गुरु इनमें श्रद्धा रखना इत्यादि कामोंमें तत्पर होना चाहिये. इन्हीसे आरोग्यता और शुभ होताहै ॥ ४६ ॥

ऋतुवोंके लक्षण ।

ऋतूनामतऊर्ध्वमव्यापन्नानां लक्षणान्युपदेक्ष्यामः ॥ ४७ ॥

इसके अनन्तर उत्तम ऋतुओंके लक्षण वर्णन करतेहैं ॥ ४७ ॥

हेमंत ऋतु ।

वायुर्वात्युत्तरः शीतो रजोधूमाकुला दिशः । छन्नस्तुषारैः सविता हिमानद्धा जलाशयाः॥४८॥ दर्पिता ध्वांक्षखड्गाह्वमहिषोरभ्रकुंजराः॥लोध्रप्रियंगुपुन्नागाः पुष्पिता हिमसाह्वये ॥४९॥

उत्तरका शीतल पवन चलता हो, दिशा रज और धूमसे भरीसी प्रतीत हों, सूर्य तुषार (धूमर) से अच्छादितसा हो और तड़ाग बावड़ी आदि जलाशय हिमसे आनद्ध (बरफकी पपड़ीसे बँधे) हों ॥४८॥ काक, गैंडा, महिष, मेंढे और हाथी प्रसन्न मतवाले रहें लोध, कंगुनी, जातीफल ये वृक्ष फूले हों तो उत्तम हेमन्त ऋतु होताहै ॥ ४९ ॥

शिशिर ऋतु ।

शिशिरे शीतमधिकं वातवृष्ट्याकुला दिशः ॥ शेषं हेमंतवत्सर्वं विज्ञेयं लक्षणं बुधैः ॥ ५० ॥

शिशिर ऋतुमें शीत अधिक होजाताहै और पवन और वर्षासे दिशा व्याप्त हों और शेष सब लक्षण हेमन्तऋतुकेसे होतेहैं ॥ ५० ॥

वसंत ऋतु ।

दिशो वसंते विमलाः काननैरुपशोभिताः॥किंशुकांभोजबकुलचूताशोकादिपुष्पितैः ॥ ५१ ॥ कोकिलाषट्पदगणैरुपगीता मनोहराः॥ दक्षिणानिलसंवीताः सुमुखाः पल्लवोज्ज्वलाः॥५२॥

वसंत ऋतुमें दिशा निर्मल और पलाश, कमल, मौंसिरी और आँबक पुष्पित वृक्षों सहित वन उपवनों करके शोभित होतीहैं ॥ ५१ ॥ और कोकिला तथा भौंरे मनोहर गुंजार करतेहैं और दक्षिणका पवन चलताहै और वृक्षोंके कोमल नवीन पत्ते शोभायमान होतेहैं ॥ ५२ ॥

(श्लो० ४८) "ध्वाक्षो मत्स्यात्खगे काके तर्कटे भिक्षुकेपि च। इति । पुन्नागस्तु सितोत्पले । जातीफले नरश्रेष्ठे पाडुरोगद्रुमांतरे ।" इति च मेदिनी । पद्यमिदं पूर्वेण सह युग्मम् ॥

ग्रीष्मऋतु।

ग्रीष्मे तीक्ष्णांशुरादित्यो मारुतो नैर्ऋतोऽसुखः। भूः स्तब्धा स-
रित्स्तन्व्यो दिशः प्रज्वलिता इव ॥५३॥ भ्रान्तचक्राह्वयुग-
लाः पयःपानाकुला मृगाः ॥ ध्वस्तवीरुत्तृणलता विपर्णाकित-

त कोण-
। हुईसी
प्यासके-
हैं तथा

नप्र-
।पो-
॥
हुवा रह-
मेघ बर-
।भायमान
पृथ्वी हो

इनी-
योप
: ॥
टके वृक्ष

नष्ट होजातेहैं जलसे भरे बावडी आदि प्रफुल्लित कमोदनी और नील कमलों-
से शोभित होतेहैं ॥ ५७ ॥ पृथिवी तृण सस्यसे अच्छादित और मेघ वर्षा करके
व्याप्त तथा बहुत खेती आदिसे शोभित होतीहै। बहुत नहीं गर्जकर बरसनेवाले
बादलोंसे आकाश, सूर्य तथा तारागण ढके रहतेहैं ॥ ५८ ॥

शरदृतु ।

बभ्रुरुष्णः शरद्यर्कः श्वेताभ्रविमलं नभः ॥ तथा सरांस्यंबुरुहैर्भांति हंसांसघट्टितैः ॥ ५९ ॥ पंकशुष्कद्रुमाकीर्णानिम्नोन्नतसमेषु भूः ॥ काणसप्ताह्वबंधूककासासनविराजिता ॥ ६० ॥

शरद् ऋतुमें सूर्य बभ्रु पिंगल वर्ण (पीतता लिये) और उष्ण होताहै आकाश निर्मल और कहीं सुपेद बादल होतेहैं तथा सरोवर हंसों सहित कमलोंसे शोभायमान होतेहैं ॥ ५९ ॥ नीची ऊंची और सम भूमि कीचड सूखीमिट्टी और वनस्पति सहित होतीहै भाभड (तृण) लजवंती दुपहरिया कास तथा विजेसार करके शोभित पृथ्वी होतीहै अर्थात् ये खूब होतेहैं ॥ ६० ॥

स्वगुणैरतियुक्तेषु विपरीतेषु वा पुनः ॥ विषमेष्वपि वा दोषाः कुप्यंत्यृतुषु देहिनाम् ॥ ६१ ॥

(ऊपर जो लक्षण कहे वे यथोचित श्रेष्ठ ऋतुके लक्षण होतेहैं) और यदि इनसे अधिक हों (जैसे गरमीमें बहुतही तीक्ष्णगर्मी पडे वा वर्षामें अतिवृष्टि) अथवा विपरीत (शीत ऋतुमें उष्णता, गरमीमें शीत) अथवा विषम कभी न्यून कभी अधिक हों तो इनसे मनुष्योंके शरीरमें वातआदि दोष कुपित होजातेहैं (और भयंकर रोग पीछे करतेहैं) ॥ ६१ ॥

यत्न ।

हरेद्वसन्ते श्लेष्माणं पित्तं शरदि निर्हरेत् ॥ वर्षासु शमयेद्वायुं प्राग्विकारसमुच्छ्रयात् ॥ ६२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

वसन्त ऋतुमें कफकी शांति करनी चाहिये और शरद् ऋतुमें पित्तकी शांति तथा वर्षा (प्रावृट्) में वायुकी शांति करनी श्रेष्ठ है । जबतक कि पूर्वसंचित दोषोंसे कुछ विकार (रोग) न उठै उससे पहिलेही उसकी शांति करदेनी चाहिये ॥ ६२ ॥

परिशिष्ट ।

ऋतुवोंकी प्रकृति (स्वभाव) भा. प्र. ।

(श्लो०) हेमंतः शीतलः स्निग्धः स्वादुर्जठरवह्निकृत् ॥ शिशिरः शीतलोतीव रूक्षो वातविवर्द्धनः ॥ १ ॥ वसंतो मधुरः स्निग्धः श्लेष्मवृद्धिकरश्च सः ॥ ग्रीष्मो रूक्षोतिकटुकः पित्तकृत्कफनाशनः ॥ २ ॥ वर्षाः शीता विदाहिन्यो वह्निमांद्यानिलप्रदाः ॥ शरदुष्णा पित्तकर्त्री नृणां मध्यबलावहा ॥ ३ ॥

(अर्थ)-हेमन्तऋतु शीतल चिकनी रसोंमें स्वादु पैदाकरनेवाली और जठराग्नि तेज करनेवाली होतीहै। शिशिर अत्यन्त शीतल और रूक्ष (शुष्क) तथा वायु (रोगों) को बढानेवाली होती है ॥ १ ॥ वसन्तऋतु मधुर चिकनी और कफ बढाने (और कोप करने) वाली, ग्रीष्म रूक्ष (शुष्क) और कटुक (तीक्ष्ण) पित्त (गरमी) पैदा करनेवाली और कफनाशक है ॥ २ ॥ वर्षा शीतल और दाह पैदा करनेवाली और जठराग्निको मंद करने और वायु पैदा (तथा कोप) करनेवाली है। शरद् ऋतु गरम पित्तको पैदा (और कोप) करनेवाली और मनुष्योंको मध्यबल देनेवाली है ॥ ३ ॥

ऋतुओंके पथ्य और अपथ्य।

(श्लो०) ग्रीष्मेसेव्यंदिवास्वापं स्निग्धंवातघ्नशीतलम्॥त्यजेद्धर्मोष्णकटुकश्रमरूक्षातिमैथुनान्॥ १ ॥ सेव्यंवर्षासुकौपांभःशयनंचोपरिस्थले ॥ लघ्वन्नाम्लविदाहघ्नंत्यजेच्छीतातिपैत्तिकान्॥ २ ॥इक्षवःशालयोमुद्गाःसरोंभश्चंद्रिकासिता ॥ पथ्यान्येतानिशरदि श्रमात्युष्णातपांस्त्यजेत् ॥ ३ ॥ हिमेप्रशस्तमभ्यंगश्रमस्निग्धोष्णभोजनम् ॥ तुषारहिमरूक्षान्नं त्याज्यंतुशिशिरेतथा ॥ ४ ॥ वसंतेमाक्षिकंमद्यं कांताजागरणंनिशि ॥ भजेत्कफघ्नं नात्युष्णं त्यजेद्दधिगुडामिषम् ॥ ५ ॥

ग्रीष्मऋतुमें (थोडा) दिनका सोना हित है तथा वायुनाशक शीतल स्निग्ध खानपान उचित है तथा धूप उष्ण पदार्थ कटु (चरपरा) रस परिश्रम और अति मैथुन ये वर्जित हैं ॥१॥ वर्षा ऋतुमें कूपका (ताजा) पानी, ऊपरके स्थानोंमें सोना, हलका भोजन, कुछ अम्लरस, विदाहके नाश करनेवाले पदार्थ हित हैं और शीत (ठंढ ठंढी पवन ओस आदि) अतिपित्तकारक आहार विहार उचित नहीं ॥ २ ॥ (और प्रावृट्में भी इसीके अनुसार समझो) शरद् ऋतुम इक्षु=पौंडा, चावल, मूंग, सरोवरका स्वच्छ जल, चंद्रमाकी चांदनी, खांड, मिश्री ये पथ्य अर्थात् हितकारकहैं और परिश्रम अति गरम पित्तकारक पदार्थ धूप अग्नि ताप ये अपथ्य अर्थात् त्यागने उचित हैं ॥ ३ ॥ हेमंत ऋतुमें तेलाभ्यंग, श्रम, तरगरम भोजन हितकारक हैं तुषार (बरफ) ठंढे पदार्थ, रूखा अन्न वर्जित हैं और हेमंत ऋतुके समानही शिशिर ऋतुके पथ्य और अपथ्य हैं ॥ ४ ॥ वसंतऋतुमें शहत (थोडा) मद्यपान, स्त्रीसंग, रात्रि जागरण जो अति उष्ण न हो ऐसे कफनाशक पदार्थ हितकारक हैं और दही, गुड, मांस आदि कफकारक वस्तु वर्जित हैं ॥ ५ ॥

देशांतरीय (यूनानी अंग्रेजी) ऋतुविभाग।

ऋतुविभाग सूर्यकी किरणोंके आधीनहै इससे समस्त पृथ्वीपर सब देशोंमें एक समय एकभांतिहि ऋतु नहीं होती जैसे-विषुवत् रेखाके देशोंमें (जहां मेष और तुलाके

सायन सूर्य अथात् मीन और कन्याके दश अंश गयेपर मध्याह्नमें शंकुसे सूर्यकी छाया न हो इन्हें संस्कृतमें निरक्षदेश कहतेहैं वहां) एकवर्षमें प्रायः आठऋतु होती हैं और यहांसे उत्तर तथा दक्षिणमें जितनी २ दूर अधिकहो ऋतु कम होंगी यहां तक कि, पृथ्वीके केंद्रों (उत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुवों) पर और उनके निकटके देशोंमें दोही ऋतु होतीहैं इसी युक्तिसे यूनान और इंगलिस्तानमें एकवर्षमें चार ऋतु होतीहैं। यूनानीके अरबी फारसी अनुवादमें यूं लिखाहै कि चार ऋतु इसप्रकार होतीहैं कि (रबीअ)(खरीफ) (सैफ) (शता) इनमेंसे रबीअ मेष, वृष और मिथुनकी संक्रांतिमें होताहै उसके पीछे कर्क, सिंह और कन्याकी संक्रांति सैफ मोसम गरमा होताहै। फिर तुला, वृश्चिक, धनुषकी संक्रांति खरीफ (मोसम खिजां) और मकर कुंभ और मीनकी संक्रांति शता(मोसम सरमा) होताहै। और डाक्टर लोग अंग्रेजी इंगलिस्तानी ऋतुविभागके अनुसार इसप्रकार मानतेहैं कि मार्च अप्रेल और मई ये तीन महीने स्प्रिंग (Spring) मोसम बहार कहलाते हैं और जून जौलाई अगस्तको समर (Summer.)मोसम गरम कहतेहैं तथा सितम्बर अकटूबर नवंबरको आटम (Autmn) मोसम खिजां कहते हैं और दिसम्बर जनवरी फरवरी, कोभी विन्टर(Winter) मोसम शरद् कहते हैं। उनदेशोंमें वर्षाऋतु पृथक् नहीं कही है। यद्यपि उन मुल्कोंमें उक्त चारऋतु हैं तथापि हमारे भरतखण्डमें प्रत्यक्ष तीन मोसम शरदी, गरमी, बरसात और छः ऋतु होतेहैं। जिनमें शरदी और गरमीकी संधि वसन्त, और गरमी बरसातकी संधि प्रावृट् तथा बरसात सरदीकी संधि शरद् ऋतु समझो इससे यहां उन देशोंका अनुसरण उचित नहीं ॥

इति प० मुरलीधरशर्म वि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथातो यंत्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे यंत्रविधि अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

यन्त्रशतमेकोत्तरमत्र हस्तमेव प्रधानतमं यंत्राणामवगच्छ ॥१॥ किं कारणम् । तस्माद्धस्तादृते यंत्राणामप्रवृत्तिरेव तदधीनत्वाद्यंत्रकर्मणाम् ॥२॥ तत्र मनःशरीराबाधकराणि शल्यानि तेषामपहरणोपायो यन्त्राणि ॥ ३ ॥

यंत्र (औजार) एकसौ एक प्रकारके होतेहैं परंच इस यंत्रके काममें हाथ (की सफाई) ही प्रधानहै इससे हाथकी सफाईका अभ्यास करना चाहिये ॥१॥

(सूत्र १) हस्तमवगच्छेति साभ्यासो हस्तः कर्तव्य इति ॥

क्योंकि हाथ (के अभ्यास और सफाई) के विना यंत्रोंकी प्रवृत्ति(वरतावमें लाना) असंभव है इसलिये कि यंत्रकर्म हाथहीके आधीन है ॥ २ ॥ मन और शरीरको बाधा करनेवाले जो शल्य होतेहैं उनके निकालनेका उपाय यंत्र कहलातेहैं ॥ ३ ॥

तानि षट्प्रकाराणि तद्यथा--स्वस्तिकयंत्राणि संदंशयंत्राणि तालयंत्राणि नाडीयंत्राणि शलाकायंत्राणि उपयंत्राणि चेति॥४॥

वे यंत्र छः प्रकारके होतेहैं जैसे १ स्वस्तिकयंत्र, २ संदंशयंत्र, ३ तालयंत्र, ४ नाडीयंत्र, ५ शलाकायंत्र, ६ उपयंत्र ॥ ४ ॥

तत्र चतुर्विंशतिः स्वस्तिकयंत्राणि । द्वे संदंशयंत्रे द्वे एकतालयंत्रे । विंशतिर्नाड्यः । अष्टाविंशतिः शलाकाः । पंचविंशतिरुपयंत्राणि ॥ ५ ॥

उनमेंसे स्वस्तिकयंत्र चौवीस प्रकारके होतेहैं और संदंश यंत्र दो प्रकार के तथा एकतालयंत्र भी दोप्रकारके होतेहैं । और नाडीयंत्र बीसप्रकारके और शलाकायंत्र (सलाई) के अट्ठाईसप्रकारके और उपयंत्र पचीस प्रकारके होतेहैं ॥५॥

तानि प्रायशो लौहानि भवंति तत्प्रतिरूपकाणि वा तदलाभे॥६॥

वे सब प्रायः लोहेके होने चाहिये यदि उत्तम लोह न हो तो उसके प्रतिरूपक किसी अन्य पदार्थके होने चाहिये ॥ ६ ॥

तत्र नानाप्रकाराणां व्यालानां मृगपक्षिणां मुखैर्मुखानि यंत्राणां प्रायशः सदृशानि तस्मात्तत्सारूप्यादागमादुपदेशादन्ययंत्रदर्शनाद्युक्तितश्च कारयेत् ॥ ७ ॥

तिसमें अनेक प्रकारके हिंसक जीवों तथा मृग पक्षी इनके मुखके तुल्य मुखवाले तथा और (पहले बनेहुए) यंत्रोंके समान यंत्र होने चाहिये । इससे उक्त जंतुवोंके मुखकी सारूप्यतासे शास्त्रके प्रमाणसे शिष्ट वैद्योंके उपदेशसे तथा अन्ययंत्र (जो पहलेके बने किसी शिष्टवैद्यके पासहों उन्हे) देखकर तथा युक्तिके अनुसार यंत्र बनवाने चाहिये ॥ ७ ॥

समाहितानि यंत्राणि खरश्लक्ष्णमुखानि च ॥ सुदृढानि सुरूपाणि सुग्रहाणि च कारयेत् ॥ ८ ॥

सब यंत्र समाहित ठीक और पैने बारीक मुखवाले मजबूत और सुंदर तथा सुग्रह (जिसकी पकड अच्छीहो) अथवा सुगृह (जिन्हें रखनेको अच्छे बाक्स आदि हों) ऐसे बनवाने चाहिये ॥ ८ ॥

(१) स्वस्तिक यंत्र ।

तत्र स्वस्तिकयंत्राण्यष्टादशांगुलप्रमाणानि सिंहव्याघ्रवृकतरक्ष्वृक्षद्वीपिमार्जारशृगालमृगैर्वारुककाककंककुररचाषभासशशघात्युलूकचिल्लिश्येनगृध्रक्रौंचभृंगराजांजलिकर्णावभंजननंदिमुखमुखानि मसूराकृतिभिः कीलैरवबद्धानि मूलेङ्कुशवदावृतवारंगाण्यस्थिविनष्टशल्योद्धरणार्थमुपदिश्यंते ॥ ९ ॥

उनमें स्वस्तिक यंत्र अठारह अंगुल प्रमाणके सिंह, (बाघ) भेडिया, तरक्षु (तिरखू) रीछ, द्वीपि (गैंडा), बिलाव, गीदड, हिरण, ऐर्वारुक (टोडकाग), काक, कंक (नंजा), कुरर (टिटिहिरी), चास (बहरी), भास (गोसमूहमें रहनेवाला गृध्र पक्षी),शशघाती (बाज),उलूक, चील,शिकरा, गीध, क्रौंच (कुंज), भृंगराज,वया पत्राटि, खंजन,नंदी इनके मुखसमान मुखवाले और मसूरके समान कीलसे बीचमें दोनोंखंड जुडे हुए जडमेंसे अंकुशके समान गोल पकडनेकी जगहसे होने चाहिये। ये (स्वस्तिकयंत्र अनेकप्रकारके जंबूर) हड्डी और हड्डीके भीतरकी वस्तु वा गहरे घावकी वस्तु निकालनेके लिये (पकडकर खींचलेनेके लिये) होते हैं ॥ ९ ॥

(ये सब प्रकारके यंत्र इस ग्रंथके आरभमे क्रमसे दिये है उनकी आकृतियां क्रम २ से देखलेना)॥

(२) संदंश यंत्र ।

सनिग्रहोऽनिग्रहश्च संदंशौ षोडशांगुलौ ॥ भवतस्त्वङ्मांससिरास्नायुगतशल्योद्धरणार्थमुपदिश्यते ॥ १० ॥

संदंश (चिमटे या सुहानी) दो प्रकारके होते हैं । एक सनिग्रह (जिसमें पकडके लिये कडी या कील लगीहो) दूसरा अनिग्रह (जिसमें पकडके लिये कुछ नहो) ये प्रायः सोलह अंगुलके होतेहैं और ये त्वचा मांस और बारीक तथा मोटी नसोंमेंसे कांटा आदि तथा अन्य वस्तु निकालने (उखाडने पकडकर खींचलेने) के काममें आतेहैं ॥ १० ॥

(सूत्र ९) स्वस्तिकयत्र–सिंडासीति ख्यात जबूर इति च । तरक्षुः-मृगादनः क्षुद्रव्याघ्रः । कंकः— सूक्ष्मतुंडः काकाकारः पक्षी । भृंगराजः—पीतवर्णचटकः । अजलिः पत्राटिः वालमूषिका च । कर्णावभंजनः- श्वेतचटकः । नदी वृषः तेषा मुखाकृतीनि मुखानि येषां तानि स्वस्तिकयत्राणि कारयेत् । मुखाकारेण यंत्रमुखेषु सूक्ष्मतास्थूलताणुत्वमहत्वमिति प्रयोजनम् । वारग ग्रहणस्थानम् ॥

(सूत्र १०) सनिबधनो निर्निबधनश्च षोडशागुलौ सदशौ द्वौ भवत', तथान्यः संदंशः षडगुलोर्द्धांगुलविस्तृतोवक्रद्विबाहुरगुष्ठांगुलिप्रातसमागमाकृतिः सूक्ष्मशल्याक्षिपक्ष्मव्रणाधिमासाहरणे । तद्वच्च मुचुंडी, सा च ऋजुश्लक्ष्णासूक्ष्मदतासक्तद्विभुजा मूले रुचकनद्धा इति (वृद्धवाग्भटः)। मुचुडी नकचूटी इति लोके ;

(३) तालयंत्र ।

तालयंत्रे द्वादशांगुले मत्स्यतालुवदेकतालद्वितालके कर्णनासानाडीशल्यानामाहरणार्थम् ॥ ११ ॥

तालयंत्रभी दोही प्रकारके और बारह अंगुलके होतेहैं । मछलीके तालुके समान आकृतिवाले एकताल और द्वितास ऐसे दो प्रकारके होतेहैं और ये तालयंत्र कान, नासिका, नाडी इनमेंसे शल्यनिकालनेके काममें आतेहैं ॥ ११ ॥

(४) नाडीयंत्र ।

नाडीयंत्राण्यनेकप्रकाराण्यनेकप्रयोजनान्येकतोमुखान्युभयतोमुखानि च तानि स्रोतोगतशल्योद्धरणार्थं रोगदर्शनार्थमाचूषणार्थं क्रियासौकर्यार्थञ्चेति तानि स्रोतोद्वारपरिणाहानि यथायोगपरिणाहदीर्घाणि च ॥ १२ ॥

नाडीयंत्र अनेक प्रकारके होतेहैं और अनेक कामोंमें आतेहैं उनमेंसे कई एक मुखवाले और कई दो मुख (तथा अधिकमुख) वाले होतेहैं । (एकमुखसे प्रयोजन एक तरफ मुख और दोनों मुखोंसे दोनों तरफ मुख अर्थात् छिद्र या खुला है) ये नाडीयंत्र (नाली) स्रोत अर्थात् इंद्रियद्वारों (तथा संधियों) के शल्य निवृत्त करने (निकालने) के काममें आतेहैं । ये नाडी (थोथीनली) कर्ण आदि इंद्रियोंके छिद्रमें ठीक प्रवेश करने योग्य और यथोचित प्रवेश करने योग्य लंबी होनी चाहिये । और एक प्रकारके नाडीयंत्र रोगके देखने परीक्षा करनेके काममेंभी आतेहैं तथा आचूषण (दुष्टविषयुक्त रक्त आदि तथा दूषित दुग्ध आदि चूसने और दुष्टवायुके खेंचने निकालने आदि) केभी काममें आतेहैं और क्रियाकी सुगमताके काम भी आतेहैं ॥ १२ ॥

भगंदरार्शोऽर्बुदव्रणवस्त्युत्तरवास्तिमूत्रवृद्धिदकोदरधूमनिरुद्धप्रकाशसन्निरुद्धगुदयंत्राण्यलाबूशृंगयंत्राणि चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः१३॥

(सूत्र ११) मत्स्यतालुवदित्यत्र मत्स्यतालवदिति वा पाठः । तालशब्देन प्रदेश उच्यते । तेन एकतालमेकप्रदेशो यस्य तदेकतालम्, द्वे ताले प्रदेशौ यस्य तद्द्वितालकमिति (वृद्धवाग्भटः) । (सूत्र १२) परिणाहस्तु कर्णादिप्रवेशी ज्ञेय इति (हेमाद्रिः) । कंठशल्यदर्शनार्थं नाडीदशांगुलायतां पंचांगुलपरिणाहाम् ॥

(सूत्र १३) अर्शोयंत्र त्रिविधम्-तद्गोस्तनाकारं चतुरंगुलायतं हस्ततलायतमेकं पंचांगुलानि परिणाहेन पुंसां षडंगुलानि स्त्रीणां द्विच्छिद्रं दर्शनार्थमेकच्छिद्र कर्माणि च्छिद्रं तु त्र्यंगुलायतमंगुष्ठोदरविस्तारं यदंगुलमवशिष्टं तस्याधोऽर्द्धांगुलमुपरि तथार्द्धांगुलोच्छ्रितोद्धृतकार्णिकं तृतीय तु तादृशमेव शम्याख्यं पार्श्वच्छिद्ररहितं पीडनार्थमिति । भगंदरे तु च्छिद्रादूर्ध्वमोष्ठमपनीय कुर्वीत अन्यानि स्वविषये बोद्धव्यानि । (वृद्धवाग्भटः) ।

भगंदरयंत्र, अर्शआहरणयंत्र, अर्बुदयंत्र, व्रणबस्ति, उत्तरबस्ति, मूत्रवृद्धिस्त्रावण, जलोदरस्त्रावण, धूमनिरुद्धप्रकाशक, संनिरुद्धगुद ये सब यंत्र तथा तोंबा (गिलास) और शृंग (सींगीयंत्र) ये सब उपरोक्त नाडीयंत्रके ही भेदमेंसे हैं इन्हें हम अगाड़ी वर्णन करेंगे ॥ १३ ॥

(५) शलाकायंत्र ।

शलाकायंत्राण्यपि नानाप्रकाराणि नानाप्रयोजनानि यथा-योगपरिणाहदीर्घाणि च तेषां गंडूपदशरपुंखसर्पफणबडिश-मुखे द्वे द्वे एषणव्यूहनचालनाऽऽहरणार्थमुपदिश्यंते ॥ १४ ॥

शलाकायंत्र (सलाइयां) भी नानाप्रकारके होतेहैं और अनेक कामोंमें आते हैं और जितने जहां प्रवेश करने हों उनके अनुसार लंबे होतेहैं उनमें दो दो केचुवोंके समान तुलीके समान सर्पके फणकी भाँति आगेसे कुछ मेटा-चिपटी तथा मछली पकड़नेकी बंसीके समान मुखवाली चाहिये। जो व्रणसे राध आदि वस्तु हटाने तथा ढूंटने और टहलाने तथा निकालनेके कामके होतेहैं ॥ १४ ॥

मसूरदलमात्रमुखे द्वे किंचिदानताग्रे स्त्रोतोगतशल्योद्धरणार्थम् ॥१५॥ षट् कार्पासकृतोष्णीषाणि प्रमार्जनक्रियासु॥१६॥ त्रीणि दर्व्याकृतीनि खल्लमुखानि क्षारौषधप्रणिधानार्थम् ॥ १७ ॥

और दो सलाई मसूरकी दालके समान मुखवाली और जिनकी नोक कुछ नीचेको आंकडेकी भांति मुडी हो ये कान नाक आदिका मैल या राध आदि निकालनेके काममें आती हैं ॥ १५ ॥ और छः सलाई ऐसी हों जिनकी नोकपर रुई लिपटी हो ये व्रण पोंछनेके काममें आती हैं ॥ १६ ॥ और तीन शलाका चमचेके समान नीचे मुखवाली हों ये व्रणमें क्षार तथा अन्यओषध पहुँचानेके लिये होतीहैं ॥ १७॥

त्रीण्यन्यानि जाम्बववदनानि त्रीण्यंकुशवदनानि षट् वा-ग्निकर्मस्वभिप्रेतानि ॥ १८ ॥ नासार्बुदहरणार्थमेकं कोलास्थि-

---

(सूत्र १४) तेषामेषणकर्मणी द्वे गंडूपदमुखे तथा चालनार्थे दशद्वादशांगुली शरपुंखमुखौ व्यूहनक्रियौ द्वादशषोडशांगुली द्वावहिफणामुखौ आहरणार्थे बडिशमुखौ तत्र चालनव्यूहनाहरणार्थाः षट् शंकव इति (वृद्धवाग्भटः)। तथा च गर्भशंकुः शंकुतुल्योऽष्टांगुलः प्रणताग्रो मूढगर्भाहरणे-तथा सर्पफणाग्रवदेकाग्रवक्रं तदाख्यमश्मर्याहरणार्थम् । तथा दंतनिर्घातनं चतुरंगुलं शरपुंखमुखं स्थूलवृत्तप्रांतं वृद्धवाग्भटोक्तं परिशिष्टमिति । (सूत्र१८) जाम्बवस्य वदनमिव वदनमेषां तानि जाम्बवस्य सूक्ष्ममुखाकारमुखानीति अंकुशवदनानि वक्राणि ।

दलमात्रमुखं खल्लतीक्ष्णोष्ठम् ॥ १९॥ अंजनार्थमेकं कलायप-
रिमंडलमुभयतो मुकुलाग्रम् ॥ २० ॥ मूत्रमार्गविशोधनार्थमे-
कं मालतीपुष्पवृंताग्रप्रमाणपरिमंडलमिति ॥ २१ ॥

तीन शलाका जामुनफलके मुखके समान मुखवाली और तीन अंकुशके समान मुखवाली हों । ये छहों शलाकायंत्र अग्निकर्ममें उपयोगी होतीहैं ॥ १८ ॥ और नासार्बुद (नासिकामें जो मांस आदि बढकर रसोली हो उस) के दूर करनेको एक यंत्र ऐसा चाहिये जो छोटे बेरकी ठीक आधी गुठलीके तुल्य मुखवाला हो और खाली तथा जिसके किनारे तीक्ष्ण (पैने) हों ॥ १९ ॥ और नेत्रोंमें अंजन आदि डालनेके लिये मटरके समान गोल मोटी बीचमेंसे कुछ स्थूल और दोनों अग्र (गावदुम) कुछ पतले स्वच्छ साफ हों ऐसी सलाई चाहिये ॥ २० ॥ मूत्रमार्गके शोधन करनेको मालतीके पुष्पके समान साफ गोल अग्रभागवाली तथा सबकी सब साफ हो ऐसी शलाका चाहिये ॥ २१ ॥

उपयंत्र ।

उपयंत्राण्यपि रज्जुवेणिकापट्टचर्मान्तर्वल्कललतावस्त्राष्ठीला-
ऽश्ममुद्गरपाणिपादतलांगुलिजिह्वादन्तनखमुखबालाश्वकंटक-
शाखाष्ठीवनप्रवाहनहर्षायस्कांतमयानि क्षाराग्निभेषजानि
चेति ॥ २२ ॥

उपयंत्र अर्थात् काम पडनेपर कई जगह यंत्रका काम देनेवाले पदार्थ अथवा यंत्रक्रियामें सहायक वस्तु जैसे रस्सी, तिलडायाहुवा सूत, रेशम, चमडा, वृक्षोंके भीतरका बकला, वेल, वस्त्र, ठेकरी, पत्थर, काठकी मोगरी या हथोडी हाथ, पाँव, हथेली, अंगुली, जिह्वा, दांत, नाखून, मुह, बाल और कांटा (पिन), वृक्षोंकी शाखा, थूक और कुन्थी प्रवाहन (किनछना जोर लगाना) हर्ष, कांतलोह तथा भय और क्षार (खार या तेजाब) तथा अग्नि और भेषज (प्रक्षालनादिके अर्थ काथादि तथा रोपणार्थ मरहम आदि यथायोग्य औषध) इनके अतिरिक्त और जहां जिस पदार्थका काम पडे वे सब उपयंत्र कहलातेहैं ॥ २२ ॥

एतानि देहे सर्वस्मिन्देहस्यावयवे तथा ॥ सन्धौ कोष्ठे धम-
न्यां च यथायोगं प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥

इन सब यंत्रों उपयंत्रोंको देहमें तथा शरीरके किसी विभागमें संधि, कोष्ठ और धमनियोंमें जहां जहां जिस जिससे कार्य सिद्ध हो वहां २ उस२का उपयोग

करे । (जैसे नख और दांतसे कांटा और जिह्वासे आंखका कुणक निकालना मुँहसे फूक देना इत्यादि) ॥ २३ ॥

यंत्रकर्माणि तु निर्घातनपूरणबंधनव्यूहनवर्तनचालनविवर्तनविवर्णपीडनमार्गविशोधनविकर्षणाहरणाऽऽच्छन्नोन्नमनविनमनभंजनोन्मथनाचूषणैषणदारणर्जुकरणप्रक्षालनप्रधमनप्रमार्जनानि चतुर्विंशतिः ॥ २४ ॥

यंत्रोंके कार्य प्रायः चौबीस प्रकारके हैं (१) निर्घातन (व्रणकी राध आदिको इधर उधर फैलाना) (२), पूरण (नेत्रों तथा व्रणादिमें तैलादि औषधको पहुंचाना), (३) बंधन (रस्सी सूत वस्त्र आदिसे बांधना), (४) व्यूहन (इकट्ठा करना समेटकर निकालना), (५) वर्तन (फटेहुए व्रणको समान करना), (६) चालन (चलायमान करना) (७) विवर्तन (वायु या दुष्टमलादि निकालनेको वायु या अन्य औषधादि भरना), (८)विवरण(घावके मुहको खोल देना), (९)पीडन(राध पीपादि निकालनेकेलिये अंगुलीआदिसे सूतना दबाना), (१०)मार्गविशोधन (मूत्र आदिके मार्ग तथा घावसे राधआदि निकलनेके मार्गको शोधन करना)(११) विकर्षण (व्रणआदिके दुष्टपदार्थको खेंचलेना),(१२)आहरण(व्रणसे मलबाहर निकालना),(१३) आच्छन्न(व्रणका मुह सकोडना), (१४) उन्नमन (ऊपरको मल लेजाना), (१५) विनमन (नीचेको मल लाना) (अथवा उन्नमन ऊपरको नवाना,विनमन नीचेको नवाना), (१६) भंजन (अलग अलग करना या मर्दन करना),(१७)उन्मथन(मथना विलोडना),(१८)आचूषण(विष वा दुष्टरक्त वा दूषित दुग्धादिको सींगीआदिसे चूसना), (१९) एषण (व्रणके दुष्टरक्त आदि जो फैलतेहों उनकी गति रोकना), (२०) दारण (व्रणके मुँहको चौडा करदेना), (२१) ऋजुकरण (वक्र अस्थि आदिको सीधा करना या कठोरको नरम करना), (२२) प्रक्षालन (निंब, त्रिफला आदिके क्काथादिसे व्रण धोना या तरडे देना), (२३) प्रधमन (नासिका, कर्ण तथा व्रणमें नलीसे कोई पिसी वस्तु फूक देना), (२४) प्रमार्जन (अंगुली या वस्त्र या रुईसे घाव पोंछना साफ करना) इसप्रकार ये २४ कर्म यंत्रोंके हैं ॥ २४ ॥

स्वबुद्ध्या चापि विभजेद्यन्त्रकर्माणि बुद्धिमान् ॥ असंख्येयविकल्पत्वाच्छल्यानामिति निश्चयः ॥ २५ ॥

शल्य, घावों और व्रणोंके असंख्य भेद हैं इस कारणसे बुद्धिमान् वैद्य अपनी बुद्धिसेभी यंत्रकर्ममें जैसा जहां उचित हो स्वयं निर्माण कर ले ॥ २५ ॥

(सूत्र २४) अत्रोपरिस्थाङ्काः संख्यासूचकाः सन्ति न त्वन्वयसूचकाः ॥

यंत्रोंके दूषण ।

तत्राऽऽतिस्थूलमसारमतिदीर्घमतिह्रस्वमग्राहिविषमग्राहि वक्रं शिथिलमत्युन्नतं मृदुकीलं मृदुमुखं मृदुपाशमिति द्वादशयंत्र-दोषाः ॥ २६ ॥

(१) अतिस्थूल (जो बहुत मोटा हो), (२) असार (निःसत्व खराब लोहसे बना हुवा), (३) अतिदीर्घ (बहुत बडा या लंबा), (४) अतिह्रस्व (बहुत छोटा या बारीक), (५) अग्राही (जो पकड न सके), (६) विषमग्राहि (कुछ पकडे कुछ न पकडे या थोडी दूरमेंसे पकडे), (७) वक्र (जिसमें बल या खम पडगया हो,जो मुडगया हो), (८) शिथिल(ढील), (९) अत्युन्नत (बहुत उभरा हुवा या बहुत ऊँचा उठा हुवा), (१०) मृदुकील (जिसकी कील ढीली हो), (११) मृदुमुख (जिसकी नोक नरम हो), (१२) मृदुपाश (जिसकी फास कडी या कील ढीली या मुलायम हो) यंत्रोंमें ये बारह दोष हैं ॥ २६ ॥

एतैर्दोषैर्विनिर्मुक्तं यंत्रमष्टादशांगुलम् ॥ प्रशस्तं भिषजा ज्ञेयं तद्धि कर्मसु योजयेत् ॥ २७ ॥

इन ऊपर लिखेहुए दोषोंसे रहित अठारह अंगुलका प्रायः यंत्र वैद्योंने श्रेष्ठ समझा है और वही सब कर्मोंमें उपयोग करना चाहिये ॥ २७ ॥

दृश्यं सिंहमुखाद्यैस्तु गूढं कंकमुखादिभिः ॥ निर्हरेत्तु शनैः शल्यं शस्त्रयुक्तिव्यपेक्षया ॥ २८ ॥ विवर्तते साध्ववगाहते च शल्यं निगृह्योद्धरते च यस्मात् ॥ यंत्रेष्वतः कंकमुखं प्रधानं स्थानेषु सर्वेष्वविकारि चैव ॥ २९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

जो शल्य (कांटा आदि या शस्त्र अस्त्रादिके टुकडे अथवा और दुष्ट वस्तु शरीरमें प्रविष्टहुई) बाहर दीखती हो उसे सिंहमुख आदि यंत्रोंसे निकालना चाहिये। और जो भीतर घुसी हो उसे कंकमुख आदि यंत्रोंसे शनैः शनैः निकाले। शस्त्रकी नियोजना करने (चीरने फाडने) की अपेक्षा यह यत्न योग्य है ॥ २८ ॥ सब यंत्रों-में कंकमुखादियंत्र प्रधान हैं क्योंकि, घावमें अच्छी तरह प्रविष्ट होतेहैं और संचार करते हैं और दुष्टवस्तुको पकडकर खेंचलातेहैं इसीसे मुख्य हैं। और सब स्थानों संधि आदि मृदुस्थानोंमेंभी विकार और क्लेशरहित कार्य सिद्ध करतेहैं ॥ २९ ॥

इति श्रीपं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

अथातः शस्त्रावचारणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे शस्त्रावचारणीय (शस्त्रोंको काममें लानेके) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

विंशतिः शस्त्राणि ॥ १ ॥ तद्यथा-मंडलाग्रकरपत्रवृद्धिपत्रनखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकाऽर्द्धधारसूचीकुशपत्राटीसुखशरारिमुखांऽतरमुखत्रिकूर्चककुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रकबडिशदंतशंकेषण्य इति ॥ २ ॥

बीसप्रकारके प्रायः शस्त्र होतेहैं ॥ १ ॥ जैसे १ मंडलाग्र, २ करपत्र, ३ वृद्धिपत्र, ४ नखशस्त्र, ५ मुद्रिका, ६ उत्पलपत्र, ७ अर्द्धधार, ८ सूची, ९ कुशपत्र १० आटीमुख, ११ शरारिमुख, १२ अंतर्मुख, १३ त्रिकूर्चक, १४ कुठारिका, १५ व्रीहिमुख, १६ आरा, १७ वेतसपत्रक, १८ बडिश, १९ दंतशंकु, २० एषणी इसप्रकार शस्त्रोंके बीस भेद हैं ॥ २ ॥

इन सब शस्त्रोंकी आकृतिया इस ग्रंथके आरभमे लिखीहै वहां देखलेना ।

शस्त्रोंके कार्य ।

तत्र मंडलाग्रकरपत्रे स्यातां छेदने लेखने च ॥ ३ ॥ वृद्धिपत्रनखशस्त्रमुद्रिकोत्पलपत्रकार्द्धधाराणि छेदने भेदने च ॥४॥ सूचीकुशपत्राटीसुखशरारिमुखांतर्मुखत्रिकूर्चकानि विस्रावणे ॥ ५ ॥ कुठारिकाव्रीहिमुखारावेतसपत्रकाणि व्यधने सूची च ॥ ६ ॥ बडिशो दन्तशंकुश्चाहरणे ॥ ७ ॥ एषण्येषणे आनु-

---

(सूत्र २) शस्त्रलक्षणम् । मंडलाग्रम्-प्रदेशिन्यंतर्नखविस्तृतफलम् । करपत्रम्-दशांगुल द्व्यंगुलविस्तार सूक्ष्मदंत खरधारमस्थिच्छेदनार्थम् ।वृद्धिपत्रम्-क्षुराकारम् । नखशस्त्रम्-अष्टांगुलसेकतोऽश्वकर्णमुखमन्यतो वत्सदतमुखं सूक्ष्मशल्योद्धृतौ । मुद्रिका-प्रदेशिनीप्रथमपर्वप्रमाणार्पणवृत्ता । उत्पलपत्रम्-कमलपत्राकारम् । अर्धधारम्-धारार्धयुतक्षुराकारम् । सूची-त्र्यंगुला द्व्यंगुला सार्द्धांगुला च धनुर्वक्रा व्रीहिमुखा। कुशपत्रम्-दर्भपत्राकारम् ।आटीमुखी-शरारिपक्षिमुखी । शरारिमुखी कर्तरी । अंतर्मुखम्-अर्द्धचन्द्राकारार्द्धांगुलफलम् । त्रिकूर्चकम्-वृत्तैकमूलमग्रे सुनिव त्रिसूचिकम् । कुठारिका-पृथुदडा गोदताकाराऽर्द्धांगुलफला । व्रीहिमुखम्-मध्यार्द्धांगुलफलम् । आरा-चतुरस्रार्द्धांगुलवृत्तमुखा । वेतसपत्रकम्-वेत्रपत्राकारम् ।बडिशः-अत्यवनतमुखः सूचीतीक्ष्णाग्रो मत्स्यग्रहणकंटकाकारः।दंतशंकुः-किञ्चिदानताग्रस्तीक्ष्णकटकः एषण्यौद्वे-तयोरेकाष्टांगुला अन्या सूचीसस्थाना क्षाराक्तसूत्रप्रतिबद्धा नाडीनां भगन्दरगतीनां च भेदने ॥ (वृद्धवाग्भटादौ)(सूत्र ५) आटिआटी आडिवा शरारिपाक्षिणि-मत्स्यभेदे च ॥ (श० स्तो० म०)

लोम्ये च ॥ ८ ॥ सूच्यः सीवने ॥ ९ ॥ इत्यष्टविधे कर्मण्युपयोगः शस्त्राणां व्याख्यातः ॥ १० ॥

इन शस्त्रोंमेंसे मंडलाग्र (छोटा दरांत) और करपत्र (आरी या छोटी करोंती) काटने और चीरनेके काममें आतीहैं ॥ ३ ॥ वृद्धिपत्र (बारीक नोकका छुरा), नखशस्त्र (नोहरना), मुद्रिका (लोहेकी बनी चुटकीसी), उत्पलपत्रक (कमलपत्रके आकार शस्त्र), अर्द्धधार (अधधारा)ये काटने और भेदन=टुकडे टुकडे करनेके काम आतेहैं ॥ ४ ॥ सूची (सुई),कुशपत्र (कुशके पत्रतुल्य सूक्ष्म नोकका शस्त्र),आटीमुख (कैंचीके फरेके तुल्य मुखवाला), शरारिमुख (कैंची) और अंतर्मुख (जो अर्द्धचंद्राकार हो और उसमें आध अंगुल नोक हो), त्रिकूर्चक (इसमें तीन या चार छोटी २ नोकें हों) ये रुधिरस्रावण आदिके काम आतेहैं॥ ५ ॥ कुठारिका (गोदंतके समान आकार आधअंगुल धारवाली और जिसमें बडी लकडी लगीहो), व्रीहिमुख (बरमा), आरा (आर), वेतसपत्रक (वेतके पत्रके समान शस्त्र) ये छिद्र करने (वींधने)के काम आतेहैं तथा सुईभी वींधनेके काम आतीहै ॥ ६ ॥ बडिश (मछली पकडनेके कांटेके समान शस्त्र), और दंतशंकु (मुडाहुवा आंकडा) ये व्रणादिसे कोई वस्तु निकालनेके काम आतेहैं ॥ ७ ॥ और एषणी (केंचुवेके मुखतुल्य आकारवाला शस्त्र) व्रणांतर्गत दुष्ट पूयादिके ढूँढने तथा अनुलोमन करनेके अर्थात् स्रवते हुवे व्रणमेंसे पीप आदि ठीक २ निकालनेके काम आता-है ॥ ८ ॥ सूची (सूई) फटेहुए कटेहुएको सीनेके काम आतीहै ॥ ९ ॥ ऐसे आठ प्रकारके कार्योंमें शस्त्रोंका उपयोग किया जाताहै ॥ १० ॥

तेषामथ यथायोगग्रहणसमासोपायः कर्मसु वक्ष्यते ॥ ११ ॥ तत्र वृद्धिपत्रं वृंतफलसाधारणे भागे गृह्णीयाद्भेदनान्येवं सर्वाणि ॥ १२ ॥

अब कार्योंमें उन शस्त्रोंको यथायोग ग्रहण करने (पकडने) का उपाय वर्णन किया जाता है ॥ ११ ॥ उनमेंसे वृद्धिपत्र (छुरे) के वृंतफल मुठिये (दस्ते) को साधारण भागमेंसे पकडना चाहिये और इसीप्रकार संपूर्ण भेदनशस्त्रोंको पकडना १२॥

वृद्धियंत्रं मंडलाग्रञ्च किंचिदुत्तानपाणिना लेखने बहुशोऽवचार्यम् ॥ वृंताग्रे विस्रावणानि ॥ १३ ॥

वृद्धियंत्र और मंडलाग्रयंत्रको लेखन (चीरने) के निमित्त कुछ ऊँचे हाथसे पकडे और कईबार चलावे और विस्रावण (रुधिरादि निकालनेके) यंत्रोंको उनके मुठिये (दस्ते) के अग्रभागमेंसे पकडना चाहिये ॥ १३ ॥

विशेषेण बालवृद्धसुकुमारभीरुनारीणां राज्ञां राजपुत्राणां च त्रिकूर्चकेन विस्रावयेत् ॥ १४ ॥

विशेषकर बालक, वृद्ध (बूढ़े), सुकुमार (नाजुक), भीरु (डरपोक) और स्त्री तथा राजा और राजकुमार इनका त्रिकूर्चक यंत्रसे रक्त निकालना चाहिये ॥ १४ ॥

तलप्रच्छादितवृंतमंगुष्ठप्रदेशिनीभ्यां व्रीहिमुखम् ॥ १५ ॥

व्रीहिमुख यंत्रको ऐसे पकड़े कि, उसकी सब मुठिया हथेलीसे ढकजाय अर्थात् मुठिया मुट्ठीमें आजाय और अँगूठे और उसके पासकी अँगुलीसे पकड़कर कार्य करे १५

कुठारिकां वामहस्तेन्यस्तामितरहस्तमध्यमांगुल्यांगुष्ठविष्टब्धयाभिहन्यात् ॥ १६ ॥ आराकरपत्रैषण्यौ मूले ॥१७॥ शेषाणि तु यथायोगं गृह्णीयात् ॥ १८ ॥

कुठारिका शस्त्रको बाँये हाथसे पकड़े और दहिने हाथके अँगूठे और बीचकी अँगुलीसे जमाकर कार्य करना चाहिये ॥ १६ ॥ आरा, करपत्र और एषणीको जड़मेंसे पकड़े ॥ १७ ॥ और शेष शस्त्रोंको जैसे काममें ठीक आवे उसी भांति पकड़कर कार्य करे ॥ १८ ॥

तेषां नामभिरेवाकृतयः प्रायेण व्याख्याताः ॥ १९ ॥ तत्र नखशस्त्रैषण्यावष्टांगुले सूच्यो वक्ष्यंते ॥ २० ॥

उन सब शस्त्रोंकी आकृति प्रायः नामोंहीमें कहदीगई हैं ॥१९॥ उनमें नखशस्त्र और एषणी आठ अंगुलके होतेहैं और सूचियों (सुइयों) को अगाड़ी वर्णनकरेंगे२०॥

वडिशो दंतशंकुश्चानताग्रे तीक्ष्णकंटकप्रथमयवपत्रमुखे ॥२१॥ एषणी गंडूपदाकारमुखी ॥ २२ ॥

वडिश और दंतशंकु आगेसे कुछ मुड़े और पैने कांटेवाले और यवके प्रथम पत्रके समान मुखवाले होतेहैं ॥ २१ ॥ और एषणी केंचुवेके आकार (मुख) वाली होती हैं ॥ २२ ॥

प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रदेशप्रमाणा मुद्रिका ॥२३॥ दशांगुला शरारिमुखी सा कर्त्तरीति कथ्यते ॥२४॥ शेषाणि तु षडंगुलानि ॥२५॥

मुद्रिका तर्जनी अंगुलीके अगले पोरवेके प्रमाण होतीहै ॥ २३ ॥ शरारिमुखी दश अंगुलकी होतीहै और उसेही कर्तरी (कैंची या कतरनी) भी कहतेहैं ॥२४॥ और शेष शस्त्र प्रायः छः अंगुलके होतेहैं ॥ २५ ॥

(सूत्र १४) रक्तमिति शेषः । रक्त विस्रावयेदित्यन्वयः ॥ (सूत्र १५) गृह्णीयादिति शेषः ॥

श्रेष्ठशस्त्र ।

तानि सुग्रहाणि सुलोहानि सुधाराणि सुरूपाणि सुसमाहितमुखाग्राण्यकरालानि चेति शस्त्रसम्पत् ॥ २६ ॥

जिन शस्त्रोंके पकड़नेके स्थान मुठिया आदि अच्छे हों अथवा उनके रखनेके स्थान अच्छे हों जिससे मैले न हों अच्छे लोहसे बनेहों, उनकी धार अच्छी हो, सुन्दर रूपवाले हों, उनके मुख तथा अग्रभाग ठीक हों तथा कराल (खरखरे) नहीं हों ये शस्त्रोंकी संपत्ति अर्थात् उत्तमता है और उपरोक्त गुणयुक्त सब शस्त्र होने चाहिये ॥ २६ ॥

दूषित शस्त्र ।

तत्र वक्रं कुंठं खंडं खरधारमतिस्थूलमत्यल्पमतिदीर्घमतिह्रस्वमित्यष्टौ शस्त्रदोषाः ॥ २७ ॥ अतो विपरीतगुणमाददीतान्यत्र करपत्रात्तद्धि खरधारमस्थिच्छेदनार्थम् ॥ २८ ॥

जिनमें बल पड़गया हो, टेढ़े होगये हों, कुंठ (मोटे जो चलते न हों), खंड (जो टूटगये हों खंडित हों), खरधार (जिनकी धार खरखरी हो), अतिस्थूल (बहुत मोटे), अत्यल्प (प्रमाणसे कम बहुत पतले), अतिदीर्घ (बहुत लंबे), अतिह्रस्व (बहुत छोटे) ये शस्त्रोंके आठ दोष हैं ॥ २७ ॥ जिनमें ये दोष नहीं, हों ऐसे शस्त्रोंको काममें लाना चाहिये परंतु करपत्र (आरी करोती) के सिवाय क्योंकि उसमें खरखराट (दांते) हड्डी काटनेके लिये होतेही हैं ॥ २८ ॥

शस्त्रोंकी धारका प्रमाण ।

तत्र धाराभेदनानां मासूरी लेखनानामर्द्धमासूरी व्यधनानां विस्रावणानां च कैशिकी छेदनानामर्द्धकैशिकीति ॥ २९ ॥

भेदनशस्त्रोंकी धार मसूरके समान होनी चाहिये और लेखन (चीरनेके) शस्त्रोंकी आधे मसूरके समान, और बींधने और रुधिर चुवानेके शस्त्रोंकी बालके तुल्य तथा काटनेके शस्त्रोंकी आधे बालके बराबर चाहिये ॥ २९ ॥

तेषां पायना त्रिविधा क्षारोदकतैलेषु तत्र क्षारपायितं शरशल्यास्थिच्छेदनेषु उदकपायितं मांसच्छेदनभेदनपाटनेषु तैलपायितं शिराव्यधनस्नायुच्छेदनेषु ॥ ३० ॥

उनकी पायना (पैनाना) धारकी रक्षा करना तीन प्रकारसे है क्षार (खार या तेजाब) से, जलसे (जल डालकर धार बनाना), तैलसे (उसे ठीक राखना) उन-

मेंसे खार या तेजाबके पैनाये हुए (रक्षाकिये) बाण शल्य और अस्थि काटनेके काममें लाने चाहिये और जलसे रक्षाकिये (पैनाये हुए) मांसके छेदन (काटने टुकड़े) करने और उपाडनेके लिये तथा तैलसे रक्षाकिये (पैनाये हुए या चुपड़े हुए) नस बांधने, बडी नस काटने आदिके काम आने चाहिये ॥ ३० ॥

तेषां निशानार्थं श्लक्ष्णशिला माषवर्णा । धारासंस्थापनार्थं शाल्मलीफलकश्चेति ॥ ३१ ॥ भवंति चात्र ॥

उनके निशान (शाणपर चढ़ाने) के लिये श्लक्ष्णशिला (साफ पथरी या मसालेकी बनी चकली) जैसी शाण चढानेवाले रखतेहैं या उडदके रंगकी पथरी चाहिये। और धार बनानेको संभलका फल चमोठेकी जगह होना चाहिये ॥ ३१ ॥ यहां श्लोक है कि–

शस्त्रधारकी परीक्षा ।

यदा सुनिशितं शस्त्रं रोमच्छेदि सुसंस्थितम् ॥ सुगृहीतं प्रमाणेन तदा कर्मसु योजयेत् ॥ ३२ ॥

जब निशान धराहुवा, पैनायाहुवा, धार बनायाहुवा, शस्त्र ऐसा हो कि, उससे ठीक बाल कटजाय (मुंडजाय) तब प्रमाणसे पकड़कर काममें लावे ॥ ३२ ॥

अनुशस्त्र ।

अनुशस्त्राणि तु त्वक्सारस्फटिककाचकुरुविंदजलौकाग्निक्षारनखगोजीशेफालिकाशाकपत्रकरिवालांगुलय इति ॥ ३३ ॥

शस्त्रोंके अभावमें या शस्त्रोंकी जगह जो थोड़ा काम देसकें उन्हें अनुशस्त्र या उपशस्त्र कहतेहैं । जैसे बांस या शर, स्फटिक, काच, कुरुविंद(बिल्लोर), जोंक, अग्नि, क्षार (खार या तेजाब), नखून, गोजी (गोजिह्वा- या सिहोरिका वृक्ष) शेफालिका, रक्तवृंता (जिसे बंगालीभाषामें सेबुली कहते हैं) तथा अन्य तीक्ष्णपत्रके शाक और पत्र पत्ते पानी आदि करिबाल हाथी आदि पशुवोंके बाल तथा अंगुली आदि ॥ ३३ ॥

अनुशस्त्रोंका वरताव ।

शिशूनां शस्त्रभीरूणां शस्त्राभावे च योजयेत् ॥ त्वक्सारादि चतुर्वर्ग छेद्ये भेद्ये च बुद्धिमान् ॥ ३४ ॥ आहार्यच्छेद्यभेद्येषु नखं शक्येषु योजयेत् ॥ विधिः प्रवक्ष्यते पश्चात्क्षारवह्निजलौकसाम् ॥ ३५ ॥

श्लो० (३२) निशितश्लक्ष्णशिलातस्तीक्ष्णीकृतम् । (सूत्र ३३) त्वचिसारोस्यासौ त्वक्सारः ॥

बालकों और शस्त्रोंसे डरनेवालोंके अथवा शस्त्र न मिलें तहां छेद्य और भेद्य कर्ममें बुद्धिमान् वैद्य त्वक्सार आदिक चार अनुशस्त्रोंको काममें लावे ॥ ३४ ॥ तथा आहार्य खेंचने और छेदन भेदन कर्मोंमें जहां पहुँचसके (शस्त्रोंके अभावमें)न खूनसे काम करले, और क्षार अग्नि तथा जलौका (जोंक) इनकी विधि अगाडी कहेंगे ॥ ३५ ॥

ये स्युर्मुखगता रोगा नेत्रवर्त्मगताश्च ये ॥ गोजीशेफालिकाशाकपत्रैर्विस्रावयेत्तु तान् ॥ ३६ ॥ एष्येष्वेषण्यभावे तु वालांगुल्यंकुरा हिताः ॥ ३७ ॥ शस्त्राण्येतानि मतिमाञ्शुद्धशैक्यायसानि तु ॥ कारयेत्करणैः प्राप्तं कर्मारं कर्मकोविदम् ॥ ३८ ॥ प्रयोगज्ञस्य वैद्यस्य सिद्धिर्भवति नित्यशः ॥ तस्मात्परिचयः कार्यः शस्त्राणामादितः सदा ॥ ३९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जो मुखमें प्राप्त हुए रोग हों अथवा नेत्रोंकी पलकोंमें हों तो गोजी, शेफालिका और शाकपत्रोंसे रुधिर आदि निकाले ॥ ३६ ॥ एष्यकर्ममें एषणीशस्त्र न मिले तो (नोकदार करडे) बाल तथा अंगुली और अंकुर इनसे काम ले ॥ ३७ ॥ इन शस्त्रोंको बुद्धिमान् वैद्य शुद्ध और तावदिये हुए अच्छे लोहके बनवावै । और करणों (उपकरण शास्त्रों)के अनुसार और कर्मकी चतुराईसे जैसे ठीक कार्य हो तैसे कार्य करे ॥ ३८ ॥ ऐसे प्रयोग जाननेवाले वैद्यको सदा सिद्धि होतीहै इस वास्ते आद्योपांत शस्त्रोंका परिचय सदा सर्वदा करना चाहिये ॥ ३९ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

अथातो योग्यासूत्रीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे योग्यासूत्रीय (शिष्यको अभ्यास करनेकी सूचना) नामक अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

अधिगतसर्वशास्त्रार्थमपि शिष्यं योग्यं कारयेत् । छेद्यादिषु स्नेहादिषु च कर्मपथमुपदिशेत् ॥ १ ॥

(श्लो० ३८–३९) करणैः ग्रन्थैः प्राप्त+कर्मारं कर्मकार×कर्मकोविद कर्मदक्ष यथा स्यात्तथा वैद्यस्य सिद्धिर्भवतीत्यन्वयः ॥ (सूत्र १) योग्योऽभ्यासः ॥ (सूत्र० ३) पुष्पफलं पुष्पयुक्तं फलमस्य तत् कपित्थम् ऐर्वारुक कर्कटकं कर्कारुः कूष्माडः ॥ (श० स्तो०)

संपूर्ण शास्त्रोंके आशय जाननेवाले शिष्यको भी अभ्यास (तजरुवा) कराना चाहिये । छेदन आदि शस्त्रकर्म और स्नेहनआदि (स्नेहपान, स्वेद, वमन, विरेचन आदि) कर्मोंका मार्ग (तरीका) सिखलावे ॥ १ ॥

सुबहुश्रुतोऽप्यकृतयोगः कर्मस्वयोग्यो भवति ॥ २ ॥

क्योंकि, बहुत शास्त्रोंका पढनेवालाभी विना अभ्यास (वेतजरुबेकार) आदमी कार्य करनेयोग्य नहीं होता ॥ २ ॥

अभ्यास करानेकी विधि ।

तत्र पुष्पफलालाबूकालिंदकपत्रपुष्पैर्वारुककर्कारुकप्रभृतिषु छेद्यविशेषान्दर्शयेत् कर्तनपरिकर्तनानि चोपदिशेत् ॥ ३ ॥

पुष्पफल (कैथ) घीया तरबूज (तूंबे आदि) में तथा (अन्य मोटे मोटे) पत्तों और फूलोंमें आरया (खीरा काकडी) और कूष्मांड (कोहले) आदिमें काटने चीरने संबंधी जितने कर्म हैं दिखावे (और सिखावे) और सीधा उलटा ऊपर नीचे जैसे (व्रण काटे जायँ) वैसे काटनेका उपदेश करे ॥ ३ ॥

दृतिवस्तिप्रसेवकप्रभृतिषूदकपंकपूर्णेषु भेद्ययोग्याम् ॥ ४ ॥ सरोम्णि चर्मण्यातते लेख्यस्य ॥ ५ ॥ मृतपशुशिरासूत्पलनालेषु च वेध्यस्य ॥ ६ ॥

दृति (खालकी मशक) या चर्मपात्र मृतपशुके मूत्रस्थान तथा तोंबे आदिमें जो जल अथवा कीचसे भरे हों भेदनक्रियाका अभ्यास करावे ॥४॥ रोम सहित फैलहुए चर्म लेखनकर्म खुरचना या चीरना सिखावे ॥ ५ ॥ मरेहुए पशुवोंकी नसों आंतों तथा कमलकी नालआदिमें वेध्यक्रिया (फस्तखोलना) वींधना आदि सिखावे ॥ ६ ॥

घुणोपहतकाष्ठवेणुनलनालीशुष्कालाबुमुखेष्वेष्यस्य ॥ ७ ॥ पनसबिंबीबिल्वफलमज्जमृतपशुदंतेष्वाहार्य्यस्य ॥ ८ ॥ मधूच्छिष्टोपलिप्ते शाल्मलीफलके विस्राव्यस्य ॥ ९ ॥ सूक्ष्मघनवस्त्रांतयोर्मृदुचर्मांतयोश्च सीव्यस्य ॥ १० ॥

घुणके खायेहुए (घुणे हुए) काष्ठमें और बांस, नरसल, नाली तथा सूखे तूंबेके मुखमें एष्यक्रिया (व्रणमें राध आदि ढूँढना) सिखावे ॥७॥ कटहल, कंदूरी, बिल्वफलके गूदेमें तथा मरेहुए पशुके दांतोंमें आहार्य (निकालना) बतलावे ॥८॥ मोम लगेहुए संभलके फलकमें विस्राव्यकर्म (रक्तआदिका झिराना) सिखलावे ॥ ९ ॥

(सूत्र ४) दृतिश्चर्मनिर्मितोदकपात्रम्-प्रसेवक वीणाप्रांतबद्धकाष्ठम् ॥

पतले तथा मोटे दो वस्त्रोंके टुकडोंमें अथवा चर्मके दो टुकडोंमें सीव्यक्रिया (सीना) सिखलावे अर्थात् कटे या फटे शरीरके घावोंमें टांके लगाने बतलावे ॥ १० ॥

पुस्तमयपुरुषांगप्रत्यंगविशेषेषु बंधनयोग्याम् ॥ ११ ॥ मृदुमांसपेशीषूत्पलनालेषु च कर्णसंधिबंधयोग्याम् ॥ १२ ॥ मृदुषु मांसखंडेष्वग्निक्षारयोग्याम् ॥ १३ ॥ उदकपूर्णघटपार्श्वस्रोतःस्वलाबुमुखादिषु नेत्रप्रणिधानवस्तिव्रणवस्तिपीडनयोग्यामिति ॥ १४ ॥ भवतश्चात्र--

कपड़े या मोम आदिका पुतला बनाकर उसमें सब अंगप्रत्यंगों (हड्डी नस आशय आदि) में जहां जिस भांति बन्धन (जोड़) हैं उनका उपदेश करे॥११॥ कोमल मांस तथा कमलकी नालमें कानकी संधिबंधोंका उपदेश करे ॥ १२ ॥ और नरम मांसके खंडोंपर तेजाब और अग्निक्रिया (दग्ध करना आदि) सिखावे॥१३॥ जलसे भरेहुए घड़ेके पेटमें थोड़ा छेद करके अथवा तोंबेके मुख आदिमें आंख (के गोले या पुतली) चढाना तथा पिचकारी वस्तिकर्म और व्रणवस्ति घावमें पिचकारी लगाना या दुष्ट राध (रक्त) आदि पिचकारीसे खेंचना, राध आदि दबाकर निकालना आदि कार्योंका अभ्यास करावे ॥ १४ ॥ यहां श्लोक कहा है कि-

एवमादिषु मेधावी योग्यार्हेषु यथाविधि ॥ द्रव्येषु योग्यां कुर्वाणो न प्रमुह्यति कर्मसु ॥ १५ ॥ तस्मात्कौशलमन्विच्छञ्शस्त्रक्षाराग्निकर्मसु ॥ यत्र यस्येह साधर्म्यं तत्र योग्यां समाचरेत् ॥१६॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इनको आदि लेकर और योग्य द्रव्योंमें विधिपूर्वक अभ्यास करनेवाला वैद्य कामके समय मोहको प्राप्त नहीं होता (नहीं घबराता या नहीं चूकता) ॥ १५ ॥ इस कारण शस्त्रकर्म और क्षारकर्म (तेजाब) तथा अग्निकर्म (डांभ आदि देना) इनमें कुशलता चाहे तो जो जिनके कुछ समान पदार्थ हैं उनमें पहले क्रियाका अभ्यास करके खूब कार्य सीखले ॥ १६ ॥

इति श्रीप०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

अथातो विशिखानुप्रवेशनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे विशिखानुप्रवेशनीय (शस्त्रोंके अनुप्रवेश करने आदि चिकित्सा कर्तव्यता) नामक अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

अधिगततंत्रेणोपासिततंत्रार्थेन दृष्टकर्मणा कृतयोग्येन शास्त्रार्थं विशदता राज्ञाऽनुज्ञातेनानीचनखरोम्णा शुचिना शुक्लवस्त्रपरिहितेन छत्रवता दण्डहस्तेन सोपानत्केनानुद्धतवेषेण सुमनसा कल्याणाभिव्यवहारेणाकुहकेन बंधुभूतेन भूतानां सुसहायवता वैद्येन विशिखाऽनुप्रवेष्टव्या ॥ १ ॥

जिसने चिकित्साशास्त्र पढलिया हो और उनका अभिप्राय भली भांति समझ लिया हो, चिकित्साकर्म खूब देखे हों और खूब अभ्यास करलिया हो और शास्त्रको समझा (पढा) सक्ता हो ऐसा वैद्य राजासे आज्ञा ले (परीक्षा देकर) अशुद्ध नखून बाल कटवाकर साफ सुपेद वस्त्र पहिनकर छाता लगा छड़ी हाथमें ले अच्छा जूता पहिन मनोहर वेष धारणकर शुद्ध मनसे निष्कपट जगत्के कल्याणकारी कार्य करताहुवा सब जीवोंको निज बन्धुके समान वरताव करताहुवा अच्छे २ सहायक रखताहुवा ऐसा जो चिकित्सक हो उसे यन्त्र शस्त्रादि चिकित्सा करनी योग्यहै ॥ १ ॥

रोगपरिज्ञान ।

ततो दूतनिमित्तशकुनमंगलानुलोम्येनातुरगृहमभिगम्योपविश्यातुरमभिपश्येत् स्पृशेत् पृच्छेच्च ॥२॥ त्रिभिरेतैर्विज्ञानोपायै रोगाः प्रायशो वेदितव्या इत्येके ॥३॥ तत्तु न सम्यक् ॥४॥

फिर जो रोगीके यहांसे बुलाने (खबरदेने) आवे उसके निमित्त शुभशकुन (स्वरादिक तथा कैसे शब्द बोला इत्यादि) और मंगल (संपूर्ण कलशआदि) देखकर उनकी अनुकूलतासे रोगीके घर जावे और स्वस्थ बैठकर उसे अच्छीतरहसे देखे और हस्तादिसे स्पर्श करे और व्याधिका वृत्तांत पूंछे ॥ २ ॥ कई आचार्योंका मत है कि, इन्ही तीनो रोग जाननेके उपायोंसे प्रायः सब रोग (और उनके लक्षण भेदादि निदान) जानने योग्य हैं ॥ ३ ॥ परंतु यह ठीक नहीं ॥ ४ ॥ (क्योंकि)

षड्विधो हि रोगाणां विज्ञानोपायः ॥ ५ ॥ तद्यथा--पंचभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति ॥ ६ ॥

रोगोंके विज्ञान (जानने) के उपाय छः प्रकारसे हैं ॥५॥ वे इस भांति कि कर्ण आदिक पांचों इंद्रियों (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और घ्राण इन ज्ञान इंद्रियों) से तथा प्रश्नसे ॥ ६ ॥

(सूत्र १) विशिखो बाणे तोमरे शस्त्रभेदे नालिकायां च स्त्री । कृता योग्या अभ्यासक्रिया येन स कृतयोग्यस्तेन । कुहक कापट्यं तेन रहितेन अकुहकेनेति—अधिगततंत्रेणेत्यादि विशेषण विशिष्टेन वैद्येन विशिखा अनुप्रवेष्टव्या इत्यन्वयः । विशिखानुप्रवेशनीय सर्जरी (Surgeory.) इति ॥

कर्ण इंद्रियसे जानने योग्य रोग।

तत्र श्रोत्रेन्द्रियविज्ञेया विशेषा व्रणस्त्रावविज्ञानीयादिषु वक्ष्यंते सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छतीत्येवमादयः॥७॥

उनमेसे कर्ण इन्द्रिय (कान) से सुनकर जानने योग्य रोगविशेष जैसे बुद्बुदों-सहित रक्तको कंपित करताहुवा शब्दयुक्त वायु निकलताहुवा, घावमें फिरताहुवा सुनना (कफके खर्राटे डकार अपानादिके शब्द) आदि कर्णेंद्रियविज्ञेय रोगोंका वर्णन विशेष व्रणस्त्रावविज्ञानीय अध्यायमें होगा ॥ ७ ॥

स्पर्शविज्ञान।

स्पर्शनेंद्रियविज्ञेयाः शीतोष्णश्लक्ष्णकर्कशमृदुकठिनत्वादयो ज्वरशोफादिषु ॥ ८ ॥

स्पर्शन इन्द्रिय (त्वचा) से छूकर जाननेयोग्य ठंढा, गरम, चिकना, खरखरा, करडा, नरम आदि तप तथा सोजे आदिमें जानना ॥ ८ ॥

नेत्रोंसे जाननेयोग्य रोग।

चक्षुरिंद्रियविज्ञेयाः शरीरोपचयापचयायुर्लक्षणबलवर्णविकारादयः ॥ ९ ॥

नेत्रोंसे देखकर जाननेयोग्य ये रोगविशेष हैं कि, शरीरका मोटा, पतलापन और आयुके लक्षण नाककी डंडी आदि और साध्य असाध्य तथा बल और वर्ण रंग जैसे कफ ज्वरमें श्वेतनेत्र, पांडुमें त्वचाका पीलापन तथा आकृतिआदि बिगडजाना ॥ ९ ॥

रसनाविज्ञान।

रसनेंद्रियविज्ञेयाः प्रमेहादिषु रसविशेषाः ॥ १० ॥

रसना इंद्रियसे जाननेयोग्य प्रमेह आदि रोगोंमें मूत्रादिका रस जैसे चैंटी लगें तो मधुर इत्यादि (तथा कासमें कफ और रक्तपित्तमें रुधिरादिको रोगीसे पूछे कि, कैसा स्वाद है या मुहका स्वाद कैसा है इत्यादि रसनासे जाननेयोग्य हैं) ॥ १० ॥

घ्राणविज्ञान।

घ्राणेंद्रियविज्ञेया अरिष्टलिंगादिषु व्रणानामव्रणानां च गंधविशेषाः ॥ ११ ॥

घ्राण इंद्रियसे (सूँघकर या सुगंध दुर्गंध आनेसे) जाननेयोग्य अरिष्ट लिंग आदि व्याधियोंमें और घावों तथा बेघावों शरीर और मलमूत्र आदिकी गंध दुर्गंध आदि ॥ ११ ॥

प्रश्नविज्ञान ।

प्रश्नेन च विजानीयाद्देशं कालं जातिं सात्म्यमातंकसमुत्पत्तिं वेदनासमुच्छ्रायं बलं दीप्ताग्नितां वातमूत्रपुरीषरजसां प्रवृत्त्यप्रवृत्ती कालप्रकर्षादींश्च विशेषान् ॥ १२ ॥

प्रश्नसे पूंछकर इन बातोंको जाने, देश-कहां रहते हो, कहां सोया करते हो छायामें या बाहर इत्यादि। काल-किस समय क्या हाल रहता है।जाति (संप्राप्ति)जिस प्रकार दुष्टदोष करके या जिस अनुगत दोषसे रोगकी उत्पत्ति हो अर्थात् कैसा आहार विहार किया जिससे रोगकी उत्पत्ति हुई । सात्म्य-कैसे आहार विहारसे चैन होताहै। आतंकसमुत्पत्ति-रोगकी उत्पत्ति और दर्दका बढना घटना । तथा बल कितना है उठ सकतेहो या नहीं इत्यादि ।अग्नि दीप्त है या मंदाग्नि । तथा अपानवायु मूत्र मल तथा स्त्री हो तो मासिकरक्तकी प्रवृत्ति ठीक २ होती है या नहीं । वायु सरता है या कम । मूत्र ठीक २ उतरता है या कृच्छ्रतासे । दस्त; कम होताहै या ज्यादा या कबजीयत है इत्यादि । कालप्रकर्ष-कबसे कितने दिनसे बीमारी हुई और कबसे बढी है इत्यादिक सब बातें पूंछना चाहिये ॥ १२ ॥

आत्मसदृशेषु विज्ञानाभ्युपायेषु तत्स्थानीयैर्जानीयात् ॥ १३ ॥

इनके सिवाय जैसे अपनी समझमें आवे वैसे विज्ञानके उपायोंमेंसे रोगी आर रोगीके स्थानमें रहनेवाले लोगोंसे पूंछकर समझले (और खूब विचार ले) ॥१३॥

भवति चात्र ॥ मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्यातास्तथैव च ॥ तथा दुःपरिमृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकम् ॥ १४ ॥

इसपर लिखा है कि, जिस रोगकी परीक्षा ठीक न हुई हो, या विपरीतभावसे देखा गया हो, या विपरीतभावसे वैद्यके सामने बताया गया हो, या जो ठीक समझमें नहीं आया हो ऐसे रोग वैद्यको मोहित करते हैं (वैद्यकी बुद्धिमें भ्रम डाल देतेहै और फिर चिकित्सा ठीक २ नहीं होसकती) ॥ १४ ॥

एवमभिसमीक्ष्य साध्यान्साधयेद्याप्यान्यापयेदसाध्यान्नोपक्रमेत्परिसंवत्सरोत्थितांश्च विकारान्प्रायशो वर्जयेत् ॥ १५ ॥

ऐसे सब प्रकार देख भाल (परीक्षाकर) जो साध्य रोग हों उनका साधन (यत्न) करे । और जो याप्य (अर्थात्) जिनकी साध्यतामें संदेह हो उन्हें साध्य बनावे । और असाध्योंकी चिकित्सा न करे तथा एक वर्षसे पुराने रोगोंकी भी प्रायः चिकित्सा न करे ॥ १५ ॥

तत्र साध्या अपि व्याधयः प्रायेणैषां दुश्चिकित्स्यतमा भवंति ॥ १६ ॥ तद्यथा श्रोत्रियनृपतिस्त्रीबालवृद्धभीरुराजसेवककितवदुर्बलवैद्यविदग्धव्याधिगोपकदरिद्रकृपणक्रोधवतामनात्मवतामनाथानां चैवं निरूप्य चिकित्सां कुर्वन्धर्मार्थकामयशांसि प्राप्नोति ॥ १७ ॥

साध्य व्याधिभी प्रायः इतने मनुष्योंकी कष्टसाध्य होती है ॥ १६ ॥ जैसे-ब्रह्मचारी, राजा, स्त्री, बालक, बूढा, डरपोक, राजाके अहलकार, धूर्त्त, निर्बल, वैद्य, अकलकलील, रोग छिपानेवाले, दरिद्री कंजूस, क्रोधी, मनचले मनुष्य और अनाथ (बेवारिस) ऐसी २ बातोंको निरूपण कर (समझकर) जो चिकित्सा करताहै वह वैद्य धर्म, अर्थ और काम तथा यशको प्राप्त होताहै ॥ १७ ॥

भवति चात्र ॥ स्त्रीभिः सहास्थां संवादं परिहासं च वर्जयेत् ।
दत्तं च ताभ्यो नादेर्यमन्नादन्यद्भिषग्वरैः ॥ १८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्लोक है कि (जहां चिकित्सा करे वहाँकी) स्त्रियोंके पास बैठना, बातचीत करना और हांसी ठट्ठाकरना इत्यादिसे बचारहे (परित्याग रक्खे) तथा अन्नके सिवाय स्त्रियोंकी दीहुई कोई वस्तु द्रव्य आदि वैद्यको कदाचित् न लेना चाहिये ॥ १८ ॥

इति श्रीप० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा०टी० सूत्रस्थाने दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

परिशिष्ट ।

यद्यपि नाडीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा आदि सुश्रुतादि आर्ष ग्रंथोंमें इस प्रकार नहीं हैं जैसे कि, इस समय प्रचलित हैं । और इनका प्रचार अधिक है इस हेतु अन्यग्रंथोंसे उद्धृत कर कर यहां लिखते हैं । इनसे शरीर और अवयवोंके वायु, पित्त, कफादि दोषोंकी प्रधानता तथा रोगोंकी साध्यासाध्य व्यवस्थादि अवश्य प्रतीत होतीहै.

नाडीपरीक्षा ।

यद्यपि इस सुश्रुतसंहितामें नाडीपरीक्षाका नामभी नहीं और न चरक, वाग्भट, हारीत आदि ऋषिप्रणीत चिकित्साग्रन्थोंमें इसका नाम है तौभी अटकसे कटक और कुमारीसे काश्मीरतक समस्त भरतखंडमें इस नाडीपरीक्षाका ऐसा डंका बजा है कि सम्पूर्ण लोग चिकित्साका मूल आधार इसेही समझे हुए हैं । और इस विषयमें अनेक कहानियां जोड रक्खी हैं कि, अमुक वैद्यने नाडी मात्र देखकर बारह

(श्लो० १८) आस्या आसनं सह मिलित्वा आसनमिति .सहास्या । तथा च सहास्थामित्यत्र सहास्यामिति वा पाठः । आस्था स्थितिः आलबनम् अपेक्षा यत्न चेति (शब्दस्तोम०)

वर्ष पहलेसे वर्तमानतक सब हाल कह दिया और अमुकने कच्चा धागा हाथसे बन्धा छूकरही सब कुछ कह दिया इत्यादि अनेक गप्प सुने जातेहैं । और अबभी बहुतेरे धूर्त या मूर्ख लोग वैद्योंके अगाडी डंडासा हाथ निकाल मूक प्रश्नकर्ताकी भांति गूंगे हो बैठतेहैं और रोगविज्ञानके सिवायभी अनेक भूत भविष्यत् वर्तमान झगडा पूंछ वैद्योंके प्राण लेतेहैं और इसीसे वैद्यकी सिद्धि जानतेहैं उन मूर्खोंको यह मालूम नहीं कि, भला यूं रोगका परिज्ञान कैसे होसकताहै किन्तु ऐसे या मूर्ख रोगी लाभकी जगह बड़ी हानि उठातेहैं । हां नाडीसे वायु, पित्त, कफ (सरदी गरमी) और ज्वर आदि कई रोग तथा साध्यासाध्य अवश्य विदित होते हैं । नाडियोंका ज्ञान योगशास्त्रका विषय कुछ है तथा यूनानी हिकमतके मतमेंभी नब्ज देखना अधिक लिखा है । हमारे पुरातन वैद्यक ग्रंथोंमें यह नहीं है तोभी इस समय नाडीपरीक्षाका प्रचार सबसे उत्कृष्ट है इससे हम शार्ङ्गधर भावप्रकाशादिसे उद्धृत करके यहां लिखतेहैं ।

श्लोक-पुंसो दक्षिणहस्तस्य स्त्रियो वामकरस्य च ॥ अंगुलीभिस्तु तिसृभिर्नाडी-मवहितः स्पृशेत् ॥

अर्थ-पुरुषोंके दहिने और स्त्रियोंके बायें हाथकी नाडीको वैद्य एकाग्रचित्त हो तीन अंगुलियोंसे स्पर्श करके देखे ॥

श्लोक-करस्यांगुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ॥ तच्चेष्टया सुखं दुःखं जानीयात्कुशलो भिषक्॥ १॥ नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकासर्पयोर्गतिम् ॥ कुलिंगकाकमंडूकगतिं पित्तस्य कोपतः ॥ २ ॥ हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ॥ लावतित्तिरवर्तीनां गमनं संनिपाततः ॥ ३ ॥ द्विदोषकोपतो नाडी भवेद्द्विगतिका तथा ॥

अर्थ-मनुष्यके हाथके अँगूठेकी जडमें जो नाडी है वह जीवकी साक्षिभूत है और उसकी चालसे चतुर वैद्य शरीरके सुख दुःखकी परीक्षा करे ॥ १॥ वायुके कोप (और प्रधानता) में नाडी जोंक और सर्पकी चाल टेढी चलतीहै । तथा पित्तके कोप (और प्रधानता) में कुलिंग, काक और मेडककी चाल उछलवां चलतीहै॥ २॥ और कफके कोप (और प्रधानता) में हंस और कबूतरकी चाल जमीहुई और मंद चलतीहै तथा सन्निपातमें लवा तीतर और बतक इन तीनोंकी मिश्रित गतिकी भांति (कभी लवेकी भांति औली सौली कभी तीतरकी भांति फरादासाभरे कभी बतककी भांति जमकर मंद) चलने लगे ॥ ३ ॥ तथा दो दोषोंके कोप (और प्रधानता) में उन्ही दोकी मिश्रित चालसे चलती है ।

प्रकांतर भा. प्र.

श्लोक-वाताधिके भवेन्नाडी प्रव्यक्ता तर्जनीतले ॥ ४ ॥ पित्ते व्यक्ता मध्यमायां कफे चानामिकातले ॥ व्यंगुल्योर्द्वंद्वकोपेन त्रिदोषे चांगुलित्रये ॥ ५ ॥

अर्थ-वायुकी अधिकतामें तर्जनी अंगुलीके नीचे नाडी विशेष प्रकट होतीहै ॥ ४ ॥ और पित्तकी अधिकतामें बीचकी अंगुलीके नीचे प्रकट होतीहै । और कफकी प्रधानतामें अनामिका नीचेकी तीसरी अंगुलीके नीचे प्रकट होतीहै। और द्विदोषके कोप (और अधिकता) में उन्ही दो अंगुलियोंके नीचे और त्रिदोषमें तीनों अंगुलियोंके नीचे (कभी कहीं कभी कहीं) प्रकट होतीहै ॥ ५ ॥

कतिपय रोगोंपर नाडी ।

श्लोक-ज्वरकोपे तु धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥ ६ ॥ मंदाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मंदतरा भवेत् ॥ असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥ ७ ॥ लघ्वी वहति दीप्ताग्निस्तथा वेगवती मता ॥ चपला क्षुधितस्य स्यात्तृप्तस्य वहति स्थिरा ॥ ८ ॥

अर्थ-ज्वरके वेगमें नाडी गरम और वेगसे चलती है, कामातुरता और क्रोधमें तीक्ष्ण, चिंता और भयमें क्षीण नाडी चलतीहै ॥ ६ ॥ मंदाग्निवाले और क्षीणधातु पुरुषोंकी नाडी मंद होतीहै । रक्तकोपमें कुछ गरम और भरीसी होती है और आमके रोगोंमें गरिष्ठ (भारी) होतीहै ॥ ७ ॥ और दीप्ताग्नि पुरुषोंकी नाडी हलकी और ठीक चालपर शीघ्र चलनेवाली होतीहै । और सुखी (स्वस्थ) पुरुषोंकी नाडी स्थिर चालवाली और बलवाली होतीहै, भूखे मनुष्यकी नाडी चपल होतीहै और तृप्तकी स्थिर ॥ ८ ॥

असाध्य रोगीकी नाडी ।

श्लोक-स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी ॥ अतिक्षीणातिशीता च जीवितं हंत्यसंशयम् ॥ ९ ॥

अर्थ-जो नाडी ठहर ठहर कर फिर चले वह प्राणोंको नाश करनेवाली होतीहै तथा अत्यंत क्षीण और अतिशीतल नाडी भी जीवितका नाश करती है ॥ ९ ॥

अन्यच्च ।

श्लोक-शिरा यस्य सूक्ष्माऽतिशीतान्विता वा स रोगी न जीवेत्प्रयत्नैः कदाचित् ॥ चलद्विस्त्रिरूपा त्रिदोषान्विता वा स रोगी यमस्यालये शीघ्रगंता ॥ १० ॥

अर्थ-जिस रोगीकी नाडी अतिसूक्ष्म तथा अतिशीत होगी वह यत्नोंकरके भी कदाचित् नहीं जीवता। तथा द्विरूपा त्रिरूपा (कभी कैसी कभी कैसी चले या त्रिदोषयुक्त) हो तो वह रोगी शीघ्रही यमलोकमें जावेगा (मरेगा) ॥ १० ॥

डाक्टरी ।

डाक्टरीमेंभी नाडीपरीक्षाकी कुछ प्रधानता नहीं है-डाक्टरी (अंग्रेजी) में नाडीको पल्स (Pulse) कहते हैं उससे केवल सरदी गरमीकी न्यूनता और अधि-

कता देखतेहैं; उसका क्रम यह है-कि, स्वस्थ मनुष्यकी जन्मसे एक वर्षतक अनुमान एक मिनटमें १३० वार नाडी फड़कती है। और एक वर्षकी अवस्थासे दो वर्षकी अवस्थातक ११० वार, फिर तीन वर्षकी आयुतक १०० वार, और तीनसे सात वर्षतककी ९० वार, तथा सातसे १४ वर्षतक ८५ वार, फिर १४ से ३० वर्षतक ८० वार, और ३० से ५० वर्षतक ७५ वार, फिर ५० से ८० वर्षतक ६० वार नाडी (अनुमानसे) फडकतीहै। यदि इस अनुमानसे कमती वार फड़के तो सरदी और अधिक वार फडके तो उतनीही उतनी गरमी जानना।

डाक्टरोंने सरदी गरमी देखनेके लिये एक और यंत्र बनाया है जिसे थरमामेटर (Thermometer.) कहते हैं। वह एक कांचकी छोटी नलीसी होती है उसके भीतर पारा होताहै उसमें बहुधा १२० विभागोंकी रेखासी होती हैं; उसे मनुष्य मुँह या और शरीरमें लगावे यदि ९८ चिह्नसे नीचे पारा रहे तो उतनीही सरदी और जितना ९८ से ऊपर चढ़े उतनीही गरमी अधिक अधिक समझे; क्योंकि डाक्टरी मतसे प्रायः स्वस्थ (समशीतोष्ण) मनुष्योंके ९८ दरजेके बराबर सरदी गरमी सदा रहतीहै।

यूनानी।

यूनानी हिकमतमें नाडी (नव्ज) की अधिक प्रधानताहै। तिब्ब अकबर आदि किताबोंमें देखो हररोगके साथ नव्जका विचार लिखा है पर सामान्यतः (सौदा) वायुमें फैली हुई टेढ़ी और (सफरा) पित्तमें उछलती हुई पतली (बलगम) कफमें दबी हुई धीमी और खून (रक्त) में भरी हुई गरम और मोटी नव्ज होतीहै।

प्रसंगवश मूत्रपरीक्षा आदिका वर्णन यहां करते हैं-

मूत्रपरीक्षा।

श्लोक-निशांतयामे द्विमुहूर्तभागे उत्थाप्य वैद्यः किल रोगिणं च ॥ मूत्राद्यधारां परिहृत्य मध्यधारोद्भवं प्रातरिदं परीक्षेत् ॥ १ ॥

अर्थ-रात्रिके पिछले पहरमें जब दो मुहूर्त अनुमान चार घडीका तडका रहे तब वैद्य रोगीको उठावे और आदिकी मूत्रधार छोडकर मध्यकी धाराको (काच या कांस्यपात्रमें रखकर) प्रभात (सूर्योदय) होनेपर उसकी परीक्षा करे ॥ १ ॥

श्लोक-वातेन पांडुरं मूत्रं रक्तं नीलं च पित्ततः ॥ रक्तमेव भवेद्रक्ताद्धवलं फेनिलं कफात् ॥ द्वंद्वेन मिश्रितं मूत्रं कृष्णं चित्रं त्रिदोषतः ॥ २ ॥

अर्थ-वायुकी प्रधानतामें पांडुर (हलका पीला कुछ हरियाली सुपेदी लिये हुए) रंगका मूत्र होताहै। रक्त और नीले रंगका मूत्र पित्तकी अधिकतामें होताहै। तथा सुरख (गहरा लाल) रक्तकी अधिकतासे होता है। तथा कफसे श्वेत रंग

और झाग बुलबुले सहित होताहै। और द्विदोषकी प्रधानतामें उन्हीं दो रंगोंसे मिला होताहै। तथा त्रिदोषसे कृष्ण वर्ण तथा चित्र (कभी कैसा कभी कैसा) होताहै ॥ २ ॥

प्रकारांतर।

श्लोक-नीलं च रूक्षं कुपिते च वायौ पीतारुणं तैलसमं च पित्ते ॥ स्निग्धं कफे पल्वलवारितुल्यं स्निग्धोष्णरक्तं रुधिरप्रकोपे ॥ ३ ॥

अर्थ-नीला और रूखा मूत्र वायुके कोपमें होताहै। पीला लाल और तेलके समान पित्तमें होताहै। तथा चिकना और डाबरके जलके समान कफके विकारमें होताहै। और चिकना गरम लाल रक्तकोपमें होताहै ॥ ३ ॥

तैलसे मूत्रपरीक्षा।

श्लोक-तृणेन दापयेत्तैलबिंदुं तत्रातिलाघवात् ॥ सर्पाकारं भवेद्वाताच्छत्राकारं तु पित्ततः ॥ श्लेष्मणा मौक्तिकाकारमित्येतन्मूत्रलक्षणम् ॥ ४ ॥ तैलबिंदुर्यदा मूत्र चालनी सदृशो भवेत् ॥ नराकारो द्विमुंडो वा भूतबाधां विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥

अर्थ-रोगीके मूत्रमें तिनकेसे तेलकी एक बिंदु बहुत हलकेसे डाले यदि वायुका विकार हो तो वह तैलबिंदु सर्पाकार (आडी टेढी) हो और पित्तसे छत्रके आकार गोल फैलीहुई हो तथा कफके विकारसे मोतीकी भांतिही रहतीहै ये मूत्रके लक्षण हैं ॥ ४ ॥ और जो मूत्रमें तेलकी बिंदु चालनीके सदृश अथवा द्विमुंड नराकार हो तो भूतबाधा जाननी चाहिये ॥ ५ ॥

साध्य और असाध्य परीक्षा।

श्लोक-विकासितं तैलमथाशु मूत्रे साध्यः स रोगी न विकासितं च ॥ स्यात्कष्टसाध्यस्तलगे त्वसाध्यो नागार्जुनेनैव कृता परीक्षा ॥ ६ ॥

अर्थ-जो तेलकी बूंद मूत्रपर फैल जाय तो रोगी साध्य समझना और जो न फैले तो कष्टसाध्य और जो नीचे बैठ जाय तो असाध्य जानिये। नागार्जुनने यह परीक्षा की है ॥ ६ ॥

श्लोक-पूर्वे तथोत्तरे गच्छेद्रोगी शीघ्रं सुखी भवेत् ॥ दक्षिणे च क्रमात्सौख्यं पश्चिमे चायुषः क्षयः ॥ ७ ॥ गात्रखंडं च खड्गं च शरं शूलं च पट्टिशम् ॥ त्रिचतुः पथकादि स्यान्न कुर्यात्तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥ छत्रं तडागं कमलं प्रासादं तोरण भवेत् ॥ आरोग्यता ध्रुवं ज्ञेया तदा कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ९ ॥

अर्थ-जो तैलबिंदुका फैलाव पूर्व या उत्तरको अधिक हो तो रोगी शीघ्र रोगसे छुटे और दक्षिणको हो तो देरसे तथा पश्चिमको हो तो आयुका नाश

(श्लो० २) नीलमित्यत्र पीतमिति वा पाठः। (श्लो० ३) पल्वल क्षुद्रसरः ॥

हो ॥ ७ ॥ शरीरके खंड, तलवार, बाण, त्रिशूल, शस्त्र, तिराहा, चौराहा ये आकार हों तो असाध्य जान चिकित्सा न करे ॥८॥ और जो छत्र, तलवार, कमल, महल, तोरण ये आकार हों तो सुखसाध्य जानकर चिकित्सा करे ॥ ९ ॥

यूनानी ।

फारसीमें मूत्रको बोल कहतेहैं और महावरेमें (मूत्रसे भरी शीशीको शीशीके नामसे) कारूर कहनेका रिवाज होकर कारूरह प्रसिद्ध होगया है । यूनानी मतसे साफ सुपेद शीशीमें प्रभातका मूत्र देखना कहा है-बस यदि मूत्रकी रंगत पीली हो तो सफरा पित्तकी अधिकता जाने और यदि सुरख हो तो खून । रक्तकी अधिकता और हरियाली लिये हो तो सौदा । वात विकार और सुपेद हो तो बलगम कफ तथा चरवी आती है ऐसा जाने।गरमीसे मूत्र लाल पीला और कम आताहै । तथा जलनसे आताहै और सरदीसे सुपेद जादा और बेजलन आता है (यूनानीमें कफ या पित्त या रक्त जलकर सौदा बनताहै ऐसा लिखाहै) जो पहले मूत्र सुपेद हो औ फिर स्याही लिये हो तो कफ जलकर सौदा बना समझे । और जो पहले पीला और पीछे स्याही लिये हो तो सफरा (पित्त) जलकर सौदा हुवा । और जो पहले सुरख पीछे स्याही लियेहो तो खून (रक्त) जलकर सौदा हुवा समझे । मूत्र शुद्ध पतला होताहै और उसमें दूषित शरीरावयव मिले हों तो गाढा ।

डाक्टरी ।

डाक्टरीमें मूत्रपरीक्षाका बडा झगडा है जो सहजमें समझमें नहीं आसकता और न वैद्यकीय चिकित्सामें बहुत उपयोगी होताहै, इससे यहां नहीं लिखागया । केवल निदर्शनमात्र थोडासा दिखला देतेहैं ।

यूराइनामेटर (Urina meter.) नामक एक यंत्र गिलासकी भांति होताहै उसमें एक नीचे डिबियादार डंडीसी पडी रहतीहै उसमें मूत्र भरकर देखे । डंडी जितने चिह्नतक डूबे हजारपर उतना अधिक करदे । जैसे ३ चिह्नतक डूबी तो १००३, और १५ चिह्नतक डूबी तो १०१५, मनुष्यका अनुमान १००३ से १०३० तक मूत्र होताहै । जितना २ भारी हो उसमें शरीरकी वस्तु जाने । जितना हलका उतने भाग जल जादा । स्वस्थ मनुष्यके मूत्रमें १००० भागमें ९५० भाग जल तथा (२५ अनुमान यूरिया और यूरिक एसिड १ भाग) तथा (१४ भाग लवण कई भागके) तथा (१० भाग आरगानक) इनमें अति न्यूनाधिकता उपाधि तथा एक रंगीन कागजभी मूत्रमें डालकर देखतेहैं तथा और कई भांति कई बातें देखते हैं जो विना अंग्रेजी पढे समझमें नहीं आती इससे नहीं लिखी गई और न उन बातोंसे वैद्यक चिकित्सावालेका प्रयोजन सिद्ध होता है ।

प्रसंगवशात् मलपरीक्षा।

श्लोक-वातस्य च मलं कृष्णं पीतं पित्तस्य कोपतः ॥ रक्तवर्णं तु रक्तेन घनं श्वेतं कफाद्भवेत् ॥ १ ॥

अर्थ-वायुकी प्रधानतामें मल सांवला होताहै और पित्तसे पीला तथा रुधिरके कोपसे रक्तमिश्रित रक्तवर्ण और कफसे गाढा और श्वेत रंगका मल होताहै ॥ १ ॥

अन्यच्च।

श्लोक-त्रुटितं फेनिलं रूक्षं सशब्दं वातकोपतः ॥ मलं धूम्रं भवेत्स्वल्पमथवा बद्धविट्कता ॥ २ ॥ द्रावमुष्णं भवेत्पित्तात्कफाच्छुक्लं च पिच्छलम् ॥ संनिपातात्सर्वलिंगं सामं चामेन निर्दिशेत् ॥ ३ ॥ अपक्वं स्यादजीर्णे तु पक्वं स्वस्थमलं भवेत् ॥ मृतगंधं तथा श्याममसाध्यस्य मलं भवेत् ॥ ४ ॥

अर्थ-टूटा २ झाग बुदबुदों सहित रूखा तथा धूम्रवर्ण और थोडा थोडा मल वायुके कोपसे होताहै। अथवा बद्धविट्कता दस्तमें, रुकावटभी वायुके कोपसे होतीहै ॥ २ ॥ पित्तसे पतला और गरम मल होताहै। तथा कफसे सुपेद और गाढा गंदला होताहै। और सन्निपातसे सब लक्षण मिले होतेहैं। तथा आमयुक्त मल आमके विकारसे होताहै ॥ ३ ॥ अजीर्णसे अपक्व (विनापचा हुवा) मल होताहै। तथा पचाहुवा मल स्वस्थ रोगरहितका होताहै। और जिसमें मुरदेकीसी गन्ध और काला हो वह असाध्य रोगीका मल होताहै (अर्थात् जिसकी मृत्यु निकट हो) ॥ ४ ॥

जिह्वापरीक्षा।

श्लोक-जिह्वा शीता खरस्पर्शा स्फुटिता मारुताधिके ॥ रक्तश्यामा भवेत्पित्ते कफे शुभ्रातिपिच्छला ॥ १ ॥ कृष्णा सकंटका शुष्का सन्निपाते भवेत्तु सा। द्वंद्वे द्विलिंगसंयुक्ता जिह्वा ज्ञेया विचक्षणैः ॥ २ ॥

अर्थ-ठंढी, खुरदरी, फटी हुईसी जिह्वा वायुकी अधिकतामें होतीहै। और पित्तकी अधिकतामें रक्तश्यामा (सुरख ऊदी) और कफसे सुपेद और लिहसीहुई होतीहै ॥ १ ॥ और सन्निपातमें काली सूखी काँटेसे पडेहुए ऐसी होतीहै। और द्वंद्वजमें दो दोषोंके मिले लक्षण होतेहैं ॥ २ ॥

नेत्रपरीक्षा।

श्लोक-रूक्षं धूम्रं तथा रौद्रं चंचलं वातकोपतः ॥ दीपद्वेषि च संतप्तं रक्तं नेत्रं तु पित्ततः ॥ १ ॥ जलाढ्यं ज्योतिषा हीनं स्निग्धं मंदं कफेन तु ॥ द्विदोषेण द्विलिंगं स्यात्सर्वलिंगं त्रिदोषके ॥ २ ॥ श्यामवर्णं च निर्भुग्नं तंद्रामोहसमान्वितम् ॥ अंतर्जातं च रौद्रं च भवेन्नेत्रं गतायुषः ॥ ३ ॥

अर्थ-रूखे, धोंधले, भयानक, चंचलनेत्र वायुके कोपसे होतेहैं । और दीपक (धूप) बुरेलगें तथा लाल संतप्त हों ऐसे नेत्र पित्ताधिक्यमें होतेहैं ॥ १ ॥ और जलसेभरेसे, प्रकाशहीन, चिकने, मंदनेत्र कफसे होतेहैं । तथा द्वंद्वजमें दोके मिलेहुए लक्षण होतेहैं। और त्रिदोषमें सब लक्षण मिश्रित होतेहैं ॥ २ ॥ काले ठठरायेहुए तंद्रा और मोहयुक्त तथा गड़ेहुए और डरावनेसे नेत्र जिस रोगीके हों उसे असाध्य(मृत्युके निकट)जाने३॥

मुखपरीक्षा ।

श्लोक-वाते च विरसास्यत्वं पित्ते च कटुकं भवेत् ॥ मधुराम्लं कफे चैव सर्वलिंगं त्रिदोषके ॥ अजीर्णे स्निग्धतायुक्तं कषायं वाग्निमांद्यके ॥ १ ॥

अर्थ-वायुसे मुँहका स्वाद विरस (बकबका) होताहै । और पित्तसे कटु (चरपरा) तथा कफसे मीठा खट्टा । तथा त्रिदोषमें सब चिह्न मिले, अजीर्णमें स्निग्ध और मंदाग्निमें कषाय (कसेला) स्वाद मुखका होताहै ॥ १ ॥

एकादशोध्यायः ११.

अथातः क्षारपाकविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे क्षारपाक (तेजाब या खार बनाने काममें लाने) की विधि नामक अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ॥

शस्त्रानुशस्त्रेभ्यः क्षारः प्रधानतमश्छेद्यभेद्यलेख्यकरणात्त्रिदोषघ्नत्वाद्विशेषक्रियावचारणाच्च ॥ १ ॥ तत्र क्षरणात्क्षणनाद्वा क्षारः ॥ २ ॥ नानौषधिसमवायात्त्रिदोषघ्नः ॥ ३ ॥

क्षार शस्त्रों तथा अनुशस्त्रोंसे अधिक प्रधान है । छेद्य भेद्य और लेखन क्रिया करने तथा त्रिदोषनाश होने और विशेषकार्य संसाधन करनेसे इसकी प्रधानता है ॥ १ ॥ क्षरण (दोषोंके संचालकरने झिरादेने) से इसे क्षार कहतेहैं । अथवा क्षणन (दोषादिका क्षय करने) से क्षार कहाताहै ॥ २ ॥ नानाप्रकारकी औषधोंका मिलाप होनेसे क्षार तीनों दोषोंका नाश करसक्ताहै ॥ ३ ॥

वक्तव्य-बहुधा ऐसा भी देखागयाहै कि एक रोगीके मलमे वायुके लक्षण पायेजातेहैं और उसीके नेत्रो या मुखमे पित्तके तथा इसके विपरीत कइयोके नेत्रोमे कफके लक्षण होतेहैं और मूत्रमे पित्तके, ऐसी अवस्थामें कच्चे वैद्य मोहमे पडजातेहैं । इसका सिद्धांत यह है कि, मल पक्वाशयकी दशा बतांताहै और मुखका स्वाद आमाशयकी तथा नेत्र मूर्द्धाकी दशा बतातेहैं । इसीसे वैद्य जानलेवे कि, यदि मलमे वायुके लक्षण है तो पक्वाशयमें वायु प्रधान है । और नेत्रोमे पित्तके लक्षण हैं तो मूर्द्धामे पित्त प्रधान है । इसीप्रकार देहके विभागमे भिन्नभिन्न दोषोकी प्रधानता हो तो उसे विचारकर उसीके अनुसार चिकित्सा करे । कुछ यही नही कि, सर्वदा सबके सारे शरीरमे एकही दोष प्रधान हो, किन्तु कई जगह शरीरके न्यारे न्यारे अवयवोमे भिन्न २ दोष भी कुपित या प्रधान होतेहै । (सूत्र २) 'क्षर सञ्चलने' इत्यस्य धातोः 'क्षण वधे' इत्यस्य वा ॥

स खल्वाग्नेयौषधिगणभूयिष्ठत्वात्कटुक उष्णस्तीक्ष्णपाचनो विलयनः शोधनो रोपणः शोषणः स्तंभनो लेखनः कृम्यामकफकुष्ठविषमेदसामुपहंता। पुंस्त्वस्य चातिसेवितः ॥ ४ ॥

वह क्षार प्रायः आग्नेय (गरम तीक्ष्ण) औषधोंका विशेष संघट्ट होनेसे कटु गरम तीक्ष्ण (तेज) होताहै। तथा पाचन (पकानेवाला) विलयन (फैलादेने वाला) और (व्रणका) शोधन करनेवाला रोपण (घावका भरलानेवाला) और शुष्क करनेवाला स्तंभन (बहतेहुए रुधिरादिको थांभनेवाला) लेखन (खुरचकर मल हटानेवाला) है तथा कृमि, आम, कफ, कुष्ठ, विष और मेद (चरबी) का नाश करनेवाला है तथा अधिक सेवनकरने (खाने) से पुरुषार्थका नाश करताहै ॥ ४ ॥

क्षारयोजना।

स द्विविधः प्रतिसारणीयः पानीयश्च ॥ ५ ॥ तत्र प्रतिसारणीयः कुष्ठकिटिभदद्रुकिलासमंडलभगंदरार्बुददुष्टव्रणनाडीचर्मकीलतिलकालकन्यच्छव्यंगमशकबाह्यविद्रधिकृमिविषार्शस्सूपदिश्यते। सप्तसु च मुखरोगेषूपजिह्वाधिजिह्वोपदंतकुशदंतवैदर्भेषु तिसृषु रोहिणीष्वेतेषु चैवानुशस्त्रप्रणिधानमुक्तम्॥६॥

वह क्षार दो प्रकारका होताहै। एक प्रतिसारणीय दूसरा पानीय ॥ ५ ॥ उनमेंसे प्रतिसारणीय (जो ऊपर लगाया जाय) कुष्ठ, किटिभ (एक प्रकारके कुष्ठकोही कहतेहैं) दद्रु (दाद), किलास और मण्डलभी कुष्ठहीके भेद हैं। तथा भगंदर, अर्बुद (रसोली), बिगडाहुआ घाव नाडीव्रण (नसके ऊपर जो व्रणहो), चर्मकीलक, तिलकालक (तिल), न्यच्छ (चकत्ते), व्यंग (झाँई), मशक (मस्से), ऊपरके फोडे, कृमि (जो व्रणादिमें हों), विष (वृश्चिकादिके डंकजनित) और बवासीर इन रोगोंपर उपयोग कियाजाताहै। तथा सात मुखरोगोंके स्थानों उपजिह्व, अधिजिह्व, उपदंत, कुशदंत, वैदर्भ आदि) में तथा तीनोंप्रकारकी रोहिणी रोगोंमेंभी (इनके लक्षण अगाडी आजायँगे) क्षार अनुशस्त्ररूपमें लगायाजाना वर्णन कियाहै अर्थात् शस्त्रसे काटनेकी जगह क्षार तेजाबसे काट देना कहाहैं ॥ ६ ॥

पानीयस्तु गरगुल्मोदराग्निशूलाजीर्णरोचकानाहशर्कराऽश्म-

(सूत्र ४) अतिसेवितः क्षारः पुंस्त्वस्य चोपहता इत्यन्वयः। (सूत्र ५) प्रतिसारणीयः बाह्यपरिमार्जनः, पानीयः अन्तःपरिमार्जनश्च। तथा चोक्तं वृद्धवाग्भटे स द्विधाबाह्यातःपरिमार्जनेनेति।

(सूत्र ६-७) कृमिविषार्शस्सु द्विविधस्यैव प्रयोगः बाह्यतःप्रतिसारणीयस्य चाभ्यंतरतः पानीयस्य च अतः सूत्रद्वये कृमिविषार्शांसि कथितानि।

र्याभ्यंतरविद्रधिक्रिमिविषार्शस्सूपयुज्यते ॥ ७ ॥

पानीय क्षार (जो पिया खाया जाय) गररोग (विषके रोग), गुल्म, उदररोग, मंदाग्नि, शूल, अजीर्ण, अरुचि, आनाह (अफरा), शर्करा, मूत्रमें रेतसा आना, पथरी, भीतरका फोडा, भीतरके कृमि, विष और बवासीर इन रोगोंमें उपयोग किया जाताहै ॥ ७ ॥

क्षारका निषेध ।

अहितस्तुरक्तपित्तज्वरितपित्तप्रकृतिबालवृद्धदुर्बलभ्रमपदमूर्च्छातिमिरपरीतेभ्योन्येभ्यश्चैवंविधेभ्यः ॥ ८ ॥

रक्तपित्तके रोगी तथा ज्वरवाले और पित्तप्रकृति तथा बालक, बूढे, निर्बल, भ्रमरोगवाले तथा मद (मदात्ययआदि), मूर्च्छा और तिमिर जिसे अंधेरी या चक्कर आते हों इन रोगोंसे व्याप्त तथा अन्य ऐसे मनुष्योंको क्षार (विशेषकर पानीयक्षार) अहित है (हित नहीं) ॥ ८ ॥

तं चेतरक्षारवद्दग्ध्वा परिस्रावयेत् तस्य विस्तारोऽन्यत्र ॥ ९ ॥

स च त्रिविधो मृदुर्मध्यस्तीक्ष्णश्च ॥ १० ॥

यह पानीयक्षारभी दूसरे प्रतिसारणकी भांतिही औषधि जलाकर चुवालेने (पकाने) से बनता है । इसका विधान और जगह (गुल्मादिमें)होगा ॥ ९ ॥ और वह प्रतिसारण क्षार तीन प्रकारका होताहै मृदु (हलका) मध्यम तथा तीक्ष्ण (तेज) ॥ १० ॥

तं चिकीर्षुः शरदि गिरिसानुजं शुचिरुपोष्य प्रशस्तेऽहनि प्रशस्तदेशजातमनुपहतं मध्यमवयसं महांतमसितमुष्ककमधिवास्यापरेद्युरुत्पाटयित्वाभिमंत्र्यानेन मंत्रेण ॥ ११ ॥ अग्निवीर्य महावीर्य मा ते वीर्यं प्रणश्यतु ॥ इहैव तिष्ठ कल्याण मम कार्यं करिष्यसि ॥ मम कार्ये कृते पश्चात्स्वर्गलोकं गमिष्यसि ॥ १२ ॥

जो प्रतिसारणीय क्षार बनानेकी इच्छा रखता हो वह शरद् ऋतुमें किसी पर्वतके निकट जाकर श्रेष्ठ दिन देख शुद्ध हो व्रत धारण कर श्रेष्ठ भूमिमें उत्पन्न हुए, औषधको जो शीत अग्निआदिसे जल न गई हो, न बहुत नई न बहुत पुरानी हो, जिसकी हरी पैंदी हो उसे निमंत्रित कर (नौते) और फिर दूसरे दिन नीचे लिखे

(सूत्र ८) रक्तपित्तादिपरीतेभ्य पानीयः क्षारोऽहितः । (सूत्र ९-१०) त पानीयक्षारमितरप्रतिसारणीयक्षारवच्च तद्विस्तारोऽन्यत्र । तथा स इतरः प्रतिसारणीयस्त्रिविधः ॥

मंत्रसे अभिमंत्रित करके उखाड़ले ॥ ११ ॥ मंत्र यह है—हे अग्निवीर्य ! महावीर्य ! तेरा पराक्रम नष्ट मत हो हे कल्याणकारक ! यहांही रहो, मेरा कार्य सिद्ध करो और मेरा कार्य सिद्ध करके स्वर्गको जाइये ॥ १२ ॥

श्वेतपुष्परक्तपुष्पसहस्रं जुहुयात् ॥ १३ ॥

और हजार श्वेत और रक्त फूलोंसे हवन करे ॥ १३ ॥

खंडशः प्रकल्प्यावपाट्य निर्वाते देशे निचितं कृत्वा सुधाशर्कराश्च प्रक्षिप्य तिलनालैरादीपयेदथोपशांतेऽग्नौ तद्भस्म पृथग्गृह्णीयाद्भस्मशर्कराश्च ॥ १४ ॥

फिर खण्ड २ कर फाडकर वायुरहित स्थानमें इकट्ठी चिनकर थोड़ा चूना डालकर तिलकी नालियों (लकडियों) से उसे जलादे और जब अग्नि शांत होजाय तब उस औषधकी भस्म अलग उठाले और चूना अलग करले ॥ १४ ॥

अथानेनैव विधानेन कुटजपलाशाश्वकर्णपारिभद्रकबिभीतकारग्वधतिलवकार्कस्नुह्यपामार्गपाटलानक्तमालवृषकदलीचित्रकपूतीकेन्द्रवृक्षास्फोताऽश्वमारकसप्तच्छदाग्निमंथगुञ्जाश्चतस्रश्च कोशातकीः समूलफलपत्रशाखा दहेत् ॥ १५ ॥

इसी विधिसे कुडा, ढाक, शाल, निम्ब, बहेडा, कृतमाल, लोध्र, आक, थोहर, चिरचिटा, पाटला, करंजवा, अरूसा, केला, चित्रक, पूतिक, (रोहिष) इंद्रवृक्ष (देवदारु), आस्फोता (अपराजिता) कनेर, शातला, अरणी, चिरमठी, चारों भांतिकी कोशातकी (कडुतुरई), इनको जड फल पत्ते शाखासमेत भस्म करले ॥ १५ ॥

ततः क्षारद्रोणमुदकद्रोणैः षड्भिरालोड्य मूत्रैर्वा यथोक्तैरेकविंशतिवारान्विस्राव्य महति कटाहे शनैर्दर्व्या विघट्टयन्विपचेत् ॥ १६ ॥

फिर द्रोणभर भस्मको छह द्रोण (छगुने) पानीमें घोलकर खूब मिलावे और जहां कहीं गोमूत्रादिका योग हो तो उन्हें यथोक्त मिलाकर इक्कीस वार चुलवा ले (छानले) फिर बडी कडाहीमें डालकर शनैः २ कौंचे आदिसे हिलाते पकावे १६॥

स यदा भवत्यच्छो रक्तस्तीक्ष्णः पिच्छलश्च तमादाय महति

(सूत्र १३) मन्त्रेणाभिमंन्य जुहुयादित्यन्वयः। (सूत्र १४) शातेऽग्नौ तद्भस्म पृथग्गृह्णीयाद्भस्मशर्कराश्च पृथग्गृह्णीयादिति । (सूत्र१५) अश्वकर्णः शाल., पारिभद्रो निंबः, पूतिकः पूतिकरजो रोहिषश्च।

वस्त्रे परिस्राव्येतरं विसृज्य च पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥१७॥ तत एव च क्षारोदकात्कुडवमर्द्धं वाऽपनयेत् ॥ १८ ॥

जब वह स्वच्छ और लालवर्ण तथा तीक्ष्ण और कुछ गाढा (चिकना) होजाय तब उतारकर गाढे कपडेमें छानकर फोकको अलग करके द्रवको फिर अग्निपर चढावे ॥१७॥ इसप्रकार कुडव वा आधा रहनेपर उस क्षारको फिर उतारले॥१८॥

ततः कटुशर्कराभस्मशर्कराशुक्तिशंखनाभीरग्निवर्णाः कृत्वाऽयसे पात्रे तस्मिन्नेव क्षारोदके निषिच्य पिष्ट्वा तेनैव द्विद्रोणेऽष्टपलसंमितं शंखनाभ्यादीनां प्रमाणं प्रतिवाप्य सततमप्रमत्तश्चैनमवघट्टयन्विपचेत् ॥ १९ ॥

फिर पूर्वोक्त चूनेकी भस्म, चूना, सीप, शंखकी नाभि (जो योग्य हो सो) अग्निमें लाल करके लोहेके पात्रमें रख उसी क्षारके जलसे बुझावे । और फिर उसी जलसे पीस ले । यदि दो द्रोण क्षारोदक हो तो आठपल शंखनाभि आदिका प्रमाण करके डाले । फिर निरन्तर सावधानीसे हिलाताहुआ पकावे ॥ १९ ॥

स यथा नातिसांद्रो नातिद्रवश्च भवति तथा प्रयतेत ॥ २०॥ अथैनमागतपाकमवतार्यानुगुप्तमायसे कुंभे संवृतमुखे निदध्यादेष मध्यमः ॥ २१ ॥ एष एवाप्रतिवाप्यपक्वः संव्यूहिमो मृदुः ॥ २२ ॥

और ऐसा यत्न करे कि, जिससे न तो बहुत गाढा (कीचसा) होजाय और न बहुत पतला रहै ॥ २० ॥ फिर जब पकजावे तब उतारकर गुप्त लोहेके घडेमें रखकर उसका मुँह बंद करदे (इस समयके अनुसार पक्की शीशी या कांचके कण्टरमें रखदे) यह मध्यम क्षार हुवा ॥ २१ ॥ इसीमें जो शंखनाभि आदि नहीं डाली हों केवल पकाहो तो यही मृदु है ॥ २२ ॥

प्रतिवापे यथालाभं दन्तीद्रवन्तीचित्रकलांगलकीपूतिकप्रवालतालपत्रीविडसुवर्चिकाकनकक्षीरीहिंगुवचाविषाः समाः श्लक्ष्णचूर्णाः शुक्तिप्रमाणाः प्रतिवाप्याः स एव सप्रतीवापः पक्वपाक्यस्तीक्ष्णः ॥ २३ ॥ तेषां यथाव्याधिबलमुपयोगः ॥ २४ ॥ क्षीणबले तु क्षारोदकमावपेद्बलकरणार्थम् ॥ २५ ॥

(सूत्र १७) अच्छः स्वच्छः । (सूत्रे २५) क्षारोदक पूर्वम् । १७ सूत्रोक्तमर्द्धपक्व मृदुतरं क्षारोदकमित्याभिप्रायः ।

मध्यक्षार पाकमेंही पकतीवार दंती (जमालगोटाकी जड), द्रवंती (शतमूली), चित्रक, लांगली, पूतिकरंजके पत्र, मूषापर्णी, विडलवण, सज्जीखार, चोक, हींग, वच, अतीस इनमेंसे जो मिले समभाग लें महीन पीस शुक्तिप्रमाण (एक शुक्ति भर आधा पल) जो मिले डालदे और इस समेत जो पके वह पाक तीक्ष्ण क्षार होताहै ॥२३॥ इन (मृदुमध्य और तीक्ष्ण क्षारों) मेंसे जैसा रोग और जैसा रोगी का बल हो उसके अनुसारही उपयोग करे ॥ २४ ॥ और क्षीणबलवाले मनुष्योंको तो बल करनेके लिये (वह पहलेका पतला) क्षारोदक ही देना चाहिये ॥ २५ ॥

क्षारके गुण और दोष।

भवतश्चात्र ॥ नैवातितीक्ष्णो न मृदुः शुक्लः श्लक्ष्णोऽथ पिच्छलः ॥ अभिष्यन्दी शिवः शीघ्रः क्षारो ह्यष्टगुणः स्मृतः ॥२६॥ अतिमार्दवशैत्यौष्ण्यतैक्ष्ण्यपैच्छिल्यसर्पिताः ॥ सांद्रताऽपक्वता हीनद्रव्यता दोष उच्यते ॥ २७ ॥

दो श्लोक हैं कि–न बहुत तीक्ष्ण हो न कोमल हो साफ चिकना और ठीक गाढा हो, ठीक पतला हो, गुणकारी और शीघ्र प्रभाववाला हो क्षारमें ये आठ गुण होतेहैं ॥ २६ ॥ तथा क्षारमें कई दोष भी होतेहैं। जैसे–अत्यंत कोमल (हलका), ठंढा, अतिगरम, अतितीक्ष्ण, अतिगधला, बहुत पतला (जो बहजाय), बहुत गाढा तथा कमपका (कच्चा) और जिसमें औषधोंकी मात्रा कम हो ॥ २७ ॥

क्षारके उपयोग करनेकी विधि।

तत्र क्षारसाध्यव्याधिव्याधितमुपवेश्य निर्वातातपे देशेऽसंबाधेऽग्रोपहरणीयोक्तेन विधानेनोपसंभृतसंभारं ततोस्य तमवकाशं निरीक्ष्याऽवघृष्यावलिख्य प्रच्छयित्वा शलाकया क्षारं पातयित्वा वाक्शतमात्रमुपेक्षेत ॥ २८ ॥

क्षारसे नाश होनेयोग्य रोगवाले रोगीको ऐसे स्थानमें बिठावे जहां हवा और धूप गरमी नहो। तथा औरभी कुछ बाधा जहां न हो वहां बिठाकर अग्रोपहरणीय अध्यायोक्त विधानके अनुसार इस कर्मकी सब सामग्री पास रखकर वैद्य यथा अवसर रोगयुक्त अंगको खूब देखे और रोगीसे हाल पूछे। और उस जगह यदि खुरंडसा या मल या मुरदाखाल जमी हो तो उसे रगडकर या खुरचकर या उतारकर शलाका आदिसे क्षार लगाकर (डालकर) सौ अक्षरके उच्चारणमात्र कालतक देखतारहे ॥ २८ ॥

तस्मिन्निपतिते व्याधौ कृष्णता दग्धलक्षणम् ॥ तत्राम्लवर्गः शर्मनः सर्पिर्मधुकसंयुतः ॥ २९ ॥ अथ चेत्स्थिरमूलत्वात्क्षारदग्धं न शीर्यते ॥ इदमालेपनं तत्र समग्रमवचारयेत् ॥३०॥ अम्लकांजिकबीजानि तिलान्मधुकमेव च ॥ प्रपेष्य समभागानि तेनैवमनुलेपयेत् ॥३१॥ तिलकल्कः समधुको घृताक्तो व्रणरोपणः ॥ ३२ ॥

क्षारके लगनेसे व्याधियुक्त व्रणादि तथा अंगमें कालापन आजाना (कालापड़जाना) क्षारसे दग्ध होनेका लक्षण है । उसकी पीडा शांत करनेको उसपर फिर अम्लवर्ग (खटाई) घृत और शहतसे मिलाकर लगाना चाहिये (अम्लवर्ग सिरका या तुषोदक या धान्याम्ल हो) ॥२९॥ मूल दृढ होनेसे यदि क्षारदग्धकी पीडा सहजसे शांत न हो तो यह लेप करना चाहिये जो नीचे लिखते हैं ॥ ३० ॥ धान्याम्ल, कांजीका बीज (जिससे वह बनी हो), तिल और मुलहटी इन्हें समान ले पीस (कांजीसे) लेप करे ॥ ३१ ॥ अथवा तिलोंकी लुगदी, शहत और घृत सहित व्रणको रोपण करती (भरलाती) है ॥ ३२ ॥

क्षारदग्धपर अम्लयोजनामें शंका ।

रसेनाम्लेन तीक्ष्णेन वीर्योष्णेन च योजितः ॥ आग्नेयेनाग्निना तुल्यः कथं क्षारः प्रशाम्यति ॥ ३३ ॥

(सुश्रुतने शंका की कि) अम्लरस जो तीक्ष्ण और उष्णवीर्य अग्निरूप होकर उपयोग करना अग्निके तुल्य क्षार (की बाधा)को क्योंकर शांत कर सकता है ३३ ॥

इसका समाधान ।

एवं चेन्मन्यसे वत्स प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ अम्लवर्ज्यान्रसान्क्षारे सर्वानेव विभावयेत् ॥ ३४ ॥ कटुकस्तत्र भूयिष्ठो लवणानुरसस्तथा ॥ अम्लेन सह संयुक्तः सतीक्ष्णलवणो रसः ॥३५॥ माधुर्यं भजतेत्यर्थं तीक्ष्णभावं विमुंचति ॥ माधुर्याच्छममाप्नोति वह्निरद्भिरिवाप्लुतः ॥ ३६ ॥

(श्लो० २९) सम्यग्दग्धमवेक्ष्य निर्वापयेत्सर्पिर्मधुभ्यां शुक्ततुषोदकमस्तुक्षीणादिभिश्च ॥ स्थिरमूलत्वात् यदि क्षारदग्ध न विशीर्यते ततो धान्याम्लबीजमधुयष्टिकायुक्तैस्तिलैश्च लेपयेदिति वृद्धवाग्भटः (सूत्र ३४ । ३५) "अम्लो हि शीतस्पर्शेन क्षारस्तेनोपसहितः ॥ यात्याशु स्वादुतां तस्मादम्लैर्निर्वापयेत्तराम्" इति वृ० वाग्भटः ।

(महर्षि धन्वंतरिजीने उत्तर दिया कि) हे पुत्र ! जो तू यही समझताहै तो मेरा वक्तव्य वचन सुन। क्षारमें अम्लरसके अतिरिक्त सब रस समझनेचाहियें ३४॥ क्षारमें लवणरसके साथमें कटु (तीक्ष्ण) रस प्रधान और अधिक होताहै सो वह तीक्ष्ण लवणरस जब खट्टे रससे मिलताहै तब तीक्ष्णभावको छोडकर (तेजी कम होकर) माधुर्यभाव (मीठा सीठापन) को प्राप्त होजाताहै। और सीठा पडनेसे शांतिको प्राप्त होजाताहै। जैसे जलके छिडकनेसे अग्निकी शांति होतीहै॥ ३५॥ ३६॥

तत्र सम्यग्दग्धे विकारोपशमो लाघवमनास्रावश्च ॥ ३७ ॥ हीनदग्धे तोदकंडूजाड्यानि व्याधिवृद्धिश्च ॥३८॥ अतिदग्धे दाहपाकरागस्रावांगमर्दक्लमपिपासामूर्च्छाः स्युर्मरणं वा॥३९॥ क्षारदग्धव्रणं तु यथादोषं यथाव्याधिं चोपक्रमेत् ॥ ४० ॥

जब क्षारसे ठीक जला हो तो विकारकी शांति होजातीहै, हलकापन होजाताहै, मलस्राव बंद होजाताहै ॥ ३७ ॥ यदि कम जला हो तो पीडा, खाज, अकडाव तथा व्याधिकी वृद्धि होतीहै ॥ ३८ ॥ अधिक जले तो दाह हो, पकजाय, लाल हो, पीब बहनेलगे, अंग ऐंठ जाय, थकान हो, प्यासहो, मूर्च्छा आजाय या मृत्यु हो ॥३९॥ क्षारसे दग्ध हुए व्रणको दोष और व्याधिके अनुसार उपचार करना ॥४०॥

अथ नैते क्षारकृत्याः तद्यथा दुर्बलबालवृद्धभीरुसर्वांगशूनोदारिरक्तपित्तिगर्भिण्यृतुमतीप्रवृद्धज्वरिप्रमेहोरःक्षतक्षीणतृष्णामूर्छोपद्रुतक्लीबापवृत्तोद्धृतफलयोनयः ॥ ४१ ॥ तथा मर्मशिरास्नायुधमनीसंधितरुणास्थिसेवनीगलनाभिनखांतरशोफस्रोतःस्वल्पमांसेषु च प्रदेशेषु चाक्ष्णोश्च न दद्यादन्यत्र वर्त्मरोगात् ॥ ४२ ॥

निम्नलिखित रोगयुक्त मनुष्योंके क्षारकम नहीं करना चाहिये। जैसे—बालक, बूढा डरपोक, जिसका सब शरीर सूजगयाहो, उदररोगी (जलोदरी), रक्तपित्तवाला, गर्भवती और रजस्वलास्त्री जिसे ज्वरका वेग बढरहाहो, प्रमेहरोगवाले उरःक्षतरोग युक्त, क्षीण, तृष्णा और मूर्च्छा रोगवाले, नपुंसक तथा जिसके वृषण ऊपर चढगये या नीचे उतर आये हों, या स्त्री जिसकी योनि ऊपर या नीचे होगई हो ॥ ४१ ॥ तथा नीचे लिखे स्थानोंमें भी क्षारकर्म करना उचित नहीं। मर्मस्थानों, शिरा

(सूत्र ४२) मर्मादिषु क्षारं न दद्यात्तथा वर्त्मरोगादन्यत्राक्ष्णोश्चापि न दद्यात् किंतु वर्त्मरोगे तु दद्यादित्यभिप्रायः।

(सूक्ष्मनसों), स्नायु (मोटी नसों), धमनी (नाली), संधि, तरुण अस्थि, पतली कोमल हड्डी, जैसे नाक, कान, गलकी हड्डीहैं । सेवनी (सीमन जैसी अंडकोशके नीचे होतीहै), गल, नाभि, नखून, लिंगेन्द्रिय तथा स्रोत मल मूत्रादिके माग और जहां स्वल्प मांस हो वहां तथा नेत्रोंमें क्षारकर्म नहीं करना चाहिये । किंतु वर्त्मरोग (पलकके रोग बाह्मनी) में क्षारकर्म अनुचित नहीं ॥ ४२ ॥

तत्र क्षारसाध्येष्वपि व्याधिषु शूनगात्रमस्थिशूलिनमन्नद्वेषिणं हृदयसंधिपीडोपद्रुतं क्षारो न साधयति ॥ ४३ ॥

जो क्षारसाध्य व्याधिभी हैं वे इतने रोगियोंके क्षारसे सिद्ध नहीं होती । जिसके शरीरपर शोथ हो, जिसके हाडोंमें शूल हो, जिसको अन्नसे द्वेष (अरुचि) हो, हृदय और संधियोंमें जिसके पीडा हो उसे क्षार गुण नहीं करता (क्षारसे आराम नहीं होता) ॥ ४३ ॥

भवति चात्र ॥ विषाग्निशस्त्राशनिमृत्युकल्पः क्षारो भवत्यल्पमतिप्रयुक्तः ॥ स धीमता सम्यगनुप्रयुक्तो रोगान्निहन्यादचिरेण घोरान् ॥ ४४ ॥

इति श्रीसुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थान एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

बुद्धि और विद्यारहित कुवैद्यका अयुक्त उपयोग किया हुवा क्षार विष, अग्नि और शस्त्र तथा वज्रके समान मृत्युकारक होताहै । और वही क्षार विद्वान् सुवैद्यकरके ठीक २ उपयोग कियाहुवा शीघ्रही बडे २ दारुण रोगोंको नाश कर देताहै ॥ ४४ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थान एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथातोग्निकर्मविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे अग्निकर्म (अग्निसे दागनेकी) विधि नामक अध्यायका व्याख्यान करतेहैं ।

क्षाराद्ग्निर्गरीयान्क्रियासु व्याख्यातस्तद्दग्धानां रोगाणामपुनर्भावाद्भेषजशस्त्रक्षारैरसाध्यानां तत्साध्यत्वाच्च ॥ १ ॥

सब कर्मोंमें क्षारकी अपेक्षा अग्नि प्रधान (और उत्कृष्ट) कहाहै । अग्निसे दग्धकिये हुए रोगोंकी फिर उत्पत्ति नहीं होती और औषध तथा शस्त्र और क्षारसे जो रोग सिद्ध नहीं होते वे अग्निसे साध्य होतेहैं इस कारण अग्नि प्रधानहै ॥ १ ॥

अथेमानि दहनोपकरणानि । तद्यथा पिप्पल्यजाशकृद्गोदंतशरशलाकाजांबवौष्ठेतरलोहाः क्षौद्रगुडस्नेहाश्च ॥ २ ॥ तत्र-पिप्पल्यजाशकृद्गोदंतशरशलाकास्त्वग्गतानां जाम्बवौष्ठेतर-लोहानि मांसगतानां क्षौद्रगुडस्नेहाः शिरास्नायुसंध्यस्थिग-तानाम् ॥ ३ ॥

अग्निकर्मके उपयोगी ये पदार्थ होतेहैं । जैसे-पिप्पली, बकरीके मेंगन और गौ बैलका दांत, शर और सलाई, जांबवौष्ठ तथा अन्य लोह एवं शहत, गुड़, तैल, घृत आदिक ॥ २ ॥ उनमेंसे पिप्पली, बकरीकी मेंगन, गौ बैलका दांत, शर और सलाई ये त्वचामें प्राप्त हुए रोगोंके दागनेमें उपकारी होतेहैं । और जांबवौष्ठ तथा अन्यलोह मांसगत रोगोंके दग्ध करनेमें उपयोगी हें । तथा शहत, गुड़, तैलादि शिरा (नस), स्नायु, (मोटी नस), संधि (जोड) और अस्थिमें उपजे रोगोंको दग्ध करनेमें उपयोगी होतेहैं ॥ ३ ॥

तत्राग्निकर्म सर्वर्तुषु कुर्यादन्यत्र शरद्ग्रीष्माभ्यां तत्रात्या-यिकेऽग्निकर्मसाध्ये व्याधौ तत्प्रत्यनीकं विधिं कृत्वा ॥ ४ ॥

शरद् और ग्रीष्म ऋतुके सिवाय सब ऋतुओंमें अग्निकर्म करना उचित है । और शरद् ग्रीष्ममेंभी यदि कोई बहुत आवश्यक अग्निकर्मसाध्यही रोग हो तो गरमी आदिका बचाव और परिहार करके अग्निकर्म करना चाहिये ॥ ४ ॥

सर्वव्याधिष्वृतुषु च पिच्छलमन्नं भुक्तवतः कर्म कुर्वीत मूढग-र्भाश्मरीभगंदराशोंमुखरोगेष्वभुक्तवतः ॥ ५ ॥

सब व्याधियोंमें सब ऋतुओंमें बलकारक अन्न भोजन कराकर रोगीको अग्निकर्म करे परन्तु मूढगर्भ, पथरी, भगंदर, बवासीर और मुखके रोगोंमें (यदि कहीं अग्नि-कर्मकी आवश्यकता हो तो) रोगीको विनाही भोजन कराये अग्निकर्मकरना चाहिये५॥

तत्र द्विविधमग्निकर्माहुरेके त्वग्दग्धं मांसदग्धं च । इह तु शि-रास्नायुसंध्यस्थिष्वपि न प्रतिषिद्धोऽग्निः ॥६॥ तत्र शब्दप्रा-दुर्भावो दुर्गंधता त्वक्संकोचश्च त्वग्दग्धे ॥७॥ कपोतवर्णताऽ-ल्पश्वयथुवेदना शुष्कसंकुचितव्रणता च मांसदग्धे ॥ ८ ॥ कृ-ष्णोन्नतव्रणता स्त्रावसंनिरोधश्च शिरास्नायुदग्धे ॥ ९॥ रूक्षा-रुणता कर्कशस्थिरव्रणता च संध्यस्थिदग्धे ॥ १० ॥

कई आचार्य दोही प्रकारका अग्निकर्म कहतेहैं। त्वग्दग्ध (त्वचाका दग्ध करना) और मांसदग्ध (मांस दग्ध करना) परंतु अग्निकर्मका शिरा, स्नायु, संधि, अस्थि इनमेंभी निषेध नहीं है ॥ ६ ॥ त्वग्दग्धमें चरचड़ाटका शब्द होताहै दुर्गंध (भकडाध) होतीहै और चर्म सुकड जाताहै ॥ ७ ॥ और मांसदग्धमें जलाहुआ कपोतके रंग होजाताहै और थोडा २ सूजन और दर्द होताहै । व्रण सूख जाता और सुकड जाताहै ॥ ८ ॥ शिरा और स्नायुदग्धमें व्रण काला पडजाताहै और कुछ ऊंचा उभर आताहै और स्राव (पीप और रुधिर आदिका निकलना) बन्द होजाताहै ॥ ९ ॥ तथा संधि और अस्थिदग्धमें रूखापन, लाली और करडापन और व्रणमें स्थिरता आजातीहै ॥ १० ॥

तत्र शिरोरोगाधिमंथयोर्भ्रूललाटशंखप्रदेशेषु दहेत् ॥ ११ ॥

वर्त्मरोगेष्वार्द्रालक्तकप्रतिच्छन्नां दृष्टिं कृत्वा वर्त्मरोमकूपान्दहेत् १२

शिरके रोग और अधिमंथ नाम नेत्ररोग इनमें भौंह, ललाट तथा कनपटीमें दाग दे ॥ ११ ॥ और वर्त्मरोग (ब्राह्मनी रोग) में-महावरसे वस्त्र भिगोकर उससे नेत्र दृष्टिको ढककर पलकोंके बालोंकी जडको (बहुत होशियारीसे) दग्धकरे ॥ १२ ॥

अग्निकर्म करने योग्य व्याधि ।

त्वङ्मांसशिरास्नायुसंध्यस्थिस्थितेऽत्युग्ररुजे वायावुच्छ्रिते कठिनसुप्तमांसे व्रणे ग्रन्थ्यर्शोऽर्बुदभगंदरापचीश्लीपदचर्मकीलतिलकालकांत्रवृद्धिसंधिशिराच्छेदनादिषु नाडीशोणितातिप्रवृत्तिषु चाग्निकर्म कुर्यात् ॥ १३ ॥

चर्म, मांस, शिरा, स्नायु, संधि और अस्थि इनमें स्थित हुए जो उग्र रोग हैं उनमें तथा वायुसे जो मांस ऊँचा होजाय, करडा पडजाय या शून्य पडजाय उसमें घाव (जो और उपायोंसे अच्छा न हो) और ग्रंथिरोग, बवासीर, भगंदर अपची (एक गंडमालका भेद), श्लीपद (पीलपांव),चर्मकील, तिल, आंत बढ-जाना इन रोगोंमें और संधि और नसके काटनेकी आवश्यकता हो या कटजावे तब नसद्वारा जो रुधिर वहनेलगे और थँभे नहीं उसके रोकनेके लिये अग्निकर्म करना योग्य है ॥ १३ ॥

चार प्रकारसे अग्निकर्म ।

तत्र रोगाधिष्ठानभेदेनाग्निकर्म चतुर्द्धा भिद्यते। तद्यथा वलयबिंदुरेखाप्रतिसारणानि दहनविशेषाः ॥ १४ ॥

(सूत्र १४) 'व्याधिप्रदेशवशाद्वलयार्द्धचंद्रस्वस्तिकाष्टापदबिंदुरेखाप्रतिसारणविकल्पैः' इति वृद्धवा० ।

रोग और रोगके स्थानभेदसे अग्निकर्म चार प्रकारका होताहै। जैसे कंकणके आकार गोल (अर्बुदादिकमें ऐसेही दागते हैं), तथा बिंदुके समान छोटा (जैसे मस और तिलको दागते हैं), तीसरे रेखा लकीरकी भांति (जैसे भ्रूशूलमें दागते-हैं), चौथा प्रतिसारण (किसी गरम वस्तुसे रगडना) इनके अतिरिक्त और जैसे वैद्य उचित समझे वैसेही दागदे ॥ १४ ॥

भवति चात्र ॥ रोगस्य संस्थानमतो विदित्वा नरस्य मर्माणि बलाबलं च ॥ व्याधिं तथर्तुश्च समीक्ष्य सम्यक्ततो व्यवस्ये-द्भिषगग्निकर्म ॥१५॥ तत्र सम्यग्दग्धे मधुसर्पिर्भ्यामभ्यंगः ॥ १६॥

यहांपर श्लोक है कि ॥ रोगस्थान और रोगी मनुष्यके मर्मस्थान तथा बल और निर्बलता तथा व्याधि और ऋतु इन सब बातोंको वैद्य अच्छे प्रकार देख और विचारकर अग्निकर्मकी व्यवस्था करे ॥ १५ ॥ और जब यथोक्त ठीक अग्नि-से दग्ध होजाय (दाग देदिया जाय) तब उसके ऊपर शहत और घृत मिला-कर मल देना चाहिये ॥ १६ ॥

अग्निकर्मसे वर्जित रोगी।

अथेमानग्निना परिहरेत् पित्तप्रकृतिमन्तःशोणितं भिन्नकोष्ठ-मनुद्धतशल्यं दुर्बलं बालं वृद्धं भीरुमनेकव्रणपीडितमस्वे-द्यांश्चेति ॥ १७ ॥

इतने मनुष्योंको अग्निकर्म करना उचित नहीं। जैसे-पित्तप्रकृति जिसके भीतर कुपित रक्त हो, भिन्नकोष्ठ (जिसका मल टूटगया हो वा दारुण अतिसार हो), जिसके शरीरमेंसे या घावमेंसे शल्य नहीं निकालागया हो (अंदरही हो) दुर्बल, बालक, बूढा, डरपोक तथा जो बहुतसे घावोंसे पीडित हो और जिनको पसीनादि लानेका निषेध हो ॥ १७ ॥

अत ऊर्ध्वमितरथा दग्धलक्षणं वक्ष्यामः ॥ १८ ॥ तत्र स्नि-ग्धं रूक्षं वाऽऽश्रित्य द्रव्यमग्निर्दहति। अग्निसंतप्तो हि स्नेहः सूक्ष्मशिरानुसारित्वात्त्वगादीनाऽऽशु प्रविश्याशु दहति तस्मा-त्स्नेहदग्धेऽधिका रुजो भवंति ॥ १९ ॥

इसके अगाडी हम और प्रकारसे दग्धके लक्षण कहतेहैं ॥ १८ ॥ अग्नि चिकने या रूखे वस्तुओंके आश्रय होकर पदार्थको जलाताहै। और अग्निसे तपाया हुआ तैल सूक्ष्म नसोंमें गमन करनेसे चर्म आदिमें शीघ्र प्रवेश कर करके

तत्काल दग्ध करदेताहै इसी कारण स्नेह (घृत तेलादि) के जलमें अधिक पीडा होतीहै ॥ १९ ॥

चार प्रकारका अग्निदग्ध ।

तत्र प्लुष्टं दुर्दग्धं सम्यग्दग्धमतिदग्धं चेति चतुर्विधमग्निदग्धम् ॥२०॥ तत्र यद्विवर्णं प्लुष्यतेऽतिमात्रं तत्प्लुष्टम् ॥२१॥ यत्रोत्तिष्ठन्ति स्फोटास्तीव्राश्चोषदाहरागपाकवेदनाश्चिराच्चोपशाम्यन्ति तद्दुर्दग्धम् ॥ २२॥ सम्यग्दग्धमनवगाढं तालफलवर्णं सुसंस्थितं पूर्वलक्षणयुक्तं च ॥ २३॥ अतिदग्धे मांसावलम्बनं गात्रविश्लेषः शिरास्नायुसंध्यस्थिव्यापादनमतिमात्रम् । ज्वरदाहपिपासामूर्च्छाश्चोपद्रवा भवंति व्रणश्चास्य चिरेण रोहति रूढश्च विवर्णो भवति ॥ २४ ॥ तदेतच्चतुर्विधमग्निदग्धलक्षणमात्मकर्मप्रसाधकं भवति ॥ २५ ॥

प्लुष्ट, दुर्दग्ध, सम्यग्दग्ध एवं अतिदग्ध ऐसे चार प्रकारका अग्निदग्ध होताहै ॥ २० ॥ उनमेंसे जिसमें त्वचाका रंग पलटजाय और झुलसासा होजाय उसे प्लुष्ट (झुलसा हुआ) कहतेहैं ॥ २१ ॥ और जिसमें दारुण फफोले पडजायँ और चूसनेकीसी व्याधि और जलन हो, लाल रंग होजाय, पकजाय, दर्द हो, बहुत दिनमें अच्छा हो वह दुर्दग्ध है ॥ २२ ॥ सम्यग्दग्ध वह होताहै जिसका घाव नीचा (औंडा) न हो, ताडके फलके समान वर्ण हो, सुसंस्थित हो (जिसमें फफोले फुन्सी न उठें) और पहले कहे हुए लक्षणोंसे युक्त हो (सम्यग्दग्ध लक्षण पहले इसी अध्यायमें कहे गये हैं) ॥ २३ ॥ और अतिदग्ध वह होताहै जिसमें मांस जलकर लटक पडे, शरीर फट जाय और नस, नाडी, संधि और हड्डियां टूट जायँ और तीव्रज्वर और दाह, प्यास, मूर्च्छा ये उपद्रव हो जायँ । इस अतिदग्धका घाव बहुत दिनमें भरताहै और भरकर भी शरीरके समान वर्ण नहीं होता ॥२४॥ ये चारों प्रकारके अग्निदग्ध अपने २ कार्यके साधन करनेवाले होतेहैं ॥ २५ ॥

भवंति चात्र ॥ अग्निना कोपितं रक्तं भृशं जंतोः प्रकुप्यति ॥ ततस्तेनैव वेगेन पित्तमस्याभ्युदीर्यते ॥ २६ ॥ तुल्यवीर्ये उभे ह्येते रसतो द्रव्यतस्तथा ॥ तेनाऽस्य वेदनास्तीव्राः प्रकृत्या च विदह्यते ॥ २७ ॥ स्फोटाः शीघ्रं प्रजायन्ते ज्वरस्तृष्णा च वर्द्धते । दग्धस्योपशमार्थाय चिकित्सा संप्रवक्ष्यते ॥ २८ ॥

यहांपर श्लोक कहे हैं कि-अग्निसे दग्धकिया (कोप किया) हुआ मनुष्योंका रक्त कोपको प्राप्त होजाताहै और फिर उस रक्तकोपके वेगसे मनुष्यका पित्तभी उल्वण होजाताहै ॥ २६ ॥ ये दोनों रक्त और पित्त समानरस और द्रव्यसे तुल्य-वीर्य हैं इस कारण उस मनुष्यके तीव्र वेदना होतीहै और प्रकृतिहीसे दाह होजा-ताहै ॥ २७ ॥ और शीघ्र ही फफोले पडजातेहैं और ज्वर और तृषा बढ जातीहै सो अब अग्निदग्धकी शांतिके लिये चिकित्सा प्रकाश कीजातीहै ॥ २८ ॥

अग्निदग्धका प्रतिकार ।

प्लुष्टस्याग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं च भेषजम् ॥ शरीरे स्विन्नभूयिष्ठे स्विन्नं भवति शोणितम् ॥२९॥ प्रकृत्या ह्युदकं शीतं स्कंदयत्यतिशोणितम् ॥ तस्मात्सुखयति ह्युष्णं न तु शीतं कथंचन ॥ ३० ॥

प्लुष्ट (झलसेहुए) को अग्निसे तपाना चाहिये और भेषज (औषध) भी गरमही करनी चाहिये । क्योंकि, जब गरमी पहुँचकर पसीना आवेगा तब वह जलाहुवा रुधिरभी पसीना हो जायगा ॥ २९ ॥ और जल स्वभावसे ही शीतल है. और रक्तकी गतिको (जले हुए रक्तको) ठिठरा देता (रोक देता) है इस कारण गरम (जिससे झुलसाहुवा रुधिर पसीना होकर निकल जाय) सुख (आराम) कर देताहै । और ठंढा (जिससे जला रुधिर रुकजाय इससे) आराम नहीं करता व्याधि बढादेताहै ॥ ३० ॥

दुर्दग्धका यत्न ।

शीतामुष्णां च दुर्दग्धे क्रियां कुर्याद्भिषक्पुनः ॥ घृतालेपनसेकांस्तु शीतानेवास्य कारयेत् ॥ ३१ ॥

दुर्दग्धमें ठंढी और गरम दोनों क्रिया वैद्यको करनी चाहिये और घृतका लेपन और शीत काथादिसे सेचन करना चाहिये (क्योंकि इसमें स्वयं रक्तका पानी होजाताहै) ॥ ३१ ॥

सम्यक् दग्धका यत्न ।

सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचंदनगैरिकैः ॥ सामृतैः सर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद्भिषक् ॥ ३२ ॥ ग्राम्यानूपौदकैश्चैनं पिष्टैर्मांसैः प्रलेपयेत् ॥ पित्तविद्रधिवच्चैनं संततोष्माणमाचरेत् ॥ ३३ ॥

सम्यग्दग्धमें वंशलोचन, प्लक्ष (पिलखन) की छाल, चन्दन, गेरू और गिलोय इन्हें घृतमें मिलाकर लेपकरे ॥ ३२ ॥ तथा ग्राम्यपशु (अश्वादिक) अनूप

(महिषी आदि), जलजन्तु (कच्छपादिक) इनका मांस पीसकर लेप करना चाहिये । तथा पित्तकी विद्रधिके समान उसकी उष्णताका यत्न करे ॥ ३३ ॥

अति दग्धका यत्न ।

अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम् ॥ क्रियां कुर्याद्भिषक्पश्चाच्छालितंडुलकंडनैः ॥ ३४ ॥ तिन्दुकीत्वक्कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ व्रणं गुडूचीपत्रैर्वा छादयेदथवोदकैः ॥ ३५ ॥ क्रियां च निखिलां कुर्याद्भिषग्पित्तविसर्पवत् ॥ मधूच्छिष्टं समधुकं रोध्रसर्जरसं तथा ॥ मंजिष्ठां चंदनं मूर्वां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ॥ ३६ ॥

अतिदग्धमें जले हुए मांसको उखाड़ (अलगकर) के ठंढी किया करे और छडेहुए शालिचावलोंको तेंदू वृक्षकी छालके काथसे अथवा घृतसे मिलाकर लेप करे । तथा घावको गिलोयके पत्तोंसे ढका रहने दे (बांध दे) तथा कमलके पत्तोंसे आच्छादन करे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अतिदग्धमें वैद्य सम्पूर्ण क्रिया पित्तविसर्पके समान करे । तथा मोम, मुलहटी, लोध, राल, मंजीठ, रक्तचंदन और मूर्वा इन्हें पीसकर घृत पकावे और इसका उपयोग करे ॥ ३६ ॥

सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम् ॥

सम्पूर्ण प्रकारके अग्निदग्ध व्रणोंके भरलानमें यह उपरोक्त घृत बहुत उत्तम है ।

स्नेहदग्धे क्रियां रूक्षां विशेषेणावचारयेत् ॥ ३७ ॥

और घृत तैलादि चिकने द्रव पदार्थोंसे जलेहुएकी रूखी चिकित्सा करे ॥ ३७ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि धूमोपहतलक्षणम् ॥ श्वसिति क्षौति चात्यर्थमत्यर्थं धमति कासते ॥ ३८ ॥ चक्षुषोः परिदाहश्च रागश्चैवोपजायते ॥ सधूमकं निःश्वसिति घ्रेयमन्यन्न वेत्ति च ॥ ३९ ॥ तथैव च रसान्सर्वाञ्श्रुतिश्चास्योपहन्यते ॥ तृष्णादाहज्वरयुतः सीदत्यथ च मूर्च्छति ॥ ४० ॥ धूमोपहत इत्येवं शृणु तस्य चिकित्सितम् ॥ सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्करांबु वा ॥ ४१ ॥ मधुराम्लं रसं वापि वमनाय प्रदापयेत् ॥ वमनात्कोष्ठशुद्धिः स्याद्धूमगंधश्च नश्यति ॥ ४२ ॥

(सूत्र ४०) सर्वान् रसानन्यत्रैवेति इति पूर्वेणान्वयः । (सूत्र ४१) सर्पिरिक्षुरसं शर्करांबु वा पाययेदिति शेषेणान्वयः ।

अब यहांसे अगाडी धुवांसे भुलसेहुएके लक्षण कहतेहैं। धुवांसे माराहुआ मनुष्य ऊंचे श्वास लेताहै छींकें हों और खांसी हो ॥ ३८॥ नेत्रोंमें दाह हो और लाल होजाय, धुवांयुक्त श्वास ले, सुगंध दुर्गंधका ज्ञान न रहे ॥ ३९ ॥ तथा रसोंके स्वादकाभी ज्ञान भ्रष्ट हो एवं शब्दज्ञानभी ठीक २ न रहे (या सुनाई नहीं दे) तृष्णा और दाह हो, ज्वर हो, बेचैनी हो और मूर्च्छा आजाय ॥४०॥ धुवांका मारा हुवा मनुष्य ऐसा होताहै अब उसकी चिकित्सा सुनो-घृत, ईखका रस, मुनक्का इन्हें दूधमें मिलाकर पिलावे या सरबत पिलावे ॥४१॥ और मधुराम्ल रस वमनके अर्थ उपयोग करना चाहिये। वमन करानेसे कोठेकी शुद्धि होतीहै और धुवांकी गंध नाश होतीहै ॥४२॥

विधिनानेन शाम्यन्ति सदनक्षवथुज्वराः ॥ दाहमूर्च्छातृडा-
ध्मानश्वासकासाश्च दारुणाः ॥४३॥ मधुरैर्लवणाम्लैश्च कटुकैः
कवलग्रहैः ॥सम्यग्गृह्णातींद्रियार्थान्मनश्चास्य प्रसीदति ॥४४॥

इस विधिसे धूमदग्ध रोगीके थकान, छींक, दाह, ज्वर, मूर्च्छा, तृषा, अफारा, श्वास और खांसीको आदि ले सब दारुण विकार शांत होजातेहैं ॥ ४३ ॥ और मीठे, खट्टे, सलोने और चरपरे ग्रास मुखमें यथाक्रम रखनेसे इंद्रियोंका ठीक ज्ञान होजाताहै और चित्त प्रसन्न होजाताहै ॥ ४४ ॥

शिरोविरेचनं तस्मै दद्याद्योगेन शास्त्रवित् ॥ दृष्टिर्विशुध्यते
चास्य शिरो ग्रीवा च देहिनः ॥ अविदाहि लघु स्निग्ध-
माहारं चास्य कल्पयेत् ॥ ४५ ॥

और धूमदग्धको उक्त क्रियाके अनन्तर शिरोविरेचन दे (शिरकी दुष्ट रतूवत निकालदे) इस क्रियाको शास्त्रका जाननेवाला वैद्य यथायोगोंसे करे (कहीं तेज हुलासन सुंघादे) ठीक शिरके विरेचनसे दृष्टि शुद्ध होतीहै और रोगीके शिर और गरदन (गला) भी शुद्ध होतेहैं। और इस रोगीको आहार ऐसा देना चाहिये जो दाह पैदा न करे तथा हलका और चिकना हो ॥ ४५ ॥

लूआदिके मारेहुवोंका यत्न।

उष्णवातातपैर्दग्धे शीतैः कार्यो विधिः सदा ॥ शीतवर्षा-
निलहते उष्णं स्निग्धं च शस्यते ॥ ४६ ॥ तथातितेजसा
दग्धे सिद्धिर्नास्ति कथंचन॥इंद्रवज्राग्निदग्धेपि जीवति प्रति-
कारयेत् ॥ स्नेहाभ्यंगपरीषेकैः प्रदेहैश्च तथा भिषक् ॥४७॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

लू और धूपके मारे हुएको शीतल क्रिया यथोक्त करनी चाहिये। और सरदीके मारे हुए वर्षाके और वायु (सावटे) के मारे हुएकी गरम और तर चिकित्सा करे ॥ ४६ ॥ और जो बहुत अधिक जलगया हो उसकी सिद्धि (आरामी) नहीं हो सकती। और जो बिजलीका मारा हो वह यदि कुछ समयतक जीवता रहे तो उसका प्रकार यथोचित स्नेहाभ्यंग और परिषेक (सेचन) और प्रदेह उबटन आदिसे वैद्यको करना चाहिये ॥ ४७ ॥

परिशिष्टस्तंत्रांतरेऽनुभूतश्च ।

(श्लोक)-शुष्कच्छत्राकचूर्णेन चाग्निदग्धान्प्रसाधयेत् ।

अर्थ-सूखेहुए छत्राकके चूर्ण (बूडडीके बुराका) लगानेसे सब प्रकारके अग्निदग्ध निश्चय और शीघ्र आरोग्य (आराम) होतेहैं ।

इति पं० मुरलीधरशर्म वि० सुश्रुतस० भा०टी०सूत्रस्थाने द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.

अथातो जलौकावचारणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे जलौकावचारणीय (जोंख लगानेकी विधि) नामक अध्यायका (अर्थात् जोंख, सींग आदिसे रुधिर निकालना) व्याख्यान करतेहैं ।

नृपाढ्यबालस्थविरभीरुदुर्बलनारीसुकुमाराणामनुग्रहार्थम् ॥ परमसुकुमारोऽयं शोणितावसेचनोपायोऽभिहितो जलौकसः ॥१॥

राजा, धनाढ्य, बालक, बूढा,डरपोक, दुर्बल, स्त्री तथा अन्य कोमल (नाजुक) मनुष्योंके अनुग्रह (दयापूर्वक रोगनिवृत्ति) के अर्थ जोंखोंसे रुधिर निकालनेका बहुतही कोमल उपाय वर्णन किया है ॥ १ ॥

तत्र वातपित्तकफदुष्टशोणितं यथासंख्यं शृंगजलौकालाबुभिरवसेचयेत्स्निग्धशीतरूक्षत्वात्सर्वाणि सर्वैर्वा ॥ २ ॥

वायु, पित्त, कफसे बिगडेहुए रुधिरको यथाक्रम सींग, जोंख और तोंबेसे निकाले। क्योंकि सींग चिकना और जोंख ठंढी तथा तोंबा रूखा है इस हेतु वायुके बिगडे रक्तको सींगरसे खेंचना और पित्तसे बिगडेहुएको जोंखोंसे तथा कफसे बिगडे हुएको तोंबेसे निकाले। अथवा सब जगहपर सबसे काम ले सकतेहैं ॥ २ ॥

भवंति चात्र ॥ उष्णं समधुरं स्निग्धं गवां शृंगं प्रकीर्तितम् ॥ तस्माद्वातोपसृष्टे तु हितं तदवसेचने ॥३॥ शीताधिवासा मधुरा जलौका वारिसंभवा॥तस्मात्पित्तोपसृष्टे तु हिता सा चावसे-

चने ॥ ४ ॥ अलाबु कटुकं रूक्षं तीक्ष्णं च परिकीर्तितम् ॥
तस्माच्छ्लेष्मोपसृष्टे तु हितं तदवसेचने ॥ ५ ॥

इस जगह श्लोक कहे हैं कि-गौवोंका सींग गरम, मधुर और चिकना होताहै इसलिये वायुसे बिगडा हुवा रुधिर सींगसे निकालना अच्छा है ॥ ३ ॥ और जोंख जलसे उत्पन्न हुई ठंढी, सुगंधित और मधुर होतीहै इससे पित्तसे बिगडे रक्तको जोंखोंसे निकालना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ और तोंबी कडुवी, रूखी और तीक्ष्ण होतीहै इस हेतु कफसे बिगडे रक्तको तोंबीसे निकालना उचित है ॥ ५ ॥

तत्र प्रच्छिन्ने तनुवस्त्रपटलावनद्धेन शृंगेण शोणितमवसेचयेदाचूषणात् । सांतर्दीपयाऽलाब्व्या ॥ ६ ॥

यदि सींगसे रक्त निकालना हो तो पहले उस स्थानपर (व्रीहिपत्र नशतरसे) पछने लगाकर सींगके बारीक मुखपर बारीक (रेशमी) कपडा या मकडीका जाला लगाकर उससे चूसकर रक्त निकलवावे। और तोंबीसे निकालना हो तो पछने लगे स्थानपर औंधी तोंबी ऐसे लगावे कि, उसके अन्दर जलती हुई बत्ती चर्मसे अलग रहे ॥ ६ ॥

जोंखोंका वर्णन।

अथ जलायुका वक्ष्यंते ॥ ७ ॥ जलमायुरासामिति जलायुका जलमासामोक इति जलौकसः ता द्वादश तासां सविषाः षट् तावत्य एव निर्विषाः ॥ ८ ॥

अब जलायुका (जोंखों) का वर्णन करतेहैं ॥ ७ ॥ जल हैं आयु जिनकी इससे इनका नाम जलायुका है। और जल है ओक अर्थात् स्थान जिनका इस हेतु इन्हें जलौका कहतेहैं। ये बारह प्रकारकी होतीहैं उनमेंसे छः प्रकारकी सविष (जहरीली) होतीहैं और छही प्रकारकी निर्विष (जो रुधिर निकालनेमें श्रेष्ठ हैं) ॥ ८ ॥

विषयुक्त जोंख।

तत्र सविषाः कृष्णा कर्बुरा अलगर्दा इन्द्रायुधा सामुद्रिका गोचन्दना चेति ॥ ९ ॥

विषयुक्त (जहरी) जोंखें ये हैं-कृष्णा (काली), कर्बुरा (कबरी), अलगर्दा, इन्द्रायुधा, सामुद्रिका और गोचन्दना। इनके लक्षण ये हैं ॥ ९ ॥

तास्वञ्जनचूर्णवर्णा पृथुशिराः कृष्णा। वर्मिमत्स्यवदायता छिन्नोन्नतकुक्षिः कर्बुरा। रोमशा महापार्श्वा कृष्णमुख्यलगर्दा।

इंद्रायुधवदूर्ध्वराजिभिश्चित्रिता इंद्रायुधा । ईषदसितपीतिका विचित्रपुष्पाकृतिचित्रा सामुद्रिका । गोवृषणवदधोभागे द्विधाभूताकृतिरणुमुखी गोचन्दनेति ॥ १० ॥

उनमेंसे अञ्जन (कज्जल) के चूर्ण समान काली बडे शिरवाली कृष्णा होतीहै । वर्मिमत्स्य (एक प्रकारकी सर्पाकार मछली) की तरह विस्तारवाली और फटीसी ऊंची कुक्षिवाली कर्बुरा होतीहै । रोमोंसहित और बडी पांशूवाली और काले मुंहवाली अलगर्दा होतीहै । इंद्रधनुषके रंगके समान चित्र विचित्र राईकेसे दाने जिसपर हों वह इंद्रायुधा है । थोडी काली कुछ पीली और विचित्र (कई रंगके) फूलके समान आकृतिवाली सामुद्रिका होतीहै । बैलके अंडकोशकी भांति नीचेसे दो फांकसी जिसके हो और मुख छोटा हो वह गोचंदना जोंख होतीहै ॥ १० ॥

ताभिर्दष्टे पुरुषे दंशश्वयथुरतिमात्रं कंडूर्मूर्च्छा ज्वरो दाहश्छर्दिर्मदः सदनमिति लिंगानि भवंति ॥ ११ ॥ तत्र महागदः पानालेपननस्यकर्मादिषूपयोज्यः ॥ १२ ॥ इन्द्रायुधादष्टमसाध्यमित्येताः सविषाः सचिकित्सिता व्याख्याताः ॥ १३ ॥

इन विषयुक्त जोंखोंके डंकमें मनुष्योंके सोजा, अत्यंत खाज, मूर्च्छा, ज्वर, दाह, वमन, मद और थकान ये लक्षण होतेहैं ॥ ११ ॥ इन जोंखोंके विषशांतिके लिये महागदनामक प्रयोग जो अगदतंत्रमें अगाडी वर्णन कियाहै उसके यथोचित पीने, लेपन, नस्य आदिके उपयोगसे चिकित्सा करनी योग्य होतीहै ॥ १२ ॥ इंद्रायुधा जोंखका डंक असाध्य होताहै ये विषयुक्त जोंख चिकित्सासहित वर्णन कीगई । (भावार्थ यह कि, इन विषयुक्त जोंखोंसे कभी रुधिर नहीं निकाले क्योंकि, ये लाभकी जगह हानि करतीहैं) ॥ १३ ॥

निर्विष जोंख ।

अथ निर्विषाः । कपिला पिंगला शंकुमुखी मूषिका पुंडरीकमुखी सावरिका चेति ॥ १४ ॥

निर्विष जोंख ये हैं-१ कपिला, २ पिंगला, ३ शंकुमुखी, ४ मूषिका, पुंडरीकमुखी और-६ सावरिका ॥ १४ ॥

तत्र मनःशिलारंजिताभ्यामिव पार्श्वाभ्यां पृष्ठे स्निग्धमुद्गवर्णा कपिला । किंचिद्रक्ता वृत्तकाया पिंगाशुगा च पिंगला । यकृद्वर्णा शीघ्रपायिनी दीर्घतीक्ष्णमुखी शंकुमुखी । मूषिकाकृति-

वर्णाऽनिष्टगंधा च मूषिका । मुद्गवर्णा पुंडरीकतुल्यवक्त्रा पुंडरीकमुखी । स्निग्धा पद्मपत्रवर्णाऽष्टादशांगुलप्रमाणा सावरिका सा च पश्वर्थे । इत्येता निर्विषा व्याख्याताः ॥ १५ ॥

(इनके लक्षण ये हैं)-मेनसिलके समान रंगवाले जिसके दोनों पँसवाडे हों और पीठ चिकनी मूंगके रंगसमान हो वह कपिला है । कुछ लाल, गोल, पिंग, नारंगी रंगवाली, शीघ्र चलनेवाली सो पिंगला है । यकृत्के समान वर्णवाली, शीघ्र रुधिर पीनेवाली बडे और तीक्ष्णमुखवाली शंकुमुखी होतीहै । मूसीके समान आकृति और वर्णवाली, दुर्गंधयुक्त मूषिका है । मूँगके रंगसमान हरी, कमलकी भांति मुखवाली पुंडरीकमुखी होतीहै । चिकनी, कमलपत्रसमान वर्णवाली, अठारह अंगुल प्रमाणवाली सावरिका होतीहै । यह सावरिका पशुवोंका रक्त निकालनेमें काम आतीहै । इसभांति ये निर्विष वर्णन की हैं ॥ १५ ॥

तासां यवनपांड्यसह्यपौतनादीनि क्षेत्राणि । तेषु महाशरीरा बलवत्यः शीघ्रपायिन्यो महाशना निर्विषाश्च विशेषेण भवंति १६॥

इनके क्षेत्र यवन (यूनान), पांड्य, (दिल्लीप्रांत), सह्याद्रि पर्वतके निकट तथा मथुरामंडल हैं । इन देशोंके जलाशयोंमे ये निर्विष जोंख बडी बडी, बलवाली, शीघ्र रुधिर पीनेवाली और अधिक रक्त पीनेवाली विशेषतासे होतीहैं ॥ १६ ॥

तत्र सविषमत्स्यकीटदर्दुरमूत्रपुरीषकोथजाताः कलुषेष्वंभःसु च सविषाः ॥ १७ ॥

उन देशोंमेंभी विषयुक्त मत्स्य, कीडे, मेढक मूत्र विष्ठाके कोथसे तथा मलयुक्त जलमें सविष जोंखें होती हैं ॥ १७ ॥

पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगंधिककुवलयपुंडरीकशैवालकोथजाताः विमलेष्वंभःसु च निर्विषाः ॥ १८ ॥

पद्म (श्वेतकमल), उत्पल (कुछ नीला), नलिन (गुलाबी), कुमुद (कमोदनी), सौगंधिक(सुगंधयुक्त), कुवलय (रक्त), पुण्डरीक (आसमानी) ऐसे कमलों और सिवालके कोथसे जो पैदा हों और निर्मल जलमें रहें वे जोंख विषरहित होतीहैं ॥ १८ ॥

भवति चात्र । क्षेत्रेषु विचरंत्येताः सलिलेषु सुगंधिषु । न च संकीर्णचारिण्यो न च पंकेशयाः सुखाः ॥ १९ ॥

(सूत्र १५) पिंगा दीपशिखाभा पिंगलवर्णा । (सूत्र १७) यवनपाड्यादिषु विशेषेण निर्विषा भवंति तत्रापि सा विषमत्स्यकीटादिकोथजा मलिनजले च सविषा भवति । (सूत्र १९) एताः पूर्वार्द्धे निर्विषा उत्तरार्द्धे चाऽनिशः ।

यहां श्लोक है कि-ये उक्त क्षेत्रोंमें सुगंधियुक्त निर्मल जलमें रहनेवाली श्रेष्ठ होतीहैं और जो थोडे जलमें कीचकांदेमें रहनेवालीहैं वे श्रेष्ठ नहीं ॥ १९ ॥

तासां प्रग्रहणमार्द्रचर्मणाऽन्यैर्वा प्रयोगैर्गृह्णीयात् ॥ २० ॥ अथैनां नवे महति घटे सरस्तडागोदकपंकमावाप्य निदध्यात्। भक्ष्यार्थे चासामुपहरेच्छैवालं वल्लूरमौदकांश्च कंदांश्चूर्णीकृत्य शय्यार्थं तृणमौदकानि च पत्राणि त्र्यहात्त्र्यहाच्चान्यज्जलं भक्ष्यं च दद्यात्। सप्तरात्रात्सप्तरात्राच्च घटमन्यं संक्रामयेत् ॥ २१ ॥

इन जोंखोंको गीले चमडेसे पकडे अथवा और उपायसे पकडे ॥ २० ॥ फिर इनको नवीन अच्छे बडे घडेमें सरोवर तलावका जल और कीच भरकर उसमें रखले और खानेके वास्ते सिवाल (काई) सूखामांस और जलके कंद चूरा करके डालदे। और सोने (लोटने) के लिये तृण और जलके वृक्षों (कमलादि) के पत्ते रक्खे। और दूसरे तीसरे दिन जल और खानेकी वस्तु और डालता रहे। सात सात दिनमें और नवीन घड़ा बदलता रहे ॥ २१ ॥

दूषितजलौका।

भवति चात्र ॥ स्थूलमध्याः परिक्लिष्टाः पृथ्व्यो मंदविचेष्टिताः ॥
अग्राहिण्योऽल्पपायिन्यः सविषाश्च न पूजिताः ॥ २२ ॥

यहां श्लोक है कि-जो जोंख बीचसे मोटी, करडी, बडी, मंदचेष्टावाली, न चिमटनेवाली, स्वल्प रुधिर पीनेवाली और विषयुक्त इतनी प्रकारकी श्रेष्ठ नहीं ॥ २२ ॥

जलौका लगानेकी विधि।

अथ जलौकोऽवसेकसाध्यव्याधितमुपवेश्य संवेश्य वा विरूक्ष्य चास्य तमवकाशं मृद्गोमयचूर्णैर्यद्यरुजः स्यात् ॥ २३ ॥ गृहीताश्च ताः सर्षपरजनीकल्कोदकप्रदिग्धगात्रीः सलिलसरकमध्ये मुहूर्त्तस्थिता विगतक्लमा ज्ञात्वा ताभी रोगं ग्राहयेत् ॥ २४ ॥ सूक्ष्मशुक्लार्द्रपिचुप्लोतावच्छन्नां कृत्वा मुखमपावृणुयादगृह्णत्यै क्षीरबिंदुं शोणितबिंदुं वा दद्याच्छस्त्रपदानि वा कुर्वीत यद्येवमपि न गृह्णीयात्तदान्यां ग्राहयेत् ॥ २५ ॥

(सूत्र २३) यदि अरुजः अव्रणः स्यात्तदा विलिख्य कर्म कुर्यात्। (सूत्र २५) तासामंभोभिः पूर्णभाजनस्थानामचेष्टयाऽऽहारानभिलाषेण च ज्ञात्वा ता विवर्जयेदिति। वृद्धवाग्भटः।

जलौकाओंसे रक्त निकालने योग्य जो रोगी हो उसे लिटाकर या बिठाकर उसके रक्त निकालनेके स्थानको यदि रोग (घाव) न हो तो मिट्टी और गोबरके चूर्णसे रूखा करदे (लगावे) (इससे प्रयोजन यह है कि जौंख शीघ्र लग जावें) ॥ २३ ॥ फिर जो पकड़ी और पाली हुई जोंखें हों सरसों और हलदीको पानीमें पीसकर उससे उन्हें खूब सूंत सूंत कर धोवे । फिर जल और तक्रमें अनुमान दोघडी रख छोडे जिससे उनकी ग्लानि (थकान) दूर हो जाय । थकान दूर हुई जानकर फिर उनसे रोग ग्रहण करावे (रक्त निकालनेकी जगहपर लगावे) ॥२४॥ बारीक सुपेद भीगे हुए कपडेमें लपेटकर जहां लगाना हो वहां उनका मुँह लगादे और जो नहीं लगें तो उनके लिये दूध या रुधिरकी बूंद रखकर या बारीक शस्त्रसे कुरेदकर लगावे । यदि ऐसेभी नहीं लगे तो उसे जानेदे और दूसरी लगावे ॥२५॥

यदा च निविशतेऽश्वखुरवदाननं कृत्वोन्नम्य च स्कन्धं तदा जानीयाद्गृह्णातीति । गृह्णतीं चार्द्रवस्त्रावच्छन्नां धारयेत्सेचयेच्च ॥ २६ ॥

जब घोडेके खुरके समान मुँहकरके और स्कंध ऊँचा करके (चिमटे) प्रवेश करे तो जानले कि, लगगई और जब लगजाय तब उसपर गीला कपडा रखदे या जल टपकादिया करे (जिससे वह प्रसन्न रहकर अच्छे प्रकार रक्त खैंचे) ॥२६॥

दंशे तोदकंडूप्रादुर्भावैर्जानीयाच्छुद्धमियमादत्त इति शुद्धमाददानामपनयेत् ॥२७॥ अथ शोणितगंधेन न मुंचेन्मुखमस्याः सैंधवचूर्णेनावकिरेत् ॥ २८ ॥ अथ पतितां तंदुलकंडनप्रदिग्धगात्रीं तैललवणाभ्यक्तमुखीं वामहस्तांगुष्ठांगुलीभ्यां गृहीतपुच्छां दक्षिणहस्तांगुष्ठांगुलीभ्यां शनैः शनैरनुलोमानुमार्जयेदामुखाद्वामयेत्तावद्यावत्सम्यग्वांतलिंगानीति ॥ २९ ॥

जब डंकमें दर्द और खाज होने लगे तो जानले कि, अब यह शुद्ध रक्त खेंचती है फिर शुद्धरक्त खैंचनेवालीको छुटाले ॥ २७ ॥ यदि रुधिरकी गंधसे वह नहीं छोडे तो उसके मुँहपर सेंधेनमकका चूरा बुरका दे ॥ २८ ॥ जो छुट गई तो उसे चावलोंके छडनसे मलकर धोवे और मुहपर तैल और लवण मले । फिर बायें हाथकी अंगुली और अंगूठेसे पूँछ पकडकर दहने हाथके अंगूठे और अंगुलीसे धीरे धीरे नीचेको सूंते (पियाहुवा रुधिर निचोड डाले) और जबतक मुहसे अच्छी तरह वमनके चिह्न (झाग) आनेलगे तबतक सूंते ॥ २९ ॥

सम्यग्वांता सलिलरसकन्यस्ता भोक्तुकामा सती चरेत् या सीदति न चेष्टते सा दुर्वांता तां पुनस्सम्यग्वामयेत्॥ ३० ॥ दुर्वांताया व्याधिरसाध्य इंद्रमदो नाम भवति ॥ ३१ ॥ अथ सुवांतां पूर्ववत्संनिदध्यात् ॥ ३२ ॥

साफ निचोडी हुई जलपात्रमें छोडनेसे भूखीकी भांति इधर उधर चलती है। जो साफ नहीं हुई वह तलीमें क्लेशितसी जा बैठे और चले फिरे नहीं, उसे फिर अच्छीप्रकारसे निचोडकर रक्त साफ करे॥ ३० ॥ बिना अच्छी निचोडी (जिसके पेटमें दुष्टरक्त रहजाय) के इन्द्रमदनाम असाध्यव्याधि होजातीहै ॥ ३१ ॥ अच्छी साफ निचोडी हुइयोंको पहलेकी भांति उसी जलके घटमें रख छोडे॥३२॥

शोणितस्य च योगायोगानवेक्ष्य जलौकोव्रेणान्मधुनावघट्टयेच्छीताभिरद्भिश्च परिषेचयेद्बध्नीयाद्वा व्रणं कषायमधुरस्निग्धशीतैश्च प्रदेहैः प्रदिह्यादिति ॥ ३३ ॥ भवति चाऽत्र ॥ क्षेत्राणि ग्रहणं जातिः पोषणं सावचारणम्॥जलौकसां च यो वेत्ति तत्साध्यान् स जयेद्गदान् ॥ ३४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

रुधिरका योग अयोग देखकर जोंखोंके घावोंपर शहत मले। अथवा ठंढा जल छिडके, या (निंबपत्रादिसे ढककर) बांध दे, या कसेला मीठा चिकना ठंढा लेप करदे (जैसा उचित हो वैसा करे) ॥ ३३ ॥ यहां श्लोक है कि–जलौकाओंके रहनेके देश (स्थान) तथा पकड़ना, उनकी जाति, रखना (पालना) तथा लगाना इत्यादि बातोंको जो भिषक् जानताहै वहही इन जोंखोंद्वारा इनके साध्य रोगोंको जीतताहै (आराम करताहै) ॥ ३४ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथातः शोणितवर्णनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे शोणितवर्णनीय (रुधिरके वर्णनके) अध्यायका व्याख्यान करतेहैं।

तत्र पांचभौतिकस्य चतुर्विधस्य षड्रसस्य द्विविधवीर्यस्याऽष्टविधवीर्यस्य वानेकगुणस्योपयुक्तस्याऽऽहारस्य सम्यक्परिणतस्य यस्तेजोभूतः सारः परमसूक्ष्मः स रस इत्युच्यते ॥ १ ॥

पंचभूतात्मक (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाचों तत्वोंके गुणवाले) और चतुर्विध (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय) षट् रस (छहों रसवाले) और द्विविध वीर्य (शीत उष्ण वीर्यवाले) तथा अष्टविध (सर आदि आठ प्रकारके वीर्यवाले) और अनेक गुणवाले भोजन कियेहुए आहारका ठीक ठीक परिपाक होनेसे जो तेजस्वरूप परम सूक्ष्म सार है वह रस कहलाताहै ॥ १ ॥

तस्य च हृदयं स्थानं स हृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रविश्य(ऊर्ध्वगा दश दश चाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यग्गाः) कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयति वर्धयति धारयति यापयति जीवयति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा ॥२॥तस्य शरीरमनुधावतोऽनुमानाद्गतिरुपलक्षयितव्या क्षयवृद्धिवैकृतैः ॥ ३ ॥

उस रसका स्थान हृदय है वह रस हृदयसे चौबीस नाडियें करकेजो दश ऊपरको दश नीचेको और चार तिरछी गई हैं (इनका वर्णन शारीरकस्थानमें होगा) इनमें प्राप्त होकर सारे शरीरको दिन दिन प्रति तृप्तकरता, बढाता, धारण करता प्राप्तकरता और अदृष्टहेतुक कर्मकरके जिलाता (सजीव रखता) है ॥ २ ॥ उस सारे शरीरमें गमन करनेवाले (पहुँचनेवाले) रसकी गति अनुमानसे वृद्धि, क्षय और विकारयुक्त जैसी हो जाननी चाहिये ॥ ३ ॥

तस्मिन्सर्वशरीरावयवदोषधातुमलाशयानुसारिरसे जिज्ञासा किमयं सौम्यस्तैजस इति ॥ ४ ॥ अत्रोच्यते स खलु द्रवानुसारी स्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिर्विशेषैः सौम्य इत्यवगम्यते॥५॥स खल्वाप्यो रसो यकृत्प्लीहानौ प्राप्य रागमुपैति॥६॥

उस समस्त शरीरके अंग प्रत्यंग और दोष अर्थात् वायु, पित्त, कफ और धातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र) और मल, आशयोंमें पहुंचनेवाले रसकी जिज्ञासा करनी (मालूम करना चाहिये) कि, यह सौम्य (शीतल) है या आग्नेय (उष्ण) ॥ ४ ॥ इसमें कहाजाताहै कि, यह रस पतला, फैलनेवाला स्निग्धता करनेवाला, जीवनरूप, तृप्तिकारक और धारण इत्यादिक विशेष गुणोंसे सौम्यही प्रतीत होताहै ॥ ५ ॥ वह जलरूप रस जब यकृत् (जिगर) और प्लीहा (तिल्ली) में पहुँचताहै तब वहां जाकर रक्तभावको प्राप्त होजाताहै (सुरख हो जाता है) ॥ ६ ॥

(श्लो० २) अत्रोर्द्धगा दशदश चाधोगामिन्यश्चतस्रस्तिर्यग्गा इति वाक्यांतरं तु विंशतिधमनीप्रतिपादनरूपकम् ।

भवति चात्र ॥ रंजितास्तेजसा त्वापः शरीरस्थेन देहिनाम् ॥ अव्यापन्नाः प्रसन्नेन रक्तमित्यभिधीयते ॥७॥ रसादेव स्त्रियां रक्तं रजःसंज्ञं प्रवर्तते ॥ तद्वर्षाद्द्वादशादूर्ध्वं याति पंचाशतः क्षयम् ८

इस विषयमें श्लोक है कि–शरीरमें रहनेवाले प्रसन्न (क्लेशरहित) तेज (रंजक पित्त) करके (पकाहुवा) रंगा हुवा जो उपाधिरहित जलरूप रस है वही रक्त होजाताहै ॥ ७ ॥ रससेही स्त्रियोंका रजसंज्ञक आर्तवरक्त प्रवर्त होताहै । वह बारहवर्षकी अवस्थासे पीछे प्रगट होताहै और पचास वर्ष पीछे क्षय होजाताहै ८

आर्तवं शोणितं त्वाग्नेयमग्निषोमीयत्वाद्गर्भस्य । पांचभौतिकं चापरे जीवरक्तमाहुराचार्याः ॥ ९ ॥

आर्तवरक्त आग्नेय (अग्निप्रकृतिवाला) है क्योंकि, गर्भ अग्नि और सोम द्वंद्वात्मक (गरमी और ठंढक मिलकर) होताहै । और कई आचार्य रक्तको पंचतत्त्वात्मक कहतेहैं । और कई रक्तकोही जीवरूप कहतेहैं ॥ ९ ॥

विस्रता द्रवता रागः स्पंदनं लघुता तथा ॥ भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यंते चाऽत्र शोणिते॥१०॥रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते ॥ मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्ज्ञः शुक्रस्य संभवः ॥११॥

रुधिरमें पांचों तत्त्वोंके गुण दिखाई देतेहैं । जैसे–गाढापन पृथ्वीका गुण है और पतलापन (बहना) जलका तथा सुरखी अग्निका और चलना (फैलना) वायुका एवं लघुता (हलकापन) आकाशका गुण है (इससे रक्त पंचतत्त्वात्मक प्रतीत होताहै) ॥ १० ॥ रससे रक्त बनता है और रक्तसे मांस, मांससे मेद (चरबी) मेदसे अस्थि (हाड), अस्थिसे मज्जा (मांगी) और मज्जासे वीर्य बनताहै ॥ ११ ॥

तत्रैषां धातूनामन्नपानरसः प्रीणयिता ॥ १२ ॥ रसजं पुरुषं विद्याद्रसं रक्षेत्प्रयत्नतः ॥ अन्नात्पानाच्च मतिमानाऽऽचाराच्चाऽप्यतन्द्रितः ॥ १३ ॥ तत्र रस गतौ धातुरहरहर्गच्छतीति रसः । स खलु त्रीणि कलासहस्राणि पंचदश च कला एकैकस्मिन्धातावऽवतिष्ठत एवं मासेन रसः शुक्रो भवति स्त्रीणां चाऽऽर्तवमिति ॥ १४ ॥

(सूत्र ९) सौम्य शुक्रमाग्नेयमार्तवमित्यग्नीषोमीयत्वाद्गर्भप्रादुर्भाव इति । (सूत्र १४) पचदशाधिकत्रिसहस्रकालात्मकस्य कालस्य परिमाणं सार्धपचदण्डाधिकपंचाहोरात्रमिति एतावता कालेन रसो रक्ततामुपयाति तथा चैव रक्तं मासत्वमिति क्रमेण ।

सो अन्नपानजनित रसही इन सब धातुवेंको पोषण करनेवाला है ॥ १२॥ मनुष्यशरीरको रसहीसे पैदाहुवा समझो इसी कारण यत्न करके भोजनसे, पानसे, आचार (व्यवहार) से सावधान होकर बुद्धिमान्को रसकी खूब रक्षा करनी चाहिये (अर्थात् क्षय न होजाय बिगड़ न जाय) ॥ १३ ॥ रस गतौ इस धातुसे अर्थात् जो दिन दिन चलता रहै वह रस कहलाताहै वह रस ३०१५ तीन हजार पंदरह कलातक एक एक धातुमें रहकर ऐसे एक महीनेमें रसही शुक्र (वीर्य) बनजाताहै (जैसे ऊपर ग्यारहवें सूत्रमें क्रम लिखाहै उस क्रमसे) और वही रस एक मासमें स्त्रियोंके आर्तव बन जाताहै ॥ १४ ॥

भवति चाऽत्र । अष्टादशसहस्राणि संख्या चाँऽस्मिन्समुच्चये ॥
कलानां नवतिः प्रोक्ता स्वतंत्रपरतंत्रयोः ॥ १५ ॥

यहां श्लोक है कि–इस समुच्चय (रससे वीर्य बनते) में स्वतंत्र परतंत्र और रूपसे १८०९० अठारह हजार नव्वे कला मात्र समय लगता है ॥ १५ ॥

स शब्दार्चिर्जलसंतानवदणुना विशेषोनुधावत्येवं शरीरं केवलम् ॥१६॥ वाजीकरण्यस्त्वोषधयः स्वजलगुणोत्कर्षाद्विरेचनवदुपयुक्ताः शुक्रं शीघ्रं विरेचयंति ॥ १७ ॥

वह केवल रसभी शब्द और अग्नि (तेज) तथा जलकणवत् सूक्ष्मरूपसे विशेष करके समस्त शरीरमें गमन करता है ॥ १६ ॥ और वाजीकरण औषधि अपने निज पराक्रमके गुणकी उत्कृष्टतासे उपयोग कीहुई विरेचनकी भांति वीर्यको शीघ्र निकालती (शरीरमेंसे निचोडकर शुक्रधराकलामें प्राप्त करती) है (इसीसे मैथुनशक्ति बढजाती है) ॥ १७ ॥

तथा हि पुष्पमुकुलस्थो गंधो न शक्य इहास्तीति वक्तुं नैवं नास्तीत्यथवास्ति । सतां भावानामभिव्यक्तिरिति कृत्वा केवलं सौक्ष्म्यान्नाभिव्यज्यते । स एव गंधो विवृतपत्रकेशरैः कालांतरेणाभिव्यक्तिं गच्छत्येवं बालानामपि वयःपरिणामाच्छुक्रप्रादुर्भावो भवति रोमराज्यादयोऽर्थार्तवादयश्च । विशेषान्नारीणां रजांसि चोपचीयमाने शनैः शनैः स्तनगर्भाशययोन्यभिवृद्धिर्भवति ॥ १८ ॥

जैसे फूलकी कच्ची कलीमें यह नहीं कहा जासकता कि इसमें गंध है या नहीं है वस्तुतः होनेवाले पदार्थोंका प्रादुर्भाव हुआही करता है ऐसे अनुमान करलिया

जाता है और सूक्ष्मतासे प्रगट नहीं होते और जब वह कली खिलती है (पत्ते पैखडी प्रगट होते हैं) तब गंधभी प्रत्यक्षरूपसे प्रगट होजाती है ऐसेही बालकोंकी भी अवस्था बढनेपर शुक्र प्रत्यक्ष प्रगट होताहै और ऐसेही रोमराजि (मूछ, डाढी, पेटकी सेली) तथा स्त्रियोंका आर्तव भी समझो । विशेषकरके स्त्रियोंका आर्तव संचय होनेपर धीरे धीरे कुच और गर्भाशय योनि आदिकी वृद्धि होती है ॥ १८ ॥

स एवान्नरसो वृद्धानां जरापरिपक्वशरीरत्वान्न प्रीणनो भवति ॥ १९ ॥ त एते शरीरधारणाद्धातव इत्युच्यन्ते ॥ २० ॥ तेषां क्षयवृद्धी शोणितनिमित्ते तस्मात्तदधिकृत्य वक्ष्यामः ॥ २१ ॥

वही अन्नका रस बूढे मनुष्योंको बुढापेसे शरीर पकजानेके कारण पुष्टिकारक नहीं होता ॥ १९ ॥ ये (रस रक्त मांस मेद अस्थि शुक्र सातों) शरीरको धारण करते हैं इससे ये सात धातु कहलाते हैं ॥ २० ॥ इन सातों धातुओंकी वृद्धि और क्षय रुधिरके आधीन है इस कारणसे रुधिरकी मुख्यता (प्रधानता) करके वर्णन करते हैं ॥ २१ ॥

वायु पित्त और कफसे बिगडे रक्तके लक्षण ।

तत्र फेनिलमरुणं कृष्णं परुषं तनु शीघ्रगमस्कंदि च वातेन दुष्टम् ॥ २२ ॥ नीलं पीतं हरितं श्यावं विस्रमनिष्टं पिपीलिकामक्षिकानामस्कंदि च पित्तदुष्टम् ॥ २३ ॥ गैरिकोदकप्रतीकाशं स्निग्धं शीतलं बहुलं पिच्छलं चिरस्राविमांसपेशीप्रभं श्लेष्मदुष्टं च ॥ २४ ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तं कांजिकाभं विशेषतो दुर्गन्धि च सन्निपातदुष्टम् ॥ २५ ॥ पित्तवद्रक्तेनातिकृष्णं च ॥ २६ ॥ द्विदोषलिंगं संसृष्टम् ॥ २७ ॥

झागसहित लाल कुछ काला रूखा थोडा शीघ्रचारी (देरसे न चले) हलका रुधिर वायुसे बिगडा समझे ॥ २२ ॥ तथा पित्तसे बिगडाहुआ रुधिर नीला, पीला, मूंगिया, काला, आमगंध, चैंटी और मक्खियोंको अप्रिय, हलका और शीघ्र निकलनेवाला होताहै ॥ २३ ॥ कफसे बिगडाहुआ रुधिर गेरूके जलके समान चिकना, ठंढा, अधिक गाढा, देरसे झिरनेवाला, मांसकी फुटक जैसा होताहै ॥२४॥ जिसमें सब लक्षण हों कांजीके समान हो अधिक दुर्गंध आवे वह सन्निपातसे बिगडा जानो

(सूत्र २०) डुधाञ् धारणपोपणयोः इत्यस्माद्धातोस्तुन् दधति: शरीरमिति धातवः । (सूत्र २२ । २३) अस्कंदि अगुरु * विस्रमामगंधि अपक्वमासगंधि च । (सूत्र २६) रक्तेन दुष्टं रक्तं कथमित्यत्र दुष्टरक्तसंसर्गाददुष्टं रक्तं पित्तदुष्टरक्ततुल्यमतिकृष्णं च ॥

॥ २५ ॥ जिसमें पित्तके लक्षण हों और अधिक काला हो वह रक्तसेही रक्त बिगडा समझो॥२६॥और जिसमें दो दोषोंके लक्षण हों वह उनहीं दो दोषोंसे बिगडा जानो २७

जीवशोणितमन्यत्र वक्ष्यामः ॥ २८ ॥ इंद्रगोपप्रतीकाशमसंहतमविवर्णं च प्रकृतिस्थं जानीयात् ॥ २९ ॥ विस्राव्यान्यन्यत्र वक्ष्यामः ॥ ३० ॥

जीवरक्तको और जगह वर्णन करेंगे ॥ २८ ॥ शुद्ध रक्तके लक्षण वीरबहूटीके समान शुद्ध लालरंग हो, न बहुत गाढा, न बहुत पतला हो (निर्मल) हो तथा विवर्ण (विकारके रंगका न हो) उसे स्वस्थ प्रकृतिका शुद्धरक्त जाने ॥ २९ ॥ रक्त निकालने योग्यको अगाडी और जगह कहेंगे ॥ ३० ॥

रक्त नहीं निकालने योग्य।

अथाऽविस्राव्याः सर्वांगशोफः क्षीणश्चाम्लभोजननिमित्तः पांडुरोग्यर्शसोदरिशोषिगर्भिणीनां च श्वयथवः ॥ ३१ ॥

जिसके सब शरीरमें शोथ हो, क्षीण हो, अथवा अम्लभोजनसे उत्पन्न शोथ हो तो रक्त नहीं निकलवाना चाहिये एवं पाण्डुरोग, ववासीर, उदररोग, शोषरोग वालेके तथा गर्भिणी स्त्रीके भी शोथ हो तो रक्त नहीं निकलवाना चाहिये ॥ ३१ ॥

रक्तस्राव।

तत्र शस्त्रविस्रावणं द्विविधं प्रच्छानं सिराव्यधनं च। तत्रर्जु[1]व[2]संकीर्णं[3] सूक्ष्मं समममनवगाढमनुत्तानमाशु[12] च[13] शस्त्रं[11] पातयेन्मर्म[14]शिरास्नायुसंधीनां चानुपघाति ॥ ३२ ॥

· शस्त्रसे रक्त निकालना दो प्रकारका है एक पछने लगाना दूसरा शिरावेधन (फस्त खोलना) उनमें सूधा सावकाश और बारीक इकसार जो बहुत नीचे न घुसजाय और न बहुत ऊपरही रहजाय ऐसे शीघ्र शस्त्र चलावे (और यहभी ध्यान रक्खे कि) मर्मस्थान, नस और स्नायु तथा संधियोंको हानि न पहुँचे ॥ ३२ ॥

तत्र[1] दुर्दिने[2] दुर्विद्धे[3] शीतवातयोरस्विन्नेऽभुक्तवतः[6] स्विन्नत्वाच्छोणितं[10] न स्रवत्यल्पं[12] वा[11] स्रवति[13] ॥ ३३ ॥ भवति चात्र-

दुर्दिनमें तथा अयोग्य शस्त्र लगनेसे ठंढ पहुँचने वायु लगनेसे विना पसीना दिलाये या विना भोजन करे हुए (रोगीका रक्त) जमजानेसे रुधिर नहीं निकलता या कम निकलता है ॥ ३३ ॥ यहां श्लोक है कि-

---

(सूत्र २९) असंहतममिश्रितं मलादिमिश्रीभावरहितम्। (सूत्र ३१) अर्शोदरिशोषिगर्भिण्यश्च साधारणशोथयुक्ता अपि न विस्राव्या एभ्योऽन्ये तु सर्वांगशोथिनो वर्ज्या नत्वेकांगशोथिनश्चेति ॥

मदमूर्च्छाश्रमार्तानां वातविण्मूत्रसंगिनाम् ॥
निद्राभिभूतभीतानां नृणां नासृक् प्रवर्तते ॥ ३४ ॥

मद (नशे) और मूर्च्छा तथा परिश्रमसे व्याप्त मनुष्यों तथा अधोवात और मलमूत्रकी रुकावटवालों और नींद तथा भययुक्त जनोंका ठीक रुधिर नहीं निकलता ३४

तद्दुष्टं शोणितमनाह्रियमाणं कंडूशोफरागदाहपाकवेदना जनयेत् ॥३५॥ अत्युष्णातिस्विन्नातिविद्धेष्वज्ञैर्विस्रावितमतिप्रवर्तते ॥३६ ॥

वह दुष्ट रक्त जो शस्त्रकर्म करनेसे नहीं निकला (रह गया) हो खाज शोफ (सूजन) रक्तता दाह और पाक (पक जाना) और दर्द उत्पन्न करता है ॥३५॥ और विशेष गरमी, अधिक पसीनेसे, अधिक वेधनसे, अज्ञ (मूर्ख जर्राह) के निकालने (नश्तर लगाने) से बहुतही अधिक रुधिर निकलजाता है ॥ ३६ ॥

तदतिप्रवृत्तं शिरोभितापमान्ध्यमधिमंथं तिमिरप्रादुर्भावं धातुक्षयमाक्षेपकं पक्षाघातमेकांगविकारं तृष्णादाहौ हिक्कां कासं श्वासं पांडुरोगं मरणं चापादयति ॥ ३७ ॥ भवति चात्र-

अधिक निकला हुआ रक्त-शिरका दर्द, अंधापन, अधिमंथ (एक नेत्ररोग), अंधेरी आना, धातुक्षय, आक्षेपक (जिसमें बारबार गिरे ऐसी वातव्याधि), पक्षाघात (लकवा), एकांगविकार (कोई अंगमें विकार हो), तृषा, दाह, हिचकी, खांसी, श्वास (दमा), पांडु (पीलिया) रोग इतने रोग पैदा करता है अथवा मृत्युकारक होताहै ॥ ३७ ॥ इसमें श्लोक है कि-

तस्मान्न शीते नात्युष्णे नास्विन्ने नातितापिते । यवागूं प्रतिपीतस्य शोणितं मोक्षयेद्भिषक् ॥ ३८ ॥ सम्यग्गत्वा यदा रक्तं स्वयमेवावतिष्ठते ॥ शुद्धं तदा विजानीयात्सम्यग्विस्रावितं तु तत्॥३९॥

इस कारणसे न तो शीतकालमें रक्त निकालना चाहिये न अधिक गरमीमें और न अधिक पसीना दिलाकर और न बहुत तपाकर रक्त निकाले किन्तु यवागू पिलाके विधिसे वैद्यको रक्त निकालना उचित है ॥ ३८ ॥ जब ठीक ठीक रक्त निचडकर आपही बन्द होजाय तब शुद्ध और ठीक रक्त निकला जाने ॥ ३९ ॥

ठीक रक्त निकलेकी पहचान ।

लाघवं वेदनाशांतिर्व्याधेर्वेगपरिक्षयः ॥ सम्यग्विस्राविते लिंगं

(सूत्र ३८)शीतेऽत्युष्णे खिन्नेऽतितापिते रक्तं न मोक्षयेत् । (तथा च) यवागूपीतस्य शोणित मोक्षयेदेवेति॥

प्रसादो मनसस्तथा ॥४०॥ त्वग्दोषा ग्रंथयः शोफा रोगाः शोणितजाश्चये। रक्तमोक्षणशीलानां न भवन्ति कदाचन॥४१॥

ठीक २ रक्त निकलनेके ये लक्षण हैं कि, हलकापन, पीडाकी शांति, रोगके वेगका क्षय और चित्तमें प्रसन्नता हो ॥ ४० ॥ जिसके ठीक रक्त निकलजाता है उसके फिर चर्मके दोष (जिल्दकी बीमारियां) (मांसादिकी) गांठें सूजन तथा रुधिरके जितने रोग हैं वे (बहुत दिनतक) कदाचित् नहीं होते ॥ ४१ ॥

अल्प रक्त निकले या न निकले तो यत्न ।

अथ स्वल्पप्रवर्तमाने रक्ते एतैः शीतशिवाकुष्ठतगरपाठाभद्रदारुविडंगचित्रकत्रिकटुकागारधूमहरिद्रार्काङ्कुरनक्तमालफलैर्यथालाभं त्रिभिश्चतुर्भिः समस्तैर्वा चूर्णीकृतैः सर्षपतैललवणप्रगाढैर्व्रणमुखमवघर्षयेदेवं सम्यक्प्रवर्तते ॥ ४२ ॥

यदि रक्त स्वल्प निकले तो कपूर, हरडे, कूट, तगर, पाठा, देवदारु, विडंग, चित्रक, त्रिकटु (सूंठ, मिरच, पिप्पली), धमांसा, हलदी, आककी कोंपल, करंजवेके फल इनमें जो मिलें तीनें या चार या सबको पीसकर सरसोंके तल और लवणमें मिलाकर नश्तरके घावके मुहपर मले इससे ठीक २ रक्त निकल जावेगा ॥ ४२ ॥

विशेष रक्त निकलने पर यत्न ।

अथातिप्रवृत्ते लोध्रमधुकप्रियंगुपतंगगैरिकसर्जरसरसांजनशाल्मलीपुष्पशंखशुक्तिमाषयवगोधूमचूर्णैः शनैर्व्रणमुखमवचूर्ण्यांगुल्यग्रेणावपीडयेत् ॥ ४३ ॥ सालसर्जार्जुनारिमेदमेषशृंगधवधन्वनत्वग्भिर्वा चूर्णिताभिः। क्षौमेण वाध्मापितेन । समुद्रफेनलाक्षाचूर्णैर्वा। यथोक्तैर्व्रणबंधनद्रव्यैर्गाढं बध्नीयात् ॥ ४४ ॥

और जब विशेष रक्त निकले (बंद न होता हो) तब लोध, मुलहटी, गुंद्रा, पतंग, गेरू, राल, रसोत, संभलका फूल, शंख, सीपी, उड़द, जौ और गेहूंका चून इन्हें पीस घावपर बुरकाकर धीरे धीरे अंगुलीसे दबादे ॥ ४३ ॥ अथवा साल, रालका वृक्ष, कुहा, विट्खदिर, मेंढासिंगी, धौ, धामन इनकी छालको पीसकर उसे रोके, अथवा रेशमी वस्त्र या रेशम जलाकर उसकी राखसे बंदकरे अथवा समुद्रझाग और लाखका चूर्ण डालकर बंदकरे और यथोक्त घाव बांधनेके द्रव्योंसे रोककर करडा बांध दे ॥ ४४ ॥

(सूत्र ४४) सर्वेषु पादेषु लाक्षाचूर्णैरिति, पर्य्यंतेषु व्रणमुखमवचूर्ण्यांगुल्यग्रेणावपीडयेदिति प्रयोक्तव्यमित्यन्वयः ॥

शीताच्छादनभोजनागारैः शीतैः परिषेकप्रदेहैश्चोपाचरेत् क्षारेणाग्निना वा दहेद्यथोक्तव्यधनादनंतरं वा तामेवातिप्रवृत्तां शिरां विध्येत् ॥ ४५ ॥ काकोल्यादिक्काथं वा शर्करामधुमधुरं पाययेत् । एणहरिणोरभ्रशशमहिषवराहाणां वा रुधिरं क्षीरयूषरसैः सुस्निग्धैश्चाश्नीयादुपद्रवांश्च यथास्वमुपचारयेत् ॥ ४६ ॥

शीतल वस्तुओंसे आच्छादन करना, ठंढाभोजन, ठंढास्थान, ठंढ काथादि छिडकना, ठंढा लेप इत्यादि विधिओंसे उपचार करे अथवा क्षार (तेजाब) या अग्निसे दग्धकरे अथवा जिस नसका रक्त बंद न हो उसको यथोक्त दूसरी जगहसे और वेधन करे ॥ ४५ ॥ अथवा काकोली आदि औषधोंका काथ शर्करा और शहतके साथ पिलावे तथा काले वा साधारण हिरण अथवा मेंढा, शशा (खरगोश) और भैंसा तथा वनशूकर इनका रक्त और दुग्ध (मुद्गादि) यूषरस और स्निग्ध पदार्थोंके साथ भोजन करावे और जो कुछ उपद्रव हों उनका यथायोग्य उपचार करे ॥४६॥

भवंति चात्र ॥ धातुक्षयात्स्रुते रक्ते मन्दः संजायतेऽनलः॥ पवनश्च परं कोपं याति तस्मात्प्रयत्नतः ॥ ४७ ॥ तन्नाति शीतैर्लघुभिः स्निग्धैः शोणितवर्द्धनैः ॥ ईषदम्लैरनम्लैर्वा भोजनैस्तमुपाचरेत् ॥ ४८ ॥

यहां श्लोक कहे हैं कि । धातुके क्षय होनेसे रक्तके निकलजानेसे अग्नि मंद हो जाता है और वायुका परमकोप होता है इसकारण यत्नसे रक्त निकले हुए रोगीको अति ठंढा और हलका भोजन नहीं देवे किंतु स्निग्ध और शुद्ध रक्त बढानेवाले कुछ थोडी खटाईवाले या खटाईरहित भोजनोंसे उपचार करे ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ (यह दो श्लोकोंका युग्म है)

चतुर्विधं यदेतद्धि रुधिरस्य निवारणम्॥ संधानं स्कंदनं चैव पाचनं दहनं तथा ॥ ४९ ॥ व्रणं कषायः संधत्ते रक्तं स्कंदयते हिमम् । तथा संपाचयेद्भस्म दाहः संकोचयेच्छिराः ॥ ५० ॥ अस्कंदमाने रुधिरे संधानानि प्रयोजयेत् ॥ संधाने भ्रश्यमाने तु

(सूत्र ४७ । ४८) अतिशीतैरतिलघुभिश्च वातप्रकोपनान्नोपाचरेत् । स्निग्धैः शोणितवर्द्धनैरीषदम्लैर्वातघ्नत्वात्समुपाचरेदिति फलितार्थः । (सूत्र ४९) संधान निरोधः, स्कदनं शोषण स्कदिर गतिशोषणयोरिति धातोः ॥

पाचनैः समुपाचरेत् ॥ ५१ ॥ कल्पैरेतैस्त्रिभिर्वैद्यः प्रयतेत यथाविधि ॥ असिद्धिमत्सु चैतेषु दाहः परम इष्यते ॥ ५२ ॥

अधिक प्रवृत्तहुए रुधिरके बंद करनेके चार उपाय हैं (१) संधान (बंदहोना रुकना), (२) स्कंदन (ठैरजाना-सूखना-जमजाना), (३) पाचन (पकजाना-पकाना), (४) दहन, (दग्धकरना-जलाना) ॥ ४९ ॥ कषाय रस व्रणको जोड देता (रोकदेता) है तथा ठंढा पदार्थ या शीत रक्तको ठैरा देता (जमादेताहै) और भस्म पका देता है तथा दाह (जलाना) नसको सिकोड़ देता है ॥ ५० ॥ जब रुधिर शीतल उपचारसे न थमे तब संधान क्रिया करनी चाहिये और जब संधान भ्रष्ट होजावे तब पाचन क्रिया करे ॥ ५१ ॥ (जहां तक होसके) वैद्य इन तीन कल्पनाओंसेही प्रयत्न करै और जब इन तीनों विधियोंसे कार्यसिद्धि न हो तब अंतको (शिराके मुख पर) जहांसे रक्त निकलता हुआ बंद न होता हो वहां दाह (दग्ध) करना परम उपाय है ॥ ५२ ॥

रक्त शेष रखनेकी आज्ञा।

सशेषदोषे रुधिरे न व्याधिरतिवर्त्तते ॥ सावशेषं ततः स्थेयं न तु कुर्यादतिक्रमम् ॥ ५३ ॥ देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेणैव धार्यते ॥ तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः ॥ ५४ ॥ स्रतरक्तस्य सेकाद्यैः शीतैः प्रकुपितेऽनिले ॥ शोफं सतोदं कोष्णेन सर्पिषा परिषेचयेत् ॥ ५५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

यदि कुछेक दूषित रक्त शेष रहभी जाय तो व्याधि अधिक नहीं रहती (कोई उपाधि नहीं होती) इस कारण कुछ शेष छोडकरही रोक देना चाहिये परन्तु विशेष रक्त निकालना योग्य नहीं ॥ ५३ ॥ क्योंकि रुधिरही शरीरका मूल है-और रुधिरहीसे देह धारण किया जाता है इस कारण यत्नकरके रुधिरकी रक्षा करनी चाहिये किंतु रक्तही जीव है ऐसा सिद्धांत है ॥ ५४ ॥ और यदि शीतल उपचारसे रुधिर निकले मनुष्यके वायु कुपित होजानेसे शोथ और पीडा हो तो उसे थोडे गरम (निवाये) घृतसे सेचन करना और सेकना उचित है ॥ ५५ ॥ शिराओं (नसों) का भेद और स्थान तथा शिरावेधन (फस्त खोलने) की विधि ये सब शारीरक स्थानके सातवें और आठवें अध्यायोंमें विस्तारपूर्वक वर्णन कियेजायँगे।

इति श्रीपं०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥

(सूत्र ५४) इति स्थितिः इति सिद्धांतः रक्तं जीव इति सिद्धांतोऽत्रोच्यते। "जीवो वसति सर्वस्मिन्देहे तत्र विशेषतः ॥ वीर्ये रक्ते मले तस्मात्क्षीणे याति क्षयं क्षणात्" इति भा० प्र० ॥

पंचदशोऽध्यायः १५.

अथातो दोषधातुमलक्षयवृद्धिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अव इसके अनन्तर दोष (वात, पित्त, कफ,) धातु (रस रक्तादि) तथा मल इनके क्षय और वृद्धिका जिसमें विज्ञानहो ऐसे अध्यायका व्याख्यान करते हैं.

दोषधातुमलमूलं हि शरीरं तस्मादेतेषां लक्षणमुच्यमानमुपधारय ॥ १ ॥

दोष (वात, पित्त, कफ) धातु (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र) और मल ये शरीरके मूल हैं इस कारण इनके लक्षण जो यहां वर्णन किये जाते हैं श्रवण करो ॥ १ ॥

तत्र प्रस्यन्दनोद्वहनपूरणविवेकधारणलक्षणो वायुः पंचधा प्रविभक्तः शरीरं धारयति ॥ २ ॥ रागपक्त्योजस्तेजोमेधोष्मकृत् पित्तं पंचधा प्रविभक्तमग्निकर्मणाऽनुग्रहं करोति ॥ ३ ॥ संधिसंश्लेषणस्नेहनरोपणपूरणबलस्थैर्यकृत् श्लेष्मा पंचधा प्रविभक्त उदककर्मणाऽनुग्रहं करोति ॥ ४ ॥

उनमेंसे प्रस्यंदन (चलनेवाला), उद्वहन (शरीरको उठानेवाला) भरनेवाला, विवेचन करनेवाला और धारण करनेवाला ऐसा "वायु" पांच प्रकारसे विभक्त होकर शरीरको धारण करता है ॥ २ ॥ रक्तता और परिपाक करनेवाला ओज, तेज, बुद्धि और उष्णता करनेवाला ऐसा " पित्त " पांच प्रकारसे विभक्त होकर अग्निकर्मसे अनुग्रह (अनुकूल कार्य) करता है ॥ ३ ॥ संधियोंको जोडनेवाला स्निग्धताकारक जमानेवाला भरनेवाला बल और स्थिरताकारक ऐसा " कफ " पांच प्रकारसे विभक्त होकर जलकर्मसे अनुकूल कार्य करता है ॥ ४ ॥

रसः प्रीणयति रक्तपुष्टिं च करोति ॥ ५ ॥ रक्तं वर्णप्रसादं मांसपुष्टिं करोति जीवयति च ॥ ६ ॥ मांसं शरीरपुष्टिं मेदसश्च ॥ ७ ॥ मेदः स्नेहस्वेदौ दृढत्वं पुष्टिमस्थ्नां च ॥ ८ ॥ अस्थिदेह-

---

(सूत्र २) विवेकस्य धरणमिति समस्यते वा–पचधा प्राणापानसमानोदानभेदेनेति चान्यत्र विस्तरेण। (सूत्र ३) ओजसो लक्षणं च पंचधा विभक्तस्य पित्तस्य चाग्रे वक्ष्यते । अनुग्रहः अभीष्टसंपादनेच्छारूपे प्रसादे आनुकूल्ये चेति (श० स्तो०)। (सूत्र ४) पचधा विभक्तस्य श्लेष्मणोपि विस्तारोऽन्यत्र । उद जलम् । प्रस्यंदनादिलक्षणो वायुः पचधा विभक्तः सन् शरीर धारयति इति वान्वय एवं पित्तकफावपि वान्वेतव्यौ । (सूत्र ७) मांसं मेदसः पुष्टिं करोति च पुष्टिमिति शेषेणान्वयः। (सूत्र ८) करोतीति शेषेणान्वयः । एवमेव नवमे सूत्रेपि ।

धारणं मज्ज्ञः पुष्टिं च ॥ ९॥ मज्जा प्रीतिं स्नेहं बलं शुक्रपुष्टिं पूरणमस्थ्नां च करोति ॥ १० ॥ शुक्रं धैर्यं च्यवनं प्रीतिं देहबलं हर्षं बीजार्थं च ॥ ११ ॥

रस तृप्तिको करता है और रुधिरकी पुष्टि करता है ॥ ५ ॥ रुधिर वर्णको श्रेष्ठ करता है मांसकी पुष्टि करता है तथा जिलाता है ॥ ६ ॥ मांस शरीरको पुष्ट करता है और मेदको पोषण करता है ॥ ७ ॥ मेद (चरबी) स्निग्धता, पसीना, दृढता और अस्थियोंका पोषण करताहै ॥ ८ ॥ अस्थि देहको धारण करते हैं और मज्जाकी पुष्टि करते हैं ॥ ९ ॥ मज्जा, प्रसन्नता, स्निग्धता, बल और वीर्यको उत्पन्न करती है शुक्रकी पुष्टि और अस्थियोंको पूरण करती है ॥ १० ॥ वीर्य धीरता करता है स्खलित होताहै प्रीति, शरीरमें बल और हर्षको उत्पन्न करता है, तथा पुत्रोत्पत्तिका बीज है ॥ ११ ॥

पुरीषमुपस्तंभं वाय्वग्निधारणं च ॥ १२ ॥ वस्तिपूरणविक्लेदकृन्मत्रम् ॥ १३ ॥ स्वेदः क्लेदत्वक्सौकुमार्यकृत् ॥ १४ ॥ रक्तलक्षणमार्त्तवं गर्भकृच्च ॥ १५ ॥ गर्भो गर्भलक्षणम् ॥ १६ ॥ स्तन्यं स्तनयोरापीनत्वजननं जीवनं चेति ॥ १७ ॥ तेषां विधिवत्परिरक्षणं कुर्वीत ॥ १८ ॥

पुरीष (मल) रुकावट और वायु (अपानवायु) तथा (पक्वाशयके) अग्निको धारण करताहै ॥ १२ ॥ मूत्र वस्तिको पूरण और क्लेदयुक्त करता है ॥ १३ ॥ स्वेद (पसीना) क्लेद (गीलापन) और त्वचाको कोमल करता है ॥ १४ ॥ स्त्रियोंका आर्तव रक्तके तुल्य और गर्भकारक होता है ॥ १५ ॥ गर्भके लक्षणोंवाला गर्भ होता है (गर्भके लक्षण शारीरकस्थानमें विस्तारसे कहेंगे) ॥ १६ ॥ दुग्ध कुचोंको स्थूल करनेवाला तथा सन्तानोंका जीवन है ॥ १७ ॥ इन उपरोक्त सबकी विधिपूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥ १८ ॥

अत ऊर्ध्वमेषां क्षीणलक्षणं वक्ष्यामः ॥ १९ ॥ क्षयः पुनरेषामतिसंशोधनातिशमनवेगविधारणाऽसात्म्यान्नमनस्तापव्यायामानशनातिमैथुनैर्भवति ॥ २० ॥

इससे अगाडी हम इनके क्षीण होनेके लक्षण वर्णन करते हैं ॥ १९ ॥ अत्यंत संशोधन (वमन विरेचनआदि) करने अति शांत करने वेगोंके रोकने विरुद्ध

(सूत्र १२) उपस्तमः अवष्टंभः ।

अन्नादि भोजन करने मनके सन्ताप होने अतिव्यायाम (परिश्रम) करने लंघन तथा अति मैथुन करने आदि कारणोंसे इनका क्षय होता है ॥ २० ॥

दोषधात्वादिकी क्षीणताके लक्षण ।

तत्र वातक्षये मंदचेष्टताल्पवाक्त्वमल्पहर्षो मूढसंज्ञता च ॥ २१॥ पित्तक्षये मंदोष्माग्निता निष्प्रभत्वं च ॥ २२ ॥ श्लेष्मक्षये रूक्षतांतर्दाह आमाशयेतराशयशिरसां शून्यता संधिशैथिल्यं तृष्णादौर्बल्यं प्रजागरणं च ॥ २३ ॥ तत्र स्वयोनिवर्द्धनद्रव्याण्येव प्रतीकारः ॥ २४ ॥

इनमेंसे वायुके क्षय होनेमें चेष्टाकी मंदता, स्वल्प बोलना, अल्प हर्ष और मूढ संज्ञा हो जाती है ॥ २१ ॥ पित्तके क्षयमें स्वल्प गरमी और मंदाग्निता होती है और कांति घटजाती है ॥२२॥ कफके क्षयमें रूक्षता और अंतर्दाह तथा आमाशय और अन्य आशयोंमें और शिरमें शून्यता और संधियोंमें शिथिलता और तृषा और निर्बलता होती है और निद्राका नाश होता है ॥ २३ ॥ इनमेंसे जिस दोषका क्षय हो उसीकी निज उत्पत्तिके बढानेवाले आहार विहारादिक उसके उपाय हैं ॥२४॥

रसक्षये हृत्पीडा कम्पः शून्यता तृष्णा च ॥ २५ ॥ शोणितक्षये त्वक्पारुष्यमम्लशीतप्रार्थना शिराशैथिल्यं च ॥ २६ ॥ मांसक्षये स्फिग्गंडौष्ठोपस्थोरुवक्षःकक्षापिंडिकोदरग्रीवाशुष्कता रौक्ष्यतोदौ गात्राणां सदनं धमनीशैथिल्यं च ॥ २७ ॥ मेदःक्षये प्लीहाभिवृद्धिः संधिशून्यता रौक्ष्यं मेदुरमांसप्रार्थना च ॥२८॥ अस्थिक्षयेऽस्थितोदो दन्तनखभंगो रौक्ष्यं च॥२९॥ मज्जक्षयेऽल्पशुक्रतापर्वभेदोऽस्थिनिस्तोदोऽस्थिशून्यता च॥३०॥ शुक्रक्षये मेढ्रवृषणवेदनाऽशक्तिर्मैथुने चिराद्वा प्रसेकः प्रसेके चाल्परक्तशुक्रदर्शनं च ॥३१॥

(सूत्र २४) स्वयोनिवर्धनमिति वातस्य योनिः वायुरेव पित्तस्य योनिरग्निः कफस्य रसः पुनरत्रोच्यते स्वयोनिवर्द्धनान्येवेति शीतरूक्षादीनि प्रतीकारः न पुनः स्वयोनिवर्द्धनान्यपि कटुकादीनि तेभ्योन्यदोषप्रकोपनत्वात् । तथाचोक्तम् "वातक्षये शीतरूक्षैर्नत्वन्यैः कटुकादिभिः । पित्तक्षये तु कटुकैरुष्णैर्न लवणादिभि.॥ क्षीरादिभिः स्निग्धशीतैः प्रतिकुर्य्यात्कफक्षये॥" इति (डल्हनः) । (सूत्र २८) मेदुरोऽतिस्निग्धः । (सूत्र ३१) मेढ्रे वृषणयोश्च झणत्कारवेदना चिराद्वीर्यपातः वीर्यपाते चाल्परक्तवर्णशुक्रदर्शनमथवाल्परक्तस्य चाल्पशुक्रस्य दर्शनमिति ।

तत्रापि स्वयोनिवर्द्धनद्रव्योपयोगप्रतीकारः ॥ ३२ ॥

रसकी क्षीणतामें हृदयमें पीडा, कंप और शून्यता तथा तृषा होती है ॥ २५ ॥ रुधिरकी क्षीणतामें त्वचामें खरदरापन, अम्लरस (खटाई) और शीतकी इच्छा होती है तथा शिरा (नसों) में शिथिलता होती है ॥ २६ ॥ मांसकी क्षीणतामें कटि, कपोल, होठ, लिंग, जंघा, वक्षस्थल, काख, पिंडली, उदर, गला इनमें शुष्कता और रूखापन और दर्द, अंगप्रत्यंगमें थकान और धमनियोंमें शिथिलता होती है ॥ २७ ॥ मेदकी क्षीणतामें प्लीह(तिल्ली)की वृद्धि, संधियोंमें शून्यता हो, रूक्षता हो और स्निग्धता तथा मांसकी प्रार्थना हो ॥ २८ ॥ अस्थिक्षयमें अस्थियोंमें दरद हो, नखून और दांतोंमें भंग और रूक्षता होती है ॥ २९ ॥ मज्जाक्षयमें शुक्रकी अल्पता संधिभेदन, अस्थियोंमें दरद और शून्यता होतीहै ॥ ३० ॥ वीर्यकी क्षीणतामें लिंग और वृषणोंमें वेदना, मैथुनशक्ति न होना कभी देरसे वीर्यपात होना, पात होनेमें कुछ रक्तता लिये स्वल्प वीर्य होता है ॥३१॥ इनकी क्षीणतामेंभी जिसकी क्षीणता हो उसकी ही उत्पत्ति बढानेवाले पदार्थोंका उपयोग करना उसका उपाय है ॥३२॥

पुरीषक्षये हृदयपार्श्वपीडा सशब्दस्य च वायोरूर्ध्वगमनं कुक्षौ संचरणं च ॥ ३३ ॥ मूत्रक्षये वस्तितोदोऽल्पमूत्रता च ॥ ३४ ॥ अत्रापि स्वयोनिवर्द्धनद्रव्याण्येव प्रतीकारः ॥ ३५ ॥

पुरीष (मल) की क्षीणतामें हृदय और पसवाडोंमें पीडा हो और शब्दयुक्त वायुका ऊर्ध्वगमन हो अथवा कुक्षियों (कोखों) में संचारण हो ॥ ३३ ॥ मूत्रके क्षयमें वास्तिस्थानमें दरद (पीडा) और अल्प मूत्र हो ॥ ३४ ॥ इनमेंभी इनकी उत्पत्तिवर्द्धक द्रव्योंका उपयोगही उपाय है ॥ ३५ ॥

स्वेदक्षये स्तब्धरोमकूपता त्वक्छोषः स्पर्शवैगुण्यं स्वेदनाशश्च तत्राभ्यंगः स्वेदोपयोगश्च ॥ ३६ ॥ आर्तवक्षये यथोचितकालादर्शनमल्पता वा योनिवेदना च तत्र संशोधनमाग्नेयानां च द्रव्याणां विधिवदुपयोगः ॥ ३७ ॥ स्तन्यक्षये स्तनयोर्म्लानता स्तन्यासंभवोल्पतावा तत्र श्लेष्मवर्द्धनद्रव्योपयोगः ॥३८॥ गर्भक्षये

(सूत्र ३२) स्वयोनिः धातुयोनिरिति " यद्यपि पंचभूतानां वाच्यपाके द्विधा पुनः । तथाप्यपां प्रधानत्वाद्रसः सौम्योभिधीयते ॥ अतिरिक्ता गुणा रेक्त वह्नेर्मांसे तु पार्थिवाः । मेदस्यंबुभुवोरस्थि पृथिव्यनिलतेजसाम् ॥ मज्ज्ञि शुक्रे गुणाः सौम्या " इति तत्तद्गुणभूयिष्ठानां द्रव्याणामुपयोगः ।

(सूत्र ३७) आर्तवक्षये मापतिलमत्स्यादीनां स्निग्धानामाग्नेयानां पदार्थानामुपयोग श्रेयान् नंतु रूक्षाणामाग्नेयानामिति फलितोर्थः।(सूत्र ३८) स्तन्यक्षये श्लेष्मवर्द्धनद्रव्याणां विशेषतो द्रवाणामुपयोगः ॥

गर्भास्पन्दनमनुन्नतकुक्षिता च तत्र प्राप्तबस्तिकालायाः क्षीरब-
स्तिप्रयोगो मेध्यान्नोपयोगश्चेति ॥ ३९ ॥

स्वेदकी क्षीणतामें रोमकूपों (रोमोंकी जड) में काठिन्यतासे त्वचामें शुष्कता और स्पर्शका यथोचित ज्ञान न होना तथा पसीनेका अभाव होताहै । इसमें तैल उबटन करना स्वेदका उपयोग करना हित है ॥ ३६ ॥ स्त्रियोंके आर्तवक्षयमें समयपरभी रजोदर्शन न होना (देर देरसे होना) आर्तव रक्तमें अल्पता, कभी २ योनिमें पीडा हो यहां शोधन करना और उष्ण पदार्थोंका उपयोग करना विधिपूर्वक हित है ॥ ३७ ॥ स्तन्य (दुग्ध) के क्षयमें कुचोंपर मुरझायापन हो दुग्ध न हो या अल्प हो इसमें कफवर्द्धक पदार्थोंका उपयोग हित है ॥ ३८ ॥ गर्भकी क्षीणतामें गर्भका न फिरना या कम फिरना कूख ऊंची न होना ये होते हैं इसमें यथोचित वस्तिके समय दुग्धकी वस्तिका प्रयोग (गर्भाशयमें) करना और चिकने स्वादु भोजन कराना हित है ॥ ३९ ॥

अत ऊर्ध्वमतिवृद्धानां दोषधातुमलानां लक्षणं वक्ष्यामः ॥ ४० ॥

इससे अगाडी अत्यन्त बढेहुए दोष, धातु और मल इनके लक्षण कहतेहैं ॥४०॥

वृद्धिः पुनरेषां स्वयोनिवर्द्धनाभ्युपसेवनाद्भवति ॥४१॥ तत्र वातवृद्धौ त्वक्पारुष्यं कार्श्यं कार्ष्ण्यं गात्रस्फुरणमुष्णकामितानिद्रानाशोऽल्पबलत्वं गाढवर्च्चस्त्वं च ॥ ४२ ॥ पित्तवृद्धौ पीतावभासता संतापः शीतकामित्वमल्पनिद्रा मूर्च्छा बलहानिरिंद्रियदौर्बल्यं पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं च ॥ ४३ ॥ श्लेष्मवृद्धौ शौक्ल्यं शैत्यं स्थैर्यं गौरवमवसादस्तंद्रा निद्रा संध्यस्थिविश्लेषश्च ॥ ४४ ॥

इन (दोष, धातु, मलों) की वृद्धि अपनी उत्पत्तिकारक आहार विहारके अतिसेवनसे होती है ॥ ४१ ॥ इनमेंसे वायुकी वृद्धिमें त्वचामें करडापन, कृशता, कालापन, अंगोंका फुरकना, उष्ण आहार विहारमें इच्छा, निद्राका नाश, बलकी स्वल्पता और मलका करडापन होता है ॥४२॥ पित्तकी वृद्धिमें पीला दिखाई देना, सन्ताप, शीतल आहार विहारकी अभिलाषा, थोडी निद्रा, मूर्च्छा, बलकी हानि, इंद्रियोंकी दुर्बलता, मल मूत्र और नेत्र पीले होना ये लक्षण होतेहैं ॥ ४३ ॥ कफकी वृद्धिमें श्वेतता, शीतलता, स्थिरता, गुरुता, आलस्य, तन्द्रा (आंख झपना) नींद हो, संधि और अस्थियोंमें शिथिलता होती है ॥ ४४ ॥

(सूत्र ३९) प्राप्तवस्तिकाला मासाष्टमगर्भा । (सूत्र ४४) अवसादः कार्याक्षमता आलस्य सदनञ्च । विश्लेषो विभागः शैथिल्य चेति (श० स्तो० म०)

रसोतिवृद्धो हृदयोत्क्लेदं प्रसेकं चापादयति । रक्तं रक्तांगाक्षतां शिरापूरणं च । मांसं स्फिग्गंडौष्ठोपस्थोरुबाहुजंघासु वृद्धिं गुरुगात्रतां च । मेदः स्निग्धांगतामुदरपार्श्ववृद्धिं कासश्वासादीन्दौर्गंध्यं च । अस्थि अध्यस्थीन्यधिदंतांश्च । मज्जा सर्वांगनेत्रगौरवम् । शुक्रं शुक्राश्मरीमतिप्रादुर्भावं च ॥ ४५ ॥

अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हुआ रस, हृदयमें उत्क्लेदनता (जी मिचलाना) और मुहसे पानी या राल बहुत आना ये लक्षण करता है। बढाहुआ रक्त शरीरमें और नेत्रोंमें सुरखी और नसोंमें पूर्ति करता है (नसें भर जाती हैं) बढा हुआ मांस कटि या कंधे, कपोल, होठ, लिंग, जानु, भुजा, जंघा इनमें स्थूलता और शरीरको भारी करता है। बढीहुई मेद (चरबी) शरीरमें स्निग्धता, पेट और पसवाडोंकी वृद्धि तथा खांसी श्वास और दुर्गंधको करती है बढेहुए अस्थि (हाड) अधिक अस्थि और अधिक दांत पैदा करते हैं। मज्जा बढकर सम्पूर्ण शरीर और नेत्रोंमें गुरुता करती है। शुक्र (वीर्य) बढकर शुक्रकी पथरी और शुक्रस्खलनमें अधिकता करता है॥४५॥

पुरीषमाटोपं कुक्षौ शूलं च । मूत्रं मुहुर्मुहुः प्रवृत्तिं वस्तितोदमाध्मानं च । स्वेदस्त्वचो दौर्गंध्यं कंडूं च । आर्तवमंगमर्दमतिप्रवृत्तिं दौर्बल्यं च । स्तन्यं स्तनयोरापीनत्वं मुहुर्मुहुः प्रवृत्तिं तोदं च । गर्भो जठराभिवृद्धिं शोथं च ॥ ४६ ॥ तेषां यथास्वं संशोधनं क्षपणं च क्षयादविरुद्धैः क्रियाविशेषैः प्रतिकुर्वीत ॥४७॥

पुरीष (विष्ठा) बढकर अफरा, भारीपन और कूखोंमें (नलोंमें) शूल करता है। मूत्रकी वृद्धिसे वारंवार मूत्रकी प्रवृत्ति, वस्तिस्थानमें दरद और अफरा होता है। पसीनेकी वृद्धिमें त्वचामें दुर्गंधता और खाज होती है। स्त्रियोंके आर्तवकी वृद्धिमें अंगोंका टूटनासा तथा रक्तकी विशेष प्रवृत्ति और दुर्बलता होती है। दुग्धकी वृद्धिमें कुचाओंमें स्थूलता, दूधका टपकना और तरडावकीसी पीडा होती है। गर्भकी अतिवृद्धि होनेमें पेटका बहुत बडा होना तथा शरीरपर शोथ होता है ॥ ४६ ॥ इन दोष, धातु और मलादिकी वृद्धिमें यथाविहित शोधन और क्षपण

(सूत्र ४५) आपादयतीति क्रिया सर्वेषु पादेषु प्रयोज्यान्वेतव्या । (सूत्र ४६) अत्रापि पूर्वोक्तमापादयतीति क्रियापदं सर्वेषु पादेषु प्रयोक्तव्यम् । (सूत्र ४७) क्षपणम् बहिः प्रेरणं दूरीकरणं च । क्षयादविरुद्धैरिति—"छिन्नाविश्वादिभिर्वायुं पित्तं क्षौद्रफलत्रिकैः । कफं गुडार्द्रकाद्यैश्च जयेद्दोषाविरोधिभिः" ॥ इति तंत्रांतरोक्तिः ।

(निकाल देना) आदिक उपाय (जो क्षयसे विरुद्ध न हों) करे अर्थात् ऐसी क्रियासे शोधनक्षपणादि करे जिससे वृद्धि तो घट जाय परंतु अत्यंत घटकर क्षय नहीं होजाय ॥ ४७ ॥

पूर्वः पूर्वोतिवृद्धत्वाद्वर्द्धयेद्धि परं परम् ॥ तस्मादतिप्रवृद्धानां धातूनां ह्रासनं हितम् ॥ ४८ ॥

पूर्व पूर्व धातु अत्यंत बढनेसे अगले अगलेको बढा देते हैं (जैसे रस बढनेसे रक्त और रक्त बढनेसे मांस बढ जाता है) इस हेतु अत्यंत बढेहुए धातु आदिको घटाना उचित है ॥ ४८ ॥

बल और ओजके लक्षण ।

बललक्षणं बलक्षयलक्षणमत ऊर्ध्वं च वक्ष्यामः ॥ ४९ ॥ तत्र रसादीनां शुक्रांतानां धातूनां यत्परं तेजस्तत् खल्वोजस्तदेव बलमित्युच्यते स्वशास्त्रसिद्धांतात् ॥ ५० ॥ तत्र बलेन स्थिरोपचितमांसता सर्वचेष्टास्वप्रतिघातः स्वरवर्णप्रसादो बाह्यानामाभ्यंतराणां च करणानामात्मकार्यप्रतिपत्तिर्भवति ॥ ५१ ॥ भवंति चात्र–

यहांसे अगाडी हम बलके और बलक्षयके लक्षण कहते हैं ॥ ४९ ॥ रससे आदिलेकर शुक्रपर्य्यंत जो धातु हैं उनका जो सार (तेज) हैं वही ओज कहलाता है और उसेही अपने शास्त्रके सिद्धान्तसे बल कहते हैं ॥ ५० ॥ उस बलहीसे मांसका संचय और स्थिरता होती है और सब चेष्टाओंमें स्वच्छंदता,

(सूत्र ५०) धातूनां यत्परं तेजस्तदोजस्तदेव बलमित्युच्यते इत्यत्र ओजसः शक्त्यनुकूलव्यापारो बलमिति फलितार्थः । अत्र च भावमिश्रेणोक्तम्–सर्वधातूनां स्नेहमोजः क्षीरे घृतमिव तदेव बलमिति तत्कार्यकारणयोरभेदोपचारात् । अभेदकथनं च चिकित्सैक्यार्थमिति–वस्तुतस्तु बलस्य कारणमोजः । तथा चोक्तम्–"ओजः सर्वशरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् ॥ सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम्" इति बलपुष्टिकरत्वाद्बलस्य पुष्टेश्च कारणमिति । ओजसः स्थानं वाग्भटेनोक्तम्–"ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रांतानां परं स्मृतम् ॥ हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबंधनम्" इति–अत्रापि बलस्य पृथक्त्वमुपलक्ष्यते कार्यकारणभावादैक्यं चात्र प्रतिपादितमेवेति–डल्लनाचार्येणापि । परमार्थतस्तु बलौजसोरभेद एव प्रतिपादितस्तेनापि चिकित्सैक्यार्थत्वादभेदकथनमेवोक्तमिति ।

(वक्तव्य ५०) ओज और बलके विषयमें हम संस्कृत टिप्पणीमें विवेचना कर आये हैं कि, बलका कारण रूप ओजहै ओज सब धातुओंका स्नेह जैसे दूधमें घृत है और बल उस ओजका शक्त्यात्मक गुण है–इसीसे यहां अब बलके तीनों दोष ओजके तीनों दोषोंसे पृथक् वर्णन करते हैं ओजके दोष (विकार) ऊपर वर्णन होचुके बलके दोष (विकार) अगाडी अब कहते हैं ।

स्वर और वर्ण तथा प्रसन्नता और बाह्य और आभ्यंतर इंद्रियों और मनमें अपने कार्यकी उत्कंठा होती है (जैसे श्रोत्रेंद्रियको शब्दमें, रसनाको रसमें, त्वचाको स्पर्शमें, चक्षुको रूपमें, घ्राणको गंधमें उत्साह हो, वाणी, हाथ, पांव, गुह्य, उपस्थ ये भी अपने अपने कार्यमें सावधान हों)॥ ५१ ॥ यहां श्लोक हैं-

ओजका स्वरूप ।

ओजः सोमात्मकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम् ॥ विविक्तं मृदु मृत्स्नं च प्राणायतनमुत्तमम् ॥ ५२ ॥ देहस्यावयवस्तेन व्याप्तो भवति देहिनाम् ॥ तदभावाच्च शीर्यंते शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ॥ ५३ ॥ अभिघातात्क्षयात्कोपाच्छोकाद्ध्यानाच्छ्रमात्क्षुधः ॥ ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो धातुग्रहणनिःसृतम् ॥ तेजःसमीरितं तस्माद्विस्रंसयति देहिनः ॥ ५४ ॥

ओज सोमात्मक चिकना, श्वेत, शीतल, स्थिर और सर (सर्वत्र फैलनेवाला) विविक्त (सब रसादिसे पृथक् पदार्थ) और कोमल तथा प्रशस्त है और प्राणोंका उत्तम आधार है ॥ ५२ ॥ शरीरका प्रत्येक अवयव इस ओजसे व्याप्त रहता है और इसके व्याप्त न होनेसे मनुष्योंके अंग प्रत्यंग विशीर्ण (जर्जरीभूत) हो जाते हैं ॥ ५३ ॥ चोट लगनेसे क्षीणतासे क्रोधसे शोकसे ध्यानसे परिश्रमसे क्षुधासे ओजका क्षय होता है और मनुष्योंको धात्वादिकोंको भ्रंश कर देता है ॥ ५४ ॥

तस्य विस्रंसो व्यापत्क्षय इति लिंगानि व्यापन्नस्य भवंति ॥५५॥ संधिविश्लेषो गात्राणां सदनं दोषच्यवनं क्रियासन्निरोधश्च विस्रंसे स्तब्धगुरुगात्रता वातशोफो वर्णभेदो ग्लानिस्तंद्रा निद्रा च व्यापन्ने मूर्च्छा मांसक्षयो मोहः प्रलापो मरणमिति क्षये ॥५६॥

ओजके विकारके तीन चिह्न होते हैं (१) विस्रंस (पतन होना) (२) व्यापत् (बिगडजाना) (३) क्षय (नाश हो जाना) ॥ ५५ ॥ ओजके विस्रंस (पतन) में संधियोंका जोड खिलासा होना, अंगोंका थकजाना, दोषों (वात, पित्तादि) का निकलना (रेचनआदि होना) क्रियाओंका अवरोध ये लक्षण होते हैं शरीरका रुकजाना, भारी होना, वायु सोजन, वर्णका अन्यथाभाव, ग्लानि, तंद्रा, निद्रा

(सूत्र ५४) तृतीयपदस्याग्रे " धातुग्रहणनिःसृत तेजःसमीरितं " इति पाठविशेषो वा कुत्रचित्पुस्तके नैवास्ति ।

य लक्षण आजके बिगाडमें होते हैं। मूर्च्छा, मांसका क्षय, मोह (बेहोशी) प्रलाप (बकवाद) तथा मृत्यु ये लक्षण ओजके नाशमें होते हैं ॥ ५६ ॥

भवंति चात्र ॥ त्रयो दोषा बलस्योक्ता व्यापद्विस्रंसनक्षयाः ॥ विश्लेषसादौ गात्राणां दोषविस्रंसनं श्रमः ॥ अप्राचुर्यं क्रियाणां च बलविस्रंसलक्षणम् ॥ ५७ ॥ गुरुत्वं स्तब्धतांगेषु ग्लानिर्वर्णस्य भेदनम् ॥ तंद्रा निद्रा वातशोफो बलव्यापादि लक्षणम् ॥५८॥ मूर्च्छा मांसक्षयो मोहः प्रलापोऽज्ञानमेव च ॥ पूर्वोक्तानि च लिंगानि मरणं च बलक्षये ॥ ५९ ॥

यहां श्लोक हैं कि-बलकेभी तीन ही दोष (विकार) कहे हैं १ व्यापत्ति २ विस्रंसन ३ क्षय इनमेंसे बलविस्रंसनके ये लक्षण हैं कि शरीरकी संधियोंका टूटनासा तथा अंगोंमें आलस्य और दोषोंका स्रंसन (निचडना रेचनादि होना) थकजाना और कार्योंमें प्रचुरता न होना ॥ ५७ ॥ बलकी व्यापत्तिके ये लक्षण हैं कि, शरीरमें भारीपन और अंगोंमें जडता, ग्लानि, वर्णका पलटना, तन्द्रा और निद्रा तथा वायुका शोथ ॥ ५८ ॥ बलक्षय (बलनाश होने) के लक्षण ये हैं कि, मूर्च्छा हो, मांस क्षीण हो जाय, मोह (गफलत) हो, प्रलाप हो, ज्ञान जाता रहे तथा जो ओज विस्रंस और व्यापत् और क्षयमें लक्षण कहे वे बलकेभी विस्रंस, व्यापत् और क्षयमें जानने चाहिये और बलके क्षय होनेसेभी मृत्यु होती है ॥ ५९ ॥

तत्र विस्रंसे व्यापन्ने च क्रियाविशेषैरविरुद्धैर्बलमास्थापयेन्नष्टसंज्ञमितरं च वर्जयेत् ॥ ६० ॥

इनमेंसे विस्रंसन और व्यापत्तिमें जो विरुद्ध नहीं हों ऐसी २ क्रिया विशेषों (बृंहण वाजीकरण आदि पदार्थों) से बलको स्थापन करना उचित है और जिसका बलनाश हो गया हो ऐसे नष्टसंज्ञ मनुष्यको त्याग दे अर्थात् उसकी चिकित्सा न करे ॥ ६० ॥

तेजोप्याग्नेयं क्रमशः पच्यमानानां धातूनामभिनिर्वृत्तमंतरस्थं स्नेहजातं वसाख्यं स्त्रीणां विशेषतो भवति । तेन मार्दवसौकुमार्यमृद्वल्परोमतोत्साहदृष्टिस्थितिपक्तिकांतिदीप्तयो भवंति । तत्

(सूत्र ५८) व्यापत् विपत्तिः । विस्रंसनम् ऊर्ध्वगतस्याधोनयनं पातनम् । (सूत्र ५९) पूर्वोक्तानि लिंगानीति ओजक्षयलक्षणानि । तथाच व्यापद्विस्रंसोक्तानि चेति वा पूर्वोक्तगद्यार्थमद्य श्लोकैरेवाहेति केचिद्व्याख्यानयंति चान्ये तु बलौजसोरपार्थक्यमेव गद्यपद्यैः पृथक् पृथक् चोपदिष्टमाहेति व्याख्यानयंति ॥

कषायतिक्तशीतरूक्षविष्टंभिवेगविघातव्यवायव्यायामव्याधिकर्षणैश्च विक्रियते ॥ ६१ ॥

अन्यात्मक जो तेज है वह क्रमसे पचते हुए धातुओंका निचोड जो आंतर्य स्नेह है उससे उत्पन्नहुआ वसा नाम पदार्थ (चरबी विशेष) स्त्रियोंके विशेष होता है उससे स्त्रियोंमें कोमलता (नाजुकपन) नरम और थोड़े रोम होने तथा उत्साह और दृष्टि (नजारा) स्थिति पक्ति (पाचन शक्ति) और कान्ति तथा दीप्ति अधिक होती है। वह वसा नामक पदार्थ कसैले, कडुवे, शीतल, रूक्ष, विष्टंभि (कबज करनेवाले) भोजनादिसे तथा वेगोंके रोकने अतिमैथुनकरने, अति श्रम करने, किसी रोग हो जाने तथा कर्षण (कृश करनेवाले) पदार्थोंसे विकारको प्राप्त हो जातीहै ॥ ६१ ॥

तस्यापि पारुष्यवर्णभेदतोदनिष्प्रभत्वानि विस्रंसने भवंति । कार्श्यं मंदाग्निताऽधस्तिर्यक्च्युतिर्व्यापत्तौ । दृष्ट्यग्निबलहान्यनिलप्रकोपमरणानि क्षये ॥६२॥ तत्रापि स्नेहपानाभ्यंगप्रदेहपरिषेकस्निग्धलघ्वन्नानि क्षये विदधीत ॥ ६३ ॥

उस वसा नामक पदार्थके विस्रंसनमें शरीरपर कठोरता, वर्ण पलट जाना, दरद होना, कांति घट जाना ये लक्षण होते हैं। और व्यापत्तिमें कृशता, मंदाग्नि और तिरछा या नीचेको पतन होना ये लक्षण होते हैं और क्षय हो जानेमें दृष्टि और अग्नि और बलकी हानि, वायुका कोप तथा मृत्यु होजाती है ॥ ६२ ॥ इसमें भी स्नेहपान करना, तैलाभ्यंग करना, उबटन भलना और लेपन आदि करना तथा चिकने हलके भोजन आदिसे उपचार करना हित है ॥ ६३ ॥ (६१ ६२ ६३ इन सूत्रोंको कई क्षेपक कहते हैं)

भवंति चात्र ॥ दोषधातुमलक्षीणो बलक्षीणोपि वा नरः॥ स्वयोनिवर्द्धनं यत्तदन्नपानं प्रकांक्षति ॥ ६४ ॥ यद्यदाहारजातं हि

(सूत्र ६१ । ६२ । ६३ ।) एषु सूत्रेषूक्त पाठं तु केचित्सुश्रुताध्यायिनो न पठति निबन्धकारैरनार्थीकृतत्वादिति डल्हनः । (वक्तव्य सूत्र ६४) क्षीण मनुष्योंकी अभिलाषा दो प्रकारकी होती है १ सानुकूल २ प्रतिकूल । अनुकूल जैसे वायुकी कृशतामें शयनेच्छा या स्निग्धेच्छा जो वातशमन है तथा प्रतिकूल कफाधिक्य स्थुलतामें शयनेच्छा या स्निग्धेच्छा जो कफवर्द्धक है इससे यदि सानुकूल अभिलापा हो तो रोगीको उसकी अभिलाषाके अनुसार आहारादि अवश्य देना चाहिये यह कुपथ्य नहीं परम पथ्य है परतु प्रतिकूल अभिलापा हो तो कदाचित् न देना और यह परम कुपथ्य है—और सानुकूल अभिलाषामें भी इतना अधिक न दे जो उसीका अत्यतवर्द्धक या अन्यका अतिक्षय कर्ता न हो जाय ॥

क्षीणः प्रार्थयते नरः॥ तस्य तस्य स लाभे तु तत्तत्क्षयमपोहति ॥ ६५ ॥ यस्य धातुक्षयाद्वायुः संज्ञां कर्म च नाशयेत् ॥ प्रक्षीणं च बलं यस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ ६६ ॥

यहां श्लोक हैं कि। दोषक्षीण वा धातुक्षीण मलक्षीण वा बलक्षीण मनुष्य अपनी उत्पत्तिवर्द्धक अन्नपानआदिकी अभिलाषा विशेष किया करता है अर्थात् जिस २ दोष या धातुकी क्षीणता शरीरमें होती है उसीके बढानेवाले आहारादिपर मनुष्योंका प्रायः मन (रुचि और इच्छा तथा प्रेम) हुवा करता हैं ॥ ६४ ॥ इससे जिस २ आहारको क्षीण मनुष्यकी अति अभिलाषा हो उसी उसीके लाभसे उसी २ क्षय (क्षीणता) का नाश होता है ॥ ६५ ॥ और धातुओंके क्षय होजानेसे जिसके वायु (कोप होकर) संज्ञा और क्रियाओंका नाश कर दे और जिसका बल अति-क्षीण होजाय वह रोगी चिकित्साके योग्य नहीं ॥ ६६ ॥

परिशिष्टश्लोक।

(केन क्षीणे किं, कांक्षतीति-किसके क्षयमें किसकी वांछा होती है) यवान्मुद्रा-न्हरेणूंश्च रूक्षं च लघु भोजनम् ॥ कषायकटुतिक्तं च वातक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १ ॥ तिलमाषकुलत्थादि पिष्टान्नविकृतिं तथा ॥ मस्तुशुक्ताम्लतक्राणि पित्तक्षीणस्तथा दधि ॥ २ ॥ मांसं माहिषवाराहं मधुराणि गुरूणि च ॥ श्लेष्मक्षीणोऽभिलषति स्व-भक्षीरदधीनि च ॥ ३ ॥ रसक्षीणो नरः कांक्षत्यंभोथ शिशिरं मुहुः ॥ रात्रिनिद्रां हिमं चन्द्रं भोक्तुं च मधुरं रसम् ॥ ४ ॥ इक्षुं मांसरसं मन्थं मधुसर्पिर्गुडोदकम् ॥ द्राक्षादाडिमशुक्तानि रक्तक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ५ ॥ अम्लानि दधिसिद्धानि तथा षाडवकानि च ॥ स्थूलक्रव्यादमांसानि मांसक्षीणोभिकांक्षति ॥ ६ ॥ स्नेहसिद्धानि मांसानि ग्राम्यानूपौदकानि च ॥ स्नेहानि क्षारयुक्तानि मेदःक्षीणोभिकांक्षति ॥ ७ ॥ अस्थिक्षीणस्तथा मांसं मज्जास्थिस्नेहसंयुतम् ॥ नरः कांक्षत्यनियतं सस्नेहं गुरुभो-जनम् ॥ ८ ॥ स्वाद्वम्लसंयुतं द्रव्यं मज्जक्षीणोभिकांक्षति ॥ शिखिनः कुक्कुटस्यांडं ग्राम्यानूपौदकामिषम् ॥ वाजीकराणि द्रव्याणि शुक्रक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ९ ॥ यवान्नं यावकान्नं च शाकानि विविधानि च ॥ माषूरमाषयूषं च वर्चःक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ ॥ १० ॥ पेयमिक्षुरसं क्षीरं सगुडं बदरोदकम् ॥ मूत्रक्षीणोऽभिलषति त्रपुसैर्वारु-काणि च ॥ ११ ॥ अभ्यंगोन्मर्दने क्लेदं निवातशयनासनम् ॥ गुरु प्रावरणं चैव स्वेदक्षीणोऽभिकांक्षति ॥ १२ ॥ कट्वम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ फल-शाकान्नपानानि-स्त्रीवांछत्यार्तवक्षये ॥ १३ ॥ सुराशाल्यन्नमांसानि गोक्षीरं शर्करां तथा ॥ द्रव्याणि हृद्यानि दधि स्तन्यक्षीणोऽभिवांछति ॥ १४ ॥ मृगाजाविवराहाणां गर्भान्वांछति संस्कृतान् ॥ स्निग्धान्नं मधुरं क्षीरं भोक्तुं गर्भपरिक्षये ॥ १५ ॥

स्थूलता ।

रसनिमित्तमेव स्थौल्यं कार्श्यं च । तत्र श्लेष्मलाऽक्षारसेविनोऽध्यशनशीलस्याऽव्यायामिनो दिवास्वप्नरतस्य चाम एवान्नरसो मधुरतरश्च शरीरमनुक्रामन्नतिस्नेहान्मेदो जनयति तदतिस्थौल्यमापादयति ॥६७॥ तमतिस्थूलं क्षुद्रश्वासपिपासाक्षुत्स्वप्नस्वेदगात्रदौर्गन्ध्यक्रथनगात्रसादगद्गदत्वानि क्षिप्रमेवाविशन्ति ॥६८॥ सौकुमार्यान्मेदसः सर्वक्रियास्वसमर्थः कफमेदोनिरुद्धमार्गत्वाच्चाल्पव्यवायो भवत्यावृतमार्गत्वादेव शेषा धातवो नाप्यायन्तेऽत्यर्थमतोऽल्पप्राणो भवति ॥ ६९ ॥

स्थूलता और कृशता रसके ही आधीन है (इनका कारण रसही है) उनमेंसे कफकारक पदार्थ, क्षार रहित सेवन करनेवाले, भोजनके ठीक ठीक पचे विना फिर भोजन करनेवाले, परिश्रम न करनेवाले, दिनमें सोनेवाले मनुष्योंके विना पकाही अन्नका रस अत्यन्त मधुर होकर शरीरमें अनुक्रमण करता हुवा अतिस्निग्धता करके मेद (चरबी) को उत्पन्न करता है और वह मेद अत्यन्त स्थूलता कर देता है ॥ ६७ ॥ उस अतिस्थूल (मोटे) मनुष्यको क्षुद्रश्वास, तृषा, क्षुधा, निद्रा, पसीना, शरीरमें दुर्गंधता, क्रथन (उष्ट्रकी भांति गलगल या घुरघुर कंठमें बोलना) अंगोंका थकना, गद्गदवाणी आदि उपाधि शीघ्रही प्रवेश कर (चिमट) जातीहै ॥ ६८ ॥ मेदकी कोमलता होनेसे सब कार्योंमें अशक्ति होती है तथा कफ और मेद करके मार्ग (शुक्रका मार्ग) निरुद्ध होनेसे मैथुनमें अल्पशक्तिवाला होताहै अन्य मार्गोंके ढके जानेसे शेष धातु (अस्थि, मज्जा और शुक्र) परिपूर्ण नहीं होते इससे खल बल होता है ॥ ६९ ॥

प्रमेहपिडिकाज्वरभगन्दरविद्रधिवातविकाराणामन्यतमं प्राप्य पञ्चत्वमुपयाति ॥ ७० ॥ सर्व एव चास्य रोगा बलवन्तो भवन्त्यावृतमार्गत्वात्स्रोतसामतस्तस्योत्पत्तिहेतुं परिहरेत् ॥ ७१ ॥

स्थूल (अतिमोटा) मनुष्य प्रमेहपिडिका, ज्वर, भगंदर, विद्रधि तथा वायुके विकारोंमेंसे किसी रोगसे ग्रसित होकर मृत्युको प्राप्त होजाता है ॥ ७० ॥ और

(सूत्र ६७) मेदसः स्थानम्–"मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेषु व्यवस्थितम् । अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥" इति (भा० प्र०) (सूत्र ७०) ननु स्थूलाना कथं वातविकारा इति आवृतमार्गत्वादेवं शेषाः धातवो नाप्यायतेऽस्थिमज्जशुक्रा नाप्यायंतेऽतस्तेषु क्षीणेषु वायोः कोप एव संभवतीति ॥

उसके प्रायः सभी रोग बलवान् होजाते हैं क्योंकि, उसके स्रोत (मार्गद्वार) मेदसे आच्छादित होते हैं इस कारणसे उसको मेदकी उत्पत्तिके कारणरूप पदार्थोंसे बचा रहना चाहिये ॥ ७१ ॥

उत्पन्ने तु शिलाजतुगुग्गुलुगोमूत्रत्रिफलालोहरजोरसांजनमधुयवमुद्गकोरदूषकश्यामाकोद्दालकादीनां विरूक्षणच्छेदनीयानां च द्रव्याणां विधिवदुपयोगो व्यायामो लेखनवस्त्युपयोगश्चेति ७२॥

और यदि (स्थूलता मेदकी व्याधि) उत्पन्न होजाय तो शिलाजतु, गूगल, गोमूत्र, त्रिफला, लोहचूर्ण (भस्मसार), रसोत, शहत, जौ, मूँग, कोदो, शामक, वनकोद्रव (कूटू) इत्यादि रूक्ष करने और दुवला करनेवाले पदार्थोंका विधिपूर्वक उपयोग करना तथा श्रम अथवा (दंड कसरत) करना तथा लेखन, वस्तिका उपयोग करना उचित है ॥ ७२ ॥

तत्र पुनर्वातलाहारसेविनोऽतिव्यायामव्यवायाध्ययनभयशोकध्यानरात्रिजागरणपिपासाक्षुत्कषायाल्पाशनप्रभृतिभिरुपशोषितो रसधातुः शरीरमनुक्रामन्नल्पत्वान्न प्रीणयति तस्मादतिकार्श्यं च भवति ॥ ७३ ॥ सोऽतिकृशः क्षुत्पिपासाशीतोष्णवातवर्षभारादानेष्वसहिष्णुर्वातरोगप्रायोऽल्पप्राणश्च क्रियासु भवति ॥ ७४ ॥ श्वासकासशोषप्लीहोदराग्निसादगुल्मरक्तपित्तानामन्यतमं प्राप्य मरणमुपयाति ॥ ७५ ॥ सर्व एव चास्य रोगा बलवन्तो भवन्त्यल्पप्राणत्वादतस्तस्योत्पत्तिहेतुं परिहरेत्॥७६॥

और वातवर्द्धक आहार (अधिक) सेवन करनेवालेको तथा अतिपरिश्रम (दंड कसरत) करने, अधिक मैथुन करने, पढनेका अतिश्रम करने, डरने, शोक (फिक्र) करने, अतिध्यान करने, रात्रिके जागने, प्यासा और भूखा रहने, कसैला और थोडा भोजन करने आदिसे शुष्क हुआ रसधातु शरीरमें व्याप्त हुआ स्वल्पता करके (धातुओंकी) तृप्ति नहीं करता जिससे अत्यन्त दुवलापन होजाता है ॥ ७३ ॥ वह अति दुवला मनुष्य क्षुधा, तृषा, शीत, गरमी, वायु, वर्षा और बोझ उठाने आदिमें असमर्थ होता है और उसको बहुधा वातव्याधियां होती हैं और वह सब क्रियाओंमें निर्बल होता है ॥७४॥ और दुर्बल मनुष्य श्वास, खांसी, राजयक्ष्मा, प्लीह, उदररोग (वातोदरादि), जठराग्निकी निर्बलता (विषमाग्नि या मन्दाग्नि), गुल्म रक्तपित्त इन रोगोंमेंसे किसीसे ग्रसित होकर मर जाता है ॥७५॥

और दुर्बलको भी निर्बलतासे सबही रोग प्रायः बलवान् होजाते हैं इस कारणसे उसकी (कृशताकी) उत्पत्तिके कारण पातल आहार विहारसे बचा रहना चाहिये७६

उत्पन्ने तु पयस्याश्वगंधाविदारीविदारिगंधाशतावरीबलाऽतिबलानागबलानां मधुराणामन्यासां चौषधीनामुपयोगः क्षीरदधिघृतमांसशालिषष्टिकयवगोधूमानां चं दिवास्वप्नब्रह्मचर्याऽव्यायामबृंहणवस्त्युपयोगश्चेति ॥ ७७ ॥

यदि कृशता और उसके रोग उत्पन्न होजायँ तो पयस्या (क्षीरकाकोली), अश्वगंधा, विदारी (भूमिकूष्मांड अर्थात् विदारीकंद), विदारिगन्धा (शालपर्णी), शतावरी, बला (खरैहटी), अतिबला (कंघी), नागबला, गंगेरन तथा अन्य मधुर बृंहण औषधोंका उपयोग करे और दुग्ध, दही, घृत, मांस, शालि (चावल जो हैमन्तिक हैं) तथा षष्टिक (जो चावल साठ दिनमें ही बालमें पककर तयार हो अर्थात् साठी) जौ, गेहूं इनका भोजन और दिनका सोना, ब्रह्मचर्य और परिश्रम न करना तथा बृंहण वस्ति इनका उपयोग करना चाहिये ॥ ७७ ॥

समताकी श्रेष्ठता।

यः पुनरुभयसाधारणान्युपसेवेत तस्यान्नरसः शरीरमनुक्रामन्समान्धातूनुपचिनोति समधातुत्वान्मध्यशरीरो भवति सर्वक्रियासु समर्थः क्षुत्पिपासाशीतोष्णवर्षातपसहो बलवांश्च स सततमनुपालयितव्य इति ॥ ७८ ॥

और जो दोनों प्रकारके पदार्थों (स्थूलताकारक न अतिकृश करनेवाले साधारण द्रव्यों) को सेवन करता है (और ऐसेही वर्ताव करता है) उसके अन्नका रस शरीरमें व्याप्त होकर समान (यथोचित) धातुओंको पैदा करता है और सम धातु होनेसे मध्यशरीर रहता है और सब कार्योंमें समर्थ होता है तथा क्षुधा, तृषा, ठंढ, गरमी, वर्षा, धूप आदि सह सकता है और बलवान् होताहै और यह समान भाव सदा रक्षा करना (स्थिर रखना) चाहिये ॥ ७८ ॥

भवंति चात्र॥ अत्यंतगर्हितावेतौ सदा स्थूलकृशौ नरौ॥श्रेष्ठो मध्यशरीरस्तु कृशः स्थूलात्तु पूजितः ॥७९॥ दोषः प्रकुपितो धातून्क्षपयत्यात्मतेजसा ॥ इद्धः स्वतेजसा वह्निरुखागतमिवोदकम्॥८०॥

(सूत्र७७) पयस्या-क्षीरकाकोली। विदारी-भूमिकूष्माडम् (श.स्तो. म.) विदारिगंधा-शालपर्णी (भा०प्र०) (सूत्र ७९) कृशेष्वौषधप्रभावः शीघ्रतया लक्ष्यतेऽनः स्थूलकृशयोर्मध्ये कृशः पूजितः। (सूत्र ८०) इद्धः प्रदीप्तः, उखा-पाकपात्रम् (श. स्तो. म.)

इसपर श्लोक हैं कि-ये अति स्थूल और अतिकृश दोनों मनुष्य अतिनिन्दित हैं और मध्य शरीर (न अति मोटा न दुबला) मनुष्य श्रेष्ठ है और अति मोटेसे तो दुबला ही अच्छा होताहै ॥ ७९ ॥ कुपित हुआ दोष अपने दुष्प्रभावसे धातुओंको क्षय कर देता है जैसे जलता हुआ अग्नि अपने तेजकरके पात्रमें भरे हुए जलको तपायमान कर देता है ॥ ८० ॥

दोषधात्वादिकी अपरिमाणता ।

वैलक्षण्याच्छरीराणामस्थायित्वात्तथैव च ॥ दोषधातुमलानां तु परिमाणं न विद्यते ॥ ८१ ॥ एषां समत्वं यच्चापि भिषग्भिरवधार्यते ॥ न तत्स्वास्थ्यादृते शक्यं वक्तुमन्येन हेतुना ॥ ८२ ॥

शरीरोंमें विलक्षणता होती रहनेसे और स्थिरता न होनेसे दोष (वायु, पित्त, कफादि) धातु (रसरक्तादि) मल (पुरीष मूत्रादि) इनका कुछ परिमाण नहीं हो सकता (इनका ठीक तोल वजन कितना घटा है या कितना भाग बढा है नहीं पासकता) ॥ ८१ ॥ इनकी समता जो कुछ वैद्योंने नियत की है उसे स्वस्थताके सिवाय और कारण करके कहनेको कोई ठीक २ समर्थ नही ॥ ८२ ॥

दोषादीनां त्वसमतामनुमानेन लक्षयेत् ॥ अप्रसन्नेन्द्रियं वीक्ष्य पुरुषं कुशलो भिषक् ॥ ८३ ॥

अप्रसन्न इंद्रियवाले (रुग्ण) मनुष्योंको देखकर चतुर वैद्य दोष और धात्वादिककी असमता (वृद्धि, क्षय) होना अनुमानसे जानले ॥ ८३ ॥

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः ॥ प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥ ८४ ॥ स्वस्थस्य रक्षणं कुर्यादस्वस्थस्य तु बुद्धिमान् ॥ क्षपयेद्बृंहयेच्चापि दोषधातुमलान्भिषक् ॥ तावद्यावदरोगः स्यान्नरो रोगसमन्वितः ॥ ८५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

जिसके सब दोष (वात, पित्त, कफ) यथोचित समान हों और जठराग्निभी सम हो (विषम, तीक्ष्ण, मंद न हो) धातु (रससे वीर्यपर्यंत) यथा योग्य सम हों अर्थात् कोई घटी बढी न हो तथा मलमूत्रादिभी समान हों न्यूनाधिक न हों तथा सब क्रियाभी सम हों (अतिचांचल्य आलस्यादि न हों) और आत्मा, इंद्रिय और मन ये सब प्रसन्न हों वह मनुष्य स्वस्थ (तन्दुरस्त) कहलाता है ॥ ८४ ॥ स्वस्थ मनुष्यकी रक्षा करनी चाहिये कि, कोई दोष, धात्वादि घट बढकर रोग न

होजाय और अस्वस्थ (रोगयुक्त होजाय तो) बुद्धिमान् वैद्य उसके दोष, धातु, मलादिकमेंसे जो बढगया हो उसे घटावे और घटगया हो उसे बढावे और जबतक वह पूरा २ स्वस्थ न हो तबतक इसीप्रकार चिकित्सा करता रहे ॥ ८५ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा०टी० सूत्रस्थाने पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

अथातः कर्णव्यधबंधविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे कर्णव्यधबंध विधि नामक अध्यायका व्याख्यान करेंगे ।

रक्षाभूषणनिमित्तं बालस्य कर्णौ विध्येत् । षष्ठे मासि सप्तमे वा शुक्लपक्षे प्रशस्तेषु तिथिकरणमुहूर्तनक्षत्रेषु कृतमंगलस्वस्तिवाचनं धात्र्यंके कुमारमुपवेश्य बालक्रीडनकैः प्रलोभ्याभिसांत्वयन्भिषग्वामहस्तेनाकृष्य कर्णं दैवकृते छिद्रे चादित्यकरावभासिते शनैः शनैर्ऋजु विध्येत् प्रतनुकं सूच्या बहलमारया पूर्वं दक्षिणं कुमारस्य वामं कन्यायास्ततः पिचुवर्तिं प्रवेश्य सम्यग्विद्धमामतैलेन परिषेचयेत् ॥ १ ॥

रक्षा और भूषण पहरनेके निमित्त बालकके दोनों कान बीधने चाहियें । छठे या सातवें महीनेमें शुक्लपक्ष तथा शुभ तिथि (वार), करण, नक्षत्र, मुहूर्तमें मंगलाचारपूर्वक स्वस्तिवाचन (कर्णवेधसंस्कारोक्त) करके धाय या माताकी गोदमें बालकको बिठाकर खिलौने आदिसे बहलाकर पुचकार कर प्रेमकरके वैद्य अपने बाँये हाथसे कानको खींचकर देखे, जहां सूर्यकी किरण चमकें वहां दैवकृत छिद्रमें धीरे धीरे सीधा बींधे । कोमल कान हो तो सुईसे और कडा मोटा हो तो आरा (आर) से वेधन करे । पुत्रका पहिले दहिना और कन्याका बायां बींधे और रुईका डोरा डालकर ठीक बींधे हुएपर ठंढा तेल चुपड़दे ॥ १ ॥

शोणितबहुत्वेन वेदनया वान्यदेशविद्धमिति जानीयान्निरुपद्रवतया तद्देशविद्धमिति ॥२॥ तत्राज्ञेन यदृच्छया विद्धासु शिरासु

(सूत्र १) धर्मशास्त्रे तथा चोक्तम्–"मासि षष्ठे सप्तमे वाप्यष्टमे मासि वत्सरे ॥ कर्णवेध प्रशंसति पुष्ट्यायुःश्रीविवृद्धये" हेमाद्रौ व्यासः कर्णवेधनमासान्निरूपयति–"कार्तिके पौषमासे च चैत्रे वा फाल्गुनेऽथवा ॥ कर्णवेध प्रशंसति शुक्लपक्षे शुभे दिने॥ हरिहरकराश्चित्रासौम्यपौष्णोत्तरासु नक्षत्रेषु लग्नेषु सिंहवर्ज्येषु शशिगुरुबुधकाव्यानां दिने कर्णवेधः कार्यः ॥ तिथयः–"द्वितीया दशमी षष्ठी सप्तमी च त्रयोदशी॥ द्वादशी पचमी शस्ता तृतीया कर्णवेधने" ॥ इति । तथा च वर्णभेदेन सूचीव्यवस्था–"सौवर्णी राजपुत्रस्य राजती विप्रवैश्ययोः ॥ शूद्रस्य चायसी सुची मध्यमाष्टांगुलात्मिका" (निर्णयसिन्धुः) ।

कालिका मर्मरिका लोहितिकासूपद्रवा भवंति ॥ ३ ॥ तत्र कालिकायां ज्वरो दाहः श्वयथुर्वेदना भवंति । मर्मरिकायां वेदना ज्वरो ग्रंथयश्च । लोहितिकायां मन्यास्तंभाप्रतानकशिरोग्रहकर्णशूलानि भवंति । तेषु यथास्वं प्रतिकुर्वीत ॥ ४ ॥

अधिक रुधिर निकलनेसे, दर्द अधिक होनेसे और जगह विंधगया ऐसा समझले और कुछ उपद्रव न हो तो ठीक उसी जगह विंधा जाने ॥ २ ॥ अनजानके हाथसे चाहे जहां विंधनेसे कालिका तथा मर्मरिका एवं लोहिता नामक नसोंमें विंधजानेसे उपद्रव होते हैं ॥ ३ ॥ इनमेंसे कालिका नसमें विंधनेसे तप, दाह, शोथ और विशेष दरद होता है । और मर्मरिकामें पीडा, ज्वर और ग्रन्थी होजाती हैं । तथा लोहितिकामें मन्यास्तंभ एकप्रकारकी वातव्याधि तथा अप्रतानक और शिरोग्रह रोग तथा कानमें चीस होजाती हैं । इनमें यथायोग्य यत्न करना चाहिये ॥ ४ ॥

क्लिष्टजिह्माप्रशस्तसूचीव्यधाद्गाढतरवर्तित्वाद्दोषप्रकोपादप्रशस्तव्यधाद्वा यत्र संरंभो वेदना वा भवंति तत्र वर्तिमुपहृत्याशु मधुकैरंडमूलमंजिष्ठायवतिलकल्कैर्मधुघृतप्रगाढैरालेपयेत्तावद्यावत्सुरूढ इति सुरूढं चैनं पुनर्विध्येद्विधानं तु पूर्वोक्तमेव ॥ ५ ॥

मोटी खरदरी निकम्मी सूईके वेधसे, मोटे डोरेसे, वातादि दोषोंके कोपसे, अयोग्य विंधजानेसे जो विकार और पीडा हो तो डोरा निकाल कर शीघ्र मुलहटी अरंडकी जड मंजीठ जौ तिल इन्हे पीस शहत और घृतमें मिलाकर लेप करदे जबतक वह छिद्र भरे तबतक लेप करे और जब भरजाय तब उसे फिर वींधे और वींधनेकी विधि पहले कहही चुके हैं ॥ ५ ॥

त्र्यहात्र्यहाच्च वर्तिं च स्थूलतरां दद्यात्परिषेकं तमेव । अथ व्यपगतदोषोपद्रवे कर्णे वर्द्धनार्थं लघुवर्द्धनकं कुर्य्यात् ॥ ६ ॥

तीन तीन दिनमें मोटी मोटी डोर बदलता जाय और वही तेल चुपड़ता जाय और जब सब उपद्रव और दोष न हों तब छिद्र बढानेके लिये यथाक्रम थोडे थोडे मोटे वर्द्धनक मोरपंख आदिकी बत्ती डालता रहे ॥ ६ ॥

भवति चात्र ॥ एवं विवर्द्धितः कर्णश्छिद्यते तु द्विधा नृणाम् ॥ दोषतो वाभिघाताद्वा संधानं तस्य मे शृणु ॥ ७ ॥

(सूत्र ५) जिह्म, कुटिला, मदा च ।

यहां श्लोक है कि-ऐसे बढाया हुआ कान दो प्रकारसे छिन्न (कट) जाता है वातआदि या वेधनादि दोषोंसे अथवा अभिघात (झटका चोट दबाव मुडाव आदि) से उसका जोडना मुझसे श्रवण करो ॥ ७ ॥

तत्र समासेन पंचदशकर्णबन्धनाकृतयः। तद्यथा नेमिसंधानक उत्पलभेद्यको वल्लूरक आसंगिमो गंडकर्ण आहार्यो निर्वेधिमो व्यायोजिमः कपाटसंधिकोर्द्धकपाटसंधिकः संक्षिप्तो हीनकर्णो वल्लीकर्णो यष्टिकर्णः काकौष्ठक इति ॥ ८ ॥

यहां पर संक्षेपसे पन्द्रह प्रकारकी कर्णबंधकी आकृति कही हैं। वे ऐसे हैं कि १ नेमिसंधानक २ उत्पलभेद्यक ३ वल्लूरक ४ आसंगिम ५ गण्डकर्ण ६ आहार्य ७ निर्वेधिम ८ व्यायोजिम ९ कपाटसंधिक १० अर्द्धकपाटसंधिक ११ संक्षिप्त १२ हीनकर्ण १३ वल्लीकर्ण १४ यष्टिकर्ण और १५ काकौष्ठिक इनके लक्षण अगाडी कहते हैं॥८॥

तेषु पृथुलायतसमोभयपालिर्नेमिसंधानकः ॥ ९ ॥ वृत्तायतसमोभयपालिरुत्पलभेद्यकः ॥ १० ॥ ह्रस्ववृत्तसमोभयपालिर्वल्लूरकः ॥ ११ ॥ आभ्यंतरदीर्घैकपालिरासंगिमः ॥ १२ ॥ बाह्यदीर्घैकपालिर्गंडकर्णः ॥ १३ ॥ अपालिरुभयतोऽप्याहार्यः ॥ १४ ॥ पीठोपमपालिरुभयतः क्षीणपुत्रिकाश्रितो निर्वेधिमः ॥ १५ ॥ स्थूलाणुसमविषमपालिर्व्यायोजिमः ॥ १६ ॥ आभ्यंतरदीर्घैकपालिरितराल्पपालिः कपाटसंधिकः ॥ १७ ॥ बाह्यदीर्घैकपालिरितराल्पपालिरर्द्धकपाटसंधिकः ॥ १८ ॥ तत्र दशैते कर्णबंधविकल्पाः साध्यास्तेषां स्वनामभिरेवाकृतयः प्रायेण व्याख्याताः ॥१९॥

उनमेंसे मोटी फैली हुई समान दोनों पाली हों तो नेमिसंधानक है ॥ ९ ॥ गोल फैली हुई समान दोनों पाली हों तो उत्पलभेद्यक है ॥ १० ॥ छोटी गोल समान दोनों पाली हों तो वल्लूरक है ॥ ११ ॥ और जो भीतरकी एक ओर दीर्घ कर्णपाली हो तो आसंगिम है ॥ १२ ॥ बाहरकी तरफ एक ओरकी पाली दीर्घ हो तो गंडकर्ण है ॥ १३ ॥ और जो दोनों ओरकी पाली न हो तो आहार्य है ॥ १४ ॥ जिसके पीठ समान दोनों ओर पाली हो और क्षीण पुत्रिकाके आश्रित हो वह निर्वेधिम है ॥ १५ ॥ जिसके एक पाली मोटी दूसरी पतली सम विषम हो वह व्यायोजिम है ॥ १६ ॥ भीतरकी एक पाली दीर्घ हो और दूसरी अल्प हो तो वह कपाटसंधिक है ॥ १७ ॥ तथा बाहरकी एक पाली दीर्घ और दूसरी स्वल्प हो

तो वह अर्द्धकपाटसंधिक है ॥ १८ ॥ ये दश कर्णबन्धोंके भेद (जुडाव) साध्य हैं इनकी आकृति नामहीसे प्रायः वर्णन की गई है और जानी जाती है ॥ १९ ॥

संक्षिप्तादयः पंचासाध्याः ॥ २० ॥ तत्र शुष्कशष्कुलिरुत्सन्नपालिरितराल्पपालिः संक्षिप्तः ॥ २१ ॥ अनधिष्ठानपालिः पर्यंतयोः क्षीणमांसो हीनकर्णः ॥२२॥ तनुविषमाल्पपालिर्वल्लीकर्णः ॥२३॥ ग्रथितमांसस्तब्धशिरा तत्सूक्ष्मपालिर्यष्टिकर्णः ॥ २४ ॥ निर्मांससंक्षिप्ताग्राल्पशोणितपालिः काकौष्ठकपालिरिति ॥ २५ ॥

संक्षिप्तको आदि ले (नीचे लिखे) पांच बन्ध असाध्य हैं ॥ २० ॥ उनमेंसे सूखी सुहालीकी भांति उठीहुई एक पाली हो और दूसरी स्वल्प हो वह संक्षिप्त है ॥ २१ ॥ अवकाशतक जो क्षीणमांस होजाय वह हीनकर्ण है ॥ २२ ॥ पतली और विषम तथा स्वल्प पाली हो जाय तो वल्लीकर्ण है ॥२३॥ जिसके मांसमें ग्रंथि पड जाय नसें स्तंभित हो जायँ और फैलीहुई पतली पाली हो तो यष्टिकर्ण है ॥२४॥ मांसरहित जिसकी पाली अगाडीसे गलकर गिरजाय और रक्त स्वल्प हो वह काकौष्ठक पाली है ॥ २५ ॥

बंधेष्वपि तु शोफदाहरागपाकपिडिकास्रावयुक्ता न सिद्धिमुपयांति ॥ २६ ॥

बंधोंमेंभी सूजन, दाह, सुरखी, पकजाना, फुन्सी, फोडा हो जाना और राध रुधिर बहुत बहना इत्यादि दोषयुक्त हों तो वे सिद्ध नहीं होते ॥ २६ ॥

भवंति चात्र ॥ यस्य पालिद्वयमपि कर्णस्य न भवेदिह ॥ कर्णपीठं समे मध्ये तस्य विद्ध्वा विवर्द्धयेत् ॥२७॥ बाह्यायामिह दीर्घायां संधिराभ्यंतरो भवेत् ॥ आभ्यंतरायां दीर्घायां बाह्यसन्धिरुदाहृतः ॥ २८ ॥ एकैव तु भवेत्पालिः स्थूला पृथ्वी स्थिरा च या ॥ तां द्विधा पाटयित्वा तु छित्त्वा चोपरि संधयेत् ॥ २९ ॥ गंडादुत्पाट्य मांसेन सानुबंधेन जीवता ॥ कर्णपालिमपालेस्तु कुर्यान्निर्लिख्य शास्त्रवित् ॥ ३० ॥

यहांपर ये श्लोक हैं कि-जिसके कानकी दोनों पाली (लौ) नहीं हों (कट गई हों) तो उसके कानकी पीठ बीचसे समान भागमेंसे बींधकर बंधानी चाहिये ॥ २७ ॥ यदि बाहरकी तरफसे जो पाली बडी हो तो भीतरको संधित करना ठीक

है और जो भीतरकी ओर बडी हो तो बाहरको संधित करना उचित है ॥२८॥यदि एकही ओर पाली मोटी बडी और स्थिर हो तो उसे बीचसे चीरकर दूसरी तरफ जोड़ देना चाहिये ॥ २९ ॥ यदि पाली न हो तो गंड (पशुविशेष) जो जीता हुआ हो उसका रक्त सहित सद्य मांस निकालकर उससे पाली बनादे परंतु यह क्रिया पूर्णशास्त्र जाननेवाला और क्रियाकुशल वैद्य कर सकता है ॥ ३० ॥

अतोन्यतमं बंधं चिकीर्षुरग्रोपहरणीयोक्तोपसंभृतसंभारं विशेषत-श्चात्रोपहरेत् सुरां मंडं क्षीरमुदकं धान्याम्लं कपालचूर्णं चेति ॥३१॥

इनमेंसे कोईसा बंध (जोड) करनेकी इच्छा हो तो अग्रोपहरणीय पांचवें अध्यायोक्त सामग्री संपादन करे विशेष करके मदिरा, मांस, दूध, पानी, कांजी, ठिकरोंका चूर्ण इन्हेभी पास रखले ॥ ३१ ॥

ततोंगनां पुरुषं वा ग्रथितकेशांतं लघुभुक्तवंतमाप्तैः सुपरि-गृहीतं च कृत्वा बंधमुपधार्य छेद्यभेद्यलेख्यव्यधनैरुपपन्नै-रुपपाद्य कर्णं शोणितमवेक्षेत दुष्टमदुष्टं चेति । तत्र वातदुष्टे धान्याम्लोष्णोदकाभ्यां पित्तदुष्टे शीतोदकपयोभ्यां श्लेष्मदुष्टे सुरामंडोष्णोदकाभ्यां प्रक्षाल्य कर्णौ पुनरवलिख्याऽनुन्नतमहीनमविषमं च कर्णसंधिं सन्निवेश्य स्थितरक्तं संदध्यात् ॥ ३२ ॥

फिर पुरुष हो वा स्त्री उसके बाल गुथवाकर हलका भोजन कराकर समझ-दार मनुष्य (की गोदमें बिठाकर या) पकडवाकर बंध (जोड) को विचार कर छेदन, भेदन, लेखन और व्यधन क्रिया जैसी वहां उचित हो वैसी करे और कानके रुधिरको देखे कि यह शुद्ध है अथवा किसी दोषसे दूषित है । यदि वायुसे दूषित हो तो कांजी और गरम जलसे धोवे और पित्तसे दूषित हो तो ठंढे पानी और दूधसे तथा कफसे दूषित हो तो मदिरा और मंड और गरम जलसे दोनों कानोंको धोकर फिर उसे शस्त्रसे ऐसा कर दे कि, ऊँचा और खंडित और टेढा न रहे और संधिमें संधि मिलाकर रुधिरको रोकदे ॥ ३२ ॥

ततो मधुतैलेनाभ्यज्य पिचुप्लोतयोरन्यतरेणावगुण्ठ्य सूत्रेणानवगाढमशिथिलं च बद्ध्वा कपालचूर्णेनावकीर्याचारिकमुपदिशेत् द्विव्रणीयोक्तेन च विधानेनोपचरेत् ॥ ३३ ॥

तदनन्तर शहत और तेलसे रुईके फोहे या वस्त्रको भिगोकर लगावे और ऊपर रखकर डोरासे न बहुत कडा न ढीला बांधकर ठिकरीका चूर्ण (या अन्य योग्य

औषध) बुरका कर उचित आहार विहारका उपदेश करे और द्विव्रणीयोक्त विधानके अनुसार वरताव करे ॥ ३३ ॥

भवतश्चात्र ॥ विघट्टनं दिवास्वप्नं व्यायाममतिभोजनम् ॥ व्यवायमग्निसंतापं वाक्छ्रमं च विवर्जयेत् ॥ ३४ ॥ आमतैलपरीषेकं त्रिरात्रमवचारयेत् ॥ ततस्तैलेनं संसृष्टं त्र्यहादपनयेत्पिचुम् ॥३५॥

इस विषयमें दो श्लोक हैं ॥ कानका रगडना (दबाना) दिनका सोना परिश्रम करना, अति भोजन करना, मैथुन और अति संताप और अति बोलना इन सबको त्याग दे ॥ ३४ ॥ कच्चे तेलका चुपडना तीन तीन दिनमें करते रहे और तीसरे तीसरे दिनही तेलका फोहा भी पलटता रहे ॥ ३५ ॥

न चासंशुद्धरक्तमतिप्रवृत्तरक्तं क्षीणरक्तं वा संदध्यात् ॥ ३६ ॥ सहितवातदुष्टे रक्ते रूढोपि परिपुटनवान् । पित्तदुष्टे दाहपाकरागवेदनावान् । श्लेष्मदुष्टे स्तब्धकंडूमान् । अतिप्रवृत्तरक्ते श्यावशोफवान् । क्षीणोऽल्पमांसो न वृद्धिमुपैति ॥ ३७ ॥ स यदा सुरूढो निरुपद्रवः सवर्णो भवति तदैनं शनैः शनैरभिवर्द्धयेत् । अतोन्यथा संरंभदाहपाकरागवेदनावान् पुनश्छिद्यते वा ॥ ३८ ॥

अशुद्ध रक्त हो बहुत रक्त निकला हुआ हो क्षीण रक्त हो तो उसे संधित न करे (नहीं जोडे) ॥३६॥ क्योंकि वातदूषित रुधिर सहित हो तो जुडे पीछे परपोट (फपोडे) होजाते हैं (फट जाता है) पित्त दूषित रुधिर सहित जोडे जानेसे दाह पकजाता सुरखी और पीडा रहती है कफदूषित रक्तसहित जुडनेसे कडा होजाता है खाज रहती है। अतिरुधिर निकल गया हो तो काला पडजाता है शोथ रहता है क्षीण रक्त हो तो उसपर पूर्णमांस नहीं चढता और न बढकर बराबर होता है ॥ ३७ ॥ और जब वह संधित होकर ठीक जुडजाय और जखम भरजाय और कुछ उपद्रव न रहै और रंगमें रंग मिलजाय तब उसके छिद्रको फिर धीरे धीरे बढावे इसके विपरीत होनेसे शोथ, दाह, पकजाना, सुरखी तथा पीडा रहती है और फिर कट (छिद) जाता है ॥ ३८ ॥

अथास्याऽप्रदुष्टस्याभिवर्द्धनार्थमभ्यंगः । तद्यथा गोधाप्रतुदविष्किरानूपौदकवसामज्जानः पयः सर्पिस्तैलं गौरसर्षपजं च यथालाभं संभृत्यार्कालर्कबलातिबलानंतापामार्गाश्वगंधावि-

दारिगंधाक्षीरशुक्काजलशूकमधुरवर्गप्रतिवापं तैलं वा पाचयित्वा स्वनुगुप्तं निदध्यात् ॥ ३९ ॥

अब शुद्ध कर्णके बढानेके अर्थ अभ्यंग (मालिश) है । जैसे गोह (जो निर्विष हो) प्रतुद (पंडक शुक आदि), विष्किर (लवा बटेर आदि), आनूप जो जलके तीरपर रहैं । औदक अर्थात् जलचर इन जंतुओंकी चरबी और मज्जा तथा दूध, घृत, सुपेद सरसोंका तैल और आक, राजार्क, खरेहटी, गुलशकरी, अनन्तमूल, चिरचटा, अश्वगंधा, विदारीगंधा, अर्थात् शालपर्णी, क्षीरशुक्का (क्षीरकाकोली), जलशूक (सिवाल) और अन्य मधुरवर्गयुक्त तैल पकाकर रक्षासे रक्खे (लगावे) ॥ ३९॥

स्वेदितोन्मर्दितं कर्णं स्नेहेनानेन योजयेत् ॥ अथानुपद्रवः सम्यग्बलवांश्च विवर्द्धते ॥ ४० ॥ यवाश्वगंधायष्ट्याह्वैस्तिलैश्चोद्वर्तनं हितम् ॥ शतावर्यश्वगंधाभ्यां पयस्यैरंडजीवनैः॥ तैलं विपक्वं सक्षीरमभ्यंगात्पालिवर्द्धनम् ॥ ४१ ॥

श्वेत तथा उन्मर्दित किये हुए कानपर इस तैलकी योजना करे । इससे उपद्रवरहित बलवान् कान वर्द्धित होता है ॥ ४० ॥ और जौ, अश्वगंधा, मुलहटी और तिलोंको पीसकर उबटन करना हित है तथा शतावरी, अश्वगंधा, क्षीरकाकोली, अरंड और जीवक इन करके दुग्धयुक्त तैल पकावे और उसकी मालिश करनेसे कर्णपालीकी वृद्धि होती है ॥ ४१ ॥

ये तु कर्णा न वर्द्धंते विधिनाऽनेन योजिताः ॥ तेषामपांगदेशेषु कुर्य्यात्प्रच्छानमेव तु ॥ ४२ ॥

जो कर्णच्छिद्र इस उपरोक्त विधानकी योजना करनेसे भी नहीं बढें तो उनके अपांगप्रदेशमें पछना लगाना चाहिये ॥ ४२ ॥

बाह्यच्छेदं न कुर्वीत व्यापदस्तु ततो ध्रुवाः ॥ विद्धमात्रं तु यः कर्णं सहसैवाभिवर्धयेत् ॥ आमकोशी समाध्मातः क्षिप्रमेव विमुच्यते ॥ ४३ ॥

बाहर छिद्र नहीं करना चाहिये इससे अवश्य विकार होते हैं । और बींधतेही जो कानको जलदी करके बढाता है तो कच्चा कोश होनेसे सूजकर शीघ्रही कट जाता है ॥ ४३ ॥

जातरोमा सुवर्त्मा च श्लिष्टसंधिः समः स्थिरः ॥ सुरूढो वेदनो यस्तु तं कर्णं वर्द्धयेच्छनैः ॥ ४४ ॥ अमिताः कर्णबंधास्तु वि-

ज्ञेयाः कुशलैरिह ॥ यो यथा सुनिविष्टः स्यात्तं तथा विनियोजयेत् ॥ ४५ ॥

जब रोम आजायँ, ठीक २ छिद्र हो, संधि मिल गईहो, एकसा और स्थिर हो, जखम भर गया हो, कुछ पीडा न हो ऐसे कर्णछिद्रको धीरे २ बढाना चाहिये ॥ ४४ ॥ कानके बंध कुशल वैद्योंने असंख्य वर्णन किये और जाने हैं परंतु जहां जो ठीक हो वहां उसी प्रकारसे योजना करना योग्य है ॥ ४५ ॥

कर्णपाल्यामयान्नृणां पुनर्वक्ष्यामि सुश्रुत ॥ कर्णपाल्यां प्रकुपिता वातपित्तकफास्त्रयः ॥ ४६ ॥ द्विधा वाप्यथ संसृष्टाः कुर्वंति विविधा रुजः ॥ विस्फोटः स्तब्धता शोफः पाल्यां दोषे तु वातिके ॥ ४७ ॥ दाहविस्फोटजननं शोफः पाकश्च पैत्तिके ॥ कंडूः सश्वयथुः स्तंभो गुरुत्वं च कफात्मके ॥ ४८ ॥ यथादोषं च संशोध्य कुर्यात्तेषां चिकित्सनम् ॥ स्वेदाभ्यंगपरीषेकैः प्रलेपासृग्विमोक्षणैः ॥ ४९ ॥ मृद्वीं क्रियां बृंहणीयैर्यथास्वं भोजनैस्तथा ॥ य एवं वेत्ति दोषाणां चिकित्सां कर्तुमर्हति ॥ ५० ॥

धन्वंतरिजी कहते हैं कि, हे सुश्रुत ! कर्णपालीके रोग हम फिर कहते हैं कि, कर्णपालीमें वायु, पित्त और कफ तथा द्विदोष और तीनों दोष मिलकर अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं उनमेंसे फालक, कडापन, शोथ ये विकार कर्णपालीमें वायुके दोषसे होते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ दाह, फुन्सी पैदा होना शोथ और पक जाना ये पित्तसे होते हैं और खाज, शोथ, स्तंभ, भारीपन ये कफसे होते हैं॥४८॥ जैसा दोष हो उसका शोधन करके स्वेद, तैल मलना, धोना, लेप, रक्त निकालना, आदिक चिकित्सा करे ॥ ४९ ॥ बृंहण द्रव्योंसे यथोचित भोजनसे हलकी क्रिया करे ऐसे जो जानता है वह दोषोंकी चिकित्सा कर सकता है ॥ ५० ॥

पालीके उपद्रव ।

अत ऊर्ध्वं नामलिंगैर्वक्ष्ये पाल्यामुपद्रवान् ॥ उत्पाटकश्चोत्पुटकः श्यावः कंडूयुतो भृशम् ॥ ५१ ॥ अवमंथस्तथा प्रोक्तो ग्रंथिको जंबुलस्तथा ॥ स्रावी च दाहवांश्चैव शृण्वेषां क्रमशः क्रियाम् ॥ ५२ ॥

इससे अगाडी हम नाम, रूप, लक्षणोंहीसे पालीके उपद्रवोंका वर्णन करते हैं (जैसे) उत्पाटक (उपडना) उत्पुटक (पपडी आना) श्याव (काला पडजाना)

(सूत्र ५०) अस्य पूर्वार्द्धे कुर्यादिति पूर्वोक्तेनान्वयः उत्तरार्द्धे स चिकित्सां कर्तुमर्हति इत्यन्वयः ॥

कंडूयुत (खाजसहित) ॥ ५१ ॥ अवमंथ (कंडूयुत शोथ) ग्रंथिक (गांठपडना) जंबुल (बुद्बुदाकार) तथा स्रावी (झिरनेवाला) दाहवान् (जिसमें जल न हो) अब क्रमसे इनकी क्रिया (चिकित्सा) सुनो ॥ ५२ ॥

अपामार्गः सर्जरसः पाटला लकुचत्वचौ ॥ उत्पाटके प्रलेपः स्यात्तैलमेभिश्च पाचयेत् ॥ ५३ ॥ संपाकशिग्रुपूतीकगोधामेदोऽथ तद्वसा ॥ वाराहं गव्यमैणेयं पित्तं सर्पिश्च संमृजेत् ॥ लेपमुत्पुटके दद्यात्तैलमेभिश्च साधितम् ॥ ५४ ॥

अपामार्ग, राल, पाटला, लकुच, तज इनका लेप करे या इनको तैलमें पकाकर उत्पाटक रोगपर लगावे ॥५३॥ और उत्पुटक उपद्रव हो तो अमलतास, सहजना, करंज और गोहकी चरबी या वसा, शूकर, नीलगौ, हिरण इनका पित्त तथा घृत एकत्र करके लेप करे अथवा इनमें तैल साधन करके लगावे ॥ ५४ ॥

गौरीं सुगंधां सश्यामामनंतां तंदुलीयकम् ॥ श्यावे प्रलेपनं दद्यात्तैलमेभिश्च साधितम् ॥ ५५ ॥ पाठां रसांजनं क्षौद्रं तथा स्यादुष्णकांजिकम् ॥ दद्याल्लेपं सकंडूके तैलमेभिश्च साधितम् ॥५६॥

काला पडनेपर हलदी, सुगंधा, प्रियंगु, अनंतमूल, चौलाई इनका लेप करे या इनमें तैल पकाकर लगावे ॥ ५५ ॥ खाज हो तो पाठा, रसोत, शहत तथा गरम कांजी इनका लेप करे या इनमें तैल पकाकर मले ॥ ५६ ॥

व्रणीभूतस्य देयं स्यादिदं तैलं विजानता ॥ मधुकक्षीरकाकोलीजीवकाद्यैर्विपाचितम् ॥ ५७ ॥ गोधावराहसर्पाणां वसाः स्युः कृतबृंहणे ॥ ५८ ॥

यदि व्रण हो तो वह तैल लगावे जो कि, मुलहटी, क्षीरकाकोली, जीवकादिक करके विद्वान् वैद्यका पकायाहुआ हो ॥ ५७ ॥ और जहां बृंहण करना हो वहां गोह, शूकर और सर्पकी वसाका मर्दन करे ॥ ५८ ॥

प्रपौंडरीकं मधुकं ससंगा धर्वमेव च ॥ एभिर्लेपं पचेत्तैलं वा दद्यादवमंथके ॥ ५९ ॥ ग्रंथिके गुटिकां पूर्वं स्रावयेदवपाट्य तु ॥ ततः सैंधवचूर्णं तु घृष्ट्वा लेपं प्रदापयेत् ॥ ६० ॥ लिखित्वा तत्स्रुतं घृष्ट्वा चूर्णै रोध्रस्य जंबुले ॥ क्षीरेण प्रतिसार्यैनं शुद्धं संरोपये-

---

(सूत्र ५९) प्रपौंडरीकः पुंडर्या इति ख्यातः ; शालपर्णीतुल्यपत्रको वृक्षः ॥

त्ततः॥६१॥ मधुपर्णी मधूकं च मधुकं मधुना सह ॥ लेपः स्राविणि दातव्यस्तैलमेभिश्च साधितम् ॥ ६२ ॥ पंचकल्कैः समधुकैः पिष्टैस्तैश्च घृतान्वितैः ॥ जीवकाद्यैः ससर्पिष्कैर्दह्यमानं प्रलेपयेत्॥६३॥

अवमंथविकारमें प्रपौंडरीक, मुलहटी, लजालू, धव इनका लेपकरे या इनमें तैल पकाकर लगावे ॥ ५९ ॥ ग्रंथिकमें पहले ग्रन्थीको चीरकर रक्तादि निकालदे फिर सेंधानमक मलकर लेप (यथोचित) करे ॥ ६० ॥ जंबूल (बुद्बुद) में खुरचकर और रक्तादि निकल जानेपर लोधका चूर्ण मलकर दुग्धसे शुद्धकर शुद्ध होनेपर रोपण करना चाहिये ॥ ६१ ॥ स्राव हो तो गिलोय, महुवा, मुलहटी इन्हे पीस शहत मिलाकर लेपकरे या इनमें तैल पकाकर लगावे ॥ ६२ ॥ दाहयुक्त हो तो पंचवल्क (पंचवल्कल न्यग्रोधादि पांच वृक्षोंकी छाल) और सहत घृत सहित पीसकर लेपकरे अथवा घृतमें जीवकादिक युक्त करके लेपकरे ॥ ६३ ॥

नासिका ।

विश्लेषितायास्त्वथ नासिकाया वक्ष्यामि संधानविधिं यथावत् ॥ नासाप्रमाणं पृथिवीरुहाणां पत्रं गृहीत्वा त्ववलंबितस्य ॥ ६४ ॥ तेन प्रमाणेन हि गंडपार्श्वादुत्कृत्य वद्धं त्वथ नासिकाग्रम् ॥ विलिख्य चाशु प्रतिसंदधीत तत्साधुबंधैर्भिषगप्रमत्तः ॥ ६५ ॥

यदि नासिकाका छिद्र बढकर कटजाय तो उसकी संधान (जोडनेकी) विधि यथावत् वर्णन करते हैं। नासिकाके समान किसी वृक्षका पत्ता लेकर उसकी बराबर गंडपशुसे बन्धके योग्य मासादिको लेकर नासापालियोंमें सावधान वैद्य ठीक जोड दे (यदि नासिकाकी लो आपसमें जुडसकें तो उन्हेंही जोडे) ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

सुसंहितं सम्यगथो यथावन्नाडीद्वयेनाभिसमीक्ष्य बद्धा ॥ प्रोन्नम्य चैनामवचूर्णयेच्च पतंगयष्टीमधकांजनैश्च ॥ ६६ ॥ संछाद्य सम्यक्पिचुना सितेन तैलेन सिंचेदसकृत्तिलानाम् ॥ घृतं च पाय्यः स नरः सुजीर्णे स्निग्धो विरेच्यः स यथोपदेशः ॥ ६७ ॥ रूढं च संधानमुपागतं स्यात्तदर्द्धशेषं तु पुनर्निकृंतेत् ॥ हीनां पुनर्वर्द्धयितुं यतेत समां च कुर्य्यादतिवृद्धमांसान् ॥ ६८ ॥ नाडीयोगं

(सूत्र ६२) मधुपर्णी गुडूची । (सूत्र ६३) पचवल्कल पचानां न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थप्लक्षवेतसानां वृक्षाणा वल्कलम् ॥

विनौष्ठस्य नासासंधानवद्विधिः ॥ य एवमेवं जानीयात्स राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ ६९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

जब ठीक यथावत् जुडजाय तब दोनों नाडियोंको देखकर बन्ध लगा ठीक- नवाकर लालचन्दन, मुलहटी और रसोत इनका चूर्ण बुरका दे ॥ ६६ ॥ फिर उसपर सुपेद कपडा ढककर तिलोंके तेलसे वारवार तरकरै और घृत पिलावे और जब जीर्ण होजाय तब स्निग्ध विरेचन उपदेशके अनुसार दे ॥ ६७ ॥ और जब जखम भरजाय और जुडजाय तब जो आधा शेष रहा हो तो उसे काट या खुर- चकर ठीक करे और जो छोटा हो तो उसे फिर बढानेका यत्न करे और कुछ अधिक मांस बढगया हो तो उसे बराबर करदे ॥ ६८ ॥ नाडियोंके योगके विना नासिकाके संधानकी तरह होठके संधान (जोडने) की विधि है जो इस प्रकारसे जानताहै वह राजोंकी चिकित्सा कर सकता है ॥ ६९ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

अथात आमपक्वैषणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे आमपक्वैषणीय (व्रण कच्चा है या पकगया है इसके निश्चय करने आदिकी विधि) नामक अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

शोफसमुत्थाना ग्रन्थिविद्रध्यलजीप्रभृतयः प्रायेण व्याधयोऽभि- धास्यन्तेऽनेकाकृतयस्तैर्विलक्षणः पृथुर्ग्रथितः समो विषमो वा त्वङ्मांसस्थायी दोषसंघातः शरीरैकदेशोत्थितः शोफ इत्युच्यते ॥१॥ स षड्विधो वातपित्तकफशोणितसंनिपातागन्तुनिमित्तः॥२॥

ग्रंथि विद्रधि अर्थात् फोडा अलजी (लालश्वेत छोटी २ फुन्सी) शोथसे अनेक प्रकारकी उत्पन्न होती हैं उन करके विलक्षण फैलाहुआ या सिमटाहुआ समान या विषम त्वचा और मांसमें स्थित वातादि दोषोंका संघात जो शरीरके किसी एक (या कई) देशोंमें (उंचाई) हो वह शोफ (शोथ या सोजा सूजन या वरम) कहलाता है ॥ १ ॥ वह शोथ छः प्रकारका होता है १ वायुका २ पित्तका ३

(सूत्र १) विद्रधिरिति त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिता दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रितं भृशं महाशूलं रुजावतमल्पं वाप्यथवायत स विद्रधिरिति ख्यातः (भावप्रकाशः) । अलजीलक्षणम् (भावप्र.) " रक्तासितास्फोटचिता विज्ञेया त्वलजीबुधैः ॥" इति (भा० प्र०) । ग्रंथिविद्रध्यलजीनां कारणमेवं शोकस्तेषामकारणत्वेपि ज्वरातिसारादौ वातादिकृतौपद्रविकशोथश्चेति ॥

कफका ४ रुधिरका ५ संन्निपातका ६ आगन्तुक (ऊपरसे चोट लगने या विषजंतुके डसने आदिसे) ॥ २ ॥

शोफके लक्षण।

तस्य दोषरूपव्यञ्जनैर्लक्षणानि व्याख्यास्यामः ॥ ३॥

उस शोफके रूपकी प्रगटता करके लक्षणोंको वर्णन करतेहैं ॥ ३ ॥

तत्र वातशोफोऽरुणः कृष्णो वा परुषो मृदुरनवस्थितास्तोदादयश्चात्र वेदनाविशेषा भवंति । पित्तशोफः पीतो मृदुः सरक्तो वा शीघ्रानुसारी चोषादयश्चात्र वेदनाविशेषा भवंति । श्लेष्मशोफः पांडुः शुक्लो वा कठिनः शीतः स्निग्धो मंदानुसारी कंड्वादयश्चात्र वेदनाविशेषा भवंति । सर्ववर्णवेदनः सन्निपातजः। पित्तवच्छोणितजोऽतिकृष्णश्च । पित्तरक्तलक्षण आगंतुर्लोहितावभासश्च ॥ ४ ॥

इनमें वायुका शोथ लाल, काला, खरदरा, नरम, अनवस्थित (घटने बढनेवाले) दरदकी वेदना इसमें विशेष हो । पित्तका शोथ पीला, नरम या लाल, शीघ्र बढने या फैलनेवाला होताहै और सूँचने या जलनकीसी वेदना इसमें अधिक होती हैं । कफका सोजा हलका पीला अर्थात् कुपूरिया सुपेद, कडा, शीतल, स्निग्ध और मंदतासे बढने या फैलनेवाला होताहै और खाजआदिकी वेदना इसमें विशेष होती हैं। और जिसमें सब रंग और सब प्रकारकी वेदना हो वह संनिपातका शोथ है। रुधिरके शोथमें प्रायः पित्तके लक्षण होते हैं विशेषकर कृष्ण होता है। और पित्तरक्तके लक्षणोंवाला और जिसमें सुरखी चमकती हो वह आगंतुक है ॥४॥

स यदा बाह्याभ्यंतरैः क्रियाविशेषैर्न संभावितः प्रशमयितुं क्रियाविपर्य्ययाद्बहुत्वाद्वा दोषाणां तदा पक्वाभिमुखो भवति तस्यामस्य पच्यमानस्य पक्वस्य च लक्षणमुच्यमानमवधारय॥५॥

यदि वह शोथ बाहर लेपनादि और अभ्यंतर क्काथपानादि अनेक क्रियाओंसे शांतिको प्राप्त न हो और विपरीत (या थोडी) क्रिया होने अथवा दोषोंकी अधिकतासे पकावपर आजाय तो उसके कच्चे तथा पकावपर आये या पकगयेके लक्षण जो कहे जायंगे उन्हे श्रवण करो और समझो ॥ ५ ॥

तत्र मंदोष्मता त्वक्सवर्णता शीतशोफता स्थैर्यं मंदवेदनताऽल्पशोफता चामलक्षणमुद्दिष्टम् ॥ ६ ॥

जहां अति उष्णता न हो त्वचामें समानता हो शोथमें ठंढापन हो स्थिरता हो चीस चमक मन्द हो सूजन थोडा हो ये कच्चेके लक्षण हैं ॥ ६ ॥

पच्यमानलक्षणम् ।

सूचिभिरिव निस्तुद्यते, दश्यत इव पिपीलिकाभिस्ताभिश्च संसृप्यत इव, छिद्यत इव शस्त्रेण, भिद्यत इव शक्तिभिस्ताडयत इव दंडेन, पीड्यत इव पाणिना, घट्टत इव चांगुल्या, दह्यते पच्यत इव चाग्निक्षाराभ्यामोषचोषपरीदाहाश्च भवंति, वृश्चिकविद्ध इव च स्थानाशनशयनेषु न शांतिमुपैति । आध्मानवस्तिरिवाततश्च शोफो भवति त्वग्वैवर्ण्यं शोफाभिवृद्धिर्ज्वरदाहपिपासा भक्तारुचिश्च पच्यमानलिंगम् ॥ ७ ॥

जैसे सुईयोंसे वेधा जाता हो मकौडेसे काटते हों चेंटीसी चलती हों शस्त्रसे चीरासा जाता हो बरछी भालेसे धवलासा जाता हो लकडीसे कूटासा जाता हो हाथोंसे दबायासा जाता हो अंगुलियोंसे मलासा जाता हो अग्नि और तेजानसे जलाया और पकायासा जाता हो उष्णता (जलन) और तरडाव तथा परिदाह (आगसी लगना) ये हों और विच्छूके डसेके समान पीडित हो खडे बैठे लेटे किसी प्रकार चैन नहीं पडता । और फूली मसककी भांति तनाहुवा शोथ हो और त्वचाकी रंगतमें फरक होजाय और शोथ खूब बढ़ा हो तथा (इसकी पीडासे) तप (शरीरमें), दाह, अधिकतृषा और भोजनमें अरुचि हो ये पकतेहुए (पकावपर आने)के लक्षण हैं ॥ ७ ॥

वेदनोपशांतिः पांडुताऽल्पशोफता वलीप्रादुर्भावस्त्वक्परिपुटनं निम्नदर्शनमंगुल्यावपीडिते प्रत्युन्नमनं वस्ताविवोदकसंचरणं पूयस्य प्रपीडयत्येकमन्तमंते वावपीडिते मुहुर्मुहुस्तोदः कंडूरुन्नतता च व्याधेरुपद्रवशांतिर्भक्ताभिकांक्षा च पक्वलिंगम् ॥ ८ ॥

वेदनाकी शांति होने लगे, पीलापन आजाय, शोथ हलका पडजाय और सलवट पडनेलगे, त्वचा ढीली पडकर फटनेपर आजाय, निचाई दीखने लगे, अंगुलीसे दबानेपर पिलपिला लगे और जैसे चमडेमें भरा हुवा पानी थलथलाट करता मालूम होताहै ऐसे इधर उधर दबानेसे मालूम हो और दबानेसे कभी कभी दरद हो और खाज आने लगे तथा खिंचाव तनाव न रहे ये लक्षण ठीक पके हुएके हैं ॥ ८ ॥

कफजेषु तु रोगेषु गम्भीरगतित्वादभिघातजेषु वा केषुचिदसमस्तं पक्वलक्षणं दृष्ट्वा पक्वमपक्वमिति मन्यमानो भिषङ्मोहमुपैति यत्र हि त्वक्सवर्णता शीतशोफता स्थौल्यमल्परुजताऽश्मवद्घनता न तत्र मोहमुपेयादिति ॥ ९ ॥ भवंति चात्र-

कफके रोगोंमें मंद गति या औंधी गति होनेसे अथवा अभिघातजमें कइयोंमें अपूर्ण पकेके लक्षणोंको देखकर पकगया या नहीं पका है ऐसे शोचकर वैद्य (जर्राह या सर्जन) मोहमें आजाता है अर्थात् चूक जाता है तो इसमें त्वचाके वर्णकी समता, शोथमें ठंढापन, मोटापने, थोडा दरद, पत्थरकी भांति कडापन (ये अपक्वके चिह्न) मोहको नहीं होने देते (चूक नहीं होने देते) इससे इन्हें समझले ॥ ९ ॥ इसमें श्लोक हैं-

आमं विपच्यमानं च सम्यक्पक्वं च यो भिषक् ॥ जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १० ॥

कच्चा तथा पकावपर आनेवाला और ठीक पकाहुआ इनको जो वैद्य जानता-है वही वैद्य (सर्जन) हो सकता है और बाकी सब (अधकचडे) तस्करवृत्ति (ठगरूप) हैं ॥ १० ॥

वातादृते नास्ति रुजा न पाकः पित्तादृते नास्ति कफाच्च पूयः ॥ तस्मात्समस्ताः परिपाककाले पचंति शोफांस्त्रय एव दोषाः ॥ ११ ॥ कालांतरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य ॥ पचत्यतः शोणितमेष पाको मतोऽपरेषां विदुषां द्वितीयः ॥ १२ ॥

वायुके विना पीडा (चीस) नहीं होती और पित्तके विना पाक (पकना या जलन) नहीं और कफके विना पूय (राध-पीब) नहीं होता इससे परिपाकके समयमें तीनों दोष शोथको पका देते हैं ॥ ११ ॥ कई वैद्योंका यह मत है कि, कालांतरमें उल्वण हुआ पित्त वायु और कफको वश करके रुधिरको भी पका देता है अर्थात् पासके रक्तको भी संसर्गसे पीब बना देता है तो यह और परिपाक दसरा होता है ॥ १२ ॥

छेदनकी आज्ञा ।

तत्रामच्छेदे मांससिरास्नाय्वस्थिसंधिव्यापादनमतिमात्रं शोणि-

(सूत्र ११) कफादृते पूयः नास्ति इत्यन्वयः ।

तातिप्रवृत्तिर्वेदनाप्रादुर्भावोऽवदरणमनेकोपद्रवदर्शनं क्षतविद्रधिर्वा भवति ॥ १३ ॥ स यदा भयमोहाभ्यां पक्वमपक्वमिति मन्यमानश्चिरमुपेक्षते व्याधिं वैद्यस्तदा गंभीरानुगतो द्वारमलभमानः पूयः स्वमाश्रयमवदीर्योत्संगं महांतमवकाशं कृत्वा नाडीं जनयित्वा कृच्छ्रसाध्यो भवत्यसाध्यो वेति ॥१४॥भवंति चात्र—

जहां कच्चेमें चीरा लग जाय तो मांस, शिरा, नस, हड्डी और संधियोंमें कटाव और अति पीडा तथा रुधिरकी अधिक प्रवृत्ति और वेदनाका प्रादुर्भाव और अयोग्य फटाव (तरेड) तथा और अनेक उपद्रव दीखने लगते हैं या घावमें और विद्रधि (फोडा) होजाता है ॥ १३ ॥ और यदि भय या मोहसे पकेहुएको अपक समझकर वैद्य बहुत समयतक उसको रहने दे तो पीव भीतरको अधिक प्रवेश कर जाता है और व्रणके मुखपर नहीं मिलता और अपने निज स्थानको विदीर्ण करके गहरा और बडा अवकाश (थोथ) बनाकर नाडी (नासूर) पैदाकर देता है जिससे कष्टसाध्य अथवा असाध्य होजाता है ॥ १४ ॥ इस विषयम श्लोक हैं कि--

यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते ॥ श्वपचाविव मंतव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १५ ॥ प्राक्शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदातुरं भिषक् ॥ मद्यपं पाययेन्मद्यं तीक्ष्णं यो वेदनासहः ॥ १६ ॥ न मूर्च्छत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रं न बुध्यते ॥ तस्मादवश्यं भोक्तव्यं रोगेषूक्तेषु कर्मणि ॥ १७ ॥ प्राणो ह्याभ्यंतरो नृणां बाह्यप्राणगुणान्वितः ॥ धारयत्यविरोधेन शरीरं पाञ्चभौतिकम् ॥ १८ ॥

जो वैद्य विना पके कच्चे व्रणको चीरदे अथवा पके पीछे रहने दे (न चीरे) तो ये दोनों अनिश्चितकारी चांडालके तुल्य जानने ॥ १५ ॥ शस्त्रकर्म करनेसे पहले आतुरको वांछित भोजन करावे और जो मदिरा पीते हों उन्हे तीक्ष्ण मद्य पिलादे जो वेदना न सहसकें (उन्हे अवश्य तीक्ष्ण मद्य पिलावे) ॥ १६ ॥ क्योंकि अन्नके संयोगसे मूर्च्छित न होगा और नशा हो जानेसे शस्त्रकी पीडाको नहीं जानेगा इससे अवश्य रोगोंमें ऐसे शस्त्रकर्मके समय भोजन कराना (और मद्य पिलाना) चाहिये ॥ १७ ॥ मनुष्योंका आभ्यंतर प्राणवायु, बाह्य प्राणवायु (ओक्सीजन) के गुणोंसे मिलकर विरोधके अभावसे पंचभूतात्मक शरीरको धारण करता है ॥ १८ ॥

अल्पो महान्वा क्रियया विना यः समुच्छ्रितः पाकमुपैति-शोफः ॥ विशालमूलो विषमो विदग्धः स कृच्छ्रतां यात्यवगाढ-दोषः ॥ १९ ॥ आलेपविस्रावणशोधनैश्च सम्यक्प्रयुक्तैर्यदि-नोपशाम्येत् ॥ पचेत शीघ्रं सममल्पमूलः स पिंडितश्चोपरि चो-न्नतः स्यात् ॥ २० ॥

छोटा या बडा व्रण जो विना क्रियाके बढजाय और शोथ पकजाय, विषम और विशाल जडवाला तथा विदग्ध होजाय वह गंभीर दोषवाला होकर कष्टसा-ध्यताको प्राप्त होजाताहै ॥ १९ ॥ लेपन, रक्तविस्रावण और यथोक्त शोधनादिके प्रयोगोंसे यदि ठीक शांत नभी हो तो समान और थोडी जडवाला पिंडीभूत और ऊपरको उभराहुआ ऐसा होकर शीघ्रही पकजायगा ॥ २० ॥

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितः संदहति प्रसह्य ॥ तथे-व पूयोऽप्यवि निसृतो हि मांसं शिरां स्नायु च खादतीह॥२१॥

जैसे वायुप्रेरित अग्नि प्रचण्ड होकर तृणसमूहको जलादेता है वैसेही व्रणका पाप सहजसे नहीं निकलता किन्तु रुककर मांस, रग और नसोंको खाजाता है (जखम डाल) कष्टसे अच्छा होता है ॥ २१ ॥

व्रणके सात कर्म ।

आदौ विम्लापनं कुर्य्याद्द्वितीयमवसेचनम् ॥ तृतीयमुपनाहं च चतुर्थीं पाटनक्रियाम् ॥ २२ ॥ पंचमं शोधनं कुर्यात्षष्ठं रोपणमि-ष्यते ॥ एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमं वैकृतापहम् ॥ २३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

व्रणशोथके ये सात कर्म हैं सबसे पहले उठतेही जहांतक हो विला देना बिठा देना शिथिल करना चाहिये यदि न बैठे तो फिर दूसरे जलौकादिसे रक्त निकलवा देना चाहिये यदि अबभी शांत न हो तो पुटपाकादि बांधकर पकाना फिर चौथे यह कि पकजाय तब चीरा लगाना (छेदनक्रिया करना) ॥ २२ ॥ पांचवें फिर शोधन करना छठे रोपण (जखम भरने) की क्रिया करे सातवें चर्मका वर्ण आदि समान करना कुछ विकृति हो तो वह दूर करना ये व्रणके क्रम वर्णन किये हैं ॥ २३ ॥

इति प० मुरलीधरशर्म वि० सुश्रुतस० भा०टी०सूत्रस्थाने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोध्यायः १८.

अथातो व्रणालेपनबन्धविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे व्रणलेपनबंधविधि (व्रणके लेप और बंधकी विधि) नामक अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

आलेप आद्य उपक्रम एष सर्वशोफानां सामान्यः प्रधानतमश्च तं च प्रतिरोगं वक्ष्यामः ॥१॥ ततो बंधः प्रधानं तेन शुद्धिर्व्रणरोपणमस्थिसंधिस्थैर्यं च ॥ तत्र प्रतिलोममालिंपेन्नानुलोमं प्रतिलोमे हि सम्यगौषधमवतिष्ठतेऽनुप्रविशति रोमकूपान्स्वेदवाहिभिः शिरामुखैश्च वीर्यं प्राप्नोति ॥ २ ॥

संपूर्ण शोथोंमें सबसे पहले सामान्य और प्रधान उपचार लेप है उसका वर्णन रोग रोगके प्रति करेंगे ॥ १ ॥ और बंध उससे प्रधान है बंधसे व्रणका शोधन और रोपण होता है तथा अस्थि और संधियोंमें स्थिरता हो जाती है । जिसमें लप प्रतिलोम (रोमोंकी गतिके सामनेसे) करना चाहिये अनुलोम (रोमोंकी गतिके अनुगत) लेप करना नहीं चाहिये, क्योंकि प्रतिलोम लेप करनेसे औषध ठीक २ लग जाती है और रोमकूप अर्थात् रोमोंके मुखमेंसे प्रवेश करती है तथा स्वेदवाहिनी नसोंके मुखोंमें प्रवेश करके अपने पराक्रमको प्राप्त होती है अर्थात् गुण करती है ॥ २ ॥

न च शुष्यमाणमुपेक्षेतान्यत्र पीडयितव्यात् ।
शुष्को ह्यपार्थकोऽरुष्करश्च ॥ ३ ॥

सूखे (बहुत देरके पपडाये हुए) लेपको रहने नही दे (अलग करदे) परंतु जहां निकालनेसे पीडा होती हो वहांका लेप नहीं निकाले । तथा सूखा लेप निरर्थक और व्रण (उपाड) करनेवाला होता है ॥ ३ ॥

स त्रिविधः प्रलेपः प्रदेह आलेपश्च । तेषां प्रलेपः शीतस्तनुरविशोषी विशोषी च । प्रदेहस्तूष्णः शीतो वा बहलोऽबहुरविशोषी च । मध्यमोत्रालेपः ॥ ४ ॥ रक्तपित्तप्रसादकृदालेपः । प्रदेहो वातश्लेष्मप्रशमनः संधानः शोधनो रोपणश्च । शोधयेदुपनाहश्च

(सूत्र १) उपक्रम उपायज्ञानपूर्वकारमे चिकित्सायां चेति । (सूत्र २)प्रधान प्रशस्ते मुख्ये क्लीवे श्रेष्ठ त्रिषु । (सूत्र ३) अरुष्करो व्रणकारिणि द्रव्ये । (सूत्र ४) दशविधश्च समासादालेपः १ स्नैहिकः २ निर्वापणः ३ प्रसादनः ४ स्तंभनः ५ विलयनः ६ पाचनः ७ पीडनः ८ शोधन. ९ रोपणः १० सवर्णीकरणश्च ।

तस्योपयोगः क्षताक्षतेषु । यस्तु क्षतेषूपयुज्यते स भूयः कल्क इति संज्ञां लभते निरुद्धालेपनसंज्ञस्तेनास्रावसंनिरोधो मृदुता पूतिमांसापकर्षणमंतर्निर्दोषता व्रणशुद्धिश्च भवति ॥ ५ ॥

वह लेप तीन प्रकारका होताहै १ प्रलेप, २ प्रदेह, ३ आलेप, जिनमें प्रलेप वह है जो ठंढा हलका विशोषी अथवा अविशोपी (मल सुखानेवाला या न सुखानेवाला) हो, प्रदेह उसे कहते हैं जो उष्ण हो या शीतल मोटा हो या पतला परंतु विशोषी (सुखानेवाला) न हो (पसीना लानेवाला नरम करनेवाला हो) और इनमेंसे मध्यमको आलेप कहते हैं ॥ ४ ॥ रक्तपित्तको शांत करनेवाला आलेप होता है । और प्रदेह वायु और कफको शमन करता है । संधान, शोधन और रोपण होता है तथा उपनाह शोधनही करता है । इसका उपयोग घाव और विना घाव दोनोंमें हो सकता है । जो घावपरही (कटेपर) उपयोग किया जाताहै वह फिर कल्क (लूपरी) कहलाता है । और जो निरुद्धालेपनसंज्ञक है उससे स्रावका निरोध होता है और मांसकी शुद्धि और कर्षण तथा भीतरकी निर्दोषता और व्रणकी शुद्धि होती है॥५॥

अविदग्धेषु शोफेषु हितमालेपनं भवेत् ॥ यथास्वं दोषशमनं दाहकंडूरुजापहम् ॥ ६ ॥ त्वक्प्रसादनमेवाग्र्यं मांसरक्तप्रसादनम्॥ दाहप्रशमनं श्रेष्ठं तोदकंडूविनाशनम् ॥ ७ ॥ मर्मदेशेषु ये रोगा गुह्येष्वपि तथा नृणाम्॥ संशोधनार्थं तेषां हि कुर्यादालेपनं भिषक् ॥ ८ ॥ षड्भागं पैत्तिके स्नेहं चतुर्भागं तु वातिके ॥ अष्टभागं तु कफजे स्नेहमात्रां प्रदापयेत् ॥ ९ ॥

अविदग्ध (विना पके) शोथमें आलेपन ही हित है यथाविहित दोषोंकी शांति करता है और दाह तथा खाज और दरदको दूर करता है ॥ ६ ॥ त्वचाकी प्रसन्नताके लिये सर्वोपरि है तथा रुधिर और मांसकोभी प्रसन्न करता है दाहको शांत करता है श्रेष्ठ है तरडाव (व्यथा) और खाजको नाश करता है ॥ ७ ॥ मर्मदेशोंमें जो रोग होते हैं तथा गुह्य देशोंमें जो रोग होजाते हैं उनके संशोधनके लिये वैद्य आलेपन करावे ॥ ८ ॥ पित्तके रोगों (व्रणादि) में छठा भाग स्नेह डालना और वायुके रोगोंमें चौथा भाग तथा कफके रोगोंमें आठवाँ भाग स्नेहकी मात्रा डालनी चाहिये ॥ ९ ॥

तस्य प्रमाणमार्द्रमाहिषचर्मोत्सेधमुपदिशन्ति ॥ १० ॥ न चालेपं रात्रौ प्रयुंजति सांभूच्छैत्यपिहितोष्मणस्तदनिर्गमाद्विकारप्रवृत्तिरिति ॥ ११ ॥

लेपका प्रमाण गीले भैंसके चमडेके समान मोटा होना योग्य है ॥ १० ॥ रात्रिमें आलेप करना योग्य नहीं क्योंकि इसकी शीतलतासे रुकीहुई उष्णताके परमाणु न निकलनेसे विकारकी प्रवृत्ति न होजाय ॥ ११ ॥

प्रदेहसाध्ये व्याधौ तु हितमालेपनं दिवा ॥ पित्तरक्ताभिघातोत्थे सविषे च विशेषतः ॥ १२ ॥ न च पर्य्युषितं लेपं कदाचिदुपचारयेत् ॥ ऊष्माणं वेदनां दाहं घनत्वाज्जनयेत्स हि ॥ १३ ॥ उपर्य्युपरि लेपं तु न कदाचित्प्रदापयेत् ॥ न च तन्वं लेपनं प्रदेहं दापयेत्पुनः ॥ शुष्कभावात्स निर्वीर्यो युक्तोऽपि स्यादपार्थकः ॥ १४ ॥

प्रदेहसाध्य व्याधियोंमें तो दिनमेंही आलेप करना हित है और विशेष करके रक्तपित्त और अभिघात और विषयुक्त रोगोंमें (दिनहींमें करना) ॥ १२ ॥ बासी लेप कभी नहीं रखना चाहिये क्योंकि कडा पडजानेसे वह गरमी, पीडा और दाहको पैदा करता है ॥ १३ ॥ लेपके ऊपर लेपभी कभी न करना चाहिये और लगेहुए लेपके ऊपर प्रदेह (जो पहले कहा अविशोषी) भी नहीं उपयुक्त करे क्योंकि लेप युक्तभी शुष्क होजानेसे निर्वीर्य हो जाता है और उसपर प्रयुक्त किया प्रदेह निरर्थक होता है ॥ १४ ॥

अत ऊर्द्ध्वं व्रणबन्धनद्रव्याण्युपदेक्ष्यामः ॥ १५ ॥

इससे अगाडी हम व्रणबंधनके द्रव्योंका उपदेश करतेहैं ॥ १५ ॥

तद्यथा क्षौमकार्पासाविकदुकूलकौशेयपत्त्रोर्णचीनपट्टचर्मान्तरवल्कलालाबूशकलंलताविदलरज्जुतूलफलसंतानिकालौहानीति तेषां व्याधिकालं चावेक्ष्योपयोगः प्रकरणतश्चैषामादेशः ॥ १६ ॥

व्रणबंधनमें ये पदार्थ उपयोगी होतेहैं—क्षौम (अतसी), कार्पास (रुई), आविक (ऊन) इनके वस्त्र कौशेय (रेशमी वस्त्र), पत्रोर्ण (शणके वस्त्र), चीन (चीनके कपडे), पट्ट (पाटके कपडे), चमडा, वृक्षोंके भीतरकी नरम छाल, तुंबीके टुकडे, लता (वल्ली), विदल (बांसकी खपची), डोर, तूलफल (शाल्मली फल या बिनौला), संतानिका (मलाई) और लोहादि धातुके टुकडे या यंत्रादि इनमेंसे व्याधि और समयको देखकर जो उचित हो उसका उपयोग करे और जैसा प्रकरण हो वैसाही काममें लावे ॥ १६ ॥

(सूत्र १६) क्षौमः—अतसीवल्कलजातवस्त्रभेदः । कौशेयम्—कृमिकोशादिजातवस्त्रम् । पत्रोर्णम् पत्रकृता ऊर्णा तज्जातवस्त्रम् । चीनम् चीनदेशोद्भव वस्त्रम् । पट्टम् पाट इति ख्यातस्य वस्त्रम् ॥

बंधोंके भेद ।

तत्र कोशदामस्वस्तिकानुवेल्लितप्रतोलीमंडलस्थगिकायमकखट्वा-चीनविबन्धवितानगोफणाः पंचांगी चेति चतुर्दश बन्धविशेषाः । तेषां नामभिरेवाकृतयः प्रायेण व्याख्याताः ॥ १७ ॥

१ कोश २ दाम ३ स्वस्तिक ४ अनुवेल्लित ५ प्रतोली ६ मंडल ७ स्थगिका ८ यमक ९ खट्वा १० चीन ११ विबन्ध १२ वितान १३ गोफणा और १४ पंचांगी ये चौदह प्रकारसे व्रणके बंध कहे हैं । इनके नामहीसे इनकी आकृति प्रगट होजाती हैं ॥ १७ ॥

तत्र कोशमंगुष्ठांगुलिपर्वसु निदध्यात् । दाम संबाधेऽङ्गे । संधि-कूर्चकभ्रूस्तनांतरतलकर्णेषु स्वस्तिकम् । अनुवेल्लितं तु शाखासु । ग्रीवामेढ्रयोः प्रतोलीम् । वृत्तेऽङ्गे मंडलम् । अंगुष्ठांगुलिमेढ्राग्रेषु स्थगिकाम् । यमलव्रणयोर्यमकम् । हनुशंखगंडेषु खट्वाम् । अपां-गयोश्चीनम् ॥ पृष्ठोदरोरःसु विबंधम् । मूर्द्धनि वितानम् । चिबु-कनासौष्ठांसवस्तिषु गोफणाम् । जत्रुण ऊर्द्ध्वं पंचांगीमिति । यो वा यस्मिञ्छरीरप्रदेशे सुनिविष्टो भवति तं तस्मिन्विदध्यात् । यंत्रणमत ऊर्द्ध्वमधस्तिर्यक्च ॥ १८ ॥

उनमेंसे अंगूठे और अंगुलीके पोरवोंमें कोश (म्यान जैसा) बंध लगावे और संबाधित अंगमें दाम (मालाकार) तथा संधियों और डाढी, मूछों, भ्रुकुटी और स्तनोंके बीचमें स्वस्तिक (चतुष्पथाकार) शाखाओंमें अनुवेल्लित (जो टहलसके) । नाड और लिंगपर प्रतोली (रथमार्ग अर्थात् लीक), की भांति । गोल जगहमें मंड-लके आकार । अंगूठा, अंगुली और लिंग इनकी नोंकपर स्थगिका (आच्छादनरूप)। दो पासके व्रणोंमें यमक (युग्मरूप) । ठोडी, कनपटी, कपोल इनपर खट्वाकार । अपांग प्रदेशोंमें चीन (पताकाके आकार) । पीठ, उदर और उरस्थलपर विबन्ध (जिसपर खिंचे हुए डोरे न हों) । मूर्द्धापर वितान (विस्तृत) । ठोडीकी नोंक, नासिका, होठ, खौंदा, अंडकोष(वस्ति) इन स्थानोंमें गोफण (गोफिये) के आकार।

(सूत्र १८) कोशः–खड्गपिधानवत् । दामम् मालाकारम् । स्वस्तिकम्-चतुष्पथाकारम् । अनुवे-ल्लितम्-चलनशीलम् । प्रतोली रथ्यारूपकम् । मडलम्–मडलाकारम् । स्थगिका–आच्छादनरूपा । यमकम् युग्मरूपकम् । खट्वा–खट्वाकारम् । चीनम्–पताकाकारम् । विबधम्–दृढबधरहितम् । वितानम्–विस्तृतम् । गोफणा–सूत्रगुफिता (गोफिया) इति ख्याता । पचांगी–पचांगयुक्ता ।

और जत्रुओंके ऊपर पंचांगी बंध लगावे अथवा जो जिस शरीरके प्रदेशमें यथायोग्य ठीक हो उसेही वहां लगावे और उसके ऊपर यंत्रणा (डोर बांधनेकी क्रिया) तीन प्रकारकी होती है १ ऊपर, २ नीचे, और ३ तिरछी ॥ १८ ॥

तत्र घनां कवलिकां दत्त्वा वामहस्तपरिक्षेपमृजुमनाविद्धमसंकुचितं मृदुपट्टं निवेश्य बध्नीयात् ॥ १९ ॥ न च व्रणस्योपरि कुर्याद्ग्रन्थिमाबाधकरं वा । न च विकेशिकौषधे अतिस्निग्धे अतिरूक्षे विषमे वा कुर्वीत यस्मादतिस्नेहात्क्लेदो रौक्ष्याच्छेदो दुर्न्यासाद्व्रणवर्त्मावघर्षणमिति ॥ २० ॥

व्रणपर गाढी औषधकी लुगदी रखकर बांये हाथसे थामकर (सीधीकरके (अच्छी भांति फैलाकर) ऊपर बारीक कपडा रखकर बांधदे ॥ १९ ॥ और जखमके ऊपर पीडा देनेवाली गांठ न दे और विकेशिक (बत्ती या फोहेपर लगाकर व्रणपर लगानेकी) औषधमें अतिस्नेह और अतिरूक्षता तथा विषमता न करे क्योंकि इसमें अतिस्नेहसे क्लेदता होती है और रूक्षतासे जखम फट जाता है दुर्न्यास अर्थात् विषमता या बुरी भांति रखनेसे व्रणके मुखमें अवघर्षणा होती है ॥ २० ॥

तत्र व्रणायतनविशेषाद्बन्धविशेषस्त्रिविधो भवति गाढः, समः, शिथिल इति ॥ २१ ॥ पीडयन्नरुजो गाढः सोच्छ्वासः शिथिलः स्मृतः नैव गाढो न शिथिलः समो बन्धः प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥ तत्र स्फिक्कुक्षिकक्षावङ्क्षणोरःशिरःसु गाढः । शाखावदनकर्णकण्ठमेढ्रमुष्कपृष्ठपार्श्वोदरोरःसु समः । अक्ष्णोः संधिषु च शिथिल इति ॥ २३ ॥

व्रणके स्थान भेदसे तीन प्रकारका बंध होताहै १ गाढ (करडा), २ सम, ३ शिथिल ॥ २१ ॥ जिसे दबानेसे रोगोंमें (व्रणमें) पीडा मालूम न हो अथवा जो सरकानेसे भंग न हो वह गाढ बंध कहलाता है और जो कुछ सावकाश हो वह शिथिल है और जो न गाढा न शिथिल वह सम बंध कहलाता है ॥ २२ ॥ उनमें से ढूंगे और कूख (जहां धोती बंधती है), बाहुमूल, जंघामूल, जानु तथा शिर इनमें कडा बंध लगावे । शाखा, मुख, कान, गल, लिंग, वृषण, पीठ, पसवाडा, पेट और हृदय इनमें सम बंध लगावे । नेत्रों और संधियों पर शिथिल बंध लगाना चाहिये ॥ २३ ॥

तत्र पैत्तिकं गाढस्थाने समं बध्नीयात् ॥ समस्थाने शिथिलं शिथिलस्थाने नैवं शोणितदुष्टं च ॥ २४ ॥ श्लैष्मिकं शिथिलस्थाने समं समस्थाने गाढं गाढस्थाने गाढतरमेवं वातदुष्टं च ॥ २५ ॥

इनमेंसे पैत्तिक व्रणको रुधिरदूषित व्रणको गाढ बंधके स्थानमें सम बंध लगावे और समके स्थानमें शिथिल और शिथिलके स्थानमें न बांधे या अतिशिथिल बांधे ॥ २४ ॥ कफके व्रणको और वायुदूषित व्रणको शिथिल बंधके स्थानमें सम बंधसे बांधे तथा समके स्थानमें गाढा बांधे और गाढाके स्थानमें अति गाढ बंध लगावे ॥ २५ ॥

तत्र पैत्तिकं शरदि ग्रीष्मे द्विरह्नो बध्नीयाद्रक्तोपद्रुतमप्येवं श्लैष्मिकं हेमंतवसंतयोस्त्र्यहाद्वातोपद्रुतमप्येवम् । एवमभ्यूह्य बंधविपर्ययं च कुर्वीत ॥ २६ ॥

पैत्तिक और रक्तजनित व्रणको शरद् और ग्रीष्म ऋतुमें दिनमें दो दो वार बंध पलटकर बांधे और कफ तथा वातदूषित व्रणोंको हेमंत और वसंत ऋतुमें तीसरे दिन बांधे तथा वैद्य बंध २ के प्रति विचार कर उनमें विपर्यय भी कर सकता है॥ २६॥

तत्र समशिथिलस्थानेषु गाढबद्धे विकेशिकौषधनैरर्थक्यं शोफवेदनाप्रादुर्भावश्च । गाढसमस्थानेषु शिथिलबद्धे विकेशिकौषधपतनं पट्टसंचाराद्व्रणवर्त्मावघर्षणमिति । गाढशिथिलस्थानेषु समबद्धे च गुणाभाव इति। अविपरीतबंधे वेदनोपशांतिरसृक्प्रसादो मार्दवं च ॥ २७ ॥

सम और शिथिलके स्थानपर गाढ बंध लगनेसे विकेशिक औषध (लूपरी लुगदी आदि) निरर्थक हो जाती है और शोथ. तथा पीडा होने लगती है । गाढ और समके स्थानमें शिथिल बंध लगानेसे वह औषध गिरजाती (हटजाती) है और पट्टी सरकजानेसे व्रणके मुहपर रगड लगती है । गाढ और शिथिलके स्थानमें सम बंध कुछ गुण नहीं करता । और ठीक बंध बंधनेसे पीडाकी शांति होती है तथा रक्तमें आह्लाद होता है और कोमलता आती है ॥ २७ ॥

अबध्यमानो दंशमशकतृणकाष्ठोपलपांशुशीतवातातपप्रभृतिभिर्विशेषैरभिहन्यते व्रणो विविधवेदनोपद्रुतश्च दुष्टतामुपैत्यालेपनादीनि चास्य विशोषत्वमुपयांति ॥ २८ ॥

विना बंधा हुआ व्रण मच्छर (मक्खी) (आदिके काटनेसे), तिनका, लकडी, पत्थर, रेता गिर पडने तथा शीत वायु और गरमी आदिसे पीडित होता है और अनेक प्रकारकी वेदनाके उपद्रवोंसे युक्त होकर दुष्टताको प्राप्त होजाता है और उसके लेप आदि सूख (पपडा) जाते हैं ॥ २८ ॥

चूर्णितं मथितं भग्नं विश्लिष्टमतिपातितम् ॥ अस्थिस्नायुशिराच्छिन्नमाशु बंधेन रोहति ॥ २९ ॥ सुखमेवं व्रणी शेते सुखं गच्छति तिष्ठति ॥ सुखं शय्यासनस्थस्य क्षिप्रं संरोहति व्रणः ॥ ३० ॥

जो व्रण या अंग चूर्णित हो गया हो कई जगहसे फटगया हो या पिस गया हो तथा जो विलोयासा होगया हो एवं जो कट या टूट गया हो तथा लटक गया हो और हड्डी, स्नायु और बारीक नसें टूट गई हों तो ये सब यथोक्त बंधसे अच्छे हो जाते हैं ॥ २९ ॥ ऐसे अच्छा बंध लगनेसे व्रणी मनुष्य सुखपूर्वक सोता है और आरामसे चल फिर सकता और बैठ सकता है और जो अच्छी तरह सो बैठ सकता है उसका व्रण शीघ्र अच्छा हो जाता है ॥ ३० ॥

अबंध्य रोग ।

अबंध्याः पित्तरक्ताभिघातविषनिमित्ताः यदा च शोकदाहपाकरागवेदनाभिभूताः क्षाराग्निदग्धाः पाकात्प्रकुपिताः प्रकीर्णमांसाश्च भवंति ॥ ३१ ॥

इतने जगह बंध नहीं लगाना चाहिये पित्तरक्त और चोट लगेकी सूजन तथा भल्लातादि विषजनित व्रण जब शोथ, दाह, पकाव, सुरखी और पीडायुक्त हों क्षार वा अग्निसे जले हों पकते २ रक्तादि अतिकुपित होगये हों और मांस विखरने लगा हो ऐसे जो हों उन्हें न बांधे (खुला रहने दे) ॥ ३१ ॥

कुष्ठिनामग्निदग्धानां पिडका मधुमेहिनाम् ॥ कर्णिकाश्चोन्दुरुविषे विषजुष्टा व्रणाश्च ये ॥ ३२ ॥ मांसपाके न बध्यंते गुदपाके च दारुणे ॥ स्वबुद्ध्या चापि विभजेत्कृत्याकृत्यांश्च बुद्धिमान् ॥ ३३ ॥

कुष्ठियाक व्रण और अग्निसे जलेहुए और मधुप्रमेहियोंकी पिडिका कानकी ऊपरकी लौ तथा मूषिकाके विषजन्य एवं विषयुक्त जो व्रण हैं और मांस पकजा-

---

(सूत्र ३०) सुखं शय्यासनस्थस्येति-सुखं यथा स्यात्तथा शय्यासनस्थस्तस्येति समस्तम् ।

(सूत्र ३२) कुष्ठिनां विषजुष्टाना व्रणाः तथा मधुमेहिनां पिडिका तथा कर्णिका तथा मूषकविषे व्रणाः तथाच ये विषजुष्टा व्रणाः तथा च मांसपाके गुदपाके च व्रणाः ते बध्यंते इति परेणान्वयः ।

नेमें और गुदा पकजानेके दारुण रोगमें बंध नहीं लगावे किंतु वैद्य अपनी बुद्धिसे कृत्य अकृत्य विचार कर कार्यविभाग करे अर्थात् जैसा योग्य जाने वैसा करे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

व्रणबन्धके प्रकीर्ण उपदेश ।

देशं दोषं च विज्ञाय व्रणं च व्रणकोविदः ॥ ऋतूंश्च परिसंख्याय ततो बंधान्निवेशयेत् ॥ ३४ ॥ ऊर्ध्वं तिर्यगधस्ताच्च यंत्रणा त्रिविधा मता ॥ यथा च बध्यते बंधस्तथा वक्ष्याम्यशेषतः ॥३५ ॥

देश और दोष और व्रणको व्रणज्ञ वैद्य विचार कर तथा ऋतुओंको समझ कर फिर उन्हींके अनुसार बंध लगावे ॥ ३४ ॥ यंत्रणा (डोर बाँधनेकी क्रिया) तीन प्रकारसे कही है, १ ऊपरको, २ नीचेको और ३ तिरछी । तथा जिस प्रकार बंध बांधाजाय उस प्रकारको पूर्णरूपसे वर्णन करते हैं ॥ ३५ ॥

घनां कवलिकां दत्त्वा मृदु चैवापि पट्टकम् ॥ विकेशिकामोषधीं च नातिस्निग्धां समाचरेत् ॥ ३६ ॥ प्रक्लेदयत्यतिस्निग्धा तथा रूक्षा क्षिणोति च ॥ युक्तस्नेहा रोपयति दुर्न्यस्ता वर्त्म घर्षति॥३७॥

व्रणपर गाढी लुगदी रखकर ऊपर महीन कपड़ा रखना और विकेशिका औषध जो रक्खे वह बहुत तर न होनी चाहिये ॥ ३६ ॥ अति चिकनी क्लेद (लचलचा) करती है और रूखी विखर जाती है या व्रणको छेदन करती है और जिसमें यथोचित घृत या तैलादि हो वह व्रणको लाभ पहुंचाती (अच्छा करती) है तथा बुरीतरह युक्त की हो (बांधी) हो वह व्रणके मुखको रगड करती है ॥ ३७॥

विषमं च व्रणं कुर्यात्स्तंभयेत्स्रावयेत्तथा ॥ यथा व्रणं विदित्वा तु योगं वैद्यः प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥ पित्तजे रक्तजे वापि सकृदेव परिक्षिपेत् ॥ असकृत्कफजे वापि वातजे च विचक्षणः ॥ ३९ ॥ तलेन प्रतिपीड्याथ स्रावयेदनुलोमतः॥ सर्वांश्च बन्धान्गूढांस्तान्संधींश्च विनिवेशयेत् ॥४०॥ ओष्ठस्याप्येष संधाने यथोद्दिष्टो विधिः स्मृतः ॥ बुद्ध्योत्प्रेक्ष्याभियुक्तेन तथा चास्थिषु जानता ॥ ४१ ॥

वैद्य जैसा व्रण देखे उसपर वैसाही योग प्रयुक्त करे, चाहे व्रणको विषम अर्थात् मौका हो तो लिखेके अनुसार करे वैसा मौका न देखे तो उससे विषम करे व्रणके मलको थांवे वा निकाले ॥ ३८ ॥ पैत्तिक तथा रक्तज व्रणको एकही वार अच्छी

(सूत्र ४१) कर्तव्यमिति शेषेणान्वयः ।

भांति मल निकालकर बिठादे कफ और वायुके व्रणोंके मलको चतुर वैद्य कईंवार सूंत सूंत कर निकाले ॥ ३९ ॥ व्रणको नीचेसे दबाकर रोमगतिके अनुसार स्त्रावित करे (रिसावे) और सब गूढ बँधों (जोडों) को तथा संधियोंको अच्छे प्रकारसे मिलादे ॥ ४० ॥ होंठके जोडनेमें यथायोग्य जैसे पहले कह आये हैं वैसे करे तथा जोडोंका जाननेवाला वैद्य हड्डीके जोडनेमें भी अपनी बुद्धिसे विचार कर यथोक्त बंध लगावे ॥ ४१ ॥

उत्तिष्ठतो निषण्णस्य शयनं चापि गच्छतः ॥ गच्छतो विविधै-र्यानैर्नास्य दुष्यति स व्रणः ॥४२॥ संध्यस्थिकोष्ठप्राप्ताश्च शिरा-स्नायुगतास्तथा ॥ तथावगाढगंभीराः सर्वतो विषमस्थिताः ॥ नैते साधयितुं शक्या ऋते बन्धाद्भवंति हि ॥ ४३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उठते हुए बैठते हुए शयनको प्राप्त होते हुए चलते हुए सवारी करते हुए मनुष्योंका व्रण (यथोक्त बन्ध लगे पीछे) पीडा नहीं देता ॥ ४२ ॥ संधि और हड्डी तथा कोष्ठमें प्राप्त हुए व्रण, शिरा और स्नायुके व्रण, गाढे और गंभीर व्रण तथा जो सब ओरसे विषम हो गये हों ऐसे व्रण यथोक्त बन्धके विना साधन नहीं किये जासकते ॥ ४३ ॥

इति पण्डितमुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थानेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.

अथातो व्रणितोपासनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे व्रणितोपासनीय (व्रणोंके वरतावकी विधिनामक) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

व्रणिनः प्रथममेवागारमन्विच्छेत्तच्चागारं प्रशस्तवास्त्वादिकं कार्य-म् ॥ १ ॥ प्रशस्तवास्तुनि गृहे शुचावातपवर्जिते ॥ निर्वाते न च रोगाः स्युः शारीरागन्तुमानसाः ॥ १ ॥ तस्मिञ्छयनमसंबाधं स्वा-स्तीर्णं मनोज्ञं प्राक्छिरस्कं सशस्त्रं कुर्वीत ॥ ३ ॥ सुखचेष्टाप्रचारः स्यात्स्वास्तीर्णे शयने व्रणी ॥ प्राच्यां दिशि स्थिता देवास्तत्पू-जार्थं नतं शिरः ॥ ४ ॥

(सूत्र ४२) बधयुक्तो व्रणः ।

व्रणी (व्रण रोगवाले) को प्रथम स्थानकी तजवीज करे जो श्रेष्ठ और रहनेके उपयोगी विभागोंसे उपयुक्त हो ॥ १ ॥ प्रशस्त मकानोंके स्थानमें जो पवित्र (मल मूत्रादि रहित) और धूपसे वर्जित और निर्वात हो उससे शारीरक, आगंतुक और मानस रोग नहीं होते ॥ २ ॥ ऐसे उस स्थानमें सब बाधाओंसे रहित (ओढने बिछौने तकिया आदि सामग्रियोंसहित) यथायोग्य लंबी चौड़ी सुंदर पूर्वको सिराहना करके शय्या बिछावे और सिरहाने कोई लोहेका शस्त्र रख दे ॥ ३ ॥ अच्छी लंबी चौडी शय्यापर व्रणी मनुष्य सुखपूर्वक चेष्टा प्रचार कर सकता है पांव पसार सकता और करवटें बदल सकता है और पूर्वदिशामें देवताओंका वास है इस हेतु उनकी पूजा (सत्कार) के अर्थ शिर उधरहीको नया हुआ होना चाहिये ॥ ४ ॥

तस्मिन्सुहृद्भिरनुकूलैः प्रियंवदैरुपास्यं यथेष्टमासीत ॥ ५ ॥ सुहृदो विक्षिपेत्याशु कथाभिर्व्रणवेदनाः ॥ आश्वासयन्तो बहुशस्त्वनुकूलाः प्रियंवदाः ॥ ६ ॥

उस प्रशस्त स्थानमें अपने अनुकूल प्रिय वचन बोलनेवाले मित्रों सहित यथेच्छ रहना चाहिये ॥ ५ ॥ और प्रिय वचन कहनेवाले अनुकूल मित्र अच्छी २ कहानियों और तसल्लीकी बातोंसे वारंवार व्रणकी पीडाको भुलाते (चित्तसे दूर करते) रहें ॥ ६ ॥

न च दिवा निद्रावशगः स्यात् ॥ ७ ॥ दिवास्वप्नाद्व्रणे कंडूर्गात्राणां गौरवं तथा ॥ श्वयथुर्वेदना रागः स्रावश्चैव भृशं भवेत् ॥८॥

व्रणी मनुष्य दिनमें नहीं सोवे ॥ ७ ॥ दिनमें सोनेसे व्रणमें खाज और अंगोंमें भारीपन तथा शोथ, पीडा, राग और अतिस्राव होता है ॥ ८ ॥

उत्थानसंवेशनपरिवर्तनचंक्रमणोच्चैर्भाषणादिषु चात्मचेष्टास्वप्रमत्तो व्रणं संरक्षेत् ॥ ९ ॥ स्थानासनं चंक्रमणं यानयानातिभाषणम् ॥ व्रणवान्न निषेवेत शक्तिमानपि मानवः ॥ १० ॥ उत्थानाद्यासनं स्थानं शय्या चातिनिषेविता ॥ प्राप्नुयान्मारुताद्रुजस्तस्मात्तद्विवर्जयेत् ॥ ११ ॥

व्रणीको चाहिये कि, उठने, बैठने, लेटने, टहलने, और ऊँचा बोलने, चिल्लाने आदिक आत्मचेष्टाओंमें सावधान होकर व्रणकी रक्षा रक्खे ॥ ९ ॥ यदि सामर्थ्य हो तो भी व्रणवाला मनुष्य ऊँचे बैठने, फिरने और सवारीपर चढने, बहुत बोलने

आदिको न करे (किंतु इन्हें त्याग दे) ॥ १० ॥ ऊँचे चढकर बैठना (या ऊँचे चढना) एक आसन बैठेही रहना अथवा बहुत पडेही रहना इनसे वायुका कोप होकर शरीरमें विकार पैदा होता है इस कारण इनका त्याग रक्खे ॥ ११ ॥

गम्यानां च स्त्रीणां संदर्शनसंभाषणसंस्पर्शनानि दूरतः परिहरेत् ॥ १२ ॥ स्त्रीदर्शनादिभिः शुक्रं कदाचिच्चलितं स्रवेत् ॥ ग्राम्यधर्मकृतान्दोषान्सोऽसंसर्गोऽयमाप्नुयात् ॥ १३ ॥

संगम करने योग्य स्त्रियोंके दर्शन, उनसे बातें करना तथा स्पर्श करना इन कामोंको दूरहीसे (व्रणी पुरुष) त्याग दे ॥ १२ ॥ क्योंकि स्त्रियोंके दर्शन आदिकसे चलायमान होकर कदाचित् वीर्य स्खलित हो जाय तो विना संसर्गके भी पुरुष मैथुन करनेके दोषोंको प्राप्त होजाता है अर्थात् मैथुनके कुपथ्यसे जो उपाधि होती हैं वे इससे भी होजाती हैं ॥ १३ ॥

नवधान्यमाषतिलकलायकुलत्थनिष्पावहारितकशाकाम्ललवणकटुकगुडपिष्टविकृतिवल्लूरशुष्कशाकाजाविकानूपौदकमांसवसाशीतोदककृशरापायसदधिदुग्धतक्रप्रभृतीन्परिहरेत् ॥ १४ ॥ तक्रान्तो नवधान्यादिर्योऽयं वर्गः प्रकीर्तितः ॥ दोषसंजननो ह्येष विज्ञेयः पूयवर्द्धनः ॥ १५ ॥

नवीन अन्न, उडद, तिल, मटर, कुलथी, चौले, सोहजना, अम्ल, नमक, चरपरा रस, गुड, पिट्ठीके पदार्थ, सूखा मांस, सूखे शाक, बकरा, भेडी, जलके तीरपर रहनेवाले जंतु और जलचर इनका मांस और चरबी, शीतल पानी, कसार, खीर, दही, दूध, छाछ इत्यादिकोंको व्रणी मनुष्य त्याग दे ॥ १४ ॥ नवीन धान्यको आदि लेकर तक्र (छाछ) पर्यंत जो यह वर्ग कहा है यह दोषको उत्पन्न करनेवाला और राध (पीप) को बढानेवाला जानना चाहिये ॥ १५ ॥

मद्यपश्च मैरेयारिष्टासवसीधुसुराविकारान्परिहरेत् ॥ १६ ॥ मद्यमम्लं तथा रूक्षं तीक्ष्णमुष्णं च वीर्यतः ॥ आशुकारि च तत्पीतं क्षिप्रं व्यापादयेद्व्रणम् ॥ १७ ॥

(सूत्र १२) अगम्याना गुरुपत्न्यादीना न दर्शनसमाषणादिनिषेधः शुक्रसचलनादिकारणाभावात् ॥ गम्यास्तु शुक्रप्रवर्तनहेतुकत्वेनैव दर्शनादौ वर्जनीयाः "शुक्रं कामेन कामिन्या दर्शनात्स्पर्शनादपि। शब्दसंश्रवणाद्ध्यानात्संयोगाच्च प्रवर्तते" (इति भावमिश्रः) ग्राम्यधर्मेत्यत्र ग्रामधर्मेति वा पाठः । ग्रामधर्मो मैथुनम् ॥ (सूत्र १४) निष्पावराजमाषे–श्वेतशिवीधान्ये । कृशरः–"तिलतंदुलसंपाकः कृशरः परिकीर्तितः" कृसरा चाप्यत्र । (श्लो० १६) मैरेय मिरादेशजातं मद्यं तथा धातकीपुष्पगुडधान्याम्लसाधित चेति ।

जो मद्य पीनेवाले हैं वे भी व्रणरोगमें मैरेय (धायके फूल, गुड, धान्याम्लसाधित मद्य), अरिष्ट (जो औषधोंको पकाकर बने), आसव (कच्ची औषधोंसे बने), सीधु (जो ईखके रससे बने) सुरा पैष्टी (जो धान्यकी पिंडीसे बने) इन मदिराओंको न पीवे ॥ १६ ॥ क्योंकि मद्य, अम्ल तथा रूखा है तीक्ष्ण है और उष्णवीर्य है एवं आशुकारी (शीघ्र प्रभाव करनेवाला) है इससे मद्य पीनेसे तत्काल व्रण फूट जाता है (भ्रष्ट होजाता और विकार होजाता है) ॥ १७ ॥

वातातपरजोधूमावश्यायातिसेवनातिभोजनानिष्टश्रवणदर्शनेर्ष्यामर्षभयक्रोधशोकध्यानरात्रिजागरणविषमाशनानशनशयनोपवासवाग्व्यायामस्थानं चंक्रमणशीतवातविरुद्धाशनाजीर्णमक्षिकाद्यवबाधाः परिहरेत् ॥ १८ ॥ व्रणिनः संप्रतप्तस्य कारणैरेवमादिभिः॥ क्षीणशोणितमांसस्य भुक्तं सम्यङ्न जीर्यति ॥ १९ ॥ अजीर्णात्पवनादीनां विभ्रमो बलवान्भवेत् ॥ ततः शोफरुजास्रावदाहपाकानवाप्नुयात् ॥ २० ॥

वायु, धूप, धूल, धुँवा, अति अभिमान, अतिभोजन, अनिष्ट बातें सुनना और देखना, ईर्षा करना, गुण न मानना, डरना, क्रोध करना, शोक (फिकर), बहुत सोच विचार, रातका जागना, अयोग्य खाना, न खाना, पड़े रहना, लंघन करना, बहुत बोलना, बैठेही रहना या फिरतेही रहना, शीत और शीत पवन, विरुद्ध भोजन, अजीर्ण और मक्खी, मच्छरकी बाधा इनका व्रणी मनुष्य त्याग रक्खे ॥ १८ ॥ उक्त कारणोंसे संतप्त हुए और रुधिर मांस क्षीण हुए व्रणी मनुष्यका भोजन किया हुआ ठीक २ नहीं पचता है ॥ १९ ॥ अजीर्णसे वातआदि दोषोंका अति बलवान विभ्रम (शरीरमें संचार) होता है जिससे व्रणमें शोथ, दरद, स्राव, जलन और पुनः पाक होजाता है ॥ २० ॥

सदा नीचनखरोम्णा शुचिना शुक्लवाससा शांतिमंगलदेवताब्राह्मणगुरुपरेण भवितव्यमिति । तत्कस्य हेतोः हिंसाविहाराणि हि महावीर्याणि रक्षांसि पशुपतिकुबेरकुमारानुचराणि मांसशोणितप्रियत्वात्क्षतजनिमित्तं व्रणिनमुपसर्पन्ति सत्कारार्थं जिघांसूनि वा कदाचित् ॥ २१ ॥ भवति चात्र-

व्रणीको सदा नीच नखून और बालोंसे पवित्र रहना और सुपेद (साफ) वस्त्र पहरना चाहिये । शांति, मंगलाचरण, देवता, ब्राह्मण और गुरुआदिकी भक्तिमें

तत्पर रहना चाहिये। इसका क्या हेतु है कि हिंसारूपी विहार करनेवाले पराक्रमी राक्षस तथा रुद्र, कुबेर और कार्तिकेयके अनुचर मांस और रुधिर प्रिय होनेसे जखमवाले व्रणीके समीप सत्कारके लिये झपटा करते हैं अथवा कदाचित् प्राणोंके घाती भी होते हैं॥ २१ ॥इसपर श्लोक है-

तेषां सत्कारकामानां प्रयतेतांतरात्मना ॥ धूपबल्युपहारांश्च भक्ष्यांश्चैवोपहारयेत् ॥ २२ ॥ ते तु संतर्पिता आत्मवंतं न हिंस्युः ॥ तस्मात्सततमतंद्रितो जनपरिवृतो नित्य-दीपोदकशस्त्रस्रग्दामपुष्पलाजाद्यलङ्कृते वेश्मनि सम्यङ्मङ्गल-मनोनुकूलाः कथाः शृण्वन्नासीत ॥ २३ ॥

उन सत्कारकी कामनावाले राक्षसादिके निमित्त अंतःकरणसे प्रयत्न करना चाहिये। नित्य धूप देना और बलि तथा उपहार(सौम्य पदार्थोंकी भेंट) तथा भक्ष्य भोज्यादि प्रदान करने चाहिये ॥२२॥ इससे तृप्तहुए राक्षसादि यथायोग्य आचरण करनेवाले व्रणीको नहीं मार सकते (बाधा नहीं करते)। इस हेतु सदा सावधानीसे मनुष्यों सहित रहना चाहिये और नित्य रातभर दीपक रखना और पास जल, शस्त्र, माला, डोर, पुष्प, धानकी खीलें आदिसे भूषित स्थानमें संपत्ति, मंगल, अच्छी बातें और कहानियें (दास्तान) सुनते रहना चाहिये ॥ २३ ॥

संपदाद्यनुकूलाभिः कथाभिः प्रीतमानसः ॥ आशावान्व्याधिमोक्षाय क्षिप्रं सुखमवाप्नुयात्॥२४॥ ऋग्यजुःसामाथर्ववेदाभिहितैः परैश्चाशीर्विधानैरुपाध्याया भिषजश्च संध्ययो रक्षां कुर्य्युः ॥२५॥

संपत्ति (लाभ) आदिकी एवं अनुकूल बातोंसे प्रसन्नचित्त होकर व्याधिसे शीघ्रही छुटनेकी आशा करताहुआ सुखपूर्वक रहे ॥ २४ ॥ ऋक्, यजुः, साम और अथर्वणवेदोक्त तथा अन्य आशीर्वादविधानात्मक मंत्रोंकरके उपाध्याय (पाधा) और वैद्य दोनों संध्याओंमें रक्षा करें ॥ २५ ॥

सर्षपारिष्टपत्राभ्यां सर्पिषा लवणेन च ॥ द्विरह्नः कारयेद्धूपं दशरात्रमतंद्रितः ॥ २६ ॥ छत्रातिछत्रे लांगूलीं जटिलां ब्रह्मचारिणीम् ॥ लक्ष्मीं गुहामतिगुहां शतवीर्यां सहस्रवीर्यां सिद्धार्थांश्च शिरसा धारयेत् ॥ २७ ॥

(सूत्र२७)छत्रम्-वचाकारमूलपत्रम्,छातरिया इति वंगदेशे प्रसिद्धम्। अतिच्छत्रम्-सुल्पावृक्षः।लांगूली-पृष्ठपर्णी। जटिला-मांसी। ब्रह्मचारिणी-ब्रह्मयष्टी,भार्गी च। लक्ष्मी-ऋद्धिः,वृद्धिः,स्थलपद्मिनी,हरिद्रा च। गुहा-सिंहपुच्छीलता। शतवीर्या-सहस्रवीर्या, दूर्वा-श्वेतदूर्वा च। सिद्धार्थः-श्वेतसर्षपा इति (शब्दस्तोम०)

सरसों (राई), नीवके पत्ते, घृत और लवण इनकी धूनी दिनमें दोनोंवार दश दिनतक सावधानीसे देवे ॥ २६ ॥ द्रोणपुष्पी, छतारिया, पृष्ठपर्णी, जटामांसी, भांर्गी (ऋद्धि, वृद्धि, हरिद्रा), सिंहपुच्छीलता, सिंहपुच्छीभेद, श्वेतदूर्वा, दूर्वा, श्वेतसर्षप इन्हे शिरपर धारण करे ॥ २७ ॥

व्यज्येत बालव्यजनैर्व्रणं न च विघट्टयेत् ॥ न तुदेन्न च कंडूयेच्छयानः परिपालयेत् ॥ २८ ॥ अनेन विधिना युक्तमादावेव निशाचराः ॥ वनं केसरिणाक्रान्तं वर्जयन्ति मृगा इव ॥ २९ ॥

बालोंकी चौरीसे मक्खी मच्छर उड़ावे । व्रणको दबावे नहीं न दुखावे न खुजावे किन्तु लेटे २ उसकी रक्षा करे ॥ २८ ॥ जो व्रणी इस विधिसे संयुक्त रहता है आदिहीसे निशाचर उसके पास नहीं आते जैसे सिंहसंयुक्त वनको मृग त्याग देते हैं ॥ २९ ॥

जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवोत्तरम् ॥ भुंजानो जांगलैर्मांसैः शीघ्रं व्रणमपोहति ॥ ३० ॥ तंदुलीयकजीवन्तीसुनिषण्णकवास्तुकैः ॥ बालमूलकवार्ताकपटोलैः कारवेल्लकैः ॥३१॥ सदाडिमैः सामलकैर्घृतभृष्टैः ससैंधवैः ॥ अन्यैरेवंगुणैर्वापि मुद्गादीनां रसेन वा ॥ ३२ ॥

पुराने चावलका भात घृतयुक्त थोडा २ गरम २ खाय, ऊपरसे द्रव पदार्थ खाय और जांगल जीवोंका मांस इनसे शीघ्र व्रण अच्छा होताहै ॥ ३० ॥ चौलाई, जीवंती, चौपतिया शाक, बथुवा, कोमलमूली, वृंताक, परवल, करेले ये शाक व्रणी मनुष्यको हित हैं ॥ ३१ ॥ अनार और आवलोंसहित सेंधालवण युक्त घृतसे भुनेहुए हों अथवा ऐसे गुणोंवाले और पदार्थ हों अथवा मूंग आदिके रसके सहित हों ॥ ३२ ॥

सक्तून्विलेपीं कुल्माषं जलं चापि शृतं पिबेत् ॥ व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ॥ तौ च रुक्च दिवास्वापात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ३३ ॥ दिवा न निद्रावशगो निर्वातगृहगोचरः ॥ व्रणी वैद्यवशे तिष्ठञ्छीघ्रं व्रणमपोहति ॥ ३४ ॥ एवं

(सूत्र ३१ । ३२) भोक्तव्यमिति शेषेणान्वयः । भुंजान इत्यनेन पूर्वेण वान्वयः ॥ (सूत्र ३३) तच्छब्देनात्र पूर्वग्रहणम् । (सूत्र ३४) वैद्यवशे तिष्ठन् व्रणमपोहति-दिवा निद्रावशगो न स्यात् किंतु निर्वातगृहगोचरो व्रणी । कुल्माष इति अर्द्धस्विन्नाश्च गोधूमा अन्ये च चणकादयः कुल्माष इति कथ्यते ।(शब्दस्तोम०)

वृत्तसमाचारो व्रणी संपद्यते सुखी ॥ आयुश्च दीर्घमवाप्नोति धन्वंतरिवचो यथा ॥ ३५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

सत्तू, विलेपी (पतली यवागू) कुल्माष (बाकली) इन्हे कभी २ खाय और उबालाहुआ जल पीवे। परिश्रम करनेसे घावमें शोथ होताहै और रात्रिके जागनेसे शोथ और सुरखी होती है तथा दिनके सोनेसे शोथ, सुरखी तथा चीस होतीहै और मैथुन करनेसे शोथ, सुरखी, चीस तथा मृत्यु होजाती है ॥ ३३ ॥ व्रणी मनुष्यकों दिनमें सोना हित नहीं। व्रणीको चाहिये कि वायुरहित स्थानमें वद्यकी आज्ञानुसार रहे इससे व्रणकी व्याधिसे शीघ्र छुटजाताहै (आराम होता है) ॥ ३४ ॥ ऐसे आचार करनेवाला व्रणी सुखको प्राप्त होता है तथा दीर्घायु होताहै इस प्रकार धन्वंतरिभगवान्के वचन हैं ॥ ३५ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवैद्यवि० सुश्रुतसं० भा०टी० सूत्रस्थाने एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः २०.

अथातो हिताहितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः।

अब यहांसे हिताहितीय अर्थात् कौन वस्तु किसको हित (पथ्य) है और कौन किसको अहित (अपथ्य) है इस विषयके अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्याऽपथ्यमित्यनेन हेतुना न किंचिद्द्रव्यमेकांतेन हितमहितं वास्तीति केचिदाचार्य्या ब्रुवते तत्तु न सम्यक् ॥ १ ॥

जो पदार्थ वायु (वायुके रोगों) का पथ्य है वह पित्त (पित्तके रोगोंका) अपथ्य है अर्थात् जो वायुको शांत करते हैं व पित्तको उल्वण करते हैं और जो पित्तशामक हैं वे वायुको उल्वण करते हैं इस कारणसे कोई भी द्रव्य सर्वतोभावसे न सबको हितकारीही होसकता है और न अहितकारीही होसकता है कोई आचार्य ऐसा कहते हैं परंतु यह ठीक नहीं (क्योंकि धन्वन्तरिजी कहते हैं कि) ॥ १ ॥

इह खलु यस्माद्द्रव्याणि स्वभावतः संयोगतश्चैकांतहितान्येकांताहितानि हिताहितानि च भवंति ॥ २ ॥ तत्रैकांतहितानि जातिसात्म्यात्सलिलघृतदुग्धौदनप्रभृतीनि ॥ ३ ॥

यहां (हमारे मतमें तो) सम्पूर्ण द्रव्य स्वभाव (अपनी प्रकृति) से अथवा संयोगसे निरंतर हित होते हैं अथवा अहित होते हैं तथा हिताहित होते हैं ॥ २ ॥

उनमेंसे जल, घृत, दूध, भात और आदिशब्दसे गोधूम, मुद्गादिक मनुष्य जातिकी सात्म्यतासे निरंतर सबको (प्रायः) हितकारीही होतेहैं (परंतु यह स्वस्थ मनुष्योंहीके लिये होसकताहै रोगयुक्तोंको कई रोगों (वातके रोगों) में भात और कफरोगोंमें दुग्ध अहित होता है) ॥ ३ ॥

एकांतेऽहितानि दहनपचनमारणादिषु प्रवृत्तान्यग्निक्षारविषादीनि । संयोगादपराणि विषतुल्यानि भवंति । हिताहितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमित्यतः सर्वप्राणिनामयमाहारार्थं वर्ग उपदिश्यते ॥ ४ ॥

निरंतर अहित (दुःख और क्लेशदायक तथा अपथ्य) ये हैं—जैसे जलानेमें प्रवृत्तहुआ अग्नि पकाने (फफोला डाले) में प्रवृत्त क्षार तथा मारनेके लिये प्रवृत्त हुआ विष इत्यादि सदा अहित हैं। अथवा कई हित पदार्थ भी संयोगसे विषके तुल्य होजाते हैं और हिताहित वे हैं जैसे जो वायुको पथ्य हैं वे पित्तके लिये अपथ्य हैं अतः सब प्राणियोंके आहारके निमित्त द्रव्यवर्गका उपदेश करते हैं ॥ ४ ॥

(वक्तव्य) इसमें यह है कि रोगनिवृत्तिके लिये यथोक्त अग्नि, क्षार और विषका उपयोग अहित नहीं है किन्तु स्वस्थ मनुष्यको जलाने, उपाडने, मारने आदिमें प्रवृत्त हुए अग्नि, क्षार विषादिक सात्म्यविरुद्ध होनेसे अहित होते हैं ॥

आहारके निमित्त हितवर्ग ।

तद्यथारक्तशालिषष्टिककंगुकमुकुंदकपांडुकपीतकप्रमोदककालकाशनकपुष्पककर्दमकशकुनाहृतसुगंधककलमनीवारकोद्रवोद्दालकश्यामाकगोधूमवेणुयवादयः । एणहरिणकुरंगमृगमातृकाश्वदंष्ट्राकरालक्रकरकपोतलावतित्तिरिकपिंजलवर्तीरवर्तिकादीनां मांसानि । मुद्गवनमुद्गमकुष्ठकलायमसूरमांगल्यचणकहरेणवाढकीसतीनाः । चिल्लिवास्तुकसुनिषण्णकजीवंतीतंदुलीयकमंडूकपर्ण्यः । गव्यं घृतं क्षौद्रसैंधवदाडिमामलकमित्येष वर्गः सर्वप्राणिनां सामान्यतः पथ्यतमः ॥ ५ ॥ तथा ब्रह्मचर्यनिवातशयनोष्णो-

---

(सूत्र ४) अयं वक्ष्यमाणवर्गः । (सूत्र ५) अत्र पाडुकशकुनाहृतसुगंधककर्दमककलमादयो देशभेदेन चाकृतिभेदेन शालिधान्याः । मुकुन्दकप्रमोदकादयः षष्टिकभेदाः पीतकादयोऽन्येपि तंदुलभेदाः। कालकम्—सूक्ष्मकृष्णतन्दुलभेदो बाजरा इति ख्यातः । पुष्पकः ज्वार इति ॥

दकनिशास्वप्नव्यायामश्चैकांततः पथ्यतमाः ॥ ६ ॥ एकांतहिता-न्येकांताहितानि प्रागुपदिष्टानि हिताहितानि तु यद्वायोः पथ्यं तत्पित्तस्यापथ्यमिति ॥ ७ ॥

आहारके निमित्त हितकारक अन्नादिक ये हैं जैसे रक्ततंदुल, षष्टिक, कंगुक (कांगुनी), मुकुंदक (कृष्णधान्य), पांडुक (पांडुवर्ण सतुषधान्य), पीतक (पीतधान्य), प्रमोदक (षष्टिकभेद), कालक, अशनक, पुष्पक, कर्दमक, शकुनाहृत, सुगंधक, कलम इत्यादि सब ये तंदुलोंके जातिभेद हैं तथा नीवार (तृणधान्य), कोदों, वनकोद्रव (कूटू), शामक, गेहूं, वेणुबीज, यव आदिक धान्यविशेष तथा एण (काला मृग), हरिण (लालमृग), कुरंग (कुछ लाल और एणके समान), मृगमात्रिका (कुरंगिणी–मृगी), श्वदंष्ट्रा (कर्कटका), कराल (कस्तूरी-मृग), क्रकर (कपार पक्षी), कपोत (कबूतर), लवा, तीतर, कपिंजल (श्वेत तीतर), वर्तीर (घर्घर पक्षी), वर्ति (बतक) आदिका मांस। तथा मूंग, वनमूंग, मोठ, मटर, मसूर, मांगल्य (पीलीमसूर), चना, हरेणु (क्षुद्रकलाय), आढकी (अरहर या तूर), सतीन (मटरभेद) इतने शिंबीधान्य। तथा चिल्ली शाक, वथुवा, सिखाली (चौपातिया), जीवंती, चौलाई और ब्राह्मीभेद ये शाक। तथा गौका घृत, शहत, सेंधानमक, अनार, आंवले यह वर्ग सब प्राणियों (मनुष्यमात्र) को सामान्यतासे हित हैं ॥ ५ ॥ तथा ब्रह्मचर्य, निर्वातस्थानमें सोना, निवाये पानीसे स्नानकरना, रात्रिमें नींदभर सोना, परिश्रम (कसरत) करते रहना, ये भी निश्चय करके अत्यन्त हित हैं ॥ ६ ॥ एकांत हित और एकांत आहित (एकांतहित जल, एकांताहित विष) पहले कहचुके हैं तथा हिताहित वही हैं जैसे जो वायुको पथ्य है वह पित्तको अपथ्य है ॥ ७ ॥

संयोगतस्त्वपराणि विषतुल्यानि भवंति तद्यथा वल्लीफलकव-ककरीराम्लफललवणकुलत्थपिण्याकदधितैलविरोहिपिष्टशुष्क-शाकाजाविकमांसमद्यजाम्बवचिलिचिममत्स्यगोधावराहांश्च नै-कध्यमश्नीयात्पयसा ॥ ८ ॥

कई पदार्थ किसी दूसरेसे मिलकर विषके समान होजाते हैं जैसे–बेलके फूल (तुरई आदि) कवक (छत्राक), करीर (टेंट), खट्टे फल (नींबू आदि), तथा

(सूत्र ६) उष्णोदकम्–जलाशयात् सद्य उद्धृतमेव कूपोदकं च। (सूत्र ८) अपराणि हितान्यपि विरुद्धातिसयोगतो विषतुल्यानि भवंति। कवकम्–छत्राकम्। फलाम्ल यौगिकत्वेन फल च तदम्ल निंबादि रूढत्वेनाम्लवेतसम्। पिन्याक तिलकल्कम् (खली) हिंगुवाल्हीकं चेति (ग. स्तो.)।

आम्रातक और सब प्रकारके नमक, कुलथी, तिलकुटी, दही, तैल, विरोहि (मत्स्य-विशेष या जिसके अंकुर न हो), पिट्ठी, सूखे साग, बकरी और भेडका मांस, मदिरा, जामुन फल, चिलचिम (लाल नेत्र मछली), गोह और शूकरका मांस इन्हें एकवार दूधके संग न खाय ॥ ८ ॥

क्वचित् विरुद्धका प्रयोग।

रोगं सात्म्यं च देशं च कालं देहं च बुद्धिमान् ॥ अवेक्ष्याग्न्यादिकान्भावान्रोगवृत्तेः प्रयोजयेत् ॥ ९ ॥

रोग तथा सात्म्य और देश, काल एवं देह और जठराग्नि इनके प्रभावको देखकर (विचारकर) बुद्धिमान् वैद्य रोगयुक्तको (विरुद्ध भी) प्रयुक्त कर सकता है (देसकता है) ॥ ९ ॥ जैसे अनन्तवातनामक शिरोरोगमें अग्निपर पक्व शहतके अपूप देनेसे उस रोगकी निवृत्ति होती है नहीं तो अग्नितप्त मधु विष है ।

अवस्थांतरबाहुल्याद्रोगादीनां व्यवस्थितम् ॥ द्रव्यं नेच्छंति भिषज इच्छंति स्वस्थरक्षणे ॥ १० ॥

रोगादिकोंकी अनेक प्रकार अवस्थाओंकी बाहुल्यता होनेसे वैद्य व्यवस्थित द्रव्यकीही इच्छा नही करते अर्थात् केवल एकांत हितकीही आज्ञा नहीं देते किंतु हां स्वस्थ मनुष्यकी स्वस्थावस्थाकी रक्षाके निमित्त व्यवस्थित (एकांतहित) हीकी इच्छा करते हैं (और एकांत अहितका पूरा २ निषेध करते हैं) ॥ १० ॥

द्वयोरन्यतरादाने वदंति विषदुग्धयोः ॥ दुग्धस्यैकांतहिततां विषस्यैकांततोऽहितम् ॥ ११ ॥ एवं युक्तरसाद्येषु द्रव्येषु सलिलादिषु ॥ एकांतहिततां विद्धि वत्स सुश्रुत नान्यथा ॥ १२ ॥

विष और दूध इनमेंसे किसी एकके ग्रहण करनेमें दुग्धको एकांतहितकारकता और विषको एकांत (निश्चय) अहित कहते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार जो योग्य रसादिक और जलादिक द्रव्य हैं उनमें एकांतहितकारकता जाननी चाहिये हे वत्स सुश्रुत ! इससे विपरीत नहीं है ॥ १२ ॥

अतोन्यान्यपि संयोगादहितानि वक्ष्यामः ॥ १३ ॥

अब अगाडी और भी जो संयोगसे अहित (संयोग विरुद्ध) हैं उन्हें कहते हैं ॥ १३ ॥

(सूत्र ९) रोगिणो रोग देशादींश्चावेक्ष्य बुद्धिमान्विरुद्धमपि योजयेदिति । (सूत्र १०) रोगादीनामित्यत्रादिशब्देन देशकालप्रकृत्यादयो ग्राह्याः ॥

न च विरूढधान्यैर्वसामधुपयोगुडमाषैर्वा ग्राम्यानूपौदकपिशितानि नाभ्यवहरेत् ॥ १४ ॥ न पयोमधुभ्यां रोहिणीशाकं जातुशाकं वाश्नीयात् ॥ १५ ॥ बलाकां वारुणीकुल्माषाभ्यां काकमाचीं पिप्पलीमरिचाभ्याम् ॥ नाडीभंगशाककुक्कुटदधीनि च नैकध्यम् ॥ १६ ॥ मधु चोष्णोदकानुपानम् । पित्तेन वा मांसानि । सुराकृशरापायसांश्च नैकध्यम् ॥ १७ ॥ सौवीरकेण सह तिलशष्कुलीम् । मत्स्यैः सहेक्षुविकारान् । गुडेन काकमाचीम् । मधुना मूलकम् । गुडेन वाराहं मधुना च सह विरुद्धम् ॥ १८ ॥ क्षीरेण मूलकम् । आम्रजाम्बवश्वाविच्छूकरगोधांश्च सर्वांश्च मत्स्यविशेषेण चिलिचिमं पयसा । कदलीफलं तालफलेन पयसा दध्ना तक्रेण वा । लकुचफलं पयसा दध्ना माषसूपेन वा मधुना घृतेन च प्राक्पयसं पयसोऽन्ते वा ॥ १९ ॥

विरूढ धान्य (अंकुरित धान्य जो नमीपाकर अंकुर निकाल दें अथवा विना बोये स्वयंजात धान्य), वसा (शुद्धमांससे उत्पन्नचर्बी), शहत, दुग्ध, गुड, उडद, इनके साथ ग्राम्यपशु और अनूप (जलके निकटवासी) तथा औदक (जलमें रहनेवाले) इन जीवोंका मांस न खाय ॥ १४ ॥ कुटकीका शाक तथा पुष्करशाक इन्हें दुग्ध और शहतके संग न खाय ॥ १५ ॥ बलाका (बगलाविशेष) का मांस, वारुणी, मदिरा और उबाले धान्य (बाकली) के संग न खाय । काकमाची (मकोह) को पीपल और मिरचके संग न खाय। नाडी (नाली) का शाक, मुरगा और दही एक साथ नहीं खाना चाहिये ॥ १६ ॥ शहतको गरम जलके साथ न खाय । पित्तेके

(सूत्र १४) ग्राम्यानूपौदकपिशितानि विरूढधान्यैर्वसामधुपयोगुडमाषैर्वा न अभ्यवहरेदित्यन्वयः । ("विरूढोऽङ्कुरिते जाते" इति मेदिनी) ॥ वृद्धवाग्भटेपि ग्राम्यानूपौदकपिशितानि मधुगुडतिलपयोमाषमूलकबिसैर्विरूढधान्यैश्च नैकध्यमद्यात् विशेषेण पयसा मत्स्यान्।उभयं ह्येतन्मधुररसविपाकित्वादत्याभिष्यन्दि शीतोष्णवीर्यत्वात्परस्परं विरुद्धम् । (सूत्र १९) विरुद्धमिति पूर्वेणान्वयः । श्वावित् शल्लकी ॥ (वक्तव्य सूत्र १४-१९) सयोगविरुद्ध अर्थात् दो या कई हितपदार्थ भी दूसरे हितही पदार्थसे मिलकर जो विषतुल्य होजाते है (अहितकारक होजाते है) इसका कारण कहीं तो दोषकी अति अधिकता होतीहै जैसे काकमाचीके संग मिरच और पिप्पली जो उसकी उष्णताको अत्यंत उल्बण करके पित्तको तत्काल कुपित करदेतेहै इत्यादि दूसरे जिनके वीर्यविपाकमे अतिविरोध हो जैसे एक अति उष्णवीर्य दूसरी अति शीतवीर्य इनको एकसंग खानेसे एकहीबार विरुद्धवीर्य होकर विकृत रस रक्तादि उत्पन्नकरके व्याधिकारक होजाते है इसीप्रकारसे रसविरुद्ध मानाविरुद्धादि है ॥

संग मांसका विरोध है। मदिरा, कृशरा (तिलतंदुलकी खिचडी) और खीर इन्हें एक संग न खाय ॥१७॥ सौवीरसंज्ञक कांजीके संग तिल, शष्कुली तथा मछलीके संग ईखके पदार्थ गुड, शक्कर आदि तथा गुडके संग मकोह और शहतके संग मूली तथा गुड और शहतके संग शूकरका मांस ये विरुद्ध हैं ॥ १८ ॥ दूधके संग मूली तथा आंब, जामुन, सेह और शूकरका मांस और गोहका मांस इन सबकी मछलीके साथ विरुद्धता है और चिलिचिम (लाल मछली) की (विशेषकर) दूधसे विरुद्धता है तथा केलेको तालके फल, दूध, दही और छाछके संग न खाय तथा लकुच (बढल) फलको दूध, दही, उडदकी दाल, शहत और घृत इनके संग न खाय तथा लकुचके पहले और पीछे (जबतक परिपाक न हुआहो) दूध नहीं पीवे ॥१९॥

कर्मविरुद्ध ।

अतः कर्मविरुद्धान्वक्ष्यामः ॥ २० ॥ कपोतान्सर्षपतैलभृष्टान्नाद्यात् । कपिंजलमयूरलावतित्तिरिगोधाश्चैरंडदार्वग्निसिद्धा, एरंडतैलसिद्धा वा नाद्यात् । कांस्यभाजने दशरात्रपर्य्युषितं सर्पिर्मधु चोष्णैरुष्णे वा । मत्स्यपरिपचने शृंगवेरपरिपचने वा सिद्धां काकमाचीम् । तिलकल्कसिद्धमुपोदिकाशाकम् । नालिकेरेण वराहवसापरिभृष्टां वलाकाम् । भासमंगारशूल्यं नाश्नीयात् ॥ २१ ॥

अब यहांसे कर्मविरुद्धोंको कहते हैं ॥ २० ॥ सरसोंके तैलमें भूने पारावत (कबूतर) को (मांसाहारीभी) न खाय और बघ्या, मोर, लवा, तीतर, गोह इन्हें एरंडकी लकडियोंसे पकाकर अथवा अरंडके तेलसे पकाकर न खाय। तथा कांसेके पात्रमें रक्खा हुआ दश दिनका घृत, तथा शहत गरम पदार्थोके साथ या गरमीकी ऋतुमें न खाय। जिस पात्रमें मछली पकाई हो या अदरखको पकाया हो उसी पात्रमें पकी काकमाची (मकोह) न खाय। तिलकल्कमें सिद्ध कियाहुआ पोईका शाक न खाय। नारियल (खोपरे) के साथ शूकरकी चरबीसे भूनी हुई वलाका (कुंज) न खाय। भास (छोटी चोंचका धूंधले रंगका गीध) लोहशलाकासे अंगारोंपर भुना न खाय ॥ २१ ॥

मानविरुद्ध ।

अतो मानविरुद्धान्वक्ष्यामः ॥ २२ ॥ मध्वम्बुनी मधुसर्पिषी मानतस्तुल्ये नाश्नीयात् । स्नेहौ मधुस्नेहौ जलस्नेहौ वा विशेषादांतरिक्षानुपानौ ॥ २३ ॥

(सूत्र २०) अत्रापि विरुद्धमिति शेष.

यहांसे मानविरुद्ध (प्रमाण करके विरुद्ध) जो हैं उन्हें कहते हैं ॥ २२ ॥ शहत और जल तथा शहत और घृतको तोलमें बराबर मिलाकर न खाय तथा दो चिकनाइयोंको (घृत, तैल) (घृत, चरबी) (तैल, वसा) इन्हें तथा शहत कोई स्नेह, तथा जल और कोई स्नेह, इन्हे समान मिलाके न खाय विशेषकर मधु और स्नेहके साथ वर्षाका जल न पीवे ॥ २३ ॥

अत ऊर्द्ध्वं रसद्वंद्वानि रसतो वीर्यतो विपाकतश्च विरुद्धानि वक्ष्यामः ॥ २४ ॥ तत्र मधुराम्लौ रसवीर्यविरुद्धौ मधुरलवणौ च मधुरकटुकौ च सर्वतः । मधुरतिक्तौ रसविपाकाभ्याम् । मधुरकषायौ चाम्ललवणौ रसतः । अम्लकटुकौ रसविपाकाभ्याम् । अम्लतिक्तौ अम्लकषायौ च सर्वतः । लवणकटुकौ रसविपाकाभ्यां लवणतिक्तौ लवणकषायौ च सर्वतः कटुतिक्तौ रसवीर्याभ्याम् । कटुकषायौ तिक्तकषायौ च रसतः ॥ २५ ॥

इससे अगाडी अब दो दो रसोंका रससे वीर्यसे और विपाकसे विरुद्ध वर्णन करते हैं ॥ २४ ॥ उनमेंसे मीठा और खट्टा, रस और वीर्यसे परस्पर विरुद्ध हैं । और मधुर, लवण तथा मधुर, चरपरा, सब (रस, वीर्य और विपाक) से विरुद्ध हैं । मधुर और कडवा, रस और विपाकमें विरुद्ध हैं । मधुर, कसेला तथा अम्ल, लवण, रससे विरुद्ध हैं । अम्ल और कटु अर्थात् चरपरा, रस और विपाकसे विरुद्ध हैं । अम्ल और तिक्त अर्थात् कडवा तथा अम्ल और कषाय, सब (रस, वीर्य और विपाक) से विरुद्ध हैं । लवण और चरपरा, रस और विपाकसे विरुद्ध हैं । लवण और कडवा तथा लवण और कसेला सब (रस, वीर्य, विपाक) से कटु और (चरपरा) और तिक्त (कडवा) रस और वीर्यसे विरुद्ध हैं । कटु और कषाय तथा तिक्त (कडवा) और कसेला रससे विरुद्ध हैं ॥ २५ ॥

तरतमयोगयुक्तांश्च भावानतिरूक्षानतिस्निग्धानत्युष्णानतिशीतानित्येवमादीन्विवर्जयेत् ॥ २६ ॥ भवंति चात्र–

विशेष और अति विशेष योगयुक्त भाव जो अति रूखे अति चिकने अति गरम अतिशीत इत्यादिक (आदिशब्दसे गुरु अभिष्यंदि आदि) इन्हे विशेष आहार विहारसे वर्जित रक्खे ॥ २६ ॥ यहां श्लोक कहते हैं–

(वक्तव्य–सूत्र २६) इसीके अनुसार यूनानी हकीम चौथे दरजेकी गरम शरद और खुश्क दवाओंको विषतुल्य अभक्ष्य कहते है क्योंकि उनके यहां चौथे दरजेकी गरम शरद खुश्क वस्तु अत्यतही [illegible] ॥

विरुद्धान्येवमादीनि रसवीर्यविपाकतः ॥ तान्येकांताहितान्येवं शेषं विद्याद्धिताहितम् ॥ २७ ॥ व्याधिमिंद्रियदौर्बल्यं मरणं चाधिगच्छति ॥ विरुद्धरसवीर्यादीन्भुंजानोऽनात्मवान्नरः ॥ २८ ॥

जो ऊपर वर्णन हुए उनको आदिले जो पदार्थ रस, वीर्य और विपाक इन तीनों बातोंमें विरुद्ध हैं वे तो निश्चित ही अहितकारक होते हैं और शेष (जो दो या एकमें विरुद्ध हैं) वे हिताहित अर्थात् कहीं हित कहीं अहित जानने चाहियें ॥ २७ ॥ जो मनुष्य रस, वीर्य और आदि शब्दसे विपाक इनसे विरुद्ध पदार्थोंको इंद्रियोंकी विवशता तथा अज्ञानसे भोजन करते हैं वे (तत्काल या कालांतरमें) व्याधि अथवा इंद्रियोंकी दुर्बलता तथा मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ २८ ॥

यत्किंचिद्दोषमुत्क्लेश्यं भुक्तं कायान्न निर्हरेत् ॥ रसादिष्वयथार्थं वा तद्विकाराय कल्पते ॥ २९ ॥

जो विरुद्ध पदार्थ उत्क्लेश (वमन हल्लास) कारक दूषित भोजन किया गयाहो उसे शरीरसे (वमनादि द्वारा) बाहर न निकाले तो वह रस धातुओंमें अयथार्थ रूप होकर विकारकारक होता है ॥ २९ ॥

विरुद्धभुक्तका प्रतीकार ।

विरुद्धाशनजान्रोगान्प्रतिहन्ति विरेचनम् ॥ वमनं शमनं वापि पूर्वं वा हितसेवनम् ॥ ३० ॥

विरुद्ध पदार्थोंके खाये जानेसे जो कोई रोग होते हैं उनको विरेचन (जुल्लाब) ठीक २ शांत करता है अथवा वमन (कै) अथवा शांतिकारक पदार्थ (जो उसका विकार शांत करे) अथवा विकारसे पहले ही हितकारक (दोषशांतिकारक) पदार्थोंका सेवन करे ॥ ३० ॥

सात्म्यतोऽल्पतया वापि दीप्ताग्नेस्तरुणस्य च ॥ स्निग्धव्यायामबलिनां विरुद्धं वितथं भवेत् ॥ ३१ ॥ व्यायामशीलो बलवान्स्निग्धोग्निमांश्चापि महाशनश्च । आप्नोति रोगान्न विरुद्धजातानभ्यासतो वाल्पतया च जन्तुः ॥ ३२ ॥

(वक्तव्य सूत्र २७–२८) पहले कथनेक अनुसार (मीठा नमक) (मीठा और चरपरा) (खट्टा और कडवा) (खट्टा और कसेला) (खारा और कडवा) (खारा और कसेला) ये रस परस्पर रसवीर्य और विपाक तीनोंमें विरुद्ध हैं इससे ऊपरके विरुद्ध दो दो रस मिलाकर कभीनहीं खाने चाहियें। (सूत्र ३१–३२) यद्यस्य सुखाय भवति तत्तस्य सात्म्यम् । वितथ निष्फलं अन्यथाभूत वा–व्यायामशील इति श्लोको जैज्जटाचार्यादिभिर्निबंधकारैरनार्षत्वान्नाङ्गीकृतः । (वक्तव्य सूत्र ३१–३२) [illegible]

जो अपनी प्रकृतिके अनुकूल हो या थोड़ा हो या मनुष्यकी जठराग्नि दीप्त हो तरुण मनुष्य हो परिश्रम या कसरत करनेवाला हो बलवान् हो ऐसी अवस्थामें विरुद्ध भोजन भी निष्फल हो जाता है अर्थात् कुछ बहुत हानि नहीं करता और पचजाता है ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य व्यायाम (शारीरिकश्रम) करता है बलवान् है बालअवस्था है स्निग्ध है तथा जिसकी जठराग्नि प्रबल है बहुत भोजन करके पचानेवाला है ऐसा मनुष्य विरुद्धभोजनके विकारों और रोगोंको नहीं प्राप्त होता अथवा अभ्यास करनेसे दुःख नहीं देता अथवा विरुद्धकी मात्रा थोड़ी हो तो प्रायः दुःख नहीं देता ॥ ३२ ॥

अथ वातगुणान्वक्ष्यामः ॥ ३३ ॥

अब वायु (चारों दिशाकी पवनके) गुण वर्णन करते हैं ॥ ३३ ॥

पूर्वका पवन ।

पूर्वः समधुरः स्निग्धो लवणश्चैव मारुतः ॥ गुरुर्विदाहजननो रक्तपित्तविवर्द्धनः ॥ ३४ ॥ क्षतानां विषजुष्टानां व्रणिनः श्लेष्मलाश्च ये तेषामेव विशेषेण सदा रोगविवर्द्धनः ॥ ३५ ॥ वातलानां प्रशस्तश्च श्रांतानां कफशोषिणाम् ॥ तेषामेव विशेषेण भवेत्क्लेदविवर्द्धनः ॥ ३६ ॥

पूर्वका (पुरवा) पवन मधुर है चिकना और सलोना है भारी है विदाह उत्पन्न करता है रक्तपित्तको बढाता है ॥ ३४ ॥ घाववाले और विषसे युक्त तथा फोड़े फुन्सीवाले तथा कफप्रकृति जो मनुष्य हैं उन्हे विशेषकरके सदा रोगका बढानेवाला है ॥ ३५ ॥ वातप्रकृति मनुष्योंको श्रेष्ठ है और थकेहुओंको तथा जिनका कफ सूखगया हो उन्हें विशेषकरके क्लेद (आर्द्रता) का बढानेवाला होता है ॥ ३६ ॥

—आहार विहार किसीको प्रकृतिकी अनुकूलता या किसी समय या बल° या अवस्था या देश या किसी रोग या शरीरमे किसी दोषकी न्यूनता या अधिकता या और किसी कारणसे हानिकारक तत्काल प्रतीत न भी हों तोभी वास्तवमें अवश्यमेव कुछ न कुछ हानिकारक होताही है कई वार ऐसा होता है तरुण अवस्थामें बहुधा विरुद्ध आहार विहार तत्काल हानिकारक प्रतीत नही होते वेही तरुणावस्थाके सेवन किये हुए विरुद्ध वृद्ध अवस्थामें अपने दुष्ट प्रभावसे अत्यंत दुःखदायक होते हैं कभी शीतकालके सेवित उस समय हानिकारक प्रतीत न होकर उष्णकालमे हानि करते है इत्यादि (देखो सूत्र २९) तथा (अगले अध्यायका सूत्र ४५) विरुद्ध आहार विहार किसी कारण उस समय वितथ प्रतीत हों तो भी कुछ न कुछ अपने दुष्प्रभावका बीज शरीरमे प्रवेश करही देता है जो कभी न कभी गुप्त या प्रगटरूपसे थोडा या बहुत हानिकारक होताही है हा देश, काल, द्रव्यादिद्वारा स्वयं या जानकर उसका प्रतिकार हो जाय तो शांत होताहै इससे विरुद्ध आहार विहारसे अवश्यही बचना चाहिये॥

दक्षिणका पवन ।

मधुरश्चाविदाही च कषायानुरसो लघुः ॥ दक्षिणो मारुतः श्रेष्ठश्चक्षुष्यो बलवर्द्धनः ॥ रक्तपित्तप्रशमनो न च वातप्रकोपनः ॥३७॥

दक्षिणका पवन मधुर कुछ कसेला है अविदाही है (विदाह नहीं करता) और हलका है श्रेष्ठ है नेत्रोंको हित है और बलको बढाता है रक्तपित्तको शांत करता है तोभी वायुको कुपित नहीं करता ॥ ३७ ॥

पश्चिमका पवन ।

विशदो रूक्षपरुषः खरः स्नेहबलापहः ॥ पश्चिमो मारुतस्तीक्ष्णः कफमेदोविशोषणः ॥ सद्यः प्राणक्षयकरः शोषणस्तु शरीरिणाम् ॥ ३८ ॥

पश्चिमका (पछवा) पवन विशद (साफ) है रूखा है कठोर है खरखरा है चिकनाई और बलका नाश करनेवाला है तथा कफ और मेदको सुखानेवाला है और सद्यही प्राण अर्थात् बल (पराक्रम) को क्षय करनेवाला और जीवोंके देहको सुखानेवाला है ॥ ३८ ॥

उत्तरका पवन ।

उत्तरो मारुतः स्निग्धो मृदुर्मधुर एव च ॥ कषायानुरसः शीतः दोषाणामप्रकोपनः ॥ ३९ ॥ तस्माच्च प्रकृतिस्थानां क्लेदनो बलवर्द्धनः ॥ क्षीणक्षयविषार्तानां विशेषेण तु पूजितः ॥ ४० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

उत्तरका पवन चिकना है कोमल है मधुर और कुछ २ कसेला है ठंढा है दोषोंको कुपित नहीं करता ॥ ३९ ॥ इस कारणसे प्रकृतिस्थ (स्वस्थ) पुरुषोंको क्लेदन और बल बढानेवाला है तथा क्षीण और क्षय या क्षत तथा विषसे पीडित मनुष्योंको विशेष करके श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥

परिशिष्ट ।

चारों दिशाओंके पवनके गुण कहेगये प्रसंगवशसे चारों कोणों-विदिशाओंकी पवनके गुण तंत्रांतरसे वर्णन करते हैं ॥

आग्नेयपवनका गुण ।

श्लोक-किंचित्सतिक्तो मधुनान्वितः स्यात्क्लेदी समीरोद्भवरोगकारी ॥ सुशीतलः शोफवतां गुणानां शस्तो न चाग्नेयसमीरणश्च ॥ १ ॥

(सूत्र ४०) क्षीणक्षयविषार्तानामित्यत्र क्षीणक्षतविषार्तानामिति वा पाठः ॥

अर्थ-अग्निकोणका वायु कुछ कडुवा मधुररससे मिलाहुआ है क्लेदकर्ता है वायुसे उत्पन्न हुए रोगोंको करता है शीतल है शोथरोगवालों और व्रणोंको अच्छा नहीं है ॥ १ ॥

नैर्ऋत्यका पवन ।

श्लोक-रूक्षोष्णवातप्रशमः समीरः कट्वम्लपित्तास्रविशेषकारी ॥ प्रशोषणो देहबलस्य पुंसां कफान्वितो नैर्ऋतिकः प्रदिष्टः ॥ २ ॥

अर्थ-नैर्ऋतकोणका पवन रूखा है गरम है वायुको शांत करता है कटु अम्ल (चरपरा खट्टा) है पित्त और रक्तको दूषित करता है और मनुष्योंके देहबलका शोषण करता है तथा कफके सहित है ॥ २ ॥

वायव्यकोणका वायु ।

श्लोक-वायव्यजातो मरुतः प्रशस्तः कषायसंशुष्कगुणः प्रसन्नः ॥करोति वातस्य वशं नराणां शस्तो न निंद्यो व्रणशोफिनां च ॥ ३ ॥

अर्थ-वायव्यकोणका पवन श्रेष्ठ है कषाय और शुष्क गुणवाला है प्रसन्न है और मनुष्योंको वायुके वश करता है तथा व्रण और शोथरोगवालोंको श्रेष्ठ है निंदित नहीं है ॥ ३ ॥

ईशानकोणका पवन ।

श्लोक-शीतोतिलोलः कफवातकोपं करोति चेशानदिशः प्रवृत्तः ॥ शस्तश्च नासौ व्रणशोफकासज्वरक्षयश्वासविकारिणां च ॥ ४ ॥

अर्थ-ईशानकोणका पवन शीतल है चंचल है कफ और वायुको कुपित करता है और व्रण, शोथ (सोजा) खांसी, ज्वर, क्षयी और श्वास इतने विकारवालोंको श्रेष्ठ नहीं है ॥ ४ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्म वैद्यवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थाने विंशतितमोध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

अथातो व्रणप्रश्नमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे व्रणप्रश्न (व्रणादि रोगोंके विषयमें वातादि दोषोंकी व्यवस्थाके जाननेकी इच्छासे कथनोपकथनविषयक) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

वातपित्तश्लेष्माण एव देहसंभवहेतवः ॥ १ ॥ तैरेवाऽव्यापन्नैरधोमध्योर्द्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिस्ति-

---

(सूत्र १) व्रणविषयः प्रश्नो यस्मिन्स व्रणप्रश्नः, व्रणशब्देनात्र वातादय उच्यंते, व्रणकारणत्वात् [?] तेन वातादिविषयः प्रश्नो यस्मिन्नित्युक्तमिति (डल्हनः)

सृभिरेतश्च त्रिस्थूणमाहुरेके ॥ २ ॥ त एव च व्यापन्नाः प्रलयहेतवस्तदेभिरेव शोणितचतुर्थैः संभवस्थितिप्रलयेष्वप्यविरहितं शरीरं भवति ॥ ३ ॥ भवति चात्र-

वायु, पित्त और कफ येही शरीरके संभव (होने) के कारण हैं ॥ १ ॥ इन विकाररहित शुद्ध वात, पित्त, कफके नीचे, मध्यमें और ऊपर यथाक्रम स्थित होनेसे यह शरीर धारण किया जाताहै जैसे तीन थूणोंके आश्रयसे स्थान रहता है इसीसे कई आचार्य इस देहको (त्रिस्थूण) तीन थूणोंवाला कहते हैं ॥ २ ॥ वेही वात, पित्त, कफ जब व्यापन्न हों (बिगड) जाते हैं तो शरीरके नाशका कारण हो जातेहैं इन तीनों और चौथे रुधिरसे मिलकर इन चारोंसे उत्पत्ति और स्थिति तथा प्रलय (मृत्यु) के समयभी शरीर रहित नहीं होताहै ॥ ३ ॥ यहां श्लोक है-

नर्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात् ॥ शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते ॥ ४ ॥

न कफके विना देह है न पित्तके विना और न वायुके विना तथा रुधिरके विनाभी देह नहीं है किंतु सदा इनहीकरके शरीर धारण किया जाता है ॥ ४ ॥

तत्र 'वा-गतिगन्धनयोः' इति धातुः, 'तप-सन्तापे' 'श्लिष-आलिंगने' एतेषां कृद्विहितैः प्रत्ययैर्वातः, पित्तं, श्लेष्मेति च रूपाणि भवंति ॥ ५ ॥

इनमें 'वा-गतिगंधनयोः' 'तप-संतापे' और 'श्लिष-आलिंगने' इन धातुओंसे कृदंतकी विहित प्रत्ययोंकरके वात, पित्त और श्लेष्मा ये रूप (शब्द) बनतेहैं ॥ ५ ॥

दोषस्थानान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः ॥ ६ ॥ तत्र समासेन वातः श्रोणिगुदसंश्रयः ॥ श्रोणिगुदयोरुपर्य्यधो नाभेः पक्काशयः । पक्कामाशयमध्यं पित्तस्य । आमाशयः श्लेष्मणः ॥ ७ ॥

यहांसे आगे दोषों (वायु, पित्त, कफ) के स्थानोंको कहते हैं॥६॥ संक्षेपतासे तो यह है कि वायु श्रोणि (कमर वस्ति) और गुदा (मलाशय) इनमें प्रायः रहता-

(सूत्र ४) ऋते इति पद पित्तात्, कफाच्छोणितात्सर्वत्र प्रयोज्यान्वेतव्यम् ॥ (सूत्र ५) वा गतिगंधनयोः,इत्यस्माद्धातोः क्तप्रत्यय इति वातः। 'तप संतापे' इत्यस्माद्धातोरिचि प्रत्यये चेत्वे कृते वर्णविपर्यये कृते च पित्तमिति रूपम् । श्लिष् आलिंगने' इत्यस्माद्धातोर्मनि प्रत्यये कृते गुणे च श्लेष्मेति रूपम् । तस्माद्वातस्य गतिमत्त्वं पित्तस्य संतापवत्त्व श्लेष्मण आलिंगनवत्त्वं दर्शितम् ॥ (सूत्र ६) पक्काशयो वातस्य नाभिः पित्तस्य उरः श्लेष्मणः स्थानं विशेषेणेति (वृ. वा. भ.)

है। और कमर या वस्ति और मलाशय इनसे ऊपर और नाभिके नीचे पक्वाशय है और पक्वाशय और आमाशयके मध्यमें पित्तका स्थान है । और आमाशय कफका स्थान है ॥ ७ ॥

अतः परं पंचधा विभज्यन्ते । तत्र वातस्य वातव्याधौ वक्ष्यामः । पित्तस्य यकृत्प्लीहानौ हृदयं दृष्टिस्त्वक्पूर्वोक्तं च श्लेष्मण-स्तूरः शिरः कण्ठः सन्धयः पूर्वोक्तं च । एतानि खलु दोषाणां स्थानान्यव्यापन्नानाम् ॥ ८॥ भवति चात्र-

फिर इन (वात, पित्त, कफ) के स्थान पांच २ ठौर विभाग किये हैं उनमेंसे वायुके पांचों स्थान (हृदय, कंठ, नाभि, गुदा और समस्तशरीर) ये विशेषतासे वातव्याधियोंमें (निदानस्थानके प्रथमाध्यायमें) वर्णन किये जावेंगे । पित्तके स्थान यकृत्, प्लीहा, हृदय, दृष्टि, त्वचा और पूर्वोक्त (पक्वामाशयमध्य) ये हैं । और कफके स्थान उर, शिर, कंठ (जिह्वामूल), संधि और पूर्वोक्त आमाशय ये हैं । ये स्थान स्वस्थतायुक्त दोषोंके नियत हैं (किंतु विकृत दोषोंका स्थानांतरके प्रति संचालनभी होजाताहै) ॥ ८ ॥ यहां श्लोक है-

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ॥ धारयंति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥ ९ ॥

जैसे चन्द्रमा, सूर्य और वायु विसर्ग (सृष्टि, जलदान) आदान (ग्रहण, शोषण) विक्षेप (फैलाना पृथक् २ करना) इन कर्मों करके जगत्को धारण करते हैं वैसेही कफ, पित्त और वायु शरीरको धारण करतेहैं ॥ ९ ॥

पित्तही अग्नि है या पृथक् ।

अत्र जिज्ञास्यं किं पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निराहोस्वित्पित्तमेवाग्नि-रिति ॥ १० ॥ अत्रोच्यते-न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरुप-लभ्यते आग्नेयत्वात् । पित्ते दहनपचनादिष्वभिवर्तमानेऽग्निव-

(सूत्र ८) इह तु-"हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः । उदानः कंठसंस्थश्च व्यानः सर्वशरीरगः॥ ' इत्येवं पंचधा वातस्थानानि विस्तरतो वातव्याधौ । वाग्भटस्तु-प्राणो मूर्द्धन्यवस्थितः कंठोरश्चर उदान उरस्यवस्थितः कंठनासिकानाभिचरः व्यानो हृद्यवस्थित. कृत्स्नदेहचरः समानोंतरग्निसमीपस्थितस्तत्सन्धुक्षणः अपानोऽपानेऽवस्थितः वस्तिश्रोणिमेढ्रवृषणवंक्षणोरुचर इति ॥ (सूत्र ९) विसर्गः-सृजने जलत्यागे । आदानम्-ग्रहणे । विक्षेपः प्रेरणे दूरीकरणे च । (.सूत्र १०) व्यतिरेको विशेषे । आहो स्वित् इत्यव्ययद्वय विकल्पे प्रश्ने चेति । (श, स्तो,)

दुपचारः क्रियते अंतरग्निरिति । क्षीणे ह्यग्निगुणे तत्समान-द्रव्योपयोगादतिवृद्धे शीतक्रियोपयोगादागमाच्च पश्यामो न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योग्निरिति ॥ ११ ॥

अब यहां यह जानना योग्य है कि पित्तविशेषसे पृथक् अग्नि कोई और है अथवा क्या पित्तही अग्नि (शारीरक अग्नि) है ॥ १० ॥ इस विषयमें युक्ति कही जाती है कि (वास्तवमें) पित्तविशेषसे अन्य और शारीरक अग्नि कोई प्रतीत नहीं होती (क्योंकि) आग्नेयभावसे पित्तमें जलाना, पकाना आदि कर्म वर्तमान होने पर अग्निके समान उपचार किया जाता है. अतएव शारीरक अग्नि है तथा अग्निगुणवाले पित्तके क्षीण होनेमें अग्निके समान उष्ण (पित्तवर्द्धक) द्रव्योंका उपयोग किया जानेसे तथा (पित्तके) अति वृद्ध होने (बढजाने) में शीतल क्रियाओंका उपयोग होनेसे और शास्त्रसे हम देखते हैं तो यही प्रतीत होता है कि पित्तविशेष अर्थात् पित्तसे पृथक् और अग्नि नहीं है अर्थात् शारीरक अग्नि पित्तही है ॥ ११ ॥

(१) पाचक पित्त ।

तच्चादृष्टहेतुकेन विशेषेण पक्कामाशयमध्यस्थं पित्तं चतुर्विधमन्नपानं पचति विवेचयति च रसदोषमूत्रपुरीषाणि । तत्रस्थमेव चात्मशक्त्या शेषाणां पित्तस्थानानां शरीरस्य चाग्निकर्मणानुग्रहं करोति । तस्मिन्पित्ते पाचकोग्निरिति संज्ञा ॥ १२ ॥

वह पित्त ईश्वरीय कारण विशेष करके पक्काशय और आमाशयके मध्यमें स्थितहुआ चार प्रकारसे भक्ष्य भोज्यादि खान पानको पकाता है और रस, दोष तथा मूत्र और मलको पृथक् २ करता है और मुख्यतासे वहीं स्थितहुआ अपनी शक्तिसे शरीरके शेष यकृत् त्वचा नेत्रादि स्थानों और समस्त देहका निज शक्तिसे और अग्निके कर्म उष्णत्वादिसे अनुग्रह (पोषण कल्याण) करता है इसी पित्तकी पाचकाग्नि (जठराग्नि) संज्ञा है ॥ १२ ॥

(२) रंजक पित्त ।

यत्तु यकृत्प्लीह्नोः पित्तं तस्मिन्रंजकोग्निरिति संज्ञा स रसस्य रागकृदुक्तः ॥ १३ ॥

जो पित्त यकृत् और प्लीहामें रहता है उसकी " रंजक " नामक अग्निसंज्ञा है यह रसको रक्त बनाता है ॥ १३ ॥

(सूत्र १३) वाग्भटे तु रंजकपित्तस्य स्थानमामाशय उक्तम् । आमाशयस्थं तु रसस्य रंजनाद्रंजकमिति ।

(३) साधक पित्त ।

यत्पित्तं हृदयसंस्थितं तस्मिन्साधकोऽग्निरिति संज्ञा सोऽभिप्रार्थितमनोरथसाधनकृदुक्तः ॥ १४ ॥

जो पित्त हृदयमें स्थित रहता है उसकी " साधक " नाम अग्नि संज्ञा है वह वांछित मनोरथका साधन करनेवाला कहा है ॥ १४ ॥

(४) आलोचक पित्त ।

यद्दृष्ट्यां पित्तं तस्मिन्नालोचकोऽग्निरिति संज्ञा स रूपग्रहणेऽधिकृतः ॥ १५ ॥

जो पित्त दृष्टिमें रहता है उसकी " आलोचक" नाम अग्नि संज्ञा है यह रूप ग्रहण करनेमें अधिकार किया है अर्थात् रूप ग्रहण करता है ॥ १५ ॥

(५) भ्राजक पित्त ।

यत्तु त्वचि पित्तं तस्मिन्भ्राजकोऽग्निरिति संज्ञा सोऽभ्यंगपरिषेकावगाहावलेपनादीनां क्रियाद्रव्याणां पक्ता छायानां च प्रकाशकः ॥ १६ ॥ भवति चात्र–

जो पित्त त्वचामें रहता है उसकी "भ्राजक" नाम अग्नि संज्ञा है वह मर्दन, सेचन, अवगाहन (स्नान) और लेपन आदिक क्रियाओंके द्रव्योंको पकाता (सुखाता) है और कांतिका प्रकाशक है ॥ १६ ॥ यहां श्लोक है कि–

पित्तका स्वरूप ।

पित्तं तीक्ष्णं द्रवं पूति नीलं पीतं तथैव च ॥ उष्णं कटुरसं चैव विदग्धं चाम्लमेव च ॥ १७ ॥

पित्त तीक्ष्ण है पतला दुर्गंधित नीला पीला (नारंजी) है तथा गरम है और रसमें चरपरा है और दग्ध होके (पककर या जलकर) खट्टा होजाता है ॥ १७ ॥ (पूति अर्थात् दुर्गंधित और नीलवर्ण सामपित्त होता है निराम नहीं)

श्लेष्मस्थानान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः ॥ १८ ॥ तत्रा[१]मा[११]शयः पित्ताशयस्योपरिष्टा[२]त्तत्प्रत्यनी[४]कत्वादूर्ध्वगति[६]त्वात्तेजसश्चन्द्र इवा[१]दित्यस्य[२]

(सूत्र १६) छाया कांतिरिति वाचस्पतिः । डल्हनस्तु छाया पांचभौतिकाना लीला–तासां प्रकाशक उत्पादक इति । (सूत्र १७) केचित् द्रवमित्यत्र सरामिति वा पठंति । नील पूति च सामावस्थायां पीत निरामावस्थायां च । सामस्य निरामस्य च पित्तस्य लक्षणं तंत्रांतरात्–"पित्त सामं भवेदम्लं दुर्गंध हरित गुरु ॥ अम्लिकाकंठहृद्दाहकरं श्याव तथा स्थिरम् ॥ १ ॥ निरामं पित्तमाताम्रमत्युष्ण कटुक सरम् ॥ निर्गंधि रुचिकृद्वह्निबलवर्द्धनमीरितम् ॥ २ ॥"

स चतुर्विधस्याहारस्याधारः । स च तत्रौदकैर्गुणैराहारः प्रक्लिन्नो भिन्नसंघातः सुखजरश्च भवति ॥ १९ ॥

यहांसे अगाडी कफके स्थान वर्णन करते हैं ॥ १८ ॥ आमाशय पित्ताशयके ऊपर है इससे और पित्ताशयसे विपरीत गुण होनेसे (पित्ताशय अग्निका स्थान है और यह आर्द्र जलका) और तेजकी ऊर्ध्वगति होनेसे जैसे सूर्यके ऊपर चन्द्रमा है इस प्रकारसे (अर्थात् सूर्यरूप पित्ताशय उष्ण और सोमरूप आमाशय शीतल सार्द्र है) ऐसे यह चारों प्रकारके (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय) आहारका आधार आमाशय है और यहां आमाशयमें आहार जलसंबधी गुणोंसे द्रवरूप पतला और भिन्न संघात (गांठ गुढी खुला) हुआ ऐसा होकर सुखपूर्वक पचने योग्य होजाताहै १९॥

माधुर्यात्पिच्छिलत्वाच्च प्रक्लेदित्वात्तथैव च ॥ आमाशये सम्भवति श्लेष्मा मधुरशीतलः ॥ २० ॥

मीठा होनेसे गाढा होनेसे क्लेदित (सार्द्र गीला) पन होनेसे मीठा तथा शीतल कफ आमाशयमें होता (रहता) है ॥ २० ॥

क्लेदन ।

स तत्रस्थ एव स्वशक्त्या शेषाणां श्लेष्मस्थानानां शरीरस्य चोदककर्मणानुग्रहं करोति ॥ २१ ॥

वह क्लेदन कफ वहां आमाशयमें स्थित हुआ निज शक्तिसे शेष कफके स्थानों और समस्त शरीरको उदक (जल) कर्म (क्लेदन आर्द्रता) करके अनुग्रह करता है ॥ २१ ॥

अवलंबन ।

उरःस्थस्त्रिकसंधारणमात्मवीर्येणान्नरससहितेन हृदयावलंबनं करोति ॥ २२ ॥

वक्षःस्थलमें स्थित कफ अन्नके रस करके सहित अपने पराक्रमसे त्रिकस्थानको धारण और हृदयको अवलंबन करता है ॥ २२ ॥

रसन ।

जिह्वामूलकंठस्थो जिह्वेंद्रियस्य सौम्यत्वात्सम्यग्रसज्ञाने वर्तते॥२३॥

(सूत्र १९) यदि वाध आमाशयो भवेत्तदा कथं चतुर्विधमाहारं पचेत् ॥ द्वितीय हेतुमाह ऊर्द्ध्वगतित्वात्तेजस इति एतेनैतदुक्तं भवति यदि हि पार्श्वयोरधो वा आमाशयस्तदा उदकस्याऽधोगतित्वान्निष्प्रत्यनीकत्वं ततश्च निष्प्रत्यनीकोऽग्निः शरीरमेव दहेदिति ।

जिह्वाके मूलस्थान कंठमें स्थित हुआ रसन कफ जिह्वा इन्द्रियको सौम्यता करके सब प्रकारके रसोंके ज्ञानमें प्रवृत्त रहता है ॥ २३ ॥

स्नेहन ।

शिरस्थः स्नेहसंतर्पणाऽधिकृतत्वादिंद्रियाणामात्मवीर्येणानुग्रहं करोति ॥ २४ ॥

शिरमें स्थित हुआ स्नेहन कफ मस्तकमज्जा (भेजे) के संतर्पण (तृप्ति और पुष्टि) के अधिकार करनेवाला होनेसे अपने पराक्रमसे समस्त इन्द्रियोंको अनुग्रह (यथार्थ प्रवृत्ति और प्रेरणा) करता है ॥ २४ ॥

श्लेष्मण ।

संधिस्थस्तु श्लेष्मा सर्वसंधिसंश्लेषणात्सर्वसन्ध्यनुग्रहं करोति ॥ २५ ॥ भवति चात्र–

संधियोंमें स्थित श्लेष्मा (कफ) समस्त संधियोंको श्लेषण (जोडने) के हेतुसे सब संधियोंका अनुग्रह (मुडन फैलने आदि कर्ममें प्रवृत्त) करता है ॥ २५ ॥ यहां श्लोक है–

कफका स्वरूप ।

श्लेष्मा श्वेतो गुरुः स्निग्धः पिच्छलः शीत एव च ॥ मधुरस्त्वविदग्धः स्याद्विदग्धो लवणः स्मृतः ॥ २६ ॥

कफ श्वेत है भारी है चिकना है गाढा है शीतल है विनादग्ध हुआ मधुर है और विदग्ध (पका या जला हुआ) खारी होजाता है ॥ २६ ॥

रक्तका स्वरूप ।

शोणितस्य स्थानं यकृत्प्लीहानौ तच्च प्रागभिहितं तत्रस्थमेव शोणितस्थानानामनुग्रहं करोति ॥ २७ ॥ भवति चात्र ॥ अनुष्णाशीतं मधुरं स्निग्धं रक्तं च वर्णतः ॥ शोणितं गुरु विस्रं स्याद्विदाहश्चास्य पित्तवत् ॥ २८ ॥

रुधिरका स्थान मुख्य यकृत् और प्लीहा है वे पहले शोणितवर्णनीय अध्यायमें कहेगये हैं। रुधिर यकृत् और प्लीहाहीमें प्राप्त होकर समस्त शरीरके स्थानों

(सूत्र २६) सामस्य निरामस्य च कफस्य लक्षण तंत्रान्तरात्–"आविलस्तन्तुलस्त्यानः कंठदेशे च तिष्ठति ॥ सामो बलासो दुर्गंधस्तृट्क्षुधोरुपघातकृत् ॥ १ ॥ श्लेष्मा निरामो निर्गंधः फेनवाञ्छेदवानपि ॥ भवेत्सर्पिंडितः पाण्डुरास्यवैरस्यनाशकृत् ॥ २ ॥" इति ।

(अंग प्रत्यंगों) को अनुग्रह करता है (सब जगह रुधिर पहुँचाता है) ॥ २७ ॥ इसमें श्लोक है-रुधिर न गरम है न ठंढा है मधुर है स्निग्ध है लालरंगवाला है भारी है आमगंधियुक्त है और विदाहसे (जलकर) पित्तवत् (चरपरा नमका) होजाता है ॥ २८ ॥

दोषसंचय ।

एतानि खलु दोषस्थानान्येषु संचीयन्ते दोषाः प्राक् सञ्चयहेतुरुक्तः ॥२९॥ तत्र संचितानां दोषाणां स्तब्धपूर्णकोष्ठता पित्तावभासता मन्दोष्मता चाङ्गानां गौरवमालस्यं चयकारणविद्वेषश्चेति लिंगानि भवंति तत्र प्रथमः क्रियाकालः ॥ ३० ॥

ये ऊपर दोषों (वातादिकों) के स्थान वर्णन किये इन्हीं स्थानोंमें दोषोंका संचय होता है और वातादि दोषोंके संचयका कारण पहले ऋतुचर्याध्यायमें वर्णन होचुका है ॥ २९ ॥ दोषोंके संचय होनेके ये लक्षण हैं वायुके संचयमें स्तब्धकोष्ठता (कोठा अर्थात् उदरबंधसा होना) तथा पूर्णकोष्ठता (उदर पवनसे भरासा रहना) और पित्तके संचयमें पित्तावभासता (गरमीसी मालूम होना) जठराग्नि मंद होजाना तथा कफके संचयमें अंगोंका भारीपन और आलस्य बढजाना तथा संचयके कारणसे द्वेष होना अर्थात् जिस जिस कारणसे जो दोष संचय हो फिर उससे द्वेष होना (वह नहीं सुहाना) जैसे अति मधुर भोजनसे कफ संचय होजाय तो फिर मीठा नहीं सुहावे तथा उष्णतासे पित्त संचय होनेपर उष्ण पदार्थोंसे द्वेष होजाय इत्यादि ये संचित दोषोंके लक्षण हैं और दोषोंके संचय समय प्रतिकार करना प्रथम समय है ॥ ३० ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रकोपनानि वक्ष्यामः ॥ ३१ ॥

इससे अगाड़ी प्रकोपन अर्थात् जिन आहार विहारोंसे वातादि दोष कुपित होते हैं उनका वर्णन करते हैं ॥ ३१ ॥

वायुकोपकारक आहार विहार।

तत्र बलवद्विग्रहातिव्यायामव्यवायाध्ययनप्रतपनप्रधावनप्रपीडनाभिघातलंघनप्लवनतरणरात्रिजागरणभाराहरणगजतुरंगरथपदातिचर्य्याकटुकषायतिक्तरूक्षलघुशीतवीर्यशुष्कशाकवल्लूरवरकोद्दालककोरदूषश्यामाकनीवारमुद्गमसूराढकीहरेणुकलायनिष्पावा-

(सूत्र ३०) पित्तावभासता इत्यत्र पीतावभासता इति वा पाठः ।

नशनविषमाशनाध्यशनवातमूत्रपुरीषशुक्रछर्दिक्षवथूद्गारबाष्पवे-गविघातादिभिर्विशेषैर्वायुः प्रकोपमापद्यते ॥ ३२ ॥

बलवान्से लड़ने, अतिव्यायाम (शारीरक श्रम) करने, अतिमैथुन, अति अध्ययन करने, चोट लगने, लंघन करने, उछलने कूदने, दौड़ने, अत्यन्त तैरने, रात्रिमें जागने, अति बोझा उठाने, हाथी, घोड़े, रथपर, या पैदल अत्यन्त फिरने, चरपरा, कसेला, कडवा रस अति खाने, रूखा, हलका, शीतवीर्य पदार्थ अति खाने, सूखे शाक, सुखामांस, वरक (कुधान्यचीना), उद्दालक (वनकोदव) कोरदूष (कोदूब), श्यामाक (शामक), नीवार (तृणधान्यविशेष), मूँग, मसूर, अरहर (तूर), हरेणु (क्षुद्रमटर), कलाय (मटर), निष्पाव (मंडुवा) इनके खाने और निराहार रहने, विषम भोजन करने, अध्यशन (भोजनपर भोजन) करने तथा अपान वायु, मूत्र, मल, वीर्य, छर्दि, छींक, डकार अश्रुपात इनके वेगोंके रोकने इत्यादि कामोंसे वायु कोपको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

स शीताभ्रप्रवातेषु घर्मान्ते च विशेषतः ॥ प्रत्यूषस्यापराह्णे तु जीर्णेऽन्ने च प्रकुप्यति ॥ ३३ ॥

वह वायु शीत समय, मेघके बरसने या अवरमें पवनके चलने (अति पवन चलने और पवन लगनेमें) कुपित होता है विशेषकर ग्रीष्मऋतुके अंत (प्रावृट्) में (या गरमी पहुँचनेके पीछे) प्रभात समय और अपराह्ण कालमें कोपको प्राप्त होता है (अति कुपित होता है) ॥ ३३ ॥

पित्तकोपकारक आहार विहार ।

क्रोधशोकभयायासोपवासविदग्धमैथुनोपगमनकट्वम्ललवणतीक्ष्णोष्णलघुविदाहितिलतैलपिण्याककुलत्थसर्षपातसीहारितकशाकगोधामत्स्याजाविकमांसदधितक्रकूर्चिकामस्तुसौवारकसुराविकाराम्लफलकट्वरार्कप्रभृतिभिः पित्तं प्रकोपमापद्यते ॥ ३४ ॥

क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, उपवास (व्रत), जले हुए पदार्थ, मैथुन, दौडना, चरपरा, खट्टा, लवण ये रस विशेष खाना तथा तीक्ष्ण (तेज), उष्ण, हलके, दाह पैदा करनेवाले, तिलतैल, खली और कुलथी, सरसों, अतसी (जिसकी छालसे क्षौम वस्त्र बनते हैं) या अलसी, हरे शाक, गोह, मछली, बकरे, और भेडका

(सूत्र ३४) हरितकशाकम्-हरितेन वर्णेन कायति प्रकाशते एवभूते शाके। मस्तु-दधिमंडः । कट्वरम्-दधिसरः । उक्तं च भावप्रकाशे-दध्नस्तूपरि यो भागो घनस्नेहसमान्वितः ॥ स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मण्डस्तु मस्त्विति ॥

मांस, दही, छाछ (जो खट्टे हों) कूर्चिका खुरचन, दहीका पानी और कांजी, तथा मदिरा हरेक भांतिकी और खट्टे फल, कट्वर (दधिसर) और सूर्यकी धूप आदिसे पित्त कोपको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥

तदुष्णैरुष्णकाले च मेघांते च विशेषतः ॥ मध्याह्ने चार्द्धरात्रे च जीर्यत्यन्ने च कुप्यति ॥ ३५ ॥

वह पित्त गरम पदार्थोंसे और गरम समयमें विशेषकर वर्षाके अंत (शरद् ऋतु) में मध्याह्न और अर्द्धरात्रके समय तथा भोजन पचतेवार कोप करता है। (विशेष कुपित होता है) ॥ ३५ ॥

कफकोपकारक आहार विहार ।

दिवास्वप्नाव्यायामालसमधुराम्ललवणशीतस्निग्धगुरुपिच्छलाभिष्यंदिहायनकयवकनैषधोत्कटमाषमहामाषगोधूमतिलपिष्टविकृतिदधिदुग्धकृशरापायसेक्षुविकारानूपौदकमांसवसाविसमृणालकशेरुकशृंगाटकमधुरवल्लीफलसमशनाध्यशनप्रभृतिभिः श्लेष्मा प्रकोपमापद्यते ॥ ३६ ॥

दिनके सोने, वे शारीरकश्रमके बैठे रहने, आलस्य करने, मीठा खट्टा नमकका रस अधिक खाने, शीतल, चिकने (घृत तैलादि) भारी गाढे अभिष्यंदि (जो गाढे और भारीपनसे शरीरकी रसवहा नाडियोंको रोकदें), हायनक (चावल), जव, तंदुल, निषध देशके तंदुल, इत्कट (खग्गीली धान्यविशेष) उडद और बड़े उडद, गेहूं, तिल, पिट्ठीके पदार्थ, दही, दूध, तिल, चावलोंकी खिचडी, खीर, ईखके पदार्थ, और जलके निकटवासी तथा जलजंतुओंका मांस, और चरबी, कमलकी नाल, कसेरु, सिंघाडे, मीठे फल (अमरूद आदि), बेलके फल (ककडी आदि) खाने तथा भोजनपर बिना पचे और भोजन करना इत्यादिसे कफ कोपको प्राप्त होताहै ॥ ३६ ॥

स शीतैः शीतकाले च वसंते च विशेषतः ॥ पूर्वाह्णे च प्रदोषे च भुक्तमात्रे प्रकुप्यति ॥ ३७ ॥

वह कफ शीतल पदार्थोंसे और शीतकालमें विशेषकर वसंतऋतुमें और पूर्वाह्ण सवेरके समय तथा संध्याकालमें और भोजन करतेही कुपित होता है (विशेष कुपित होता है) ॥ ३७ ॥

रक्तकोपकारक आहार विहार ।

पित्तप्रकोपणैरेव चाभीक्ष्णं द्रवस्निग्धगुरुभिश्चाहारैर्दिवास्वप्नक्रो-

धानलातपश्रमाभिघाताजीर्णविरुद्धाध्यशनादिभिरसृक्प्रकोपमापद्यते ॥ ३८ ॥

जिन आहार विहारोंसे पित्त कुपित होता है उन्हींसे विशेषकर बारंबार पतली चिकनी भारी वस्तु खानेसे दिनके सोनेसे क्रोधसे अग्निके तापने या जलनेसे धूपसे परिश्रम करनेसे चोट लगनेसे अजीर्णसे विरुद्ध (लवणदुग्ध या गुडदुग्ध मिश्रित इत्यादि संयोगविरुद्धादि) भोजन करनेसे भोजनपर भोजन (अजीर्णपर भोजन) करने इत्यादि कारणोंसे रुधिर कोपको प्राप्त होता है ॥ ६८ ॥

यस्माद्रक्तं विना दोषैर्न कदाचित्प्रकुप्यति ॥ तस्मात्तस्य यथादोषं कालं विद्यात्प्रकोपने ॥ ३९ ॥

जोकि बिना वातादि दोषोंके रक्त कदाचित् कुपित नहीं होता इस कारण उसके कोपमें दोषोंके अनुसार समय जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

दोषकोपके चिह्न।

तेषां प्रकोपात्कोष्ठतोदसंचरणाम्लिकापिपासापरिदाहान्नद्वेषहृदयोत्क्लेदाश्च जायन्ते। तत्र द्वितीयः क्रियाकालः ॥ ४० ॥

वातादिकके कोपसे ये चिह्न (संक्षेपसे) होते हैं पेटमें दरद (व्यथा), वायुका संचार वायुके कोपमें होता है और खट्टी डकार, अधिक प्यास और दाह ये पित्तके कोपसे होते हैं। अन्नमें अरुचि, हृदयकी क्लेदना (छर्दिकामता) ये कफकोपमें होते हैं। यह कोप समय दूसरा क्रिया काल है (दोषोंके विकारका या उपाधिका तथा उनके प्रतिकारका यह दूसरा समय है) ॥ ४० ॥

दोषोंका प्रसर।

अत ऊर्द्ध्वं प्रसरं वक्ष्यामः ॥ ४१ ॥ तेषामेभिरातंकविशेषैः प्रकुपितानां पर्युषितकिण्वोदकपिष्टसमवाय इवोद्रिक्तानां प्रसरो

(सूत्र ३८) अभीक्ष्णम्—नित्ये शश्वदर्थे भृशे प्रकृष्टे चाव्ययं तद्वति द्रव्ये च त्रिः। (श. स्तो.) वातादीना दोषाणां चयकोपशमहेतुः तत्रोष्णगुणोपहिता रूक्षादयो "वायोः" संचयमापादयति, शीतगुणोपहिताः प्रकोपम् उष्णगुणोपहिताः स्निग्धादयः प्रशमम् ॥ शीतगुणोपहितास्तीक्ष्णादयः "पित्तस्य" चयम्, उष्णगुणोपहिताः कोप शीतगुणोपहिताः मदादयः प्रशमम् ॥ शीतगुणोपहिताः स्निग्धादयः "कफस्य" चयम्, उष्णगुणोपहिताः कोपं तथा तु रूक्षादयः प्रशममिति सनिकृष्टार्थः। (सूत्र ४१) प्रकोपप्रसरयोः को भेद इत्याह—स्त्यानगतस्य सर्पिष. क्वाथ्यमानस्य प्रथम सचलनमात्रमेव प्रकोपः तस्यैव चातिक्वाथ्यमानस्य फेनमंडलेनोत्सर्पना देशातरसरणमेव प्रसरः तथा च पर्युषितस्य किण्वोदकपिष्टसमवायस्य बुद्बुदाकृतिसत्वं प्रकोपः तस्योद्रेकः प्रसर. ॥

भवंति । तेषां वायुर्गतिमत्त्वात्प्रसरणहेतुः सत्यप्यचैतन्ये स हि रजोभूयिष्ठो रजश्च प्रवर्तकं सर्वभावानाम् । यथा महानुदकसंचयोऽतिवृद्धः सेतुमवदार्यापरेणोदकेन व्यामिश्रः सर्वतः प्रधावत्येवं दोषाः कदाचिदेकशो द्विशः समस्ताः शोणितसहिता वाऽनेकधा प्रसरंति ॥ ४२ ॥

इससे (कोपसे) अगाडी दोषों (वातादि) का प्रसर (स्थानांतर गमन) कहते हैं ॥ ४१ ॥ जब इन वातादिकोंके संचय वा प्रकोपकारक वस्तुओंका विशेष आतंक (जोर) होता है तब इनसे वर्द्धित और कुपित दोषोंका प्रसर (स्थानांतर गमन) होता है जैसे सुराबीज जल और पिष्ट (मदिराके संधान) द्रव्योंका संबंध होकर धरा रहनेसे उफाण होता है । उनमेंसे वायु चलनेवाला होनेसे प्रसरणका मुख्य हेतु होता है यद्यपि वह चैतन्य नहीं है तो भी रजोगुण प्रधान वायु है और रजोगुण ही सभी भावोंका प्रवर्तक है (यही कारण है कि वायु प्रसरणका हेतु है) जैसे बहुत ही जलका सञ्चय अत्यंत बढनेसे सेतुको तोडकर दूसरे जलोंसे मिलकर सर्वत्र फैलजाता है इसी भांति दोषभी (बहुत बढनेसे अपने स्थानसे स्थानांतरमें फैल जाते हैं) वे दोष कभी एक कभी दो मिलकर कभी तीनों कभी रक्तसहित होकर अनेक प्रकारसे प्रसरित होते हैं (स्थानांतरमें गमन करते हैं ॥ ४२ ॥

तद्यथा । वातः पित्तं श्लेष्मा शोणितम् ॥ वातपित्ते वातश्लेष्माणौ पित्तश्लेष्माणौ वातशोणिते पित्तशोणिते श्लेष्मशोणिते । वातपित्तशोणितानि वातश्लेष्मशोणितानि पित्तश्लेष्मशोणितानि वातपित्तकफाः । वातपित्तकफशोणितान्येवं पञ्चदशधा प्रसरंति ॥ ४३ ॥

प्रसरके भेद (१५) इस प्रकार हैं (१) केवल वायु ही का प्रसर हो (२) केवल पित्तका (३) केवल कफका (४) केवल रक्तका (५) वात, पित्त मिलकर (६) वात, कफ मिलकर (७) पित्त, कफ मिलकर (८) वायु, रक्त मिल-

(सूत्र ४३) तद्यथेत्यादि पंचदशधा प्रसरंतीति पर्यंतं केचिदनार्षं वदंति—क्षेपकत्वाड्डल्लनाचार्येणापि न व्याख्यात तथापि सर्वेषु वर्तमानपुस्तकेषु सत्त्वादतिलोकोपकारकत्वाच्च पठितव्यमेव । तत्रांतरे तु कुत्रचित् एकद्वित्रिभिर्हीनमध्याधिकैस्त्रयोदशधा—(कुत्रचित्) "पृथक्त्रीन्विद्धि संसर्गाभिधा तत्र तु तान्नव । त्रीनेव समयावृद्ध्या षडेकस्यातिशायने ॥ त्रयोदश समस्तेषु षड्द्वयेकातिशयेन तु । एक तुल्याधिकैः षट्च तारतविकल्पनाम्यत् ॥ पंचविंशतिरित्येवंवृद्धैः ॥ " इति पंचविंशतिधा चेति ।

कर (९) पित्त, रुधिर मिलके (१०) कफ, रक्त मिलकर (अथवा दोनों जुदे२) (११) वायु, पित्त और रुधिर (१२) वायु, कफ, रुधिर (१३) पित्त, कफ, रुधिर (१४) वात, पित्त, कफ (ये मिलकर या जुदे २) (१५) वायु, पित्त, कफ, रुधिर ये चारों मिलकर या जुदे २ प्रसरित होते हैं (कुपित तथा उल्वण होते और स्थानांतरमें गमन करते हैं) ॥ ४३ ॥

कृत्स्नेऽर्द्धेऽवयवे वापि यत्रांगे कुपितो भृशम् ॥ दोषो विकारं नभसि मेघवत्तत्र वर्षति ॥ ४४ ॥

सम्पूर्ण देहमें अथवा आधे शरीरमें अथवा किसी एक स्थानमें जहां जिस अंगमें कुपित दोष होगा उसी जगह या उसके संपर्कीय अंगमें विकार करता है जिस भांति आकाशमें जहां बादल होता है वहांही वर्षता है ॥ ४४ ॥

नात्यर्थं कुपितश्चापि लीनो मार्गेषु तिष्ठति ॥ निष्प्रत्यनीकः कालेन हेतुमासाद्य कुप्यति ॥ ४५ ॥

कभी २ अत्यन्त कुपित दोष शरीरके मार्गोंमें स्थित शरीरहीमें नहीं लय हो जाता है यदि उसका प्रतिकार न हो तो कालांतरमें अपने कोपके कारणको पाकर (प्राप्त होकर) फिर कुपित होता है ॥ ४५ ॥

स्थानांतरगत दोषोंका प्रतीकार ।

तत्र वायोः पित्तस्थानगतस्य पित्तवत्प्रतीकारः । पित्तस्य कफस्थानगतस्य कफवत् ॥ कफस्य च वातस्थानगतस्य वातवदेष क्रियाविभागः ॥ ४६ ॥

उनमेंसे पित्तके स्थानमें प्राप्त हुए वायुकी चिकित्सा पित्तकी भांति करनी चाहिये और कफके स्थानमें गये हुए पित्तकी कफकीसी चिकित्सा करनी तथा वायुके स्थानमें प्राप्त कफकी वायुकी तरह प्रतिक्रिया करनी चाहिये इस प्रकारसे क्रिया (चिकित्सा) का विभाग समझना चाहिये ॥ ४६ ॥

प्रकुपितवायुपित्तकफके चिह्न ।

एवं प्रकुपितानां प्रसरतां च वायोर्विमार्गगमनाटोपौ ॥ ओषचोषपरिदाहधूमायनानि पित्तस्य ॥ अरोचकाऽविपाकांगसादश्छर्दिश्चेति श्लेष्मणो लिंगानि भवंति । तत्र तृतीयः क्रियाकालः ॥४७॥

कुपित और प्रसरित वायुका चिह्न है कि विमार्गमें गति तथा अफरा । पित्तके चिह्न, गरमी चूसनेकीसी पीडा, दाह, धूमकीसी डकार । कफके चिह्न, अरुचि, विपाक न होना अंगोंमें थकान, छर्दि, यह तीसरा क्रियाकाल है ॥ ४७ ॥

अत ऊर्द्ध्वं स्थानसंश्रयं वक्ष्यामः ॥ ४८ ॥ एवं प्रकुपितास्तांस्ता-ञ्छरीरप्रदेशानागत्य तांस्तान्व्याधीञ्जनयंति ॥ ४९ ॥

प्रसरके वर्णन करनेके पीछे अब स्थानसंश्रय अर्थात् जिस जिस जगह जाकर जो जो दोष, व्याधि उत्पन्न करते हैं उसका वर्णन (संक्षेपसे करते हैं ॥ ४८ ॥ इसप्रकार पूर्वोक्त संचय और कोपकारक आहार विहारोंसे कुपित हुए दोष (वातादिक) जिन जिन शरीरके प्रदेशोंमें जाते हैं वहां २ उसी उसी प्रकारकी (स्थान-दोषानुरूप) व्याधि उत्पन्न करते हैं ॥ ४९ ॥

ते यदोदरसन्निवेशं कुर्वंति तदा गुल्मविद्रध्युदराग्निसंगानाहवि-सूचिकातिसारप्रभृतीञ्जनयंति ॥ ५० ॥

ये वातादिक दोष जब उदर (पेट) में प्रवेश करते हैं तब गुल्म विद्रधि उदर-रोग (जलोदरादि) और जठराग्निकी मंदता, अफरा, विसूचिका, अतिसार आदिक रोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ ५० ॥

(वक्तव्य सूत्र ५०) यहापर उदरशब्दसे नाभिसे ऊपर और स्तनोपर्यंत जिसमेंसे सामान्यतासे आमाशय, पित्ताशय और पक्वाशयादि हैं ग्रहण किया जाता है उसमेंसे गुल्मके स्थानो (पार्श्व, हृदय, नाभि और वस्ति) मे वातादि दोषोंके होनेसे उन्हीके गुल्म होते है जैसे वायुसे वातगुल्म, पित्तसे पित्तगुल्म, कफसे कफगुल्म इत्यादि इसी प्रकार विद्रधि (अतर्विद्रधि) गुदा, वस्ति, मुख, नाभि, कुक्षि, नले और कक्षा प्रदेशके भीतरको, प्लीहामे, यकृत्मे, हृदयमें, क्लोममे दोषोके निवेशसे होते है । गुल्ममे दोषोके साथ मूल कफका समवाय होता है तथा अतर्विद्रधिमे दोषोके साथ रक्तका-इसी प्रकार उदररोग अर्थात् वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, जलोदर आदि इसमे केवल दोषका सचयमात्रही उदरमें होता है और अग्न्याशय (पक्वाशय और आमाशयके मध्य) मे दोषोके निवेश होनेसे जठराग्निविकार जैसे अग्न्याशयमे वायु हो तो विषमाग्नि, पित्त हो तो अतितीक्ष्णाग्नि (भस्मकरोग और कफ हो तो मदाग्नि)-ऐसेंही पक्वाशयमें वायुके वर्द्धित होनेसे अनाह (अफारा) होता है तथा पक्वाशयमें अजीर्णपूर्वक वायु हो तो विसूचिका (तथा शूल) होता है और पक्वाशयमे जलप्राय द्रव धातुओ सहित अर्थात् सार्द्रवायु हो तो अतिसार और सामवायु हो तो प्रवाहिका उत्पन्न होती है-इनके अतिरिक्त यहापर प्रभृतिशब्द है जिससे अनेक रोगोका ग्रहण है जैसे ग्रहणी कलामे दोषोका उद्रेक होनेसे सग्रहणी होती है तथा आमाशयमे पित्त होनेसे और उसकी विदग्धता होनेसे अम्लपित्त और कफ होनेसे अरुचि होती है तथा पित्तके कोपसे रक्तमें उद्रेक होकर और रक्तपित्तके स्थानमे सनिविष्ट होनेसे रक्तपित्त होता है तथा रक्तके स्थान (यकृत्-प्लीहा) मे पित्तके सनिवेशसे पाडु होताहै-इनका तथा अन्य रोगोका विशेष विस्तारपूर्वक वर्णन निदानस्थानमें होगा ।

यहभी बात विचार रखने योग्य है कि प्रत्येक व्याधिमे बहुधा एक दोष उसका कारणरूप होकर मुख्य और प्रधान होता है तथा दूसरे उसके ससर्गी या अनुगत या स्थानीय होनेसे गौण होते है जैसे रक्तपित्तमें पित्त मुख्य और ऊर्ध्वगतमे कफ संसर्गीय होकर गौण तथा शूलमे वायु मुख्य और इतर स्थानीय गौण होते हैं-इत्यादि ।

वस्तिगताः प्रमेहाश्मरीमूत्राघातमूत्रदोषप्रभृतीन् ॥ ५१ ॥ मेढ्रगता निरुद्धप्रकाशोपदंशशूकदोषप्रभृतीन् ॥ ५२ ॥ गुदगता भगंदरार्शःप्रभृतीन् ॥ ५३ ॥ वृषणगता वृद्धीः ॥ ५४ ॥

वस्तिमें प्राप्त हुए दोष प्रमेह तथा अश्मरी, मूत्राघात तथा मूत्रदोष आदि उत्पन्न करते हैं ॥ ५१ ॥ मेढ्रमें प्राप्त हुए निरुद्धप्रकाश नामक रोग तथा उपदंश और शूकरोग आदि उत्पन्न करते हैं (आदिके कथनसे क्लैब्यादिका ग्रहण करना चाहिये) ॥ ५२ ॥ गुदामें प्राप्त हुए दोष भगंदर, बवासीर आदि रोग करते-हैं ॥ ५३ ॥ अंडकोशमें निविष्ट दोष अंडवृद्धि करते हैं ॥ ५४ ॥

ऊर्ध्वजत्रुगतास्तूर्ध्वजान् ॥ ५५ ॥ त्वङ्मांसशोणितस्थाः क्षुद्ररोगान्कुष्ठानि विसर्पांश्च ॥ ५६ ॥ मेदोगता ग्रंथ्यपच्यर्बुदगलगंडालजीप्रभृतीन् ॥ ५७ ॥ अस्थिगता विद्रध्यनुशयीप्रभृतीन् ॥ ५८ ॥ पादगता श्लीपदवातशोणितवातकंटकप्रभृतीन् ॥ ५९ ॥ सर्वांगगता ज्वरसर्वांगरोगप्रभृतीन् ॥ ६० ॥

ऊर्ध्वजत्रु (गलसे ऊपर प्राप्त हुवे) दोष ऊर्ध्वज (शिरोरोग, नेत्र-कर्णरोगादिक) रोग उत्पन्न करते हैं ॥ ५५ ॥ त्वचा, मांस और रुधिरमें प्राप्त दोष क्षुद्ररोग, कुष्ठ तथा विसर्पादिक उत्पन्न करते हैं ॥ ५६ ॥ मेदमें प्राप्त हुए ग्रंथि, अपची, अर्बुद, गलगंड और अलजी आदि रोग पैदा करते हैं ॥ ५७ ॥ अस्थिमें प्राप्त होकर विद्रधि, अनुशयी (वक्रास्थित्वादि) पैदा करते हैं ॥ ५८ ॥ चरणोंमें प्राप्त हुए दोष श्लीपद, वातरक्त, वातकंटक आदि करते हैं ॥ ५९ ॥ समस्त शरीरमें प्राप्त हुए दोष ज्वर और सर्वांगरोग अर्थात् जो शरीरमें होनेवाले रोग हैं उनको वा अन्योंको उत्पन्न करते हैं ॥ ६० ॥

तेषामेवमभिनिविष्टानां पूर्वरूपं प्रादुर्भावादींस्तत्प्रतिरोगं वक्ष्यामः । तत्र पूर्वरूपगतेषु चतुर्थः क्रियाकालः ॥ ६१ ॥

इस प्रकार जो अंगप्रत्यंगमें प्राप्त हुवे रोग हैं उनका पूर्वरूप और प्रादुर्भाव (प्रगटता) आदि उन २ रोगोंके साथ विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे तहां रोगोंके पूर्वरूपके समयमें चौथा क्रियाकाल है ॥ ६१ ॥

व्याधिका स्पष्टरूप दर्शन ।

अत ऊर्ध्वं व्याधिदर्शनं वक्ष्यामः ॥ ६२ ॥ शोफार्बुदग्रंथिविद्रधि-

---

१ (सूत्र ५१) एषु च जनयतीति पूर्वेणान्वयः ।

विसर्पप्रभृतीनां प्रव्यक्तलक्षणता ज्वरातीसारप्रभृतीनां च तत्र पंचमः क्रियाकालः ॥ ६३ ॥

यहांसे अगाडी व्याधिके स्पष्ट दर्शनको कहते हैं ॥ ६२ ॥ शोथ, अर्बुद (रसोली), ग्रन्थि, विद्रधि, विसर्प आदिका प्रगट लक्षण होना तथा ज्वर अतिसारआदिका प्रगट होना यह व्याधिके प्रगटरूपके दर्शनमें पांचवां क्रियाकालहै॥ ६३॥

अत ऊर्ध्वमेतेषामवदीर्णानां व्रणभावमापन्नानां षष्ठः क्रियाकालः । ज्वरातीसारप्रभृतीनां च दीर्घकालानुबंधः । तत्राप्रतिक्रियमाणेऽसाध्यतामुपयांति ॥ ६४ ॥

इससे आगे जब ये शोथादिक विदीर्ण होकर व्रणभावको प्राप्त होते हैं तब छठा क्रियाकाल है इसी प्रकार ज्वर, अतिसारादिका बहुत समयके होनेपर छठा क्रियाकाल है इस समयभी उनका प्रतीकार न हो (पथ्य, औषध तथा कालपरिवर्तनादि द्वारा शांति न हो) तो असाध्यताको प्राप्त होजाते हैं ॥ ६४ ॥

संचयं च प्रकोपं च प्रसरं स्थानसंश्रयम् ॥ व्यक्तिं भेदं च यो वेत्ति दोषाणां स भवेद्भिषक् ॥ ६५ ॥

दोषोंके संचय (इकट्ठा होना) प्रकोप तथा प्रसर तथा स्थानसंश्रय (अंगाश्रयता) तथा प्रगटता और भेदोंको जो ठीक २ जानता है वही वैद्य हो सकता है (अन्य नहीं) ॥ ६५ ॥

संचयेपहृता दोषा लभंते नोत्तरां गतिम् ॥ ते तूत्तरासु गतिषु भवंति बलवत्तराः ॥ ६६ ॥ सर्वैर्भावैस्त्रिभिर्वापि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः ॥ संसर्गे कुपितः क्रुद्धं दोषं दोषोनुधावति ॥ ६७ ॥

संचयके समयमेंही शांत किये हुए दोष उत्तरगति (प्रकोप, प्रसरादि) को प्राप्त नहीं होते और यदि संचयमें जब कि अल्प बल दोष शांत न किये जायं तो फिर उत्तर गतियोंमें (प्रकोप, प्रसरादिकमें) अधिक २ बलवान् होते जाते हैं ॥ ६६ ॥

(सूत्र ६७) सर्वैर्भावैरिति रसगुणवीर्यविपाकाश्चत्वारो भावाः । अथवा द्रव्यगुणकर्माणि भावाः । भावैरित्यत्र भागैरिति वा पाठः । तत्र वातस्य रूक्षलघुविशदविष्टम्भादयो भागाः । पित्तस्य तीक्ष्णद्रवपूतिनीलपीतोष्णादयो भागाः । श्लेष्मणः शीतगुरुपिच्छलस्निग्धादयो भागाः । ततो वातादयो यदा सर्वैस्त्रिभिर्द्वाभ्यामेकेन वा भागेन कुप्यंति तदा भागवद्भिस्तद्विपरीतैर्भागैश्चिकित्सा कर्तव्या । यथा वातस्य रूक्षस्य स्निग्धेन, लघोः गुरुणा, विशदस्य पिच्छलेन, विष्टम्भस्य विडद्रावणेन तथा लघुरूक्षयोः गुरुस्निग्धाभ्यामित्यादि । पित्तस्य तीक्ष्णस्य मृदुना, द्रवस्य गाढेनेत्यादि । भावग्रहणे च रसतः कुपिते विपरीतरसेन, वीर्यतः कुपिते विपरीतवीर्येण, विपाकतः कुपिते विपरीतविपाकेन। उभयतः कुपिते चोभाभ्यां चिकित्सा कर्तव्येति॥

संसर्ग अर्थात् सन्निपातमें वायु, पित्त, कफ, और रक्त चारों अथवा वात, पित्त, कफ तीन अथवा कोईसे दो अथवा कोईसा एक स्वकीय भावों करके कुपित होकर दूसरे दोषोंके (जो संसर्गसे कुपित हुए उनके) प्रति आक्रमण करते हैं (अर्थात् ऐसी अवस्थामें (सन्निपातमें) दोष अपने स्थानही पर स्थिर नहीं रहकर दूसरे तीसरेके स्थानों २ में क्रुद्ध हो विचरते हैं) ॥ ६७ ॥

संसर्गमें चिकित्साक्रम ।

संसर्गे यो गरीयान्स्यादुपक्रम्यः स वै भवेत् ॥ शेषदोषाऽविरोधेन संनिपाते तथैव च ॥ ६८ ॥

द्वंद्वज अथवा त्रिदोष या संन्निपातमें जो दोष अति बढा (उल्वण) हो उसीका प्रतिकार करना (प्रथम) चाहिये परंतु उसमें (द्वंद्वजमें) दूसरे और संनिपातमें दूसरे तीसरेका विरोध न हो अर्थात् वृद्ध दोष घटनेपर मध्य या हीन दोष उल्वण न हो जाय या ऐसा न हो जाय कि वृद्ध दोष तो पूरा शांत हो ही नहीं और दूसरे पर उल्वण हो जाय ॥ ६८ ॥

वृणोति यस्माद्रूढेपि व्रणवस्तु न नश्यति ॥ आदेहधारणात्तस्माद्व्रण इत्युच्यते बुधैः ॥ ६९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थान एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

जो रूढ होने (भरजाने और अच्छा होने) परभी चिह्न रहता है और शरीरके धारण रहनेतक व्रणका लक्षण नाश नहीं होता इस लिये वैद्य इस (घावको) व्रण कहते हैं ॥ ६९ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थान एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

अथातो व्रणस्रावविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे अगाडी व्रणस्रावके विज्ञानीय अध्यायका व्याख्यान करते हैं-

व्रणके स्थान ।

त्वङ्मांसशिरास्नाय्वस्थिसंधिकोष्ठमर्माणीत्यष्टौ व्रणवस्तूनि अत्र सर्वव्रणसंनिवेशः ॥ १ ॥

त्वचा, मांस, शिरा (पतली नसें) स्नायु (नसें), अस्थि (हाड), संधि कोष्ठ ये आठ व्रणके स्थान हैं इन्हीमें (इनमेंसे किसीमें)सब व्रणोंका संनिवेश होताहै॥ १॥

(सूत्र ६८) संसर्गे यो गरीयान् स शेषदोषाविरोधेनोपक्रम्य इति चात्रोच्यते-"छिन्नाविश्वादिभिर्वायुपित्त क्षौद्रफलत्रिकैः । कफ गुडार्द्रकाद्यैश्च जयेद्दोषाविरोधिभिः" इति तन्त्रान्तरोक्तिः ।

तत्राद्यैकवस्तुसंनिवेशी त्वग्भेदी व्रणः सूपचारः ॥ शेषाः स्वयमवदीर्यमाणा दुरुपचाराः ॥ २ ॥ तत्रायतश्चतुरस्रो वृत्तस्त्रिपुटक इति व्रणाकृतिसमासः शेषास्तु विकृताऽऽकृतयो दुरुपक्रमा भवंति ॥ ३ ॥

उनमेंसे आरभका एक वस्तु (त्वचा) उसमें प्राप्त होनेवाले और उस त्वचाहीको भेदन करके प्रगट होनेवाले व्रण सुखसाध्य होते हैं तथा शेष (मांसादि सन्निविष्ट) और स्वयं फट जानेवाले व्रण दुःसाध्य होते हैं ॥ २ ॥ उनमेंसे समविस्तृत, चतुष्कोण, गोल और त्रिकोण ये साधारण (संक्षेप)से व्रणोंकी आकृति होतीहैं तथा शेष जिनकी विकृत (बेडौल) आकृति होतीहै वे दुःसाध्य होते हैं ॥ ३ ॥

सर्वे एव व्रणाः क्षिप्रं संरोहन्त्यात्मवतां सुभिषग्भिश्चोपक्रांताः ॥ अनात्मवतामज्ञैश्चोपक्रांताः प्रदुष्यंति प्रवृद्धत्वाद्दोषाणाम् ॥ ४ ॥

यथोक्त आहार विहार करनेवालोंके और सुज्ञ जर्राहकी चिकित्सा किये हुए सब प्रकारके व्रण शीघ्रही भरजाते हैं (अच्छे हो जाते हैं) । और जिसका चित्त दृढ न हो (जो यथोक्त आहार विहार नहीं करते) उनके और अज्ञानी जर्राहकी चिकित्सा किये हुए व्रण दोषोंकी वृद्धि होनेसे बहुत दुःख देते हैं (दूषित होते हैं) ॥ ४ ॥

तत्रातिसंवृतोऽतिविवृतोऽतिकठिनोऽतिमृदुरुत्सन्नोऽवसन्नोऽतिशीतोऽत्युष्णः कृष्णरक्तपीतशुक्लादीनां वर्णानामन्यतमवर्णो भैरवः पूतिपूयमांसशिरास्नायुप्रभृतिपूर्णः पूतिपूयास्राव्युन्मार्ग्युत्संग्यमनोज्ञदर्शनगंधोऽत्यर्थं वेदनावान्दाहपाकरागकण्डूशोफपिडिकोपद्रुतोऽत्यर्थं दुष्टशोणितास्रावी दीर्घकालानुबंधी चेति दुष्टव्रणलिंगानि ॥ ५ ॥

उनमें अति छोटामुख हो अति चौडा (फटा) ख हो अति कडा हो अति नरम हो जिसका मांस ऊपरको उठआया हो जिसका मांस अति नीचा पड गयाहो अति ठंढा हो अति गरम हो काला, लाल, पीला, सुपेद इनमेंसे कोई रंग हो भयानक हो दुर्गंधित पीप, मांस, शिरा, स्नायु आदिसे भराहो दुर्गंधित पीप बहती रहती हो उन्मार्गगामी हो ऊपरको गतिवाला हो जिसके देखने और गंधमें ग्लानि हो (बुरा मालूम हो) जिसमें अत्यंत पीडा रहे, जलन, पकजाना, सुरखी, खाज, शोथ और फुन्सी इन उपद्रवोंकरके संयुक्त हो दुष्ट रुधिर बहुत बहता हो बहुत कालका (पुराना) हो ये दुष्ट व्रणके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

तस्य दोषोच्छ्रायेण षट्त्वं विभज्य यथास्वं प्रतीकारे प्रयतेत ॥६॥

उसमें वातादि दोषोंमेंसे जिसका उद्रेक हो उस करके तथा व्रणके जो छः भेद हैं (जो सत्रहवें अध्यायमें आचुके हैं) उनके अनुसार विभाग करके (समझके) जैसा उचित हो वैसेही प्रतिकारमें प्रवृत्त हो यत्न करे ॥ ६ ॥

अत ऊर्ध्वं सर्वस्रावान्वक्ष्यामः ॥ ७ ॥ तत्र घृष्टासु छिन्नासु वा त्वक्षु स्फोटेषु भिन्नेषु विदारितेषु वा सलिलप्रकाशो भवत्यास्रावः किंचिद्विस्रः पीतावभासश्च ॥ ८ ॥

यहांसे अगाडी सब प्रकारके स्रावका वर्णन करते हैं ॥ ७ ॥ तहां घिसी या छिली हुई त्वचामेंसे तथा छिली या फूटीहुई फुन्सी (फालक) मेंसे कुछ पानीसा झिरता है तथा कुछ दुर्गंधित पीलासा पीप निकलता है (त्वचामें जलसा औ फुन्सीमें पीप निकलता है) ॥ ८ ॥

मांसगतः सर्पिःप्रकाशः सांद्रः श्वेतः पिच्छलश्च ॥ ९ ॥ शिरागतः सद्यश्छिन्नासु शिरासु रक्तातिप्रवृत्तिः पक्वासु च तोयनाडीभिरिव तोयागमनं पूयस्यास्रावश्चात्र तनुर्विच्छिन्नः पिच्छलोवलम्बी श्यावोऽवश्यायप्रतिमश्च ॥ १० ॥

मांसगत स्राव घृतके समान चिकना सुपेद गाढा होता है ॥ ९ ॥ शिराका स्राव यदि तत्काल कटी हो तो उसमेंसे बहुतसा रुधिर निकलता है और पकी हुईमेंसे जलनाडीके तुल्य जलका आगमन होता है वैसेही पीपका स्राव होता है और जो यहां अल्पछिन्न हो तो गाढा चिकना कफके समान कुछ काला स्राव होता है ॥ १० ॥

स्नायुगतः स्निग्धो घनः सिंहाणकप्रतिमः सरक्तश्च ॥ ११ ॥ अस्थिगतोऽस्थिन्यभिहते स्फुटिते भिन्ने दोषावदारिते वा दोषभक्षितत्वादस्थि निःसारं शुक्तिधौतमिवाभाति आस्रावश्चात्र मज्जमिश्रः सरुधिरः स्निग्धश्च ॥ १२ ॥

स्नायुका स्राव चिकना गाढा सिंहाणक (रक्तयुक्तघनकफ) के समान रुधिरयुक्त होता है ॥ ११ ॥ अस्थिगत स्राव हड्डीके टूटने फूटने भिन्न होने तथा दोषों

(सूत्र ६) षट्त्वे विभज्येति पूर्वोक्तसप्तदशाध्यायोक्तवातपित्तकफशोणितसन्निपातागतुजनिमित्ततो विभज्येति । (सूत्र-१०) अवश्यायः—कुज्झटिकायाम् ॥

करके बींध जानेसे दोषोंसे खाई हुई होजानेसे साररहित होजाती है उससे सीपके धोवनके समान भासित होता है और उससे मज्जामिश्रित रुधिर युक्त चिकना स्राव होता है ॥ १२ ॥

संधिगतः पीड्यमानो न प्रवर्त्तत आकुंचनप्रसारणोन्नमनविनमनप्रधावनोत्कासनप्रवाहणैश्च स्रवति । आस्रावश्चात्र पिच्छलोऽवलंबी सफेनपूयरुधिरोन्मथितश्च ॥ १३ ॥

संधिगत स्राव (संधिगत व्रण) दबानेसे नहीं स्रवता किंतु आकुंचन (अंग सकोडना), प्रसारण (फैलाना), उन्नमन (ऊपरको करना), विनमन (नीचेको करना), प्रधावन (चलना), उत्कासन (उकासना या जोरसे खांसना), प्रवाहण (किनछना या जोर लगाना) आदिके समय स्राव होता है और इसमेंसे गाढा अवलंबी (तार छुटनेवाला) और झागसहित पीप रुधिरमथित जैसा स्राव होता है ॥ १३ ॥

कोष्ठगतोऽसृङ्मूत्रपुरीषपूयोदकानि स्रवति ॥ १४ ॥ मर्मगतस्त्वगादिष्ववरुद्धत्वान्नोच्यते ॥ १५ ॥

कोष्ठगत घाव रुधिर, मूत्र, विष्ठा, पीप और जल इनको स्रवता है ॥ १४ ॥ मर्मगत घाव त्वचादिकसे अवरुद्ध होता है इससे उसका स्राव नहीं कहा गया १५ ॥

तत्र त्वगादिगतानामास्रावाणां यथाक्रमं पारुष्यश्यावावश्यायदधिमस्तुक्षारोदकमांसधावनपुलाकोदकसान्निभत्वानि मारुताद्भवंति ॥ १६ ॥

पूर्वोक्त जो व्रणोंके: आठ स्थान कहे हैं उनमेंसे मर्मके सिवाय जो शेष सात स्थान रहे उनमें यथाक्रम वातव्रण हो तो निम्नलिखित क्रमसे स्राव होता है जैसे केवल त्वचामें वातव्रण हो तो पारुष्य (त्वचा कडी पडजाना) कुरैंटसेही उतरना मांसमें वातव्रण हो तो श्याव (काले धूंधले) रंगका स्राव हो, शिरामें हो तो अवश्याय (कुहर) के समान, स्नायुमें हो तो दधिके समान, अस्थिमें हो तो मस्तु (दहीके जल) के समान तथा क्षारोदक और मांसके धोवन और पुलाकोदक (तुसधोवे जलके) समान यथाक्रमसे स्राव होता है ॥ १६ ॥

पित्ताद्गोमेदगोमूत्रभस्मशंखकषायोदकमाध्वीकतैलसन्निभत्वानि पित्तवद्रक्तादतिविस्रत्वं च ॥ १७ ॥

(सूत्र १६) पुलाकस्योदकम्-पुलाकः शस्यशून्ये भक्तगुलिकायां चेति । (श. स्तो.)

उक्त स्थानोंमें पित्तका व्रण हो तो निम्नलिखित क्रमसे स्राव होता है गोमेद वर्ण (गोमेदमणिके तुल्य), गोमूत्रके समान, भस्मके पानीके समान, शंखसमान, क्वाथोदक या कषाय रंगके जलके समान, माध्वीक (सुरा) के समान, तैलके समान स्राव होता है। रक्तका व्रण जो इन स्थानोंमें हो तो भी उसका स्राव ऊपर लिखे पित्तस्रावके समान जानना इतना विशेषहै कि उसकी गंधी अति कच्चे मांसके तुल्य हो ॥ १७ ॥

कफान्नवनीतकासीसमज्जपिष्टतिलनारिकेलोदकवराहवसासन्निभत्वानि ॥ १८ ॥

उन्हीं स्थानोंमें कफका व्रण हो तो मक्खन, कासीस, मज्जा, पिट्ठी, तिल और नारियलके जलके समान तथा शूकरकी चरबीके समान यथाक्रमसे स्राव होताहै १८

सन्निपातात्तिलनारिकेलोदकेर्वारुकरसकांजिकप्रसादारुकोदकप्रियंगुफलयकृन्मुद्गयूषसर्ववर्णत्वानीति ॥ १९ ॥ श्लोकौ भवतश्चात्र--

उन्हीं त्वचा, मांस, शिरा आदि स्थानोंमें सन्निपातव्रण हो तो क्रमसे तिल और नारियलके जल तथा ककडीके पानी, कांजीका स्वच्छ जल, अरुकोदक (कत्थेका जल), प्रियंगुफल (गुंद्रा) तथा मुद्गयूषके समान और सब वर्णका स्राव होता है ॥ १९ ॥ यहांपर दो श्लोक हैं-

असाध्य स्राव।

पक्वाशयादसाध्यस्तु पुलाकोदकसन्निभः। क्षारोदकनिभः स्रावो वर्ज्यो रक्ताशयात्स्रवन् ॥ २० ॥ आमाशयात्कलायांभोनिभश्च त्रिकसंधिजः। स्रावानेतान्परीक्ष्यादौ ततः कर्माचरेद्भिषक् ॥ २१ ॥

पक्वाशयसे पुलाकोदक (तुसधोवन) के समान स्राव असाध्य होता है और रक्ताशयके व्रणसे क्षारके पानीसमान स्राव वर्जित है तथा आमाशयके व्रणसे मटरके यूषतुल्य तथा त्रिक और संधिव्रणसे मटरयूषके समान स्राव असाध्य होताहै वैद्य प्रथम स्रावोंकी परीक्षा करके पीछे उसके शोधन और रोपणादिकी चिकित्सा करे ॥ २० ॥ २१ ॥

वातव्रणवेदना।

अत ऊर्ध्वं सर्वव्रणवेदना वक्ष्यामः ॥ २२ ॥ तोदनभेदनताडन-

(सूत्र २१) पूर्वार्द्धोऽस्य पूर्वोक्तेन वर्ज्यः इति पदेनान्वेतव्यः।

छेदनायमनमंथनविक्षेपणचुंचुमायननिर्दहनावभंजनस्फोटनवि-दारणोत्पाटनकम्पनविविधशूलविश्लेषणविकिरणपूरणस्तम्भन-स्वप्नावकुंचनांकुशिकाः संभवंति । अनिमित्तविविधवेदनाप्रा-दुर्भावो वा मुहुर्मुहुर्यत्रागच्छंति वेदनाविशेषास्तं वातिकमिति विद्यात् ॥ २३ ॥

इससे अगाडी सर्वप्रकारकी व्रणवेदनाको कहते हैं ॥ २२॥ तोदन (सूईसे भेदनके तुल्य पीडा) ताडन, (लकडीसे मारने समान), छेदन (काटनेके समान), आयमन (जैसे बंध खोला हो), मथन (जैसे विलोया जाता हो), विक्षेपण (जैसे अलग २ किया जाता हो), चुंचुमायन (चुम्चुमाट करना चमक), निर्दहन (जलन), अवभंजन (टुकडे २ से होना), स्फोटन (जैसे फूटा जाताहो), विदारण (जैसे विदीर्ण होता हो), उत्पाटन (जैसे उपाडा जाताहो), कंपन (हिलनासा) और विविधशूल (नाना प्रकारकी शूल), विश्लेषण (विभागसे होना), विकिरण (जैसे रेतीसे रेता जाता हो), पूरण (जैसे वायुसे भरासा हो), स्तंभन (अकडाव), स्वप्न (कभी त्वचा सुन्नसी हो जाय), अवकुंचन (इकट्ठासा होना), अंकुशिका (अंकुशकी हूल जैसे लगना) ये पीडा हों और विनाही कारण नानाप्रकारकी पीडा उत्पन्न हों और जिसमें बारबार वेदनाविशेषका आगमन हो उसे वायुका व्रण है ऐसा जानो ॥ २३ ॥

पित्तव्रणवेदना ।

ओषचोषपरिदाहधूमायनानि यत्र गात्रमंगारावकीर्णमिव पच्यते यत्र चोष्माभिवृद्धिः क्षते क्षारावसिक्तवच्च वेदनाविशेषास्तं पैत्तिकमिति विद्यात् । पित्तवद्रक्तसमुत्थं जानीयात् ॥२४ ॥

गरमी, चूषनेके समान पीडा, जलन (सर्वत्र आगसी लगना), धुवाँसा उठना तथा अग्निपर जैसे कोई वस्तु पकती हो ऐसा शरीर पकतासा मालूमहो और जहां जलन और गरमीकी वृद्धि होती जाय और यदि घाव हो तो खार या तेजाब डालनेकीसी पीडा हो उसे पित्तका व्रण समझना चाहिये । और रक्तविकारके व्रणकोभी पित्तव्रणके समान जानना ॥ २४ ॥

कफव्रणकी वेदना ।

कंडूर्गुरुत्वं सुप्तत्वमुपदेहोऽल्पवेदनत्वं स्तंभः शैत्यं च यत्र तं श्लैष्मिकमिति विद्यात् ॥ २५ ॥

खाज, भारीपन, सुप्तत्व (सुन्नतासी), लिप्तसा रहना, अल्पपीडा, स्तंभ (शिथिलता), ठंढापन ये जिसे हों उसे कफव्रण जानना ॥ २५ ॥

सन्निपातव्रण ।

यत्र सर्वासां वेदनानां समुत्पत्तिस्तं सान्निपातिकमिति विद्यात् ॥ २६ ॥

जहां सर्व पीडाओंका प्रादुर्भाव हो उसे सन्निपातका व्रण जानना चाहिये ॥ २६ ॥

व्रणोंके वर्ण ।

अत ऊर्ध्वं व्रणवर्णान्वक्ष्यामः ॥ २७ ॥ भस्मकपोतास्थिवर्णः परुषोऽरुणः कृष्ण इति मारुतजस्य । नीलः पीतो हारितः श्यावः कृष्णो रक्तः कपिलः पिंगल इति रक्तपित्तसमुत्थयोः। श्वेतः स्निग्धः पांडुरिति श्लेष्मजस्य । सर्ववर्णोपेतः सान्निपातिकस्य इति ॥ २८ ॥ भवति चात्र—

इसके अगाडी व्रणोंके २७ वर्णोंको कहते हैं जो भस्मके समान तथा कपोतके समान, अस्थिके समान वर्णवाला अथवा कपोतकी अस्थिके समान वर्ण हो, खुरदरा हो, लाल काला हो ऐसा वर्ण वातके व्रणोंका होता है । नीला, पीला, हरा, आसमानी, काला, सुरख, नारंजी, सुनहरा ये रंग रक्तव्रणके तथा पित्त व्रणके होते-हैं तथा कफके व्रणका वर्ण सुपेद चिकना कापूरी होताहै । तथा जिसमें सब व्रण मिश्रित हों वह सन्निपातका व्रण होता है ॥ २८ ॥ ॥ यहां श्लोक है—

न केवलं व्रणेषूक्तो वेदनावर्णसंग्रहः ॥
सर्वशोफविकारेषु व्रणवल्लक्षयेद्भिषक् ॥ २९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

यह जो पीडा और वर्णका संग्रह वर्णन कियागया है वह केवल व्रणोंहीमें नहीं कहा है किन्तु संपूर्ण शोफ (सूजन) के विकारोंमें भी वैद्य व्रणके समान पीडा वर्ण आदि जाने ॥ २९ ॥

इति पण्डितमुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थाने द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथातः कृत्याकृत्यविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे कृत्याकृत्यविधि (कृत्य और अकृत्यकी विधि) नामक अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

तत्र वयस्थानां दृढानां प्राणवतां सत्त्ववतां च सुचिकित्स्या व्रणाः । एकस्मिन्वा पुरुषे यत्रैतद्गुणचतुष्टयं तस्य सुखसाधनीयतमाः ॥ १ ॥

अवस्थावाले (तरुण) और दृढ (मजबूत) तथा बलवान् और धैर्य्यवान् मनुष्योंके घाव सुखपूर्वक चिकित्सा योग्य अर्थात् सुखसाध्य होते हैं । और जहां एक ही मनुष्यमें वे चारों गुण हों उसके व्रण तो अत्यंतही सुखसाध्य होते हैं ॥ १ ॥

तत्र वयस्थानां प्रत्यग्रधातुत्वादाशु व्रणा रोहंति । दृढानां स्थिरबहुमांसत्वाच्छस्त्रं समवचार्यमाणं शिरास्नाय्वादिविशेषान्न प्राप्नोति । प्राणवतां वेदनाभिघाताहारयंत्रणादिभिर्न ग्लानिरुत्पद्यते । सत्त्ववतां दारुणैरपि क्रियाविशेषैर्न व्यथा भवंति । तस्मात्तेषां सुखसाधनीयतमाः ॥ २ ॥ त एवं विपरीतगुणा वृद्धकृशाल्पप्राणभीरुषु द्रष्टव्याः ॥ ३ ॥

उनमेंसे तरुण मनुष्योंके बढती हुई धातु होनेसे शीघ्र घाव भरजाते हैं । दृढ मनुष्योंके अर्थात पुष्ट जनोंके स्थिर और अधिक मांस होनेसे उपयोग किया हुआ शस्त्र रोगों और नसों आदिको प्रायः नहीं काटता । और बलवान् मनुष्योंको पीडा और जखम तथा आहार और बंधन आदिसे ग्लानि उत्पन्न नहीं होती । तथ धीरवान्को दारुण क्रियाओंसे भी बहुत व्यथा नहीं मालूम होती इसीसे इनके व्रण अत्यन्त सुखसाध्य होते हैं ॥ २ ॥ तथा वृद्ध, कृश, निर्बल और कातर मनुष्योंके इससे विपरीत गुण होते हैं (और उनके व्रण इसीसे कष्टसाध्य होते हैं) ॥ ३ ॥

स्फिक्पायुप्रजननललाटगंडौष्ठपृष्ठकर्णफलकोषोदरजत्रुमुखाभ्यंतरसंस्थाः सुखरोपणीया व्रणाः ॥ ४ ॥

कंधा, गुह्य, लिंग, मस्तक, कनपटीके पास, होंठ, पीठ, कानकी लौ, कोष (अंडकोश), उदर, ग्रीवाका मूल और मुखके भीतरके व्रण सुखपूर्वक भरजाने योग्य होते हैं ॥ ४ ॥

अक्षिदंतनासाऽपांगश्रोत्रनाभिजठरसेवनीनितंबपार्श्वकुक्षिवक्षःकक्षास्तनसंधिभागगाः सफेनपूयरक्तानिलवाहिनोंतःशल्याश्च दुश्चिकित्स्याः ॥ ५ ॥

आंख, दांत, नासिका, भ्रूके निकट, कर्ण, नाभि, जठर (पक्वाशयके ऊपर सीवन, पांसू, कुक्षि, हृदय, काख, चूंची और संधिभाग इतने स्थानोंके व्रण और

जिससे झाग सहित पीप, रुधिर तथा वायु निकले तथा जिसके भीतर शल्य रह-गया हो वे व्रण दुश्चिकित्स्य अर्थात् दुःसाध्य होते हैं ॥ ५ ॥

अधोभागाश्चोर्ध्वभागनिर्वाहिणो रोमांतोपनखमर्मजंघास्थिसंश्रिताश्च । भगंदरमपि चांतर्मुखं सेवनीकुटकास्थिसंश्रितम् ॥ ६ ॥

भवति चात्र-

अधोभागसे होकर ऊर्ध्वभागकी ओर, वहन करनेवाले तथा जहां रोम न हों और नखके मूलमें होनेवाले और मर्मस्थानोंके व्रण और जंघा और हाडपर होनेवालें व्रणभी दुःसाध्य होते हैं और भगंदर भी जो अन्तर्मुख (भीतरको मुखवाला) हो और सीवन तथा कुटकास्थिसंश्रित हो तो दुःसाध्य होता है ॥ ६ ॥ यहां श्लोक है-

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ॥
व्रणाः कृच्छ्रेण सिद्ध्यंति येषां चापि व्रणे व्रणाः ॥ ७ ॥

कुष्ठी और विषयुक्त मनुष्योंके तथा शोष (क्षय) रोगवाले और मधुप्रमेहवाले मनुष्योंके व्रण कष्टसे सिद्ध होते हैं तथा व्रणमें व्रण होन लगें तो वे भी कष्टसाध्य होते हैं ॥ ७ ॥

अवपाटिकानिरुद्धप्रकाशसन्निरुद्धगुदजठरग्रंथिक्षतकृमयः प्रतिश्यायजाः कोष्ठजाश्च त्वग्दोषिणां प्रमेहिनां वा ये परिक्षतेषु दृश्यन्ते शर्करासिकतामेहवातकुंडलिकादंतशर्करा उपकुशकंठशालूकनिष्कोषणदूषिताश्च दन्तवेष्टविसर्पास्थिक्षतोरःक्षतव्रणग्रंथिप्रभृतयश्च याप्याः ॥ ८ ॥

अवपाटिका, निरुद्धप्रकाश, निरुद्धगुद, जठर, ग्रंथि, क्षत कृमि, प्रतिश्यायज कृमि और कोष्ठज कृमि तथा चर्म विकारवाले और प्रमेहवालोंके घावमें जो कृमि दिखाई दें तथा शर्करा और सिकताप्रमेह, वातकुंडलिका, दंतशर्करा, उपकुश, कंठशालूक, निष्कोषण दूषित, दंतवेष्ट, विसर्प, अस्थिका घाव, उरःक्षत, व्रणग्रंथि इनको आदि लेकर (ऐसेही औरभी) रोग याप्य (कष्टसाध्य) या कुछ काल औषधसे दबे रहें ऐसे होते हैं-(अवपाटिक, निरुद्धप्रकाश आदि रोगोंके लक्षण अगाडी वर्णन होंहींगे) ॥ ८ ॥

(सूत्र ८) 'क्षतकृमयः' इति तत्पुरुषसमासः पूर्वपदाना द्वंद्वः । प्रतिश्यायजाः कोष्ठजाश्च कृमयस्तथा त्वग्दोषिणां प्रमेहिनां क्षतेषु ये कृमयो दृश्यन्ते ते याप्या इत्यन्वयः ।

साध्या याप्यत्वमायांति याप्याश्चासाध्यतां तथा ॥
घ्नंति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावताम् ॥ ९ ॥

जो मनुष्य (ठीक ठीक) क्रिया नहीं करते उनके साध्य रोग याप्य होजाते हैं और याप्य असाध्यताको प्राप्त होजाते हैं और असाध्य होकर फिर प्राणोंका नाश कर देते हैं ॥ ९ ॥

यापनीयं विजानीयात्क्रिया धारयते तु यम् ॥ क्रियायां तु निवृत्तायां सद्य एव विनश्यति ॥ १० ॥ प्राप्ता क्रियां धारयंति याप्यव्याधितमातुरम् ॥ प्रपतिष्यदिवागारं विष्कंभः साधुयोजितः ॥ ११ ॥

जो ऐसा रोग होजाय कि जिसे क्रिया डाटे रक्खे और क्रियाके दूर होनेपर शीघ्रही रोगी मरजाय (वा फिर रोग होजाय) उसे याप्य जानो ॥ १० ॥ याप्य व्याधिके रोगीको क्रियाही थांबे रखती है नहीं तो जैसे लगी हुई बल्लीके निकाल लेनेसे घर गिर जाता है वैसेही ठीक क्रियाके छूटनेसे याप्य रोगी मरजाता है या फिर रोग होजाता है ॥ ११ ॥

अत ऊर्ध्वमसाध्यान्वक्ष्यामः ॥ १२ ॥ मांसपिंडवदुद्गताः प्रस्रेकिनोऽन्तःपूयवेदनावन्तोऽश्वापानवदुद्धतौष्ठाः । केचित्कठिना गोशृंगवदुन्नतमृदुमांसप्ररोहाः ॥ १३ ॥ अपरे दुष्टरुधिरास्राविणस्तनुपिच्छास्राविणो वा मध्योन्नताः केचिदवसन्नशुषिरपर्यन्ताः ॥ १४ ॥

इससे अगाडी असाध्योंका वर्णन करते हैं ॥ १२ ॥ मांसकी पिंडीके तुल्य ऊँचे बहुत बहनेवाले, जिनके भीतर पीप और पीडा बनी रहे घोडीके पीतेमें जैसे उसके ऊँचे होते हैं वैसे ऊँचे किनारे हों कोई कडे अधिक हों गौके सींगके तुल्य ऊँचा उठा हुआ कोमल मांसप्ररोह युक्त हो (तो असाध्य जानो) ॥ १३ ॥ और जिनसे दुष्टरक्त बहता रहे, थोडा २ गाढा २ मल बहता रहे जो बीचसे बहुत ऊँचा हो जिसके किनारोंपर कांठल पीडा और छिद्र हों ॥ १४ ॥

शणतूलवत्स्नायुजालवन्तो दुर्दर्शा वसामेदोमज्जामस्तुलुंगस्राविणश्च दोषसमुत्थाः ॥ १५ ॥ पीतासितमूत्रपुरीषवातवाहिनश्च कोष्ठस्थाः ॥ १६ ॥ क्षीणमांसानां च सर्वतो गतयश्चाणुमुखा

मांसबुद्बुदवन्तः सशब्दवातवाहिनश्च शिरःकंठस्थाः ॥ १७ ॥

शणके तंतु और रुईके समान नसोंका जाल जिसमें हो जो दीखनेमें बुरे हों वसा, चरबी, मज्जा मस्तुलुंग (नींबूके रस तुल्य या मस्तकस्नेह (भेजे) के तुल्य स्राववाले ऐसे दोषोत्थित व्रण असाध्य होते हैं ॥ १५ ॥ पीला, काला मल तथा मूत्र और विष्ठा तथा वायु जिनसे निकले ऐसे कोष्ठगत व्रण असाध्य होते हैं ॥१६॥ जिनका मांस क्षीण हो सब तरफ फैलनेवाले जिनके मुख अति छोटे हों जिसमें मांसके बुलबुलेसे हों जिसमें शब्दयुक्त वायु निकले ऐसे शिर और कण्ठके व्रण (घाव) असाध्य होते हैं ॥ १७ ॥

क्षीणमांसानां च पूयरक्तनिर्वाहिणोऽरोचकाविपाककासश्वासोपद्रवयुक्ताः ॥ १८ ॥ भिन्ने वा शिरःकपाले यत्र मस्तुलुंगदर्शनं त्रिदोषलिंगप्रादुर्भावः कासश्वासौ वा यस्येति ॥ १९ ॥ भवन्ति चात्र-

जिनका मांस क्षीण हो और जिनके पीप, रुधिर बहता हो तथा अरुचि हो और भोजनका परिपाक न हो तथा खांसी और श्वासके उपद्रवोंसे युक्त हो ऐसे व्रणीके घावभी असाध्य होते हैं ॥ १८ ॥ तथा शिर और कपालके फटजानेपर जहां मस्तककी मज्जा दीखने लगजाय तथा त्रिदोषके लक्षण उत्पन्न होजायँ अथवा खांसी और श्वास जिसके हों उसे असाध्य जाने ॥ १९ ॥ यहां श्लोक हैं-

वसां मेदोथ मज्जानं मस्तुलुंगं च यः स्रवेत् ॥ आगंतुस्तु व्रणः सिद्धयेन्न सिद्धयेद्दोषसंभवः ॥ २० ॥

जिस घावसे वसा, चरबी और मज्जा तथा मस्तकस्नेह: बहे वह यदि आगंतुक (शस्त्रादिकी चोटसे) हो तो सिद्ध हो सकता है और यदि वातादिक दोषोंसे शरीरहीसे उठा व्रण हो तो सिद्ध नहीं हो सकता ॥ २० ॥

अमर्मोपहिते देशे शिरासंध्यस्थिवर्जिते ॥ विकारो योनुपर्य्येति तदसाध्यस्य लक्षणम् ॥ २१ ॥

यह श्लोक गूढ है इसीसे माधवने कूटमुद्गरनामक क्लिष्टग्रंथमें इसेभी रक्खा है इसका अर्थ लोग कई तरहसे करते हैं जैसे जो व्रण मर्मस्थानोंसे दूर शिरा, संधि, अस्थिसे वर्जित हो और धातुओंमें व्याप्त हो सो असाध्य है (कूटमुद्गरके संस्कृत-

(सूत्र २१) अमर्मोपहिते शिरासंध्यस्थिवर्जिते देशे यो विकारोऽनुपर्येति तदसाध्यस्य लक्षणमित्यन्वयः । अनुपर्येतीत्यत्र न पर्येति इति वा पाठः ।

टीकाकार पं० श्रीकृष्ण ऐसाही लिखते हैं) परंतु यह ठीक नहीं क्योंकि प्रथम तो मूलमें धातुओंका यह नाम तक नहीं दूसरे यह कि मर्मस्थानों और शिरा, संधि, अस्थि इन स्थानोंमें व्रण असाध्य होता है न कि इनसे वर्जित स्थानोंमें प्रायः असाध्य होताहै इसीसे यह उपरोक्त अर्थ ठीक २ संगत नहीं होता तथा कई विद्वान् इस श्लोकका अर्थ इससे पृथक् दूसरी तरहसे करते हैं और इसका यह अर्थ ठीक है कि मर्मस्थानोंसे रहित और शिरा, संधि और अस्थिसे वर्जित स्थानोंपर जो विकार (व्रण) नहीं हो किंतु मर्मस्थानोंपर और शिरा, संधि तथा अस्थिमें जो विकार (व्रण) हो वही असाध्यका लक्षण है अर्थात् मर्मस्थान और शिरा तथा संधि और अस्थिमें व्रण होना असाध्यका लक्षण है ॥ २१ ॥

क्रमेणोपचयं प्राप्य धातूननुगतः शनैः ॥ न शक्य उन्मूलयितुं वृद्धो वृक्ष इवामयः ॥ २२ ॥ संस्थिरत्वान्महत्त्वाच्च धातूनां क्रमणेन च ॥ निहंत्यौषधवीर्याणि मंत्रान्दुष्टग्रहो यथा ॥ २३ ॥

जो व्रण क्रमसे बढकर धीरे धीरे धातुओंमें प्राप्त हो जाय वह सहजही शांत नहीं हो सकता जैसे बडा वृक्ष नहीं उखड सकता ॥ २२ ॥ बढाहुआ व्रण स्थिर होनेसे और बढजानेसे तथा धातुओंमें आक्रमण करनेसे औषधके गुणको नष्टकर देता है जैसे खोटा ग्रह मंत्रके प्रभावको नष्ट कर देता है ॥ २३ ॥

अतो यो विपरीतः स्यात्सुखसाध्यः स उच्यते ॥ अबद्धमूलः क्षुपको यद्वदुत्पाटने सुखम् ॥ २४ ॥ त्रिभिर्दोषैरनाक्रांतः श्यावौष्ठः पिडकीसमः ॥ अवेदनो निरास्रावो व्रणः शुद्ध इहोच्यते ॥२५॥

इन ऊपर कहेहुओंसे जो विपरीत व्रण होता है वह सुखसाध्य है जैसे सूक्ष्म जडका छोटा पौदा उखाडनेसे सहजही सुखसे उखड आता है ॥ २४ ॥ जो व्रण तीनों दोषोंसे आक्रांत न हो और ऊदे किनारे युक्त फुन्सीके समान हो जिसमें पीडा नहो बहुत झिराव नहो यह शुद्ध व्रणके लक्षण हैं ॥ २५ ॥

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यांताः क्लेदवर्जिताः ॥
स्थिराश्चिपिटिकावंतो रोहंतीति तमादिशेत् ॥ २६ ॥

जिसका रंग कपोतके समान और ऊपरसे (किनारे) चेप नहो (तर नहो) और करडा खुरंड आने लगे तब उसे जाने कि भरगया अच्छा होता है ॥ २६ ॥

रूढवर्त्मानमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम् ॥ त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं विनिर्दिशेत् ॥ २७ ॥ दोषप्रकोपाद्व्यायामादभिघातादजी-

र्णतः ॥ हर्षात्क्रोधाद्भयाद्वापि व्रणो रूढोपि दीर्य्यते ॥ २८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

जिसका मुह भरकर साफ हो ग्रंथि न हो सूजन न रहे पीडा नहो चर्मका रंगसे रंग मिलजाय और उँचाई निचाईमें इकसा होजाय उस व्रणको ठीक २ भरा और अच्छा हुआ समझे ॥ २७ ॥ वातादि दोष (जो शेष रहगये हों उनके) कोपसे जोर पडनेसे चोट लगजानेसे अजीर्णसे हर्षसे कोधसे अथवा भयसे अच्छा हुआ तुरंतका व्रण फिरभी फट वा पक जाया करता है इससे अच्छे हुए पीछेभी कुछ दिनें इन वातोंका बचाव करना चाहिये ॥ २८ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने त्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोध्यायः २४.

अथातो व्याधिसमुद्देशीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे व्याधिसमुद्देशीय (व्याधियोंके भेदका सम्यक् प्रकार उपदेश जिसमें हो ऐसे) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

द्विविधा व्याधयः शस्त्रसाध्याः स्नेहादिक्रियासाध्याश्च । तत्र शस्त्रसाध्येषु स्नेहादिक्रिया न प्रतिषिध्यते स्नेहादिक्रियासाध्येषु शस्त्रकर्म न क्रियते ॥ १ ॥

व्याधि दो प्रकारकी होती हैं कोई शस्त्रसाध्य और कोई स्नेहादिक्रियासाध्य यहां आदिशब्दसे क्वाथ, गुटी, वमन, विरेचनादि शस्त्रकर्मसे भिन्न सब क्रिया समझनी चाहिये । उनमेंसे शस्त्रसाध्य व्याधियोंमें स्नेहादि क्रियाओंसे सिद्धि नहीं होती तथा स्नेहादिक्रियासाध्यव्याधियोंमें शस्त्र कर्म नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥

अस्मिञ्छास्त्रे पुनः सर्वतंत्रसामान्यात्सर्वेषां व्याधीनां यथास्थूलमवरोधः क्रियते ॥२॥ प्रागभिहितं तद्दुःखसंयोगो व्याधिरिति ॥ तच्च दुःखं त्रिविधमाध्यात्मिकमाधिभौतिकमाधिदैविकमिति तत्तु सप्तविधे व्याधावुपनिपतति ॥ ३ ॥

इस धान्वंतरीय सुश्रुतसंहितामें सब तंत्रोंकी सामान्यता होनेसे सभी व्याधियोंका यथायोग्य विस्तारपूर्वक अवरोध किया जाता है (रोकनेका यत्न किया जाता है) ॥ २ ॥ पहले वर्णन किया जा चुका है कि इस (पुरुषशरीर) से दुःखोंका संयोग होना व्याधि कहाजाता है सो वह दुःख तीन प्रकारसे होता है एक

आध्यात्मिक, दूसरे आधिभौतिक, तीसरे आधिदैविक सो वही दुःख सात प्रकारकी व्याधियोंके रूपमें आकर पड़ता है (प्रगट होता है) ॥ ३ ॥

ते पुनः सप्तविधा व्याधयः । तद्यथा । आदिबलप्रवृत्ता जन्मबलप्रवृत्ता दोषबलप्रवृत्ताः संघातबलप्रवृत्ताः कालबलप्रवृत्ता दैवबलप्रवृत्ताः स्वभावबलप्रवृत्ता इति ॥ ४ ॥

फिर वे व्याधि सात प्रकारकी होती हैं । जैसे (१) आदिबलप्रवृत्त (२) जन्मबलप्रवृत्त (३ दोषबलप्रवृत्त (४) संघातबलप्रवृत्त (५) कालबलप्रवृत्त (६) दैवबलप्रवृत्त (७) स्वभावबलप्रवृत्त ॥ ४ ॥

तत्राऽऽदिबलप्रवृत्ता ये शुक्रशोणितदोषान्वयाः कुष्ठाऽर्शःप्रभृतयस्तेऽपि द्विविधा मातृजाः पितृजाश्च ॥ ५ ॥

उनमेंसे आदिबलप्रवृत्त वे होती हैं जो शुक्र अथवा शोणितके दोषसे उत्पन्न हों जैसे कुष्ठ बवासीर आदि वे भी दो प्रकारकी होती हैं एक माताके रजोदोषसे दूसरी पिताके वीर्यदोषसे ॥ ५ ॥

जन्मबलप्रवृत्ता ये मातुरपचारात्पंगुजात्यंधबधिरमूकामिन्मिनवामनप्रभृतयो जायन्ते तेऽपि द्विविधा रसकृता दौर्हृदापचारकृताश्च ॥ ६ ॥

जन्मबलप्रवृत्त वे होती हैं जो माताके दुराचारसे हों जैसे पंगुला, जन्मांध-बहरा, गूंगा, हकला, बौना आदि जो जन्मसे पैदा हों (जन्मसेही जो रोग शरीरके संगही पैदा हों) वे भी दो प्रकारके होते हैं एक रसकृत अर्थात् माता दूषित आहार करे उसके रससे गर्भगत शरीरमें रोग उत्पन्न हो जाय दूसरे दौर्हृदके अपचारकृत अर्थात् गर्भिणीकी इच्छा जिस वस्तुपर हो वह न मिले या विपरीत मिले उससे गर्भमें उपाधि हो ॥ ६ ॥ (इसके सिवाय गर्भिणीके क्रोध, शोक, भय आदिसेभी गर्भमें विकार होता है वहभी जन्मबलप्रवृत्तही होता है)

दोषबलप्रवृत्ता य आतंकसमुत्पन्ना मिथ्याहाराचारभवाश्च तेऽपि द्विविधा आमाशयसमुत्थाः पक्वाशयसमुत्थाश्च । पुनश्च द्विविधाः शारीरा मानसाश्च त एते आध्यात्मिकाः ॥ ७ ॥

(सूत्र ७) केचित् क्षुत्पिपासादीना स्वभावबलप्रवृत्तानामाधिदैविकानामाध्यात्मिका इति ब्रुवति,वस्तुतस्तु ते दैवमधिकृत्य वर्ततेऽत आधिदैविका एवेति सिद्धांतः । डल्हनाचार्येणापि चैतदंगीकृतम् ।

दोषबलप्रवृत्त वे रोग होते हैं जो वातादिदोषोंके आतंकसे (कोपसे) और मिथ्या आहार विहार करनेसे उत्पन्न हों वे भी दो प्रकारके हैं एक आमाशयसे उत्पन्न हुए दूसरे पक्वाशयसे उत्पन्न हुए (आमाशयके रोग छर्दि, अरुचि आदि और पक्वाशयके अतिसार, प्रवाहिका आदि) ये दुःख फिर दोप्रकारके होते हैं एक शारीरक दूसरे मानस (इनका वर्णन पहले अध्यायमें आचुका है) ऊपर कहेहुए आदिबलप्रवृत्तको आदिले यहांतक जो कहे ये सब आध्यात्मिक कहाते हैं ॥ ७ ॥

संघातबलप्रवृत्ता य आगंतवो दुर्बलस्य बलवद्विग्रहात्तेपि द्विविधा शस्त्रकृता व्यालादिकृताश्च । एते आधिभौतिकाः ॥ ८ ॥

संघातबलप्रवृत्त उन आगंतुक व्याधियोंको कहते हैं जो दुर्बलको बलवान्के लडने आदिसे होजाय वह भी दोप्रकारकी है एक शस्त्रकृत (लाठी, पत्थर, तीर, तलवार आदि चोट लगजाय) दूसरे व्यालादिकृत (सर्प, वृश्चिकके डसने, सिंह व्याघ्रादिके विदीर्णकरने आदिसे हो) इन्हें आधिभौतिक कहते हैं ॥ ८ ॥

कालबलप्रवृत्ता ये शीतोष्णवातवर्षाप्रभृतिनिमित्तास्तेपि द्विविधा व्यापन्नर्तुकृता अव्यापन्नर्तुकृताश्च ॥ ९ ॥

कालबलप्रवृत्त वे रोग हैं जो सरदी, गरमी, वायु, वर्षा आदिके कारणसे होते-हैं वे भी दो प्रकारके होते हैं एक विकृतऋतुके कारणसे हों दूसरे यथार्थ ऋतुके कारणसे हों ॥ ९ ॥

दैवबलप्रवृत्ता ये देवद्रोहादभिशस्तका अथर्वकृता उपसर्गकृताश्च तेऽपि द्विविधा विद्युदशनिकृताः पिशाचादिकृताश्च पुनश्च द्विविधाः संसर्गजा आकस्मिकाश्च ॥ १० ॥

दैवबलप्रवृत्त वे व्याधि हैं जो परिहास वैर परस्त्रीगमनेच्छा यादृग्वैरनिमित्तक अथर्वण वेद करके या उपसर्ग मंत्रोंकरके मारणोच्चाटनादिरूप क्रियात्मक पीडा हो । वहभी दो प्रकारकी है (१) बिजली वज्र आदिसे हो (२) पिशाच भूतादि-कृत हो । फिर वहभी दो प्रकारकी है, एक संसर्गज दूसरी अकस्मात् ॥ १० ॥

स्वभावबलप्रवृत्ता क्षुत्पिपासाजरामृत्युनिद्राप्रभृतयस्तेपि द्विविधाः कालकृता अकालकृताश्च तत्र परिरक्षणकृताः कालकृता अपरि-रक्षणकृता अकालकृता एते आधिदैविकाः तत्र सर्वव्याध्यवरोधः ११

स्वभावबलप्रवृत्त वे व्याधि हैं जो क्षुधा, तृषा, बुढापा, मृत्यु, निद्रा आदिमें होती हैं वे भी दो प्रकारकी हैं १ कालकृत, २ अकालकृत उनमेंसे सम्यक् रक्षा

करनेपर भी हों सो कालकृत और जो रक्षा न करनेपर हों वे अकालकृत होते हैं ये कालबलप्रवृत्तसे आदिले यहांतक आधिदैविक कहलाते हैं तहां सब प्रकारकी व्याधियोंका अवरोध कर्तव्य है ॥ ११ ॥

सर्वेषां व्याधीनां च वातपित्तश्लेष्माण एव मूलं तल्लिंगत्वाद्दृष्टफलत्वादागमाच्च तथा हि कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितं सत्त्वरजस्तमांसि न व्यतिरिच्यंते एवमेव कृत्स्नं विकारजातं विश्वरूपेणावस्थितमव्यतिरिच्य वातपित्तश्लेष्माणो वर्तते ॥१२॥

समस्त व्याधियोंका मूल कारण वायु, पित्त और कफही हैं क्योंकि रोगोंमें उनके लक्षण होनेसे तथा वातादिके शांतिकारक पदार्थोंसे रोगशांतिरूप दृष्टफल होनेसे तथा शास्त्रसे भी यही प्रतीत होता है जैसे संपूर्ण विश्वरूप करके स्थित हुआ मायाका विकारजात जगत् सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीनों गुणोंसे पृथक् नहीं होसकता वैसेही समस्त विश्वरूप करके अवस्थित प्रकृति, विकारजात जगत्, रोग, वायु, पित्त और कफ इस दोषत्रयसे भी पृथक् नहीं रह सकते ॥१२॥

दोषधातुमलसंसर्गादायतनविशेषान्निमित्ताच्चैषां विकल्पा भवंति। दोषदूषितेष्वत्यर्थं धातुषु संज्ञा क्रियंते रसजोऽयं शोणितजोऽयं मांसजोऽयं मेदोजोऽयमस्थिजोऽयं मज्जजोऽयं शुक्रजोऽयं व्याधिरिति ॥ १३ ॥

वातपित्तकफादि दोषोंका रस रक्तआदि धातुओं और मलसे संसर्ग होनेसे तथा स्थान विशेषसे और निमित्त (कारण भेद)से उनमें भेद होजाते हैं और दोषों (वातादि) करके अत्यन्त दूषित धातुओंमें (रोगोंकी) संज्ञा की जाती है कि यह रोग रसज (रससे पैदा हुआ) है यह रक्तज है यह मांसज है यह मेदसे है यह अस्थिसे यह मज्जासे हुआ है यह वीर्यसे है ॥ १३ ॥

रससे होनेवाले रोग ।

तत्राऽन्नाऽश्रद्धाऽरोचकाऽविपाकाऽङ्गमर्दज्वरहृल्लासतृप्तिगौरवहृत्पांडुरोगमार्गोपरोधकार्श्यवैरस्यांगसादाऽकालवलीपलितदर्शनप्रभृतयो रसदोषजा विकाराः ॥ १४ ॥

उनमेंसे अन्नमें श्रद्धा न होना, अरुचि, पचाव न होना (अजीर्ण), अङ्गमर्द, ज्वर, हृल्लास (उकलाई), तृप्ति, भारीपन, हृद्रोग, पांडु, मार्गोंका अवरोध,

कृशता, मुहका स्वाद बिगडना, अंगोंका थकान, वे अवस्था त्वचामें गुलझर्टी पडना, बाल सुपेद होजाना ये विकार रसके दोषसे होते हैं ॥ १४ ॥

रक्तदोषके रोग ।

कुष्ठविसर्पपिडिकामशकनीलिकातिलकालकन्यच्छव्यंगेन्द्रलुप्त-प्लीहविद्रधिगुल्मवातशोणितार्शोऽर्बुदांगमर्दासृग्दररक्तपित्तप्रभृतयो रक्तदोषजा गुदमुखमेढ्रपाकाश्च ॥ १५ ॥

कुष्ठ, विसर्प, फुन्सी, मस्से, नीलिका (त्वचा काली पडना), तिलकालक, चकत्ते, झाई, इंद्रलुप्त (बालोंकी जड गल जाना), प्लीह, विद्रधि, गुल्म, वातरक्त, बवासीर, रसोली, अंगोंका टूटना, असृग्दर (त्वचासे स्वल्प खुजानेमें रक्त निकलना या सुरखी आजाना), तथा रक्तपित्तादि ये विकार रुधिरके दोषसे होते हैं तथा गुदा, मुख, लिंगका पाक भी ॥ १५ ॥

मांसदोषज रोग ।

अधिमांसार्बुदार्शोऽधिजिह्वोपजिह्वोपकुशगलशुंडिकालजीमांससंघातौष्ठप्रकोपगलगण्डगंडमालाप्रभृतयो मांसदोषजाः ॥ १६ ॥

अधिमांस (किसी जगह मांस बढजाय), अर्बुद (मांसार्बुद), अर्श, अधिजिह्व और उपजिह्व (ये दोनों जिह्वारोगोंमें सलक्षण वर्णन होंगे), उपकुश (दंतरोग), गलशुंडी (तालुरोग), अलजी (एक प्रकारका शूकरोग), मांससंघात और ओष्ठप्रकोप (होठ पाक), गलगंड और गंडमाला आदि ये रोग मांसके दोषसे होते हैं ॥ १६ ॥

मेदोदोषके विकार ।

ग्रंथिवृद्धिगलगंडार्बुदमेदोजौष्ठप्रकोपमधुमेहातिस्थौल्यातिस्वेदप्रभृतयो मेदोदोषजाः ॥ १७ ॥

ग्रंथि (गांठ), अंडवृद्धि, गलगंड, अर्बुद, मेदोज, ओष्ठप्रकोप, मधुप्रमेह, अतिस्थूलता, अतिपसीना इत्यादि विकार मेदके दोषसे होते हैं ॥ १७ ॥

अस्थिदोषके विकार ।

अध्यस्थ्यधिदन्तास्थितोदशूलकुनखप्रभृतयोऽस्थिदोषजाः ॥ १८ ॥

कहीं हाड बढजाना दातोंकी जडमें और दांत होना, अस्थियोंका दरद और शूल तथा नखूनोंका बिगडना आदि विकार अस्थिदोषसे होते हैं ॥ १८ ॥

मज्जादोषजनित विकार ।

तमोदर्शनमूर्च्छाभ्रमपर्वगौरवस्थूलमूलोरुजंघानेत्राभिस्यंदप्रभृतयो मज्जदोषजाः ॥ १९ ॥

अंधेरी आना, मूर्च्छा, भ्रम, जोड मोटे होना, जांघकी जड स्थूल होना तथा जंघाकी स्थूलता, नेत्रअभिस्यंद आदि विकार मज्जाके दोषसे होते हैं ॥ १९ ॥

शुक्रदोषजन्य विकार ।

क्लैब्याप्रहर्षशुक्राश्मरीशुक्रमेहशुक्रदोषादयश्च तद्दोषजाः ॥ २० ॥

नपुंसकता, स्त्रीसंगमें हर्ष न होना, शुक्रकी पथरी, शुक्रप्रमेह तथा वीर्यविकार आदि शुक्रके दोषसे होते हैं ॥ २० ॥

त्वग्दोषाः सङ्गोऽतिप्रवृत्तिर्वा मलायतनदोषाः । इंद्रियाणामप्रवृत्तिरयथाप्रवृत्तिर्वेन्द्रियायतनदोषाः । इत्येवं समास उक्तो विस्तरनिमित्तानि चैषां प्रतिरोगं वक्ष्यामः ॥ २१ ॥ भवति चात्र—

त्वचाके दोष मलोंका अवरोध या अतिप्रवृत्ति हो तो मलाश्रित दोष होते हैं। तथा इन्द्रियें अपने कार्योंमें प्रवृत्त न हों या अन्यथा प्रवृत्त हों तो इन्द्रियाश्रित दोष समझो । यह संक्षेपतासे कहा गयाहै विस्तार और निमित्त (कारण जिस २ आहार विहारादिसे जो रोग पैदा हों उन्हें) प्रत्येक रोगके साथ अगाडी निदान और उत्तरतंत्रमें वर्णन करेंगे ॥ २१ ॥ यहां श्लोक है—

कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् ॥ यत्र संगश्च वैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते ॥ २२ ॥

शरीरमें विचरनेवाले कुपित दोषोंका अपनी विगुणतासे जहां अवरोध (रुकाव) हो उसी स्थानमें व्याधि उत्पन्न हो जाती है ॥ २२ ॥

भूयोऽत्र जिज्ञास्यं किं वातादीनां ज्वरादीनां नित्यः संश्लेषः परिच्छेदो वेति ॥ २३॥ यदि नित्यः संश्लेषः स्यात्तर्हि नित्यातुराः सर्व एव प्राणिनः स्युः । अथाप्यन्यथा वातादीनां ज्वरादीनां चान्यत्र वर्तमानानामन्यत्र लिंगं न भवतीति कृत्वा यदुच्यते वातादयो ज्वरादीनां मूलानीति तन्न अत्रोच्यते ॥ २४ ॥

फिर अब यहां यह जानने योग्य है कि वातादि दोषोंका और ज्वरादिरोगोंका नित्य सम्बन्ध है या परिच्छेद ॥ २३ ॥ यदि नित्य सम्बन्ध हो तो समस्त प्राणि

मात्र सदा रोगी ही होते और यदि परिच्छेद हो तो वर्तमान वातादि दोषों और ज्वरादि रोगोंका अन्यत्र पृथक् पृथक् चिह्न नहीं होता और ऐसी कल्पना करके कहा जाय कि वातादि दोष ज्वरादि रोगोंके मूल कारण हैं तोभी ऐसा नहीं इस पर कहते हैं ॥ २४ ॥

दोषान्प्रत्याख्याय ज्वरादयो न भवंति । अथ च न नित्यः संबंधो यथा हि विद्युद्वाताशनिवर्षाण्याकाशं प्रत्याख्याय न भवंति । सत्यप्याकाशे कदाचिन्न भवंति । अथ च निमित्ततस्तत एवोत्पत्तिरिति तरंगबुद्बुदादयश्चोदकविशेषा एव ॥ २५ ॥ वातादीनां ज्वरादीनां च नाप्येवं संश्लेषो न परिच्छेदः शाश्वतिकः । अथ च निमित्तत एवोत्पत्तिरिति ॥ २६ ॥ भवति चात्र—

दोषों (वातादिकों) को प्रत्याख्यान (पृथक् प्रगट) करके ज्वरादिक नहीं होते और न इनका नित्यसंबंध है किंतु जैसे बिजली, वायु, वज्र, वर्षा इत्यादिक यद्यपि आकाशको पृथक् प्रगट करके नहीं होते पर तो भी आकाशके सदा वर्तमान होनेपर भी कभी २ ये नहीं होते (ऐसे वातादिकोंके शरीरमें सदा होनेपर भी कभी रोग नहीं होते) और निमित्तसे वहांही उत्पन्न होजाते हैं जैसे लहरी, बुलबुले आदि जलका विकार हैं पर वायुविलोडनादि निमित्त पाकर होते हैं (वे निमित्त शुद्ध स्थित जलमें नहीं होते ऐसेही विना निमित्त शुद्ध यथावस्थित वातादि दोषोंसे रोग नहीं होते) ॥ २५ ॥ सुतरां वातादिक दोषोंका और ज्वरादि रोगोंकाभी परस्पर इसी प्रकार न तो नित्यसंबंध है न निरंतर परिच्छेद वस्तुतः निमित्तसे (निमित्त पाकर) उत्पन्न होजाते हैं जैसे हिलाने, विलोने आदि निमित्तोंसे जलमें लहरी और बुलबुले उत्पन्न होजाते हैं वैसेही कुत्सित आहार विहाररूप निमित्त पाकर वातादिमें ज्वरादिरोग उत्पन्न होजाते हैं ॥२६॥ यहां श्लोक है—

विकारपरिमाणं च संख्या चैषां पृथक्पृथक् ।
विस्तरेणोत्तरे तंत्रे सर्वा बाधाश्च वक्ष्यते ॥ २७ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

रोगोंका परिमाण तथा उनकी संख्या और विस्तार पूर्वक न्यारे न्यारे सब रोग उत्तरतंत्रमें कहे जायंगे (निदान और चिकित्सा स्थानमें भी वर्णन होंगे परंतु शेष रहे सब उत्तरतंत्रमें कहे जायंगे) ॥ २७ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा०टी० सूत्रस्थाने चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

(सूत्र २५) प्रत्याख्याय प्रकटीकृत्य परित्यज्य वा । (सूत्र २६) नित्यः संश्लेषः सर्वदा अपृथक्त्वम्, यथा सूर्यातपयोः । परिच्छेदो–विश्लेषः, यथा घटकुलालयोः ।

पंचविंशोऽध्यायः २५.

अथातोऽष्टविधशस्त्रकर्मीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे आठ प्रकार शस्त्रकर्मके विषयमें अध्याय वर्णन करते हैं—

छेद्यरोग ।

छेद्या भगंदरा ग्रंथिः श्लैष्मिकस्तिलकालकः ॥ व्रणवर्त्मार्बुदा-न्यर्शश्चर्मकीलोऽस्थिमांसगम् ॥ १ ॥ शल्यं जतुमणिर्मांससंघातो गलशुंडिका ॥ स्नायुमांसशिराशोथो वल्मीकं शतपोनकः ॥ अध्रु-वश्चोपदंशाश्च मांसकंद्यधिमांसकः ॥ २ ॥

ये छेदन करने योग्य हैं भगंदर, कफकी गांठ, तिलकालक (एक प्रकारका लिंगरोग), व्रणमार्ग, अर्बुद, ववासीरके मस्से, चर्मकीलक, अस्थि और मांसगत शल्य, जतुमणि, मांससंघात, गलशुंडी, स्नायु और मांसशिराओंका वल्मीक रोग तथा शतपोनक और अध्रुव, उपदंश, मांसकंदी तथा अधिमांस इतने रोगोंमें यदि शस्त्र कर्म करना हो तो छेद्य कर्म्म अर्थात् छेदन करना योग्य है ॥ १ ॥ २ ॥

भेद्यरोग

भेद्या विद्रधयोऽन्यत्र सर्वजाद्ग्रन्थयस्त्रयः ॥ आदितो ये विसर्पाश्च वृद्धयः सविदारिकाः ॥ ३ ॥ प्रमेहपिडिका शोफस्तनरोगा-वमन्थकाः ॥ कुम्भीकानुशयी नाड्यो वृन्दौ पुष्करिकाऽलजी ॥४॥ प्रायशः क्षुद्ररोगाश्च पुप्पुटौ तालुदंतजौ ॥ तुंडिकेरी गिलायुश्च पूर्वं ये च प्रपाकिनः ॥ वस्तिस्तथाश्मरीहेतोर्मेदो-जा ये च केचन ॥ ५ ॥

इतने रोग भेद्य अर्थात् भेदन करने योग्य हैं सन्निपातसे अन्यत्र सब विद्रधि, तीनों प्रकारकी ग्रंथि, आरंभसे सब प्रकारके विसर्प और वृद्धिरोग तथा विदारिका ॥ ३॥ प्रमेहपिडिका, शोथ, चूचीके रोग, अवमंथ, कुंभिका, अनुशयी, नाडीरोग, दोनों प्रकारके वृंदरोग (१ वृंद २ महावृंद), पुष्करिका और अलजी ॥४॥ और प्रायः क्षुद्ररोग और दोनों प्रकारके पुप्पुट—तालुज और दंतज तथा तुंडकेरी और गिलायु तथा पहलेहीसे पकजानेवाले शोथादिरोग अश्मरीके निमित्त वस्ति और कई मेदोरोग (इनमें यदि शस्त्रकर्मकी आवश्यकता हो तो भेदनकर्म करना चाहिये)५

(सूत्र १) श्लैष्मिको ग्रंथिः । अस्थिमांसगं शल्यम् । (सूत्र ५) अश्मरीहेतोः वस्तिर्भेद्या चतुर्थे पंचमे श्लोके च भेद्या इति पूर्वेणान्वयः ।

लेख्यरोग ।

लेख्याश्चतस्रो रोहिण्यः किलासमुपजिह्विका ॥ मेदोजो दंतवैदर्भो ग्रंथिवर्त्माधिजिह्विका ॥ अर्शांसि मंडलं मांसकंदी मांसोन्नतिस्तथा ॥ ६ ॥

इतने रोग लेख्य अर्थात् लेखन करने (खुरचने) योग्य होते हैं चारों प्रकारकी रोहिणी, किलास, उपजिह्व, मेदोज (व्रणमें मेदोत्पन्नरोग), दंतवैदर्भ, ग्रंथिवर्त्मा, अधिजिह्व, बवासीर, मण्डल (कुष्ठ), मांसकंदी तथा मांसोन्नति (मांस ऊँचा होना) इन रोगोंमें शस्त्रकर्म करना हो तो लेखन करना चाहिये ॥ ६ ॥

वेध्य और एष्यरोग ।

वेध्याः शिरा बहुविधा मूत्रवृद्धिर्दकोदरम् । एष्या नाड्यः सशल्याश्च व्रणा उन्मार्गिणश्च ये ॥ ७ ॥

बहुत प्रकारकी शिरा (नसें), मूत्रवृद्धि तथा जलोदर ये रोग वेध्य अर्थात् वेधन करने योग्य हैं इनमें शस्त्रकर्मकी आवश्यकता हो तो वेधन करना (वींधना) उचित है । शल्यसे युक्त सब नाडी उन्मार्गवाले व्रण ये एष्य अर्थात् एषण करने योग्य हैं ॥ ७ ॥

आहार्याः शर्करास्तिस्रो दन्तकर्णमलोऽश्मरी ॥ शल्यानि मूढगर्भाश्च वर्चश्च निचितं गुदे ॥ ८ ॥

इतने विकार आहार्य (आहरण करने योग्य) होते हैं तीनों प्रकारकी मूत्रशर्करा तथा दांत और कानका मैल, पथरी, सब प्रकारके शल्य और मूढगर्भ तथा गुदामें जमा हुआ विष्ठा इन्हें आहरण करना (किसी यंत्र या शस्त्रसे खुरच कर या समेटकर या खींचकर निकालना) चाहिये ॥ ८ ॥

स्राव्या विद्रधयः पंच भवेयुः सर्वजादृते ॥ कुष्ठानि वायुः सरुजः शोफो यश्चैकदेशजः ॥ ९ ॥ पाल्यामयाः श्लीपदानि विषजुष्टं च शोणितम् ॥ अर्बुदानि विसर्पाश्च ग्रन्थयश्चादितस्तु ये ॥१०॥ त्रयस्त्रयश्चोपदंशाः स्तनरोगा विदारिकाः ॥ शौषिरो गलशालूकं कंटका कृमिदन्तकः ॥ ११ ॥ दंतवेष्टः सोपकुशः शीतादो दन्तपुप्पुटः ॥ पित्तासृक्कफजाश्चौष्ठ्याः क्षुद्ररोगाश्च भूयशः ॥१२॥

(सूत्र ७) एष्या एषणीया लोहशलाकादिना अंतरन्वेषणीया ज्ञापनीया । (सूत्र १०) आदितस्त्रयो ग्रथय इति श्लोकद्वयेनान्वयः । द्वादशपर्यंतेषु पद्येषु स्राव्या भवेयुरिति पूर्वोक्तेनान्वयः ।

इतने रोग स्राव्य अर्थात् मल रक्तादि चुवाने योग्य होते हैं सन्निपातकी विद्रधिके सिवाय (सब प्रकारकी) पांचों विद्रधि तथा कुष्ठ, शूलयुक्त वायु, एक जगह उपजा हुआ सोजा ॥ ९ ॥ कर्णपालीके रोग श्लीपद, विषयुक्त रक्त, अर्बुद, विसर्प, ग्रंथि तथा आरम्भमें जो तीनों भांतिकी ग्रंथि हों जायँ वे ॥ १० ॥ सब प्रकारका उपदंश, स्तनरोग, विदारिका, शौषिर तथा गलशालूक, कंटक, कृमिदंत ॥ ११ ॥ दंतवेष्ठ, उपकुश, शीताद, दंतपुप्पुट, तथा पित्त, रुधिर और कफके ओष्ठरोग और बहुतसे क्षुद्ररोग ॥ १२ ॥

सीव्या मेदःसमुत्थाश्च भिन्नाः सुलिखिता गदाः ॥ सद्योव्रणास्तथा चैवं चलसंध्यव्यपाश्रयाः ॥१३॥ न क्षाराग्निविषैर्जुष्टा न वा मारुतवाहिनः ॥ नांतर्लोहितशल्याश्च तेषु सम्यग्विशोधनम् ॥१४॥

इतने रोग (व्रण) सीमने योग्य होते हैं जो घाव मेदसे उत्पन्न हुए हों तथा भिन्न (फटे हुए घाव) सुलिखित (जो बहुत लेखन किये हों) ऐसे रोग और सद्योव्रण (सुरक्तके कटे हुए घाव) तथा चलायमान संधियोंके आश्रित जो घाव हों ॥ १३ ॥ इतने व्रण सीमने योग्य नहीं होते जो क्षार अग्नि और विष करके जुष्ट हों तथा जो पवनवाही हों तथा जिनके भीतर (दुष्ट) रुधिर तथा शल्य हो इन्हें सीवे नही किंतु इनको अच्छेप्रकार शोधन करे ॥ १४ ॥

पांशुरोमनखादीनि चलमस्थिभवं च यत् ॥
आहृतानि यतोऽमूनि पाचयेयुर्भृशं व्रणम् ॥ १५ ॥

धूलि, रोम (बाल), नखून आदिक वस्तु तथा चलायमान (खंडित) अस्थि इन्हें व्रणसे खूब शुद्ध करना चाहिये यदि ये व्रणसे नहीं निकाले जायँ तो व्रणको पका देते हैं ॥ १५ ॥

रुजश्च विविधाः कुर्युस्तस्मादेतान्विशोधयेत् ॥ १६ ॥ ततो व्रणं समुन्नम्य स्थापयित्वा यथास्थितम् । सीव्येत्सूक्ष्मेण सूत्रेण वल्कलेनाश्मंतकस्य वा ॥ शणजक्षौमसूत्राभ्यां स्नाय्वा बालेन वा पुनः ॥ १७ ॥

और नानाप्रकारकी पीडा करते हैं इस लिये इन धूलि आदिको अवश्यमेव शोधन करना चाहिये ॥१६॥ फिर व्रणका उन्नमन (ऊंचा) करके और यथावस्थित स्थापन करके (जोड मिलाकर) महीन डोरेसे जो अश्मंतके वल्कलका हो अथवा सणका या रेशमका डोरा हो उससे अथवा (स्नायु) तांत या बालसे सीमदे ॥ १७ ॥

(सूत्र १४) क्षाराग्निविषैर्जुष्टा मारुतवाहिनो अंतर्लोहितशल्या न सीव्याः किंतु तेषां शोधनं कार्यम् ।

मूर्वागुडूच्यितानैर्वा सीव्येद्वेल्लितकं शनैः ॥ सीव्येद्गोफणिकां वापि सीव्येद्वा तुन्नसेवनीम् ॥ १८ ॥ ऋजुग्रंथिमथो वापि यथायोगमथापि वा । देशेऽल्पमांसे संधौ च सूचीवृत्तांगुलद्वयम् ॥ १९ ॥ आयता त्र्यंगुला त्र्यस्रा मांसले वापि पूजिता ॥ धनुर्वक्रा हिता मर्मफलकोशोदरोपरि ॥ २० ॥

अथवा मूर्वा या गिलोयके तंतुओंसे सीमना चाहिये तथा शनैः शनैः वक्ररूप सीमन (टांके) लगावे अथवा गोफियेके तुल्य सीमे अथवा तुन्नसेवनी (रफ करनेकी भांति) ॥ १८ ॥ अथवा सूधी ग्रंथिकी भांति सीमे अथवा जैसे योग्य हो वैसे सीमे । जहां थोडा मांस हो वहां तथा संधियोंमें दो अंगुल वृत्त (गोल मुडाव) वाली सुई चाहिये ॥ १९ ॥ और मांसवाले अंगमें तीन अंगुल लंबी और तिधारी होनी चाहिये और मर्मस्थानों और फलकोश तथा उदर इनपर सीमनेके लिये धनुषके आकारवाली सुई चाहिये ॥ २० ॥

इत्येतास्त्रिविधाः सूच्यस्तीक्ष्णाग्राः सुसमाहिताः। कारयेन्मालतीपुष्पवृन्ताग्रपरिमंडलाः ॥ २१ ॥ नातिदूरे निकृष्टे वा सूचीं कर्मणि पातयेत् ॥ दूराद्रुजो व्रणौष्ठस्य संनिकृष्टेऽवलुंचनम् ॥ २२ ॥

इस प्रकार तीन भांतिकी सुई बनवानी चाहिये जिनकी नोक पैनी और समस्त साफ हो तथा मालतीके पुष्पकी डंडीके अग्रभाग जैसी मोटी गोल होनी चाहिये ॥ २१ ॥ सूचीकर्म (टांके लगाने) के समय अत्यंत दूर २ टांके नहीं लगाने चाहिये और बहुत निकट २ भी नहीं लगाने चाहिये क्योंकि अति दूर टांके लगानेसे व्रणके किनारोंमें पीडा होती है और बहुत पास २ लगानेमें चर्म छी जाता है ॥ २२ ॥

अथ क्षौमपिचुच्छन्नं सुस्यूतं प्रतिसारयेत् ॥ प्रियंग्वंजनयष्ट्याह्वरोध्रचूर्णैः समंततः ॥ २३ ॥ सल्लकीफलचूर्णैर्वा क्षौमध्यामेन वा पुनः । ततो व्रणं यथायोगं बद्ध्वाचारिकमादिशेत् ॥ २४ ॥

सीमनेके पीछे रेशमी वस्त्र अथवा रूईके फोहेसे उस ठीक सीमेहुए व्रणको ढका रक्खे और प्रियंगु (गुंद्रा), सौवीरांजन, मुलहटी, लोधका चूर्ण उसपर सब तरफ बुरकादे ॥ २३ ॥ अथवा सल्लकी (शाल) वृक्षके फलका चूर्ण अथवा रेशमकी राख बुरकादे फिर व्रणको यथायोग्य बांधकर (पट्टी बांधकर) व्रणितोपासनीय अध्यायोक्त आचरणका उपदेश करे ॥ २४ ॥

एतदष्टविधं कर्म समासेन प्रकीर्तितम् ॥ चिकित्सितेषु कार्त्स्न्येन विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥ २५ ॥ हीनातिरिक्तं तिर्य्यक्चं गात्रच्छेदनमात्मनः ॥ एताश्चतस्रोऽष्टविधे कर्मणि व्यापदः स्मृताः ॥ २६ ॥

यह आठ प्रकारका शस्त्रकर्म संक्षेपमात्रसे यहां कहा, विस्तारपूर्वक पूर्णतासे चिकित्सित स्थानमें इनका वर्णन होगा ॥ २५ ॥ शस्त्रकर्ममें ये चार व्यापत्ति होतीहैं १ हीनता (जितना शस्त्र अवचार करना योग्य हो, उससे कम अवचार किया जाना), २ अतिरिक्त अधिक या अन्यथा, ३ तिर्य्यक् (तिरछा शस्त्रपात होना), ४ वैद्य अपने शरीरमें शस्त्र मारलेवे (हाथ अंगुली आदि कटालेवे) आठों प्रकारके शस्त्रकर्ममें ये चार व्यापत्ति (दूषण) हैं ॥ २६ ॥

अज्ञानलोभाहितवाक्ययोगभयप्रमोहैरपरैश्च भावैः ॥ यदा प्रयुंजीत भिषक्कुशस्त्रं तदा स शेषान्कुरुते विकारान् ॥ २७ ॥ तं क्षारशस्त्राग्निभिरौषधैश्च भूयोऽभियुंजानमयुक्तियुक्तम् ॥ जिजीविषुर्दूरत एव वैद्यं विवर्जयेदुग्रविषाग्नितुल्यम् ॥ २८ ॥

अज्ञानसे लोभसे अहितवचनके योग (किसी शत्रुके बहकावट) से भयसे मोहसे अथवा ईर्षादि अन्य भावोंसे यदि वैद्य कुशस्त्रका प्रयोग करे तो वह उन शेष विकारोंको करता है ॥ २७ ॥ रोगीको चाहिये कि उस क्षार शस्त्र अग्नि तथा औषधोंको अयुक्तियुक्त अभियोग करनेवाले कुवैद्यको जीवनकी इच्छावाला (रोगी) उग्रविष अग्निके समान दूरहीसे परित्याग करदे ॥ २८ ॥

तदेव युक्तं त्वतिमर्मसंधीन्हिंस्याच्छिरास्नायुमथास्थि चैव ॥ मूर्खप्रयुक्तं पुरुषं क्षणेन प्राणैर्वियुंज्यादथवा कथंचित् ॥ २९ ॥

वह अयुक्त मूर्खका प्रयुक्त कियाहुआ शस्त्र मर्मसंधि, शिरा, स्नायु तथा अस्थिको छेदन कर देताहै अथवा कभी वह कुशस्त्र क्षणभरमें प्राणनाश कर देताहै ॥ २९ ॥

भ्रमः प्रलापोत्पतनं प्रमोहो विचेष्टनं सन्नयनोष्णता च ॥ स्रस्तांगता मूर्च्छनमूर्द्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः ॥ ३० ॥

मर्मस्थान, संधि तथा नस आदिके छेदन होनेसे भ्रम, प्रलाप, गिरपडना, मोह, विकृत चेष्टा करना, सन्नयन (तंद्रा), ऊष्णता, अंगोंका थकना, मूर्च्छा, ऊर्ध्ववात, श्वास तथा तीक्ष्ण पीडा और वायुकृत विकार होते हैं ॥ ३० ॥

(सूत्र २८) भूयोऽभियुंजान वारवारमयुक्तियुक्त युंजानम् । विवर्जयेन्न त्वेकवारत एव तत्र तु दूषणस्य दार्ढ्यमेवेति । (सूत्र ३०) भ्रमः चक्रारूढस्येव । पतनमनूर्ध्वस्थितिः । प्रमोहः वैचित्त्यम् । सन्नयन स्वप्न इव। ऊर्ध्ववातः इति श्वासोऽत्राभिप्रेतः न तु रोगविशेषः ।

मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव ॥ दशार्द्ध-संख्येष्वपि हि क्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिंगमुक्तम् ॥ ३१ ॥

मर्मछेदनादिमें मांसधोवनके समान रुधिर बहुत निकले, समस्त इंद्रियार्थोका उपराम होजाय (सब इंद्रिय अपने २ अर्थोको परित्याग करदें) ये मर्मादि पांचों छेदनोंमें सामान्यतासे लक्षण होते हैं विशेषकर मर्मछेदनमें होते हैं ॥ ३१ ॥

सुरेंद्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेद्वै क्षततश्च वायुः ॥ करोति रोगान्विविधान्यथोक्तांश्छिन्नासु भिन्नास्वथवा शिरासु ॥ ३२ ॥

वीरवहूटीके समान रुधिर घावसे निकलें, तथा वायु यथोक्त अनेक प्रकारके रोगोंको करदेवे ये लक्षण शिरा (रग) के छेदन तथा भेदन होनेमें होते हैं ॥ ३२ ॥

कौब्ज्यं शरीरावयवांगसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च ॥ चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं मनुजं व्यवस्येत् ॥ ३३ ॥

कुबडापन हो, शरीरके अंग प्रत्यंग थक जायँ, क्रियाओंकी शक्ति न रहे और दारुण पीडा हो, जिसका घाव देरसे भरे इन लक्षणोंवालेकी स्नायु कटी जाने ॥ ३३ ॥

शोफातिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः पर्वसु भेदशोफौ ॥ क्षते तु संधावचलाचले च स्यात्संधिकर्मोपरतिश्च लिंगम् ॥ ३४ ॥

शोथकी अतिवृद्धि हो, दारुण पीडा हो, बलक्षय हो, जोडोंमें भेद और शोथ हो तथा संधि अपने कर्मसे उपरत हो (मुड न सके) ये लक्षण चल और अचल संधिके क्षत (घाव या छेदन) में होते है ॥ ३४ ॥

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु न शांतिरस्ति ॥ तृष्णांगसादौ श्वयथुश्च रुक्च तमस्थिविद्धं मनुजं व्यवस्येत् ३५ ॥

जिसको घोर पीडा हो रातदिन सबतरह (सोते बैठे) चैन नहीं पडे तृषा और अंगोंको थकान हो शोथ हो तथा पीडा हो उस मनुष्यका अस्थि कट गया ऐसा जाने ३५ ॥

यथास्वमेतानि विभावयेल्लिंगानि मर्मस्वभिताडितेषु । स्पर्शं न जानाति विपांडुवर्णो यो मांसमर्मण्यभिताडितः स्यात् ॥ ३६ ॥

मर्मस्थानोंके अभिघात (कटजाने चिरजाने आदि) में यथासम्भव ये लक्षण जानने चाहिये (जो कि भ्रमप्रलापादि पहले कहे केवल वे ही नहीं किंतु शिरा

(सूत्र ३१) उपरमो निवृत्तिः दशार्द्धसंख्येषु मर्मादि-पंचसु क्षतेषु ।(सूत्र ३३) तुमुला गहना ।

संध्यादि छेदनमें जो लक्षण होते हैं वे भी मर्मछेदनमें होते हैं) जिस मनुष्यको स्पर्शका ज्ञान जाता रहे तथा पीला पडजाय तो जानना चाहिये कि, इसके मांस-मर्ममें छेदन हुआ है ॥ ३६ ॥

आत्मानमेवाथ जघन्यकारी शस्त्रेण यो हंति हि कर्म कुर्वन् ॥ तस्मात्स वानात्महनं कुवैद्यं विवर्जयेदायुरभीप्समानः ॥ ३७ ॥

जो वैद्य शस्त्रकर्म करता हुआ अपनेको शस्त्रसे छेदन करे बुद्धिमान् रोगी अवस्थाकी इच्छावाला छेदन करनेवाले उस कुवैद्यके आश्रयमें नहीं रहे (उससे चिकित्सा न करावे) ॥ ३७ ॥

तिर्यक्प्रणिहिते शस्त्रे दोषाः पूर्वमुदाहृताः ॥ तस्मात्परिहरन्दोषान्कुर्याच्छस्त्रनिपातनम् ॥ ३८ ॥ मातरं पितरं पुत्रान्बांधवानपि चातुरः ॥ अथैतानभिशंकेत वैद्ये विश्वासमेति च ॥ ३९ ॥

तिरछा शस्त्र लग जानेसे जो दोष उत्पन्न होते हैं वे पहले वर्णन हो चुके हैं इस कारणसे उन दोषोंको बचाकर शस्त्रकर्म करना चाहिये ॥ ३८ ॥ रोगी मनुष्य माता, पिता, पुत्र और बांधवोंसे भी चाहे शंका करे परन्तु वैद्यमें शंका नहीं करता किंतु वैद्यसे पूरा २ विश्वास रखता है ॥ ३९ ॥

विसृजत्यात्मनात्मानं न चैनं परिशंकते ॥ तस्मात्पुत्रवदेवैनं पालयेदातुरं भिषक् ॥ ४० ॥ कर्मणा कश्चिदेकेन द्वाभ्यां कश्चित्त्रिभिस्तथा ॥ विकारः साध्यते कश्चिच्चतुर्भिरपि कर्मभिः ॥ ४१ ॥

रोगी मनुष्य आत्माको अपने आपसे त्याग देता है परन्तु वैद्यमें शंका नहीं करता इससे वैद्यकोभी चाहिये कि रोगीकी रक्षा पुत्रकी तरहसे करे ॥ ४० ॥ कोई एक कर्म करके कोई दो कर्मकरके कोई तीन कर्म करके और कोई चार कर्म करके विकार शांत किया जाता है ॥ ४१ ॥

धर्मार्थौ कीर्तिमित्यर्थं सतां ग्रहणमुत्तमम् ॥ प्राप्नुयात्स्वर्गवासं च हितमारभ्य कर्मणा ॥ ४२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

कर्मसे हित आरम्भ करनेवाला (हितकर्म करनेवाला) वैद्य धर्म, अर्थ और कीर्ति तथा प्रत्यर्थ (उपकार) और सज्जनोंके उत्तम ग्रहण (आदर सज्जनता) तथा स्वर्गका वास इन्हें प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्म वैद्यवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थाने पचाविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.

अथातः प्रणष्टशल्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे प्रणष्टशल्यविज्ञानीय अर्थात् नष्ट हुए अथवा शरीरमें छुपे हुए शल्यका जिसमें विज्ञान हो ऐसे अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

"शलश्वल आशुगमने" धातुस्तस्य शल्यमिति रूपम् ॥ १॥
तद्द्विविधं शारीरमागंतुकं च सर्वशरीराबाधकरं शल्यं तदिहो-पदिश्यते इत्यतः शल्यशास्त्रम् ॥ २ ॥

शल, श्वल, आशुगमने धातु हैं इनमेंसे शल धातुसे यक् प्रत्यय होनेसे शल्य ऐसा शब्द सिद्ध होता है ॥ १ ॥ वह शल्य दो प्रकारका होता है १ शारीरक २ आगंतुक (भावार्थ यह है कि) समस्त शरीरमें बाधा करनेवाला जो शल्य है वह यहांपर (प्रतिकारके लिये) उपदेश किया जाता है इससे यह शल्यशास्त्र (शल्यतंत्र) कहलाता है ॥ २ ॥

तत्र शारीरं रोमनखादिधातवोऽन्नमला दोषाश्च दुष्टाः ॥ ३ ॥
आगंत्वपि शरीरशल्यव्यतिरेकेण यावंतो भावा दुःखमुत्पाद-यंति। अधिकारो हि लोहवेणुवृक्षतृणशृंगास्थिमयेषु तत्रापि विशेषतो लोहमयेष्वेव। विशसनार्थोपपन्नत्वाल्लोहस्य। लोहाना-मपि दुर्वारत्वादणुमुखत्वाद्दुष्प्रयोजनकरत्वाच्च शर एवाधिकृतः ४॥

जिसमेंसे रोम (बाल), नखून आदि तथा धातु (रसरक्तादि), अन्नमल (मूत्रपुरीषादि), दोष (वायु, पित्त, कफ) ये दुष्ट हुए या बिगडे या अयोग्यतासे शरीरमें हुए शारीरक शल्य कहलाते हैं ॥ ३ ॥ तथा शारीरक शल्यसे व्यतिरिक्त जितने भाव दुःख उत्पन्न करते हैं वे सब आगंतुक शल्य कहलाते हैं तिसमें लोह, वांस, वृक्ष, तृण, सींग, अस्थि इनके पदार्थोंहीमें अधिकार है विशेष करके लोहके पदार्थोंमेंही (शल्यत्व) है मारणादिके लिये लोहके उत्पन्न होनेसे और लोहाके (कांत आदि कई धातुओंके) बने हुए दुर्निवारत्व करके पैनी नोक होनेसे दुर्भावसे प्रयुक्त किये जानेसे शर (तीर) ही (विशेषकरके) अधिकार किया गया है ॥४॥

स द्विविधः कर्णी श्लक्ष्णश्च । प्रायेण विविधवृक्षपत्रपुष्पफलतु-

---

(सूत्र १) शल हिंसायामित्यस्य धातोर्वा शल्यमिति रूपं पठन्त्येके । अपरे शलरुजायामित्यस्य पठति-

(सूत्र ३) धात्वन्नदोषा दुष्टाः सतः शल्यभूता इति शारीरं शल्यम् ।

ल्याकृतयो व्याख्याता व्यालमृगपक्षिवक्त्रसदृशाश्च ॥ ५ ॥

वह शर (बाण) दो प्रकारका होता है १ कर्णी (किनारी या कोरवाला) २ श्लक्ष्ण (सीधा नोकदार) ये बाण प्रायः अनेक प्रकारके वृक्षोंके पत्तोंके आकार (पीपलके पत्तोंके आकार चौड़ी नोकवाले तथा कनेरके पत्तोंके आकार) तथा पुष्पोंके आकार जैसे मालतीकलिकाके आकार तथा फलाकार (कमरखके आकार इत्यादि) होते हैं तथा सर्प, मृग (बगला, काग आदि) पक्षियोंके मुखके आकार भी बहुधा होते हैं ॥ ५ ॥

सर्वशल्यानां तु महतामणूनां वा पंचविधो गतिविशेष ऊर्द्ध्वमधोऽर्वाचीनस्तिर्यगृजुरिति ॥ ६ ॥

छोटे बड़े सब शल्योंकी पांच प्रकारसे विशेषकरके गति होती है (जैसे) १ ऊपरको, २ नीचेको, ३ अर्वाचीन (पीछेको), ४ तिर्य्यक् (तिरछी), ५ ऋजु (सीधी, आगेको या सरल) ॥ ६ ॥

तानि यदा वेगक्षयात्प्रतिघाताद्वा त्वगादिषु व्रणवस्तुष्ववतिष्ठंते धमनीस्रोतोऽस्थितद्विवरपेशीप्रभृतिषु वा शरीरप्रदेशेषु तत्र शल्यलक्षणमुच्यमानमुपधारय ॥ ७ ॥

वे शल्य (बाण) जब वेगक्षय होनेसे या प्रतिघातसे त्वचा आदि व्रणके अधिष्ठानोंमें धमनी, स्रोत, अस्थि और इनके छिद्रों तथा पेशी (मांसकी गिलटी) आदिमें अथवा शरीरके किसी प्रदेशमें स्थित हों वहां शल्यके लक्षण जैसे कहे जाते हैं श्रवण करो और धारण करो अर्थात् समझो ॥ ७ ॥

तत्तु द्विविधं सामान्यं वैशेषिकं च ॥ ८ ॥ श्यावं पिडिकावंतं शोफवेदनावंतं मुहुर्मुहुः शोणितास्राविणं बुद्बुदवदुन्नतं मृदुमांसं च व्रणं जानीयात्सशल्योयमिति सामान्यलक्षणमेतदुक्तम् ॥ ९ ॥

वह शल्य दो प्रकारका है १ सामान्य, २ विशेष ॥ ८ ॥ सांवला रंग हो पिडिका युक्त हो शोथ और पीडा सहित हो. वारंवार रुधिर निकलता हो बुलबुलेके तुल्य ऊँचा उठा हो जिसमें कोमल मांस हो ऐसा व्रण हो तो उसे जाने कि यह शल्ययुक्त है और ये सामान्य लक्षण कहे हैं ॥ ९ ॥

(सूत्र ५) कर्णी कर्णिकायुक्तः कर्णयुक्तो वा श्लक्ष्णः अकर्णः । (सूत्र ६) पंचविधो गतिविशेष इत्यत्र पर्चानगतिविधो गतिविशेष इति वा पठंति । तच्चास्माभिर्विस्तरभयान्न लिखितामिति ।

वैशेषिकं तु त्वग्गते विवर्णः शोफो भवत्यायतः कठिनश्च ॥१०॥ मांसगते शोफाभिवृद्धिः शल्यमार्गानुपसंरोहः पीडनासहिष्णुता चोषपाकौ च ॥ ११ ॥ पेश्यंतरस्थेऽप्येतदेवं चोषशोफवर्ज्यम्॥१२॥ शिरागते शिराध्मानं शिराशूलं शिराशोफश्च ॥ १३ ॥ स्नायुगते स्नायुजालोत्क्षेपणं संरंभश्चोग्रा रुक्च ॥ १४ ॥ स्रोतोगते स्रोतसां स्वकर्मगुणहानिः ॥ १५ ॥

वैशेषिकके लक्षण ये हैं कि त्वचामें शल्य हो तो विवर्णता तथा शोथ विस्तृत और कठिन(कडा हो) ॥१०॥ मांसगत शल्य हो तब शोथकी वृद्धि और मार्गसंरोहका अभाव तथा पीडन(दबाना मलना आदि)नहीं सहा जाय, चोष और पकाव हो॥११॥ पेशी (मांसपेशी अर्थात् गिलटी) में शल्य हो तो भी मांसके शल्यतुल्य लक्षण होतेहैं केवल चोष और शोथ नहीं होते ॥१२॥ शिरा (रगों) में शल्य हो तो शिराका अफरना (फूलना) शिरामें शूल तथा शोथ हो ॥१३॥ स्नायु (नस)गत शल्य हो तो नसोंके जालका उत्क्षेपण (ऊपरको होना) तथा शोथ और दारुण पीडा हो॥१४॥ स्रोतगत शल्य हो तो स्रोतकर्म गुण (रसादिवहन आदि) की हानि हो ॥ १५ ॥

धमनीस्थे सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छत्यंगमर्दः पिपासा हृल्लासश्च ॥ १६ ॥ अस्थिगते विविधवेदनाप्रादुर्भावः शोफश्च ॥ १७ ॥ अस्थिविवरगतेऽस्थिपूर्णताऽस्थितोदः सहर्षो बलवांश्च ॥ १८ ॥ संधिगतेऽस्थिवच्चेष्टोपरमश्च ॥ १९ ॥ कोष्ठगते आटोपानाहौ मूत्रपुरीषाहारदर्शनं च व्रणमुखात् ॥ २० ॥ मर्मगते मर्मविद्धवच्चेष्टते ॥ २१ ॥

धमनीगत शल्यमें झागोंसहित रुधिरको प्रेरण करताहुआ शब्दयुक्त वायु निकलता है और अंगमर्द तृषा और उबकाई हो ॥ १६ ॥ अस्थिगत शल्यमें अनेक भांतिकी पीडा उत्पन्न हो और शोथ हो ॥ १७ ॥ अस्थियोंके छिद्रमें शल्य हो तो अस्थिपूर्णता तथा रोमहर्षपूर्वक अस्थितोद (दर्द) अत्यंत हो॥१८॥ संधिगतशल्यमें अस्थिगत शल्यके तुल्य लक्षण होते हैं तथा संधिका उपराम (जडता) हो॥१९॥ कोष्ठगत शल्य हो तो फूलजाना, अफरना तथा मूत्र पुरीष और आहार व्रणके मुँहसे दीखनेलगें ॥ २० ॥ मर्मगत शल्य हो तो उसमें मर्म विधेकी भांति चेष्टा करने लगता है ॥ २१ ॥

सूक्ष्मरतिषु शल्येष्वेतान्येव लक्षणान्यस्पष्टानि भवंति ॥ २२ ॥
महान्ति स्वल्पानि वा शुद्धदेहानामनुलोमसन्निविष्टानि रोहंति विशेषतः कण्ठस्रोतःशिरात्वक्पेश्यस्थिविवरेषु । दोषप्रकोपव्यायामाऽभिघातेभ्यः प्रचलितानि पुनर्बाधन्ते ॥ २३ ॥

सूक्ष्म रतिवाले अर्थात् सूक्ष्म छोटे थोडे शल्योंमें यही लक्षण अप्रगट रूपसे होते हैं ॥ २२ ॥ बडे तथा छोटे शल्य शुद्ध देहवालोंके अनुलोम रूपसे प्रविष्ट हुए हों तो व्रण भरजाते हैं (साफ हो जाते हैं) कंठ स्रोत, शिरा, त्वचा, पेशी, अस्थि, छिद्र इनमें उपरोक्त व्रण विशेष करके भरही जाते हैं तथा दोषोंके प्रकोप व्यायाम (परिश्रम) अभिघात इन करके प्रचलित हुए शल्य फिर पीडा करते हैं (कई यूं अर्थ करते हैं कि कंठादिमें दोषप्रकोपादिसे प्रचलित शल्य फिर पीडा करते हैं परन्तु डल्हनाचार्य इसे स्वीकार नहीं करते) ॥ २३ ॥

त्वचागत शल्यविज्ञान ।

तत्र त्वक्प्रणष्टे स्निग्धस्विन्नायां मृन्माषयवगोधूमगोमयमृदितायां त्वचि यत्र संरंभो वेदना वा भवति तत्र शल्यं जानीयात् २४

त्वचामें गुप्त शल्य हो तो मृत्तिका, उडद, जौ, गेहूंका चूर्ण और गोबर इन्हें स्निग्ध कर पकाके त्वचापर लगानेसे जहां शोथ और दरद हो वहां शल्य जानना चाहिये॥ २४॥

स्त्यानघृतमृच्चन्दनकल्कैर्वा प्रतिदिग्धायां शल्यमूष्मणावसरति । घृतमुपशुष्यति वा लेपो यत्र तत्र शल्यं विजानीयात् ॥ २५ ॥

करडे घृत, मृत्तिका और चन्दनके कल्क करके मली हुई त्वचामें गरमाईसे शल्य चलायमान होता है (कलमलाता है) अथवा घृत तथा आलेप जहां शीघ्र सूखे वहां शल्य जानना चाहिये ॥ २५ ॥

मांसप्रणष्टे स्नेहस्वेदादिभिः क्रियाविशेषैरविरुद्धैरातुरमुपपादयेत् कर्शितस्य तु शिथिलीभूतमनवबद्धं क्षुभ्यमाणं यत्र संरंभो वेदना वा भवति तत्र च शल्यं विजानीयात् ॥ २६ ॥

मांसगत गुप्त शल्य हो तो स्नेह स्वेदआदि अविरुद्ध क्रियाविशेषों करके रोगीको प्रयुक्त करे और कर्शित अर्थात् आतुरके जहां शोथ और वेदना हो वहां शिथिल हुआ अनवबद्ध अथवा क्षुभ्यमाण शल्य जानना चाहिये ॥ २६ ॥

(सूत्र २३) केचित् महांति स्थाने मृदूनिति पाठ पठंति ।

कोष्ठास्थिसंधिपेशीविवरेष्ववस्थितमेव परीक्षेत ॥ २७ ॥

कोष्ठ (कोठा), अस्थि, संधि, पेशी और विवर (छिद्र) इनमें भी व्यवस्थित शल्य इसी भांति (मांसगतकी भांति) परीक्षा करना चाहिये ॥ २७ ॥

शिराधमनीस्रोतःस्नायुप्रणष्टे खण्डचक्रयुक्ते याने व्याधितमारोप्याशु विषमेऽध्वनि यायाद्यत्र संरंभो वेदना वा भवति तत्र शल्यं जानीयात् ॥ २८ ॥

शिरा (रग), धमनी (वायुधमनी नाडी), स्रोत और स्नायु (नस) इनमें गुप्त शल्य हो तो टूटे पुराने पहियेकी गाडीमें रोगीको बिठाकर विषम मार्गमें शीघ्र चलावे (उसके झटकोंसे) जहां शोथ, सुरखी या दरद हो वहां शल्य जानना चाहिये ॥ २८ ॥

अस्थिप्रणष्टे स्नेहस्वेदोपपन्नान्यस्थीनि बंधनपीडनाभ्यां भृशमुपचरेद्यत्र संरम्भो वेदना वा भवति तत्र शल्यं विजानीयात् ॥२९॥

अस्थिगत शल्य हो तो स्नेह और स्वेद युक्त अस्थियोंको बंधन और दबाने मलने आदिसे उपचार करे जहां संरंभ (शोथ सुरखी) और दरद हो वहांही शल्य जानना चाहिये ॥ २९ ॥

संधिप्रणष्टे स्नेहस्वेदोपपन्नान्संधीन्प्रसारणाकुंचनबंधनपीडनैर्भृशमुपचरेद्यत्र संरंभो वेदना वा भवति तत्र शल्यमिति जानीयात् ॥ ३० ॥

संधिगत गुप्त शल्य हो तो स्नेह और स्वेदयुक्त संधियोंको पसारना, सकोडना आदि क्रियाओंसे उपचार करे जहां संरंभ और पीडा हो वहां शल्य जाने ॥३०॥

मर्मप्रणष्टे त्वनन्यभावान्मर्मणामुक्तं परीक्षणं भवति ॥ ३१ ॥

सामान्यलक्षणमपि च हस्तिस्कंधाश्वपृष्ठपर्वतद्रुमारोहणधनुर्व्यायामद्रुतयाननियुद्धाध्वगमनलंघनप्रतरणप्लवनव्यायामैर्जृम्भोद्गारकासक्षवथुष्ठीवनहसनप्राणायामैर्वातमूत्रपुरीषशुक्रोत्सर्गैर्वा यत्र संरंभो वेदना वा भवति तत्र शल्यं जानीयात् ॥ ३२ ॥

भवंति चात्र—

मर्मगत गुप्त शल्य हो तो मर्मोंके अनन्यभाव होनेसे अर्थात् मर्म त्वचा मांसास्थि आदिमें ही होते हैं इनसे पृथक् कहीं और नहीं होते इस ऊपर कहे हुए

लक्षणोंसे ही परीक्षा होसकती है (त्वचा मर्मकी त्वग्गतशल्यवत्, मांसमर्मगत शल्यकी मांसगतवत् इत्यादि) ॥ ३१ ॥ अब सामान्यतासे शल्यविज्ञान कहते- हैं-हाथीके कंधे और घोडेकी पीठपर चढने, पहाड वृक्षोंपर चढने, धनुषका श्रम करने, सवारी दौडाने, युद्ध करने, मार्ग चलने, लंघन करने (उलांघने) तैरने, दौडने, दण्डकसरत करने, जम्भाई लेने, डकार लेने या खाँसने, छीकने, थूकने, हसने, प्राणायाम करने, वायु, मूत्र, मल और शुक्र इनके उत्सर्ग होनेसे जहां शोथ और सुरखी तथा दरद मालूम हो वहां शल्य जानना चाहिये ॥ ३२ ॥ यहां इस विषयमें श्लोक हैं-

यस्मिंस्तोदादयो देशे सुप्तता गुरुतापि च ॥ घट्टयते बहुशो यत्र श्रूयते तुद्यतेपि च ॥ ३३ ॥ आतुरश्चापि यं देशमभीक्ष्णं परिरक्षति ॥ संवाह्यमानो बहुशस्तत्र शल्यं विनिर्दिशेत् ॥३४॥

जिस जगह दरद (राग पाकादि) तथा सुप्तता और गुरुता हो तथा चोटसी लगती हो (चमक हो) तथा (कान लगानेसे या स्टीथसकोप लगाकर सुननेसे शब्द सुनाई देवे और पीडा होवे ॥ ३३ ॥ तथा आतुर जिस जगहको वारवार छेडने छूने दबाने आदिसे रक्षाकरे अर्थात् हाथ न लगाने दे वहां शल्य जानना ३४

शल्यरहितके लक्षण ।

अल्पबाधमशूनं च निरुजं निरुपद्रवम् ॥ प्रसन्नं मृदुपर्य्यंतं निरा- घट्टमनुन्नतम् ॥ ३५ ॥ एषण्या सर्वतो दृष्ट्वा यथामार्गं चिकित्स- कः ॥ प्रसाराकुंचनान्नूनं निःशल्यमिति निर्दिशेत् ॥ ३६ ॥

यदि थोडी बाधा हो सोज न हो दरद न हो कोई उपद्रव भी न हो प्रसन्नता हो आसपासमें कोमलता हो निराघट्ट हो (चमका न हो) ऊँचा उठा हुआ भी न हो ॥ ३५ ॥ वैद्य सब ओर मार्गके अनुसार एषणीयंत्र (एक प्रकारकी सलाई) से देखले (साफ हो तो शल्यरहित जाने) तथा अंगको पसार कर और सकोडकर भी अवश्य देखले (सुकडने पसरनेमें भी साफ हो तो निःशल्य जाने) ॥ ३६ ॥

शल्यभेद ।

अस्थ्यात्मकं भज्यते तु शल्यमंतश्च शीर्यते ॥ प्रायो निर्भुज्यते शार्ङ्गमायसं चेति निश्चयः ॥ ३७ ॥

(सूत्र ३७) शीर्यते इत्यत्र भज्यते इति वा पाठ. । भज्यते द्विधा त्रिधा वा स्वयं भवति शीर्यते तु केशास्थिवेणुदारूनलानि नतु विशीर्यते इत्यग्रे वक्ष्यति । अत्र अतश्च शीर्यत इति कथमुच्यते इति विरोधा- च्छीर्यते इत्यसमीचीन तत्तु न केशाचिदस्थ्या शीर्णत्वं न सर्वेषामिति विरोधाभावः ।

अस्थिरूप शल्य (हाडका टुकडा) हो तो भीतर शरीरमें विखर जाता है और जो सींगका शल्य शरीरमें घुसगयाहो तो वह प्रायः नहीं विखरता तथा लोहका शल्य (टुकडा) शरीरमें निश्चय करके नहीं विखरता (छिन्न भिन्न नहीं होता) ॥ ३७ ॥

वार्क्ष्यवैणवतार्णानि निर्ह्रियंते तु नो यदि ॥ पचंति रक्तं मांसं च क्षिप्रं प्रेतानि देहिनाम् ॥ ३८ ॥ कानकं राजतं ताम्रं रैतिकं त्रपु सीसकम् ॥ चिरस्थानाद्विलीयंते पित्ततेजःप्रतापनात् ॥ ३९ ॥ स्वभावशीता मृदवो ये चान्येऽपीदृशा मताः ॥ द्रवीभूताः शरीरेऽस्मिन्नेकत्वं यांति धातुभिः ॥ ४० ॥

वृक्षका (लकडीका) शल्य तथा वांसका और तृणका शल्य यदि शरीरमें घुसा हुआ नहीं निकाला जाय तो शीघ्रही मनुष्यके रुधिर, मांस आदिको पका देताहै ॥ ३८ ॥ सुवर्ण, चांदी, तांबा, पित्तल या जशद, रांग और सीसेके शल्य यदि शरीरमें रह जावें (सूक्ष्म हों तो) पित्तके तेजसे पिघलकर चिरकालमें लय हो जाते हैं ॥ ३९ ॥ स्वभावसे शीतल और कोमल जो ऐसे ही और भी शल्य हों वे भी पिघलकर धातुवोंके साथ एकताको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ४० ॥

विषाणदंतकेशास्थिवेणुदारूपलानि तु ॥ शल्यानि न विशीर्यंते शरीरे मृन्मयानि च ॥ ४१ ॥ द्विविधं पंचगतिकं त्वगादिव्रणवस्तुषु ॥ यो वेत्त्यधिष्ठितं शल्यं स राज्ञः कर्तुमर्हति ॥ ४२ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सींग, दांत, वाल, हाड, वांस, लकडी, पत्थर तथा मृन्मय (ठिकरी पंकीमट्टी) इनके शल्य शरीरमें विशीर्ण नहीं होते छिन्न भिन्न होकर शरीरमें लय नहीं होते ॥ ४१ ॥ पांच गतिवाले तथा त्वचा आदि व्रणवस्तुवोंमें अधिष्ठित दो प्रकारके शल्योंको जो ठीक २ जानता है वह वैद्य ही राजावोंके यहां चिकित्सा (शस्त्र-कर्म-सरजरी) करनेके योग्य होताहै ॥ ४२ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने षाड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

(वक्तव्य सूत्र ४१) यदि निज शारीरक सूक्ष्म अस्थिका शल्य शरीरमें रहगया हो तो वह विशीर्ण होजाता है परन्तु आगन्तुक शल्य विशीर्ण नहीं होता ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथातः शल्यापनयनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे शल्यापनयनीय (शल्य निकालने या दूर करनेके) विषयमें अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

शल्यं द्विविधमवबद्धमनवबद्धं च ॥ १ ॥ तत्र समासेनाववद्धशल्योद्धरणार्थं पंचदशहेतून्वक्ष्यामः ॥ २ ॥

शल्य दो प्रकारका होता है १ अवबद्ध (आसक्त) २ अनवबद्ध (अनासक्त) ॥ १ ॥ अब संक्षेपसे अवबद्ध शल्यके निकालनेके अर्थ पंद्रह हेतु वर्णन करते हैं ॥२॥

तद्यथा स्वभावः पाचनं भेदनं दारणं पीडनं प्रमार्जनं निर्ध्मापनं वमनं विरेचनं प्रक्षालनं प्रतिमर्षः प्रवाहणमाचूषणमयस्कांतो हर्षश्चेति ॥ ३ ॥

अवबद्ध शल्यके निकालनेके लिये १५ हेतु ये हैं-१ स्वभाव, २ पाककरना, ३ भेदन, ४ दारण, ५ पीडन, ६ प्रमार्जन, ७ निर्ध्मापन, ८ वमन, ९ विरेचन, १० प्रक्षालन, ११ प्रतिमर्ष, १२ प्रवाहण, १३ आचूषण, १४ अयस्कांत, १५ हर्ष ॥ ३ ॥

तत्राश्रुक्षवथूद्गारकासमूत्रपुरीषानिलैः स्वभावबलप्रवृत्तैर्नयनादिभ्यः पतंति ॥ ४ ॥ सावगाढं शल्यमभिदह्यमानं पाचयित्वा प्रकोपात्तस्य पूयशोणितवेगाद्गौरवाद्वा पतंति ॥ ५ ॥

तहां आंसू, छींक, डकार, खांसी, मूत्र, विष्ठा, वायु इन स्वभावबलप्रवृत्तवेगोंसे नेत्रादिसे शल्य (तृण कुडक) निकल जाता है ॥ ४ ॥ गहरे और जलन करनेवाले शरीरमें घुसे हुए शल्योंको पकाकर उसके कोपसे राध (पीप) और रुधिरके वेग तथा गुरुतासे निकलते हैं ॥ ५ ॥

पक्वमभिद्यमानं भेदयेद्दारयेद्वा भिन्नमनिरस्यमानं पीडनीयैः पीडयेत्पाणिभिर्वा ॥ ६ ॥ अणून्यक्षिशल्यानि परिषेचनाध्मापनैर्वालवस्त्रपाणिभिः प्रमार्जयेत् ॥ ७ ॥ आहारशेषश्लेष्महीनाणुशल्यानि श्वसनोत्कासनप्रधमनैर्निर्ह्लमेत् ॥ ८ ॥

(सूत्र १) अवबद्धं विशेषेणासक्तम् । अन्ये तु अस्थ्यादिप्रविष्टमवबद्धम् इतरानवबद्धमिति मन्यंते (इति डल्हनः)

अन्नशल्यानि वमनांगुलिप्रतिमर्षप्रभृतिभिर्विरेचनैः पक्वाशय-गतानि ॥ ९ ॥

जो पक गया हो, और फूटा नहो उसे भेदन करना या विदारण करना चाहिये और भेदन किया हो (विदारण किया या स्वयं फूट गया हो फटा हो) और उसमेंसे शल्य नहीं निकला हो तो पीडनयंत्रों तथा हाथ या अंगुलीसे पीडन करना (दबाना–मूतना) चाहिये जिससे शल्य निकल जाय ॥ ६ ॥ नेत्रादि इंद्रियोंके सूक्ष्म शल्योंको परिषेचन (तरेडे पिचकारी), आध्मापन (फूक देना या खींचना), वाल (फुरहरी) और कपडा, रुई तथा हाथसे साफ करना पोंछना चाहिये ॥ ७ ॥ आहारशेष (ग्रासादिकी धांस गई हो या थूंकायूं कलेजेके ऊपर ठहराहो) तथा श्लेष्महीन छोटी कफकी फुटक हो तो उन्हे श्वास लेने जोरसे खाँसने खखारियासा करने आदिसे वायुका धमन करके निकाले या अंतर्गत करे ॥ ८ ॥ और खाये हुए अन्नका शल्य (आमशयमें) हो तो वमन द्रव्यों या अंगुलीका प्रतिमर्ष (घर्षण) इत्यादिकसे उलटा निकालदे और यदि अन्नादि भुक्त वस्तुका शल्य पक्वाशयमें हो तो उसे विरेचनसे निकाले ॥ ९ ॥

व्रणदोषाश्रयगतानि प्रक्षालनैः ॥१०॥ वातमूत्रपुरीषगर्भसंगेषुप्रवाहणमुक्तम् ॥ ११ ॥ मारुतोदकसंविषरुधिरदुष्टस्तन्येष्वाचूषणमास्येन विषाणैर्वा ॥ १२ ॥ अनुलोममनवबद्धमकर्णमनल्पव्रणमुखमयस्कांतेन ॥ १३ ॥ हृव्यवस्थितमनेककारणोत्पन्नं शोकशल्यं हर्षेणेति ॥ १४ ॥

व्रणदोष राधपूयादिके आश्रयभूत शल्योंको प्रक्षालन (धोने आदि) से निकाले ॥ १० ॥ अधोवायु, मूत्र, पुरीष, गर्भगत बालक इनमें साधारण रुकावट हो तो इन्हे प्रवाहण (जोर लगाना किनछना) आदिसे निकाले ॥ ११ ॥ किसी चौड वायु या जल या विषयुक्त रुधिर या दुष्ट दुग्ध रुका हो तो इन्हे मुह या सींगी आदिसे चूसकर निकाले ॥ १२ ॥ अनुलोम (रोमोंके अनुरूप सीधा) और अनवबद्ध (जो जमा हुवा लिपटाहुवा नहो) अकर्ण (जिसके फैले हुए किनारे कंगूरे या मुडी नोक नहो) ऐसा (लोहमय) शल्य जो चौडे व्रणके मुखमें हो उसे अयस्कांत अर्थात् चुंबक या कर्षक पाषाणमय लोह (कांतलोह) से निकाले ॥ १३ ॥ अनेक कारणोंसे उत्पन्न हुवा हृदयमें शोक (भय आदि) का जो शल्य हो तो उसे हर्षात्मक वचनोंसे दूर करना चाहिये ॥ १४ ॥

सर्वशल्यानां तु महतामणूनां वा द्वावेवाहरणहेतू भवतः ।

प्रतिलोमोऽनुलोमश्च । तत्र प्रतिलोममर्वाचीनमानयेदनुलोमं पराचीनम् ॥ १५ ॥

सब छोटे या बडे (प्रवेशमार्गानुरूप) शल्योंके निकालनेके दोही कारण होते हैं (१) प्रतिलोम (उलटा) (२) अनुलोम (सुलटा) उनमेंसे अर्वाचीन (जो शरीरमें थोडी दूर ही घुसा हो उस) को प्रतिलोम अर्थात् जहांसे घुसा हो वहांहीसे उलटा निकालना चाहिये और पराचीन (जो शरीरमें इधरसे घुसा और दूसरी ओर दीखने लगा या दूसरी ओरके निकट पहुँचगया ऐसे) शल्यको अनुलोम अर्थात् जहांसे निकट हो वहांसे निकाले (उलटा प्रवेशमार्गसे नहीं निकाले) ॥ १५ ॥

उत्तुंडितं छित्त्वा निर्घातयेच्छेदनीयमुखं छेदनीयमुखान्यपि कुक्षिवक्षःकक्षावंक्षणपार्श्वकोषांतरपतितानि च । हस्तशक्यं यथामार्गं हस्तेनैवापहर्तुं प्रयतेत ॥ १६ ॥

उत्तुंडित (टूटेहुवे ऊपर दीखते हुवे) शल्योंको तथा जिनका मुख छेदनके योग्य हो उन्हे काटकर निकाले (इधर उधर हलाकर निकाले) तथा कुक्षि, हृदय, काख, वंक्षण, पांसू, अंडकोष इनमें प्रविष्ट छेदनयोग्य शल्योंकोभी छेदन कर हिलाकर निकाले । तथा जो शल्य हाथसे निकलसके उसे उसी मार्गसे हाथसे निकालनेकाही यत्न करे ॥ १६ ॥

अनुत्तुंडितशल्यानि छेदनीयमुखानि च । अनिर्घात्यानि जानीयाद्भूयश्छेदानुबंधतः ॥ १७ ॥ हस्तेनापहर्तुमशक्यं विमृश्य शस्त्रेण यंत्रेण वापहरेत् ॥ १८ ॥ भवति चात्र-

अनुत्तुंडित शल्य (जो उत्तुंडित नहीं) और छेदनीयमुख हों उन्हे अनिर्घात्य (न हिलाने योग्य) जाने क्योंकि वारंवार छेदके अनुबंध होनेसे उन्हे निर्घातन नहीं करे ॥ १७ ॥ जो हाथसे नहीं निकलसके उस शल्यको शस्त्रसे कुरेदकर यंत्रसे (अथवा हाथसे) निकाले ॥ १८ ॥ यहां श्लोक है-

शल्यापनयनसे उत्तर क्रिया ।

शीतलेन जलेनैनं मूर्च्छंतमवसेचयेत् ॥ संरक्षेदस्य मर्माणि

(सूत्र १५) अर्वाचीनं नातिदूरे प्रविष्टं निविष्टशल्यद्वारापेक्षया कायस्य पूर्वार्द्धस्थितं शल्यं तत्तु प्रतिलोममानयेत् प्रवेशमार्गेणैवानयेदित्यर्थः । पराचीनं दूरप्रविष्टं कायस्य परार्द्धगतशल्यं तदनुलोममानयेत् निकटप्रदेशादानयेदिति । (सूत्र १६) उत्तुंडितमूर्द्धनिःसरन्मुखमिव-छेदनीयमुखानि कुक्ष्यादिपतितान्यपि छित्त्वा निर्घातयेदिति । (सूत्र १८) विमृश्येत्यत्र विशस्येति वा पाठः ।

मुहुराश्वासयेच्च तम् ॥ १९ ॥ ततः शल्यमुद्धृत्य निर्लोहितं व्रणं कृत्वा स्वेदार्हमग्निघृतप्रभृतिभिः संस्वेद्य विदह्य प्रदिह्य सर्पिर्मधुभ्यां बद्ध्वाऽऽचारिकमुपदिशेत् ॥ २० ॥

यदि शल्य निकालते समय मूर्च्छित हो जाय तो ठंढ पानीके छींटे (मुखादिपर) देवे और इसके मर्मस्थानोंकी रक्षा करे और बारंबार तसल्ली देता रहे ॥ १९ ॥ फिर शल्य निकालकर घावको रुधिरादिसे साफ करके यदि पसीनादि लाना योग्य हो तो अग्नि या (गरम) घृतादिसे पसीना दिलाकर (व्रणको सेककर) तथा (रक्तकी अतिप्रवृत्ति आदि उपद्रव हों और अग्निकर्मसाध्य हो तो) व्रणदेशको दग्ध करै तथा प्रदिह्य अर्थात् (लेप योग्य उपद्रव हो तो) लेप करके मधुयुक्त घृतसे बांधके आचार (पथ्यादि) का उपदेश करे ॥ २० ॥

शिरास्नायुविलग्नं शलाकादिभिर्विमोच्यापनयेत्। श्वयथुं ग्रस्तवारंगं समवपीड्य श्वयथुं दुर्बलवारंगं कुशादिभिर्बद्ध्वा ॥ २१ ॥

शिरा स्नायु आदिसे लगे हुए (उलझे हुए) शल्यको शलाई आदिसे छुटाकर निकाले। और जिसमें ग्रस्त वारंगरूप शोथ (हो अर्थात् ऐसा सोज हो जिसमें शस्त्रकी नालतक समाजाय या शल्यकी नाल जिस सोजेमें ग्रसित हो) उसे पीडन करके (दबाके) शल्य निकाले। तथा ढीली नाल सोजेमें हो तो उसे कुशआदिसे बांधकर निकाले ॥ २१ ॥ इस पाठको निबन्धकार क्षेपक अनार्ष कहते हैं और भोजसंहितोक्त कहते हैं ॥

हृदयमभितो वर्तमानं शल्यं शीतजलादिभिरुद्वेजितस्यापहरेद्यथामार्गं दुरुपहरमन्यतोऽपबाध्यमानं पाटयित्वोद्धरेत् ॥ २२ ॥

हृदयके पास जो शल्य हो और उससे उद्विग्न हुए मनुष्यको ठंढे पानीसे आश्वासन करके शल्य निकाले और प्रवेशमार्गहीसे निकाले। और यदि सहजसे नहीं निकले घाव बंद होगया हो तो चीरकर निकाले ॥ २२ ॥

अस्थिविवरप्रविष्टमास्थिविदष्टं वाऽवगृह्य पादाभ्यां यन्त्रेणापहरेदशक्यमेवं वा बलवद्भिः सुपरिगृहीतस्य यन्त्रेण ग्राहयित्वा शल्यवारंगं प्रतिभुज्य धनुर्गुणे बद्ध्वैकतश्चास्य पंचांग्यामुपसंयतस्याश्ववक्त्रकटके वा बध्नीयादथैनं कशया ताडयेद्य-

---

(सूत्र २१) शिरास्नायुविलग्नमिति सूत्रमनार्षमिति निबन्धकारः। वारंगम्–शस्त्रनालम्।

थोन्नमयेत् शिरोवेगेन शल्यमुद्धरति । दृढां वा वृक्षशाखा-मवनम्य तस्यां पूर्ववद्बद्ध्वोद्धरेत् ॥ २३ ॥

अस्थिके छिद्रमें प्रविष्ट हुए शल्य (भाले) को तथा अस्थिमें गडे हुए, दृढ फँसे हुए (भालेके फल) को पकडकर या यंत्र (स्वस्तिक यंत्र) से मजबूत पकडकर पावोंकी रोक लगाकर खींचले और यदि ऐसे नहीं खिंचे तो बलवान मनुष्योंसे पकडवाकर, यंत्रसे ग्रहण कराकर तथा शल्यकी पकडको नवाकर या उसमें वाढा डालकर धनुषकी डोरसे एक तरफसे मजबूत बांध दे और पंचांगी बन्ध लगादे फिर उसे घोडेके गलबंध या मोहरेसे बांधे और घोडेको ऐसी रीतिसे चाबुक मारे कि वह शिरको (झटकेसे) ऊँचा करे तब उसके शिरके झटकेके जोरसे भाल निकल आती है । अथवा वृक्षकी मजबूत शाखाको नवाकर उससे उसे पूर्ववत् बांधके (और झटकेसे छोडदे इससे भी अस्थिमें गडी भाल निकल आती है) निकालले ॥ २३ ॥

अस्थिदेशोत्तुंडितमष्ठीलाश्ममुद्गराणामन्यतमस्य प्रहारेण विचाल्य यथामार्गमेव ॥ २४ ॥

अस्थिप्रदेशमें उत्तुंडित शल्यको हथोडी, पत्थर तथा मुद्गर इनमेंसे किसीकी चोटसे हिलाकर प्रविष्टमार्गसे निकाले ॥ २४ ॥

यंत्रेण विमृदितकर्णानि कर्णवंत्यनाबाधकरदेशोत्तुंडितानिपुरस्तादेव ॥ २५ ॥ जातुषे कण्ठासक्ते कंठे नाडीं प्रवेश्याग्नितप्तां च शलाकां तथावगृह्य शीताभिरद्भिः परिषिच्य स्थिरीभूतमुद्धरेत् ॥ २६ ॥ अजातुषं जतुमधूच्छिष्टलिप्तया शलाकया पूर्वकल्पेनेत्येके ॥ २७ ॥

मुडी कोर या किंगरेवाले शल्य जो अनाबाधकर देश (बे आटकी जगह) में उत्तुंडित हों तो उन्हें यन्त्रसे कोर सीधे करके (सकोडके) अग्रमार्गहीसे निकाले ॥ २५ ॥ लाखका शल्य यदि कंठमें फँस जाय तो नाडीयन्त्र वा अग्निमें तपाई हुई सलाईको कण्ठकी नालीमें (होशयारीसे) प्रवेश करे जब लाखमें गडजाय तब लाखमें गडी हुई सलाईको ठंढे पानीसे सींचे (तरकरे) जब पिघली हुई लाख जम जाय और सलाई स्थिर हो जाय तब खींचले ॥ २६ ॥ और लाखके सिवाय कोई और वस्तुका शल्य होतो कंठनलिकामेंसे गरम लाख और मोम लगी हुई सलाईको

(सूत्र २४) अपहरेदिति शेषेणान्वयः ।

कंठमें प्रवेश करे जब उसमें शल्य चिमट जाय तब ठंढा पानी डाले जिससे लाख करडी पडजाय तत्पश्चात् उस सलाईको खींचले ऐसे कइयोंका मत है ॥ २७ ॥

अस्थिशल्यमन्यद्वा तिर्यक्कंठासक्तमवेक्ष्य केशोंदुकं दृढैकसूत्रबद्धं द्रवभक्तोपहितं पाययेदाकंठाच्च पूर्णकोष्ठं वामयेद्वमतश्च शल्यैकदेशसक्तं ज्ञात्वा सूत्रं सहसा त्वाक्षिपेत् ॥ २८ ॥ मृदुना वा दंतधावनकूर्चकेनापहरेत् प्रणुदेद्वांतः ॥ २९ ॥

अस्थिका टुकडा या और कोई वस्तु तिरछी कंठमें फस गई हो उसे देखकर बालोंके फंदेसे बना दृढ सूत्रसे बांध पतली वस्तुके संग निगलवा दे और द्रव मांड, यवागू आदि कंठतक भर दे जब पेट भर जाय तब वमन करावे जिससे वह बालोंके फंदे उस वस्तुमें अटक जावें तब सहज २ खींचले ॥ २८ ॥ या कोमल दतोनके कूँचोंसे अटकाके निकाले या भीतरको धकेल दे ॥ २९ ॥

क्षतकंठाय च मधुसर्पिषी लेढुं प्रयच्छेत् त्रिफलाचूर्णं वा मधुशर्करामिश्रम् । उदकमपूर्णमवाक्शिरसमवपीडयेत्क्षुनीयाद्वामयेद्वा भस्मराशौ वा निखनेदामुखात् ॥ ३० ॥

यदि कण्ठमें जखम होजाय तो उसे शहत और घृत मिलाकर चटावे अथवा त्रिफलाका चूर्ण शहत और शर्करामें मिलाकर चटावे । या थोडा पानी देकर नीचा शिर कराया रक्खे और दबाता रहे तथा उदरको हिलाकर वमन करादे (जिससे भीतर गया हुआ रुधिर निकल जाय) और (जो कंठ अधिक फ़ट जाय तो) छनी हुई राखके ढेरमें मुखतलक दबाया रक्खे (जिससे क्षत जुड जाय) ॥३०॥

ग्रासशल्ये तु कंठासक्ते निःशंकमनवबुद्धस्कंधे मुष्टिनाभिहन्यात् स्नेहं मद्यं पानीयं वा पाययेत् ॥ ३१ ॥ बाहुरज्जुलतापाशशल्ये तु कंठपीडनाद्वायुः प्रकुपितः श्लेष्माणं कोपयित्वा स्रोतो निरुणद्धि लालास्रावं फेनागमनं संज्ञानाशं चापादयति । तमभ्यज्य संस्वेद्य शिरोविरेचनं तस्मै तीक्ष्णं दद्यात् रसं च वातघ्नं विदध्यादिति ॥ ३२ ॥ भवंति चात्र—

ग्रासका शल्य यदि कंठमें अटक जाय तो निःशंक वे जान गुद्दीसे नीचे मुकी मारदे अथवा स्नेह या मद्य या पानी पिलावे ॥ ३१ ॥ हाथ वा रस्सी लता या

(वक्तव्य) २८ सूत्रोक्त क्रिया करनेमें बडा भय है कि फंदे नीचेके भागमें फसें तो कंठ फट जाय, मनुष्य मर जाय, इससे इस क्रियाको इस समय नहीं करे ।

फांसीके शल्यसे कंठ घुट जानेसे वायु कुपित होकर कफको कुपित करता है और मार्गोंको रोक देता है तब लार बहने लगती है मुहसे झाग आजाते हैं संज्ञा नष्ट होजाती है तो उसे अभ्यंग कराके स्वेद दिलाकर तीक्ष्ण शिरोविरेचन (नस्य) देवे और वायुनाशक रसोंको देवे ॥ ३२ ॥ यहां श्लोक हैं-

शल्याकृतिं विशेषांश्च स्थानान्यावेक्ष्य बुद्धिमान् ॥ तथा यंत्रपृथक्त्वं च सम्यक्शल्यमथाहरेत् ॥ ३३ ॥ कर्णवंति तु शल्यानि दुःखाहार्याणि यानि च ॥ आददीत भिषक्तस्मात्तानि युक्त्या समाहितः ॥ ३४ ॥

शल्योंकी आकृतिके भेदोंको तथा स्थानोंको तथा यंत्रोंके भेदोंको बुद्धिमान् वैद्य देखकर और विचार करके शल्यको निकाले ॥ ३३ ॥ जो किनारे किंगरेवाले शल्य हैं तथा जो दुःखसे निकालने योग्य शल्य हैं उन्हें वैद्य सावधानी करके युक्तिसे निकाले ॥ ३४ ॥

एतैरुपायैः शल्यं तु नैवं निर्घात्यते यदि ॥ मत्या निपुणया वैद्यो यंत्रयोगैश्च निर्हरेत् ॥ ३५ ॥ शोथपाकौ रुजश्चोग्राः कुर्याच्छल्यमनिर्हृतम् ॥ वैकल्यं मरणं चापि तस्माद्यत्नाद्विनिर्हरेत् ॥ ३६॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

जो उपाय शल्य निकालनेके लिखे हैं यदि उन उपायोंसे शल्य नहीं निकले (नहीं हिले) तो वैद्य अपनी प्रवीण बुद्धिके अनुसार यंत्रोंके योगसे उसे जैसे बने वैसे निकाले ॥ ३५ ॥ विना निकला (शरीरमें रहा हुआ) शल्य शोथपाक (पकाव) दारुण पीडा तथा विकलता करता है अथवा मृत्युकारक होता है इससे यत्न करके शल्यको अवश्यमेव निकाले ॥ ३६ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथातो विपरीताविपरीतव्रणविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे विपरीत और अविपरीत व्रणका जिसमें विज्ञान हो ऐसे अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

फलाग्निजलवृष्टीनां पुष्पधूमांबुदा यथा ॥ स्थापयंति भविष्यत्वं तथारिष्टानि पंचताम् ॥ १ ॥ तानि सौक्ष्म्यात्प्रमादाद्वा तथैवाशु-

व्यतिक्रमात् ॥ गृह्यंते नोद्धतान्यज्ञै मुमूर्षोनत्वसंभवात् ॥ २ ॥

होनेवाले फल, अग्नि और जलकी वृष्टिको यथाक्रमसे जैसे पुष्प, धुवां और बादल सूचित करते हैं अर्थात् पुष्पसे फलकी और धुवाँसे अग्निकी और बादलोंसे वर्षाकी सूचना होती है तैसे ही अरिष्ट (असाध्य लक्षण) मृत्युकी सूचना करदेते हैं ॥ १ ॥ वे अरिष्ट (असाध्य लक्षण) स्वल्प होनेसे या प्रमादसे तथा शीघ्र पलट जानेसे अज्ञ (मूर्ख) वैद्योंसे नहीं जाने जासकते यह असंभवसे नहीं जाने जाते ऐसा नहीं किंतु उद्धतभी अरिष्ट सौक्ष्म्यत्व आदिसे अज्ञ नहीं जान सकते अपितु पूर्ण वैद्य मरनेवालेके अरिष्ट लक्षणोंको जान सकते हैं ॥ २ ॥

ध्रुवं तु मरणं रिष्टे ब्राह्मणैस्तत्किलामलैः ॥ रसायनतपोजाप्यतत्परैर्वा निवार्यते ॥३॥ नक्षत्रपीडा बहुधा यथा कालाद्विपच्यते ॥ तथैवारिष्टपाकं च ब्रुवते बहुधा जनाः ॥ ४ ॥ असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन् गतायुषः ॥ अतो रिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक् ॥ ५ ॥

अरिष्ट (असाध्यव्याधि) वालेका मरना तो निश्चय है ही परंतु कदाचित् शुद्ध रसायनके जाननेवाले तप और जपमें तत्पर ऐसे ब्राह्मणोंसे निवारण भी हो जाना संभव है ॥ ३ ॥ जैसे बहुधा नक्षत्रपीडा (ग्रहपीडा) काल पाकर पक जाती है उसी भांति अरिष्टभी काल पाकर पकजाता है ऐसे बहुत सज्जन कहते हैं ॥ ४ ॥ जिसकी आयु क्षीण होगई हो उस मनुष्यकी प्रतिक्रिया (चिकित्सा) करके संसारमें असिद्धिको प्राप्त होता है इससे कुशल वैद्य बलसे अरिष्ट लक्षणोंको देखले ॥ ५ ॥

गंधवर्णरसादीनां विशेषाणां समासतः ॥ वैकृतं यत्तदाचष्टे व्रणिनः पक्वलक्षणम् ॥ ६ ॥ कटुस्तीक्ष्णश्च विस्रश्च गंधस्तु पवनादिभिः ॥ लोहगंधिस्तु रक्तेन व्यामिश्रैः सांनिपातिकः ॥७॥ लाजातसीतैलसमाः किंचिद्विस्राश्च गंधतः ॥ ज्ञेया प्रकृतिगंधाः स्युरतोन्यद्गंधवैकृतम् ॥ ८ ॥

रोगी मनुष्यके विशेष गंध, वर्ण (रूप), रस आदि संक्षेपसे यदि विकृति (विकार) को प्राप्त हों तब उस रोगीके पाक (मृत्यु) के लक्षण जानने ॥ ६ ॥ वातादि दोषोंसे कटु, तीक्ष्ण और आमगंधि होती है अर्थात् वायुसे कटु, पित्तसे तीक्ष्ण और कफसे आमगंधि होती है और रक्तसे लोहगंधि होती है तथा सन्नि-

पातसे मिश्रित गंधि होती है ॥ ७ ॥ लाजा, अतसी और तैलके समान कुछ आमगंधियुक्त गंधि प्राकृत जाननी इससे अन्य वैकृत (विकारयुक्त) गंध जानो॥ ८॥

मद्यागुर्वाज्यसुमनःपद्मचंदनचंपकैः ॥ सगंधा दिव्यगंधाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ॥९॥ श्ववाजिमूषिकध्वांक्षपूतिवल्लूरमत्कुणैः॥ सगंधाः पंकगंधाश्च भूमिगंधाश्च गर्हिताः ॥ १० ॥

मद्यकेसी गंध अगरकीसी घृतकेसी पद्मकेसी चन्दनकेसी दिव्य चंपाकेसी गंधके मृत्युवाले मनुष्यके व्रण होते हैं ॥ ९ ॥ कुक्कुर, अश्व, मूषक, ध्वांक्ष (काकपक्षी) दुर्गंधित मांस तथा मत्कुण (खटमल) केसी गंध तथा कीचडकेसी गंध और पृथ्वीकेसी गंधभी अनिष्ट होती है ॥ १० ॥

व्योमकुंकुमकंकुष्ठसवर्णाः पित्तकोपतः ॥ न दह्यंते न चूष्यंते भिषक् तान् परिवर्जयेत् ॥ ११॥ कंडूमंतः स्थिराः श्वेताः स्निग्धाः कफनिमित्ततः॥दूष्यंते च विदह्यंते भिषक् तान् परिवर्जयेत्॥१२॥ कृष्णास्तु ये तनुस्रावा वातजा मर्मतापिनः ॥ स्वल्पामपि न कुर्वंति रुजं तान् परिवर्जयेत् ॥ १३ ॥

आकाश, केशर और मुरदासंगके तुल्य वर्ण हो जिनमें न दाह हो न चोष हो ऐसे पित्तकोपजनित व्रणोंको वैद्य त्यागदे ॥ ११ ॥ खाजवाले, स्थिर, श्वेत, चिकने, कफ व्रण जो पीडा करें दाहयुक्त हों उन्हे वैद्य त्यागदे ॥ १२ ॥ जो काले कम झिरनेवाले मर्मको तपानेवाले वातव्रण उनमें थोडाभी दरद नहो तो उन्हे त्यागदे (वे असाध्य हैं) ॥ १३ ॥

क्ष्वेडंति घुर्घुरायंते ज्वलंतीव च ये व्रणाः ॥ त्वङ्मांसस्थाश्च पवनं सशब्दं विसृजंति ये ॥ १४ ॥ ये च मर्मस्वसंभूताः भवंत्यत्यर्थवेदनाः॥ दह्यंते चांतरत्यर्थं बहिः शीताश्च ये व्रणाः ॥ १५॥ दह्यंते बहिरत्यर्थं भवंत्यंतश्च शीतलाः ॥ शक्तिकुंतध्वजरथा वाजिवारणगोवृषाः ॥ १६ ॥ येषु चाप्येवमभासेरन् प्रासादाकृतयस्तथा । चूर्णावकीर्णा इव ये भांति वा न च चूर्णिताः ॥ १७ ॥

(सूत्र ११) व्योमवर्णम्–नीलवर्णम् । व्योम इत्यत्र श्यामा इति वा पाठः । श्यामा–प्रियंगुः गुन्द्रा तद्वद्वर्णा कंकुष्ठं पीतप्रभधातुविशेषः (मुरदासंग इति लोके) तथाच कंकुष्ठं सद्योजातस्य दंतिनः वर्चश्चेति (रसरत्नसमुच्चयः)

जो व्रण खटखट शब्द करे तथा घुरघुर शब्द करे या जलता हुआसा मालूम हो और त्वचा मांसमें स्थित व्रण शब्दयुक्त वायुको छोडते हों। (उन्हे विपरीत जाने) ॥ १४ ॥ जो व्रण मर्मस्थानोंमें तो नहीं हों पर उनमें अतिपीडा हो अथवा भीतरसे दाह हो और बाहरसे शीतल जो व्रण हों (वे विपरीत होते हैं) ॥ १५ ॥ और बाहरसे गरम होकर जो भीतरसे ठंढे हों तथा जिनमें शक्ति, कुंत, ध्वजा, रथ, घोडे, हाथी, गौ, वृषभ आभासित हों (इनकेसे चिह्न दीखें) तथा जिसमें महलकेसे चिह्न हों और जो चूर्ण करके अवकीर्णसे दीखें और चूर्णित न हों (तो विपरीत हैं) ॥ १६ ॥ १७ ॥

प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ॥ प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा-स्तेषां च मर्मसु ॥ १८ ॥ क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिद्ध्यंति च ये व्रणाः॥वर्जयेत्तान्भिषक्प्राज्ञः संरक्षन्नात्मनो यशः ॥ १९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

जिन व्रणोंमें बल और मांसका क्षय हो तथा श्वास, खांसी और अरुचिकी पीडा हो और राध (पीप) रुधिर बढते हों और जिनके मर्ममें व्रण हों ॥ १८॥ और जो व्रण यथार्थ क्रियारम्भसे चिकित्सा होनेपर भी सिद्ध (अच्छे) नहीं बुद्धिमान् वैद्य अपने यशकी रक्षा करके उन्हें त्यागदे (चिकित्सा न करे)॥ १९ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थानेऽष्टाविंशोध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोध्यायः २९.

अथातो विपरीताविपरीतदूतशकुनस्वप्ननिदर्शनीय-मध्यायं व्याख्यास्यामः

अब यहांसे विपरीत, अविपरीत (शुभाशुभ) दूत शकुन और स्वप्न इनका जिसमें निदर्शन हो ऐसे अध्यायका व्याख्यान करते हैं।

दूतदर्शनसंभाषा वेषाश्चेष्टितमेव च ॥ ऋक्षं वेला तिथिश्चैव निमित्तं शकुनोऽनिलः ॥ १ ॥ देशो वैद्यस्य वाग्देहमनसां च विचेष्टितम् ॥ कथयंत्यातुरगतं शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ २ ॥

(वक्तव्य सूत्र १-२) दूतका दर्शन कैसा है शुभ वाणी बोला या अशुभ इत्यादि तथा कैसा नक्षत्र है वेला समय कैसी है कारण क्या है कैसे शकुन हुए कैसा वायु चल रहा है रोगीको हित है या अहित इसी प्रकार वैद्यका देश अर्थात् रोगीके पास आकर कहां बैठा या खडे खडेही चला गया इत्यादि तथा वैद्यने क्या बात कही देहकी आकृति, नाक, भौं चढाये (असाध्य समझा) या मनकी चेष्टा-

दूतका दर्शन (रूप), भाषा (वाणी), वेष तथा चेष्टित (चेष्टा), नक्षत्र, लग्न या समय, तिथि और निमित्त (कारण) और शकुन तथा पवन ॥ १ ॥ इसी प्रकार वैद्यके भी देश, वाणी, देहकी और मनकी चेष्टा; रोगीके शुभ और अशुभकी सूचना करदेते हैं ॥ २ ॥

प्रथम दूतके लक्षण।

पाखण्डाश्रमवर्णानां सपक्षाः कर्मसिद्धये ॥ त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपक्षके ॥ ३ ॥

यदि दूत पाखंडी हो तो पाखंड पक्ष धारण करनेवाला और आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास, इन) में स्थित अपना पक्ष धारण करनेवाला इसी भांति वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र,) अपने पक्ष धारण करे हुए हों तो कर्मकी सिद्धि जाने और विपक्षमें अर्थात् अपने २ वेष और कार्यसे भिन्न हों तो श्रेष्ठ नहीं ॥ ३ ॥

नपुंसकः स्त्री वहवो नैककार्या असूयकाः॥गर्दभोष्ट्ररथप्राप्ताः प्राप्ताः स्युर्वा परंपरा ॥४॥ वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ पाशदण्डायुधधराः पांडुरेतरवाससः ॥५॥ आर्द्रजीर्णापसव्यैकमलिनध्वस्तवाससः ॥ न्यूनाधिकांगा उद्विग्ना विकृतारौद्ररूपिणः६॥

नपुंसक तथा स्त्री यदि रोगीके दूत हों तो शुभ नहीं (क्योंकि ये ठीक हाल नहीं कह सकते) तथा वहुतसे दूतभी शुभ नहीं जो एकही कार्यमें स्थित हों तथा निंदक दूतभी अशुभ होते हैं-तथा गधे या ऊँटोंके रथमें जो दूत बैठकर आवें या आगे पीछे लगातार बांधकर आवें या पाश, दण्ड और शस्त्र धारण करके आवें तथा कृष्ण वस्त्र धारण किये हों तथा आर्द्र (गीला), पुराना वस्त्र धारण किये हो अपसव्य हो एकही वस्त्रवाला, मलिन फटे वस्त्र पहिरे हो, न्यून अंगवाला (लंगडा लूला आदि), अधिक अंग (छंगा आदि) उद्विग्न तथा विकृत अंगवाला और भयानक रूपवाला दूतभी शुभ नहीं ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

-सुस्तमन हो गया या प्रसन्न रहा इत्यादिसे रोगका शुभाशुभ जाना जा सकता है। दूतके लक्षण दैवयोगको प्रगट करते हैं और वैद्यके चिह्नोंसे वैद्यका अंतर्भाव जाना जा सकता है दूतके चिह्न वैद्य देखे और परिचारक देखे।

(सूत्र ४) वहवो नैककार्या इति नैकक्रियावंतः असूयकाः परस्परं निंदाकारकाः । अथवा वैद्याग्रे आतुरस्य, आतुराग्रे वैद्यस्य निंदाकारका दूता गर्हिताः । (सूत्र ५) पाण्डुरेतरवाससः पांडुरं श्वेतवर्ण तदितरवस्त्रधारका एवंभूता दूता ये वैद्यमुपसर्पंति ते चापि गर्हिता इत्यनेन सर्वत्रान्वयः ।

रूक्षनिष्ठुरवादाश्चाप्यमांगल्याभिधायिनः । छिंदन्तस्तृणकाष्ठानि स्पृशंतो नासिकां स्तनम् ॥ ७ ॥ वस्त्रान्तानामिकाकेशनखरोमदशस्पृशः ॥ स्रोतोवरोधहृद्दंडमूर्द्धोरःकुक्षिपाणयः ॥ ८ ॥ कपालोपलभस्मास्थितुषांगारकराश्च ये ॥ विलिखंतो महीं किंचिन्मुंचंतो लोष्टभेदिनः ॥ ९ ॥

रूखे और कठोर वचन कहेन अमांगलिक शब्द बोलने तृण और काष्ठको तोडतेहुए नाक, चूंची छूते हुए ॥ ७ ॥ वस्त्रके सिरेको अनामिकाको बालोंको नखूनको रोमोंको दंतोंको स्पर्श करते हुए स्रोतों (छिद्रों) को रोकते हुए हृदय, कपोल, मूर्द्धा, उर और कुक्षि इनपर हाथ धरे हुए ॥८॥ कपाल(ठेकरा)पत्थर, भस्म-हड्डी, बरफ, अंगारा इनमेंसे कोई वस्तु हाथमें लिये हों पृथ्वीको खोदते हों कुछ फेंकते हों लोष्टको तोडते फोडते हों (ऐसे दूत शुभ नहीं) ॥ ९ ॥

तैलकर्दमदिग्धांगा रक्तास्रगनुलेपनाः ॥ फलं पक्वमसारं वा गृहीत्वान्यच्च तद्विधम् ॥ १० ॥ नखैर्नखांतरं वापि करेण चरणं तथा ॥ उपानच्चर्महस्ता वा विकृतव्याधिपीडिताः ॥ ११ ॥ वामाचारा रुदंतश्च श्वासिनो विकृतेक्षणाः ॥ याम्यां दिशं प्रांजलयो विषमैकपदे स्थिताः ॥ वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ १२ ॥

तैल या कीचड शरीरपर मले हों लाल रंगकी माला या तिलक धारण किये हों बहुत पका निःसार हुआ फल या ऐसा ही कोई और वस्तु लिये हों ॥ १० ॥ नखूनसे नखून रगडते हों पावमें हाथ लगाये हों जूता या चर्म हाथमें लिये हों विकृत व्याधिसे पीडित हों ॥ ११ ॥ वाम आचार करते हों रोते हों सांस मारते हों विकृत दृष्टिवाले हों दक्षिण दिशाको अंजली किये हों टेढे या एक पैरसे खडे हुए हों वैद्यके पास ऐसे दूत जायँ तो शुभ नहीं ॥ १२ ॥

दक्षिणाभिमुखं देशे त्वशुचौ वा हुताशनम् ॥ ज्वलयंतं पचंतं वा क्रूरकर्मणि चोद्यतम् ॥ १३ ॥ नग्नं भूमौ शयानं वा वेगोत्सर्गेषु वाऽशुचिम् ॥ प्रकीर्णकेशमव्यक्तं स्विन्नं विक्लवमेव च ॥१४ ॥

(सूत्र ११) पूर्वार्द्धे स्पृशंत इति शेषेणान्वयः (सूत्र १३ । १४) अशुची देशे स्थितं दक्षिणाभिमुखे हुताशनं ज्वलयंतम् इत्यादि एवंभूतं वैद्यं ये दूताः उपसर्पंति ।

वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ वैद्यस्य पैत्र्ये दैवे वा कार्ये चोत्पातदर्शने ॥ १५ ॥

ऐसे समय वैद्यके पास जो दूत जायँ वे भी शुभ नहीं जैसे वैद्य दक्षिणाभिमुख हो अशुद्ध जगह बैठा हो अग्नि जलाता हो कोई वस्तु पकाता हो किसी क्रूर कार्यमें उद्यत हो ॥१३॥ नंगा हो पृथ्वीमें लेटा हो मलमूत्रादि वेगोंसे अशुद्ध हो बाल बिखरे हुए हों गुप्त हो स्वेदित हो विह्वल हो ॥१४॥ ऐसे वैद्यके पास दूतका जाना शुभ नहीं तथा जब वैद्य पितृकार्य (श्राद्धादि) तथा दैवकार्य (हवनादि) करता हो तथा उत्पात दर्शनमें प्रवृत्त हो अर्थात् आग लगी हुई बिजली आदि उत्पात दर्शन कर रहा हो तब भी रोगसमाचार कहना उचित नहीं ॥ १५ ॥

मध्याह्ने चार्द्धरात्रे वा संन्ध्ययोः कृत्तिकासु च । आर्द्राश्लेषा मघामूलपूर्वासु भरणीषु च ॥१६॥ चतुर्थ्यां वा नवम्यां वा षष्ठ्यां संधिदिनेषु च । वैद्यं य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः ॥ १७ ॥

मध्याह्नमें, अर्द्धरात्र, प्रभात और सायंकालकी संधियोंमें तथा कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, मघा, मूल, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और भरणी इन नक्षत्रोंमें ॥ १६ ॥ चौथ, नवमी, छठ, संधिके दिन (पूर्णिमा आदि या मासांत और मासादि) इनमें जो दूत वैद्यके पास (प्रथम) जाय तो अशुभ है ॥ १७ ॥

स्विन्नाभितप्ता मध्याह्ने ज्वलनस्य समीपतः ॥ गर्हिताः पित्तरोगेषु दूता वैद्यमुपागताः ॥ १८ ॥ त एव कफरोगेषु कर्मसिद्धिकराः स्मृताः॥ एतेन शेषं व्याख्यातं बुध्वा संविभजेत्तु तत् ॥ १९ ॥ रक्तपित्तातिसारेषु प्रमेहेषु तथैव च ॥प्रशस्तो जलरोधेषु दूतवैद्यसमागमः । विज्ञायैवं विभागं तु शेषं बुद्ध्येत पण्डितः ॥ २० ॥

पसीना टपकते हुए तपायमान तथा मध्याह्नमें अग्निके समीपसे जो दूत वैद्यके पास आये हों तो पित्तके रोगोंमें निंदित (अशुभ) हैं ॥ १८ ॥ और ये ही कफके रोगोंमें सिद्धिके करनेवाले (शुभदायक) हैं इन बातोंसे ही व्याख्यान किये हुएको जानकर शेष सब जगह शुभाशुभका विभाग करना (जानना) चाहिये ॥ १९ ॥ रक्तपित्तरोग और अतिसार तथा प्रमेहोंमें ऐसे समयमें वैद्य और दूतका समागम श्रेष्ठ होता है कि जब जलका रोक हो (मेघ बरसकर थंभा हो

(सूत्र१६) भरणीषु इत्यत्र बहुवचनेन भरण्यादिषु असन्नक्षत्रेपु इत्यभिप्रायः । संधिदिनेषु मासऋतुवर्षस्य संधिदिनं सौरमासस्य संधिदिनं रविसंक्रांतिति आद्यंतदिनद्वयं चांद्रमासे अमा पूर्णा चेत्यादि ।

वा मोरीका पानी बंध हुआ हो इत्यादि) और इसके विपरीत अशुभ ऐसेही विभाग भेदको जानकर शेष सब जगह पण्डित वैद्य समझलें ॥ २० ॥

दूतकी श्रेष्ठता ।

शुक्लवासाः शुचिर्गौरः श्यामो वा प्रियदर्शनः ॥ स्वस्यां जातौ स्वगोत्रो वा दूतः कार्यकरः स्मृतः ॥ २१ ॥ गोयानेनागतस्तुष्टः पादाभ्यां शुभचेष्टितः ॥ धृतिमान्विधिकालज्ञः स्वतंत्रः प्रतिपत्तिमान् ॥ २२ ॥ अलंकृतो मंगलवान्दूतः कार्यकरः स्मृतः ॥ २३ ॥

शुक्ल उज्ज्वल वस्त्र पहिरे हुए पवित्र गौरवर्ण अथवा सांवला मनोहर दिखाई दे ऐसा दूत हो और रोगीकी अपनी जाति और गोत्रका हो ऐसा दूत कार्यकी सिद्धि करनेवाला होता है ॥ २१ ॥ बैलोंकी गाडीसे आया हुआ तुष्ट अथवा पैदल आया हुआ शुभ चेष्टावाला धैर्यवाला विधि और समयको जाननेवाला स्वतंत्र और कार्यदक्ष ॥ २२ ॥ अलंकृत (भूषणवाला) मांगलिक ऐसा दूत कार्यकी सिद्धि करनेवाला (शुभ) होता है ॥ २३ ॥

स्वस्थं प्राङ्मुखमासीनं समे देशे शुचौ शुचिम् । उपसर्पति यो वैद्यं स च कार्यकरः स्मृतः ॥ २४ ॥

वैद्य स्वस्थ हो पूर्वाभिमुख बैठा हो समान देश और पवित्र देशमें हो पवित्रता युक्त हो ऐसे समय वैद्यके पास जो दूत जाय तो कार्यकी सिद्धि करनेवाला होता है ॥ २४ ॥

शकुनविज्ञान ।

मांसोदकुंभातपत्रविप्रवारणगोवृषाः ॥ शुक्लवर्णाश्च पूज्यंते प्रस्थाने दर्शनं गताः ॥ २५ ॥ स्त्री पुत्रिणी सवत्सा गौर्वर्द्धमानमलंकृता ॥ कन्या मत्स्याः फलं चामं स्वस्तिकं मोदका दधि ॥ २६ ॥

मांस, जलका घडा, छत्र, ब्राह्मण, हाथी, गौ, वृषभ और श्वेत वस्तु (मोती शंखादि), प्रस्थानके समयमें दीखने शुभ हैं ॥ २५ ॥ संतानसहित स्त्री और बछडे युक्त गौ, बढती हुई वस्तु (दूर्वादि) और भूषणयुक्त कन्या, मछली, कच्चे फल, स्वस्तिक (मोतीमालादि), मोदक और दधि ये भी शुभ हैं ॥ २६ ॥

(सूत्र २४) स्वस्थं चिंतारोगादिरहितम् । (सूत्र २५) मांसमाममेव ग्राह्यम् । उदकुंभः पूर्णो रिक्तो वा घट एव गृह्यते । शुक्लवर्णाः–कार्पासास्थितक्रभस्मक्षारादिव्यतिरिक्ताः दध्यक्षतपुष्पशुक्तिमौक्तिकादयो ग्राह्याः । (सूत्र २६) स्वस्तिकं मुक्तादामविशेष इति डल्हनः । शब्दस्तोमस्तु स्वस्ति शुभाय इत तत् स्वस्तिकमिति–

हिरण्याक्षतपात्रं वा रत्नानि सुमनो नृपः ॥ अप्रशांतोऽनलो वाजी हंसश्चाषः शिखी तथा ॥ २७ ॥ ब्रह्मदुंदुभिजीमूतशंखवेणुरथस्वनाः॥ सिंहगोवृषनादाश्च ह्लेषितं गजबृंहितम् ॥ २८ ॥ शस्तं हंसरुतं नृणां कौशिकं चैव वामतः ॥ प्रस्थाने यायिनः श्रेष्ठा वाचश्च हृदयंगमाः ॥ २९ ॥

सुवर्ण, अक्षतपात्र (तंदुलोंसे भरा पात्र या विना फूटा पात्र), रत्न, पुष्प और प्रजापालक राजा, जलती हुई अग्नि, घोडा, हंस और चापनामक पक्षी तथा मयूर (ये शकुन शुभ हैं) ॥ २७ ॥ वेदध्वनि, नगारा, बादल, शंख, वंशी, रथ इनका शब्द तथा सिंह, गौ, वृषभकी वाणी, ह्लेषित अर्थात् घोडेका हिनसना तथा गजबृंहित (हाथीकी आवाज) ॥ २८ ॥ हंसका शब्द तथा बांयेको उल्लूकशब्द मनुष्योंके प्रस्थानमें श्रेष्ठ होते हैं। तथा (राजभवनमें) जानेवाले मनुष्य और हृदयको सुख देनेवाली वाणी भी श्रेष्ठ होती है ॥ २९ ॥

पत्रपुष्पफलोपेतान्सक्षीरान्नीरुजो द्रुमान् ॥ आश्रिता वा नभोवेश्मध्वजतोरणवेदिकाः ॥ ३० ॥ दिक्षु शांतासु वक्तारो मधुरं पृष्ठतोऽनुगाः ॥ वामा वा दक्षिणा वापि शकुनाः कर्मसिद्धये॥३१॥

पत्र, पुष्प और फल युक्त तथा दुग्ध युक्त निरोग वृक्षोंपर बैठे हुए, आकाशमें उडते हुए, महल, ध्वजा तोरण, वेदिका इनपर स्थित तथा शांत दिशाओंमें मधुर वचन बोलनेवाले पक्षी तथा पीछे पीछे चलनेवाले तथा बायें और दाहिने हों तो कार्य सिद्धि करनेवाले होते हैं अर्थात् हरेभरे फले फूले वृक्षादिपर स्थित मधुर वचन बोलनेवाले पंक्षी आगे हों या पीछे बायें हों या दाहिने हों सर्वत्र शुभदायक ही होते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥

शुष्केऽशनिहतेऽपत्रे वल्लीनद्धे सकंटके ॥ वृक्षेऽथवाऽश्मभस्मास्थिविट्तुषांगारपांसुषु ॥ ३२ ॥ चैत्यवल्मीकविषमस्थिता दीप्तखरस्वराः ॥ पुरतो दिक्षु दीप्तासु वक्तारो नार्थसाधकाः ॥ ३३ ॥

सूखे हुए बिजलीके मारे हुए पत्ररहित तथा बेलसे जकडे या दबाये हुए कांटों युक्त वृक्षपर अथवा पत्थर, भस्म, अस्थि, विष्ठा, तुष, कोयला, रेतपर स्थित हुए

(सूत्र २८ । २९) ब्रह्मस्वनो वेदध्वनिः । ह्लेषितम्—अश्वशब्दः । कौशिकम्—उलूकशब्दः । यायिनः राजभवनगंतारः । उलूकशब्दस्तु वामत एव श्रेष्ठः, अन्ये तु दक्षिणे सम्मुखे शुभदाः । (सूत्र ३२) अंगारेऽग्निदग्धोऽग्निसंक्रांतोऽग्निशून्यो वा इत्यत्र त्वग्निशून्यस्यैव ग्रहणम् । (सूत्र ३३) चिताभवं चैत्यम् ।

पक्षी ॥ ३२ ॥ चैत्य (चिता) चिह्न (छतरी मुकबरा आदि) बँबई तथा विषम वस्तु (फांसीका काष्ठ शूली कैदखाना आदि) इनपर स्थित हुए प्रदीप्त और खर कुटिल शब्द करते हुए पक्षी सम्मुख तथा दीप्त दिशाओंमें हों तो कार्य सिद्ध करने वाले नहीं (अर्थात् शकुन शुभ नहीं) ॥ ३३ ॥

पुन्नामानः खगा वामाः स्त्रीसंज्ञा दक्षिणाः शुभाः ॥ दक्षिणाद्वामगमनं प्रशस्तं श्वशृगालयोः ॥ ३४ ॥ वामे नकुलचाषाणां नो भयं शशसर्पयोः ॥ भासकौशिकयोश्चैव न प्रशस्तं किलोभयम् ॥ ३५ ॥

पुरुष नामवाले पक्षी बायेंको और स्त्रीसंज्ञक पक्षी दाहिनेको शुभ होते हैं तथा कुत्ते और गीदड़का दाहिनेसे बायेंको जाना श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ नकुल और चाषपक्षी बायेंको आवें तो श्रेष्ठ नहीं है पर शश (खरगोश) और सर्पका दोनों तरफको गमन करना (बायेंसे दाहिनेको या दाहिनेसे बायेंको गमन करना) श्रेष्ठ नहीं अर्थात् शश और सर्पका आगेसे दूसरी ओर निकल जाना ही श्रेष्ठ नहीं एवं भासपक्षी (गीध) और उल्लूका भी दोनों तरफ गमन श्रेष्ठ नहीं ॥ ३५ ॥

दर्शनं वा रुतं चापि न गोधाकृकलासयोः ॥ दूतैरनिष्टैस्तुल्यानामशस्तं दर्शनं नृणाम् ॥ ३६ ॥ कुलत्थतिलकार्पासतुषपाषाणभस्मनाम् ॥ पात्रं नेष्टं तथांगारतैलकर्दमपूरितम् ॥ ३७ ॥ प्रसन्नेतरमद्यानां पूर्णं वा रक्तसर्षपैः ॥ शवकाष्टपलाशानां शुष्काणां पथि संगमाः ॥ ३८ ॥ नेष्यंते पतितांतस्थदीनांधरिपवस्तथा ॥ ३९ ॥

गोधा (गोह) और कृकलास (गिरगट) इनका दर्शन और शब्द शुभ नहीं तथा अनिष्ट (कार्य न सिद्धि करनेवाले) दूतोंके तुल्य मनुष्योंके दर्शनभी अशुभ ही जानना ॥ ३६ ॥ कुलथी, तिल, कपासके पदार्थ, तुष, पत्थर, भस्म इनसे भरा पात्र तथा अंगारों या कीचसे भरा पात्र शुभ नहीं ॥ ॥ ३७ ॥ प्रसन्नसे पृथक् सब भांतिकी मदिरा तथा लाल सरसोंसे भरा पात्र मुरदेका काष्ठ और सूखा पलाश इनका मार्गमें संगम अनिष्ट है (या मुरदा,

---

(सूत्र ३५) शशसर्पयोरुभयता गमनमप्रशस्तमित्यत्र तंत्रांतरोक्तम्–"मार्गं छिदंति मार्जाराः सर्पा वा कृकलासकाः । गोधा वापि प्रवेशे च पदमेकं न तु व्रजेत् ।" इति ।

(सूत्र ३६) रुतं–खे पशुपक्षिप्रभृतीनां शब्दे–(श. स्तो.) (सूत्र ३८) रक्तसर्षपैर्वे पूर्णं नेष्टं नतु श्वेतसर्षपैः पूर्णं तस्य शुभकरत्वात्–रुदनरहितः शवस्तु शुभः, रुदनसहितोऽनिष्ट इति तंत्रांतरोक्तिः ।

काष्ठ, पलाश, तथा शुष्क पदार्थोंका संगम मार्गमें शुभ नहीं) ॥ ३८ ॥ पतितोंमें बैठनेवाले कंगाल, अंधे शत्रु ये भी शुभ नहीं ॥ ३९ ॥

मृदुः शीतोऽनुकूलश्च सुगन्धिश्चानिलः शुभः ॥ खरोष्णोऽनिष्टगन्धश्च प्रतिलोमश्च गर्हितः ॥ ४० ॥

कोमल, शीतल, अनुकूल तथा सुगंधित वायु श्रेष्ठ शकुन होता है तथा तीक्ष्ण, गरम, दुर्गंधित और प्रतिकूल हो तो गर्हित अर्थात् शुभ नहीं ॥ ४० ॥

ग्रन्थ्यर्बुदादिषु सदा छेदशब्दश्च पूजितः ॥ विद्रध्युदरगुल्मेषु भेदशब्दस्तथैव च ॥ ४१ ॥ रक्तपित्तातिसारेषु रुद्धशब्दः प्रशस्यते ॥ एवं व्याधिविशेषेण निमित्तमुपधारयेत् ॥ ४२ ॥

ग्रंथि, अर्बुद इत्यादि रोगोंकी चिकित्सार्थ जानेमें छेद ऐसे शब्द सुनाई पडना श्रेष्ठ है तथा विद्रधि, उदररोग, गुल्म इनमें भेद अर्थवाचक शब्दश्रवण श्रेष्ठ है ॥ ४१ ॥ रक्तपित्त और अतिसारमें रुद्ध अर्थवाचक (रुक गया या बन्द हो गया इत्यादि) शब्दश्रवण श्रेष्ठ है ऐसो ही सब व्याधियोंमें निमित्तको समझकर शुभाशुभ जाने ॥ ४२ ॥

तथैवाक्रुष्टहाकष्टमाक्रंदरुदितस्वनाः ॥ छर्द्या वातपुरीषाणां शब्दो वै गर्दभोष्ट्रयोः ॥ ४३ ॥

ऐसे ही आक्रुष्ट (क्रोधके वचन) हा कष्ट (हाय रे मरा रे इत्यादि) माक्रंद (दुखः मत दो इत्यादि) तथा रोनेके शब्द तथा वमनका शब्द, अपानवायु और पुरीषका शब्द तथा गधे और ऊंटका शब्द (ये हरेक रोगमें श्रेष्ठ नहीं) ॥ ४३ ॥

प्रतिषिद्धं तथा भग्नं क्षुतं स्खलितमाहतम् ॥ दौर्मनस्यं च वैद्यस्य यात्रायां न प्रशस्यते ॥ ४४ ॥ प्रवेशेऽप्येतदुद्देशाद्वेक्ष्यं च तथातुरे ॥ प्रतिद्वारं गृहे वास्य पुनरेतन्न गण्यते ॥ ४५ ॥

वैद्यको चलते समय रोकना, मना करना, कुछ टूट फूट जाना, छींक होना, स्खलन (वीर्यादिस्खलन) होना आहत (अवरोध) तथा मन बिगडना इत्यादि शुभ नहीं ॥ ४४ ॥ इसी प्रकार प्रवेशमेंभी गमनकेसे उद्देशोंसे देखे तथा रोगीमें (अर्थात् नाडी आदि देखते) समय और घरके द्वारोंपर इन शकुनोंका विचार करे और फिर विचार नहीं रक्खे (शुभाशुभ शकुन फिर नहीं गिने जाते) ॥ ४५ ॥

(सूत्र ४०) अनुकूलो वायुर्गंतव्यदिगभिमुखः तद्विपरीतः प्रतिलोमः ।

केशभस्मास्थिकाष्ठाश्मतुषकार्पासकंटकाः ॥ खट्वोर्ध्वपादा मद्या-पो वसा तैलं तिलास्तृणम् ॥ ४६ ॥ नपुंसकव्यंगभग्ननग्नमुंडासि-ताम्बराः ॥ प्रस्थाने वा प्रवेशे वा नेष्यंते दर्शनं गताः ॥ ४७ ॥ भांडानां संकरस्थानां स्थानात्संचरणं तथा ॥ निखातोत्पाटनं भंगः पतनं निर्गमस्तथा ॥ ४८ ॥

केश, भस्म, हड्डी, काष्ठ, पत्थर, तुष, कपासके वस्तु (गाले आदि) कंटक (कांटे), ऊपरको पायोंवाली (औंधी) खाट, मदिरा, जल (नदी आदि), चरबी, तेल, तिल, तृण (सूखा घास फूस आदि) ॥ ४६ ॥ नपुंसक, विकारयुक्त अंगवाला, कटा हुआ, नंगे शिर और असितवस्त्र धारण किये हुए इनका दर्शन प्रस्थान तथा प्रवेशमें शुभ नहीं ॥ ४७ ॥ तथा इकट्ठे धरे हुए पात्रोंका गिरना पृथ्वी आदि खोदना कोई वस्तु उखाडना तोडना गिर पडना निकल जाना (ये भी शुभ नहीं) ॥ ४८ ॥

वैद्यासनावसादो वा रोगी वा स्यादधोमुखः॥ वैद्यं संभाषमाणोंगं कुड्यमास्तरणानि वा ॥ ४९ ॥ प्रमृद्याद्वा धुनीयाद्वा करौ पृष्ठं शिरस्तथा ॥ हस्तं चाकृष्य वैद्यस्य न्यसेच्छिरसि चोरसि ॥ ५० ॥ यो वैद्यमुन्मुखः पृच्छेदुन्मार्ष्टि स्वांगमातुरः ॥ न स सिध्यति वैद्यो वा गृहे यस्य न पूज्यते ॥ ५१ ॥

वैद्यके आसनमें शिथिलता हो (देरतक आलस्यमें बैठाका बैठा ही रहजाय) या रोगी नीचेको मुख किये हो वैद्यसे बतलाते अंग, भीत, बिछोना ॥ ४९ ॥ इन्हें मले या हाथ, पीठ, शिर इन्हें कँपावे और वैद्यका हाथ खींचकर अपने शिर तथा कलेजे पर धरे ॥ ५० ॥ ऊपरको मुख पसारके वैद्यसे पूछे तथा रोगी अपने शरीरसे इस समय मैल आदिको शुद्ध करे अथवा जिसके घर वैद्यका पूजन नहीं होता वे रोगी सिद्धिको प्राप्त नहीं होते ॥ ५१ ॥

भवने पूज्यते वापि यस्य वैद्यः स सिध्यति । शुभं शुभेषु दूतादिष्वशुभं ह्यशुभेषु च । आतुरस्य ध्रुवं तत्स्याद्दूतादेर्लक्षयेद्भिषक् ॥ ५२ ॥

जिसके घरमें वैद्यका (ठीक २) पूजन (सत्कार) होता है वह रोगी भी सिद्ध होता है । शुभ दूतादिसे शुभ और अशुभ दूतादिकसे अशुभ फल होता है ।

(सूत्र ४९) प्रमृद्यात् इति परेणान्वयः ।

यह दूत और शकुन आदिका फल रोगीके लिये अवश्य होता है इसलिये वैद्य इन्हें अवश्यमेव विचारे ॥ ५२ ॥

स्वप्नविचार ।

स्वप्नानतः प्रवक्ष्यामि मरणाय शुभाय च ॥ सुहृदो यांश्च पश्यंति व्याधितो वा स्वयं तथा ॥ ५३ ॥ स्नेहाभ्यक्तशरीरस्तु करभव्यालगर्दभैः ॥ वराहैर्महिषैर्वापि यो यायाद्दक्षिणामुखः ॥ ५४ ॥ रक्तांबरधरा कृष्णा हसंती मुक्तमूर्द्धजा ॥ यं वा कर्षति बद्ध्वा स्त्री नृत्यंती दक्षिणामुखम् ॥ ५५ ॥ अन्त्यावसायिभिर्यो वा कृष्यते दक्षिणामुखः ॥ परिष्वजेरन्यं वापि प्रेताः प्रव्रजितास्तथा ॥ ५६ ॥

इसके अनन्तर अब मृत्यु या शुभके अर्थ स्वप्नोंका वर्णन करते हैं जिन्हें रोगीके मित्र (परिचारक, वैद्य आदि) देखें या रोगी स्वयं देखे॥५३॥जैसे तैल शरीरपर मले हुए ऊँट तथा व्याल (सर्प या हिंसकपशु-व्याघ्रादि अथवा दुष्ट हाथी) और गधे, शूकर, महिष इनके साथ (या इनपर सवार) होकर जो दक्षिणाभिमुख गमन करे (तो शुभ नहीं) ॥ ५४ ॥ तथा रक्तवस्त्र पहिने या काले वेषवाली (कृष्णवर्ण), हँसतीहुई शिरके बाल खुलीहुई ऐसी स्त्री जिसे बांधकर दक्षिणाभिमुख नृत्य करती हुई खींचती हुई स्वप्नमें दीखे (तो शुभ नहीं) ॥ ५५ ॥ अथवा अन्त्यज (नीच मनुष्य-कंजर, चमार आदि) जिस मनुष्यको दक्षिणाभिमुख खींचें तथा प्रेत (मृत मनुष्य) वा संन्यासी जिस रोगीको स्वप्नमें आलिंगन करे (तो शुभ नहीं) ॥ ५६ ॥

मूर्द्धन्याघ्रायते यस्तु श्वापदैर्विकृताननैः ॥ पिबेन्मधु च तैलं च यो वा पंकेऽवसीदति ॥ ५७ ॥ पंकप्रदिग्धगात्रो वा प्रनृत्येत्प्रहसेत्तथा ॥ निरंबरश्च यो रक्तां धारयेच्छिरसि स्रजम् ॥ ५८ ॥ यस्य वंशो नलो वापि तालो वोरसि जायते ॥ यं वा मत्स्यो ग्रसेद्यो वा जननीं प्रविशेन्नरः ॥ ५९ ॥

जिस मनुष्यका स्वप्नमें भयानक मुखवाले श्वापद अर्थात् कुत्तेकेसे पदोंवाले व्याघ्रादि हिंसक जीवोंकरके ललाट सूँघाजाय अथवा स्वप्नमें मधु पीवे या

(सूत्र ५३) व्याधितस्य सुहृदो व्याधितं वक्ष्यमाणरीत्या स्वप्ने पश्यंति वा व्याधितः स्वयं स्वमेव पश्यतीति । (सूत्र ५४) करभः उष्ट्रशिशुः उष्ट्रश्च। व्यालः सर्पो हिंसकपशुर्दुष्टगजश्चेति (शब्दस्तोमः) ।

तैल पीवे या कीचमें फँस जाय तो (शुभ नहीं) ॥ ५७ ॥ अथवा शरीरपर कीच मला हो अथवा स्वप्नमें नाचे या बहुत हँसे अथवा नंगा हो या शिरपर लाल रंगकी माला धारण करे (तो शुभ नहीं) ॥ ५८ ॥ अथवा स्वप्नमें जिसके हृदयमें बांसकी हूल लगे या भाला आदि लगे अथवा जिसे मगर ग्रसले अथवा माताके उदरमें प्रवेश करजाय ऐसा स्वप्न हो (तो शुभ नहीं) ॥ ५९ ॥

पर्वताग्रात्पतेद्यो वा श्वभ्रे वा तमसावृते ॥ ह्रियते स्रोतसा यो वा यो वा मौण्ड्यमवाप्नुयात् ॥६०॥ पराजीयेत वध्येत काकाद्यैर्वाभिभूयते ॥ पतनं तारकादीनां प्रणाशं दीपचक्षुषोः ॥ ६१ ॥ यः पश्येद्देवतानां वा प्रकंपमवनेस्तथा ॥ यस्य छर्दिर्विरेको वा दशनाः प्रपतंति वा ॥ ६२॥ शाल्मलीं किंशुकं यूपं वल्मीकं पारिभद्रकम् ॥ पुष्पाढ्यं कोविदारं वा चितां वा योऽधिरोहति ॥६३ ॥

जो स्वप्नमें पर्वतके ऊपरसे चौंडेमें या अंधेरे युक्त गर्तोंमें गिरजाय या स्रोत (नाले नदी) में बह जाय या शिर मुंडन करावे (तो शुभ नहीं) ॥ ६० ॥ अथवा स्वप्नमें किसीसे लड़कर हार जाय या बंध जाय (कैद होजाय) या काक आदि पक्षी जिसे टोलैं, मोर शिरपर बैठजाय, तारकादि (तारा-चांद आदि) का टूटना या दीपक और नेत्रोंका नाश स्वप्नमें दीखे (तो भी शुभ नहीं)॥६१॥ जो स्वप्नमें देवता कंपायमान दीखें या भूकम्प दीखे अथवा वमन और विरेचन लगा दीखे या अपने दांत गिरगये ऐसा दीखे (तो भी शुभ नहीं) ॥ ६२ ॥ शाल्मली (संभल) और केसूके फूल तथा यूप (यज्ञपशुबन्धनस्तम्भ) सर्पोंकी बँबई, निंबका वृक्ष तथा फूला हुआ कचनाल स्वप्नमें देखे अथवा स्वप्नमें चितापर चढे (तो शुभ नहीं) ॥ ६३ ॥

कार्पासतैलपिण्याकलोहानि लवणं तिलान् ॥ लभेताश्नीत वा पक्वमन्नं यश्च पिबेत्सुराम्॥६४॥स्वस्थः स लभते व्याधिं व्याधितो मृत्युमृच्छति ॥ ६५ ॥

रुईके पदार्थ (गाले आदि), तैल, खल, लोह, लवण, तिल इन्हें स्वप्नमें अंगीकार करे अथवा पकान्न खाय अथवा जो मनुष्य स्वप्नमें सुरापान करे तो शुभ नहीं ॥ ६४ ॥ इन उपरोक्त स्वप्नोंको मनुष्य देखे तो यदि स्वस्थ हो तो रोगको प्राप्त हो और रोगयुक्त देखे तो मृत्युको प्राप्त हो ॥ ६५ ॥

(सूत्र ६१) यः स्वप्ने पराजितः तारकादीनां पतनं दीपचक्षुषोः प्रणाशं पश्येत् इति ।

स्वप्नकी विफलता ।

यथास्वं प्रकृतिस्वप्नो विस्मृतो विहतश्च यः॥ चिंताकृतो दिवा दृष्टो भवन्त्यफलदास्तु ते ॥ ६६ ॥

अपनी प्रकृतिके अनुसार जो स्वप्न हो (जैसे वातप्रकृतिका आकाश गमन, पित्तप्रकृतिका अग्नि और किंशुकादिका दर्शन तथा कफप्रकृतिका जलावमग्नत्वादि) तथा विस्मृत (जो स्वप्न याद नहीं रहे या बहुत स्मरण किया हो), विहत (एक स्वप्न दूसरे स्वप्नसे दबा हुआ हो अर्थात् पहले अशुभ होकर फिर शुभ हो गया हो) या विहित अर्थात् उदररोगीको जैसे विरेचन इत्यादि अथवा जिस बातकी चिन्ता हो या जो दिनमें देखा हो ऐसे स्वप्न निष्फल होते हैं ॥ ६६ ॥

नियत रोगोंमें नियत स्वप्नारिष्ट ।

ज्वरितानां शुना सख्यं कपिसख्यं तु शोषिणाम्॥उन्मादे राक्षसैः प्रेतैरपस्मारे प्रवर्तनम् ॥६७ ॥ मेहातिसारिणां तोयपानं स्नेहस्य कुष्ठिनाम् ॥ गुल्मेषु स्थावरोत्पत्तिः कोष्ठे मूर्ध्नि शिरोरुजि ॥६८॥

ज्वररोगवालोंकी कुत्तोंसे मित्रताहो तथा क्षयरोगवालोंकी वानरसे अर्थात् ज्वरमें स्वप्नमें कुत्तोंसे मैत्री होना और शोषरोगमें वानरोंसे स्नेह होना (अशुभ है) तथा उन्मादरोगमें राक्षसोंसे और मृगीरोगमें प्रेतोंके संग प्रवर्तन होना (शुभ नहीं) ॥ ६७ ॥ प्रमेह और अतिसारवालोंको स्वप्नमें जल पीना तथा कुष्ठरोगमें तैल पीना तथा गुल्मरोग और कोष्ठरोग और मूर्धाके रोग और शिरके रोगमें (स्वप्नमें) स्थावर (वृक्ष) की उत्पत्ति दीखे (तो अशुभ है) ॥ ६८ ॥

शष्कुलीभक्षणं छर्द्यामध्वा श्वासपिपासयोः ॥ हारिद्रं भोजनं वापि यस्य स्यात्पांडुरोगिणः ॥ ६९ ॥ रक्तपित्ती पिबेद्यश्च शोणितं स विनश्यति ॥ ७० ॥

वमनमें सुहाली खाना स्वप्नमें दीखे तथा श्वास और तृषा रोगमें मार्ग चलनेका स्वप्न हो और जिस पांडुरोगवालेको स्वप्नमें पीला भोजन खाना दीखे (तो मृत्यु हो) ॥ ६९ ॥ और जो रक्तपित्तरोगवाला स्वप्नमें रक्त पीवे तो अवश्य नाशको प्राप्त होवे ॥ ७० ॥

खोटे स्वप्नोंका परिहार ।

स्वप्नानेवंविधान्दृष्ट्वा प्रातरुत्थाय यत्नवान् ॥ दद्यान्माषांस्तिलाँल्लोहं विप्रेभ्यः कांचनं तथा ॥ ७१ ॥ जपेच्चापि शुभा-

न्मंत्रान्गायत्रीं त्रिपदां तथा ॥ दृष्ट्वा च प्रथमे यामे सुप्याद्ध्यात्वा पुनः शुभम् ॥ ७२ ॥ जपेद्वान्यतमं देवं ब्रह्मचारी समाहितः॥ न चाचक्षीत कस्मैचिद् दृष्ट्वा स्वप्नमशोभनम् ॥७३॥ देवतायतने चैवं वसेद्रात्रित्रयं तथा ॥ विप्रांश्च पूजयेन्नित्यं दुःस्वप्नात्प्रतिमुच्यते ॥ ७४ ॥

ऐसे अशुभ स्वप्नोंको देखकर प्रातःकाल उठकर यत्नपूर्वक उडद, तिल और लोहका दान करना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको सुवर्ण देना चाहिये ॥ ७१ ॥ और श्रेष्ठ मन्त्रोंको जपे त्रिपदा गायत्रीका जप करे (और जो स्वयं नहीं जप सके तो शुद्ध ब्राह्मणोंसे जप करावे) और यदि रात्रिके प्रथम प्रहरमें खोटा स्वप्न देखे तो शुभ ध्यान करके फिर सोजावे ॥ ७२ ॥ अथवा अन्य (इष्ट) देवका जप करे और प्रभाततक ब्रह्मचारी और सावधान रहे तथा बहुत बुरा स्वप्न आवे तो (स्वप्नफलपरिहारज्ञ पंडितके सिवाय) और किसीसे कहे नहीं ॥ ७३ ॥ और (तीन दिन) तीन रात्रि देवताके स्थानमें वास करे और नित्य ब्राह्मणोंका पूजन करता रहे इस प्रकार प्रतिकार करनेसे खोटे स्वप्नके अशुभ फलसे मनुष्य छूटकर शुभ फलको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रशस्तं स्वप्नदर्शनम् ॥ देवान्द्विजान्गोवृषभाञ्जीवतः सुहृदो नृपान् ॥ ७५ ॥ समिद्धमग्निं विप्रांश्च निर्मलानि जलानि च ॥ पश्येत्कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥७६॥ मांसं मत्स्यान्स्रजः श्वेता वासांसि च फलानि च ॥ लभेत धनलाभाय व्याधेरपगमाय च॥७७॥ महाप्रासादसफलवृक्षवारणपर्वतान् ॥ आरोहेद्द्रव्यलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७८ ॥

अब यहांसे अगाडी शुभदायक श्रेष्ठ स्वप्नदर्शनका वर्णन करते हैं–जो मनुष्य स्वप्नमें देवताओं (सौम्य देवों) ब्राह्मणों (तथा क्षत्रिय, वैश्यों) को गौ और वृषभको तथा जीवते हुए मित्रों और प्रजापालक राजाको ॥ ७५ ॥ तथा ज्वलित अग्नि वेदपाठी विप्रों तथा निर्मल जलोंको देखे तो कल्याणकी प्राप्ति हो और रोगका नाश हो ॥ ७६ ॥ तथा मांस, मत्स्य, श्वेत माला तथा उज्ज्वल वस्त्र और फल ये स्वप्नमें प्राप्त हों तो धनका लाभ हो तथा व्याधिका नाश हो ॥ ७७ ॥ तथा बड़े महल और फलयुक्त वृक्ष तथा अम्बारी सहित हाथी तथा पर्वत इनपर जो स्वप्नमें चढे तो द्रव्यका लाभ हो और रोगसे छूटे ॥ ७८ ॥

नदीनदसमुद्रांश्च क्षुभितान्कलुषोदकान् ॥ तरेत्कल्याणलाभाय व्याधेरपगमाय च ॥ ७९ ॥ उरगो वा जलौका वा भ्रमरो वापि यं दशेत् ॥ आरोग्यं निर्दिशेत्तस्य धनलाभं च बुद्धिमान् ॥ ८० ॥ एवं रूपान् शुभान्स्वप्नान् यः पश्येद्व्याधितो नरः ॥ स दीर्घायुरिति ज्ञेयस्तस्मै कर्म समाचरेत् ॥ ८१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थान एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

नदी, नद, तथा क्षुभित समुद्र और जोहड (डावर) इन्हें जो स्वप्नमें तिर-जाय तो कल्याणकी प्राप्ति हो तथा रोगी रोगसे मुक्त हो ॥ ७९ ॥ अथवा स्वप्नमें सर्प तथा जलौका या भौंरे (ततय्ये आदि) जिसे डसलें तो बुद्धिमान् उसके रोगका नाश अथवा धनका लाभ बतलावे ॥ ८० ॥ जो ऐसे श्रेष्ठरूप स्वप्नोंको रोगी देखे तो वह दीर्घ आयुवाला होता है और उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८१ ॥

इति पण्डितमुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थान एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३०.

अथातः पंचेंद्रियार्थविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे पंचेंद्रियार्थविप्रतिपत्ति अर्थात् श्रोत्रादि पांचों इंद्रियोंके अर्थोंकी जिसमें विप्रतिपत्ति हो ऐसे अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतेर्विकृतिर्भवेत् ॥ तत्त्वरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोध मे ॥ १ ॥ शृणोति विविधाञ्छब्दान्यो दिव्यानामभावतः ॥ समुद्रपुरमेघानामसंपत्तौ च निःस्वनान् ॥ २ ॥ तान्स्वनान्न च गृह्णाति मन्यते चान्यशब्दवत् ॥ ग्राम्यारण्यस्वनांश्चापि विपरीताञ्छृणोत्यपि ॥ ३ ॥

जिस मनुष्यके शरीर तथा शील (मनका भाव), और प्रकृति ये विपरीत भावसे पलट जायँ तो उसके अर्थ अरिष्ट समझना चाहिये अर्थात् शरीरविकृति जैसे सांवले रंगसे अचानक गौरवर्ण होना या स्थूलसे कृश होना । शीलविकृति जैसे पुण्यात्मा पाप करनेलगे या पापी पुण्यात्मा होजाय या शुद्ध रहनेवाला अपवित्र रहने लगे । प्रकृतिवैपरीत्य जैसे वातप्रकृति विना यत्नके पित्तप्रकृति होजाय या कफप्रकृति वातप्रकृति होजाय इत्यादि ये संक्षेपसे अरिष्टके लक्षण कहे हैं विस्तारसे (अगाडी कहते हैं) सुनो ॥ १ ॥ जो बिनाहुए नाना प्रकारके दिव्य शब्दों-

(गंधर्व गानतुल्य) को सुने अथवा समुद्र, नगर, मेघ इनके अभावमें इनकेसे शब्द जिन्हें सुनाई दें (उसे गतायु जानना) तथा इनके शब्दोंको और प्रकारका श्रवण करे तथा ग्रामशब्दोंको वनकेसे शब्द श्रवण करे और वनके शब्दोंको ग्रामकेसे शब्द श्रवण करे तो (उसे गतायु) जाने ॥ २ ॥ ३ ॥

विपच्छब्देषु रमते सुहृच्छब्देषु कुप्यति ॥ न शृणोति च योऽकस्मात्तं ब्रुवंति गतायुषम् ॥ ४ ॥

जिसे खोटे शब्दोंसे प्रीति और प्रेमके शब्दोंसे कोप प्राप्त हो तथा अकस्मात जो नहीं सुने (या जो किसीकी बात नहीं सुने) उसे गतायु जाने ॥ ४ ॥

यस्तूष्णमिव गृह्णाति शीतमुष्णं च शीतवत् ॥ संजातशीतपिडिको यश्च दाहेन पीड्यते ॥ ५ ॥ उष्णगात्रोतिमात्रं च यः शीतेन प्रवेपते ॥ प्रहारान्नाभिजानाति योङ्गच्छेदमथापि वा ॥ ६ ॥ पांशुनेवावकीर्णानि यश्च गात्राणि मन्यते ॥ वर्णान्यभावो राज्यो वा यस्य गात्रे भवंति हि ॥ ७ ॥ स्नातानुलिप्तं यं चापि भजंते नीलमक्षिकाः ॥ सुगंधिर्वाति योऽकस्मात्तं ब्रुवंति गतायुषम् ॥ ८ ॥

जो शीतल पदार्थोंको उष्णके तुल्य ग्रहण करे और उष्णको शीतलके समान (जाने) और जिसके शरीरमें (कफकृत) शीतल पिडिका हों और फिर वह दाहसे पीडित हो ॥ ५ ॥ तथा जिसका शरीर बहुत गरम और वह शीतसे कंपायमान हो तथा जो शरीरपर चोट लगी हुईको अथवा शरीरके छेदनको नहीं जाने (तो उसे गतायु जाने) ॥ ६ ॥ जो शरीरपर कुछ रेत मट्टी नहीं लगेपर भी धूलसी बिखरी जाने अथवा जिसके शरीरका वर्ण पलट जाय या रोमराजी (बे

(सूत्र ४) योऽकस्मादित्यत्र यः कस्मादिति वा पाठान्तरम् । (सूत्र ६) उष्णगात्रोतिमात्रं यः शीतेन वेपते इत्यत्र साधारणशीतज्वरातिरिक्तमरिष्टं ज्ञेयं तत्र त्वारंभे सूक्ष्मकालानुबंधि शीतम् ।

(वक्तव्य सूत्र ६) कोई शंका करें कि शीतज्वरमें उष्णगात्रहोनेपर शीतसे कंपायमान शरीर होताहै पर गतायु नहीं होता इसका समाधान यह है कि शीतज्वरके आरंभमेंही थोडे. समयके लिये शीत लगताहै अतिकाल नहीं रहता तथा उस समय जबतक शीत रहताहै तबतक शरीर भी अतिउष्ण नहीं होताहै और ज्यों २ शरीर गरम अधिक होताहै त्यों २ शीतकी निवृत्ति होतीहै । असाध्य वह होताहै जो बहुत समयतक अत्यंत उष्ण शरीर होनेपर शीतसे कांपताही रहे, स्नानके अनंतर नीली मक्खी चिमटना एक वर्ष पूर्व अरिष्टसूचक लक्षण है और अकस्मात् गंधका परिवर्तन भी एक वर्ष पूर्व अरिष्ट लक्षण जानना ॥

(सूत्र ८) स्नानादिना बहिर्मलवर्जितमपि नीलमक्षिकाः श्रयंते तदासौ कालपक्वत्वादतिमधुरीभूतशरीर इत्यवगम्यते-तदरिष्टं वर्षावधि ।

कारण) हो जायँ (उसे गतायु जाने) ॥ ७ ॥ स्नान करके अनुलेपन करके भी जिसके शरीरपर नीली मक्खियां चिमटें अथवा जिसमें अकस्मात् सुगंधि (या दुर्गंधि) हो उसे गतायु कहते हैं ॥ ८ ॥

विपरीतेन गृह्णाति रसान्यश्चोपयोजितान् ॥ उपयुक्ताः क्रमाद्यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥ ९ ॥ यस्य दोषाग्निसाम्यं च कुर्युर्मिथ्योपयोजिताः ॥ यो वा रसान्न संवेत्ति गतासुं तं प्रचक्षते ॥१०॥ सुगंधं वेत्ति दुर्गंधं दुर्गंधस्य सुगंधताम् ॥ यो वा गंधान्न जानाति गतासुं तं विनिर्दिशेत् ॥११॥ द्वंद्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्था दिशस्तथा ॥ विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः॥१२

जो उपयुक्त रसोंको विपरीत ग्रहण करे अर्थात् खट्टेको कडवा और कडवेको मीठा इत्यादि तथा क्रमसे योजना किये हुए मधुरादि रस भी दोषवृद्धिकारक हों ॥ ९ ॥ और मिथ्या उपयोग किये हुए रस जिसके दोषों और अग्निकी साम्यता करें अथवा जो रसोंको जाने नहीं उसे गतासु (मृततुल्य) जाने ॥ १० ॥ और जो अकस्मात् सुगंधको दुर्गंध और दुर्गंधको सुगंध जाने अथवा जिसे गंधका ज्ञान नहीं रहे उसे गतप्राण जाने ॥ ११ ॥ और जो उष्ण, शीत आदिको विपरीत जाने अर्थात् उष्णको शीत और शीतको उष्ण जाने तथा काल, अवस्था और दिशा इन्हें विपरीत जाने (प्रभातको मध्याह्न तथा सन्ध्याको प्रभात इत्यादि और बालावस्थाको वृद्ध, वृद्धको युवा तथा पूर्वको दक्षिण और दक्षिणको उत्तर इत्यादि विपरीत ज्ञान जिसे हो) तथा भावों (प्रेमवैरादि) को विपरीत जाने (उसे गतायु जाने) ॥ १२ ॥

दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति ॥ रात्रौ सूर्यं ज्वलंतं वा दिवा वा चंद्रवर्चसः ॥ १३॥ अमेघोपप्लवे यश्च शक्रचापतडिद्गुणान् ॥ तडित्वंतोऽसितान्यो वा निर्मले गगने घनान् ॥ १४॥ विमानयानप्रासादैर्यश्च संकुलमंबरम् ॥ यश्चानिलं मूर्तिमंतमंतरिक्षं च पश्यति ॥ १५ ॥

(वक्तव्य सूत्र ९) रसाज्ञान जिह्वारोग, अरुचि, ज्वर इनके सिवाय रसका अज्ञान और पीनसादि नासारोग, शिरोरोगके सिवाय गंधका अज्ञान तथा उन्माद, मद इत्यादिके सिवाय कालादिका अज्ञान हो तो अरिष्ट जानना । (वक्तव्य सूत्र १३) नेत्रविकार तथा उन्माद आदिके विना अकस्मात् दृष्टि विपरीत होना, ध्रुव, अरुंधती आदिका नहीं दीखना षट्मासपूर्व अरिष्ट सूचन करते हैं। (सूत्र १५) अनिलं मूर्तिमंतम् इत्यत्र वायौ भ्रमितनराकारादिमूर्त्तिदर्शनमित्यभिप्रायः ॥

जो दिनमें प्रज्वलित ज्योतिको देखे और रात्रिमें सूर्य चमकता देखे या दिनमें प्रकाशित चन्द्रकी ज्योति देखे (तो गतायु जाने) ॥ १३ ॥ विना अभ्रके आकाशमें जो इन्द्रधनुष, बिजली आदिकेसे गुण देखे तथा बिजलीयुक्तको असित (अंधेरा) देखे तथा निर्मल आकाशमें मेघ देखे ॥ १४ ॥ और खाली आकाशको विमानों, रथों, महलों आदिसे व्याप्त देखे तथा वायुमें मूर्तियां और आकाशको मिथ्यामूर्तियों सहित देखे (तो उसे गतायु जाने) ॥ १५ ॥

धूमनीहारवासोभिरावृतामिव मेदिनीम् ॥ प्रदीप्तमिव लोकं च यो वाप्लुतमिवांभसा ॥ १६ ॥ भूमिमष्टापदाकारां लेखाभिर्यश्च पश्यति ॥ न पश्यति सनक्षत्रां यश्च देवीमरुंधतीम् ॥ ध्रुवमाकाशगंगां वा तं वदंति गतायुषम् ॥ १७ ॥

धुवां, बरफ, वस्त्र इनसे ढकीहुईसी पृथिवी दीखे तथा जगत् प्रदीप्त दीखे अथवा जलमें डूबा हुआसा दीखे ॥ १६ ॥ तथा पृथ्वी अष्टापदके आकार और रेखाओंसे व्याप्त दीखे तथा तारागण युक्त अरुंधती नाम तारा तथा ध्रुव तथा आकाशगंगा जिसे नहीं दीखें (उसे गतायु जानना) ॥ १७ ॥

ज्योत्स्नादर्शोष्णतोयेषु छायां यश्च न पश्यति ॥ पश्यत्येकांगहीनां वा विकृतां वाऽन्यसत्त्वजाम् ॥ १८ ॥ श्वकाककंकगृध्राणां प्रेतानां यक्षरक्षसाम् ॥ पिशाचोरगनागानां भूतानां विकृतामपि ॥ १९ ॥ यो वा मयूरकंठाभं विधूमं वह्निमीक्षते ॥ आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥ २० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

जिसे चांदनी, दर्पण, धूप और जलमें अपनी छाया (प्रतिबिंब) नहीं दीखे अथवा कोई अंग हीन दीखे या विकारवाला दीखे या और प्रकारका दीखे (उसे गतायु जाने) ॥ १८ ॥ कुक्कुर, काक, कंक, गीध, प्रेत, राक्षस, पिशाच, उरग, नाग, भूतकी तथा विकृत छाया जिसे दिखाई(देवें अर्थात् विनाहुए कुक्कुरादि देख पडें) अथवा जो धूमरहित मयूरकंठके समान अग्निको देखे (जिसे अग्निमें धुआं नहीं दीखे और नीली दीखे अथवा जिसे निर्धूम अग्निका अंगार नीला दीखे) उस रोगीकी अवश्य मृत्यु हो और यदि स्वस्थतामें उपरोक्त लक्षण हों तो व्याधि हो १९ २०

इति पं० मुरलीधरशर्मवैद्यवि० सुश्रुतसं०भा०टी० सूत्रस्थाने त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

(सूत्र १७) अष्टापदाकारां कोष्ठसंताननिर्माणं चत्वरं क्रीडनार्थमुच्यत इति डल्हनः । शब्दस्तोमस्तु अष्टापद इति शरभो लूता च तयोरष्टपदत्वात् तदाकारां तदाकारयुक्तामिति ।

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

अथातश्छायाविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे छाया अर्थात् प्रतिमा या कांतिके विपरीत होनेके विषयमें जो अध्याय है उसका व्याख्यान करते हैं ॥

श्यावा लोहितिका नीला पीतिका वापि मानवम् ॥ अभिद्रवंति यं छायाः स परासुरसंशयम् ॥१॥ ह्रीश्रियौ नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभाः ॥ अकस्माद्यं भजंते वा स परासुरसंशयम् ॥ २ ॥ यस्याधरौष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्द्ध्वं तथोत्तरः ॥ उभौ वा जांबवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ ३ ॥ आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतंति च ॥ खंजनप्रतिभा वापि तं गतायुषमादिशेत् ॥ ४ ॥

जिस मनुष्यकी छाया काली, लाल, नीली तथा पीली अभिद्रवण करे (तित्तर चित्तरसी प्रकाशित हो) वह मनुष्य निश्चय गतप्राण होगा ॥ १ ॥ जिस मनुष्यकी लज्जा और शोभा नष्ट हो जायँ अथवा अकस्मात् जिस मनुष्यको तेज, ओज, स्मृति और प्रभा (कांति) प्राप्त हो जायँ उसकीभी मृत्यु अवश्य हो (एक वर्ष पूर्व ये मृत्युसूचक चिह्न होते हैं) ॥ २ ॥ और जिस मनुष्यके नीचेका होठ लटक जाय और ऊपरका होठ ऊपरको चढ जाय अथवा दोनों होठ जामुनके सदृश हो जायँ उस मनुष्यका जीना दुर्लभ है ॥ ३ ॥ जिसके दांत लाल या काले पड जायँ या गिर पडें या खंजनकी भांति (नीले, श्वेत चित्तीवाले) हों उस मनुष्यको गतायु समझना चाहिये (ये ओष्ठ और दांतोंके लक्षण संनिपातके समय अरिष्टसूचक हैं) ॥ ४ ॥

कृष्णा स्तब्धावलिप्ता वा जिह्वा शूना च यस्य वै ॥ कर्कशा वा भवेद्यस्य सोऽचिराद्विजहात्यसून् ॥ ५ ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका ॥ अवस्फूर्जति मग्ना वा न स

(सूत्र १) छाया पंचविधा–स्निग्धा विमला रूक्षा मलिना संक्षिप्ता । दर्पणादौ प्रतिबिंबरूपा छाया । अभिद्रवंति अनुसरंति–द्रवीभूता भवंति वा । परासुः गतप्राणः । (सूत्र २) ह्री लज्जा श्रीः कमनीयता तेजः प्रतापः।ओजसो लक्षणं पूर्वमुक्तं प्रभा कांतिः सा सप्तविधा–रक्ता पीता सिता श्यावा हरिता पांडुराऽसिता इति (एतत्सांवत्सरिकमरिष्टम्)।(सूत्र ३) क्षिप्तः ऊर्ध्वं क्षिप्तः ओष्ठदंतारिष्टाभ्यां सांनिपातिककाले मृत्युर्बोद्धव्यः।

जीवति मानवः ॥ ६ ॥ संक्षिप्ते विषमे स्तब्धे रक्ते स्त्रस्ते च लोचने ॥ स्यातां वा प्रसृते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ ७ ॥

जिसकी जिह्वा काली होजाय या अकड जाय तथा लिपायमानसी होजाय या सूजजाय या कडी (बहुत खरदरी) हो जाय वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्त हो जाय ॥ ५ ॥ जिसकी नाक टेढी होजाय, फटजाय, या सूख जाय या फूंकार शब्द करे भीतरको घुस जाय वह मनुष्य नहीं जीवे ॥ ६ ॥ जिसके दोनों नेत्र सुकड जायँ या टेढे पडजायँ या ठिठरा जायँ (पथरा जायँ) या लाल (सुर्ख) हो जायँ, नीचेको लटक जायँ या आंसू टपकने लगें वह मनुष्य मृत्युवश हो ॥ ७ ॥

केशाः सीमंतिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ ॥ लुनंति चाक्षिपक्ष्माणि सोचिराद्याति मृत्यवे ॥ ८ ॥ नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः ॥ एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणाञ्जहाति सः ॥ ९ ॥ बलवान्दुर्बलो वापि संमोहं योधिगच्छति ॥ उत्थाप्यमानो बहुशस्तं धीरः परिवर्जयेत् ॥ १० ॥ उत्तानः सर्वदा शेते पादौ विकुरुते च यः ॥ विप्रसारणशीलो वा न स जीवति मानवः॥११॥

जिसके बाल (अकस्मात्) घुघराले हो जायँ तथा भौंह सुकड जायँ तथा नीचेको या टेढी हो जायँ तथा नेत्रोंकी पलकें गिरजायँ वह मनुष्य शीघ्रही मृत्युको प्राप्त हो (यह लक्षण स्वस्थको छःमास और रोगीको तीन दिन पूर्व अरिष्ट हैं) ॥ ८ ॥ जो मुखमें धरे अन्नको नहीं निगल सके तथा शिरको ठीक २ धारण नहीं कर सके, मूढ हो, एक ठौर दृष्टि बांधे रक्खे वह शीघ्र प्राणोंको त्यागता है ॥ ९ ॥ बलवान् हो या दुर्बल जो वारवार उठानेसे मूर्च्छित हो होकर गिरे उसे धीर वैद्य परित्याग करे (क्योंकि वह मृत्युके वश होगा)। यह अरिष्ट सात दिन पहले होता है ॥ १० ॥ जो सीधाही सोवे (करवट न ले सके) और पावोंको खडा ही रक्खे या पसारेही रक्खे वह मनुष्य नहीं जीवे (यह तात्कालिक अरिष्टहै)११॥

शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नश्वासश्च यो नरः ॥ काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यस्तं धीरः परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥ निद्रा न छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा ॥ मुह्येद्वा वक्तुकामस्तु प्रत्याख्येयः स जानता ॥ १३ ॥ उत्तरौष्ठं च यो लिह्याद्धुद्धारांश्च करोति यः ॥ प्रेतैर्वा भाषते सार्द्धं प्रेतरूपं तमादिशेत् ॥ १४ ॥

(सूत्र ८) सीमंतः केशांतर्गतवर्त्माकारः । यस्य केशाः सीमंतिनः । अथवा यस्य सीमंतिनः केशा लुनंतीत्यन्वयः ।

जिसके हाथ पांव और श्वास (तीनों) ठंढे हो जायँ तथा श्वास टूट जाय अथवा काककी भांति मुँह करके श्वासले उस मनुष्यको धीर वैद्य त्याग दे (औषध नहीं दे)यह सद्यः मृत्युका लक्षण है ॥ १२ ॥ जिसकी निद्रा कभी खुलेही नहीं या जो सदा जागता ही रहे तथा जो बात करनेमें विचल जाय वह रोगीभी त्यागने योग्य है (यह आठ दिनका अरिष्ट है) ॥ १३ ॥ जो ऊपरके होठको (अज्ञानसे) चूसे तथा जो (विना भोजन) बहुतसी डकारें ले और जो मिथ्या रूप प्रेतोंसे बातेंसी करे उसे प्रेतरूप जानो ॥ १४ ॥

रोगोंका असाध्यलक्षण ।

खेभ्यः सरोमकूपेभ्यो यस्य रक्तं प्रवर्तते ॥ पुरुषस्याविषार्तस्य सद्यो जह्यात्स जीवितम् ॥ १५ ॥ वाताष्ठीला तु हृदये यस्योर्द्ध्वमनुयायिनी ॥ रुजान्नविद्वेषकरी स परासुरसंशयम् ॥ १६ ॥ अनन्योपद्रवकृतः शोफः पादसमुत्थितः ॥ पुरुषं हंति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥ १७ ॥ अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूनाण्डमेढ्रता ॥ श्वासिनः कासिनो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

जिसके रोमकूपसे और द्वारोंसे विना विषपीडाके रुधिर चूने लगे वह रक्तपित्ती रोगी शीघ्र मरे ॥ १५ ॥ वायुकी गांठ हृदयमेंसे ऊपरको चढे और अन्नसे अरुचि हो उसे असाध्य जाने ॥ १६ ॥ जो और उपद्रवोंसे न हुआ हो ऐसा शोथ पावोंसे उपजाहुआ पुरुषको और मुखसे उपजा हुआ स्त्रीको नष्ट करता है और गुदाका शोथ दोनोंको नष्ट करता है ॥ १७ ॥ जिस श्वास या कासवालेके अतिसार, ज्वर, हिचकी, वमन, अण्ड, और लिंगपर शोथ हो उसे त्यागदे ॥ १८ ॥

स्वेदो दाहश्च बलवान्हिक्का श्वासश्च मानवम् ॥ बलवंतमपि प्राणैर्वियुंजंति न संशयः ॥ १९ ॥ श्यावा जिह्वा भवेद्यस्य सव्यं चाक्षि निमज्जति ॥ मुखं च जायते पूति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ २० ॥ वक्त्रमापूर्यतेश्रूणां स्विद्यतश्चरणावुभौ ॥ चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥ २१ ॥ अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकाणि च ॥ यस्याकस्मात्स विज्ञेयो गंता वैवस्वतालयम् ॥ २२ ॥

(सूत्र १६) रुजान्नविद्वेषकरीति अरुचिरोगेन अन्नविद्वेषकरी ।

जिसके शरीरमें अति स्वेद और दाह हो तथा हिचकी और श्वास हो तो ये बलवान्कोभी शीघ्र प्राणोंसे छुटा देते हैं ॥ १९ ॥ जिसकी जीभ काली पडजाय तथा वामनेत्र गडजाय, मुह सुकडजाय उसे त्यागदे (यह संनिपातारिष्ट है कई एक ऋषि ऐसा कहते हैं) ॥ २० ॥ मुह पर आंसू बहने लगें, दोनों पावोंपर पसीना आजाय, नेत्र व्याकुल होजायँ तो जाने कि यह शीघ्र यमलोकमें जायगा अर्थात् शीघ्र मरनेवाला है ॥ २१ ॥ जिसका शरीर बिनाकारण अकस्मात् मोटेसे दुबला हो जाय या दुबला हो तो मोटा हो जाय तो उसे यमलोकमें जानेवाला समझे (यह छः मासका तथा कइयोंके मतमें एक वर्षका अरिष्ट है) ॥ २२ ॥

पंकमत्स्यवसातैलघृतगंधाश्च ये नराः ॥ मृष्टगंधाश्च ये वांति गंतारस्ते यमालयम् ॥ २३ ॥ ज्वरातिसारशोफाः स्युर्यस्यान्योन्यावसादिनः ॥ प्रक्षीणबलमांसस्य नासौ शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ २४ ॥ क्षीणस्य यस्य क्षुत्तृष्णे हृद्यैर्मिष्टैर्हितैस्तथा ॥ न शाम्यतोन्नपानैश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ २५ ॥

जिनमें कीचड़, मछली तथा चरबी और तेल एवं घृतकीसी गन्ध आवे तथा जो सुगंधयुक्त वमन करें वे मनुष्य यमलोकमें जानेवाले होते हैं २३ ॥ जिस बलक्षीण और मांसक्षीण मनुष्यके ज्वर, अतिसार और शोथ ये अन्योन्यभावसे हों (एकके दूसरा, तीसरा हो या एकमें कमी हो तो दूसरेमें अधिकता हो) तो उसकी चिकित्सा नहीं होसकती ॥ २४ ॥ जिस क्षीण मनुष्यकी क्षुधा तथा तृषा, हृद्य और मिष्ट तथा हित पदार्थोंसे शांत नहीं हो अर्थात् मीठे स्वादु भोजनसे क्षुधा न जाय और हृद्य मिष्टपानसे तृषा न जाय तो उसकी मृत्यु निकट समझो ॥ २५ ॥

यूका ललाटमायांति बलिं नाश्नंति वायसाः ॥ एषां वापि रतिर्नास्ति यातारस्ते यमालयम् ॥ २६ ॥ प्रवाहिका शिरःशूलं कोष्ठशूलं च दारुणम् ॥ पिपासा बलहानिश्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ २७ ॥

जिसके ललाटमें यूक (जूं) उत्पन्न हों जिसकी बलि काक नहीं खावें जिसको विना रोग, शोकादि कहीं चैन नहीं पडे वे यमलोकमें जानेवाले होते हैं (यह वर्ष दिन पहलेका अरिष्ट है) ॥ २२ ॥ जिसके प्रवाहिका (मरोड़े), शिरमें दरद, पेटमें दरद और प्यास तथा बलहानि हो उसकी मृत्यु निकट समझो ॥ २७ ॥

(सूत्र २३) मृष्टगंधान् शोभनगंधान् वमंतीत्यर्थः । (सूत्र २४) अन्योन्यावसादिनः परस्परोपद्रविणः ।

विषमेणोपचारेण कर्मभिश्च पुराकृतैः ॥ अनित्यत्वाच्च जंतूनां जीवितं निधनं व्रजेत् ॥ २८ ॥ प्रेतभूतपिशाचाश्च रक्षांसि विविधानि च ॥ मरणाभिमुखं नित्यमुपसर्पंति मानवम् ॥ २९ ॥ तानि भेषजवीर्याणि प्रतिघ्नंति जिघांसया ॥ तस्मान्मोघाः क्रियाः सर्वा भवंत्येव गतायुषः ॥ ३० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थान एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

उलटी क्रियाओं करके अथवा पूर्वोपार्जित कर्मोंकरके प्राणियोंकी अनित्यताके कारण जीव निधन अर्थात् विनाशको प्राप्त होता है ॥२८॥ और जिसकी मृत्यु होनेवाली होती है उस मनुष्यके अभिमुख प्रेत, भूत, पिशाच तथा विविध राक्षस आक्रमण करते हैं वे औषधके गुणोंको मारनेकी इच्छासे नाश करदेते हैं इस कारण गतायु मनुष्यकी समस्त उत्तमसे उत्तम क्रिया भी निष्फल हो जाया करती हैं ॥२९॥३०॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवैद्यवि० सुश्रुतसं० भा०टी० सूत्रस्थान एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.

अथातः स्वभावविप्रतिपत्तिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे स्वभावविप्रतिपत्ति (स्वभावकी विपरीतता होनेके विषयमें) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

स्वभावप्रसिद्धानां शरीरैकदेशानामन्यभावित्वं मरणाय । तद्यथा । शुक्लानां कृष्णता कृष्णानां शुक्लता रक्तानामन्यवर्णत्वं स्थिराणामस्थिरत्वं मृदूनां स्थिरता चलानामचलत्वमचलानां चलता पृथूनां संक्षिप्तत्वं संक्षिप्तानां पृथुता दीर्घाणां ह्रस्वत्वं ह्रस्वानां दीर्घताऽपतनधर्मिणां पतनधर्मित्वं पतनधर्मिणामपतनधर्मित्वमकस्माच्च ॥ १ ॥

(सूत्र २८) जंतूनामनित्यत्वादिति अविद्यादोषाद्देहाभिमानिनो देहस्यानित्यत्वात् जीवितं निधनं व्रजेदिति पंचत्वं प्राप्नुयात् । (सूत्र २९) प्रेताः विगतिं प्राप्ताः प्राणिनः, भूताः देवयोनयः, पिशाचाः पिशिताशिनः, रक्षांसि रावणानुचरादीनि ।

(सूत्र १) "शुक्लानां" दृगैकदेशानां "कृष्णानां" लोचनमध्यस्य च तारुण्ये केशश्मश्रुलोम्नामकस्माच्छुक्लत्वमरिष्टम् "रक्तानां" नेत्रपादकरतल्वोष्ठजिह्वानां "स्थिराणां" कठिनानां केशश्मश्रुनखदंतशिरास्नायुस्रोतःप्रभृतीनां "मृदूनां" मांसशोणितमेदोमज्जनाभिहृदयप्रभृतीनां "चलानां" शिरासंधिजिह्वादीनां "अचलानां" मांसमेदोस्थिनाभयस्तेषामित्यादि (डल्हनः) ।

स्वभाव तथा शरीरके एकदेशवर्ती प्रसिद्ध शारीरक पदार्थोंका अन्यभाव होना मृत्युके लिये होता है अर्थात् मृत्युसूचक होता है जैसे शुक्ल पदार्थों (नेत्रगत श्वेतभाग आदि) का अकस्मात् काला पडजाना या काली पुतली तथा केश आदिका श्वेत होजाना तथा रक्त वर्णवाले होठ, जिह्वा, नेत्रकी कोर और तात्वादिका वर्ण पलट जाना स्थिरों (अस्थि, नख, दंतादिका) का कोमल होना और मृदु (मांस, शोणित, मेदादि) का स्थिर होना चल (संधि, स्नायु जिह्वादि) का अचल होना और अचल (मांस, अस्थि, संयोगादि) का चलायमान होना, पृथु (विस्तारयुक्त शिर, ललाटादि) का संक्षिप्त होना (छोटा होजाना) और संक्षिप्त (छोटे गुलफादि) का फैलजाना, दीर्घ (नयन, भुजादि) का ह्रस्व होना और ह्रस्व (जंघा, मेढ्रादि) का दीर्घ होना तथा पतनधर्मवाले मलमूत्रादिका अपतनधर्मत्व अर्थात् न गिरना और अपतनधर्मवाले केशादिका पतन होना अरिष्ट है सारांश यह है कि अकस्मात् विपरीत भावका होना अरिष्ट (मृत्यु) सूचक होता है ॥ १ ॥

शैत्यौष्ण्यस्नैग्ध्यरौक्ष्यप्रस्तंभवैवर्ण्यावसदनं चांगानाम् ॥ २ ॥ स्वेभ्यः स्थानेभ्यः शरीरैकदेशानामवस्रस्तोक्षिप्तभ्रांतावक्षिप्तपतितविमुक्तनिर्गतान्तर्गतगुरुलघुत्वानि ॥ ३ ॥ प्रवालवर्णव्यंगप्रादुर्भावोप्यकस्माच्छिराणां च दर्शनं ललाटे नासावंशे वा पिडिकोत्पत्तिः ॥ ४ ॥

तथा अकस्मात् (विनाकारण) अंगोंका शीतल होना, गरम, होना, चिकनापन, रूखापन, स्तंभित होना, वर्ण पलटजाना तथा थकानसी चढजाना (अरिष्टसूचक है) ॥ २ ॥ शरीरके एकदेशों (भ्रू पलक, होठ, नाक आदि) का अपने २ स्थानसे नीचे अथवा ऊपरको होना, भ्रान्त होना, फैलजाना, लटकजाना, छूटजाना, निकल आना, भीतरको धसजाना, भारी होजाना, पतला पडजाना (अरिष्टसूचक हैं) ॥ ३ ॥ मूंगेके रंगकीसी झाईं अकस्मात् पडजाना, तथा प्रवालवर्ण नसें दीखने लगजाना तथा ललाट और नासिकाकी डंडीपर बहुतसी फुन्सी पैदा होना (अरिष्टसूचक हैं)॥ ४॥

ललाटे प्रभातकाले वा स्वेदः । नेत्ररोगाद्विना वाश्रुप्रवृत्तिः । गोमयचूर्णप्रकाशस्य वा रजसो दर्शनम् ॥ उत्तमांगे निलयनं वा कपोतकंकप्रभृतीनाम् ॥ ५ ॥

(सूत्र ३) अवस्रस्तत्वं भ्रूपक्ष्मप्रभृतीनाम् । (सूत्र ४) शिरापिडिकाभ्यां सह प्रवालवर्णस्य संबंधः । (सूत्र ५) उत्तमांगे शिरसि गोमयचूर्णप्रकाशरजसो दर्शनमिति स्पष्टार्थः ।

प्रभातकालमें मस्तक पर पसीना आवे । तथा नेत्ररोग (और शोकादि) बिना अश्रुपातोंकी प्रवृत्ति हो अथवा शिरमेंसे गोबरके चूर्ण जैसी धूलि दीखे अथवा शिरपर कपोत, कंक (तथा काकादि) पक्षी बैठनेलगें (तो अरिष्टसूचक हैं) ॥५॥

मूत्रपुरीषवृद्धिरभुंजानानां तत्प्रणाशो भुंजानानाम् ॥ ६ ॥ स्तनमूलहृदयोरःसु च शूलोत्पत्तयः ॥ मध्ये शूनत्वमन्तेषु परिम्लायित्वं विपर्ययो वा तथार्द्धांगे श्वयथुः ॥ ७ ॥

भोजन नहीं करनेवालोंको मूत्रमलके आगमनकी वृद्धि तथा भोजन करनेवालोंको मलमूत्रका नाश (अरिष्टसूचक है) ॥ ६ ॥ चूंचीकी जड, हृदय और कलेजेमें शूलकी उत्पत्ति हो तथा शरीरके मध्यमें शोथ हो और अन्तःप्रदेशमें जिलविलापन हो या इसके विपरीत हो अथवा आधे अंगपर (एकतरफ) शोथ हो (तो अरिष्टसूचक है) ॥ ७ ॥

शोषोऽगपक्षयोर्वा नष्टहीनविकलविकृतस्वरता । विवर्णपुष्पप्रादुर्भावो वा दंतमुखनखशरीरेषु ॥ ८ ॥ यस्य वाप्सु कफपुरीषरेतांसि निमज्जन्ति यस्य वा दृष्टिमंडले भिन्नविकृतानि रूपाण्यालोक्यंते स्नेहाभ्यक्तकेशांग इव यो भाति ॥ ९ ॥

सारे शरीरमें या शरीरके एक भागमें शोष (सूखापन) हो तथा स्वर नष्ट या हीन या विकल या विकारयुक्त होजाय अथवा दांतोंपर, मुँहपर, नखूनोंपर या अन्य शरीरपर बुरे वर्णका या दूसरे रंगका दाग पड जाय (तो अरिष्टसूचक हैं) ॥ ८ ॥ जिसका कफ, विष्ठा और वीर्य पानीमें डूब जाय अथवा जिसकी दृष्टिमें भिन्न विकृत रूप आवें तथा जो स्वयं तैलाभ्यंग किये बाल और शरीर प्रतीत हों (तो अरिष्ट जानना) ॥ ९ ॥

यश्च दुर्बलो भक्तद्वेषातिसाराभ्यां पीड्यते । कासमानश्च तृष्णाभिभूतः क्षीणश्छर्दिभक्तद्वेषयुक्तः सफेनपूयरुधिरोद्वमी हतस्वरश्च शूलाभिपन्नो मनुष्यः ॥ १० ॥ शूनकरचरणवदनः क्षीणोऽन्नद्वेषी स्रस्तपिण्डिकांसपाणिपादो ज्वरकासाभिभूतः ॥ ११ ॥

जो दुर्बल मनुष्य भक्तद्वेष (अन्नमें अरुचि) और अतिसारसे पीडित हो (तो असाध्य) तथा कासयुक्तको अतितृषा हो तो (असाध्य) तथा क्षीण होकर छर्दि और अरुचियुक्त हो तो (असाध्य) झागयुक्त पीप और रुधिरकी वमन करे तो (असाध्य) शूलयुक्तको स्वरभंग हो तो असाध्य जानें ॥ १० ॥ जिस

क्षीण मनुष्यके हाथ, पांव, और मुह पर शोथ हो, अन्नसे द्वेष हो तथा पिंडली, स्कन्ध, हाथ, पांव, शिथिल हो जाँय और ज्वर तथा कास हो तो उसे असाध्य जानों ॥ ११ ॥

यस्तु पूर्वाह्ने भुक्तमपराह्ने छर्दयत्यविदग्धमतिसार्यते वा ज्वरकासाभिभूतः स श्वासान्म्रियते ॥ १२ ॥

जो मध्याह्नसे पहले भोजन करे और तिसरे पहर वमन करदे अथवा विनापका अतिसार हो और ज्वर कास युक्त हो वह श्वास होकर मरजाता है ॥१२॥

बस्तवद्विलपन्यश्च भूमौ पतति स्रस्तमुष्कः स्तब्धमेढ्रो भग्नग्रीवः प्रनष्टमेहनश्च मनुष्यः ॥ १३॥ प्राग्विशुष्यमाणहृदय आर्द्रशरीरो यश्च लोष्टं लोष्टेनाभिहंति काष्ठं काष्ठेन तृणानि वा छिनत्ति अधरोष्ठं दशत्युत्तरोष्ठं वा लेढि । आलुंचति वा कर्णौ केशांश्च देवद्विजगुरुसुहृद्वैद्यांश्च द्वेष्टि ॥ १४ ॥

बकरीके बच्चेकी भांति विलाप करता हुआ जो पृथ्वीमें गिरे, स्थानसे अण्डकोश सरक जाय, लिंग स्तंभित होजाय, ग्रीवा भंग होजाय (टेढी हो जाय) या लिंग प्रनष्ट हो जाय, अति सूक्ष्म हो जाय तो असाध्य है ॥ १३ ॥ जिसका पहले हृदय शुष्क हो उसका शरीर गीला हो जाय तो असाध्य है तथा जो लोहेको लोहेसे, काठको काठसे मारे या तृणको तोडे (तो अरिष्ट जानों) जो नीचेके होठको काटे या ऊपरले होठको चूसे अथवा कानों और बालोंको नोंचे तथा देवता, ब्राह्मण, गुरु, मित्र और वैद्य इनसे मिथ्या वैर करने लगे (तो उसे गतायु जाने) ॥१४॥

यस्य वक्रानुवक्रगा ग्रहा गर्हितस्थानगताः पीडयंति जन्मर्क्षं वा । यस्योल्काशनिभ्यामभिहन्यते होरा वा ॥ १५ ॥ गृहदारशयनासनयानवाहनमणिरत्नोपकरणगर्हितलक्षणनिमित्तप्रादुर्भावो वेति ॥ १६ ॥ भवन्ति चात्र—

निंदित स्थानमें प्राप्त होकर वक्रानुवक्र (राहु, पंचतारा) ग्रह जिसके जन्मनक्षत्र या जन्मलग्नको पीडित करें क्रूरदृष्टिसे देखें अथवा जिसकी होरा (जन्म राश्यादि) को उल्का (पूछल तारे) शनैश्चर कडे हो घात करें (उसे अरिष्ट हो) ॥ १५ ॥ तथा निकम्मा घर, दुष्टा स्त्री, बुरी शय्या, बुरा आसन, निकम्मी सवारी और वाहन तथा दूषित मणि और रत्न तथा अन्य उपकरण इनका निंदित

लक्षण निमित्तक प्रादुर्भाव होना भी भावी अरिष्टकी सूचना करता है ॥ १६ ॥
यहां श्लोक हैं-

चिकित्स्यमानः सम्यक् च विकारो योभिवर्धते ॥ प्रक्षीणबलमांसस्य लक्षणं तद्गतायुषः ॥ १७ ॥ निवर्तते महाव्याधिः सहसा यस्य देहिनः ॥ न चाहारफलं यस्य दृश्यते स विनश्यति ॥१८॥ एतान्यरिष्टरूपाणि सम्यग्बुद्ध्येत यो भिषक् ॥ साध्यासाध्यपरीक्षायां स राज्ञः संमतो भवेत् ॥ १९ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

जिसका विकार यथार्थ चिकित्सा किये जानेपर बढताहीजाय ऐसे क्षीणबलमांसके लक्षण गतायुके जानना ॥ १७ ॥ जिस मनुष्यके महाव्याधि एकही वार शीघ्र निवृत्त होजाय अथवा जिसके शरीरमें भोजनका फल प्रगट नहीं हो वह मृत्युको प्राप्त हो ॥ १८ ॥ जो वैद्य इन अरिष्टलक्षणोंके रूपको और साध्य तथा असाध्यकी परीक्षाको ठीक २ जानता है वह वैद्य राजाओंके योग्य होता है ॥ १९ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

परिशिष्ट ।

चरक तथा वृद्ध वाग्भटके मतसे हम कुछ अग्र्यसंग्रहणीयद्रव्योंको परिशिष्टरूपसे अपने सुश्रुताध्यायियोंके मनोरंजन और उपकारके अर्थ यहां लिखते हैं ।

जो पदार्थ जिस २ कार्यमें सर्वोत्कृष्ट होता है उसे अग्र्य अर्थात् मुख्य कहते-हैं यद्यपि चरकमें १५२ और वृद्ध वाग्भटमें १५५ अग्र्य लिखे हैं; पर हम उनमेंसे जो २ अति उपकारक और मुख्य हैं उन्हें ही लिखते हैं ॥

यथा ।

श्रेष्ठमुदकमाश्वासनस्तंभनक्लेदनानाम् । स्नानं सुरा च श्रमहराणाम् । क्षीरं जीवनीयानाम् । मांसं बृंहणीयानाम् । रसः प्रीणनानाम् । लवणमन्नद्रव्यरुचिकराणाम् । तिंदुकमन्नद्रव्यारुचिकराणाम् । अम्लं हृद्यानाम् । कुक्कुटो बल्यानाम् । तैलं वातश्लेष्मप्रशमनानाम् । सर्पिर्वातपित्तप्रशमनानाम् । मधु श्लेष्मपित्तप्रशमनानाम् । स्वेदो मार्दवकराणाम् ॥

अर्थ-आश्वासन, स्तंभन (स्थिति) और क्लेदन (गीला करने तरावट करने)में जल सबसे श्रेष्ठ है और मुख्य है । थकान दूर करनेमें स्नान करना या थोडासा सुरापान करना मुख्य है । जीवन (जीवनकी स्थिति रखने) वालोंमें दुग्ध मुख्य है । बृंहणोंमें मांस मुख्य है । तृप्तिकारकोंमें रस (मांसरस) अथवा अन्नौषधा-

दिका रस) मुख्य है । अन्न और पदार्थोंके रुचिकारकोंमें लवण मुख्य है । अन्न और द्रव्योंसे अरुचि करनेवालोंमें तेंदू मुख्य है । हृदयके हितकारकोंमें अम्लरस मुख्य है । बलकारकोंमें कुक्कुट मुख्य है । वायु और पित्तशांतिकारकोंमें घृत मुख्य है । कफ और पित्तकी शांति करनेवालोंमें मधु (शहत) मुख्य है । मृदु (कोमल) करनेवालोंमें पसीना लेना मुख्य है ।

व्यायामः स्थैर्यकराणाम् । क्षारः पुंस्त्वोपघातिनाम् । आमं कपित्थमकंठ्यानाम् । आविकं सर्पिरहृद्यानाम् । महिषीक्षीरं स्वप्नजनननानाम् । मंडकं दध्यभिष्यन्दकराणाम् । इक्षुर्मूत्रजनननानाम् । यवाः पुरीषजनननानाम् ।

अर्थ-दृढताकारकोंमें व्यायाम मुख्य है । पुरुषार्थनाशकोंमें क्षार मुख्य है । कंठके हानिकारकोंमें कच्चा कैथ, और हृदयसे हानिकारकोंमें भेडका घृत, निद्राजनकोंमें भैंसका दूध, अभिष्यंदकारकोंमें विना जमा दही, मूत्रजनकोंमें ईख (पौंडा), मल पैदा करनेवालोंमें जौ मुख्य हैं ॥

जांबवं वातजनननानाम् । कुलत्था अम्लपित्तजनननानाम् । माषाश्चाविक्षीरं पित्तश्लेष्मजनननानाम् । दुरालभा पित्तश्लेष्मोपशोषणानाम् । उपवासो ज्वरहराणाम् । वृषो रक्तपित्तप्रशमनानाम् । कंटकारिका कासघ्नानाम् । लाक्षा सद्यःक्षतघ्नानाम् । नागबलाभ्यासः क्षयक्षतघ्नानाम् । पुष्करमूलं हिक्काश्वासकासपार्श्वशूलहराणाम् । अजापयः शोषघ्नस्तन्यकररक्तसंग्रहणप्रशमनानाम् । कुटजो रक्तार्शःप्रशमनानाम् । अरुष्करश्चित्रकमूलं च शुष्कार्शःप्रशमनानाम् ॥

अर्थ-जंबूके पत्र, त्वक्, फल वातजनकोंमें मुख्य हैं । अम्लपित्त पैदा करनेवालोंमें कुलत्थ मुख्य है । पित्तश्लेष्मकारकोंमें उडद और भेडका दूध मुख्य है । पित्तश्लेष्मशांतिकारकोंमें दुरालभा (साटी) मुख्य है । ज्वरनाशकोंमें लंघन मुख्य है । रक्तपित्तनाशकोंमें वासा और खांसी दूर करनेवालोंमें छोटी कटेली मुख्य है । तुरतके घाव भरनेवालोंमें लाख और क्षय तथा क्षत नाशकोंमें नागबलाका अभ्यास मुख्य है । हिक्का, श्वास, खांसी और पार्श्वशूलनाशकोंमें पुष्करमूल मुख्य है । शोष (राजयक्ष्मा) नाशकों और दुग्धवर्द्धकों और रक्तसंग्रहणीनाशकोंमें बकरीका दूध मुख्य है । रक्तकी बवासीरमें कुडा मुख्य है । भिलावाँ और चित्रक सूखी बवासीरके नाश करनेवालोंमें मुख्य हैं ।

लाजा छर्दिघ्नानाम् । यावशूकः स्रंसनीयपाचनीयार्शोघ्नानाम् । तक्राभ्यासोऽर्शःश्वयथुग्रहणीदोषघृतव्यापत्प्रशमनानाम् । क्रव्यान्मांसाभ्यासोऽर्शःशोषग्रहणीदोषघ्नानाम् । मुस्तं संग्रहणीयदीपनीयपाचनीयानाम् । अतिविषा संग्रहणीयपाचनीयसर्वदोषहराणाम् । बिल्वं संग्रहणीयदीपनीयवातकफप्रशमनानाम् ॥

अर्थ-वमन रोकनेवालोंमें धानकी खीलें मुख्य हैं । जवशूक स्रंसनों, पाचनों और अर्शनाशकोंमें मुख्य हैं । बवासीरके शोथ, ग्रहणीदोष और घृतके विकारोंके नाश करनेवालोंमें तक्रका अभ्यास मुख्य है । बवासीरकी दुर्बलता और ग्रहणी-दोषके नाशकोंमें मांसभक्षी (गृध्र) के मांसका अभ्यास मुख्य है । संग्राहकों, दीपनों और पाचनोंमें नागरमोथा मुख्य है । संग्राहकों (काबिजों), पाचनों और सर्वदोषनाशकोंमें अतीस मुख्य है । संग्राहियों, दीपनों और वातकफशांति-कारकोंमें बिल्व मुख्य है ॥

कुटजत्वक् श्लेष्मपित्तरक्तसंग्रहणीयोपशोषाणाम् । उत्पलकुमुदकिंजल्कोऽनंता च संग्रहणीयरक्तपित्तप्रशमनानाम् । गोक्षुरको मूत्रकृच्छ्रानिलहराणाम् । हरिद्रा प्रमेह-हराणाम् । एरंडतैलाभ्यासो वध्मगुल्मानिलशूलहराणाम् । अयोरजः पांडुरोगघ्ना-नाम् । खदिरः कुष्ठघ्नानाम् । विडंगं कृमिघ्नानाम् । रास्ना वातहराणाम् । गुग्गलुर्मे-दोऽनिलहराणाम् ॥

अर्थ-श्लेष्मपित्तरक्तका संग्राहण करने और शोषण करनेवालोंमें कुडेकी छाल मुख्य है । कमल वा कुमुद (पाडर), के केशर और अनंता ये संग्राहियों और रक्तपित्तशांतिकारकोंमें मुख्य हैं । मूत्रकृच्छ्र और वायुके नाश करनेवालोंमें गोखरू मुख्य है । प्रमेहनाशकोंमें हलदी मुख्य है । एरंडके तैलका अभ्यास करना वध्म रोग, गुल्म, वायु और शूलहरोंमें मुख्य है । लोहका रज पांडुरोगहरोंमें मुख्य है । कुष्ठनाशकोंमें खैर मुख्य है । कृमिनाशकोंमें वायविडंग मुख्य है । वायुनाशकोंमें रास्ना मुख्य है । मेद और वायुनाशकोंमें गूगल मुख्य है ।

त्रिवृत् सुखविरेचनानाम् । चतुरंगुलो मृदुविरेचनानाम् । स्नुक्पयस्तीक्ष्णविरेच-नानाम् । प्रत्यक्पुष्पी शिरोविरेचनानाम् । त्रिफला तिमिरघ्नानाम् । शिरीषो विष-घ्नानाम् । आमलकं वयःस्थापनानाम् । हरीतकी पथ्यानाम् । क्षीरघृताभ्यासो रसा-यनानाम् । संकल्पो नक्ररेतश्च वृष्याणाम् । दौर्मनस्यमवृष्याणाम् । तैलगंडूषा-भ्यासो दंतबलरुचिकराणाम् ॥

अर्थ-सुखविरेचनोंमें त्रिवृत् (निसोथ) मुख्य है । कोमल विरेचनोंमें चतुरंगुल (किरमाल) मुख्य है । तीक्ष्णविरेचनोंमें थोहरका दूध मुख्य है । शिरोविरेचन (शिरका मल झाडने) में प्रत्यक्पुष्पी मुख्य है । तिमिर (आंखोंके आगे अंधेरी आना) रोग नाशकोंमें त्रिफला मुख्य है । विषनाशकोंमें शिरस मुख्य है । अवस्था स्थिर करनेवालोंमें आंवले मुख्य हैं । पथ्योंमें बडी हरड मुख्य है । दूध और घृतका सेवन रसायनों (वार्द्धक्यनाशकों) में मुख्य है । वृष्यों (स्त्रीसंगमेच्छो-त्पादकों) में संकल्प (मनसे स्त्रीजनोंका चिंतवन या किसीपर आसक्ति अर्थात् चाहना) या नक्ररेत (मगरका वीर्य अर्थात् जलमार्जारका वीर्य अति सुगंध द्रव्य

जिसे अंबर कहते हैं) मुख्य है । अवृष्यों (स्त्रीसंगमेच्छानाशकों) में मनका बिगड जाना मुख्य है । दांतोंके बलवान् होने और रुचिकारकोंमें तैलके कुल्ले करने मुख्य हैं, इत्यादि । ग्रन्थबाहुल्यभयसे और नहीं लिखे ॥

रास्नाऽगुरुणी शीतापनयनप्रलेपानाम् । लामज्जकोशीरे दाहत्वग्दोषस्वेदापनयनप्रलेपानाम् । कुष्ठं वातहराभ्यंगोपनाहोपयोगिनाम् । मधुकं चक्षुष्यवृष्यकेश्यकंठ्यवर्ण्यविरंजनीयरोपणीयानाम् । अजीर्णाशनं ग्रहणीदूषणानाम् । विरुद्धवीर्याशनं निंदितव्याधिकराणाम् । अतिमात्राशनमामदोषहेतूनाम् । यथाग्न्यभ्यवहारोऽग्निसंधुक्षणानाम् (सर्वरसाभ्यासो बलकराणाम् । एकरसाभ्यासो दौर्बल्यारोचकान्यतमदोषप्रकोपकराणाम् ॥

अर्थ-रास्ना और अगर शीतनिवारण लेपोंमें मुख्य है । और लामज्जक (पीलेरंगकी बारीक खस जैसी जड) और खस ये दाह, त्वचाके विकार, पसीने नाशक लेपोंमें मुख्य हैं । वातनाशक उबटन और उपनाहों (स्वेदके उपयोगियों) में कूट मुख्य है । नेत्रोंके हितकारकों, वृष्यों, केशोंको सुंदर करनेवालों, कंठसुधारनेवालों, रूप तथा रंगको सुधारनेवालों और घाव भरने वालोंमें मुलहटी मुख्य है । ग्रहणीको दूषित करने (बिगाडने) वालोंमें, अजीर्णमें भोजन करना सर्वोपरि है। विपरीतवीर्यवाले पदार्थ (एकसाथ) खाना निंदितव्याधिकारकोंमें मुख्य हैं । अत्यंत खाना आंवके दोषोंके हेतुवोंमें सर्वोपरि है। जठराग्निके अनुसार खाना जठराग्नि तेज करनेवालोंमें मुख्य है । सब रसोंको यथायोग्य खातेरहना बलकारकोंमें मुख्य है । तथा एकरसही अत्यन्त खातेरहना दुर्बलता अरुचि इनमेंसे कोईसा होने या कोई और दोषकोपकारकोंमें मुख्य है ॥

बालो मृदुभेषजाहार्णाम् । वृद्धा याप्यानाम् । गर्भिणी तीक्ष्णौषधव्यवायव्यायामवर्जनीयानाम् । संनिपातो दुश्चिकित्स्यानाम् । ज्वरो रोगाणाम् । कुष्ठं दीर्घरोगाणाम् । राजयक्ष्मा रोगसमूहानाम् । प्रमेहोऽनुषंगिणाम् । हिमवानौषधभूमीनाम् । मरुभूमिरारोग्यदेशानाम् । आनूपभूमिरहितदेशानाम् । स्त्रीष्वतिप्रसंगः शोषद्वाराणाम् । शुक्रवेगनिग्रहः षांढ्यकराणाम् ॥

अर्थ-मृदु औषधयोग्योंमें बालक मुख्य है । याप्योंमें बूढा मनुष्य मुख्य है । तीक्ष्ण औषध, मैथुन और श्रम इनसे बचानेमें गर्भिणी स्त्री मुख्य है। कठिन चिकित्साओंमें सन्निपात सर्वोपरि है। रोगोंमें ज्वर मुख्य है । दीर्घरोगोंमें कुष्ठ सर्वोपरि है । रोगसमूहोंमें राजयक्ष्मा मुख्य है । हरएकके साथ होजानेवाले रोगोंमें प्रमेह सर्वोपरि है । औषधयोग्य भूमियोंमें हिमालय मुख्य है । निरोग देशोंमेंसे मरुभूमि (मारवाड) मुख्य है । निकम्मेदेशोंमें डाबरके देश हैं । शरीर सुखानेके रस्तोंमें

अतिस्त्रीसंग मुख्य है । वीर्यका वेग रोकना (निकलते वीर्यका रोकना या स्तम्भन-द्वारा वीर्य रोकना) नपुंसक करनेवालोंमें उत्कृष्ट है ॥

अग्निरामस्तंभशीतशूलोद्वेष्टकप्रशमनानाम् । सिद्धिर्वैद्यगुणानाम् । लौल्यं क्लेशकराणाम् । आत्मवत्तोपकारिणाम् । सर्वसंन्यासः सुखानाम् ॥

अर्थ-आमका स्तंभ, शीतशूल तथा उद्वेष्टक शांति करनेवालोंमें अग्नि (अग्निसे सेक करना) श्रेष्ठ है । वैद्यके गुणोंमें सिद्धि (रोगीको अच्छा कर देना) सर्वोत्कृष्ट और मुख्य है । क्लेश पहुँचानेवालोंमें (अपनी) चपलता सबसे उत्कृष्ट है । उपकार करनेवालोंमें अपना आत्मा वशमें करना मुख्य है । और सम्पूर्णसुखोंमें सब जगत्के झगडोंका संन्यास (परित्याग करदेना) श्रेष्ठ है ॥

इति परिशिष्टम् ।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.

अथातोऽवारणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे अवारणीय (असाध्यव्याधिविषयक) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

उपद्रवैस्तु ये जुष्टा व्याधयो यांत्यवार्यताम् ॥ रसायनाद्विना वत्स तान् शृणुष्वैकमना मम ॥ १ ॥

जो व्याधि उपद्रवोंसे संयुक्त होती है हे वत्स ! वे रसायन क्रियाके विना अवार्यता (असाध्यता) को प्राप्त होती हैं उनको (धन्वंतरिजी कहते हैं कि) एकाग्रचित्त होकर मुझसे श्रवण करो ॥ १ ॥

महाव्याधि ।

वातव्याधिः प्रमेहश्च कुष्ठमर्शो भगंदरः ॥ अश्मरी मूढगर्भश्च तथैवोदरमष्टमम् ॥ २ ॥ अष्टावेते प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्या महागदाः ॥ प्राणमांसक्षयश्वासतृष्णाशोषवमिज्वरैः ॥ ३ ॥ मूर्च्छातिसारहिक्काभिः पुनश्चैतैरुपद्रुताः ॥ वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥ ४ ॥

१ वातव्याधि (पक्षाघातादि), २ प्रमेह, ३ कुष्ठ, ४ अर्श (बवासीर), ५भगंदर, ६ अश्मरी, ७ मूढगर्भ, ८ उदररोग (जलोदरादि) ये आठ महारोग प्रकृतिहीसे दुश्चिकित्स्य अर्थात् दुःखसे चिकित्साके योग्य होते हैं और फिर यदि बल और मांसक्षय तथा श्वास और तृषा, शोष, वमन, ज्वर, मूर्च्छा, अतिसार,

---

(सूत्र ३) अस्योत्तरार्द्धं परेण सहानेतव्यम् ।

हिक्का इन उपद्रवों सहित हों तो विशेष करके सिद्धिकी इच्छावाले वैद्योंसे त्यागने योग्य हैं (अर्थात् इनकी सिद्धिकी आशा नहीं इससे उपद्रवयुक्त महारोगोंकी चिकित्सा सुज्ञ वैद्य नहीं करे) ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

वातव्याधिकी असाध्यता।

शूनं सुप्तत्वचं भग्नं कंपाध्माननिपीडितम् ॥
नरं रुजार्तिमंतं च वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ५ ॥

शोथ, त्वचाको स्पर्शका अज्ञान और भग्न (शरीर फटना) कम्प और अफारा इन रोगों करके पीडित जो वातव्याधिवाला रोगी हो उसे वह (वातव्याधि) नाशको प्राप्त करती है ॥ ५ ॥

प्रमेहका असाध्य रूप ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव वा ॥
पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हंति मानवम् ॥ ६ ॥

यथोक्त उपद्रवों सहित (अर्थात् मक्खी बैठने लगें ऐसा कफप्रमेह और अंडकोश फटकर झिरने लगे ऐसा पित्तप्रमेह तथा हृद्ग्रह, आध्मानादियुक्त वातप्रमेह हो जाय) और अत्यंत बहने लगे और शराविका, कच्छपिकादि पिडिकाओंसे अत्यंत पीडित हो तो ऐसा प्रमेह मनुष्यको नाश करदेता है ॥ ६ ॥

कुष्ठकी असाध्यता ।

प्रभिन्नं प्रस्रुतांगं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥
पंचकर्मगुणातीतं कुष्ठं हंतीह कुष्ठिनम् ॥ ७ ॥

जिसमें शरीर फटने लगे और अंग झिरने लगजाय, नेत्र लाल हों स्वरभंग हो जाय तथा पंचकर्म वमनादिक जिसको गुण नहीं करें अथवा पंचम धातु अस्थि इसके कर्म धारणादि और गुण दृढत्वादि जिसमें नाश हो जायँ अर्थात् जो कुष्ठ अस्थिगत हो जाय ऐसा कुष्ठ कुष्ठीको नाश करता है । अथवा पंचकर्म संशोधन, शमन, अभ्यंग, गुग्गुलु, शिलाजतु इत्यादि जहां गुण (फल) नहीं करें ऐसा कुष्ठी मृत्युवश हो ॥ ७ ॥

(सूत्र ७) पंचकर्मगुणातीतमिति–पंचकर्माणि–"प्रथमं वमनं पश्चाद्विरेकश्चानुवासनम् ॥ एतानि पंचकर्माणि निरूहो नावनं तथा ॥" (इति भावमिश्रः) तेषां गुणा अतीता यस्मात् तत्कुष्ठिनं कुष्ठं हंतीति डल्लनमतेन एतन्न सम्यक् यतः पंचशब्देन पंचमधात्वस्थिस्थितं कुष्ठमुक्तं तत्र च कर्माणि संशोधनसंशमनाभ्यंगगुग्गुलुशिलाजतुप्रभृतीनां गुणाः फलानि तेभ्योऽतीतं एतदुक्तं भवति । (इति डल्लनाचार्यः) ।

अर्शकी असाध्यता ।

तृष्णारोचकशूलार्तमतिप्रस्रुतशोणितम् ॥
शोफातीसारसंयुक्तमर्शांस्याधिर्विनाशयेत् ॥ ८ ॥

जिस अर्शोरोगीके तृषा, अरुचि, शूल ये उपद्रव हों बहुतही रुधिर गिरता हो शोथ और अतिसार करके संयुक्त हो ऐसा अर्श (बवासीर) मनुष्यको नाश करता है ॥ ८ ॥

भगंदरकी असाध्यता ।

वातमूत्रपुरीषाणि क्रिमयः शुक्रमेव च ॥
भगंदरात्प्रस्रवंति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥

वायु, मूत्र, विष्ठा, कृमि और वीर्य जिसके भगंदरमेंसे निकलें उसे त्यागदे (क्योंकि वह असाध्य है) ॥ ९ ॥

अश्मरीकी असाध्यता ।

प्रशूननाभिवृषणं रुद्धमूत्रं रुगन्वितम् ॥
अश्मरी क्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विता ॥ १०

जिस अश्मरी (पथरी) रोगवालेके नाभि तथा हृदयपर शोथ हो, मूत्र बंद हो और पीडा हो ऐसी अश्मरी शीघ्रही मनुष्यको नाश करदेती है और शर्करासहित सिकता मनुष्यको नाश करतीहै। अथवा यूं कहो कि सिकता और शर्करासहित पूर्वोक्त अश्मरीही मृत्युकारक है ॥ १० ॥

मूढगर्भकी असाध्यता ।

गर्भकोषपरासंगो मक्कल्लो योनिसंवृतिः ॥
हन्यात्स्त्रियं मूढगर्भो यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ ११ ॥

गर्भकोषका परासंग हो (अर्थात् स्थानच्युत गर्भ मार्गमें रुकजाय) और मक्कल्ल (गर्भानंतरीकशूल) हो और योनिका आवरणही रहे तो ऐसा मूढगर्भ स्त्रीको नाश करता है तथा यथोक्त उपद्रव (आक्षेपक, कास, श्वास, भ्रम, ज्वर आदि) भी स्त्रीको मृत्युकारक हैं ॥ ११ ॥

(सूत्र १०) सिकता शर्करान्विता पूर्वोक्तलक्षणा अश्मरी क्षपयतीति केचिद्व्याख्यानयंति । केचित्तु पृथक् तथा शर्करान्विता सिकता क्षपयतीति व्याख्यानयंति । (सूत्र ११) 'हन्यात् स्त्रियं मूढगर्भः' इत्यत्र 'हन्युः स्त्रियं मूढगर्भे' इति वा पठंति गर्भकोषपरासंगः इति गर्भाशयस्य परं अत्यर्थमासंगो निरोधः अथवा स्वस्थानात् परस्थानं गत्वा गर्भस्य निरोध इति भावः ।

उदररोगोंकी असाध्यता ।

पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् ॥
विरिक्तं पूर्यमाणं च वर्जयेदुदरार्दितम् ॥ १२ ॥

जिसके पसवाडे फटेसे जाते हों (पीडा हो) अन्नपर रुचि नहीं हो, शोथ और अतिसारसे पीडित हो तथा विरेचन हुए पीछे (या जलादि निकले पीछे) शीघ्र थोडे दिनहीमें फिर उदर बढ जाय तो ऐसे उदररोगवालेको त्यागदे ॥ १२ ॥

ज्वरकी असाध्यता ।

यस्ताम्यति विसंज्ञश्च शेते निपतितोपि वा ॥ शीतार्दितोंतरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ १३॥ यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान् ॥ नित्यं वक्त्रेण चोच्छ्वस्यात्तं ज्वरो हन्ति मानवम् ॥१४॥ हिक्काश्वासपिपासार्तं मूढविभ्रांतलोचनम्॥संततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ १५ ॥ आविलाक्षं प्रताम्यंतं निद्रायुक्तमतीव च ॥ क्षीणशोणितमांसं च नरं क्षपयति ज्वरः ॥ १६ ॥

जो खेदयुक्त या संज्ञारहित शयन करे या पडा रहे और बाहरसे शीत लगे और भीतर उष्णता हो ऐसा ज्वरवाला मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जिसके रोम खडे हो जायँ नेत्र लाल हों, हृदयमें महाशूल हो और सर्वदा मुखसे उर्द्धश्वास लेवे ऐसे लक्षणवालेको ज्वर नाश कर देता है ॥ १४ ॥ जिसके हिचकी, श्वास और तृषा हो तथा मोहयुक्त भ्रमित लोचन हों नित्य ऊँचे श्वास ले और क्षीण हो ऐसे लक्षणयुक्त मनुष्यको ज्वर मृत्यु प्राप्त करता है ॥ १५ ॥ जिसके निरन्तर अश्रुपात हों और खेदयुक्त हो तथा अत्यन्त निद्रा संयुक्त हो जिसका रक्त और मांस क्षीण हो गया हो ऐसे लक्षणयुक्त मनुष्यको ज्वर मृत्यु प्राप्त करता है ॥ १६ ॥

अतिसारकी असाध्यता ।

श्वासशूलपिपासार्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ॥
विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ १७ ॥

(सूत्र १२) पार्श्वभंगः पार्श्वभंग इव पीडा । विरिक्तं कृतविरेचनं विशेषेण रिक्तं वा पुनः पूर्यमाणम् । (सूत्र १३) तमु खेदे धातोस्ताम्यतीति रूपम् । (सूत्र १४) संघातशूलवान् महाशूलवानिति । (सूत्र १६) आविलाक्षं सतताश्रुपूर्णेक्षणम् । प्रताम्यंतं प्रकर्षेण खेदं गच्छंतं वा प्रकर्षेण मोहं गच्छंतमिति । (तंत्रांतरादतिसारारिष्टम्) "यस्यादौ दृश्यते चैवाप्यतीसारस्तथापरः ॥ ज्वरः शोषस्तथा श्वासः सोपि शीघ्रं मृतिं व्रजेत् ॥ १ ॥ (क्षयस्यारिष्टम्) "धातुहीनो भवेद्यस्तु शोकश्वासैर्निपीडितः ॥ बहुभोज्यो घणावांश्च राजयक्ष्मी विनश्यति ॥ २ ॥"

जिसको श्वास, शूल और तृषा हो क्षीण और ज्वरसे पीडायुक्त हो उसे अतिसार मृत्यु प्राप्त करता है। यदि ये उपद्रव वृद्धावस्थावाले मनुष्यके अतिसारमें हों तो विशेष करके मृत्युको प्राप्तही हो ॥ १७ ॥

राजयक्ष्माकी असाध्यता ।

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ॥
कृच्छ्रेण बहुमेहंतं यक्ष्मा हंतीह मानवम् ॥ १८ ॥

जिसके नेत्र सुपेद हों अन्नपर रुचि न हो और ऊर्द्धश्वाससे पीडित हों तथा कष्टसे बहुत मूत्रादि आते हों ऐसे रोगीको राजयक्ष्मा मृत्युकारक है ॥ १८ ॥

गुल्मकी असाध्यता ।

श्वासशूलपिपासान्नविद्वेषग्रंथिमूढताः ॥
भवंति दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मृत्युमेष्यतः ॥ १९ ॥

जिसके श्वास, शूल, तृषा और अन्नद्वेष हो और अकस्मात् गुल्मकी ग्रंथि लोप हो जाय तथा दुर्बलता हो ऐसे लक्षण मृत्युको प्राप्त होनेवाले गुल्मरोगीके होते हैं ॥ १९ ॥

विद्रधिकी असाध्यता ।

आध्मातं बद्धनिष्यंदं छर्दिहिक्कातृडन्वितम् ॥
रुजश्वाससमाविष्टं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २० ॥

जिस विद्रधियुक्त मनुष्यके आध्मान हो और पेशाब बन्द हो तथा छर्दि, हिक्का, प्यास, शूल और श्वास ये रोग हों तो वह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ २० ॥

पांडुरोगकी असाध्यता ।

पांडुदंतनखो यश्च पांडुनेत्रश्च मानवः ॥
पांडुसंघातदर्शी च पांडुरोगी विनश्यति ॥ २१ ॥

जिस मनुष्यके दांत, नखून और नेत्र पीले होजायँ तथा सब पदार्थ पीले दीखने लगें तो ऐसा पांडुरोगी नाशको प्राप्त हो ॥ २१ ॥

रक्तपित्तकी असाध्यता ।

लोहितं छर्दयेद्यश्च बहुशो लोहितेक्षणः ॥
रक्तानां च दिशां द्रष्टा रक्तपित्ती विनश्यति ॥ २२ ॥

जो रुधिरको वमन करे और अत्यन्त रक्त नेत्र हो जायं तथा सब दिशाओंको लालही लाल देखे ऐसा रक्तपित्तरोगवाला मृत्युको प्राप्त हो ॥ २२ ॥

उन्मादकी असाध्यता ।

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः ॥
जागरिष्णुरसंदेहश्चोन्मादेन विनश्यति ॥ २३ ॥

जो निरंतर नीचेको मुख रक्खे अथवा ऊपरहीको सदा मुख रक्खे और मांस तथा बलसे क्षीण हो जाय दिनरात्रि जागता रहे, किसी बातका सन्देह जिसको नहीं रहे ऐसा उन्मादरोगी नाशको प्राप्त हो ॥ २३ ॥

अपस्मारकी असाध्यता ।

बहुशोऽपस्मरंतं तु प्रक्षीणं चलितभ्रुवम् ॥
नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ २४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

जिसके वारंवार अपस्मारका वेग (दौरा) हो और क्षीण हो जाय जिसकी भृकुटी चलायमान हों तथा जो नेत्रोंको बुरी तरह करे ऐसा अपस्मार (मृगी) का रोगी नाशको प्राप्त होवे ॥ २४ ॥

इति पं०मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

तंत्रांतरोक्त परिशिष्ट ।

शोथरोगकी असाध्यता ।

बालस्य चातिवृद्धस्य विकलस्य नरस्य च ॥
सर्वांगे जायते शोफः शोफी सम्म्रियते ध्रुवम् ॥ १ ॥

अर्थ-बालक या वृद्धके या विकलमनुष्यके सब अंगोंमें सोजा हो तो वह शोथवाला अवश्य मृत्युको प्राप्त हो । "सर्वांग" शब्दसे यहां प्रायः दोनों हाथों, दोनों पावों, मुख और उदरकाही ग्रहण किया जाता है ॥ १ ॥

शूलका अरिष्ट ।

यस्याध्मानं च शूलं च श्वासस्तृष्णा विमूर्च्छनम् ॥
शिरोर्तिर्यस्य दृश्येत शूली मृत्युमवाप्नुयात् ॥ २ ॥

अर्थ-जिसके अफारा और शूल हो श्वास और तृषा तथा मूर्च्छा हो और शिरमें पीडा हो तो ऐसा शूलरोगी मृत्युको प्राप्त हो (शूलसे प्रयोजन शूलरोगोक्त "पार्श्वहृन्नाभिवस्तयः" के अनुसार दोनों पसली, हृदय, नाभि और वस्तिमें जो शूल होता है वही जानना । चाहे इनमें किसी स्थानका शूल हो जिसमें उपरोक्त लक्षण हों वह असाध्य होता है) ॥ २ ॥

श्वासरोगका अरिष्ट ।

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारस्योष्णता भवेत् ॥ शीघ्रनाडी न निर्वाह शीघ्रं-

याति यमालयम् ॥ ३ ॥ अंगकम्पो गतेर्भंगः मुखं वा कुंकुमप्रभम् ॥ उच्चारे च भवेद्वायुः स च याति यमालयम् ॥ ४ ॥

हुंकार अर्थात् विना मिचे मुहसे शीतलता विदित हो और फूत्कार (होंठ मीचकर फूक देनेमें) गरमाई तथा नाडी शीघ्र चले पर उसका प्रवाह ठीक न हो ऐसा श्वासरोगी शीघ्रही मृत्युवश हो ॥ ३ ॥ जिसके, अंग कांपे चला न जाय मुख पीला पडजाय, शब्दोच्चारण या दस्त जाते समय वायु निकलता रहे तो वह यमलोकमें जाय (मृत्युवश हो) ॥ ४ ॥

इति परिशिष्टम् ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

अथातो युक्तसेनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे युक्तसेनीय (सेनाकी नियुक्तिमें वैद्य अवश्य चाहिये इस विषयमें) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

युक्तसेनस्य नृपतेः परानभिजिगीषतः । भिषजा रक्षणं कार्यं यथा तदुपदेक्ष्यते ॥ १ ॥ विजिगीषुः सहामात्यैर्यात्रायुक्तः प्रयत्नतः ॥ रक्षितव्यो विशेषेण विषादेव नराधिपः ॥ २ ॥

सेनाको नियुक्त करनेवाले तथा शत्रुवोंके जीतनेकी इच्छावाले राजाकी सेनामें नियुक्त वैद्यको जिस प्रकार रक्षा करनी चाहिये उसका उपदेश करते हैं ॥ १ ॥ कामदारों सहित जब राजा जयकी इच्छासे यात्रा (चढाई) करे तब विशेष यत्नकरके विषसे राजाकी रक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥

पंथानमुदकं छायां भक्तं यवसमिंधनम् ॥ दूषयंत्यरयो यस्मात्जानीयाच्छोधयेत्तथा ॥ तस्य लिंगं चिकित्सा च कल्पस्थानं प्रवक्ष्यते ॥ ३ ॥ एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते ॥ तत्रैकः कालसंज्ञस्तु शेषास्त्वागंतवः स्मृताः ॥ ४ ॥ दोषागन्तुजमृत्युभ्यो रसमन्त्रविशारदौ ॥ रक्षेतां नृपतिं नित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ ॥५॥

(सूत्र ४) ननु कथमकालमृत्युः तथा चोक्तम्–"नाकाले म्रियते कश्चिंन्नास्ति मृत्युरकालजः ॥" इति तत्तु न सम्यक् वाक्यमिदं संतोषजनकं. वस्तुतस्तु आयुषक्षयवृद्ध्यादयो वेदेषूक्तत्वात् सिद्धा एवेति तथाहि व्यासः–"जलमग्निर्विषं शस्त्रं स्त्रियो राजकुलानि च ॥ अकालमृत्यवो ह्येते तेभ्यो बिभ्यति पंडिताः॥" अन्यच्च–"कालः सुरैरपि हि वंचयितुं न शक्यो वक्ष्येऽभिधानमपमृत्युविनाशनाय"। इति शतादर्वागकालमृत्युः फलपाकांते औषधीनां विनाश इव शतादनंतरं कालमृत्युः मध्ये त्वकाल एव ।

(पहले समयमें चढाईके समय) प्रतिपक्षी लोग मार्गको, जलाशयके जलको, वृक्षोंकी छायाको, भोजनकी सामग्रीको, यवस (अश्वगजादिके चारेको) विषादिसे दूषित कर दिया करते थे इससे उनको जानना और शोधन करना (वैद्यको) चाहिये उसके लक्षण और चिकित्सा कल्पस्थानमें वर्णन किये जायँगे ॥ ३ ॥ अथर्वणवेदके वेत्ता एकसौ एक प्रकारकी मृत्यु कहते हैं उनमेंसे एकतो कालसंज्ञक है और बाकी सौ १०० आगंतुक (अकाल) हैं ॥ ४ ॥ वातादि दोषों और आगंतु (अभिघातादि) से जो मृत्यु हों उनसे रस और मन्त्रके जाननेवाले वैद्य और पुरोहित यत्नसे नित्य राजाकी रक्षा करें ॥ ५ ॥

ब्रह्मा वेदांगमष्टांगमायुर्वेदमभाषत ॥ पुरोहितमते तस्माद्वर्तेत भिषगात्मवान् ॥ ६ ॥ संकरः सर्ववर्णानां प्रणाशो धर्मकर्मणाम्॥ प्रजानामपि चोच्छित्तिर्नृपव्यसनहेतुतः ॥७॥ पुरुषाणां नृपाणां च केवलं तुल्यमूर्तिता ॥ आज्ञात्यागः क्षमा धैर्यं विक्रमश्चाप्यमानुषः ॥ ८ ॥ तस्माद्देवमिवाभीक्ष्णं वाङ्मनःकर्मभिः शुभैः ॥ चिंतयेन्नृपतिं नित्यं श्रेयांसीच्छन् विचक्षणः ॥ ९ ॥

ब्रह्माजीने वेदका अंग अष्टांग आयुर्वेद वर्णन किया है इससे बुद्धिमान् वैद्य पुरोहितके मतके अनुसार वर्ताव रक्खे ॥ ६ ॥ राजाके दुर्व्यसन (कुचाल) होनेसे वर्णोंमें संकरता (वर्णसंकरता) और धर्म, कर्मका नाश तथा प्रजाका क्षय हो जाता है (अर्थात् यदि राजा दुर्व्यसनी होगा तो उसके मन्त्री आदि सभी दुर्व्यसनी हो जायँगे तो सब वर्णमर्यादाधर्म नष्टही होगा) इससे वैद्य और पुरोहित राजाको दुर्व्यसनसे बचावें ॥ ७ ॥ साधारण मनुष्यों और राजावोंके शरीरकी आकृति एकसीही होती है परन्तु आज्ञा (हुकूमत) त्याग (बखशिस), क्षमा (माफ करना) और धैर्य (धीरता) ये ऐश्वरीय होते हैं ॥ ८ ॥ इस हेतु देवताओंकी भांति निरंतर कल्याणकी वांछावाले चतुर मनुष्य वाणी, मन और शुभ कर्मोंसे सदा राजाका चिंतवन करते (शुभाभिलाषी) रहें ॥ ९ ॥

स्कंधावारे च महति राजगेहादनंतरम् ॥ भवेत्सन्निहितो वैद्यः सर्वोपकरणान्वितः ॥ १० ॥ तत्रस्थमेनं ध्वजवद्यशःख्यातिसमुच्छ्रितम् ॥ उपसर्पंत्यमोहेन विषशल्यामयार्दिताः ॥ ११ ॥

स्कंधावार (बडे कटक या राजधानी) में राजभवनसे अलग सब सामग्री (यन्त्र, शस्त्र, औषधादि) सहित किसी बडे प्रसिद्ध स्थानमें वैद्यको रहना

(सूत्र १०) स्कंधार्थमावारः स्कंधावारः युद्धार्थमुद्युक्तसैन्यस्थापनं राजधानीचेति (शब्दस्तोमः) ।

चाहिये ॥ १० ॥ जहां हरेक विष, शल्य और रोगोंसे पीडित मनुष्य अनायास (बेरोकटोक) ध्वजाकी तरह यश और ख्यातिसे विख्यात ऐसे वैद्यके पास सर्वदा जासकें ॥ ११ ॥

स्वतंत्रकुशलोऽन्येषु शास्त्रार्थेष्वबहिष्कृतः ॥
वैद्यो ध्वज इवाभाति नृपतद्विधपूजितः ॥ १२ ॥

अपने तन्त्र (आयुर्वेद वैद्यक शास्त्र) में प्रवीण हो और अन्य धर्मशास्त्र ज्योतिषादिको भी जानता हो ऐसा वैद्य राजा और धनाढ्योंसे पूजित ध्वजाकी तरह प्रसिद्ध होता है ॥ १२ ॥

चिकित्साके चार पाद ।

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषजं परिचारकः ॥ एते पादाश्चिकित्सायाः कर्मसाधनहेतवः ॥ १३ ॥ गुणवद्भिस्त्रिभिः पादैश्चतुर्थो गुणवान्भिषक् ॥ व्याधिमल्पेन कालेन महान्तमपि साधयेत् ॥ १४ ॥ वैद्यहीनास्त्रयः पादाः गुणवन्तोऽप्यपार्थकाः ॥ उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाऽध्वर्युं विनाऽध्वरे ॥ १५ ॥ वैद्यस्तु गुणवानेकस्तारयेदातुरान्सदा ॥ प्लवं प्रतितरैर्हीनं कर्णधार इवाम्भसि ॥ १६ ॥

१ वैद्य, २ रोगी, ३ औषध, ४ परिचारक चिकित्साके ये चार चरण कर्मकी सिद्धिके हेतु होते हैं ॥ १३ ॥ गुणवान् तीन चरणोंसे चौथा गुणवान् वैद्य बहुत बढी हुई दारुण व्याधिको भी थोडेही समयमें सिद्ध कर सकता है ॥ १४ ॥ वैद्यके विना गुणवान् भी तीनों चरण निरर्थक होते हैं (कुछ सिद्ध नहीं कर सकते) जैसे यज्ञमें उद्गाता, होता और ब्रह्मा ये तीनों विना अध्वर्यु (उपाध्याय) के निरर्थक हैं ॥ १५ ॥ एकही गुणवान् वैद्य रोगियोंको सदा तार सकता है जैसे किसी सामग्री करके हीनभी नौकाको मल्लाह बुद्धिमान् हो तो जलसे निकाल सकता है ॥ १६ ॥

तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा स्वयंकृती ॥ लघुहस्तः शुचिः शूरः सज्जोपस्करभेषजः ॥ १७ ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान्व्यवसायी विशारदः ॥ सत्यधर्मपरो यश्च स भिषक् पाद उच्यते ॥ १८ ॥

शास्त्र और उसके अर्थके तत्त्वका पारगंत हो चिकित्साकर्म देखे हुए हो, और आप कर्म करना जानताहो हलका और साफ हाथहो पवित्र हो शूरवीरहो तथा सब

(सूत्र १२) स्वतंत्रकुशलः चिकित्साशास्त्रनिपुणः । अन्येषु व्याकरणकोशकाव्यन्यायधर्मशास्त्रमीमांसादिषु शास्त्रार्थेष्वपि अबहिष्कृतः कृताभ्यासः ॥

सामग्री और औषधें रखता हो ॥ १७ ॥ तत्काल फुरनेवाली बुद्धिवाला और समझदार हो दिलावर हो, चतुर हो, सत्य और धर्ममें तत्पर हो ऐसा वैद्य चिकित्साका एक चरण होता है ॥ १८ ॥

आयुष्मान्सत्त्ववान्साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि ॥
आस्तिको वैद्यवाक्यस्थो व्याधितः पाद उच्यते ॥ १९ ॥

आयुवाला, सत्यवाला, साध्य और द्रव्यवान् और आत्मवान (परहेज रखनेवाला स्थिरचित्त), आस्तिक (ईश्वर गुरुदेवादिमें श्रद्धा रखनेवाला) और वैद्यके वाक्योंमें विश्वास करनेवाला ऐसा रोगी चिकित्साका दूसरा चरण है ॥ १९ ॥

प्रशस्तदेशसंभूतं प्रशस्तेहनि चोद्धृतम् ॥ युक्तमात्रं मनस्कांतं गंधवर्णरसान्वितम् ॥ २० ॥ दोषघ्नमग्लानिकरमविकारि विपर्यये ॥ समीक्ष्य दत्तं काले च भेषजं पाद उच्यते ॥ २१ ॥

जो औषध अच्छे देशमें उत्पन्न हुई, अच्छे दिन उखाडी हुई, यथायोग्य मात्रासे दीहुई और मनको प्रसन्न करनेवाली, गंध, वर्ण और रससे संयुक्त हो ॥ ॥ २० ॥ दोषको नाश करनेवाली, ग्लानि नहीं करनेवाली और विपरीत दोषमें विकार नहीं करनेवाली, विचारकर प्रयोग कीहुई और ठीकसमय दीहुई हो वह चिकित्साका तीसरा चरण है ॥ २१ ॥

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान् युक्तो व्याधितरक्षणे ॥
वैद्यवाक्यकृदश्रांतः पादः परिचरः स्मृतः ॥ २२ ॥
इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४ ॥

स्नेहयुक्त हो, निंदा न करे, बलवान् हो, रोगीकी रक्षामें युक्त रहनेवाला, वैद्यकी आज्ञानुसार कार्य करनेवाला और नहीं थकनेवाला ऐसा परिचारक चिकित्साका चौथा चरण है ॥ २२ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशोऽध्यायः ३५.

अथातः आतुरोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे आतुरोपक्रमणीय अर्थात् आतुरके उपायज्ञानपूर्वक चिकित्साका जिसमें आरम्भ हो ऐसे अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

(सूत्र२०) मनस्कांतं मनसः प्रियम् । १ उपक्रमणमुपायज्ञानपूर्वकारंभः चिकित्सा च उपक्रमोप्यत्र ।

आतुरमुपक्रममाणेन भिषजायुरेवादौ परीक्ष्येत ॥ सत्यप्यायुषि व्याध्यृत्वग्निवयोदेहबलसत्त्वसात्म्यप्रकृतिभेषजदेशान् परीक्ष्येत ॥

आतुरकी चिकित्सा आरम्भ करनेवाले वैद्यको प्रथम आयुकी परीक्षा करनी चाहिये (कि यह रोगी अल्पायु है या मध्यमायु या दीर्घायु और अब अवस्था उसके अनुसार है या नहीं) और यदि उसका आयु (शेष) हो तब उसके व्याधिकी परीक्षा करे (कि कौन व्याधि है, कैसी है, साध्य है या याप्य अथवा असाध्य) इसी भांति ऋतु (कि यह कौन ऋतु है और यह ऋतु रोगीके दोषोंको शांत करनेवाला है या कुपित) फिर आतुरकी अग्नि (जठराग्नि कि तीक्ष्ण है या मंद, सम या विषम) एवं अवस्था विचारे (कि इस समय रोगीकी बाल, युवा और वृद्ध इनमेंसे कौन अवस्था है और वर्तमान रोग इस अवस्थामें प्रबल होता है या निर्बल या सामान्यसाध्य होता है या याप्य) फिर देह (कि शरीर कृश है या स्थूल यथायोग्य है या विकृत) और बल (ठीक है या नहीं) तथा सत्त्व (सामर्थ्य और गुण) और सात्म्य (इसे कैसा आहार विहार सानुकूल होता है) तथा प्रकृति (कि रोगी वातप्रकृति है या पित्तप्रकृति या कफप्रकृति और रोगादिक उसके सानुकूल हैं या प्रतिकूल) तथा भेषज (औषध प्रकृति और समयादिके अनुकूल है या प्रतिकूल और यथोचित संगृहीत है या नहीं देश, धर्म और स्वभावादिसे विरुद्धता तो नहीं है) तथा देश (कि आनूप है या जांगल और रोगीको अनुकूल है या विपरीत) इत्यादि सब बातोंकी परीक्षा करे फिर चिकित्साका आरम्भ करे ॥

आयुके लक्षण ।

तत्र महापाणिपादपार्श्वपृष्ठस्तनाग्रदशनवदनस्कन्धललाटम् । दीर्घाङ्गुलिपर्वोच्छ्वासप्रेक्षणबाहुम् । विस्तीर्णभ्रूस्तनान्तरोरस्कम् । ह्रस्वजंघामेढ्रग्रीवम् । गंभीरसत्त्वस्वरनाभिमनुच्चैर्बद्धस्तनमुपचितमहारोमशकर्णपश्चान्मस्तिष्कम् । स्नातानुलिप्तं मूर्द्धानुपूर्व्या विशुष्यमाणशरीरं पश्चाच्च विशुष्यमाणहृदयं पुरुषं जानीयाद्दीर्घायुः खल्वयमिति तमेकान्तेनोपक्रमेत् ॥ एभिर्लक्षणैर्विपरीतैरल्पायुर्मिश्रैर्मध्यमायुरिति ॥ १ ॥ भवंति चात्र—

(सूत्र १) महच्छब्दः पाणिपादादिभिर्ललाटांतैः सह प्रत्येकं संबध्यते । महत्त्वं च स्वैरंगुलैर्वक्ष्यमाणप्रमाणात्किंचिदाधिक्यमेव । उपचितो मांसलो विस्तीर्णो लोमयुक्तो कर्णो पश्चान्मस्तिष्कश्च यस्य तं पश्चान्मस्तिष्कः ग्रीवायाः पश्चाद्भागः ।

तहां हाथ, पांव, पासूँ, पीठ, चूचीका बिटकन, दांत, चेहरा, कंधा और ललाट जिसके बडे हों, और अंगुलीके पोरवे तथा श्वास, नेत्र और भुजा जिसके लंबे हों। और भ्रुकुटी, चूचियोंका मध्यभाग (छाती) एवं वक्षस्थल जिसके फैले हुए हों। तथा जंघा, लिंग और ग्रीवा ये जिसके छोटे हों। और सत्त्व स्वर तथा नाभि जिसके गंभीर हों तथा बहुत ऊंची न उठी हुई कडी ऐसी जिसकी चूची हों। और मांसल, बहुत रोमयुक्त जिसके कान हों और ऐसेही मांसल, रोमयुक्त जिसकी पश्चान्मस्तिष्क अर्थात् गुद्दी हो। तथा स्नान और अनुलेपन करके पहले मस्तकको आदिले शरीर सूखे और सबसे पीछे हृदय सूखे ऐसे मनुष्यको निश्चय जाने कि यह दीर्घायु है उसकी निरंतरभावसे चिकित्सा करनी योग्य है। और जिसके लक्षण इसके विपरीत हों उसे अल्पायु जाने तथा जिसके मिश्रित लक्षण हों अर्थात् कुछ दीर्घायुके कुछ अल्पायुके तो उसे मध्यमायु जाने।(ऊपर जो बडा लंबा चौडा आदि अनुमान कहा उसकी गणना अगाडी कहे हुए प्रमाणसे समझना चाहिये)॥ १॥ यहां श्लोक हैं-

दीर्घायुके लक्षण।

गूढसंधिशिरास्नायुः संहतांगः स्थिरेन्द्रियः॥ उत्तरोत्तरसुक्षेत्रो यः स दीर्घायुरुच्यते ॥२॥ गर्भात्प्रभृत्यरोगो यः शनैः समुपचीयते॥ शरीरज्ञानविज्ञानैः स दीर्घायुः समासतः ॥ ३ ॥

जिसके संधि, शिरा (रग), स्नायु गूढ हों (अर्थात् संधि और रग तथा नसें ऊपरको चकमती नहीं) और जिसका अंग संहत (दृढसंयोगयुक्त) हो तथा इंद्रिय स्थिर हों तथा उत्तरोत्तर सुक्षेत्र हो अर्थात् पैरोंसे शिरपर्यंत यथाक्रम सुंदर हो वह मनुष्य दीर्घायु होता है ॥ २ ॥ जो गर्भसे लेकर बहुधा रोगयुक्त न रहताहो और जो धीरे २ शरीर तथा ज्ञान और विज्ञान करके वृद्धिको प्राप्त हो वह संक्षेपतासे दीर्घायु कहा जाता है अर्थात् जिसका शरीर क्रमसे धीरे २ बढे, एकवार शीघ्रही न बढजाय और न अति स्थूल हो जाय इसी प्रकार ज्ञान (बुद्धि) और विज्ञान (चतुराई) भी धीरे २ बढें तो दीर्घायु जानो (और यदि इसके विपरीत लक्षण हों तो दीर्घायु नहीं होता) ॥ ३ ॥

(सूत्र २) संहतांगः गूढांग इति डल्हनः। वाचस्पतिस्तु संहतशब्दस्य दृढसंयोगयुक्त इत्यर्थं प्रकाशते।

(सूत्र ३) उपचीयते वृद्धिं याति शरीरवृद्धिः मेदःप्रभृतिका। ज्ञानं तत्त्वावबोधः विज्ञानं चित्रकादिकर्मकौशलम्। अल्पे वयसि तरसा यो वृद्धिं याति सोल्पायुरिति। तत्रोच्यते-

"व्यंजनादिशुभा विद्या मेदोबोधादयो यशः॥ अल्पेवयसि यस्यैव न स जीवेत् कदाचन॥"

अर्थ-जिस मनुष्यको थोडी अवस्थामेंही चातुर्यता, उत्तमविद्या, मेदोवृद्धि, बोध और यश ये सब प्राप्त होजायँ वह मनुष्य कदाचित् नहीं जीता अर्थात् दीर्घायु नहीं होता॥

मध्यमायुके लक्षण ।

मध्यमस्यायुषो ज्ञानमत ऊर्ध्वं निबोध मे ॥ अधस्तादक्षयोर्यस्य लेखाः स्युर्व्यक्तमायताः ॥ ४ ॥ द्वे वा तिस्रोऽधिका वा पि पादौ कर्णौ च मांसलौ ॥ नासाग्रमूर्ध्वं च भवेदूर्ध्वलेखाश्च पृष्ठतः॥ यस्य स्युस्तस्य परममायुर्भवति सप्ततिः ॥ ५ ॥

(श्रीधन्वंतरिजी कहते हैं कि हे सुश्रुत !) इससे अगाडी मध्यमायुका ज्ञान (लक्षण) मुझसे श्रवण करो । जिसके नेत्रोंके नीचे दो या तीन या अधिक रेखा दिखाई दें (अथवा हाथोंके नीचे दो तीन या अधिक रेखा प्रगट हों) तथा पाँव और कान अधिमांसयुक्त (मोटे) हों और नाककी लौ ऊपरको हो और पिछाडी-को ऊर्ध्व रेखा हो तो उसकी वहुतसे बहुत सत्तर ७० वर्षकी अवस्था होतीहै॥४॥५॥

अल्पायुके लक्षण ।

जघन्यस्यायुषो ज्ञानमत ऊर्ध्वं निबोध मे ॥ ह्रस्वानि यस्य पर्वाणि सुमहच्चापि मेहनम् ॥६॥ तथोरस्यवलीढानि न च स्या-त्पृष्ठमायतम् ॥ ऊर्ध्वं च श्रवणौ स्थानान्नासा चोच्चा शरीरिणः ॥ ७ ॥ हसतो जल्पतो वापि दंतमांसं प्रदृश्यते ॥ प्रेक्ष्यते यच्च विभ्रांतं स जीवेत्पंचविंशतिम् ॥ ८ ॥

(श्रीधन्वंतरि भगवान् कहते हैं कि) जघन्य (अल्प) आयुवालेके लक्षण इसके आगे मुझसे सुनो । जिसके पोरवे या संधियोंके बीच छोटे हों तथा (छोटी अवस्थाहीमें) लिंग बढजाय ॥ ६ ॥ तथा छातीपर जिसके अवलीढ (रोमोंके आवर्त) हों तथा पृष्ठभाग विस्तारयुक्त न हो और कान अपने स्थानसे कुछ ऊँचे-पर हों और नाकभी कुछ २ ऊपरको चढी हो ॥ ७ ॥ हँसते हुए या बोलते हुए जिसके दांतोंका मांस (मसूढे) दीखे और जो नेत्रोंसे ठीक २ न देख सकता हो (ऐसे मनुष्यकी अल्प आयु होती है) वह २५ वर्षके अनुमान जीवताहै ॥८॥

(वक्तव्य) यह अवस्थाका अनुमान स्थूलरूपसे वर्णन किया गया है कि मध्यायु और अल्पायुको विचार करे, जिसके लक्षण जितनी अवस्थाके हों उस अवस्थामें यदि कोई दारुण रोग हो तो वैद्य समझकर चिकित्सा करे यद्यपि ठीक २ अवस्थाका ज्ञान दैवहीको यथार्थरूपसे होताहै अतः सांसारिक साधारण मनुष्योंकी क्या शक्ति है कि ठीक २ आयुका ज्ञान कर सकें तथापि बुद्धि और विद्याके बलसे यथासंभव ज्ञान करना मनुष्यताका धर्म है इसीसे ऋषिप्रणीत वाक्योंके आश्रयसे निश्चय करे और ईश्वरके भरोसे यथाविहित शास्त्रोक्त चिकित्सा करे । (सूत्र ६) जघन्यस्य निंद्यस्य स्वल्पस्य । (सूत्र ७) उरसि अवलीढानि आवर्तमेदरोमाणां प्रतिलोमानुलोमत्वेन ।

अंगप्रत्यंग ।

अथ पुनरायुषो विज्ञानार्थमंगप्रत्यंगप्रमाणसारानुपदेक्ष्यामः ॥९॥ तत्रांगान्यंतराधिसक्थिबाहुशिरांसि तदवयवाःप्रत्यंगानीति ॥१०॥

इसके अनन्तर पुनः आयुके विज्ञानके अर्थ अंग और प्रत्यंगोंके प्रमाण और सार (सत्वादि) का उपदेश करते हैं ॥ ९ ॥ जिसमें अन्तराधि (मध्यभाग-मन्दला) सक्थि (जंघासे पादांगुलीपर्यंत दोनों पांव) बाहु (कंधेसे हस्तांगुलीपर्यंत दोनों हाथ) छठा शिर ये छः अंग कहलाते हैं और इनके अवयव अंगुष्ठ, जानु, हथेली, कर्ण नासिका आदि प्रत्यंग जानने चाहिये ॥ १० ॥

अंगप्रत्यंगका प्रमाण ।

तत्र स्वैरंगुलैः पादांगुष्ठप्रदेशिन्यौ द्व्यंगुलायते । प्रदेशिन्यास्तु मध्यमाऽनामिका कनिष्ठिका यथोत्तरं पञ्चमभागहीनाः । चतुरंगुलायते पंचांगुलिविस्तृते प्रपदपादतले । पंचचतुरंगुलायतविस्तृता पार्ष्णिः । चतुर्दशांगुलायतः पादः ॥ ११ ॥

जिसमेंसे अपने अंगुलोंसे पांवका अँगूठा और प्रदेशिनी (पाँवकी तर्जनी अंगुली नखूनको छोडकर) की लम्बाई दो २ अंगुलकी होती है। प्रदेशिनीसे मध्यमा और मध्यमासे अनामिका और अनामिकासे कनिष्ठिका यथाक्रम पांचवां भाग कम २ होती हैं (प्रदेशिनी नखसहित ढाई अंगुलकी होती है उसका पांचवां भाग आधा अंगुल हुआ इससे यथाक्रम सब अंगुली एकसे दूसरी आध २ अंगुल कम होती हैं) चार अंगुल लम्बा पंजा (ऊपर अँगूठेके मूलसे अँगूठेके अग्रतक) होता है और पांच अंगुल चौडा पादतल (नीचेका पञ्जा) होता है। पांच अंगुल लम्बा और चार अंगुल चौडा टकना होता है। और चौदह अंगुल लम्बा (एडीसे अँगूठे तक) पांव होता है ॥ ११ ॥

चतुर्दशांगुलपरिणाहानि पादगुल्फजंघाजानुमध्यानि । अष्टादशांगुला जंघा जानूपरिष्टाद्द्वात्रिंशदंगुलमेवं पंचाशत् । जंघाऽऽयामसमावूरू ॥ १२ ॥

(सूत्र १०) "जंघे बाहू शिरोमध्यं षडंगमिदमुच्यते" इति तंत्रान्तरोक्तिः । (सूत्र ११) पादांगुष्ठः पादस्यैव प्रदेशिनी च द्व्यंगुलायते अंगुलद्वयदीर्घे नखं विहायेति शेषः । पंचमभागस्तु अर्द्धांगुलमात्रःप्रपदं पादाग्रम् (इति डल्हनः) पार्ष्णिः गुल्फस्याधोभागे पादग्रंथिः । (श० स्तोम०) (सूत्र १२) चतुर्दशांगुलपरिणाहानि पादमध्यगुल्फमध्यजंघामध्यजानुमध्यानीत्यर्थः । परिणाहो वर्तुलता । गुल्फः पादग्रंथिः–

चौदह अंगुल मुटाईवाला पांवका मध्य, गुल्फका मध्य, जंघाका मध्य और जानुका मध्य होता है। और टखनेसे गोडेतक जंघा अठारह अंगुल लम्बी होती है। और जानुसे ऊपर कमरकी संधितक बत्तीस अंगुल लम्बाव होता है ऐसे (पांवके अंगूठेसे कमरकी संधितक सब मिलकर) पचास अंगुल लम्बाव होता है तथा जंघाके आयाम (दैर्घ्य)के समान ऊरु (जानुसे ऊपर अण्डकोशकी संधितक) अठारह अंगुल ही होती है॥ १२॥

द्व्यंगुलानि वृषणचिबुकदशननासापुटभागकर्णमूलनयनांतराणि। चतुरंगुलानि मेहनवदनान्तरनासाकर्णललाटग्रीवोच्छ्रायदृष्ट्यंतराणि १३॥

वृषण (अण्डगोलक), ठोडी (नीचेसे दन्तमूलतक) तथा दांत और नासापुटभाग (नाकका बाहरला भाग) और कानका मूल तथा नेत्रका मध्यभाग ये सब दो २ अंगुलके होते हैं। तथा लिंग (उन्नतिरहित), मुखका बीच, नासिका, कान, माथा तथा ग्रीवाकी ऊँचाई और दृष्टिका मध्य (इस काली पुतलीसे उस पुतलीतक) ये सब चार ४ अंगुलके होते हैं॥ १३॥

द्वादशांगुलानि भगविस्तारमेहननाभिहृदयग्रीवास्तनांतरमुखायाममणिबन्धप्रकोष्ठस्थौल्यानि। इन्द्रबस्तिपरिणाहांसपीठकूर्परान्तरायामः षोडशांगुलः॥ १४॥

भगका विस्तार (भीतरको) तथा लिंगसे नाभितकका अन्तर और नाभिसे हृदयतकका अन्तर और हृदयसे ग्रीवातकका अन्तर तथा दोनों चूंचियोंके बिटकनका अन्तर ये सब बारह २ अंगुल होते हैं तथा मुखका विस्तार (ठोडीसे कपाल पर्यंत) तथा मणिबन्ध (बाहुमूल) और प्रकोष्ठ इनकी मुटाई बारह अंगुल जानों और इंद्रबस्ति (जंघा) की मुटाई सोलह अंगुल, इसी भांति अंसपीठ (कंधे) और कूर्पर (कोहनी) इनके बीचकी लम्बाई भी १६ अंगुल होतीहै॥ १४॥

—जंघाशब्देन गुल्फजानुमध्यमुच्यते। जानूपरिष्टात् जानुनोऽधःसन्धिमारभ्य कटिसंधिर्यावत् द्वात्रिंशदंगुलो दैर्घ्येणेत्यर्थः। जंघयोरायामेन दैर्घ्येण समौ ऊरू अपि अष्टादशांगुलाविति जानुनः उपरि वक्षणसंधिपर्यंतमूरुः (इति डल्हनः)।

(सूत्र १३) मेहनमुच्छ्रायहीनं चतुरंगुलमस्ति शशजातेस्तु सोच्छ्रायमपि चतुरंगुलमिति। वदनांतरं मुखस्यांतरं नासावंशो दैर्घ्येण चतुरंगुलः कर्णललाटग्रीवाणाम् उच्छ्रायो दीर्घत्वं चतुरंगुलं ललाटो नासावंशात्केशमूलपर्यंतः। दृष्ट्यन्तराणि कृष्णतारके मसूरदलप्रमाणे तयोरंतरं चतुरंगुलमिति (डल्हनः)। (सूत्र १४) मणिबन्धो बाहुमूलं प्रकोष्ठः मणिबंधोपरिष्टाच्चतुरंगुलः मुखायामः चिबुकादारभ्य ललाटं यावत्।

चतुर्विंशत्यंगुलो हस्तः । द्वात्रिंशदंगुलपरिमाणौ भुजौ । द्वात्रिंशत्परिणाहावूरू । मणिबंधकूर्परांतरं षोडशांगुलम् । तलं षट्चतुरंगुलायामविस्तारम् । अंगुष्ठमूलप्रदेशिनीश्रवणापांगांतरमध्यमांगुल्यौ पंचांगुले । अर्द्धचतुरंगुले प्रदेशिन्यनामिके । सार्द्धत्र्यंगुलौ कनिष्ठांगुष्ठौ ॥ १५ ॥

कोहनीसे मध्यमाअंगुलीके अग्रभाग तक चौबीस अंगुलका हस्त (हाथ) होता है । और बत्तीस अंगुलकी दोनों भुजा तथा बत्तीस अंगुल मोटी दोनों ऊरू (जानुके ऊपरसे वंक्षणसन्धितक) तथा मणिबन्धसे कोहनीतककी लम्बाई सोलह अंगुल होतीहै । और हथेली छः अंगुल लम्बी और चार अंगुल चौड़ी होती है (कइयोंके मतमें पांच अंगुल चौडी हथेली होती है) । अंगुष्ठके मूलसे हाथकी तर्जनीका अन्तर तथा कानोंसे नेत्रकोणका अन्तर तथा मध्यमाअंगुलीसे पांच अंगुलके होते हैं । तथा तर्जनी और अनामिका साढे चार २ अंगुलकी होतीहैं तथा कनिष्ठिका और अँगूठा ये साढे तीन २ अंगुलके होते हैं ॥ १५ ॥

चतुर्विंशतिविस्तारपरिणाहं मुखग्रीवम् । त्रिभागांगुलिविस्तारा नासापुटमर्यादा । नयनत्रिभागपरिणाहा तारका । नवमस्तारकांशो दृष्टिः । केशांतमस्तकांतरमेकादशांगुलम् । मस्तकादवटुकेशांतो दशांगुलः । कर्णावट्वंतरं चतुर्दशांगुलम् । पुरुषोरःप्रमाणविस्तीर्णा स्त्रीश्रोणिः । अष्टादशांगुलविस्तीर्णमुरः । तत्प्रमाणा कटी । सविंशमंगुलशतं पुरुषायाम इति ॥ १६ ॥ भवन्ति चात्र—

चार अंगुल विस्तार मुखका और बीस अंगुल मुटाई ग्रीवाकी होती है । एक अंगुल त्रिभाग सहित नासापुटकी मर्यादा होती है । नेत्रके तीसरे भागकी समान

(सूत्र १५) तलं षट्चतुरंगुलमित्यत्र षट्पंचांगुलायामविस्तारमिति वा पाठांतरं मन्यते ॥ (सूत्र १६) चतुर्विंशतिविस्तारपरिणाहमिति चतुरंगुलविस्तारं मुखं विंशतिपरिणाहा ग्रीवेति डल्हनः । अन्ये तु मुखस्थाने उर इति पठंति तत्र चतुर्विंशति विस्तारमुरः चतुर्विंशतिपरिणाहा ग्रीवा इति पाठांतरार्थं मन्यते । ग्रीवा कंधरा तारका कृष्णभागः दृष्टिरत्र मसूरदलमात्रं तत्कृष्णभागस्य नवमांशप्रमितम् । केशांतः शंखोपरि मस्तकमध्यविभागो रोमावर्तान्वितः मस्तकं शिरः तयोरंतरं मस्तकावधेः रोमावर्तान्वितकेशांतपर्यंतमेकादशांगुलमिति । मस्तकादवटुकेशांत इति मस्तकात् शिरोमध्यविभागात् अवटुकेशांतः पश्चाद्भागजन्यकेशावधिः दशांगुलः कर्णावट्वोरंतरं चतुर्दशांगुलम् । पुरुषोरोहृदयादूर्ध्वं कंठस्याधो द्वादशांगुलं तत्प्रमाणविस्तीर्णा द्वादशांगुलविस्तीर्णा स्त्रीणां श्रोणिः श्रोणिरत्रोरुसंधेरवस्तात्स्मरमंदिरोपरितनदिग्भागः । अष्टादशांगुलं स्त्रीणामुरः तत्प्रमाणाऽष्टादशांगुलप्रमाणा कटी । पादाग्रावस्थितस्योर्ध्वबाहोः पुरुषस्य दैर्घ्यं विंशाधिकमंगुलशतं भवतीति ।

काली पुतलीकी गोलाई (व्यास) होती है । तथा पुतलीके नवम भागके समान दृष्टि (बिंदु) होती है (यह शल्यतंत्रके अनुसार प्रमाण हैं शालाक्यके अनुसार मसूरदलमात्र जानना) मस्तकके केशांत (केशावर्त भौंरे) तकका अंतर ग्यारह अंगुल होता है । तथा मस्तकके (मस्तकावधिसे) अवटु (ग्रीवापश्चाद्भाग) केशांत दश अंगुल होते हैं । कानसे अवटुओंका (गुद्दीके बालोंका) बीच चौदह अंगुल होता है । पुरुषके हृदयके प्रमाण विस्तारवाली (बारह अंगुल) स्त्रीकी श्रोणि (भगसे नाभितक) होती है। तथा अठारह अंगुल विस्तार स्त्रीके उरका होता है, एवं अठारह अंगुल कटी (कमर) का विस्तार होता है। इस भांति (पांवके अग्रभागसे लेकर हाथ उठाये हुए) पुरुषका अनुमान एकसौ बीस (१२०) अंगुलका होता है ॥ १६ ॥ यहां श्लोक हैं-

पंचविंशे ततो वर्षे पुमान्नारी तु षोडशे ॥ समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १७ ॥ देहः स्वैरंगुलैरेष यथावदनुकीर्तितः ॥ युक्तप्रमाणेनानेन पुमान् वा यदि वांगना ॥ १८ ॥ दीर्घमायुरवाप्नोति वित्तं च महदृच्छति ॥ मध्यमं मध्यमैरायुर्वित्तं हीनैस्तथाऽवरम् ॥ १९ ॥

पच्चीस वर्षकी अवस्थामें पुरुष और सोलह वर्षकी अवस्थामें स्त्री संपूर्णताको प्राप्त होते हैं, तथा संप्राप्तवीर्य (पूर्ण बलवीर्यवाले) होते हैं चतुर वैद्यको ऐसे जानना चाहिये (और इसी अवस्थामें अंग, प्रत्यंग परिपूर्ण होते हैं) ॥ १७ ॥ यही पूर्णशरीर अपने अंगुलोंसे यथावत् अनुमानसे सबका शरीर प्रमाण किया गया है । पुरुप हो अथवा स्त्री इसी युक्त प्रमाणके अनुमान सबका शरीर होता है ॥ ॥ १८ ॥ जिसका प्रमाण इस अनुमानके अनुसार ठीक २ हो वह दीर्घ आयुको प्राप्त होता है और बहुत द्रव्यवान् होता है तथा जो मध्यम अर्थात् कोई अंग ठीक और कोई न्यूनाधिक हो तो मध्यमायु और मध्यम द्रव्यवान् होता है और जो सब अंग. प्रत्यंग हीन हों तो अल्पायु और द्रव्यहीन भी होता है (तथा मध्यमांगका यह भी है कि अवस्था अधिक हो तो द्रव्य अल्प हो या हीन हो और यदि द्रव्य अधिक हो तो अवस्था बडी न हो) ॥ १९ ॥

धातुओंके सारका वर्णन ।

अथ सारान् वक्ष्यामः । स्मृतिभक्तिप्रज्ञाशौर्यशौचोपेतं कल्याणाभिनिवेशं सत्त्वसारं विद्यात् ॥ २० ॥

(सूत्र १७) समत्वागतवीर्यौ समत्व परिपूर्णत्वमागत वीर्य ययोः तौ परिपूर्णत्वेन प्राप्तवीर्यावित्यर्थः ।
(सूत्र १९) अवरं स्वल्पम् ।(सूत्र २०)कल्याणाभिनिवेशं कल्याणविषये यत्नपरं सत्त्वगुणबहुलम् ।

इसके अनन्तर धात्वादिकका सार वर्णन करते हैं। स्मृति (याद), भक्ति (आस्तिक्य), बुद्धि, शूरवीरता, शुद्धि रखना और शुभ कामोंमें प्रवृत्ति होना सत्त्वका सार है (सत्त्वगुणबाहुल्य जानो) ॥ २० ॥

स्निग्धसंहतश्वेतास्थिदन्तनखं बहुलकामप्रजं शुक्रेण ॥ २१ ॥ अकृशमुत्तमबलं स्निग्धगंभीरस्वरं सौभाग्योपपन्नं महानेत्रं च मज्ज्ञा ॥ २२ ॥ महाशिरःस्कंधदृढदन्तहन्वस्थिनखमस्थिभिः ॥ ॥२३॥ स्निग्धमूत्रस्वेदस्वरं बृहच्छरीरमायाससहिष्णुं मेदसा॥२४॥

चिकने और यथायोगयुक्त श्वेत अस्थि और दांत तथा बहुत काम और संतान वाय (की अधिकता और सार) से होते हैं ॥ २१ ॥ कृशता रहित उत्तम बल और स्निग्ध तथा गंभीर स्वर और सौभाग्यकी संपन्नता एवं महानेत्र ये मज्जा-धातुके सारसे होते हैं ॥ २२ ॥ बडा शिर और कंधे मजबूत दांत और दृढ ठोडीका हाड, नखून ये अस्थिके सारसे होते हैं ॥ २३ ॥ मूत्र, पसीना और स्वर इनमें स्निग्धता तथा लंबा चौडा शरीर और परिश्रम सहनेका सामर्थ्य ये मेद धातुके सारसे होते हैं ॥ २४ ॥

अच्छिद्रगात्रं गूढास्थिसंधिं मांसोपचितं च मांसेन ॥ २५ ॥ स्निग्धताम्रनखनयनतालुजिह्वौष्ठपाणिपादतलं रक्तेन ॥२६ ॥ सुप्रसन्नमृदुत्वग्रोमाणं त्वक्सारं विद्यादित्येषां पूर्वं पूर्वं प्रधानमायुःसौभाग्ययोरपि ॥ २७ ॥ भवति चात्र-

छिद्र (व्रणादि) रहित गात्र, अस्थि और संधियोंमें गूढत्व तथा मांसका संचय ये मांसके सारसे होते है ॥ २५ ॥ चिकने ताम्रवर्ण नखून, नेत्र, तालु, जिह्वा, होठ, हथेली और तलुवे रुधिरके सारसे होते हैं ॥ २६ ॥ रुधिर और कोमल त्वचा और रोमोंका होना त्वचाके सारसे जानो। इनमेंसे पूर्व पूर्व आयु और सौभाग्य (की वृद्धि) में प्रधान होते हैं ॥ २७ ॥ यहां श्लोक है-

सामान्यतोंगप्रत्यंगप्रमाणादथ सारतः ॥
परीक्ष्यायुः सुनिपुणो भिषक् सिध्यति कर्मसु ॥ २८ ॥

सामान्यतासे अंग, प्रत्यंगके प्रमाणसे तथा धात्वादिके सारसे अवस्थाकी परीक्षा करके निपुण वैद्य सब कार्योंमें सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ २८ ॥

व्याधिविशेषास्तु प्रागभिहिताः सर्व एवैते त्रिविधाः साध्या

(सूत्र २१-२६) सर्वत्र विद्यादिति क्रियापदेनान्वयः अग्रिमश्लोकोक्तेन । शुक्रेण कृतासारः ।

याप्याः प्रत्याख्येयाश्च तत्रैतान् भूयस्त्रिधा परीक्षेत किमसावौपसर्गिकः प्राक्केवलोऽन्यलक्षण इति ॥ २९ ॥

पूर्वोक्त जो व्याधिविशेष हैं वे सम्पूर्णही तीन प्रकारके होते हैं १ साध्य, २ याप्य, ३ प्रत्याख्येय अर्थात् असाध्य जिनमेंसे उन्हें फिर तीन प्रकारसे परीक्षा करे कि यह व्याधि औपसर्गिक है या प्राक्केवल अथवा अन्यलक्षण ॥ २९ ॥

औपसर्गिकादिके लक्षण ।

तत्रौपसर्गिको यः पूर्वोत्पन्नं व्याधिं जघन्यकालजातो व्याधिरुपसृजति स तन्मूल एवोपद्रवसंज्ञः ॥ ३० ॥ प्राक्केवलो यः प्रागेवोत्पन्नो व्याधिरपूर्वरूपोऽनुपद्रवश्च ॥ ३१ ॥ अन्यलक्षणो यो भविष्यद्व्याधिस्थापकः स पूर्वरूपसंज्ञः ॥ ३२ ॥ तत्र सोपद्रवमन्योन्याविरोधेनोपक्रमेत् बलवंतमुपद्रवं वा । प्राक्केवलं यथास्वं प्रतिकुर्वीत । अन्यलक्षणेत्यादिव्याधौ प्रयतेत ॥ ३३ ॥ भवति चात्र-

उनमें औपसर्गिक वह है जो व्याधि जघन्य कालमें (रोगक्रांति कालमें) उत्पन्न हो और पूर्वोत्पन्न व्याधिके साथ हो जाय वह पूर्वव्याधि कारणरूप उपद्रव संज्ञिक होता है (जैसे पहले ज्वर हो पीछे कास हो तो कास औपद्रविक है या औपसर्गिक) ॥ ३० ॥ प्राक्केवल वह है जो व्याधि पहले आपही उत्पन्न हो । न तो जिसके पूर्वरूप कोई व्याधि हो न पश्चाज्जात कोई उपद्रव हो (अर्थात् निरुपद्रव केवल एक व्याधि) ॥३१॥ अन्यलक्षण वह है जो आगामी (होनेवाली) व्याधिको स्थापन करनेवाली हो वह पूर्वरूपसंज्ञक होती है (जैसे कास पहिले होकर फिर क्षयी होजाय तो कास अन्यलक्षण या पूर्वरूप है) ॥ ३२ ॥ उनमेंसे उपद्रव युक्त मूलव्याधिका पहले परस्पर विरोधकी रहिततासे यत्न करे और यदि उपद्रव बलवान् हो तो पहले उसकी चिकित्सा करे पर यहांभी व्याधिसे विरोध न हो और प्राक्केवल एकही व्याधि हो तो यथायोग्य (देश, काल, अवस्था तथा भावी उपद्रवोंकी अविरोधतासे) उसीका यत्न करे । तथा अन्यलक्षण (पूर्वरूपसंज्ञक हो तो उसमें) अग्रिम व्याधिका रोक और उसकी चिकित्सा यथायोग्य करनेमें यत्न करे ॥ ३३ ॥ यहां श्लोक है-

नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माद्विचक्षणः ॥ अनुक्तमपि दोषाणां लिंगैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥३४॥ प्रागभिहिता ऋतवः ॥ शीते

शीतप्रतीकार उष्णे चोष्मनिवारणम्॥ कृत्वा कुर्यात् क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ ३५ ॥

रोग विना दोषोंके नहीं होता है इस कारणसे चतुर वैद्य विना कहे हुए दोषोंके चिह्नोंसेभी व्याधिका निश्चय और उपाय करे ॥ ३४ ॥ ऋतुओंका वर्णन पहले ऋतुचर्याध्यायमें करचुके हैं उसके अनुसार शीत हो तो शीतका प्रतीकार (उष्ण आहार, विहारसे) करे और उष्ण हो तो उष्णका निवारण (शीतल आहार, विहारसे) करे पुनः यथाप्राप्त क्रिया करे और क्रियाकालका परित्याग (कदाचित्) नहीं करे ॥ ३५॥

अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न कृता क्रिया ॥ क्रिया हीनातिरिक्ता वा साध्येष्वपि न सिध्यति ॥ ३६ ॥ यात्युदीर्णं शमयति नान्यं व्याधिं करोति च ॥ सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ ३७ ॥

अप्राप्तकालमें की हुई क्रिया (जैसे साधारण ज्वरमें छः दिनपूर्व ज्वरघ्न औषध कषायरूप देना) तथा प्राप्तसमयपर क्रिया न करना (जैसे पक्व व्रणको छेदन न करना या फूटेका शोधन न करना इत्यादि) तथा हीनक्रिया (बढे दोषमें बहुतही न्यून औषध देना या अतिदारुण योग्य व्रणको अतिलघु छेदन करना) तथा अधिक क्रिया (लघुव्रणको अतिविदारण करदेना या अल्पदोषमें औषधकी मात्रा बहुत अधिक देना) 'वा' शब्दसे मिथ्याक्रियाका ग्रहण करना (शीतसाध्य रोगमें उष्ण एवं-बृंहणसाध्यमें कर्षण) इत्यादि क्रिया साध्यरोगोंमें भी सिद्धिको प्राप्त नहीं होती ॥ ३६ ॥ यथार्थ क्रिया वही है जो बढे हुए दोषको शांत करे और अन्य व्याधिको उत्पन्न नहीं करे किंतु वह क्रिया यथार्थ नहीं है जो एक व्याधिको दूर करे तो अन्य दूसरी प्रगट करे ॥ ३७ ॥

जठराग्निभेद ।

प्रागभिहितोग्निरन्नस्य पाचकः । स चतुर्विधो भवति दोषानभिपन्न एको विक्रियामापन्नस्त्रिविधो भवति ॥ ३८ ॥

पहले (व्रणप्रश्न नामक २१ वें अध्यायमें) वर्णन किया गया है कि पाचकसंज्ञक जाठराग्नि अन्नको पकानेवाली है । वह चार प्रकारकी है निर्दूषित तो एक और विकारयुक्त तीन प्रकारकी होजाती है ॥ ३८ ॥

विषमो वातेन तीक्ष्णः पित्तेन मंदः श्लेष्मणा चतुर्थः समः सर्वे-

साम्यादिति ॥ ३९ ॥ तत्र यो यथाकालमन्नमुपयुक्तं सम्यक् पचति स समः समैर्दोषैः ॥ ४० ॥

विषमाग्नि वायुसे होती है और तीक्ष्णाग्नि पित्तसे तथा मन्दाग्नि कफसे और चौथी सम अग्नि सबकी समानतासे होती है ॥ ३९ ॥ उनमेंसे जो ठीक २ समयपर उपयोग किये हुए अन्नको अच्छे प्रकार पचावे वह सम अग्नि है और यह वायु, पित्त, कफ इन सबकी समानता (निर्दूषितता) से होती है ॥ ४० ॥

विषमाग्नि ।

यः कदाचित् सम्यक् पचति कदाचिदाध्मानशूलोदावर्तातिसारजठरगौरवांत्रकूजनप्रवाहणानि कृत्वा स विषमः ॥ ४१ ॥

जो जठराग्नि कभी २ तो अन्नका पचाव ठीक २ करदे और कभी अफारा, पेटमें दरद, उदावर्त्त, अतिसार, पेटमें भारीपना, आंतोंमें गुडगुडाहट तथा प्रवाहिका आदि उत्पन्न करे और फिर (विषमतासे) अन्नका परिपाक करे वह विषम अग्नि है॥४१॥

तीक्ष्णाग्नि ।

यः प्रभूतमप्युपयुक्तमन्नमाशु पचति स तीक्ष्णः स एवाभिवर्द्धमानोत्यग्निरित्याभाष्यते स मुहुर्मुहुः प्रभूतमप्युपयुक्तमाशुतरं पचति पाकांते च गलताल्वोष्ठशोषदाहसंतापान् जनयति ॥ ४२ ॥

जो अधिक उपयोग किये (भोजन) अन्नको शीघ्र पचावे वह जठराग्नि तीक्ष्ण अग्नि कहलाती है और यही तीक्ष्णाग्नि जब बढजाय तब इसे अत्यग्नि (भस्मक) कहते हैं तब यह वारंवार अधिक भोजन किये हुएको बहुतही शीघ्र पचा देती है (और क्षुधा बंद नही होती) और पाकके अंतमें गल, तालु, होठ इनमें शुष्कता और दाह तथा संताप उत्पन्न करती है ॥ ४२ ॥

मंदाग्नि ।

यः स्वल्पमप्युपयुक्तमुदरशिरोगौरवकासश्वासप्रसेकच्छर्दिगात्रसदनानि कृत्वा महता कालेन पचति स मन्दः ॥ ४३ ॥

जो थोडे भोजन किये हुएके भी पेट या शिरमें भारीपन, खांसी, श्वास, मुहसे पनछुटी वमन (या उबकाई); अंगोंमें थकान आदि उपाधियोंको उत्पन्न करके बहुत देरमें अन्नको पचावे उसे मन्द अग्नि कहते हैं ॥ ४३ ॥

(सूत्र ४१) विषमाग्नेर्यदा वायुर्न विक्षिपति तदा सम्यक् पचति यदा पुनरितश्चेतश्च भागशो विक्षिप्तः स्यात्तदाग्निः सम्यक् न पचति ।

विषमो वातजान्रोगान्तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान् ॥
करोत्यग्निस्तथा मंदो विकारान्कफसंभवान् ॥४४॥

विषम अग्नि वायुके रोगोंको उत्पन्न करती है तथा तीक्ष्ण अग्नि पित्तके रोगोंको तथा मन्द अग्नि कफके विकारोंको उत्पन्न करती है ॥ ४४ ॥

तत्र समे परिरक्षणं कुर्वीत विषमे स्निग्धाम्ललवणैः क्रियाविशेषैः प्रतिकुर्वीत तीक्ष्णे मधुरस्निग्धशीतैर्विरेकैश्च एवमेवात्यग्नौ विशेषेण माहिषैश्च क्षीरदधिसर्पिर्भिर्मंदे कटुतिक्तकषायैर्वमनैश्च ॥ ४५ ॥

इनमेंसे सम अग्नि (जठराग्नि) होनेपर तो उसकी रक्षा करनी चाहिये (कि जिससे मन्द या तीक्ष्ण या विषम न हो जाय) और विषम अग्नि हो तो स्निग्ध, अम्ल, लवण (नमकीन) क्रियाविशेषों (आहार, औषधादि) से उसका प्रतिकार करना चाहिये। और तीक्ष्ण अग्नि हो तो मीठे चिकने, ठंढे आहार, पानोंसे या विरेचनसे प्रतीकार करे ऐसेही अत्यग्नि (भस्मक) हो तो उसे विशेषकर महिषीके दूध, दही और घृत इत्यादिसे प्रतिक्रिया करे। और मन्द अग्नि हो तो कटु (चरपरे), तिक्त (कडवे) और कसैले पदार्थोंसे तथा वमनसे प्रतिकार करना उचित है॥४५॥

जाठरो भगवानग्निरीश्वरोऽन्नस्य पाचकः ॥ सौक्ष्म्याद्रसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते ॥ ४६ ॥ प्राणापानसमानैस्तु सर्वतः पवनैस्त्रिभिः ॥ ध्मायते पाल्यते चापि स्वे स्वे स्थाने व्यवस्थितैः ॥ ४७ ॥

अन्नका परिपाक करनेवाला भगवान् ईश्वर जठराग्नि सूक्ष्मतासे जैसे रसोंको ग्रहण (शरीरमें संनिवेश करनेको मधुरादिरस परिपक्व) करता है उसके विवेचन करनेका सामर्थ्य नहीं ॥ ४६ ॥ अपने २ स्थानोंमें व्यवस्थित प्राण, अपान और समान इन तीनों पवनों करके यह जठराग्नि यथाक्रमसे सर्वतः धमाया और पालन किया (रक्षा किया) जाता है तथा सर्वत्र पहुंचाया जाता है ॥ ४७ ॥

वयस्तु त्रिविधं बालं मध्यं वृद्धमिति ॥ ४८ ॥ तत्रोनषोडशवर्षा बालास्तेपि त्रिविधाः क्षीरपाः क्षीरान्नादा अन्नादा इति तेषु

(सूत्र ४६) जाठरोऽग्निर्भगवानिति । पाचनविरेचनाद्यैश्वर्यवानित्यर्थः । ईश्वर इत्यष्टमहैश्वर्यगुणयुक्त. अत एवाणिमादिगुणयुक्त इति सूक्ष्मत्वान्न दृश्यते कार्यैरुपलभ्यते।ननु यद्यसौ ईश्वरस्तत् कथमस्य मांद्यादयो दोषा भवति पुरुषस्य प्राक्तनकर्मणा रोगरूपेण कर्मफल दातु मान्द्य तैक्ष्ण्य वैषम्य च रूपत्रयं धारयति इति ।

संवत्सरपराः क्षीरपा द्विसंवत्सरपराः क्षीरान्नादाः परतोन्नादा इति ॥ ४९ ॥

अवस्था तीन प्रकारकी होती है १ बाल अवस्था, २ मध्य (युवा) अवस्था, ३ वृद्ध अवस्था इनमें सोलहवर्षसे नीचे बाल अवस्थावाले कहाते हैं वे बालभी तीन प्रकारके होते हैं १ दूध पीनेवाले, २ दूध और अन्न दोनोंका आहार करनेवाले, ३ अन्न खानेवाले, जिनमें एक वर्षकी अवस्थातक दूध पीनेवाले और दो वर्षकी अवस्थातक दूध और अन्न दोनोंका आहार करनेवाले इससे उपरांत अन्न खानेवाले जानने चाहिये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

षोडशसप्तत्योरन्तरे मध्यं वयस्तस्य विकल्पो वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता हानिरिति तत्राविंशतेर्वृद्धिरात्रिंशतो यौवनमाचत्वारिंशतः सर्वधात्विन्द्रियबलवीर्यसंपूर्णता । अत ऊर्द्ध्वमीषत्परिहाणिर्यावत्सप्ततिरिति ॥ ५० ॥

सोलह वर्षकी अवस्थासे लेकर सत्तर वर्षकी अवस्थापर्यन्त मध्य अवस्था होती है फिर उसके ये भेद हैं वृद्धि (बढवार), यौवन (जवानी), संपूर्णता (परिपूर्णता या स्थिति) और हानि (घटाव) जिसमें बीस वर्षतक बढवार और तीसवर्षकी अवस्थातक यौवन (जवानी) और चालीस वर्षकी अवस्थामें सब धातु, उपधातु और सब इन्द्रियां और बल वीर्यकी सम्पूर्णता होती है इसके उपरांत सत्तर वर्षकी अवस्थातक कुछनकुछ घटाव होने लगता है । अथवा कई ऐसा अर्थ करते हैं कि, 'विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्'के साथ "आङ्" उपसर्ग है और सप्ततिके साथ "यावत्" है और सप्ततिके स्थानमें षष्टि ऐसा पाठांतर मानते हैं तो बीससे साठ वर्षकी अवस्थातक शरीरकी वृद्धि और तीससे साठतक पुरुषका यौवन और चालीससे साठतक सब धातु इंद्रिय और बल वीर्यकी सम्पूर्णता (स्थिति) होती है इससे उपरांत हानि (क्षय) ॥ ५० ॥

सप्ततेरूर्ध्वं क्षीयमाणधात्विन्द्रियबलवीर्योत्साहमहन्यहनि वलीपलितखालित्यजुष्टं कासश्वासप्रभृतिभिरुपद्रवैरभिभूयमानं सर्वक्रियास्वसमर्थं जीर्णागारमिवाभिवृष्टमवसीदन्तं वृद्धमाचक्षते ५१॥

सत्तर वर्षकी अवस्थासे ऊपर सब धातु, इंद्रिय, बल, वीर्य और उत्साह दिन दिन क्षयही होते जाते हैं और शरीरकी त्वचामें सलवटें (झुरीं) पडजाती हैं

(सूत्र '५१) खालित्यं खल्वाटत्वम् । अभिवृष्ट मेघवृष्टया सिक्त जीर्णागारमिव अवसीदंतं पततम् ॥

सम्पूर्ण वाल सुपेद या पीले पडजाते हैं और उडभी जाते हैं और खांसी, श्वास आदिक उपद्रवोंसे पीडित हो सब कार्योंमें असमर्थ हो जाता है जैसे पुराना जीर्ण मकान मेघ वर्षनेपर गिर पड़ता है ऐसे जीर्ण अवस्थावालेको वृद्ध (बूढा) कहते हैं ५१॥

तत्रोत्तरोत्तरासु वयोऽवस्थासूत्तरोत्तरा भेषजमात्रा विशेषा भवन्त्यृते च परिहाणेस्तत्राद्यापेक्षया प्रतिकुर्वीत ॥५२॥ भवति चात्र–

इसमें जैसे अवस्थाके बढनेपर उत्तरोत्तर औषधकी मात्रा विशेष होती है वह वृद्धावस्थासे पूर्व चढती अवस्थाहीमें होती है। वृद्धावस्थामें तो पहलेकी अपेक्षा यथाक्रम मात्रा घटाकर देनी चाहिये ॥ ५२ ॥ यहां श्लोक हैं–

बाले विवर्द्धते श्लेष्मा मध्यमे पित्तमेव तु ॥ भूयिष्ठं वर्द्धते वायुर्वृद्धे तद्वीक्ष्य योजयेत् ॥ ५३ ॥ अग्निक्षारविरेकैस्तु बालवृद्धौ विवर्जयेत् ॥ तत्साध्येषु विकारेषु मृद्वीं कुर्यात्क्रियां शनैः ॥ ५४ ॥

बालअवस्थामें कफ बढता है (संचय होता है) और मध्य अवस्थामें पित्त बढता है तथा वृद्ध अवस्थामें वायु बढता है इसको देखकर (विचार कर) औषधादिकी योजना करनी चाहिये ॥ ५३ ॥ अग्निकर्म और क्षारकर्म तथा विरेचन और "तु" शब्दसे स्वेदादिभी बालक और वृद्धको नहीं कराने चाहिये। यदि अग्नि, क्षार और विरेचनहीसे जानेवाले रोग हों और अन्य उपायसे न जासकें तो बहुत धीरे २ हलकी क्रिया करनी चाहिये ॥ ५४ ॥

देहका विचार।

देहः स्थूलः कृशो मध्य इति प्रागुपदिष्टः ॥ कर्षयेद्बृंहयेच्चापि सदा स्थूलकृशौ नरौ ॥ रक्षणं चैव मध्यस्य कुर्वीत सततं भिषक् ॥५५॥

देह स्थूल होता है या कृश (दुबला) या मध्यम ऐसा पहले (१५ वें) अध्यायमें उपदेश कर आये हैं। जिसमेंसे स्थूलशरीर मनुष्यका कर्षण (दुर्बल) करना और कृशका बृंहण (बढाना) करना सदा उचित है और मध्य शरीरवाले मनुष्यकी निरंतर वैद्यको रक्षा करनी चाहिये (कि न बहुत मेद बढकर अतिस्थूल होजाय और न बहुत कृशही हो जाय ऐसा यत्न सदा करता रहे) ॥ ५५ ॥

बलविचार।

बलमभिहितगुणं दौर्बल्यं च स्वभावदोषजरादिभिरपेक्षितव्यं यस्माद्बलवतः सर्वक्रियाप्रवृत्तिस्तस्माद्बलमेव प्रधानमधिकरणा-

(सूत्र ५६) अभिहितगुणम् "ओजः सोमात्मकम्" इत्यादिना (इति डल्लनः)।

नाम् ॥ ५६ ॥ केचित्कृशाः प्राणवन्तः स्थूलाश्चाल्पबला नराः ॥
तस्मात् स्थिरत्वव्यायामैर्बलं वैद्यः प्रतर्कयेत् ॥ ५७ ॥

बल, ओज और दुर्बलता इनकी परीक्षा करनी चाहिये कि यह दौर्बल्य है तो स्वभाव(प्रकृति) से है या दोष (वात, पित्तादि रोगोंसे) अथवा जरा (वृद्धता)से है तथा (आदिशब्द करके) चिंताशोकादिसे है क्योंकि बलवान्के सब क्रिया (औषधाहारादि) की प्रवृत्ति होती है इस कारणसे सब आधारोंमें बलही प्रधान है ॥५६॥ कोई दुर्बलभी बलवान् होते हैं और कोई २ मोटे भी निर्बल होते हैं इस हेतु वैद्यको चाहिये कि स्थिरता और परिश्रम आदिसे बलका विचार करे ॥५७॥

सत्त्वविचार ।

सत्त्वन्तु व्यसनाभ्युदयक्रियादिस्थानेष्वविक्लवकरम् ॥ ५८ ॥
सत्त्ववान् सहते सर्वं संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
राजसः स्तभ्यमानोऽन्यैः सहते नैव तामसः ॥५९॥

व्यसन और उत्पन्न हुए कार्यों आदि स्थानोंमें विकलता नहीं करनेवाला अर्थात् क्लिष्ट कार्योंमें स्थिरता करनेवाला सत्त्व कहलाता है ॥ ५८ ॥ सत्त्ववान् (जिसमें सत्त्व गुण अधिक हो ऐसा) मनुष्य सब सुख, दुःखादिकोंको स्वयं अपने मनको दृढ करके सहसकता है तथा अन्योंके रोकने तथा दृढ करनेसे राजस (रजोगुणप्रधान मनुष्य) सुख दुःखादिकोंको सहसकता है तथा तामस (तमोगुणप्रधान मनुष्य) किसी भांतिभी सुखदुःखादि तथा प्राप्त क्रियाको नही सहसकता ॥ ५९ ॥

प्रकृतिं भेषजं चोपरिष्टाद्वक्ष्यामः ॥ ६० ॥

प्रकृति और भेषज (औषधादि) अगाडी (विस्तारपूर्वक) वर्णन करेंगे ॥ ६० ॥

सात्म्यविचार ।

सात्म्यानि तु देशकालजात्यृतुरोगव्यायामोदकदिवास्वप्नरसप्रभृतीनि प्रकृतिविरुद्धान्यपि यान्यबाधकराणि भवंति ॥ ६१ ॥
यो रसः कल्पते यस्य सुखायैव निषेवितः॥ व्यायामजातमन्यद्वा तत्सात्म्यमिति निर्दिशेत् ॥ ६२ ॥

देश, काल, जाति, ऋतु, रोग, व्यायाम (श्रम), उदक (सब प्रकारका जल), दिनका सोना और रस इत्यादि जो प्रकृतिविरुद्ध बाधा करनेवाले न हों

(सूत्र ६०) उपरिष्टात् अव्ययमूर्द्धमित्यर्थः । अग्रे वक्ष्याम इत्यभिप्रायः ।

उन्हें सात्म्य कहते हैं ॥६१॥ जो सेवन किया हुआ रस (मधुरादि) तथा व्यायाम अथवा अन्य पदार्थ जिसको सुखदायक हों वे उसके लिये सात्म्य कहलाते हैं॥६२॥

देशविचार।

देशस्त्वानूपो जांगलः साधारण इति ॥ ६३ ॥ तत्र बहूदकनिम्नोन्नतनदीवर्षगहनो मृदुशीतानिलो बहुमहापर्वतवृक्षो मृदुसुकुमारोपचितशरीरमनुष्यप्रायः कफवातरोगभूयिष्ठश्चानूपः ॥ ६४ ॥

आनूप, जांगल और साधारण तीन प्रकारका देश होता है ॥ ६३ ॥ उनमेंसे जहां बहुत जलाशय (झिरन झील आदि) हों, नीचे ऊँचे नदी नाले हों, अति वर्षा होती हो, कोमल शीतल पवन चलता हो, बहुत पर्वत और बडे २ वृक्ष हों तथा कोमल, सुन्दर सुरूपवाले, सुडौल शरीरवाले मनुष्य जहां विशेष हों और जहां कफ और वातके रोग अधिक हों उसे आनूपदेश कहते हैं,(जैसे मालव)॥६४॥

आकाशसमः प्रविरलाल्पकण्टकिवृक्षप्रायोऽल्पवर्षप्रस्रवणोदपानोदकप्राय उष्णदारुणवातः प्रविरलाल्पशैलः स्थिरकृशशरीरमनुष्यप्रायो वातपित्तरोगभूयिष्ठश्च जांगलः ॥ ६५ ॥ उभयदेशलक्षणः साधारणः ॥ ६६ ॥ भवन्ति चात्र--

आकाशके समान जो ऊँचाई निचाई रहित हो (इकसारसा हो) और जहां छीदे २ कहीं २ बहुधा कांटोंवाले वृक्ष हों, थोडी वर्षा और अल्पही जलाशय (झिरने और कूप आदि हों) और गरम तीक्ष्ण पवन चलता हो, कहीं २ छोटे २ पहाड़ हों और गठीले पतले शरीरवाले मनुष्य बहुधा हों और जहां वात, पित्तके रोग अधिक हों उसे जांगल देश कहते हैं (जैसे मारवाड) ॥ ६५ ॥ और जिसमें कुछ २ दोनों देशोंके लक्षण पाये जाते हों वह साधारण देश कहलाताहै॥६६॥ इसमें श्लोक हैं–

समाः साधारणे यस्माच्छीतवर्षोष्णमारुताः ॥ दोषाणां समता जन्तोस्तस्मात्साधारणो मतः ॥ ६७ ॥ न तथा बलवंतः स्युर्जलजा वा स्थलाहृताः ॥ स्वदेशे निचिता दोषा अन्यस्मिन्कोपमागताः ॥ ६८ ॥ उचिते वर्तमानस्य नास्ति देशकृतं भयम् ॥ आहारस्वप्नचेष्टादौ तद्देशस्य गुणे सति ॥ ६९ ॥

जिस कारणसे साधारण देशमें शीत, वर्षा, गरमी और वायु सामान्य होते हैं और जीवोंके दोषोंकी भी समता होती है इसी कारणसे वह साधारण कहाता है

॥ ६७ ॥ यदि जलके जीव स्थलमें रक्खे जावें तो वैसे बलवान् नहीं होते (जैसे जलहीमें होते हैं) क्योंकि अपने देशमें दब हुए (संचित) दोष और (विपरीत) देशमें जाकर कुपित होजातेहैं ॥ ६८ ॥ उचित देशमें (जहां जन्म, पालनादि हुए हों या जो प्रकृतिके अनुकूल हो) वर्तमान (रहनेवाले) मनुष्यादिको देशकृत भय नहीं होता क्योंकि आहार (भोजन, पान आदि) और सोने जागने तथा अन्य चेष्टाओंमें उस देशके गुण हैं (जो शरीरको सानुकूल हैं) ॥ ६९ ॥

देशप्रकृतिसात्म्यर्तुविपरीतोऽचिरोत्थितः ॥ सम्पत्तौ भिषगादीनां बलसत्त्वायुषां तथा ॥ ७० ॥ केवलः समदेहाग्नेः सुखसाध्यतमो गदः ॥ अतोऽन्यथा त्वसाध्यः स्यात् कृच्छ्रो व्यामिश्रलक्षणः ॥७१॥

अचिरोत्थित रोग (नवीन अल्पदोषीय), देश, प्रकृति, सात्म्य और ऋतुके विपरीत सुखसाध्य होता है अर्थात् देश प्रकृति, ऋतु आदिकी विपरीतताही उसका प्रतिकार हो जाता है तथा वैद्य और औषधादिके यथार्थ मिलनेसे बल, सत्त्व और आयुवाले मनुष्योंका रोग सुखसाध्य होता है। एवं केवल निरुपद्रव एक रोग तथा समदेह और समजठराग्निवाले मनुष्यका भी रोग सुखसाध्य जानना यदि पूर्वोक्त लक्षणोंसे अन्यथा लक्षण हों तो असाध्य और मिश्रित हों तो कष्टसाध्य समझना चाहिये ॥ ७० ॥ ७१ ॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ॥ पूर्वस्यां शांतवेगायां न क्रियासंकरो हितः ॥ ७२ ॥ गुणालाभेपि सपदि यदि सैव क्रिया हिता॥कर्तव्यैव तदा व्याधिः कृच्छ्रसाध्यतमो यदि॥७३॥

यदि क्रिया (एक औषध) का गुण प्रतीत न हो तो दूसरी क्रिया करनी चाहिये परन्तु जब पहले की हुई क्रियाका वेग शांत होले तब दूसरी क्रिया करनी चाहिये दोनों क्रियाओंका मिलाप करके गडबड करना हित नहीं ॥ ७२ ॥

(सूत्र ७०) सात्म्यर्तुविपरीत इत्यत्र सात्म्यर्त्वविपरीत इति वा पाठांतरं केचिन्मन्यते ।

(वक्तव्य) कई विपरीतके स्थानमे अविपरीत ऐसा पाठ मानते है कि देश प्रकृति सात्म्य और ऋतुसे जो अविपरीत (अनुसार) नवीन रोग हो वह सुखसाध्य होता है (जैसे शीतदेशमें कफरोग, शीतऋतुमें सरदीका रोग, गरमीमे पित्तके रोग इत्यादि) प्राकृत होनेसे (चिकित्सासौगम्य होनेसे) सुखसाध्य होते हैं ॥

(सूत्र ७२) क्रियाया गुणालाभे पूर्वस्यां क्रियायां शांतवेगायां पंचरात्र्यतरितायां षड्रात्र्यतरितायां वा अन्यां क्रिया प्रयोजयेत् आत्ययिके काले दारुणे रोगे चैकरात्र्यंतरिताया वान्यां क्रियां प्रयोजयेत् क्रियासंकरो न हितः । (सूत्र ७३) सपदि शीघ्रं यदा पुनः कृच्छ्रसाध्यो व्याधिस्तदा गुणस्य क्रियाफलस्यालाभेऽपि हिता या क्रिया सैव सपदि प्रयोक्तव्या (इति निबंधस०) ॥

यदि अत्यन्त कष्टसाध्य (कडी) बीमारी हो और क्रियाका गुण शीघ्र प्रतीत न हो (किंतु व्याधि घटे तो नहीं पर ठैर जाय) तो भी वही क्रिया करनी उचित है जो हित है (अथवा तीक्ष्ण रोगोंमें पहली क्रियाका गुण न हो तो शीघ्र जो हित हो वह क्रिया करै) ॥ ७३ ॥

य एनमेवंविधमेकरूपं बिभर्ति कालादिवशेन धीमान् ॥ स मृत्युपाशाञ्जगतो गदौघांश्छिनत्ति भैषज्यपरश्वधेन ॥ ७४ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

जो वैद्य बुद्धिमान् कालआदिके वशसे इस प्रकारके (निर्विकल्प) एकरूपको धारण करता है (अर्थात् विकल्प और मोहको प्राप्त नहीं होता) वह मृत्युके पाशरूप जगत्के रोगसमूहको औषधरूप कुठारसे छेदन कर सकता है ॥ ७४ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा०टी० सूत्रस्थाने पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३६.

अथातो मिश्रकमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे मिश्रक (व्रणके मुख्य आठ उपक्रमोंका मिश्रीकरण (मिलाप) के विषयमें) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

विम्लापन (शोथहरण)

मातुलुंगाग्निमन्थौ च देवदारु महौषधम् ॥ अहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोफहृत् ॥ १ ॥ दूर्वा च नलमूलं च मधुकं चंदनं तथा ॥ शीतलाश्च गणाः सर्वे प्रलेपः पित्तशोफहृत् ॥ २ ॥ आगंतुजे रक्तजे च एष एव विधिः स्मृतः ॥ विषघ्नो विषजे पित्ते श्लेष्मोऽपि हितस्तथा ॥ ३ ॥ अजगंधाश्वगंधा च काला सरलया सह ॥ एकैषिकाऽजशृंगी च प्रलेपः श्लेष्मशोफहृत् ॥ ४ ॥ एते वर्गास्त्रयो लोध्रं पथ्या पिंडीतकानि च ॥ अनंता चेति लेपोऽयं सांनिपा-

---

(सूत्र ७४) भैषज्यपरश्वधेन औषधकुठारेणेति परश्वधः परस्वधश्च कुठारः । (श. स्तो.) (सूत्र २) चंदनमत्र रक्तम् "कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचंदनम्"यति तन्त्रातरोक्तेः । (सूत्र ४) अजगंधा वनयवानीति वाचस्पतिः । डल्लनस्तु वैथयिका लतीषधियवानिका चेति । काला मजिष्ठा सरला श्वेता त्रिवृत् एकैषिका श्यामा त्रिवृत् (भा. प्र. निघंटुः)

तिकशोफहृत् ॥ ५ ॥ स्निग्धोम्ललवणो वाते कोष्णः शीतः प्रयोजितः ॥ पित्ते चोष्णः कफे क्षारमूत्राढ्यस्तत्प्रशांतये ॥ ६ ॥

विजोरा, अरणी, देवदारु, शुंठी, मांसी और रास्ना इनका लेप व्रणके आदिरूप शोथ जो वायुसे हो उसे दूर करता है ॥ १ ॥ दूर्वा, नरसलकी जड, मुलहटी, रक्तचन्दन तथा शीतलगण (काकोल्यादि, उत्पलादि, न्यग्रोधादि) इनका लेप पित्तजव्रणशोथको दूर करता है ॥ २ ॥ आगंतुज व्रणशोथ (क्षतरहित जैसे लट्ठी आदिके प्रहारसे हो) तथा रक्तज व्रणशोफमें भी यही पित्तके समान विधि करनी चाहिये । तथा विषके शोथमें (विच्छु, भ्रमरादिके काटेके शोथमें) विषको नाश करनेवाली विधि (विषकल्पोक्त) करनी चाहिये । तथा पित्तघ्न विधि भी हित है ॥ ३ ॥ अजगंधा (वनकी अजवायन), अश्वगंधा (काला मंजिष्ठा), सरला (श्वेत त्रिवृता), एकैषिका (श्यामा त्रिवृता), कर्कटशृंगी इनका लेप कफके व्रणशोथको दूर करता है ॥ ४ ॥ ये तीनों वर्ग (वातघ्न, पित्तघ्न, कफघ्न) और लोध, हरडे, मदन, दुरालभा इनका लेप सन्निपातके व्रणशोथको दूर करता है ॥ ५ ॥ वायुके शोथमें स्निग्ध, अम्ल, सलौना, निवाया लेप करना चाहिये । पित्तके व्रणशोथमें शीतल लेपका प्रयोग करना तथा कफके शोथमें गरम किया हुआ क्षार और मूत्रादिसे युक्त लेप शांति करता है ॥ ६ ॥

व्रणपाचन ।

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः ॥
सक्तवः किण्वमतसी द्रव्याण्युष्णानि पाचनम् ॥ ७ ॥

शणके बीज, मूलीके बीज, सहजनेके बीज तथा तिल, सरसों, सत्तू (भुना हुआ यवादिका चूर्ण), किण्व (सुराबीज), अलसी और गरम पदार्थ व्रणके पकानेमें हित हैं ॥ ७ ॥

पक्वव्रणदारण ।

चिरबिल्वोऽग्निको दन्ती चित्रको हयमारकः ॥ कपोतगृध्रकंकानां पुरीषाणि च दारणे ॥ क्षारद्रव्याणि वा यानि क्षारो वा दारणं परम् ॥ ८ ॥

बडा करंज, अग्निक (कलकारिआ भल्लात), दन्ती (जमालगोटेकी जड), चित्रक, हयमारक (कनेर) तथा कपोत, गीध और कंक इनकी बीट व्रणके दारणमें श्रेष्ठ है । अथवा क्षारद्रव्य (खारे द्रव्य या जिन द्रव्योंसे क्षारबने) तथा क्षार ये परम दारण हैं, अर्थात् कोमलतासे पके व्रण छेदनके लिये चिरबिल्वादि हैं और तीक्ष्णतासे छेदन करनवाले क्षार हैं ॥ ८ ॥

व्रणपीडन।

द्रव्याणां पिच्छलानां तु त्वङ्मूलानि प्रपीडनम् ॥
यवगोधूममाषाणां चूर्णानि च समासतः ॥ ९ ॥

पिच्छल द्रव्यों (शालमली, शेलु, वटपर्णादि) की छाल या जड़ तथा जव, गेहूं और उडद इनका चूर्ण ये संक्षेपसे पीडन हैं अर्थात् फूटे पीछे व्रणको खिंचाव करते हें इन्हें पीस सजल लेप करना ये सूखकर पीडन(खिंचाव या दबाव)करतेहैं ९॥

व्रणशोधन।

शंखिन्यंकोठसुमनःकरवीरसुवर्चलाः ॥ शोधनानि कषायाणि वर्ग-श्चारग्वधादिकः ॥ १० ॥ अजगंधाजशृंगी च गवाक्षी लांगलाह्वया ॥ पूतिकश्चित्रकः पाठा विडंगैलाहरेणवः ॥ ११ ॥ कटुत्रिकं यवक्षारो लवणानि मनःशिला ॥ कासीसं त्रिवृता दन्ती हारितालं सुराष्ट्रजा ॥ १२ ॥ संशोधनीनां वर्तीनां द्रव्याण्येतानि निर्दिशेत् ॥ एतैरेवौषधैः कुर्यात् कल्कानपि च शोधनान् ॥ १३ ॥

शंखिनी, अंकोठ, सुमना (जाती), कनेर, ब्राह्मी तथा आरग्वधादि वर्गका कषाय इनके कषायसे धोना व्रणशोधन है ॥ १० ॥ (शोधनवर्त्ती) अजगंधा, कर्कटशृंगी, इंद्रवारुणी, लांगली, बडा करंज, चित्रक, पाठा, विडंग, बडी इलायची, हरेणु (रेणुका मिरचसदृश) ॥ ११ ॥ त्रिकटु, यवक्षार तथा (सैंधवादि ५ लवण मनशिल, कसीस, निसोथ, दंती, हरताल, फटकडी) ॥ १२ ॥ ये द्रव्य शोधनी बत्तीके लिये हैं अर्थात् इनका कल्क बनाकर बत्ती या फोहेपर लगाकर व्रणमें रखनेसे व्रण शुद्ध होता है अथवा इनकी लुगदीभी व्रणशोधनी है ॥ १३ ॥

कासीसकटुरोहिण्यो जातीकंदहरिद्रयोः पूर्वोद्दिष्टेषु चांगेषु कुर्यात्तैलघृतानि वै ॥ १४ ॥ अर्कोत्तमां स्नुहीक्षीरं पिष्ट्वा क्षारोत्तमानपि ॥ जातीमूलं हरिद्रे द्वे कासीसं कटुरोहिणीम् ॥ पूर्वोद्दिष्टानि चान्यानि कुर्यात्संशोधनं घृतम् ॥ १५ ॥ मयूरको राजवृक्षो निंबः कोषातकी तिलाः ॥ बृहती कंटकारी च हरितालं मनःशिला ॥ शोधनानि च योज्यानि तैले द्रव्याणि शोधने ॥ १६ ॥

(सूत्र १४) जातीकंद इत्यत्र जातुकंद इति वा पाठः। जातुकंदा गुग्गुलुः। (सूत्र १५, अर्कोत्तमामिति अर्कों मंदार.। उत्तमा त्रिफला। क्षारोत्तमान् मुष्ककुटजपलाशाश्वकर्णादीन्। (सूत्र १६) मयूरकोऽपामार्गः कोषातकी विडालः।

कासीसे सैंधवे किण्वे वचायां रजनीद्वये ॥ शोधनांगेषु चान्येषु चूर्णं कुर्वीत शोधनम् ॥१७॥ सालसारादिसारेषु पटोलत्रिफलासु च ॥ रसक्रियां विधातव्या शोधनी शोधनेषु च ॥ १८ ॥

कसीस, कुटकी, जातीकंद (चमेलीकी जड) अथवा जातुकंद (गुग्गुल), हलदी और पूर्वोक्त जो औषध हैं तिनमें तैल अथवा घृत पकाहुआ शोधन है॥ १४॥ तथा आककी जड, उत्तमा (त्रिफला) स्नुहुंडका दूध, क्षारोत्तम (मुष्कक, कुटज, पलाश, अश्वकर्णादि), जातीमूल (चमेलीकी जड) अथवा जातुमूल (गुग्गुलु) दोनों हलदी, कसीस,कुटकी तथा अन्य पूर्वोक्त औषध(यथालाभ) इनसे साधित घृत शोधनमें हित है ॥ १५ ॥ मयूर (अपामार्ग), राजवृक्ष (किरमाल), नींव,कोषातकी, तिल,बडी कटेली,छोटी कटेली,हरताल,मनशिल,व्रणशोधन तैलमें ये वस्तु डाले॥ १६॥ कसीस, सैंधव, किण्व (सुराबीज), वच, दोनों हलदी तथा अन्य शोधन द्रव्य लेकर उनमेंसेही शोधन चूर्ण बनावे ॥ १७ ॥ सालसारादिगणके सार, परवल, त्रिफला इनकी रसक्रिया (शोधनी, रसक्रिया) व्रणशोधनके अर्थ करनी चाहिये ॥ १८ ॥

व्रणधूपन ।

श्रीवेष्टके सर्जरसे सरले देवदारुणि ॥
सारेष्वपि च कुर्वीत मतिमान् व्रणधूपनम् ॥ १९ ॥

श्रीवेष्ट (सरलनिर्यास, गुग्गुली या तारपीन), राल सरल (पीतदारु), देवदारु, सार (शालसारादिक) इनमेंसे बुद्धिमान् व्रणको धूप दे ॥ १९ ॥

व्रणरोपण ।

कषायाणामनुष्णानां वृक्षाणां त्वक्षु साधितम् ॥ शृतशीतं कषायं वा रोपणार्थेषु शस्यते ॥ २० ॥ सोमामृताश्वगंधासु काकोल्यादौ गणे तथा ॥ क्षीरिप्ररोहेष्वपि च वर्तयो रोपणाः स्मृताः ॥ २१ ॥ समंगा सोमसरलाः सोमवल्का सचंदना ॥ काकोल्यादिश्च कल्कः स्यात् प्रशस्तो व्रणरोपणे ॥ २२ ॥ पृथक्पर्ण्यात्मगुप्ता च हरिद्रे मालती सिता ॥ काकोल्यादिश्च योज्यः स्यात् प्रशस्तो रोपणे घृते ॥ २३ ॥

(सूत्र १९) श्रीवेष्टकः सरलरसः नवनीतप्रायः गुग्गुलीति लोके । (निबंधसंग्रहे) शब्दस्तोमे तु श्रीवेष्टकः सरलवृक्षनिर्यासः तारपिन इति लोके ।

अनुष्ण (जो गरम नहीं) ऐसे वृक्षों (न्यग्रोध, उदुंबर आदिका) शीत कषाय अथवा इनकी छालका साधित कषाय व्रणके रोपणके अर्थ श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ सोम (ब्राह्मी), गिलोय, अश्वगंधा इनमें तथा काकोल्यादि गणमें तथा न्यग्रोधादि क्षीरवाले वृक्षोंके अंकुर इनमें बनी हुई बत्ती व्रणरोपणी (जखमको भरनेवाली) होती है ॥ २१ ॥ समंगा (लज्जालू), सोम (ब्राह्मी), सरला (सरल), सोमवल्क और चन्दन तथा काकोल्यादि गण इनका कल्क (लुगदी) व्रणरोपणमें श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ पृश्निपर्णी, कपिकच्छु (कवचबीज), दोनों हलदी, मालती, मिश्री, काकोल्यादि गण ये औषधियां रोपणघृतमें योजित करनी श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥

कालानुसार्य्यगुरुणी हरिद्रे देवदारु च ॥ प्रियंगवश्च रोध्रं च तैले योज्यानि रोपणे ॥ २४ ॥ कंगुका त्रिफला रोध्रं कासीसं श्रवणाह्वया ॥ धवाश्वकर्णयोस्त्वक् च रोपणं चूर्णमिष्यते ॥ २५ ॥ प्रियंगुका सर्जरसः पुष्पं कासीसमेव च ॥ त्वक्चूर्णं धवजं चैवं रोपणार्थं प्रशस्यते ॥ २६ ॥ त्वक्षु न्यग्रोधवर्गस्य त्रिफलायास्तथैव च ॥ रसक्रियां रोपणार्थे विदधीत यथाक्रमम् ॥ २७ ॥

कालानुसारी (तगर), अगुरु, दोनों प्रकारकी हलदी, देवदारु, कांगनी, लोध ये औषध रोपणतैलमें नियुक्त करनी चाहिये ॥ २४ ॥ कांगनी, त्रिफला, लोध, कसीस, श्रवणाह्वया (मुंडितिका–गोरखमुंडी), धव और लवुराल वृक्षका वक्कल इनका चूर्ण व्रणको रोपण करता है (घावको भरलाता है) ॥ २५ ॥ कांगनी, राल, पुष्प (रसांजन), कसीस, तज, धवका चूर्ण रोपणके लिये इनका चूर्ण श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥ न्यग्रोधादि वर्गकी छाल त्रिफला रोपणके अर्थ इनकी रसक्रिया यथाक्रम करनी चाहिये ॥ २७ ॥

व्रणका उत्सादन निचाई भरना ।

अपामार्गोऽश्वगंधा च तालपत्री सुवर्चला ॥
उत्सादने प्रशस्यंते काकोल्यादिश्च यो गणः॥ २८ ॥

जखम अच्छा हुए पीछे यदि चर्ममें निचाई रही हो तो अपामार्ग, अश्वगंधा, मूशली, ब्राह्मी (या सूर्यावर्तका मूल) तथा काकोल्यादिगण इनका लेप करनेसे निचाईका मांस बढकर समान हो जाता है ॥ २८ ॥

(सूत्र २६) पुष्पं रसाञ्जनमिति । (श. स्तो.) (सूत्र २८) उत्सादने व्रणनिम्नमांसस्योन्नतिकरणे ।

व्रणकी चक्कानपर ऊँचाई हो तो घटाना ।

कासीसं सैंधवं किण्वं कुरुविंदो मनःशिला ॥ कुक्कुटांडकपालानि सुमनोमुकुलानि च ॥ २९ ॥ फले शैरीषकारञ्जे धातुचूर्णानि यानि च ॥ व्रणेषूत्सन्नमांसेषु प्रशस्तान्यवसादने ॥ ३० ॥ समस्तंवर्गमर्द्धं वा यथालाभमथापि वा ॥ प्रयुंजीत भिषक्प्राज्ञो यथोद्दिष्टेषु कर्मसु ॥ ३१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

यदि जखम भरे पीछे ऊँचाई रहे तो उन उभरे मांसवाले अच्छे हुए व्रणोंपर कसीस, सेंधानमक, मदिराका बीज, कुरुविंद (पद्मराग या कांच) मनशिल, मुरगेके अंडेका छिलका, चमेलीकी कली, सिरस और करंजवेके बीज तथा धातुचूर्ण (हरताल मृद्दारुशृंगादिका चूर्ण) इनका मलना (रगडना) ऊँचेसे नीचे करनेमें श्रेष्ठ है ॥ २९ ॥ ३० ॥ जो औषध जिन २ कार्योंमें कही हैं वे संपूर्ण या आधी या जो इनमेंसे मिलसकें चतुर वैद्य यथायोग्य उनकाही उपयोग करे ॥ ३१ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवैद्यवि० सुश्रुतस०भा०टी०, सूत्रस्थाने षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७.

अथातो भूमिप्रविभागविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे भूमिप्रविभाग (पंचमहाभूतोंके प्रकृष्ट गुणविभाग) के विज्ञानके विषयमें अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

औषधार्थ सामान्य भूमि ।

श्वभ्रशर्कराश्मविषवल्मीकश्मशानाऽघ्यतनदेवतायतनसिकताभिरनुपहतामनूषरामभंगुरामदूरादेकां स्निग्धां प्ररोहवतीं मृद्वीं स्थिरां समां कृष्णां गौरीं लोहितां वा भूमिमौषधार्थं परीक्षेत ॥१॥

श्वेत अभ्रक अथवा श्वभ्र ऐसा पाठांतर है श्वभ्र(बिल), बालू (रेती), कंकर (पत्थर), विष बँबई (सर्पादिकी बांबी) तथा श्मशान, अद्यतन (नवीन निर्मित कृत्रिमभूमि जैसे गमले बनाकर उसमें पौदे लगादेते हैं इत्यादि)देवताके निवासकी भूमि तथा विश्रामभूमि (पडाव आदि), सिकता (छिन) इत्यादिकसे जो भूमि दूषित न हुई हो तथा जो बंजड या कल्लर न हो जो कटी, खुदी, फटी ऐसी पृथिवी न हो

(सूत्र १) श्वभ्रं छिद्रं बिल (ग स्तो. डल्हनश्च) श्वेताभ्र इति वा पाठातरम् ।

तथा जिसमें पानी दूर न हो, चिकनी हो, जिसमें बीज उगते हों (तृण बढते हों), कोमल हो, स्थिर हो, समान हो, (अति ऊँची नीची न हो), काली हो या गौर हो या लालेडी हो ऐसी भूमि औषधके लिये परीक्षा करे (ऐसी उत्तम भूमिकी उपजी औषध लेनी चाहिये) ॥ १ ॥

तस्यां जातमपि कृमिविषशस्त्रातपपवनदहनतोयसम्बाधमार्गैरनुपहतमेकरसं पुष्टं पृथ्ववगाढमूलमुदीच्यां चौषधमाददीतेत्यौषधभूमिपरीक्षाविशेषसामान्यः ॥ २ ॥

उपरोक्त भूमिमें उत्पन्न हुई औषधभी जो कीडे (जानवर आदि) ने न खाई हो, जिसपर विष न गिरगया हो, शस्त्रसे कटी नहो, धूपसे मुरझा न गई हो, पवनसे सूखीसी न हुई हो, आगसे जल न गई हो, पानीसे गल न गई हो, आपसमें रगडा खाके या और तरह घिस न गई हो, मार्गमें न आगई हो, एकरस हो, (जिसका जो स्वाभाविक एकरस है उसीसे संयुक्त हो), पुष्ट हो, जिसकी मोटी और गहरी जड हो ऐसी औषधको उत्तराभिमुख होकर ग्रहण करे । यह संक्षेपसे औषध और भूमिकी परीक्षा सामान्य है ॥ २ ॥

विशेषतस्तु तत्राश्मवती स्थिरा गुर्वी श्यामा कृष्णा वा स्थूलवृक्षशस्यप्राया स्वगुणभूयिष्ठा ॥ ३ ॥ स्निग्धा शीतलासन्नोदका स्निग्धशस्यतृणकोमलवृक्षप्राया शुक्लांबुगुणभूयिष्ठा ॥ ४ ॥ नानावर्णा लघ्वश्मवती प्रविरलाल्पपाण्डुवृक्षप्ररोहाग्निगुणभूयिष्ठा ॥ ५ ॥ रूक्षा भस्मरासभवर्णा तनुरूक्षकोटराल्परसवृक्षप्राया नीलगुणभूयिष्ठा ॥ ६ ॥ मृद्वी समा श्वभ्रवत्यव्यक्तरसजला सर्वतोऽसारवृक्षा महापर्वतवृक्षप्राया श्यामा चाकाशगुणभूयिष्ठा॥ ७॥

विशेष करके तो जहां पत्थरवाली, स्थिर, भारी, काली, सांवली तथा जिसमें मोटे मोटे वृक्ष और खेती हो वह पृथिवी अपने (पृथ्वीके) गुणवाली होती है

(सूत्र २) संवाध अन्योन्यसघर्षः । एकरसमुत्कृष्टरसम् । उदीच्यामित्युत्तरस्या दिशि मुख कृत्वा गृह्णीयात् इति (डल्हनः) (सूत्र ३) स्वगुणभूयिष्ठा इति । पृथिवीगुणभूयिष्ठा पार्थिवांशप्रधाना इति । तत्र जातं बृंहणद्रव्य ग्राह्यम् । जलगुणभूयिष्ठाया जात शोधनद्रव्य पित्तघ्नं द्रव्यं च ग्राह्यमेवमेव सर्वत्र बोद्धव्यं विपरीतगुणभूयिष्ठायां जात द्रव्य न सम्यक्कार्यससाधक भवति । यथा पृथिव्यंबुगुणभूयिष्ठाया भूमौ जातं वमनद्रव्यं न सम्यग् वामयति । तथा च वाय्वग्निगुणभूयिष्ठाया भूमौ जात विरेचनद्रव्यं न सम्यग्रेचयतीति नाग्निगुणभूयिष्ठाया भूमौ जातं पित्तघ्नमौषधं पित्त सम्यक् प्रशमयतीति ।

(अर्थात् ऐसी पृथिवीमें पार्थिवअंशही प्रधान होते हैं) ॥३॥ जो चिकनी, शीतल, निकट जलवाली हो, जहां तृण और खेती डहडही रहे वृक्ष कोमल हों और शुक्लताप्राय हो तो वह पृथिवी जलतत्त्वके गुणकी अधिकतावाली होती है (उसमें जलके अंश अधिक होते हैं) ॥ ४ ॥ जिसका कई भांतिका रंग हो, छोटे २ पत्थर हों, छीदे २ कहीं २ थोडे पांडुवर्णके वृक्ष और तृण हों वह अग्निगुणकी अधिकतावाली पृथिवी है ॥५॥ जो रूक्ष और भस्म या गर्दभके रंग (वर्ण) वाली हो, जहां हलके रूखे २ खखोडरवाले थोडेरसवाले वृक्ष अधिक हों वह पृथ्वी वायुगुणकी अधिकतावाली होती है ॥ ६ ॥ तथा जो कोमल समान बिलोंवाली, जहां रस और जल अति प्रगट न हो, सर्वत्र सारहीन वृक्ष हों और ऊंचें २ पहाड और वृक्ष जहां हों, प्रायः सांवली हो वह पृथ्वी आकाशगुणकी अधिकतावाली होतीहै ॥ ७ ॥

तत्र केचिदाहुराचार्याः । प्रावृड्वर्षाशरद्धेमंतवसंतग्रीष्मेषु यथासंख्यं मूलपत्रत्वक्क्षीरसारफलान्याददीत इति । तत्तु न सम्यक् कस्मात्सौम्याग्नेयत्वाज्जगतः ॥ ८ ॥ सौम्यान्यौषधानि सौम्येष्वृतुष्वाददीताग्नेयान्याग्नेयेष्वेवमव्यापन्नगुणानि भवंति ॥९॥ सौम्यान्यौषधानि सौम्येष्वृतुषु गृहीतानि सोमगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातान्यतिमधुरस्निग्धशीतानि जायंते एतेन शेषं व्याख्यातम् ॥१०॥

इसमें कई आचार्य ऐसा कहते हैं कि, प्रावृट् ऋतुमें सब औषधोंकी जड लेनी चाहिये और वर्षामें पत्र तथा शरदृऋतुमें छाल, हेमन्तमें दूध, वसंतमें सार और ग्रीष्ममें फल यथाक्रम इसप्रकार ग्रहण करना चाहिये । परन्तु यह मत ठीक नहीं, क्योंकि जगत् सौम्य (ठंढा) अथवा आग्नेय (गरम)है इसकारणसे ॥ ८ ॥किंतु ऐसा योग्य है कि सौम्य औषधोंको सौम्य ऋतुवोंमें ग्रहण करना चाहिये और आग्नेय औषधोंको आग्नेय ऋतुवोंमें तो वह यथार्थ निर्दूषित गुणवाली होतीहैं ॥ ९ ॥ और जो सौम्य औषध सौम्यही ऋतुमें ग्रहण की हों और सोमगुणभूयिष्ठ भूमिमें उत्पन्न हुई हों तो वे अत्यन्त मधुर शीतल (सौम्यगुणाधिक) होंगी । ऐसे शेष (आग्नेय) आदिका व्याख्यानभी इसी प्रकारसे कहा (समझ लीजिये)॥ १० ॥

तत्र पृथिव्यंबुगुणभूयिष्ठायां भूमौ जातानि विरेचनद्रव्याण्याददीताग्न्याकाशमारुतगुणभूयिष्ठायां वमनद्रव्याणि । उभयगुणभूयिष्ठायामुभयतो भागानि आकाशगुणभूयिष्ठायां संशमनान्येवं बलवत्तराणि भवंति ॥ ११ ॥

पृथिवी और जलगुणप्रायभूमिमें उत्पन्न विरेचन द्रव्य लेने चाहिये (ये अधोगामी होनेसे ठीक रेचक होते हैं) तथा अग्नि, आकाश और पवनगुणप्राय भूमिसे वमनद्रव्य लेवे कई वमनके लिये अग्निगुणप्रायभूमिजात द्रव्यही श्रेष्ठ मानतेहैं। (ये ऊर्द्धगामी होनेसे ठीक वामक होतेहैं) तथा दोनों गुणवालोद्रव्योंसे दोनों भाग लेवे और आकाशगुणप्राय भूमिसे शमन औषध लेवे इसप्रकार लीहुई औषध विशेषबलवाली होती हैं ॥ ११ ॥

सर्वाण्येवं चाभिनवान्यत्र मधुघृतगुडपिप्पलीविडंगेभ्यः सर्वाण्येवं सक्षीराणि वीर्यवन्ति तेषामसंपत्तावनतिक्रांतसंवत्सरादाददीतेति ॥ १२ ॥ भवन्ति चात्र--

समस्त औषध नवीन (नई) ग्रहण करनी (औषधमें नियुक्त करनी चाहिये) सिवाय मधु, घृत, गुड, पिप्पली और वायविडंग (अर्थात् मध्वादिक) में पुराने उपयोग करने चाहिये और इन मध्वादिकके सिवाय सर्व औषध रसयुक्त हों वीर्यवाली हों और यदि क्षीर (रस) युक्त ताजी नहीं मिलें तो एकवर्ष भीतरकी ग्रहण करनी (उपयोग करनी) चाहिये ॥ १२ ॥ यहां श्लोक हैं कि-

गोपालास्तापसा व्याधा ये चान्ये वनचारिणः ॥
मूलाहाराश्च ये तेभ्यो भेषजव्यक्तिरिष्यते ॥ १३ ॥

गवालिये (गौ चरानेवाले) तपस्वी तथा शिकारी तथा अन्यवनचारी लोग जो मूलफलका आहार करते हैं उनसे औषधोंके ठीक गुण और नवीन औषध प्रगट होती हैं (वैद्यको चाहिये कि इनसे औषधोंके गुणादि प्रगट करता रहे) ॥ १३ ॥

(सूत्र १२) नवपुराणघृतस्य योग्यायोग्यविषयः-"योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे ॥ बलक्षये पांडुरोगे कामलानेत्ररोगयोः ॥ १ ॥" एषु नव घृत योज्यम्। "वर्षादूर्ध्वं भवेदाज्यं पुराणं तत्त्रिदोषनुत् ॥ मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादापस्मारतिमिरापहम् ॥ १ ॥" एषु पुराण घृतं योज्यमित्यादि ।

(वक्तव्य सूत्र १२) यहां जो मधु (शहत), घृत, गुड, पिप्पली, विडंगके सिवाय सब औषध नवीन लेनी लिखी है इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मधु, घृत, गुड, पिप्पली, विडंग सदा पुरानीही ले नवीन लेही नहीं किंतु यह है कि, और सब औषध तो सब कार्योंमे नवीनही लेनी पर मधु, घृत, गुड, पिप्पली आदि बृंहणकार्योंमे नवीन लेवे और कर्षणकार्योंमे पुराने लेवे । देखो इसका ४५ वाँ अध्याय मधुवर्ग "बृंहणीयं मधु नवं नातिश्लेष्महरं सरम्" इति । तथा चोक्तं भावप्रकाशे "नवं मधु भवेत्पुष्ट्यै नातिश्लेष्महरं परम्" इति । अर्थात् नवीन मधु बृंहण और पुष्टिकारक है अतिश्लेष्महर्ता नहीं है तथा "पुराणं ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्नमतिलेखनम्" इत्यादिभी जानो इनका नवीन पुराणका वर्णन इनके वर्णनमें अगाडी आवेगा ।

सर्वावयवसाध्येषु पलाशलवणादिषु ॥
व्यवस्थितो न कालोस्ति तत्र सर्वो विधीयते ॥ १४ ॥

सब अंग प्रत्यंगसाध्य जो पलाशलवणादि (पत्रलवण आदि) हैं उनमें कालकी अवधि नियत नहीं है उसमें सब समय उचित है ॥ १४ ॥

गंधवर्णरसोपेता षड्विधा भूमिरिष्यते ॥ तस्माद्भूमिस्वभावेन बीजिनः षड्रसायुता ॥ १५ ॥ अव्यक्तः किल तोयस्य रसो निश्चयनिश्चितः ॥ रस एवं स चाव्यक्तो व्यक्तो भूमिरसाद्भवेत् ॥१६॥

गंध, रूप और रस इनकरके संयुक्त जो भूमि है वह छःप्रकारकी है इसी कारणसे पृथ्वीके स्वभावकरके वृक्षादि (औषधे) छह रस (मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय)करके संयुक्त हैं (अर्थात् जो पृथ्वीके माधुर्यको अधिक खेंचते हैं वे मधुर हो जाते हैं और जो अम्लताको अधिक खेंचते हैं वे अम्ल हो जाते हैं इत्यादि) ॥१५॥ निश्चय करके जलका रस अव्यक्त (अप्रगट) है वही अव्यक्त रस पृथ्वीके रससे व्यक्त (प्रगट) हो जाताहै (भूमिका जहां जैसा रस होगा जलमें उसीकी अधिक प्रगटता होगी) ॥ १६ ॥

सर्वलक्षणसंपन्ना भूमिः साधारणा स्मृता ॥
द्रव्याणि यत्र तत्रैव तद्गुणानि विशेषतः ॥ १७ ॥

सब रसोंके लक्षणों करके संयुक्त साधारण भूमि होती है जिसमें जहां २ जो २ द्रव्य होते हैं उनमें वेही वे गुण विशेष करके होते हैं ॥ १७ ॥

विगंधेनापरामृष्टमविपन्नं रसादिभिः ॥ नवं द्रव्यं पुराणं वा ग्राह्यमेवं विनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥ विडंगं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्चाप्यनवं हितम् ॥ शेषमन्यत्त्वभिनवं गृह्णीयाद्दोषवर्जितम् ॥ १९ ॥

जिसकी गंध न बिगडी हो तथा रस (स्वाद) और स्पर्शादिकमेंभी बिगाड़ नहीं हुआहो वह औषध चाहे नवीन हो चाहे पुरानी हो ग्रहण करने (उपयोग करने) योग्य होती है ॥ १८ ॥ वायविडंग, पीपल, शहत, घृत ये (कर्षणक्रियामें) पुराने हित हैं और शेष सब औषध नवीन और दोषरहित लेनी चाहिये ॥ १९ ॥

जंगमानां वयस्थानां रक्तरोमनखादिकम् ॥
क्षीरमूत्रपुरीषाणि जीर्णाहारेषु संहरेत् ॥ २० ॥

(सूत्र १४) पलाशलवणादिषु पत्रलवणादिषु पत्रलवणयोगो वातव्याधिपठितो ज्ञेयः ।

(सूत्र १९) विडंगं पिप्पली क्षौद्रं सर्पिश्च अनवमपि हितं शेषौषधानि त्वनवान्येव सर्वतोभावेनाहितान्येव।

जंगम (पशु, पक्षी आदि) जीवोंका रक्त, रोम, नखून, दूध, मूत्र, गोमय, वीठ आदि यदि लेना आवश्यक हो तो जब उनका आहार पच जाय तब लेवे और वयस्थ अर्थात् बडी अवस्था (युवा अवस्था) वालोंका लेवे ॥ २० ॥

औषधालय ।

प्लोतमृद्भांडफलकशंकुविन्यस्तभेषजम् ॥
प्रशस्तायां दिशि शुचौ भेषजागारमिष्यते ॥ २१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

वैद्यको चाहिये कि अच्छी दिशामें सुंदर स्थानमें रूई, कपडे, रेशम आदि और मृद्भांड अमृतवान काचपात्रादि तथा फलक, काठके पात्र, शंख, सीप आदिके पात्र और शंकु खुरचने चमचे युक्त अच्छे पात्रोंमें औषध धरेहुए ऐसा औषधालय बनाया रक्खे (अथवा कपडेमें, मिट्टीके पात्रोंमें, काठके पात्रोंमें रक्खी हुई या कीलें खुंटियोंमें लटकी हुई-जहां औषध हो ऐसा औषधालय पूर्व या उत्तर दिशामें पवित्र स्थानमें होना चाहिये) ॥ २१ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने सप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंशोध्यायः ३८.

अथातो द्रव्यसंग्रहणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे द्रव्यसंग्रहणीय (द्रव्योंका संग्रह अर्थात् गण इकट्ठे करनेके विषयमें) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

समासेन सप्तत्रिंशद्द्रव्यगणा भवंति तद्यथा ॥ १ ॥

संक्षेपतासे द्रव्योंके गण ३७ सैंतीस हैं जो यहां वर्णन किये जाते हैं । विशेष चिकित्सास्थान और उत्तरतंत्रमें रोगोंकी चिकित्साके प्रति वर्णन होंहिंगे ये ३७ गण इसप्रकार हैं ॥ १ ॥

१ विदारिगंधादिगण ।

विदारिगंधा विदारी सहदेवा विश्वदेवाश्वदंष्ट्रा पृथक्पर्णी शतावरी सारिवा कृष्णसारिवा जीवकर्षभौ महासहा क्षुद्रसहा बृहत्यौ पुनर्नवैरंडो हंसपदी वृश्चिकाल्यृषभी चेति ॥ २ ॥

(सूत्र २) विदारी विदारीकंदः कोहलाकारो लोहितकुसुमः स च द्विविधः दीर्घकंदो वृद्धक्षीरः हस्तिपादको महाल्पक्षीर इति । सारिवा जम्बूपत्रा दुग्धगर्भावल्ली । हंसपदी हंसपदाकारपत्रा पीतपुष्पा जलयुक्तदेशजाता हंसपदीनाम्नैव लोके प्रसिद्धा इति (डल्हनः) ।

विदारिगंधा (शालपर्णी), विदारीकंद (कोहलेके समान रक्तपुष्प वाला होता है), सहदेवी (बलाका एक भेद पीतपुष्प), विश्वदेवा (गंगेरन), श्वदंष्ट्रा (त्रिकंटक गोक्षुर), पृथक्पर्णी (पृश्निपर्णी–पिठवन), शतावरी, सारिवा (जामुनकेसे पत्तोंवाली दूधसहित बेल), कृष्णसारिवा (छलहटेकेसे पत्तोंवाली चंदनकेसी गंध-वाली बेल जिसे कालवेली कहते हैं), जीवक, ऋषभक (ये इस समय नहीं मिलते) महासहा (माषपर्णी), क्षुद्रसहा (मुद्गपर्णी), छोटी कटेली, बडी कटेली, पुनर्नवा (साटी) अरंड, हंसपदी (मधुस्रवा हंसपदाकार पत्रवाली जलसूखी भूमिमें होती-है), वृश्चिकाली (मेढासींगीका भेद), ऋषभी (कवँच) यह २० औषधोंका विदारिगंधादिकगण कहा है ॥ २ ॥

विदारिगंधादिरयं गणः पित्तानिलापहः ॥
शोषगुल्मांगमर्दोर्ध्वश्वासकासविनाशनः ॥ ३ ॥

यह विदारिगंधादिगण पित्त और वायुको शांत करताहै तथा शोष, गुल्म, अंगमर्द (अंगोंका टूटनासा) तथा ऊर्द्ध्वश्वास और कास (खांसी) को नाश करता है ॥३॥

२ आरग्वधादिगण ।

आरग्वधमदनगोपघोंटाकुटजपाठाकंटकीपाटलामूर्वेंद्रयवसप्तपर्ण-लिंबकुरण्टकदासीकुरंटकगुडूचीचित्रकशार्ङ्गेष्टाकरंजद्वयकिराततिक्तकानि सुषवी चेति ॥ ४ ॥

आरग्वध (किरमाला), मदन (मैनफल), गोपघोंटा (सुपारीका भेद), कुडा, पाठा, कंटकी (विकंकत), पाटला (वसंतदूती), मूर्वा (जिसकी छालसे धनुषकी डोरी बनती है), इन्द्रजौ (कुटजफल), सप्तपर्ण (सतोना जिसके शाल्म-लीकेसे पत्ते होते हैं), निंब, कुरंट (पीले फूलका पियावासा), दासीकुरंट (नीले फूलका पियावासा), गिलोय, चित्रक, शार्ङ्गेष्टा (काकजंघा और कइयोंके मतसे काकमाची), करंज, पूतिकरंज, पटोल (परवल), किराततिक्त (चिरायता) और सुषवी (करेला) यह २१ औषधोंका आरग्वधादिगण है ॥ ४ ॥

आरग्वधादिरित्येष गणः श्लेष्मविषापहः ॥
मेहकुष्ठज्वरवमीकंडूघ्नो व्रणशोधनः ॥ ५ ॥

यह आरग्वधादिगण कफ और विषको नाश करता है तथा प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर और वमन एवं खुजली इन्हें नाश करता है और घावको शोधता है ॥ ५ ॥

(सूत्र ४) गोपघोंटा कर्कोटा, बदरभेद इत्यन्ये पूगभेदमपरे । शार्ङ्गेष्टा काकजंघा काकमाचीत्यन्ये (निबन्ध०) ।

३ वरुणादिगण।

वरुणाऽऽर्तगलशिग्रुमधुशिग्रुतर्कारीमेषशृंगीपूतीकनक्तमालमोरटाऽग्निमंथसैरीयकद्वयबिंबीवसुकवसिरचित्रकशतावरीबिल्वाऽजशृंगीदर्भा बृहतीद्वयं चेति ॥ ६ ॥

वरुणा, आर्तगल (ककुभ), शिग्रु (सोहजना), मधुशिग्रु (लाल सोहजना), तर्कारी (अरणी), मेढाशिंगी, पूतीक (पूतिकरंज), नक्तमाल (बडा करंज), मोरट (क्षीरमूर्वा), अग्निमंथ (अगेथुवा बडी अरणी), सैरेयक (यह दो प्रकार की है १ लाल फूलकी कुरबक, २ पीतपुष्प कुरंट), बिम्बी (तिंदूरी), वसुक (बकपुष्प या आक), वसिर (अपामार्ग), चित्रक, शतावरी, बिल्व, अजशृंगी, कुशा, दोनों कटेली यह २१ औषधें वरुणादिगण कहलाता है ॥ ६ ॥

वरुणादिर्गणो ह्येष कफमेदोनिवारणः ॥
विनिहंति शिरःशूलगुल्माभ्यंतरविद्रधीन् ॥ ७ ॥

यह वरुणादि गण कफ और मेदको नाश करता है तथा शिरका शूल, गुल्म और आभ्यंतर विद्रधी इन्हें दूर करता है ॥ ७ ॥

४ वीरतर्वादिगण।

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुन्द्रानलकुशकाशाऽश्मभेदकाग्निमन्थमोरटावसुकवसिरभल्लूककुरंटकेन्दीवरकपोतवंकाः श्वदंष्ट्रा चेति ॥ ८ ॥

वीरतरु (वेल्लंतर), सहचर (दोनों प्रकारका पियावासा), डाभ, वृक्षादनी (वंदा), गुंद्रा (गोदर गोंदनी),नल (नरसल),कुश (छोटीडाभ), काँस, पाषाणभेद, अग्निमन्थ (बडी अरणी), मोरट (क्षीरमूर्वा), वसुक (वकपुष्प), वसिर (अपामार्ग), भल्लूक (श्योनाक जिसके बडे पत्ते हों), कुरंटका (सिरयाई), इंदीवर (नील कमल), कपोतवंका (ब्राह्मी), श्वदंष्ट्रा (गोखरू) ये १८ औषध वीरतरु आदिक गण कहलाता है ॥ ८ ॥

(सूत्र ६) "सैरीयकः सहचरःसैरेयश्च सहाचरः। पीतो रक्तोथ नीलश्च कुसुमैस्तं विभावयेत्॥पीतः कुरंटको ज्ञेयो रक्तः कुरबकःस्मृतः॥" नील आर्तगलो दासी वाणेति (अमरटीकायाम्)। तर्कारि अग्निमंथयोर्भेदमाह। तर्कारी जयती क्षुद्रारणी। अग्निमथः गणिकारी वृद्धारणी। (सूत्र८) वीरतरु वेल्लंतरः तथा प्रोक्तं डल्हनाचार्येण "वेल्लतरो जगति वीरतरुः प्रसिद्धः श्वेतासितारुणविलोहितपीतपुष्पः। आदाविटल्कुसुमः श्यामसूक्ष्मपत्रः स्यात्कंटकीवितलदेश्यजराषवृक्षः॥"अमरस्तु वीरतरुरर्जुनवृक्ष इत्याह "नदीसर्जो वीरतरुरिंद्रद्रुः ककुभोऽर्जुनः"इति तत्तु न सम्यक् वेल्लंतरस्य शर्करामूत्रकृच्छ्राघाताश्मरीरोगहरणसामार्थ्यात्।

वीरतर्वादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ॥
अश्मरीशर्करासूत्रकृच्छ्राघातरुजापहः ॥ ९ ॥

यह वीरतरुआदि गण वायुके विकारोंको नाश करता है और पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघातको दूर करता है। (यह गण शतवीर्य होकर वायुनाशक है) ९

५ सालसारादिगण ।

सालसाराऽजकर्णखदिरकदरकालस्कंधक्रमुकभूर्जमेषशृंगीतिनिश-चन्दनकुचन्दनशिंशपाशिरीषासनधवाऽर्जुनतालशाकनक्तमाल-पूतीकाऽश्वकर्णाऽगुरूणि कालीयकं चेति ॥ १० ॥

सालवृक्षका सार, अजकर्ण(सालका भेद),खदिर(श्वेतखैरसारके तुल्य), कालस्कंद (उदुंबर या दुर्गंध खदिर), क्रमुक (सुपारी), भूर्जपत्र, मेढाशिंगी, तिनिश (सादन), चंदन (श्वेत), कुचंदन (रक्तचंदन), शिंशपा (सीसों), शिरस, असन (विजैसार), धव, अर्जुन (कुहा), ताल (ताड), शाक (सागोन), नक्तमाल (करंज), पूतीक(पूतिकरंज), अश्वकर्ण (कुशिव एक भांतिका तालवृक्ष),अगुरु, कालीयक (हरिचंदन पीला चंदन) यह २३ औषधोंका सालसारादि गण है॥१०॥

सालसारादिरित्येष गणः कुष्ठविनाशनः ॥
मेहपाण्ड्वामयहरः कफमेदोविशोषणः ॥ ११॥

यह सालसारादि गण कुष्ठोंको (रक्तविकारको) नाश करता है प्रमेह और पांडुरोगको दूर करता है और कफ तथा मेदको शोषण करता है ॥ ११ ॥

६ रोध्रादिगण ।

रोध्रसावररोध्रपलाशकुटन्नटाऽशोकफंजीकट्फलैलवालुकसल्लकी-जिंगिनीकदंबसालाः कदली चेति ॥१२॥

लोध, सावरलोध (पठानी लोध), पलाश (ढाक), कुटन्नट (श्योनाक), अशोक, फंजी (भाडंगी), कायफल, एलवालुक (हरिवालुक), सल्लकी (सालका भेद), जिंगिनी (मंजीठ), कंदब, साल और केला यह १३ औषधोंका रोध्रादि गण है ॥ १२ ॥

एष रोध्रादिरित्युक्तः मेदःकफहरो गणः ॥
योनिदोषहरस्स्तंभो व्रण्यो विषविनाशनः ॥ १३ ॥

(सूत्र १०) कालस्कंधः तिंदुकः तमाल उदुंबरो विट्खदिरश्च । अत्र तु विट्खदिरः । (सूत्र १३) रोध्रो द्वधी—विरेचनीयाध्यायांतर्गतस्तिल्वकोऽस्मादन्यः श्वेतसूक्ष्मकटुकलोध्रः तिल्वकः स विरेचनकर्ता रोध्रादिगणोक्त एष रोध्रः कषायस्थूलत्वक् रक्तप्रायवर्णसंग्राही ।

यह रोध्रादि गण मेद और कफका हरनेवाला, योनिके दोषोंको दूर करनेवाला और स्तंभनकर्ता तथा व्रण और विषका नाशक है ॥ १३ ॥

७ अर्कादिगण ।

अर्काऽलर्ककरंजद्वयनागदंतीमयूरकभार्गीरास्नेंद्रपुष्पी-
क्षुद्रश्वेतामहाश्वेतावृश्चिकाल्यलवणास्तापसवृक्षश्च ॥ १४ ॥

अर्क (आक), अलर्क (सुपेद आक), करंजद्वय (करंजवा और पूतिकरंज), नागदन्ती (दंती), मयूरक (अपामार्ग), भाडंगी, रास्ना, इंद्रपुष्पी (कंटकी), क्षुद्रश्वेता (फेसंद), महाश्वेता (नीलपुष्प संकंद या बांझककोडी), वृश्चिकाली (मेढाशींगीका भेद) अलवणा (मालकांगनी), तापसवृक्ष (इंगुद हिंगोट) यह १४ औषधोंका अर्कादि गण है ॥ १४ ॥

अर्कादिको गणो ह्येष कफमेदोविषापहः ॥
कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्व्रणशोधनः ॥ १५ ॥

यह अर्कादिगण कफ, मेद और विषनाशक है । कृमि कुष्ठका दूर करनेवाला और विशेषकर व्रणशोधक है ॥ १५ ॥

८ सुरसादि गण ।

सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकाऽर्जकभूस्तृणसुगंधकसुमुखकालमाल-
कासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडंगकट्फलसुरसीनिर्गुंडीकुलाहलोंदुरुकर्-
णिकाफंजीप्राचीबलकाकमाच्यो विषमुष्टिकश्चेति ॥ १६ ॥

सुरसा (तुलसी), अश्वेत सुरसा (श्यामा तुलसी), फणिज्झक (मरुवा), अर्जक (आजबला बाबूई) , भूस्तृण (रोहिसतृण), सुगंधक (बृहत्सुगन्धतृण), सुमुख (राई या बर्बरी), कालमाल (बर्बरी या कृष्णमल्लिका), कासमर्द (कसोंदी), क्षवक (छिक्कनी या राई), खरपुष्पा (छिक्कनीका दूसरा भेद), विडंग, कायफल, सुरसी (विश्वनासी), निर्गुंडी (सिंभालू), कुलाहल (मुंडी), उंदुरकर्णिका (मूसाकर्णी), फंजी (भाडंगी), प्राचीबल (मछेछी), काकमाची (मकोह), विषमुष्टि (राजनिंब) यह २० औषधोंका सुरसादि गण कहा है ॥ १६ ॥

सुरसादिर्गणो ह्येष कफहृत् कृमिसूदनः ॥
प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः ॥ १७ ॥

(सूत्र १६) सुगंधकः घ्राणपुष्पः बृहत्सुगंधतृण च । सुमुख राजिका बर्बरिका वा फंजी भार्गी प्राचीनबलं मत्स्याक्षकः । केचिदाचार्या एवं वदंति यद्यपि प्राचीबलशब्देन काकजंघा गंडपूर्वा जलपिप्पली चोच्यते तथप्यत्र काकजंघैव काकमाचीसान्निध्यात् (इति निबंधसंग्रहः)

यह सुरसादिक गण कफहर्ता, कृमिनाशक है और प्रतिश्याय (पीनस), अरुचि, श्वास और कास इन्हें दूर करता है और व्रणका शोधक है ॥ १७ ॥

९ मुष्ककादिगण ।

मुष्ककपलाशधवचित्रकमदनवृक्षशिंशपावज्रवृक्षास्त्रिफला चेति॥१८॥

मुष्कक (मोखा या मोचा), ढाक, धव, चित्रक, मैनफलका वृक्ष, सीसों, वज्रवृक्ष (सेहुंड थोहर), तथा त्रिफला (हरड, बहेडा, आंवला) इन १० औषधोंका मुष्ककादि गण कहा है ॥ १८ ॥

मुष्ककादिर्गणो ह्येष मेदोघ्नः शुक्रदोषहृत् ॥
महार्शःपांडुरोगघ्नः शर्कराश्मरिनाशनः ॥ १९ ॥

यह मुष्ककादि गण मेदोवृद्धिका हरनेवाला और शुक्रका दोष दूर करनेवाला है (अर्थात् वीर्यशोधक है) और प्रमेह, पाण्डु, शर्करा और अश्मरी (पथरी) इन्हें दूर करता है ॥ १९ ॥

पिप्पल्यादिगण ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृंगवेरमरिचहस्तिपिप्पलीहरेणुकैलाऽजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकसर्षपमहानिंबफलाहिंगुभार्ङ्गीमधुरसाऽतिविषावचाविडंगानि कटुरोहिणी चेति ॥ २० ॥

पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, मिरच, गजपिप्पली, हरेणुका (रेणुका मिरचसदृश), बडी इलायची, अजमोद, इन्द्रजौ, पाठा, जीरा, सरसों, महानिंबफल (बकायनफल), हींग, भाडंगी, मधुरसा (मूर्वा), अतीस, वच, विडंग और कुटकी यह २२ औषधोंका पिप्पल्यादि गण कहा है ॥ २० ॥

पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यायानिलारुचीः ॥
निहन्याद्दीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ॥ २१ ॥

यह पिप्पल्यादि गण कफको हरता है और प्रतिश्याय, वायु तथा अरुचि इन्हें दूर करता है, दीपन है, गुल्म शूलको नाश करता है और आमका पाचन (पकानेवाला है) ॥ २१ ॥

एलादिगण ।

एलातगरकुष्ठमांसीध्यामकत्वक्पत्रनागपुष्पप्रियंगुहरेणुकाव्याघ्रन-

(सूत्र २०) चव्य हस्तिपिप्पलीमूलमिति (डल्लनः) भावमिश्रोपि चविकायाः फल प्राज्ञैः कथिता गजपिप्पली" इति ।

खशुक्तिचंडास्थौणेयकश्रीवेष्टकचोचचोरकबालकगुग्गुलुसर्जरसतु-रुष्ककुंदुरुकागुरुऽस्पृक्कोशीरभद्रदारुकुंकुमानि पुन्नागकेशरं चेति२२॥

छोटी इलायची, तगर, कूट, जटामांसी, ध्यामक (रोहिषतृण), दालचीनी, पत्रज नागकेशर, प्रियंगु (मालकांगनी), हरेणुका (रेणुका), व्याघ्रनख (नख), शुक्ति, (सीप), चण्डा (खुरासानी अजवायन), स्थौणेयक (थूनेरा), श्रीवेष्टक (सरल वृक्ष गुग्गुली), चोच (तज), चोरक (ग्रंथिपर्णभेद), वालक (नेत्रवाला), गूगल, सर्जरस (राल), तुरुष्क (सिल्हक), कुंदरुक (एक प्रकार शल्लकी जिसका निर्यास कुंदुरुका गोंद है), अगर, स्पृक्का (सुगंध द्रव्य कपूरवल्ली असवर्ग), उशीर (खस), भद्रदारु (देवदारु), केशर, पुन्नागकेशर (कमलकेशर) यह २८ औषधका एलादिगण है ॥ २२ ॥

एलादिको वातकफौ निहन्याद्विषमेव च ॥
वर्णप्रसादनः कंडूपिडिकाकोठनाशनः ॥ २३ ॥

यह एलादिगण वायु और कफको हरता है। तथा विषको नाश करता है, वर्णप्रसादन है, शरीरका रंग छांटता है, खाज अलाई और कोठ (उदर्दका भेद) इन्हें दूर करता है ॥ २३ ॥

१२-१३ वचादि और हरिद्रादि गण ।

वचामुस्ताऽतिविषाऽभयाभद्रदारूणि नागकेशरं चेति ॥२४॥ हरिद्रादारुहरिद्राकलशीकुटजबीजानि मधुकं चेति ॥ २५ ॥

वच, नागरमोथा, अतीस, हरडे, देवदारु और नागकेशर यह ६ औषधोंका वचादिगण है ॥ २४ ॥ हलदी, दारुहलदी, कलशी (पृश्निपर्णी), इन्द्रजौ और मुलहटी यह पांच ५ औषधोंका हरिद्रादिगण है ॥ २५ ॥

एतौ वचाहरिद्रादी गणौ स्तन्यविशोधनौ ॥
आमातीसारशमनौ विशेषाद्दोषपाचनौ ॥ २६ ॥

ये वचादिगण और हरिद्रादिगण दुग्धको शोधन करते हैं, आमके अतिसारको शमन करते हैं विशेष करके दोषोंको पकाते हैं ॥ २६ ॥

१४ श्यामादिगण ।

श्यामामहाश्यामात्रिवृद्दंतीशंखिनीतिल्वककम्पिल्लकरम्यकक्र-

(सूत्र २५) कलशी पृश्निपर्णी ।

सुकपुत्रश्रेणीगवाक्षीराजवृक्षकरंजद्वयगुडूचीसप्तलाछगलांत्रीसुधासुवर्णक्षीर्यश्चेति ॥ २७ ॥

श्यामा (काला निशोथ), महाश्यामा (विधायरा), त्रिवृत् (श्वेत निशोथ), दंती (जयपालमूल), शंखिनी (यवतिक्ता), तिल्वक (लोध), कंपिल्ल (कमेला), रम्यक (बकायन), क्रमुक (सुपारी माणिकचन्दी) पुत्रश्रेणी (संवरी, द्रवंती, जिसका पत्र अरण्डपत्रके आकार कुछ २ छोटासा और फल बीजभी अरण्डफलके तुल्य होते हैं यह वृक्ष इससमय स्टेशनोंपर प्रायः लगाये हुए देखनेमें आते हैं) गवाक्षी (इन्द्रायण), राजवृक्ष (किरमाला), दोनों करंजवे, गुडूची (गिलोय), सप्तला (सातला थोहरका भेद), छगलांत्री (मरोडदार विधायरेका भेद), सुधा, थूहर, स्वर्णक्षीरी (चोक), यह १९ औषधोंका श्यामादिगण है ॥ २७ ॥

उक्तः श्यामादिरित्येष गणो गुल्मविषापहः ॥
आनाहोदरविड्भेदी तथोदावर्तनाशनः ॥ २८ ॥

यह उक्त श्यामादिगण गुल्म और विषका नाशक है तथा आनाह उदररोग इनमें दस्तावर है और उदावर्तको दूर करता है ॥ २८ ॥

१५ बृहत्यादिगण ।

बृहतीकंटकारिकाकुटजफलपाठामधुकं चेति ॥ २९ ॥

बृहती (बडी कटेली गोरख भटा), कंटकारिका (छोटी कटेली), इन्द्रजौ, पाठा और मुलहटी यह ५ औषधोंका बृहत्यादिगण है ॥ २९ ॥

पाचनीयो बृहत्यादिर्गणः पित्तानिलापहः ॥
कफारोचकहृल्लासमूत्रकृच्छ्ररुजापहः ॥ ३० ॥

यह बृहत्यादिगण पित्त और वायुनाशक है । कफ, अरुचि, हृल्लास, (हुडीक) और मूत्रकृच्छ्ररोगको नाश करता है ॥ ३० ॥

१६ पटोलादिगण ।

पटोलचंदनकुचंदनमूर्वागुडूचीपाठाः कटुरोहिणी चेति ॥ ३१ ॥

पटोल (परवल), श्वेतचंदन, कुचंदन (रक्तचन्दन), मूर्वा, गिलोय, पाठा और कुटकी यह सात ७ औषधोंका पटोलादिगण है ॥ ३१ ॥

पटोलादिर्गणः पित्तकफारोचकनाशनः ॥
ज्वरोपशमनो व्रण्यश्छर्दिकंडूविषापहः ॥ ३२ ॥

(सूत्र २७) तिल्वकः कटुतिक्तसूक्ष्मत्वक् श्वेतलोध्रः ।

यह पटोलादिगण पित्त, कफ, अरुचि इन्हें नाश करता है, ज्वरको शमन करता है, व्रणको हित है, वमन और खाजको दूर करता है ॥ ३२ ॥

१७ काकोल्यादिगण ।

काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटशृंगीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौंडरीकर्द्धिवृद्धिमृद्वीकाजीवंत्यो मधूकं चेति ॥ ३३ ॥

काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक (ये सब नहीं मिलते) मुद्गपर्णी (वनमूंगी), माषपर्णी (वनउडदी), मेदा, महामेदा (ये दोनों भी नहीं मिलतीं) छिन्नरुहा (गिलोय), काकडासींगी (हरी), वंशलोचन, पद्माख, प्रपौंडरीक (मुलहटीसे कुछ मोटी मीठी एक वस्तु जिसे नेत्रमें निचोडते हैं), ऋद्धि, वृद्धि (ये भी नहीं मिलतीं ये दक्षिणावर्त और वामावर्त बेल होती हैं), मृद्वीका (मुनक्का), जीवंती तथा महुवा यह १८ औषधोंका काकोल्यादि गण है ॥ ३३ ॥

काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः ॥
जीवनो बृंहणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा ॥ ३४ ॥

यह काकोल्यादिगण पित्त, रक्त और वायुको नाश करता है, जीवन है, बृंहण (शरीरपुष्टिकर्ता), वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है, दुग्ध और कफ करता है ॥ ३४ ॥

१८ ऊषकादिगण ।

ऊषकसैंधवशिलाजतुकासीसद्वयहिंगूनि तुत्थकं चेति ॥ ३५ ॥

ऊषक (खारीमिट्टी रेह), सेंधानमक, शिलाजतु, कसीसद्वय (कसीस और हीराकसीस), हींग तथा नीलाथोथा ये ७ औषधें ऊषकादिगणमें हैं ॥ ३५ ॥

ऊषकादिः कफं हंति गणो मेदोविशोषणः ॥
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रगुल्मप्रणाशनः ॥ ३६ ॥

यह ऊपकादिगण कफको शांत करता है और मेदको शोषण करता है तथा पथरी और शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और गुल्मको नाश करता है ॥ ३६ ॥

१९ सारिवादिगण ।

सारिवामधुकचंदनकुचंदनपद्मककाश्मरीफलमधूकपुष्पाण्युशीरं चेति ॥ ३७ ॥

सारिवा, मुलहटी, चन्दन, लालचन्दन, पद्माख, काश्मरीफल (खंभारी), मधूकपुष्प (महुवेके फूल) और खस ये ८ औषध सारिवादिगणमें हैं ॥ ३७ ॥

सारिवादिः पिपासाघ्नो रक्तपित्तहरो गणः ॥
पित्तज्वरप्रशमनो विशेषाद्दाहनाशनः ॥ ३८ ॥

यह सारिवादिगण तृषाको शांत करता है, रक्तपित्तको नाश करता है, पित्तज्वरको शमन करता है और विशेषकर दाहको शांत करता है ॥ ३८ ॥

२० अंजनादिगण ।

अञ्जनरसांजननागपुष्पप्रियंगुनीलोत्पलनलदनलिनकेशराणि मधुकं चेति ॥ ३९ ॥

सौवीरांजन, रसांजन (रसोत), नागकेशर, प्रियंगु, नीलकमल, जटामांसी, कमलकेशर और मुलहटी ये ८ औषध अंजनादिगणमें है ॥ ३९ ॥

अञ्जनादिर्गणो ह्येष रक्तपित्तनिबर्हणः ॥
विषोपशमनो दाहं निहंत्याभ्यंतरं तथा ॥ ४० ॥

यह अंजनादिगण (लेप करनेसे) रक्तपित्तका नाश करता है, विषको शांत करता है, भीतरके दाहको शमन करता है और कई अंजनादिका खिलाना भी कहते हैं परन्तु बिना शोधन मारणके इससमय कोई भी धातु उपधातु खानेके काममें नहीं लेते ॥ ४० ॥

२१ परूषकादिगण ।

परूषकद्राक्षाकट्फलदाडिमराजादनकतकफलशाकफलानि त्रिफला चेति ॥ ४१ ॥

परूषक (फालसे), किसमिस (दाख), कट्फल (गांभारी), अनार, राजादन (खिरनी), कतकफल (कैथका फल कवीठ), शाकफल और त्रिफला यह ८ या १० औषधोंका परूषकादिगण है ॥ ४१ ॥

परूषकादिरित्येष गणोऽनिलविनाशनः ॥
मूत्रदोषहरो हृद्यः पिपासाघ्नोऽरुचिप्रदः ॥ ४२ ॥

यह परूषकादिगण वायुको नाश करता है, मूत्रके दोष हरता है, हृदयको हित है, प्यासको शांत करता है और रुचिका देनेवाला है ॥ ४२ ॥

२२-२३ प्रियंग्वादि अंबष्ठादिगण ।

प्रियंगुसमंगाधातकीपुन्नागरक्तचंदनकुचंदनमोचरसांजनकुंभीक

(सूत्र ४१) कट्फलं (कायफलमिति ख्यातम्) इति डल्लनः । वाचस्पतिस्तु कट्फलः श्रीपर्णीवृक्षे गाभार्यां बृहत्यां काकमाच्या वार्ताक्या च ।

स्रोतोंजनपद्मकेशरयोजनवल्यो दीर्घमूला चेति ॥ ४३ ॥ अंबष्ठाधातकीकुसुमसमंगाकट्वंगमधुकबिल्वपेशिकारोध्रसावररोध्रपलाशनंदीवृक्षपद्मकेशराणि चेति ॥ ४४ ॥

प्रियंगु (कंगु), लज्जालू, धातकी (धायके फूल), पुन्नाग (कमल), लालचंदन, चंदन, मोचरस, रसौत, कुंभी, स्रोतोंजन, कमलकेशर, योजनवल्ली (मंजीठ) और दीर्घमूला (दुरालभा या शालपर्णी) यह १२ औषधोंका प्रियंग्वादि गण है ॥ ४३ ॥ अंबष्ठा (कुरंड या पाठा), धायके फूल, लज्जालू, कट्वंग (अरणुक), बिल्वगिरि, लोध, पठानीलोध, ढाक, नंदीवृक्ष (काश्मरी), कमलकेशर यह ११ औषधोंका अंबष्ठादिगण है ॥ ४४ ॥

गणौ प्रियंग्वंबष्टादी पक्वातीसारनाशनौ ॥
संधानीयौ हितौ पित्ते व्रणानां चापिरोपणौ ॥ ४५ ॥

ये प्रियंग्वादिगण और अंबष्ठादिगण पके अतिसारको नाश करते हैं, टूटे हाडको जोडनेवाले हैं, पित्तके लिये हित हैं तथा व्रणोंके रोपण करनेवाले (भरनेवाले) हैं ॥ ४५ ॥

२४ न्यग्रोधादिगण ।

न्यग्रोधोदुंबराऽश्वत्थप्लक्षमधूककपीतनककुभाम्रकोशाम्रचोरकपत्रजंबूद्वयपियालमधुकरोहिणीवंजुलकदंबबदरीतिन्दुकीशल्लकीरोध्रसावररोध्रभल्लातकपलाशा नन्दीवृक्षश्चेति ॥ ४६ ॥

न्यग्रोध (वड), उदुंबर (गूलर), अश्वत्थ (पीपल), प्लक्ष (पिलखन), मधूक (महुवा), कपीतन (आमडा), ककुभ (अर्जुन), आंब, कोशाम्र (आंबका भेद) चोरकपत्र (लाखका वृक्ष जिसके पत्ते अरुसे कैसे होते हैं), दोनों प्रकारकी जामन (छोटी और बडी), पियाल (चिरोंजी वृक्ष), मुलहटी, रोहिणी (काश्मरी), वंजुल (वेत), कदंब, बदरी (बेरी), तिंदुकी (तेंदू), शल्लकी (शालभेद), लोध, पठानीलोध, भिलावेका वृक्ष, ढाक, नंदीवृक्ष (पारस पीपल) यह २४ औषधोंका न्यग्रोधादि गण है ॥ ४६ ॥

न्यग्रोधादिर्गणो व्रण्यः संग्राही भग्नसाधकः ॥
रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्नो योनिदोषहृत् ॥ ४७ ॥

(सूत्र ४६) रोहिणी कट्फलमिति डल्लनः । वाचस्पतिस्तु रोहिणी काश्मरीति ।

यह न्यग्रोधादिगण व्रणको हितकारी है, संग्राही (काबिज) है, टूटेको जोड नेवाला है, रक्त पित्तका नाशक है, दाह और मेदको नष्ट करता है और स्त्रियोंकी योनिके दोषोंको दूर करता है ॥ ४७ ॥

२५ गुडूच्यादिगण ।

गुडूचीनिम्बकुस्तुंवुरुचन्दनानि पद्मकं चेति ॥ ४८ ॥

गिलोय, निंबकी छाल, कुस्तुंबुरु (धनिया), चंदन और पद्माख यह ५ औषधोंका गुडूच्यादिगण है ॥ ४८ ॥

एष सर्वज्वरान् हंति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥
हृल्लासारोचकवमिपिपासादाहनाशनः ॥ ४९ ॥

यह गुडूच्यादिगण दीपन है, सब प्रकारके ज्वरोंको नाश करता है और हुडीक, अरुचि, वमन, तृषा और दाहको नाश करता है ॥ ४९ ॥

२६ उत्पलादिगण ।

उत्पलरक्तोत्पलकुमुदसौगंधिककुवलयपुंडरीकाणि मधुकं चेति ॥ ५० ॥

उत्पल (नीलाकमल), रक्तोत्पल (लाल कमल), कुमुद (कमोदनी पाडर) सौगंधिक (नील कमलाकार सुगंधयुक्त), कुवलय (आसमानी रंगका कमल) पुंडरीक (श्वेत कमल) और मुलहटी यह ७ औषधोंका उत्पलादिगण है ॥ ५० ॥

उत्पलादिरियं दाहपित्तरक्तविनाशनः ॥
पिपासाविषहृद्रोगच्छर्दिमूर्च्छाहरो गणः ॥ ५१ ॥

यह उत्पलादिगण दाह, पित्त, रक्त इन्हें शांत करता है और प्यास, विष, हृदयरोग, छर्दि और मूर्च्छाको दूर करता है ॥ ५१ ॥

२७ मुस्तादिगण ।

मुस्ताहरिद्रादारुहरिद्राहरीतक्याऽऽमलकविभीतककुष्ठहैमवतीवचापाठाकटुरोहिणीशार्ङ्गष्टाऽतिविषाद्राविडीभल्लातकानि चित्रकश्चेति ॥ ५२ ॥

नागरमोथा, हलदी, दारुहलदी, हरडे, आंवले, बहेडा, कूठ, हैमवती, सुपेद वच, पाठा, कुटकी, शार्गष्टा (यवतिका), अतीस, द्राविडी (छोटी इलायची) और भिलावा तथा चित्रक यह १६ औषधोंका मुस्तादिगण है ॥ ५२ ॥

एष मुस्तादिको नाम्ना गणः श्लेष्मनिषूदनः ॥
योनिदोषहरः स्तन्यः शोधनः पाचनस्तथा ॥ ५३ ॥

यह मुस्तादिगण कफनाशक, योनिके दोषका हरनेवाला, दुग्धका शोधक और पाचन है ॥ ५३ ॥

२८ त्रिफला ।

हरीतक्यामलकविभीतकानि त्रिफला ॥ ५४ ॥ त्रिफला कफ-पित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशिनी ॥ चक्षुष्या दीपनी चैव विषम-ज्वरनाशिनी ॥ ५५ ॥

हरडे, बहेडा, आंवला यह त्रिफला है (कई इसका प्रमाण इस प्रकार कहते-हैं कि एकभाग हरडे, दो भाग बहेडा, चार भाग आंवला और कई तीनोंकी मात्रा समको त्रिफला कहते हैं) ॥ ५४ ॥ यह त्रिफला कफ और पित्तनाशक है प्रमेह, कुष्ठको नष्ट करे, नेत्रोंको हित है, दीपन है और विषमज्वरनाशक है ॥ ५५ ॥

२९ त्रिकटु ।

पिप्पलीमरिचशृंगवेराणि त्रिकटुकम् ॥ ५६ ॥

पिप्पली, काली मिरच और सोंठ समभाग त्रिकटु अथवा त्र्यूषण कहलाता है ॥ ५६ ॥

त्र्यूषणं कफमेदोघ्नं मेहकुष्ठत्वगामयान् ॥
निहन्याद्दीपनं गुल्मपीनसाग्न्यल्पतामपि ॥ ५७ ॥

यह त्र्यूषण कफ और मेदको नष्ट करता है, प्रमेह, कुष्ठ और त्वचाके रोगोंको नाश करता है, दीपन है, गुल्म, पीनस और अग्निकी अल्पताको दूर करताहै ॥५७॥

३० आमलक्यादि गण ।

आमलकीहरीतकीपिप्पल्यश्चित्रकश्चेति ॥ ५८ ॥

आंवले, हरडे, पीपल और चित्रक यह आमलक्यादि गण है ॥ ५८ ॥

आमलक्यादिरित्येष गणः सर्वज्वरापहः ॥
चक्षुष्यो दीपनो वृष्यः कफारोचकनाशनः ॥ ५९ ॥

यह आमलक्यादिगण सब ज्वरोंका हर्ता, नेत्रोंको हित, दीपन और वृष्य है तथा कफ और अरुचीको नाश करता है ॥ ५९ ॥

३१ त्रप्वादि गण ।

त्रपुसीसताम्ररजतकृष्णलोहसुवर्णानि लोहमलं चेति ॥ ६० ॥

त्रपु (रांग), सीसा, तांबा, रजत (चांदी), कृष्ण (जशद) और लोह अथवा कृष्णलोह (तीक्ष्ण लोह) तथा लोहमल (मण्डूर) अथवा लोहशब्दसे

सब धातु और लोहमल अर्थात् सब धातुओंका मल सातों उपधातु (जैसे स्वर्ण-माक्षिक, रौप्यमाक्षिक, तुत्थ, खपरिया, सुरमा, कंकुष्ठ और मण्डूर) यह धातु उपधातुओंका त्रप्वादि गण है ॥ ६० ॥

गणस्त्रप्वादिरित्येष गरक्रिमिहरः परः ॥
पिपासाविषहृद्रोगपांडुमेहहरस्तथा ॥ ६१ ॥

यह त्रप्वादि गण विष और कृमिको नाश करता है तथा तृषा और जंगम-विष तथा हृद्रोग और पांडु तथा प्रमेहका नाश करता है (ये समस्त धातु उपधातु यथाविहित शोधन मारण करके उपयोग करने चाहिये) ॥ ६१ ॥

३२ लाक्षादि गण।

लाक्षाऽऽरेवतकुटजाश्वमारकट्फलहरिद्राद्वयनिम्बसप्तच्छदमाल-त्यस्त्रायमाणा चेति ॥ ६२ ॥

लाख, आरेवत (किरमाला), कुटज (कुडा), अश्वमारक (कनेर), कायफल, हलदी, दारुहलदी, नींब, सप्तच्छद (छतौना), मालती और त्रायमाण यह ११ औषधोंका लाक्षादि गण है ॥ ६२ ॥

कषायतिक्तमधुरः कफपित्तार्तिनाशनः ॥
कुष्ठक्रिमिहरश्चैव दुष्टव्रणविशोधनः ॥ ६३ ॥

यह लाक्षादिगण कसेला कडवा तथा मीठा है, कफ और पित्तकी पीडाको हरता है, कुष्ठ क्रिमिको नाश करता है और दुष्ट व्रणको शोधन करता है ॥ ६३ ॥

३३ लघुपंचमूल।

पंच पंचमूलान्यत ऊर्द्ध्वं वक्ष्यामः ॥ ६४ ॥ तत्र त्रिकंटकबृहती-द्वयपृथक्पर्ण्यो विदारिगंधा चेति कनीयः ॥ ६५ ॥

यहांसे पाँच पंचमूलोंको कहते हैं ॥ ६४ ॥ जिनमेंसे त्रिकंटक (छोटा गोखरू), बडी कटेली, छोटी पसर कटेली, पृश्निपर्णी और शालपर्णी यह लघुपञ्चमूल है॥ ६५॥

कषायतिक्तमधुरं कनीयः पंचमूलकम् ॥
वातघ्नं पित्तशमनं बृंहणं बलवर्द्धनम् ॥ ६६ ॥

यह लघुपंचमूल कसेला, कडुवा, मीठा है वायु और पित्तको शांत करता है बृंहण (पुष्टिकारक) और बल बढानेवाला है ॥ ६६ ॥

(सूत्र ६३) इत्येष लाक्षादिको गण इति शेषः।

३४ बृहत्पंचमूल ।

बिल्वाग्निमंथटुंटुकपाटलाकाश्मर्यश्चेति महत् ॥ ६७ ॥

बिल्व, अग्निमंथ (गणकारिका बडी अरनी), टुंटुक (इयोनाक), पाटला और काश्मरी यह बृहत्पंचमूल है ॥ ६७ ॥

सतिक्तं कफवातघ्नं पाके लघ्वग्निदीपनम् ॥
मधुरानुरसं चैवं पंचमूलं महत्स्मृतम् ॥ ६८ ॥

यह बडा पंचमूल कफवातनाशक, पाकमें हलका, अग्निको दीपन करनेवाला और कटु रस करके सहित मधुरानुरस है ॥ ६८ ॥

अनयोर्दशमूलमुच्यते ॥ ६९ ॥

इन दोनों लघु और बृहत्पंचमूलोंसे मिलकर दशमूल कहलाता है ॥ ६९ ॥

गणः श्वासहरो ह्येषः कफपित्तानिलापहः ॥
आमस्य पाचनश्चैवं सर्वज्वरविनाशनः ॥ ७० ॥

यह दशमूलगण श्वासका हरनेवाला है, कफ, पित्त और वायु (दोषत्रय) का शांत करनेवाला है, आमका पकानेवाला और सब ज्वरोंका नाशक है "आभस्य पाचनश्चैव" की जगह कई "सूतिकारोगशमनः" ऐसा मानते हैं ॥ ७० ॥

३५-३६ वल्लीपंचक, कंटकपंचमूल ।

विदारीसारिवारजनीगुडूच्योऽजशृंगी चेति वल्लीसंज्ञः ॥ ७१ ॥ करमर्दत्रिकंटकसैरेयकशतावरीगृध्रनख्य इति कंटकसंज्ञः ॥ ७२ ॥

विदारीकंद, सारिवा, रजनी (हलदी), गिलोय और मेढाशींगी यह वल्लीपंचमूल कहलाता है ॥ ७१ ॥ करमर्द (करोंदा), गोखरू, सैरेयक (कटसरैया) शतावर, गृध्रनखी (बदरी या कुलिक वृक्ष) यह कंटकपंचमूल है ॥७२॥

रक्तपित्तहरौ ह्येतौ शोफत्रयविनाशनौ ॥
सर्वमेहहरौ चैवं शुक्रदोषविनाशनौ ॥ ७३ ॥

ये दोनों गण रक्तपित्त हरनेवाले, तीन प्रकारके शोथको नष्ट करनेवाले, सब प्रमेहोंके हर्ता तथा वीर्यविकारके नाशक हैं ॥ ७३ ॥

३७ तृणपंचमूल ।

कुशकाशनलदर्भकाण्डेक्षुका इति तृणसंज्ञकः ॥ ७४ ॥

कुश (छोटी डभशूली), कास, नरसल, दर्भ (बर्हि लंबी डाभ), कांडेक्षु (ईख और कइयोंके मतमें शर अर्थात् झूडा) यह तृणपंचक या तृणपंचमूल है ॥ ७४ ॥

मूत्रदोषविकारं च रक्तपित्तं तथैव च ॥
अंत्यः प्रयुक्तः क्षीरेण शीघ्रमेव विनाशयेत् ॥७५॥

यह तृणपंचक मूत्रदोष, मूत्रविकार तथा रक्तपित्तको नाश करता है और यह अंत्यपंचक दूधके साथ उपयोग किया हुआ मूत्रदोषादिको शीघ्र नाश करता है ॥ ७५ ॥

एषां वातहरावाद्यावंत्यः पित्तविनाशनः ॥ पंचकौ श्लेष्मशमनावितरौ परिकीर्तितौ ॥ ७६॥ त्रिवृतादिकमन्यत्रोपदेक्ष्यामः॥७७॥

इन पांचों पंचकोंमें आदिके दो (लघुपंचमूल और बृहत्पंचमूल) वातनाशक हैं और अंत्य (तृणपंचमूल) पित्तको शमन करता है और शेष दो पचक (वल्ली पंचक और कंटक पंचमूल) कफको नाश करते हैं ॥ ७६ ॥ त्रिवृतादिक गण और स्थानपर उपदेश करेंगे ॥ ७७ ॥

समासेन गणा ह्येते प्रोक्तास्तेषां तु विस्तरम् ॥ चिकित्सितेषु वक्ष्यामि ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥७८॥ एभिर्लेपान् कषायांश्च तैलं सर्पींषि पानकान् ॥ प्रविभज्य यथान्यायं कुर्वीत मतिमान् भिषक् ॥ ७९ ॥ धूमवर्षानिलक्लेदैः सर्वर्तुष्वनभिद्रुते ॥ ग्राहयित्वा गृहे न्यस्येद्विधिनौषधसंग्रहम् ॥ ८० ॥ समीक्ष्य दोषभेदांश्च गणान् भिन्नान् प्रयोजयेत् ॥ पृथङ्मिश्रान् समस्तान्वा गणं वा व्यस्तसंहतम् ॥ ८१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थानेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

ये यहांपर संक्षेपतासे गण वर्णन किये हैं औषधोंका विस्तार चिकित्सितस्थानमें विशेष वर्णन करेंगे।दोषोंका बलाबल जानकर विचारकर (जो यह गण कहे हैं उनमेंसे) लेप या क्वाथ या तैल पकाकर या घृत या पानक (घोटकर पिलाना) जैसा जिसके लिये जो उचित हो उसे बुद्धिमान् वैद्य स्वयं प्रयोग करे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ वैद्यको चाहिये कि, विधिपूर्वक समयपर सब औषधोंका संग्रह करके घर (स्थान) में रक्खे जहां धूंवां, वर्षा, पवन, सीलह आदिसे सब ऋतुवोंमें बची रहे ॥ ८० ॥ वैद्यको उचित है कि, दोषोंके भेदोंको देखकर (समझकर) भिन्न २ गणोंका उपयोग करे । न्यारे २ एक २ गणका उपयोग करे अथवा दो या अधिक मिलाकर (ठीक जाने तो मिलाकर) उपयोग करे। समस्तगणको ठीकजाने तो सम्पूर्ण(पूरा)

(सूत्र ७८) अस्य श्लोकस्य चतुर्थं पदमग्रिमेण श्लोकेन सहान्वेतव्यम् ।

गण देवे और जो उसमेंसे (दोषों और व्याधि और देशकाल आदिके अनुसार) कुछ व्यस्त (अर्थात् न्यूनाधिक) करना चाहे तो न्यूनाधिक करके उपयोग करे ॥ ८१ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थानेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९.

अथातः संशोधनसंशमनीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे शोधन और शमन विषयमें अध्यायकी व्याख्या करते हैं ॥

वमनद्रव्य ।

मदनकुटजजीमतकेक्ष्वाकुधामार्गवकृतवेधनसर्षपविडंगपिप्पली-करंजप्रपुन्नाटकोविदारकर्बुदाराऽरिष्टाऽश्वगंधाविदुलबन्धुजीवक-श्वेताशणपुष्पीबिम्बीवचामृगेर्वारुकं चित्रा चेत्यूर्ध्वभागहराणि॥१॥

तत्र कोविदारपूर्वाणां फलानि कोविदारादीनां मूलानि ॥ २ ॥

मैनफल, इन्द्रजव, जीमूतक (बिडाल), इक्ष्वाकु (कडवी घीया तूंबी), धामार्गव (पीले फूलकी कडवी तुरई), कृतवेधन (सुपेद फूलकी कडवी तुरई), सुपेद सरसों, विडंग, पीपल, करंजवा, पवाड और कचनाल तथा कर्बुदार (श्लेष्मातक इसे कई ल्हेसुवा कहते हैं), अरिष्ट (नींब), अश्वगंधा (देशी असगंध), विदुल (वेतस), बंधुजीवक (दुपहरया), श्वेता (सुपेदवच), शणपुष्पी, बिंबी (कंदूरी), वच, मृगेर्वारुक (इंद्रायण) और चित्रा (द्रवंती) ये औषध ऊर्ध्वमार्गके (नाभिसे ऊपर हृदयके) मलको हरनेवाली हैं अर्थात् वमनकारक हैं ॥ १ ॥ इनमेंसे कचनालसे पहले कहीहुई औषधोंके फल (वमनके लिये) लेने चाहिये और कचनालको आदि ले अगाडी कही हुइयोंकी जड लेनी ॥ २ ॥

विरेचनद्रव्य ।

त्रिवृताश्यामादन्तीद्रवंतीसप्तलाशंखिनीविषाणिकागवाक्षीछग-लांत्रीस्नुक्सुवर्णक्षीरीचित्रककिणिहीकुशकाशतिल्वककम्पिल्लक-रम्यकपाटलापूगहरीतक्यामलकविभीतकनीलिनीचतुरंगुलैरंड-पूतीकमहावृक्षसप्तच्छदार्कज्योतिष्मती चेत्यधोभागहराणि ॥३॥

सुपेद और श्यामा निसोथ, दंती (जयपालमूल), द्रवंती (दंतीका भेद), सप्तला

(सूत्र १) एषा वमनद्रव्याणा मध्ये कानिचिद्द्रव्याणि साक्षाद्वमयति कानिचिद्वमनद्रव्यमिलितानीति डल्हनः। -

(सूत्र ३) एवं विरेचनद्रव्याणा मध्येपि बोध्यानि कुशकाशौ मूत्रविरेचकाविति श्यामा श्यामात्रिवृत् वृद्धदारुर्वा ।

(सातला थोहरका भेद), शंखिनी (यवतिक्ता भेद), विषाणिका (मेढासींगी), गवाक्षी (सुपेद फूलकी इंद्रायण), छगलांत्री (मरोडदार विधायरा), स्नुक् (थोहर), चोक,चित्रक, किणिही (कटभी), कुशा,काँस, तिल्वक (पतली लोध), कमेला रम्यक (टूका या पटोलमूल), पाटल, मानकचँदी, सुपारी, त्रिफला, नीली (कालादाना), चतुरंगुल (किरमाला), अरंड, पूतिकरंज, महावृक्ष (थोहरकाही भेद यहभी है), सप्तच्छद (छतोना)आक और मालकांगनी ये औषधें नीचेके भाग (पक्काशय, मलाशय और बस्ति) के मलको हरनेवाली हैं अर्थात विरेचनकारक हैं ॥ ३ ॥

तत्र तिल्वकपूर्वाणां मूलानि । तिल्वकादीनां पाटलान्तानां त्वचः । कंपिल्लफलरजः । पूगादीनामेरंडान्तानां फलानि । पूतिकारग्वधयोः पत्राणि । शेषाणां क्षीराणि ॥ ४ ॥

इनमेंसे तिल्वकसे पहले कही हुई औषधोंकी जड लेनी चाहिये और तिल्वक (लोध) से लेकर पाटलतक जितनी हैं उनकी छाल लेनी और कमेलेके फलका निकला चूरा लेना तथा पूग (सुपारी)से अरंडतकके फल लेने और करंज और आरग्वधके पत्ते लेने और बाकी जो रहे उनका दूध लेना ॥ ४ ॥

कोशातकीसप्तलाशंखिनीदेवदालीकारवेल्लिका चेत्युभयतो भागहराणि एषां स्वरसा इति ॥ ५ ॥

कोशातकी (कड़ुतोरई), सप्तला (थोहर), शंखिनी (यवतिक्ता भेद), कारवेल्लिका (करेला), देवदाली (बिडाल) ये दोनों भागोंसे मल हरणकर्ता हैं और इनका स्वरस लेना, स्वरसही दोनों भागोंसे मल हरता है अर्थात् वमन और विरेचन दोनों करता है ॥ ५ ॥

पिप्पलीविडंगाऽपामार्गशिग्रुसिद्धार्थकशिरीषमरिचकरवीरविंबीगिरिकर्णिकाकिणिहीवचाज्योतिष्मतीकरंजाऽर्काऽलर्कलशुनाऽतिविषाशृंगवेरतालीशतमालसुरसाऽर्जकेंगुदीमेषशृंगीमातुलुंगीसुरुंगीपीलुजातीशालतालमधूकलाक्षाहिंगुलवणमद्यगोशकृद्रसमूत्राणीति शिरोविरेचनानि ॥ ६ ॥

(सूत्र ५) उभयतोभागहराणि इति वमनानि विरेचनानि चेत्यर्थः—एतानि कोशातकीप्रभृतीनि नियमेनोभयतोभागहराणि गवाक्षीप्रभृतीना तु पत्रादिविशेषेण कदाचिद्वामकत्वं कदाचिद्विरेचकत्वमिति न तेषामुभयतोभागहरत्वमिति (डल्हनः)

पीपल, विडंग, अपामार्ग (चिरचरा), शिग्रु (सोहजना), सिद्धार्थक (सरसों), सिरस (काली मिरच), कनेर, कंदूरी, गिरिकर्णिका (सफेद), किणिही (कटभी), वच, ज्योतिष्मती (मालकांगनी), करंज (कंजा), आक, अलर्क (सुपेद आक), लहसन, अतीस, सोंठ (या अदरक), तालीसपत्र, तमालपत्र, सुरसा (तुलसी), अर्जक (कुटेरक), इंगुदी (हिंगोट), मेढाशींगी, मातुलुंगी (जंगली बिजोरा), मुरंगी (लालफूलका सोहजना), पीलू (पील), जाती (चंबेली), शाल, ताल (तालवृक्ष), महुवा, लाख, हींग, लवण, मदिरा, गोबरका रस और गोमूत्र ये पदार्थ शिरोविरेचन करतेहैं अर्थात् शिरके मवादको झाडनेवाले हैं ॥ ६ ॥

तत्र करवीरपूर्वाणां फलानि करवीरादीनामर्कान्तानां मूलानि । तालीशपूर्वाणां कंदाः । तालीशादीनामर्जकांतानां पत्राणि । इंगुदीमेषशृंगीत्वचौ । मातुलुंगीमुरुंगीपीलुजातीनां पुष्पाणि । शालतमालमधूकानां साराः । हिंगुलाक्षे निर्यासौ । लवणानि पार्थिवविशेषाः । मद्यान्यासवसंयोगाः । गोमूत्रशकृद्रसौ मलाविति ॥ ७ ॥

शिरोविरेचन (दिमागका मवाद झाडने) के लिये जो द्रव्य कहे उनमेंसे कनेरसे पहले जो कहे उनके फल लेने चाहिये । कनेरसे लेकर आकतककी जड लेनी। आकसे पीछे तालिशपहलेके कन्द लेने । तालीशसे लेकर अर्जकतकके पत्र लेने । तथा हिंगोट और मेढासींगीकी छाल लेनी । और मातुलुंगी, मुरंगी, पीलू और जाती इनके पुष्प लेने । तथा शाल और ताल तथा महुवा इनका सार शिरोविरेचनके अर्थ लेना । हींग और लाख ये निर्यास (गोंदकी किसमसे हैंहीं) और लवण पृथ्वीसे पैदा हुए लेने । और मद्य आसवके योगकी लेनी तथा गोमूत्र और गोबरका रस ये मल हैंही ये यथारूपही लेने ॥ ७ ॥

वातशमनवर्ग ।

संशमनान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः ॥ ८ ॥

अब शोधनवर्गके अनन्तर संशमनवर्गको अगाडी वर्णन करते हैं ॥ जो द्रव्य बिगडनेवाले या बिगडे हुए वात आदि दोषोंको बिना किसी मार्गसे निकाले और उनकी शांति करदे उसे संशमन कहते हैं ॥ ८ ॥

(सूत्र ८) संशमनानीति सम्यक् शमयतीति संशमनं सम्यक् पंचदुष्टदोषस्यानिर्हरणपूर्वक शमनम् । अदुष्टस्यानुदीरणं तथा चोक्त—"न शोधयति यद्दोषान् समान्नोदीरयत्यपि ॥ समीकरोति च क्रुद्धान् तत्संशमनमुच्यते"।दोषशब्दोत्र दोषेषु (वातादिषु)दोषकार्येषु वातादिजन्यव्याधिष्वपि वर्तते कार्ये कारणोपचारात्

तत्र भद्रदारुकुष्ठहरिद्रावरुणमेषशृंगीवलाऽतिवलाऽऽर्तगलकच्छुराशल्लकीकुबेराक्षीवीरुतरुसहचराग्निमन्थवत्सादन्येरंडाश्मभेदकालर्कार्कशतावरीपुनर्नवावसुकवसिरकांचनकभार्गीकार्पासीवृश्चिकालीपत्तूरबदरयवकोलकुलत्थप्रभृतीनि विदारिगंधादिश्च द्वे चाद्ये पंचमूल्यौ समासेन वातसंशमनो वर्गः ॥ ९ ॥

देवदारु, कूट, हलदी, बरना, मेषशृंगी (यहां काकडासींगी लेना), बला (खरेहटी), अतिबला (कंगही), आर्तगल (कुहा), कच्छुरा (कवचबीज या सूखे सेम), शल्लकी (गजभक्ष्याशालभेद), कुबेराक्षी (कठ पाटल), वीरतरु, कटसरय्या (पीयाबांसा), बडी अरणी, वत्सादनी (गिलोय), अरंड, पाषाणभेद, अलर्क (सुपेद फूलका आक), अर्क (सामान्य आक) सितावर, पुनर्नवा (साठी), वसुक (बकपुष्प), वसिर (अपामार्ग), कांचनक (धतूरा), भाडंगी, कार्पासी (वनकपास), वृश्चिकाली (मेंढासींगीका भेद), पत्तूर (पतंग), बदर (बेर), जौ, कोल (बडी बेरीके बेर) और कुलथी आदि तथा विदारिगंधादिकगण तथा आदिके दोनों पंचमूल यह संक्षेपसे वातशांतिकारक वर्ग है ॥ ९ ॥

चन्दनकुचन्दनह्रीबेरोशीरमञ्जिष्ठापयस्याविदारीशतावरीगुंद्राशैवालकह्लारकुमुदोत्पलकदलीकंदलीदूर्वामूर्वाप्रभृतीनि काकोल्यादिर्न्यग्रोधादिस्तृणपंचमूलमिति समासेन पित्तसंशमनो वर्गः ॥१०॥

चन्दन, कुचन्दन (लाल चन्दन), ह्रीबेर (नेत्रवाला), खस, मंजीठ, पयस्या (अर्कपुष्पी), विदारी (विदारीकंद), सितावरी, गुन्द्रा (गोंदी गोंदनी), सिवाल (काई), कह्लार (सुपेद कमल), कुमुद (कमोदनी पाडर), उत्पल (नील कमल या कमलमात्र), कदली (केला), कंदली (पद्मबीज कमलगट्टे या भूमिकदली), दूब और मूर्वा आदि तथा काकोल्यादिगण और न्यग्रोधादिगण और तृणपंचमूल यह संक्षेपसे पित्तशांतिकारक वर्ग है । और "मूर्वाप्रभृति" इसमें प्रभृतिशब्दसे मधुर तिक्त अन्य पित्तशामक पदार्थोंका ग्रहण है ॥ १० ॥

(सूत्र ९) मेषशृंगी मेषशृंगः पुत्रजीवकतरुसदृशपत्रो वृक्षः । अन्ये च कर्कटशृंगमाहुः । वत्सादनी गुडूची कार्येण सा वातं हंति रसेन कफपित्ते । कुलत्थप्रभृतीनीत्यत्र प्रभृतिग्रहणात् माषतिलालसीप्रभृतीनां ग्रहणं भूजलानलगुणबहुलं द्रव्य वातसंशमनमिति । (सूत्र १०) पयस्या क्षीरकाकोली इति डल्लनः तत्तु न सम्यक् काकोल्यादिगणे क्षीरकाकोलीग्रहणात्पुनरुक्तिदोषः । अत्र पयस्या अर्कपुष्पी शब्दस्तोममहानिधौ निघंटा च दर्शनात् "अर्कपुष्पी क्रूरकर्मा पयस्या जलकामुका । अर्कपुष्पी कृमिश्लेष्ममेहपित्तविकारजित् ॥" इति भावमिश्रश्च । खभूमिजलगुणभूयिष्ठं यत्तदपि पित्तघ्नम् ।

कालेयकागुरुतिलपर्णीकुष्ठहारिद्राशीतशिवशतपुष्पासरलारास्नाप्रकीर्योदकीर्येंगुदीसुमनःकाकादनीलांगलकीहस्तिकर्णमुंजातकलामज्जकप्रभृतीनि वल्लीकंटकपंचमूल्यौ पिप्पल्यादिर्बृहत्यादिर्मुष्ककादिर्वचादिः सुरसादिरारग्वधादिरितिसमासेन श्लेष्मसंशमनो वर्गः ॥ ११ ॥

कालेयक (एक प्रकारका काला चन्दन या पीतचन्दन या संदल अवियज) अगर, तिलपर्णी (हुलहुल), कूट, हलदी, शीतशिव (कपूर), शतपुष्पा (सोंफ), सरला (निसोथ), रास्ना, प्रकीर्या (कटेली), उदकीर्या (करंज), इंगुदी (हिंगोट), सुमनः (चमेली), काकादनी (काकडोडी), लांगलकी (कलिहारी), हस्तिकरण (एक पत्रभूपलाश), मुंजातक (स्वल्पकन्दवृक्ष), लामज्जक (खसका भेद), और प्रभृतिशब्दसे कटु, तिक्त, कषाय अन्य कफघ्नद्रव्य तथा वल्लीपञ्चमूल और कंटकपञ्चमूल तथा पिप्पल्यादिगण, बृहत्यादिगण, मुष्ककादिगण, वचादिगण और सुरसादिगण और आरग्वधादिगण यह संक्षेपसे कफशांतिकारक वर्ग हैं ॥ ११॥

औषधोंकी मात्राकल्पना ।

तत्र सर्वाण्येवौषधानि व्याध्यग्निपुरुषबलान्यभिसमीक्ष्य विदध्यात् । तत्र व्याधिबलादधिकमौषधमुपयुक्तं तमुपशम्य व्याधिं व्याधिमन्यमावहति । अग्निबलादधिकमजीर्णं विष्टभ्य वा पच्यते । पुरुषबलादधिकं ग्लानिमूर्च्छामदानावहति । संशमनमेवं संशोधनमपि पातयति । हीनमेभ्यो दत्तमकिंचित्करं भवति । तस्मात्सममेवं विदध्यात् ॥ १२ ॥ भवंति चात्र-

तहां सब औषध, व्याधिका बल, जठराग्निका बल और पुरुषका बल देखकर स्वल्प या विशेष मात्रा कल्पना करनी चाहिये क्योंकि जहां व्याधिके बलसे अधिक औषध उपयोग कीजाय तो वह उस व्याधिको शांत करके दूसरी किसी और (उसके विपरीत) व्याधिको उत्पन्न करेगी । और जो जठराग्निकी शक्तिसे अधिक औषध होगी तो वह विनापचे विष्टब्ध करके बहुतही देरसे पचेगी या नहीं पचेगी । और जो मनुष्यके बलसे अधिक होगी तो ग्लानि अथवा मूर्च्छा या

(सूत्र ११) तेजोऽनिलाकाशगुणभूयिष्ठं तदनुक्तमपि द्रव्य कफसशमनमिति । (सूत्र १२) अकिंचित्कर न किंचित् करोतीति अनर्थकमित्यर्थः । अथवा अकिंचित्करमल्पार्थकरमिति नञ् ईषदर्थे ।

मद उत्पन्न करेगी । संशमन औषध जिस प्रकार उपरोक्त अवगुण करती है इसी प्रकार शोधन औषधभी व्याधि, जठराग्नि और पुरुषके बलसे अधिक उपयोग कीहुई अत्यंतही हानि करती है । और व्याधिके बल, जठराग्निके बल और पुरुषके बलसे न्यून औषध दीजाय तो वह कुछ (लाभ) नहीं करती बहुतही अल्प अर्थ साधन करती है (बहुत जगह अल्प मात्रा कुछ हानिकारक भी होती है) इस कारणसे व्याधिके बल, जठराग्निके बल और पुरुषके बलके अनुसार (समान) औषधकी मात्रा कल्पना करनी चाहिये ॥ १२ ॥ इसपर श्लोक हैं कि-

रोगे शोधनसाध्ये तु यो भवेद्दोषदुर्बलः ॥ तस्मै दद्याद्भिषक् प्राज्ञो दोषप्रच्यावनं मृदु ॥ १३ ॥ चले दोषे मृदौ कोष्ठे नेक्षेतात्र बलं नृणाम् ॥ अव्याधिदुर्बलस्यापि शोधनं हि तदा भवेत् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य दोषों (वातादि रोगों) से दुर्बल हो, और उसके शोधनसाध्य रोग हो अर्थात् वमन, रेचनसे जानेवालेही रोग हों तो उसे बुद्धिमान् वैद्य मृदु वमन विरेचनादिसे दोषोंको निकाले (हलका जुल्लाव आदि दे) ॥ १३ ॥ जिसका कोठा नरम हो दोष चलायमान हो तो उसका बल नहीं देखे चाहे वह व्याधि-दुर्बल न हो (उपवासादिहीसे दुर्बल हो) तो उसे भी शोधन उचित होगा ॥ १४ ॥

व्याध्यादिषु तु मध्येषु क्वाथस्यांजलिरिष्यते ॥ विडालपदकं चूर्णं देयः कल्कोऽक्षसंमितः ॥ १५ ॥ स्वयंप्रवृत्तदोषस्य मृदुकोष्ठस्य शोधनम् ॥ भवेदल्पबलस्यापि प्रयुक्तं व्याधिनाशनम् ॥ १६ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थान एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

और जब व्याधिका बल, जठराग्नि और पुरुषका बल मध्यम हो तब क्वाथ फांटादिकी मात्रा ४ पल चाहिये और चूर्णकी मात्रा (जो तीक्ष्ण न हो) कर्षभर और कल्ककी मात्रा भी कर्षभर चाहिये ॥ १५ ॥ और जिसके दोष स्वयं प्रवृत्त हो रहे हों (निकलते हों) और कोठा मुलायम हो उस निर्बल मनुष्यके भी शोधन उपयोग करना व्याधिको नाश करता है ॥ १६ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थान एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ४०.

अथातो द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे द्रव्य और रस (मधुरादि), गुण (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मंद,

तीक्ष्णादि), वीर्य (उष्णवीर्य शीतवीर्यादि) विपाक (परिपाक) इनके विज्ञान-विषयक अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

केचिदाचार्या ब्रुवते द्रव्यं प्रधानं कस्मात् "व्यवस्थितत्वात्" इह खलु द्रव्यं व्यवस्थितं न रसादयो यथाऽऽमे फले ये रसादयस्ते पक्के न संति ॥ १ ॥

कई आचार्य कहते हैं कि (द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति इनमें) द्रव्य प्रधान है । किस २ कारणसे (प्रथम हेतु यह है) कि, व्यवस्थित (व्यवस्थावाला दृढ) होनेसे (क्योंकि) यहां (द्रव्यरसगुणवीर्यादिकमें) द्रव्यही निश्चित व्यवस्थावाला है रसादि (व्यवस्थित स्थिर) नहीं । जैसे कच्चे फलमें जो रसादिक होतेहैं पक्केमें वे नहीं रहते ॥ १ ॥

"नित्यत्वाच्च" नित्यं हि द्रव्यमनित्या गुणा यथा कल्कादिप्रविभागः स एव संपन्नरसगंधो व्यापन्नरसगंधो वा भवति ॥ २ ॥

(दूसरा हेतु) द्रव्यको नित्यत्व होनेसे (द्रव्य प्रधान है) द्रव्य निश्चय नित्य है (अर्थात् अविनाशी है) और गुण (रस आदि) अनित्य (नाशवान्) है । जैसे कल्कादिकका विभाग कि, जो कभी तो द्रव्यके समान रस और गंधवाला होताहै और कभी रस और गंधमें विकार हो जाता है । (सारांश यह कि कल्क क्वाथ पुटपाकादिकी अवस्थामेंभी द्रव्य तो जैसाका तैसा रहता है परन्तु रस और गंध बदलभी जाते हैं इससे द्रव्य नित्य है और रसगंधादि अनित्य) इसीसे द्रव्य प्रधान है ॥ २ ॥

"स्वजात्यवस्थानाच्च" यथा हि पार्थिवं द्रव्यमन्यभावं गच्छत्येवं शेषाणि ॥ ३ ॥ "पंचेन्द्रियग्रहणाच्च" पञ्चभिरिन्द्रियैर्गृह्यते द्रव्यं न रसादयः ॥४॥ "आश्रयत्वाच्च" द्रव्यमाश्रिता रसादयो भवंति ॥५॥

(सूत्र १) "द्रव्याणि" स्वतंत्रपदार्थास्तद्रूपौषधादयश्च । "रसाः" मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायाः षड्सा द्रव्याश्रयाः । "गुणाः" शीतोष्णस्निग्धरूक्षमंदतीक्ष्णगुरुलघुपिच्छलविशदश्लक्ष्णपरुषकठिनमृदुद्रवसांद्रस्थिरसरस्थूलसूक्ष्मा विंशतिः । "वीर्यम्" चाष्टविधं तद्यथा—शीतोष्णस्निग्धरूक्षविशदपिच्छलमृदुतीक्ष्णा इति विंशतिगुणानां मध्य एतेषाम् अष्टानां गुणानां वीर्यमिति संज्ञा । ननु गुणवीर्ययोः को भेदस्तत्रोच्यते य एव गुणा आमलक्यां त एव गुणा हरीतक्यामस्ति वीर्ये च विशेषः । तथाहि उष्णवीर्या हरीतकी शीतवीर्यमामलकमिति एतेनैतदुक्तं भवति द्रव्यरसगुणविपाकैर्यत्कर्म कर्तुं न शक्यते तत्कर्म कुर्वन्प्रभावो "वीर्यम्" तथाहि वीर्यं शक्तिरुत्पत्तिविशेषः सामर्थ्यं प्रभाव इति । यद्द्रव्यं परिणामकाले स्वाभाविकं रसं परित्यज्य रसांतरं भजते तत्र विपाक इति संज्ञा ।

(तीसरा हेतु) अपनी जातिमें अवस्थित रहनेसे भी (द्रव्य) प्रधान है जैसे जो पार्थिव द्रव्य है वह सब अवस्थामें पार्थिवही रहता है अन्यभावको प्राप्त नहीं होता (अर्थात् जो पार्थिव द्रव्य है वह पार्थिव ही रहता है और कभी आप्य, तैजस आदि नहीं होता) इसी प्रकार शेष आप्य, तैजस, वायवीय और नाभस आदिको जानना कि ये भी अपनी २ जातिसे पृथक् नहीं होते ॥ ३ ॥ (चौथा हेतु) पाचों इन्द्रियोंद्वारा ग्रहण होनेसे भी (द्रव्यही) प्रधान है क्यों कि द्रव्यही पाचों इंद्रियों (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण) इनसे ग्रहण किया जासकता है। और रसादिक पांचों इंद्रियोंसे ग्रहण नहीं किये जा सकते (केवल एक रसना इंद्रियसे रसका ग्रहण होता है इत्यादि) ॥ ४ ॥ (पांचवां हेतु) द्रव्य सब रसादिका आश्रय स्थान होनेसे भी (द्रव्य) प्रधान है कि द्रव्य स्वतंत्र है और रस गुण वीर्य विपाकादि सब द्रव्यके आश्रयभूत (अधीन) हैं ॥ ५ ॥

"आरंभसामर्थ्याच्च" द्रव्याश्रित आरंभो यथा विदारिगंधादिकमाहृत्य संक्षुद्य विपचेदित्येवमादिषु न रसादिष्वारंभः ॥ ६ ॥ "शास्त्रप्रामाण्याच्च" शास्त्रे हि द्रव्यं प्रधानमुपदेशे हि योगानां यथा मातुलुंगाग्निमंथौ चेति न रसादय उपदिश्यंते ॥ ७ ॥

(छठा हेतु) द्रव्यमें आरम्भका सामर्थ्य होनेसे भी (द्रव्य) प्रधान है क्योंकि क्रियाका आरंभ द्रव्यके आश्रय (अर्थात् आधीन) है । जैसे विदारीगंधा (शालपर्णी) आदिको लाकर कूटे और फिर पकावे इत्यादि सब क्रियाओंका आरंभ द्रव्यमेंही होताहै रसादिकमें किसी क्रियाकाभी आरम्भ नहीं हो सकता ॥ ६ ॥ (सातवां हेतु) शास्त्रके प्रमाणोंसे भी (द्रव्य) प्रधान है क्यों कि शास्त्रमें भी द्रव्यही प्रधान माना गया है। जैसे योगों (नुसखों) के उपदेशमें मातुलुंग (नींबू) तथा अग्निमंथ (अरनी) इत्यादि द्रव्योंहीका उपदेश किया गया है कुछ रसादिका उपदेश कहीं किसी योगमें प्रायः नहीं किया ॥ ७ ॥

"क्रमापेक्षितत्वाच्च रसादीनां" रसादयो हि द्रव्यक्रममपेक्षंते तथा तरुणे तरुणाः संपूर्णे संपूर्णा इति ॥ ८ ॥ "एकदेशसाध्यत्वाच्च द्रव्याणाम्" एकदेशेनापि व्याधयः साध्यंते यथामहावृक्षक्षीरेणेति तस्माद्द्रव्यं प्रधानम् ॥ ९ ॥

(आठवां हेतु) रसादिकोंकी द्रव्योंमें क्रमापेक्षा होनेसे भी (द्रव्य) प्रधान है अर्थात् रसादि द्रव्यके क्रमकी अपेक्षा करते हुए रहते हैं । जैसे तरुण पदार्थमें

तरुण रसादि (रस गुण वीर्यादि) होते हैं और पूर्ण (जीर्ण) में पूर्ण (जीर्ण) हो जाते हैं ॥ ८ ॥ (नवाँ हेतु) द्रव्योंके एकदेश करके साध्य होनेसे भी (द्रव्य) प्रधान है अर्थात् द्रव्योंके एक अंग करके भी व्याधि साधन की जा सकती है। जैसे महावृक्ष (थोहर) के दूधमात्रसे कई रोग (उदरव्याधि आदि) साधन होते-हैं तिससे द्रव्यही प्रधान है ॥ ९ ॥

द्रव्यलक्षणं तु क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति ॥ १० ॥

द्रव्यके लक्षण-क्रिया और गुणवाला और क्रिया गुणका समवायिकारण द्रव्य होता है (जिस कारणमें कार्यका समवायसम्बन्ध अर्थात् नित्यसम्बन्ध हो वह उसका समवायिकारण कहलाता है। जैसे वस्त्रका समवायिकारण तंतु (तार) और घटका समवायिकारण मृत्कपाल इत्यादि) ॥ १० ॥

रसकी प्रधानता।

नेत्याहुरन्ये रसास्तु प्रधानं कस्मात् "आगमात्" आगमो हि शास्त्रमुच्यते शास्त्रे हि रसा अधिकृता तथा रसायत्त आहार इति तस्मिंश्च प्राणाः ॥ ११ ॥

ऊपर जो द्रव्य प्रधान कहा है उसे और कई आचार्य नहीं मानते वे कहते हैं कि रसही प्रधान है क्योंकि (प्रथम हेतु) आगमसे (रस) प्रधान है। और आगमही शास्त्र है और आगम(शास्त्र)में रसही अधिकार किये हैं। जैसे लिखा है कि रसोंके अधीन आहार है और आहार रसमेंही प्राण रहते हैं ॥ ११ ॥

"उपदेशाच्च" उपदिश्यंते हि रसा यथा मधुराम्ललवणा वातं शमयंति ॥१२॥ "अनुमानाच्च" रसेन ह्यनुमीयते द्रव्यं यथा मधुरमिति ॥१३॥ "ऋषिवचनाच्च" ऋषिवचनं वेदो यथा किंचिदिज्यार्थं मधुरमाहरेदिति ॥ १४ ॥ तस्माद्रसाः प्रधानं रसेषु गुणसंज्ञा रसलक्षणमन्यत्रोपदेक्ष्यामः ॥ १५ ॥

(सूत्र ११) रस्यते आस्वाद्यते रसनेन्द्रियेण माधुर्य्यादिभेदेन स रसः। (सूत्र १४) ऋषिवचनाद्वेदवाक्यात्। ऋषिर्वेदे मन्त्रद्रष्टरि मुनौ अनुष्ठेयकर्मज्ञापकसूत्रकृदाचार्ये चेति (शब्दस्तोम०) (सूत्र १५) द्रव्यरसप्राधान्यकथनवत् गुणप्राधान्यं किमपि नोक्तमित्याह रसेषु गुणसंज्ञा इत्यत्रादिशब्दो लुप्तो द्रष्टव्य एतेनैतदुक्तं भवति रसादिप्राधान्येन रसवीर्यविपाकप्राधान्येनैव ख्यापितेन गुणप्राधान्यं साधितं भवति। वस्तुतस्तु द्रव्यस्य रसे वीर्ये विपाके च यत्फलं स एव गुणः। अथवा विंशतिगुणा द्रव्यरसवीर्यविपाकाश्रया इति।

(दूसरा हेतु) उपदेशसे (रस) प्रधान है रसोंका भी उपदेश किया जाता है। जैसे मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा) और लवण (नमकीन) रस वायुको शांत करते हैं ॥ १२ ॥ (तीसरा हेतु) अनुमानसे भी (रस) प्रधान है। क्योंकि द्रव्य रसहीसे अनुमान किया जाता है। जैसे यह मीठा है या खट्टा है इत्यादि ॥ १३ ॥ (चौथा हेतु) ऋषिवाक्यसे भी (रस) प्रधान है और ऋषिवचन वेद है (उसमें है कि) जैसे यज्ञके अर्थ कुछ मधुर (मीठा) लावो इत्यादि ॥ १४ ॥ इन कारणोंसे रस प्रधान है और रसादिहीमें गुण संज्ञा है इससे गुणकी प्रधानतामें बहुत कुछ नहीं कहा रसके लक्षण और जगह वर्णन किये जायँगे ॥ १५ ॥

वीर्यकी प्रधानता।

नेत्याहुरन्ये । वीर्यप्रधानमिति कस्मात् "तद्वशेनौषधकर्म निष्पत्तेः" ॥ १६ ॥ इहौषधकर्माण्यूर्ध्वाधोभागोभयभागसंशोधनसंशमनसंग्राहकाग्निदीपनप्रपीडनलेखनबृंहणरसायनवाजीकरणश्वयथुकरविलयनदहनदारणमादनप्राणघ्नविषप्रशमनानि वीर्यप्राधान्याद्भवन्ति ॥ १७ ॥

ऊपर जो द्रव्य और रसकी प्रधानता कही इसे और कई आचार्य नहीं मानते वे कहते हैं कि, वीर्य प्रधान है क्योंकि (प्रथम हेतु) उस वीर्यके वश औषधोंके कर्मकी सिद्धि होनेसे (वीर्य) प्रधान है ॥ १६ ॥ यहांपर औषधोंके कर्म ये है कि ऊर्ध्वभाग संशोधन, अधोभाग संशोधन, उभयभाग संशोधन, संशमन (दोषोंको शमन करना), संग्राहण (ग्राही होना), जठराग्नि दीपन करना, प्रपीडन (पीडन करना), लेखन (धातु आदिको सुखाकर कृश करना), बृंहण (शरीरवृद्धि करना), रसायन (अवस्था स्थापन करना बुढापा नाश करना), वाजीकरण (मैथुनशक्ति बढाना), श्वयथुकर (शोथकारकता), विलयन (शोथ हटाना), दहन (जला देना), दारण (औषधसे व्रण तोडना), मादन (मद उत्पन्न करना), प्राणनाश करना तथा विषशांति करना इत्यादि ये सब कर्म वीर्यकी प्रधानतासे होते हैं ॥ १७ ॥

तच्च वीर्यं द्विविधमुष्णं शीतं चाग्नीषोमीयत्वाज्जगतः ॥ १८ ॥ केचिदष्टविधमाहुरुष्णं शीतं स्निग्धं रूक्षं विशदं पिच्छलं मृदु तीक्ष्णं चेत्येतानि वीर्याणि स्वबलगुणोत्कर्षाद्रसमभिभूयात्कर्म कुर्वन्ति ॥ १९ ॥

यह वीर्य दो प्रकारका है-उष्णवीर्य तथा शीतवीर्य, क्योंकि समस्त जगत् अग्निसोमात्मक (गरम या शीतल) है इस कारणसे दो प्रकारका (वीर्य) है ॥ १८ ॥ कई आचार्य आठ प्रकारका वीर्य मानते हैं गरम, शीतल, चिकना (तर), रूखा (खुश्क), विशद (हलका), पिच्छल (भारी या गाढा), मृदु (कोमल), तीक्ष्ण (तेज) ये आठ प्रकारके वीर्य अपने बल और गुणकी उत्कर्षतासे रसको निरादर कर (परित्यागकर) के अपने २ कर्म करते हैं ॥ १९ ॥

यथा तावन्महत्पञ्चमूलं काषायं तिक्तानुरसं वातं शमयेदुष्णवीर्यत्वात् तथा कुलत्थः कषायः कटुकः पलाण्डुः स्नेहभावाच्च । मधुरश्चेक्षुरसो वातं वर्द्धयति शीतवीर्यत्वात् ॥ २० ॥

जैसे बृहत्पंचमूल कसेला रस और कडुवा अनुरस होकर वायुको शांतही करता है, उष्णवीर्य होनेसे वैसेही कुलथी, कषाय रस और प्याज चर्परी होकर स्निग्धवीर्य होनेसे वायुको शांत करते हैं । और ईखका रस मीठा होकर भी शीतवीर्य होनेसे वायुको बढाता है ॥ २० ॥

कटुका पिप्पली पित्तं शमयति मृदुशीतवीर्यत्वादम्लमामलकं लवणं सैंधवं च । तिक्ता काकमाची पित्तं वर्द्धयत्युष्णवीर्यत्वान्मधुरा मत्स्याश्च ॥ २१ ॥ कटुकं मूलकं श्लेष्माणं वर्द्धयति स्निग्धवीर्यत्वात् । अम्लं कपित्थं श्लेष्माणं शमयति रूक्षवीर्यत्वान्मधुरं क्षौद्रं च । तदेतन्निदर्शनमात्रमुक्तम् ॥२२॥ भवंति चात्र--

पीपल (गीली) चरपरी होकर भी कोमल और शीतवीर्य होनेसे पित्तको शांत करती है।और खट्टा आंवला, लवणरस और सैंधानमक भी शीतवीर्य होनेसे पित्तको शांत करते हैं । और कडवी काकमाची (मकोह) उष्णवीर्य होनेसे पित्तको बढाती है । इसी भांति मछली मीठारस होकर भी उष्णवीर्य होनेसे पित्तको बढाती है ॥ २१ ॥ मूली चरपरी होकर भी स्निग्धवीर्य होनेसे कफको बढाती है । तथा कैथ खट्टा होकर भी और शहत मीठा होकर भी रूक्षवीर्य होनेसे कफको शांत करते हैं । यह थोडासा निदर्शनमात्र वर्णन करदिया गया है इसी प्रकार प्रायः अन्यत्रभी समझना ॥ २२ ॥ यहांपर श्लोक हैं--

ये रसा वातशमना भवंति यदि तेषु वै ॥ रौक्ष्यलाघवशैत्यानि न ते हन्युः समीरणम् ॥ २३ ॥ ये रसाः पित्तशमना भवंति

(सूत्र २३) ये रसा वातशमना मधुराम्ललवणाः । (सूत्र २४) पित्तशमना रसा मधुरतिक्तकषायाः।

यदि तेषु वै ॥ तैक्ष्ण्यौष्ण्यलघुताश्चैव न ते तत्कर्मकारिणः॥२४॥ ये रसाः श्लेष्मशमना भवंति यदि तेषु वै ॥ स्नेहगौरवशैत्यानि बलासं वर्द्धयंति ते ॥ तस्माद्वीर्यं प्रधानमिति ॥ २५ ॥

जो रस वायुके शांति करनेवाले हैं यदि उनमें रूक्षता (खुश्की) तथा लघुता (हलकापन) और ठंढापन हो तो वे वायुको शांत नहीं कर सकते ॥ २३ ॥ और जो रस पित्तको शांति करनेवाले हैं उनमें यदि तीक्ष्णता, उष्णता और लघुता हो तो वे अपना कार्य नहीं कर सकते अर्थात् पित्तकी शांति नहीं कर सकते ॥ २४ ॥ ऐसेही जो रस कफके शांति करनेवाले हैं उनमें यदि स्निग्धता (चिकनाई) और गौरव (भारीपना) तथा शीतलता हो तो वे उलटे कफके बढानेवाले होते हैं (कफकी शांति नहीं कर सकते) । इस कारणसे वीर्यही प्रधान है ॥ २५ ॥

विपाककी प्रधानता ।

नेत्याहुरन्ये । विपाकः प्रधानमिति कस्मात् "सम्यङ्मिथ्याविपाकत्वात्" इह सर्वद्रव्याण्यभ्यवहृतानि सम्यङ्मिथ्याविपकानि गुणं दोषं वा जनयंति ॥ २६ ॥

ऊपर कहे हुए द्रव्य, रस अथवा वीर्यके प्रधानत्वको और कई आचार्य नहीं मानते । वे ऐसा कहते हैं कि, विपाकही प्रधान है क्योंकि ठीक या मिथ्या सबका विपाक होनेसे विपाकही प्रधान है कि सब पदार्थ सेवन किये हुए ठीक या मिथ्या विपाक हुए गुण अथवा दोषको उत्पन्न करते हैं अर्थात् सम्यक् पके हुए गुण और अन्यथा पके हुए दोष पैदा करते हैं ॥ २६ ॥

विपाकनिर्णय ।

तत्राहुरन्ये प्रतिरसं पाक इति । केचित्त्रिविधमिच्छंति मधुरमम्लं कटुकं चेति । तत्तु न सम्यक् भूतगुणादागमाच्चाम्लो विपाको नास्ति । पित्तं हि विदग्धमम्लतामुपैत्य ग्नेर्मन्दत्वात् यद्येवं लवणोऽप्यन्यः पाको भविष्यति श्लेष्मा हि विदग्धो लवणतामुपैति २७ ॥

इसमें कई आचार्य ऐसा कहते हैं कि प्रतिरसही पाक है और कई तीन प्रकारका पाक कहते हैं । कि १ मधुर, २ अम्ल, ३ कटु (चरपरा) सो यह तीन

(सूत्र२५) श्लेष्मशमना रसाः कटुतिक्तकषायाः । (सूत्र२६) सम्यङ्मिथ्याविपकानि गुण दोषं वा जनयन्तीत्यत्र वामनीयद्रव्याणि वर्जयित्वा ज्ञेयः । वामनीयद्रव्याणि तु विपाकात्पूर्वमेव वमनगुणं जनयतीति।

प्रकारका विपाक कहना ठीक नहीं क्योंकि पृथिव्यादि पंच महाभूतोंके गुणोंसे और शास्त्रसे अम्ल (खट्टा) विपाक सिद्ध नहीं होता और जो ऐसे हो कि पित्त विदग्ध होकर अग्निकी मन्दतासे अम्लताको प्राप्त होता है इससे अम्ल विपाक माने तो चौथा लवण (खारा) विपाक और (ग्रहण करना) होगा क्योंकि कफ विदग्ध होकर लवण (नमकीन) भावको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

मधुरो मधुरस्याम्लोऽम्लस्यैवं सर्वेषामिति केचिदाहुर्दृष्टांतं चोपदिशंति । यथा तावत् क्षीरं स्थालीगतमभिपच्यमानं मधुरमेवं स्यात्तथा शालियवमुद्गादयः प्रकीर्णाः स्वभावमुत्तरकालेपि न परित्यजन्ति तद्वदिति ॥ २८ ॥

जो प्रतिरस (एक रसका अनुरस) को पाक कहते हैं कि मधुरका मधुर और अम्लका अम्ल और इसी प्रकार सब रसोंका वही प्रतिरस विपाक होता है वे दृष्टांत देते हैं कि, जैसे आदिमें मीठा (दूध) पात्रमें पका हुआभी मीठाही होता-है । उसी प्रकार तंदुल, जव, मूंग आदि फुटकड सब पदार्थ उत्तरकालमें (पाक-समय पर) भी अपने स्वभावको नहीं छोडते ऐसे जानना चाहिये कि, जठराग्नि-पक्वभी अपने अपने माधुर्यादिको नहीं छोडते ॥ २८ ॥

केचिद्वदंत्यबलवंतो बलवतां वशमायांतीत्येवमनवस्थितिस्तस्मादसिद्धांत एषः ॥ २९ ॥

और कोई कहते हैं कि, मधुरादिमें जो निर्बल होते हैं वे पाककालमें बलवान्के वशमें आजाते हैं । और उन्हींके अनुसार विपाकसमयमें (रसादिक) होते हैं इत्यादि सब बातें अव्यवस्थित हैं । इससे ये सब (उपरोक्त विपाकविषयक) बातें सिद्धांत नहीं हैं ॥ २९ ॥

विपाकसिद्धांत ।

आगमे हि द्विविध एव पाको मधुरः कटुकश्च तयोर्मधुराख्यो गुरुः कटुकाख्यो लघुरिति । तत्र पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां द्वैविध्यं भवति । गुणसाधर्म्याद्गुरुता लघुता च पृथिव्यापश्च गुर्व्यः शेषाणि लघूनि तस्माद् द्विविध एव पाक इति ॥ ३० ॥ भवन्ति चात्र—

(सूत्र २८) प्रतिरसप के दृष्टांतं चोपदिशतीति । (सूत्रं ३०) सम्यग्विपक्काना सर्वेषा मधुरो विपाकः । मिथ्याविपक्काना च कटुक इति केचिन्मन्यते ।

(विपाक कितने प्रकारका है इसका सिद्धांत धन्वंतरिजी कहते हैं) शास्त्रसे दो प्रकारका विपाक सिद्ध है १ मधुर और २ कटुक (चरपरासा) उनमेंसे मधुर (मीठा) विपाक भारी (अधोगामी ठीक २ होनेसे) होता है और कटुक लघु या हलका (ऊपर ही रहते कलेजेमें धराहीसा रहनेसे) होता है। गुणोंकी साधर्म्य-तासे पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पंचमहाभूतोंके दो भेद होते हैं । १ गुरुता (भारीपन) और २ लघुता (हलकापन) जिनमें पृथिवी और जल गुरु (भारी शीघ्र अधोगामी) हैं और शेष अग्नि, वायु और आकाश लघु (हलके, ऊर्ध्व-गामी तथा बहुत देरसे या अन्य पृथिव्यादिके संपर्कसे अधोगामी) होते हैं इससे विपाक दो ही प्रकारका है। अर्थात् पार्थिव और आप्य पदार्थोंका मधुर । और तैजस, वायवीय तथा नाभस पदार्थोंका कटुक यही विपाकका सिद्धांत है ॥ ३० ॥
इस विषयमें श्लोक हैं-

द्रव्येषु पच्यमानेषु येष्वंबुपृथिवीगुणाः॥निर्वर्तन्तेधिकास्तत्र पाको मधुर उच्यते ॥ ३१ ॥ तेजोनिलाकाशगुणाः पच्यमानेषु तेषु ते॥ निर्वर्तन्तेधिकास्तत्र पाकः कटुक उच्यते ॥ ३२ ॥

पचनेवाले द्रव्योंमें यदि जल और पृथिवीके गुण अधिक वर्तमान हों तो मधुर विपाक होता है ॥ ३१ ॥ और यदि पचनेवाले पदार्थोंमें अग्नि, वायु और आकाशके गुण विशेष वर्तमान हों तो विपाक कटुक (चरपरा) होगा ॥ ३२ ॥

(द्रव्य, रस, गुण, वीर्य और विपाक इनके सारांशमें धन्वंतरिजीका मत)

पृथङ्निदर्शिनामेष वादिनां वादसंग्रहः ॥ चतुर्णामपि सामर्थ्य-मिच्छंत्यत्र विपश्चितः ॥३३॥ तद् द्रव्यमात्मना किंचित्किंचिद्वी-र्येण सेवितम्॥किंचिद्रसविपाकाभ्यां दोषं हंति करोति वा॥३४॥

पृथक् २ दृष्टि (और मत) वाले आदि (आचार्योंके) वाद विवादका यह संग्रह (कोई द्रव्यको, कोई रसको, कोई वीर्यको, कोई विपाकको प्रधान मानते हैं सो) यहां लिखा परंच बुद्धिमान् चारोंकी सामर्थ्यको मानते हैं ॥ ३३ ॥ जैसे-कहीं सेवन किया हुआ कोई द्रव्य अपने ही (द्रव्यात्मक) प्रभाव करके, कहीं वीर्य करके, कहीं कोई रस करके और कोई कहीं विपाक करके दोषोंको नाश करते अथवा उत्पन्न करते हैं ॥ ३४ ॥

पाको नास्ति विना वीर्याद्वीर्यं नास्ति विना रसात् ॥ रसो नास्ति विना द्रव्याद्द्रव्यं श्रेष्ठमतः स्मृतम् ॥ ३५ ॥

वीर्यके विना विपाक नहीं होता, रसके विना वीर्य नहीं होता और द्रव्यके विना रस नहीं हो सकता इससे द्रव्य ही सबसे मुख्य (प्रधान) है ॥ ३५ ॥

जन्म तु द्रव्यरसयोरन्योन्यापेक्षकं स्मृतम् ॥ अन्योन्यापेक्षकं जन्म यथा स्याद्देहदेहिनोः ॥ ३६ ॥ वीर्यसंज्ञा गुणा येऽष्टौ तेऽपि द्रव्याश्रया मताः ॥ रसेषु न वसंत्येते निर्गुणास्तु गुणाः स्मृताः ॥ ३७ ॥ द्रव्ये द्रव्याणि यस्माद्धि विपचंते न षड्रसाः ॥ श्रेष्ठं द्रव्यमतो ज्ञेयं शेषा भावास्तदाश्रयाः ॥ ३८ ॥

द्रव्य और रसका जन्म अन्योन्यापेक्षक (एक दूसरेके आश्रित) है, जैसे शरीर और आत्माका जन्म अन्योन्यापेक्षक है अर्थात् जैसे शरीर विना आत्मा नहीं प्रगट हो सकता और आत्मा (जीव) के विना शरीर नहीं । वैसेही द्रव्यके विना रस नहीं और रसके विना द्रव्य नहीं ॥ ३६॥ और जो आठ गुण वीर्यसंज्ञक हैं वे भी द्रव्यकेही आश्रित हैं । और वीर्यसंज्ञक आठ गुणोंके अतिरिक्त जो सूक्ष्मादि २० गुण हैं (अपिशब्द करके) वे भी द्रव्याश्रितही हैं रसोंमें नहीं रह सकते । क्योंकि रस भी गुणही है और गुणमें गुण नहीं होते इससे निर्गुण हैं किंतु गुण द्रव्योंहीमें रहते हैं ॥ ३७ ॥ द्रव्य (अर्थात् द्रव्यात्मक पंचतत्त्वात्मक शरीर) में द्रव्यही विपाकको प्राप्त होते (आहारद्रव्यही पचते) हैं । छह रस नहीं पकते हैं इससे भी द्रव्यही श्रेष्ठ (प्रधान) है । और शेष रस, गुण, वीर्य, विपाकादिक द्रव्यके आश्रितरूप भाव हैं ॥ ३८ ॥

अमीमांस्यान्यचिंत्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ॥
आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ ३९ ॥

मीमांसा (निर्णय) करनेमें जो नहीं आवे और चिंतवन करनेमें नहीं आवे ऐसी स्वभावसे प्रसिद्ध औषधी आगम (शास्त्र) के वाक्योंहीसे चतुर वैद्योंको उपयोग करनी चाहिये । (तात्पर्य यह कि बहुतसी औषधें ऐसी हैं कि किसी युक्तिसे भी उनमें वह गुण सिद्ध नहीं होता जो गुण वे करती हैं तो वहां उनके स्वभावकी प्रसिद्धि शास्त्रके वाक्योंहीसे मानी जाती है) ॥ ३९ ॥

(सूत्र ३६) अन्योन्यापेक्षकमन्योन्याश्रितम् । देहः शरीर देही आत्मा । (सूत्र ३७) वीर्यसंज्ञा चाष्टौ गुणा अपिशब्दादन्येपि स्थूलसूक्ष्मादयः । रसादयो अपि गुणा गुणेषु गुणा न वसति किंतु गुणास्तु निर्गुणा एव–गुणास्तु सर्वथैव द्रव्याश्रया इति । (सूत्र ३८) द्रव्ये पचभूतात्मके देहे–आहारद्रव्याणि विपचंते (इति डल्लनः) (पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि नवैव द्रव्याणि इति नैयायिकाः)

प्रत्यक्षलक्षणफलाः प्रसिद्धाश्च स्वभावतः ॥ नौषधीर्हेतुभिर्विद्वान् परीक्षेत कथंचन ॥ ४० ॥ सहस्रेणापि हेतूनां नाम्बष्ठादिर्विरेचयेत् ॥ तस्मात्तिष्ठेत्तु मतिमानागमे न तु हेतुषु ॥ ४१ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

जिन औषधोंके प्रत्यक्ष लक्षण हों, प्रत्यक्ष फल हों और स्वभावसे प्रसिद्ध हो उन औषधोंको हेतुवों करके कभी विद्वान् वैद्य परीक्षा न करे (और संदेह तथा विचार न करे) ॥ ४० ॥ क्योंकि हजारों हेतुकरके (तर्क वितर्क करके) भी अम्बष्ठादिक गण विरेचन नहीं कर सकता इस कारण बुद्धिमान् वैद्य (प्रसिद्ध औषधोंके विषयमें) आगम(शास्त्र)के वाक्यों तथा प्रामाणिक वचनोंमें स्थित रहे हेतुवोंमें स्थित न हो अर्थात् हेतु ढूँढनेमें शिर न पचावे ॥ ४१ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवैद्यवि० सुश्रुतसं० भा०टी० सूत्रस्थाने चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१.

अथातो द्रव्यविशेषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे द्रव्यविशेषविज्ञानीय (द्रव्यों औषधोंका विशेष विज्ञान कि यह पार्थिव है, या आप्य, या आग्नेय, वायव्य या नाभस इत्यादिके विषयमें) अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशानां समुदायाद्द्रव्याभिनिर्वृत्तिरुत्कर्षस्त्वभिव्यंजको भवतीदं पार्थिवमिदमाप्यमिदं तैजसमिदं वायव्यमिदमाकाशीयमिति ॥ १ ॥

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पांच तत्त्वोंके समुदाय (संयोग)से पदार्थोंकी उत्पत्ति होती है परन्तु किसी एककी उत्कर्षताका प्राकट्य अवश्य होता है (और जिसमें जिसकी उत्कर्षता होती है वह उसीका तदीय कहलाता है) जैसे यह पार्थिव (पृथिवीकी उत्कर्षतावाला) है । यह आप्य (जलकी उत्कर्षतावाला) है । यह तैजस (अग्निकी उत्कर्षतावाला) है । यह वायव्य (वायुकी उत्कर्षतावाला) है और यह आकाशीय (आकाशतत्त्वकी उत्कर्षतावाला) है ॥ १ ॥

पार्थिवके लक्षण ।

तत्र स्थूलसारसान्द्रमंदस्थिरखरगुरुकठिनगंधबहुलमीषत्कषा-

(सूत्र १) द्रव्याभिनिर्वृत्तिः द्रव्यजन्म । अभिव्यंजकोऽभिव्यापकः प्राकट्यकृच्च ।

यं प्रायशो मधुरमिति पार्थिवं तत् स्थैर्यबलसंघातोपचयकरं विशेषतश्चाधोगतिस्वभावमिति ॥ २ ॥

इनमें जो स्थूल (मोटा), सार (मजबूत), सांद्र (गाढा), मन्द, स्थिर (निश्चल), खर(खरदरा या कठोर), गुरु (भारी), कठिन (कडा) और जिसमें गंध बहुत हो कुछ २ कसेला हो विशेष करके मीठा हो वह पार्थिव होता है। और वह पार्थिव पदार्थ स्थिरता, बल, संघात (काठिन्य), उपचय (शरीरवृद्धि) करनेवाला होता है। और विशेषकर इस पार्थिव द्रव्यका अधोगमनवाला स्वभाव होता है ॥ २ ॥

आप्यके लक्षण ।

शीतस्तिमितस्निग्धमंदगुरुसरसांद्रमृदुपिच्छलरसबहुलमीषत्कषायाम्ललवणं मधुररसप्रायमाप्यं तत् स्नेहनप्रह्लादनक्लेदनबंधनविष्यंदनकरमिति ॥ ३ ॥

शीतल, स्तिमित (गीला), चिकना, मन्द, भारी, सर (फैलनेवाला), सांद्र (गाढा), मृदु (मुलायम), पिच्छल (लहसलहसा) और रसकी अधिकतावाला, कुछ २ कसेला, खट्टा, खारी रसवाला और अधिक मीठे रसवाला आप्य (जलसम्बन्धी) पदार्थ होता है। वह आप्य पदार्थ स्नेहन (चिकनाई), प्रह्लादन (सुखकी उत्पत्ति), क्लेदन (गीलापन) और बांधना, इकट्ठा करना तथा विष्यंदन (द्रवता) ये कार्य करता है ॥ ३ ॥

तैजसपदार्थके लक्षण ।

उष्णतीक्ष्णसूक्ष्मरूक्षखरलघुविशदं रूपगुणबहुलमीषदम्ललवणं कटुकरसप्रायं विशेषतश्चोर्द्ध्वगतिस्वभावमिति तैजसं तद्दहनपचनदारणतापनप्रकाशनप्रभावर्णकरमिति ॥ ४ ॥

जो पदार्थ गरम, तीक्ष्ण, सूक्ष्म (महीन प्रवेश करनेवाला), खरदरा, लघु (हलका), विशद (साफ या उज्ज्वल) और रूप गुणकी अधिकतावाला कुछ २ खट्टा नमकीन और विशेष कर कटुक (चरपरे) रसवाला हो. तथा विशेष ऊर्ध्वगमनके स्वभाववाला हो वह तैजस अर्थात् अग्नितत्त्वकी उत्कृष्टतावाला होता है। वह तैजस पदार्थ (ये २ कार्य करता है) दहन (जलाना), पकाना, पचाना, दारण (विदारण करना) तापन (तपाना), प्रकाश करनेवाला, कांति और वर्ण करनेवाला होता है ॥ ४ ॥

वायवीयद्रव्यलक्षण ।

सूक्ष्मरूक्षखरशिशिरलघुविशदं स्पर्शबहुलमीषत्तिक्तं विशेषतः

कषायमिति वायवीयं तद्वैशद्यलाघवग्लपनविरूक्षणविचारणकरमिति ॥ ५ ॥

जो द्रव्य सूक्ष्म (बारीक), खरदरा, ठण्ढा, हलका, उज्ज्वल और स्पर्श गुणकी अधिकतावाला कुछ २ कडवा और विशेषकर कसेला हो वह वायवीय (वायुतत्त्वकी उत्कृष्टतावाला) होता है। वह वायवीय द्रव्य वैशद्य (उज्ज्वलता), हलकापन, ग्लपन (ग्लानि या अतृप्यत्व), विरूक्षण (रूखापान), विचारण (मनमें अनेक कल्पनाकरना) ये कार्य करता है ॥ ५ ॥

आकाशीयद्रव्य ।

श्लक्ष्णसूक्ष्ममृदुव्यवायिविविक्तमव्यक्तरसं शब्दबहुलमाकाशीयं तन्मार्दवशौषिर्यलाघवकरमिति ॥ ६ ॥

जो पदार्थ श्लक्ष्ण (फुल्लित), सूक्ष्म (बारीक), कोमल, व्यवायि (पहले शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पचनेवाला), विविक्त (न्यारा न्यारा होनेवाला), अव्यक्त (अप्रगट) रसवाला और शब्दकी बाहुल्यतावाला हो वह आकाशीय (आकाशतत्त्वकी उत्कृष्टतावाला) होता है। वह आकाशीयद्रव्य मृदुता (कोमलता), शौषिर्य (छिद्रकरना, प्रवेश करना) लघुता ये कार्य करनेवाला होताहै॥ ६॥

द्रव्यप्रयोजन ।

अनेन निदर्शनेन नानौषधीभूतं जगति किंचिद्द्रव्यमस्तीति कृत्वा तं तं युक्तिविशेषमर्थं वाभिसमीक्ष्य स्ववीर्यगुणयुक्तानि द्रव्याणि कर्मकराणि भवंति ॥ ७ ॥

इस निदर्शनमात्र कहनेसे तात्पर्य यह है कि, जगत्में कोई भी द्रव्य (स्थावर, जंगम) औषधसे पृथक् नहीं है अर्थात् सब (स्वेदज, अण्डज, जरायुज और उद्भिज्ज) औषध हो सकते हैं ऐसे मनमें धारणा करके समझे कि उसी उस विशेष अर्थको देखकर स्ववीर्य गुणयुक्त द्रव्य (अपने अष्टविधवीर्य और बीस प्रकारके गुणोंके अनुसार नियुक्त किये हुए औषधादि) कार्यके करनेवाले होते हैं ॥ ७ ॥

तानि यदा कुर्वंति स कालः यत्कुर्वन्ति तत्कर्म येन कुर्वंति तद्वीर्यं यत्र कुर्वंति तदधिकरणं यथा कुर्वंति स उपायो यन्निष्पादयति तत् फलमिति ॥ ८ ॥

वे द्रव्य (औषधादि) जब अपना कार्य करें वह काल कहलाता है। और जो कुछ वे करें उसे कर्म कहते हैं। जिससे कार्य करें वह वीर्य है। जहां प्रभाव करें

वह अधिकरण है। जिस प्रकार करें वह उपाय है। और परिणाम जो कुछ सुख-दुःखादि निष्पादन करें वह फल कहलाता है ॥ ८ ॥

तत्र विरेचनद्रव्याणि पृथिव्यंबुगुणभूयिष्ठानि पृथिव्यापो गुर्व्यो गुरुत्वादधो गच्छन्ति तस्माद्विरेचनमधोगुणभूयिष्ठमनुमानात्॥९॥

इनमेंसे विरेचन द्रव्य (निसोथआदि) पृथिवी और जलगुणकी उत्कृष्टतावाले होते हैं। और पृथ्वी और जल भारी होते हैं और भारी होनेसे अधोगमन करते-हैं (नीचेको जाते हैं) इससे विरेचन (द्रव्य) अधोगुणकी अधिकतावाले होते हैं। अनुमानसे ऐसा जाना जाता है ॥ ९ ॥

वमनद्रव्याण्यग्निवायुगुणभूयिष्ठान्यग्निवायू हि लघू लघुत्वाच्च तान्यूर्ध्वमुत्तिष्ठंति तस्माद्वमनमप्यूर्ध्वगुणभूयिष्ठमुक्तम्। उभयगुणभूयिष्ठमुभयतोभागम् ॥ १० ॥

और वमनद्रव्य (मैनफलआदि कै लानेवाली औषध) अग्नि और वायुके गुणोंकी उत्कृष्टतावाली होती हैं। और अग्नि वायु दोनोंही हलके हैं और हलके होनेसे ऊपरको गमन करती है इस कारण वमन भी ऊर्ध्वगुणकी उत्कृष्टतावालाही कहा है (ऐसा अनुमान होता है) और जिस पदार्थमें दोनों प्रकारके गुण हों (अधोगामी और ऊर्ध्वगामी) तो वे दोनों तरफ गमन करते हैं अर्थात् विरेचन और वमन दोनों लाते हैं ॥ १० ॥

आकाशगुणभूयिष्ठं संशमनम्। संग्राहकमनिलगुणभूयिष्ठमनिलस्य शोषणात्मकत्वात्। दीपनमाग्निगुणभूयिष्ठम्। लेखनमनिलानलगुणभूयिष्ठम्। बृंहणं पृथिव्यंबुगुणभूयिष्ठम्। एवमौषधकर्माण्यनुमानात्साधयेत् ॥ ११ ॥ भवन्ति चात्र—

(सूत्र ९) त्रिवृता मदनफलादिद्रव्यसमेता ग्राह्या। गुरुत्वं लघुत्वं चेद् प्रभावविशेषाधिष्ठितं नतु मात्रापरिमाणाभ्यां गुरुत्वलघुत्वे ग्राह्ये। अधो गच्छंति पाषाणादिवत्। (सूत्र १०) ऊर्ध्वमुपतिष्ठंति धूमादिवत्।

(वक्तव्य सूत्र ९। १०) यहांपर जो गुरुत्व और लघुत्वका ग्रहण है वह गुरुत्वलघुत्व औषधोंके प्रभावमे होनेसे विरेचन और वमनकारक होते है कुछ औषधोके परिमाण (वजन) और मात्रामे गुरुत्व लघुत्व नहीं जानना कि यह वजनमें भारी है तो अधोगामी होकर विरेचन करेगी अथवा वजनमे हलकी है तो ऊर्ध्वगामी होगी और वमन करावेगी।

(सूत्र ११) संशमनलक्षणं तु प्राड् निदर्शितम्। संग्राहक ग्राहि तस्य लक्षणं—'दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम्। ग्राहि तच्च' इति। दीपनलक्षणं—'पचेन्नाम वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिशि' इति। लेखनलक्षणं—'धातून्मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत्। लेखनं तत्' इति। बृंहणलक्षणं—'शरीरवृद्धिकरणं धातुपुष्टिकरं च यत्। तद्बृंहणम्' इति।

आकाशगुणकी उत्कृष्टतावाला द्रव्य संशमन (दोषोंको शमन करनेवाला) होता है । वायुके गुणोंकी उत्कृष्टतावाला संग्राहक (काविज) होता है । क्योंकि वायु शोषण होनेसे यह भी शोषण होता है । अग्निके गुणकी उत्कृष्टतावाला दीपन होता है । वायु और अग्निके गुणकी उत्कृष्टतावाला द्रव्य लेखन (धातुमलोंको सुखाकर कृश करनेवाला) होता है । और पृथिवी और जलके गुणकी उत्कृष्टतावाला द्रव्य बृंहण (शरीरपुष्टिकर्ता) होता है । ऐसे औषधोंके कार्योंको अनुमानसे साधन करना चाहिये ॥ ११ ॥ यहांपर श्लोक हैं-

(शंका-इसमें यह होसकती है कि पहले विरेचन द्रव्योंको पृथिवी और जलभूयिष्ठ कह आये हैं और अब बृंहणको भी वैसेही पृथिवी जलभूयिष्ठ कहा तो कहो कि पृथिव्यंबुगुणभूयिष्ठ तो अधोगामी होनेसे विरेचन हुए फिर उन्हींकी उत्कृष्टतावाले द्रव्य बृंहण क्योंकर कहे ? समाधान-इसका यह है कि विरेचन द्रव्योंके प्रभावमें पृथिवीके गुणोंकी अपेक्षा जलके गुण बहुतही अधिक होते हैं और जलके गुणकीही उत्कृष्टतासे उनमें द्रवत्व अधिक होनेसे विरेचनीय होते हैं। और बृंहण द्रव्योंके प्रभावमें जलके गुण अल्प और पृथ्वीके गुण अधिक होते हैं । और पृथ्वीके गुणकीही उत्कृष्टतासे उनमें उपचयत्व अधिक होता है, इससे वे बृंहण होते हैं यही भेद है ।)

भूतेजोवारिजैर्द्रव्यैः शमं याति समीरणः ॥ भूम्यंबुवायुजैः पित्तं क्षिप्रमाप्नोति निर्वृतिम् ॥१२॥ खतेजोनिलजैः श्लेष्मा शममेति शरीरिणाम् ॥ वियत्पवनजाताभ्यां वृद्धिमाप्नोति मारुतः ॥१३॥ आग्नेयमेवं यद्द्रव्यं तेन पित्तमुदीर्यते ॥ वसुधाजलजाताभ्यां बलासः परिवर्द्धते ॥१४॥ एवमेतद्गुणाधिक्यं द्रव्ये द्रव्ये विनिश्चितम् ॥ द्विशो वा बहुशो वापि ज्ञात्वा दोषेऽवचारयेत् ॥ १५ ॥

पृथ्वी, अग्नि और जलभूयिष्ठ द्रव्योंसे वायु शांत होता है । और पृथ्वी, जल वायुभूयिष्ठ द्रव्योंसे पित्त शांत होता है ॥ १२ ॥ और आकाश, अग्नि और वायुभूयिष्ठ द्रव्योंसे जीवोंका कफ शांत होता है । तथा आकाश और पवनगुणभूयिष्ठ द्रव्योंसे वायु वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ और जो अग्निगुणभूयिष्ठ द्रव्य होता है उससे पित्त उदीर्ण होता है और पृथ्वी जलभूयिष्ठ द्रव्योंसे कफ वर्द्धित होता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार द्रव्य द्रव्यमें जिस २ तत्त्वके गुणोंकी अधिकता हो उसे जानकर एक दोष द्विदोष तथा बहुत दोषोंकी (शांति या वृद्धि) चिकित्सामें उपयोग करे ॥ १५ ॥

तत्र य इमे गुणा वीर्यसंज्ञकाः शीतोष्णस्निग्धरूक्षमृदुतीक्ष्णपिच्छलविशदास्तेषां तीक्ष्णोष्णावाग्नेयौ । शीतपिच्छलावंबुगुणभूयिष्ठौ । पृथिव्यंबुगुणभूयिष्ठः स्नेहः।तोयाकाशगुणभूयिष्ठं मृदुत्वम्। वायुगुणभूयिष्ठं रौक्ष्यम् । क्षितिसमीरगुणभूयिष्ठं वैशद्यम् ॥१६॥

तहां ये जो वीर्यसंज्ञक गुण हैं शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छल और विशद इनमेंसे तीक्ष्ण और उष्ण आग्नेय (गरम) हैं और शीत और पिच्छल जलगुणकी अधिकतावाले हैं । और पृथिवी, जलगुणकी अधिकतावाला (स्नेह) चिकनाई है । जल और आकाशगुणभूयिष्ठ मृदुता है और वायुगुणभूयिष्ठ रूक्षता है । तथा पृथ्वी वायुगुणभूयिष्ठ वैशद्य (निर्मलता) है (तथा कई यों पाठ मानतेहैं कि अग्नि वायुगुणभूयिष्ठ (वैशद्य) उज्ज्वलता है) ॥ १६ ॥

लघुगुरुविपाकावुक्तगुणौ । तत्रोष्णस्निग्धौ वातघ्नौ । शीतमृदुपिच्छलाः पित्तघ्नाः । तीक्ष्णरूक्षविशदाः श्लेष्मघ्नाः । गुरुपाको वातपित्तघ्नो लघुपाकः श्लेष्मघ्नः ॥ १७ ॥

लघु और गुरु विपाकके गुण पहले कह चुके हैं (कि मधुरविपाक गुरु और पृथ्वी जलगुणभूयिष्ठ होता है और कटुकविपाक लघु और वायु अग्नि आकाश गुणभूयिष्ठ होता है) । उष्ण और स्निग्ध वायुनाशक है । शीतल, कोमल, पिच्छल पित्तनाशक होता है । तीक्ष्ण रूक्ष और विशद कफनाशक होता है । गुरुविपाक वायु और पित्तनाशक है और लघु (हलका) विपाक कफनाशक है ॥ १७ ॥

तेषां मृदुशीतोष्णाः स्पर्शग्राह्याः पिच्छलविशदौ चक्षुःस्पर्शाभ्यां स्निग्धरूक्षौ चाक्षुषौ शीतोष्णौ सुखदुःखोत्पादनेन । गुरुपाकः सृष्टविण्मूत्रतया कफोत्क्लेशेन च लघुर्बद्धविण्मूत्रतया मारुतकोपेन च ॥ १८ ॥

तहां कोमल, शीतल और उष्ण गुण स्पर्श (छूने) से ग्रहण किये जाते (जानेजाते) हैं । और पिच्छल (गाढा गधला), विशद (निर्मल उज्ज्वल) ये नेत्रोंसे तथा स्पर्श (त्वचासे छूकर) जानेजासकते हैं । स्निग्ध और रूक्ष चक्षसे जाने जाते हैं । और शीत, उष्ग ये सुखदुःखके उत्पादनसेभी जाने जाते हैं । गुरुविपाक

(सूत्र १६) क्षितिसमीरगुणभूयिष्ठवैशद्यमित्यत्र वाय्वग्निगुणभूयिष्ठवैशद्यमिति पाठांतर मन्यन्ते दहनपवनयोर्वैशद्यगुणसत्त्वात् ।

मलमूत्रके त्यागसे तथा कफकी उत्कृष्टतासे जाना जाता है । और लघुविपाक मल-मूत्रकी बद्धता (स्वल्पता स्तब्धता) और पवनके कोपसे जाना जाताहै ॥ १८॥

तत्र तुल्यगुणेषु भूतेषु रसविशेषमुपलक्षयेत्। तद्यथा मधुरो गुरुश्च पार्थिवो मधुरः स्निग्धश्चाप्य इति ॥ १९ ॥ भवंति चात्र—

तहां तुल्य गुणवाले भूतों (पृथिव्यादि) में रसविशेषको भी देखना (समझना) चाहिये । जैसे जो द्रव्य मीठा हो और भारी हो वह पार्थिव है और जो मीठा होकर तर है वह आप्य (जलकी उत्कृष्टतावाला) है इत्यादि ॥ १९ ॥ यहां श्लोक हैं कि—

गुणा ये उक्ता द्रव्येषु शरीरेष्वपि ते तथा ॥ स्थानवृद्धिक्षयास्तस्माद्देहिनां द्रव्यहेतुकाः ॥ २० ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थान एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

जो (शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्षादि बीस) गुण द्रव्यों (औषधादि) में कहे हैं वे गुण प्राणियोंके शरीरमें भी होते हैं इस हेतु मनुष्योंके शरीरकी और दोषादिकी स्थिति (समावस्था) तथा वृद्धि और क्षयता द्रव्यों (तत्तद्गुणविशिष्ट आहार औषधादि) के ही कारणसे होती हैं । (यही स्वस्थता और रोग तथा रोगशांतिका मुख्य हेतु है) ॥ २० ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० भा० टी० सूत्रस्थान एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

अथातो रसविशेषविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे रसविशेषविज्ञानीय अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

आकाशपवनदहनतोयभूमिषु यथासंख्यमेकोत्तरपरिवृद्धाः शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः ॥ १ ॥ तस्मादाप्यो रसः परस्परसंसर्गात्परस्परानुग्रहात् परस्परानुप्रवेशाच्च सर्वेषु सर्वेषां सांनिध्यमस्त्युत्कर्षापकर्षात्तु ग्रहणम् ॥ २ ॥

(सूत्र १) आकाशपवनदहनतोयभूमिषु मुख्यत्वेन शब्दस्पर्शरूपरसगधा यथासंख्यं जायंते । सामान्यत्वेन एकोत्तरपरिवृद्धा यथा—शब्दगुणमाकाश, शब्दस्पर्शगुणो वायुः, शब्दस्पर्शरूपगुणोऽग्निः, शब्दस्पर्शरूपरसगुणा आपः, शब्दस्पर्शरूपरसगंधगुणा पृथिवी चेति । परस्पर भूतानुप्रवेशादित्येकोत्तरा वृद्धिर्ज्ञेया ॥ (सूत्र २) उत्कर्षापकर्षात् उत्कर्षो वृद्धिः, अपकर्षो ह्रासः यथा चाकाशाधिके द्रव्ये शब्दाधिकत्वम्, आकाशाल्पे शब्दाल्पत्व चेति ।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी इन तत्त्वोंमें यथासंख्य एक एककी वृद्धिसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध ये गुण होते हैं। अर्थात् आकाशमें-शब्द, वायुमें-शब्द और स्पर्श, अग्निमें-शब्द स्पर्श और रूप, जलमें-शब्द, स्पर्श, रूप और रस, पृथ्वीमें-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पाँचों होते हैं ॥ १ ॥ इससे जलका मुख्य गुण रस है (जलहीसे रसकी उत्पत्ति है) परन्त्र सब तत्त्वोंका सब तत्त्वोंमें परस्पर संसर्ग होनेसे और परस्पर अनुग्रह (अनुग्रहण या साहाय्य) होनेसे तथा परस्पर एकमें एकका प्रवेश होनेसे सबका सबमें संयोग रहता है। उनमें उत्कर्ष और अपकर्षसे ग्रहण है (जैसे आकाशकी अधिकतावाले पदार्थमें शब्दकी अधिक उत्कृष्टता होती है। और वाताधिक पदार्थमें स्पर्शकी उत्कृष्टता। तथा तेजकी अधिकतावालेमें रूपकी। इसी प्रकार जलकी अधिकतावालेमें रसकी उत्कृष्टता और पृथ्वीकी अधिकतावालेमें गंधकी उत्कृष्टता होती है) ॥ २ ॥

रसके छह भेद।

स खल्वाप्यो रसः शेषभूतसंसर्गाद्विदग्धः षोढा विभज्यते। तद्यथा मधुरोऽम्लो लवणः कटुकस्तिक्तः कषाय इति। ते च भूयः परस्परसंसर्गात्त्रिषष्टिधा भिद्यन्ते ॥ ३ ॥

वही जलमय रस शेष पृथिव्यादि (महाभूतों) के संसर्गसे विदग्ध होकर छह प्रकारका होजाता है। जैसे १ मधुर, २ अम्ल, ३ लवण, ४ कटुक (चरपरा), ५ तिक्त (कडवा) और ६ कषाय (कसेला) ये छहों रस परस्पर मिलकर इनके तिरसठ ६३ भेद होजाते हैं। इन भेदोंका विस्तारपूर्वक वर्णन उत्तरतन्त्रके ६३ वें अध्यायमें होगा ॥ ३ ॥

तत्र भूम्यंबुगुणबाहुल्यान्मधुरः। भूम्यग्निगुणबाहुल्यादम्लः। तोयाग्निगुणबाहुल्याल्लवणः। वाय्वग्निगुणबाहुल्यात्कटुकः। वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात्तिक्तः। पृथिव्यनिलगुणबाहुल्यात्कषाय इति ॥ ४ ॥

इनमेंसे पृथ्वी और जलके गुणोंकी उत्कृष्टतासे मधुर (मीठा) रस होता है। पृथ्वी और अग्निके गुणोंकी अधिकतासे अम्ल (खट्टा) होता है। जल और अग्निके गुणोंकी अधिकतासे लवण (खारा) होता है। वायु और अग्निके गुणोंकी विशेषतासे कटु (चरपरा) होता है। वायु और आकाशके गुणोंके आधिक्यसे तिक्त(कडवा) होता है तथा पृथिवी और वायुके गुणोंकी उत्कृष्टतासे कषाय (कसेला) रस होता है ॥ ४ ॥

रसोंके गुण ।

तत्र मधुराम्ललवणाः वातघ्नाः । मधुरतिक्तकषायाः पित्तघ्नाः । कटुतिक्तकषायाः श्लेष्मघ्नाः ॥ ५ ॥

उनमें मीठा, खट्टा, खारा रस होवे तो वे वायुको नाश करते हैं । मीठा, कडवा, कसेला पित्तनाशक हैं । तथा चरपरा, कडवा, कसेला कफको नाश करनेवाले होते हैं ॥ ५ ॥

तत्र वायुरात्मनैवात्मा पित्तमाग्नेयं श्लेष्मा सौम्य इति त एव रसाः स्वयोनिवर्द्धना अन्ययोनिप्रशमनाश्च ॥ ६ ॥ केचिदाहुरग्नीषोमीयत्वाज्जगतो रसा द्विविधाः सौम्या आग्नेयाश्च तत्र मधुरतिक्तकषायाः सौम्याः । कट्वम्ललवणा आग्नेयाः ॥ ७ ॥

तहां वायु अपने आत्मा (वात) हीसे संबंध रखता है अर्थात् वायु पवनमय है और पित्त आग्नेय (अग्निरूप अग्न्यात्मक) है तथा कफ सौम्य (सोमात्मक शीतल) है तो वे अपनी २ योनि (कारणरूप) को बढाते हैं और विपरीत योनिको घटाते हैं । (जैसे मीठा रस पृथ्वी और जलका भाग बढाता है और इसके विपरीत अग्नि और वायुके भागको घटाता है । और खट्टारस भूमि और अग्निका भाग बढाता और विपरीत जल वायुका भाग घटाता है इत्यादि) ॥ ६ ॥ कोई ऐसा कहते हैं कि, जगत् अग्नि और सोमरूप है इससे रसभी दोही प्रकारके हैं १ सौम्य (शीतल), २ आग्नेय (गरम) इनमेंसे मीठा, कडवा, कसेला ये सौम्य अर्थात् ठंढे हैं और कटु (चरपरा) खट्टा और नमका ये रस आग्नेय अर्थात् गरम हैं ॥ ७ ॥

मधुराम्ललवणाः स्निग्धा गुरवश्च कटुतिक्तकषाया रूक्षा लघवश्च सौम्याः शीता आग्नेयाश्चोष्णाः ॥ ८ ॥

मीठा, खट्टा, नमका ये रस चिकने और भारी हैं । तथा चरपरा, कडवा और कसेला ये रूखे और हलके हैं । सौम्य जो रस हैं वे ठंढे हैं और जो रस आग्नेय हैं वे गरम हैं ॥ ८ ॥

तत्र शैत्यरौक्ष्यलाघववैशद्यवैष्टंभ्यगुणलक्षणो वायुस्तस्य समानयोनिः कषायो रसः सोस्य शैत्याच्छैत्यं वर्द्धयति रौक्ष्याद्रौक्ष्यम् ॥

(सूत्र ६) वायुः आत्मनैवात्मा वायुना वातोत्पत्तिरित्यर्थः । स्वयोनिवर्द्धना इति येभ्यो भूतेभ्यो मधुरादयो रसा उत्पद्यते तानि वर्द्धयतीत्यर्थः ।

लाघवाल्लाघवं वैशद्याद्वैशद्यं वैष्टंभ्याद्वैष्टंभ्यमिति ॥ ९ ॥

तहां शीतलता, रूक्षता, लघुता, विशदता (फैलाव), विष्टंभताके गुणयुक्त लक्षणोंवाला वायु है और उसके समान योनि कषाय (कसैला) रस है वह अपनी शीतलतासे वायुमें शीतको बढाता है। और रूक्षतासे रूखेपनको, लघुतासे हलकेपनको, विशदतासे फैलावको और विष्टंभतासे विष्टंभत्व (कबजीयत) को बढाता है ॥ ९ ॥

औष्ण्यतैक्ष्ण्यरौक्ष्यलाघववैशद्यगुणलक्षणं पित्तं तस्य समानयोनिः कटुको रसः सोस्यौष्ण्यादौष्ण्यं वर्द्धयति तैक्ष्ण्यात्तैक्ष्ण्यं रौक्ष्याद्रौक्ष्यं लाघवाल्लाघवं वैशद्याद्वैशद्यमिति ॥ १० ॥

उष्णता, तीक्ष्णता, रूक्षता, लघुता और विशदता (फैलाव) के गुणयुक्त लक्षणोंवाला पित्त है उसके समानकारणवाला कटु (चरपरा) रस है वह अपनी उष्णतासे उस पित्तकी उष्णताको बढाता है और तीक्ष्णतासे तीक्ष्णताको, रूक्षतासे रूक्षताको, लघुतासे लघुताको, विशदतासे विशदताको बढाताहै ॥ १० ॥

माधुर्यस्नेहगौरवशैत्यपैच्छिल्यगुणलक्षणश्लेष्मा तस्य समानयोनिर्मधुरो रसः सोस्य माधुर्य्यान्माधुर्यं वर्द्धयति स्नेहात्स्नेहं गौरवाद्गौरवं शैत्याच्छैत्यं पैच्छिल्यात्पैच्छिल्यमिति ॥ ११ ॥

मधुरता, चिकनाई, गुरुता, शीतलता, पिच्छलता (गाढापन ल्हेस) के गुणयुक्त लक्षणोंवाला कफ है। और उसका समान योनि मीठा रस है वह मधुरतासे कफकी मधुरताको बढाता है, स्निग्धतासे स्निग्धताको, भारीपनसे भारीपनको, शीततासे शीतताको, पिच्छलतासे पिच्छलताको बढाताहै ॥ ११ ॥

तस्य पुनरन्ययोनिः कटुको रसः स श्लेष्मणः प्रत्यनीकत्वात् कटुकत्वान्माधुर्यमभिभवति रौक्ष्यात्स्नेहं लाघवाद्गौरवमौष्ण्यात् शैत्यं वैशद्यात् पैच्छिल्यमिति। तदेतन्निदर्शनमात्रमुक्तम् ॥१२॥

और इस (कफ) की फिर अन्ययोनि (विपरीतकारणवाला) कटुक (चरपरा) रस है वह कफके विपरीत होनेसे अपने कटुकत्व (चरपराट) से कफके मीठेपनको नाश करता है। और अपनी रूक्षतासे कफकी स्निग्धताको, अपनी

(सूत्र ९) तस्य समानयोनिः कषायो रस इत्यत्र तस्य समानयोनिस्तिक्तो रस इति केचित् मन्यंते तिक्तस्य वाय्वाकाशगुणबाहुल्यात् वायोरतिसमानयोनित्वाच्च। कषायस्तु पृथिव्यनिलगुणभूयिष्ठस्तस्य तु पृथ्वीसंसर्गान्नातिलाघवं नातिवैशद्यमिति मन्यते। (सूत्र १२) प्रत्यनीकत्वाद्विरुद्धत्वात्। अभिभवति शमयति।

लघुतासे कफके भारीपनको, अपनी गरमीसे कफकी शीतलताको और अपने वैशद्य (फैलाव या उज्ज्वलता) से कफके पैच्छिल्य (इकट्ठा रहने या गधलापन) को नाश करता है । यह निदर्शन (दिखावे) मात्र हमने वर्णन करदिया है इसी प्रकार बुद्धिमान् वैद्योंको सब रसोंमें जो भाग जिस २ दोषके समानयोनि हो उन्हें उसके उन्ही उन्ह भागोंका बढानेवाला समझे और जो २ भाग विपरीत हो उसके उन-भागोंका घटानेवाला जाने ॥ १२ ॥

रसलक्षणमत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः ॥ १३ ॥

अब इससे अगाडी मधुरादि रसोंके लक्षण कहते हैं ॥ १३ ॥

मधुररसलक्षण ।

तत्र यः परितोषमुत्पादयति प्रह्लादयति तर्पयति जीवयति मुखा-वलेपं जनयति श्लेष्माणं चाभिवर्द्धयति स मधुरः ॥ १४ ॥

इसमें जो संतोष उत्पन्न करे, आनन्ददायक हो, तृप्ति करे, जीवनप्रदान करे (जिलावे), मुखमें अवलेप (मलिनता) उत्पन्न करे और कफको बढावे वह मधुररस है ॥ १४ ॥

अम्लरसलक्षण ।

यो दन्तहर्षमुत्पादयति मुखास्रावं जनयति श्रद्धाञ्चोत्पादयति सोऽम्लः ॥ १५ ॥

जो दन्तहर्ष (दांतोंमें अँवलाव) उत्पन्न करे, मुखसे राल गिरावे और श्रद्धा प्रगट करे वह अम्ल अर्थात् खट्टारस है ॥ १५ ॥

लवणरसलक्षण ।

यो भक्तरुचिमुत्पादयति कफप्रसेकं जनयति मार्दवं चापादयति स लवणः ॥ १६ ॥

जो भोजनमें रुचि उत्पन्न करे, मुखसे कफ (खखार) छांटे और कोमलता उत्पन्न करे वह लवण (नमकीन खारा) रस है ॥ १६ ॥

कटुकरसलक्षण ।

यो जिह्वाग्रं बाधते उद्वेगं जनयति शिरो गृह्णीते नासिकां च स्रावयति स कटुकः ॥ १७ ॥

जो जिह्वाके अग्रभागको बाधा करे (जलावे तेजी करे) और उद्वेग

(सूत्र १७) शिरो गृह्णीते उद्वेजकत्वेन न च कफवातवेदनाभिः ।

(ह्यालसी सीकारशब्द) उत्पन्न करे और उद्वेगसे शिरको ग्रहण करे तथा नाकसे पानी टपकावे वह कटुक (चरपरा) रस है ॥ १७ ॥

तिक्तरसलक्षण ।

यो गले चोषमुत्पादयति मुखवैशद्यं जनयति भक्तरुचिं चोपादयति हर्षं च स तिक्तः ॥ १८ ॥

जो गलेमें खिचाव करे, मुखमें उज्ज्वलता करे, भोजन करनेमें रुचि उपजावे तथा जिससे रोमहर्ष हो (फडफडीसी आवे) वह तिक्त अर्थात् कडवारस है॥ १८॥

कषायरसलक्षण ।

यो वक्रं परिशोषयति जिह्वां स्तंभयति कंठं बध्नाति हृदयं कर्षति पीडयति च स कषायः ॥ १९ ॥

जो मुखका शोषण करे, जिह्वाको स्तंभन (खिचाव) करे, कण्ठको बन्धन करे, हृदयको आकर्षण और पीडा (रुकावसा) करे वह कषाय रस है ॥ १९ ॥

रसगुणानतं ऊर्ध्वं वक्ष्यामः ॥ २० ॥

इससे अगाडी इन मधुरादि रसोंके गुणोंका वर्णन करते हैं ॥ २० ॥

तत्र मधुरो रसो रसरक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जौजःशुक्रस्तन्यवर्द्धनश्चक्षुष्यः केश्यो वर्ण्यो बलकृत् संधानः शोणितरसप्रसादनो बालवृद्धक्षतक्षीणहितः षट्पदपिपीलिकानामिष्टतमस्तृष्णामूर्च्छादाहप्रशमनः षडिन्द्रियप्रसादनः कृमिकफकरश्चेति । स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानः कासश्वासालसकवमथुवदनमाधुर्यस्वरोपघातकृमिगलगंडानापादयति । तथाऽर्बुदश्लीपदबस्तिगुदोपलेपाभिष्यंदप्रभृतीञ्जनयति ॥ २१ ॥

तिनमेंसे मधुर (मीठा)रस रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, ओज, वीर्य और (स्त्री जातिके) दुग्धका बढानेवाला, नेत्रोंके लिये हित और बालोंकोभी हित है। वर्ण (रूप) और बलका देनेवाला, टूटेका जोडनेवाला, रुधिर और रसका प्रसन्न करनेवाला है। तथा बालक, वृद्ध, क्षत और क्षीणको हितकारक, षट्पद, (भ्रमर) और पिपीलिका (चेंटी) इन्हें प्रिय है। तथा तृषा, मूर्च्छा और दाहका शांत करनेवाला, छहों इंद्रिय (पाचों इंद्रियें और मन) का प्रसन्न करनेवाला कृमि (चुरनेआदि) और कफका करनेवाला है। वह मीठा रस इतने गुण करनेवाला

(सूत्र २१) स्तन्यवर्द्धकत्व तु स्त्रीणामेव । षट्पदो द्विरेफो मक्षिकाश्चाश्र । षष्ठमिन्द्रियं मनः ।

है परंच वह अकेलाही अत्यन्त सेवन किया हुआ खांसी, श्वास, अलसक, वमन, मुखका मीठा रहना, स्वरोपघात (आवाज बैठजाना), कृमिरोग और गलगण्ड (इत्यादि) रोग उत्पन्न करता है। तथा अर्बुद (रसौली), श्लीपद (पीलपावँ) तथा वस्तिस्थान और गुदा इनका उपलेप (मैला और भारीरहना) तथा अभिष्यंद (नेत्राभिष्यंद नेत्रोंसे जल टपकना) इत्यादि व्याधि उत्पन्न करताहै ॥ २१ ॥

अम्लो जरणः पाचनः पवनविग्रहणोऽनुलोमनः कोष्ठविदाही बहिःशीतः क्लेदनः प्रायशो हृद्यश्चेति । स एवंगुणोप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो दंतहर्षनयनसंमीलनरोमसंवेदनकफाविलयनशरीरशैथिल्यान्यापादयति । तथा क्षताभिहतदग्धदष्टभग्नशूनरुग्णप्रच्युतावमूत्रितविसर्पितच्छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टादीनि पाचयत्याग्नेयस्वभावात्परिदहति कंठमुरो हृदयं चेति ॥ २२ ॥

अम्ल (खट्टा) रस जरानेवाला, पाचन, पवनका निग्रह करनेवाला, अनुलोमन, भीतर दाह करनेवाला, बाहरसे (स्पर्शमें) ठंढा, क्लेदन और प्रायः (कई खटाई) हृदयको प्रिय है। यह खट्टारस इतने गुणवाला है परंच अकेला यही अत्यन्त सेवन कियाहुआ दंतोंमें हर्ष (अमलाव), नेत्रोंमें मिचावसा, रोमोंमें संवेदना (सूक्ष्मपिडिकासी), कफका विलयन होना और शरीरका शिथिल (ढीला) होना इत्यादि विकार करता है । तथा क्षताभिहत (घावसे संपीडित) हुआ, जलाहुआ, सर्पादिसे डसा हुआ, भग्न (टूटाहुआ), शून (सूजाहुआ), रुग्ण (कोई शरीर टेढा होगया हो), प्रच्युत (कोई अस्थि हटगयाहो), अवमूत्रित (जहरी जंतुवोंके मूत्रयुक्त होगयाहो), विसर्पित (विसर्परोगयुक्त या जहरी जंतुवों (लूतादि) के स्पर्शजन्य पीडासे पीडित) हो, छिन्न (कटाहुआ), भिन्न (भेदन कियाहुआ) विद्ध (शूलादिसे विधाहुआ), उत्पिष्ट (मांसादि पिसगया हो), इन्हें पचानेवाला (पाचन करता है), तथा आग्नेयस्वभाव होनेसे, कण्ठ, छाती और हृदयमें दाह करता है ॥ २२ ॥

लवणः संशोधनः पाचनो विश्लेषणः क्लेदनः शैथिल्यकृदुष्णः सर्वरसप्रत्यनीको मार्गविशोधनः सर्वशरीरावयवमार्दवकरश्चे-

---

(सूत्र २२) जरण आहारस्य पाचनो दोषामययोः शोथस्य वा । रोमसंवेदन इत्यत्र रोमसवेजन इति वा पाठातरम् । रोमसवेजनः रोमांचः । रुग्णं वक्रीभूतम् । प्रच्युतं भ्रष्टं स्थानात् । अवमूत्रित मूत्रविषाणां जंतूना मूत्रसग. । विसर्पित स्पर्शविषाणां जंतूना विसर्पितस्पर्शसगः । विद्धं शिरादि उत्पिष्टं मर्दितम् । (इति डल्लनः)

ति। स एवंगुणोप्येक एवात्यर्थमासेव्यमानो गात्रकंडूकोठशोफवैवर्ण्यपुंस्त्वोपघातेंद्रियोपतापान् तथा मुखाक्षिपाकं रक्तपित्तवातशोणिताम्लीकाप्रभृतीनापादयति ॥ २३ ॥

लवण (नमकीन) रस संशोधन करता है, पाचन है, अवयवों (अंगों) को न्यारे २ करता है अर्थात् जोडोंको ढीला करता है, क्लेदन है, शिथिलता करनेवाला और गरम है, सब रसोंका विपक्षी है, मार्गोंका शोधनेवाला है, सब शरीरके भागोंको कोमल (नम्र) करता है। यह लवणरस इतने गुणवाला है और यही अकेला अत्यन्त सेवन करनेसे शरीरमें खाज, कोठ (चकद्दे), सूजन, कुरूपता पुरुषत्वका नाश, इंद्रियोंका उपताप तथा मुख और नेत्रोंका पकना, रक्तपित्त तथा वातरक्त अम्लीकी (खट्टी डकार) इत्यादि व्याधि उत्पन्न करता है ॥ २३ ॥

कटुको दीपनः पाचनो रोचनः स्थौल्यालस्यकफकृमिविषकुष्ठकंडूपशमनः संधिबन्धविच्छेदनोऽवसादनः स्तन्यशुक्रमेदसामुपहन्ता चेति। स एवंगुणोप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो भ्रममदगलताल्वोष्ठशोषगात्रसंतापबलविघातकंपतोदभेदकृत्करचरणपार्श्वपृष्ठप्रभृतिषु च वातशूलानापादयति ॥ २४ ॥

कटुक (चरपरा) रस दीपन है, पाचन है, रोचन है, शोधन है तथा स्थूलता, आलस्य, कफ, कृमि, विष, कुष्ठ और खाज इनको शांत करता है। संधिबंधोंको ढीले करता है, अनुत्साह करता है, दुग्ध, वीर्य और मेदका नाश करनेवाला है। यह चरपरा रस इतने गुणवाला है और यही अकेला अत्यन्त सेवन कियाहुआ भ्रम और मदकारक है। तथा गल, तालु, होठ इनमें खुश्की करता है और देहमें सन्ताप और बलका नाश तथा कम्प, तोद (पीडा), भेद (फूटनसी) करता है। और हाथ, पांव, पांसू, पीठ आदिमें वायुशूल उत्पन्न करता है ॥ २४ ॥

तिक्तश्छेदनो रोचनो दीपनः शोधनः कंडूकोठतृष्णामूर्च्छाज्वरप्रशमनः स्तन्यशोधनो विण्मूत्रक्लेदमेदोवसापूयोपशोषणश्चेति। स एवंगुणोप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो गात्रमन्यास्तंभाक्षेपकार्दितशिरःशूलभ्रमतोदभेदच्छेदास्यवैरस्यान्यापादयति ॥ २५ ॥

(सूत्र २३) पाचन, आहारस्य व्रणस्य च। कोठ उदर्दभेदः। पुंस्त्वोपघात क्लैब्यमिंद्रियाणामुपतापः नेत्रादीना स्वकर्मगुणहानिः। अम्लीका अम्लोद्गारः (इति निबंधसंग्रहः)। (सूत्र २४) कटुकः इतरभक्ष्याणां रोचनः न पुनः स्वयं वातशूलानापादयति रूक्षत्वात्।

तिक्त (कडवा), रस छेदन, रुचिकारक, दीपन, शोधन है । तथा खाज, कोट, तृषा, मूर्च्छा और ज्वरका शमन करनेवाला है । दुग्धका शोधन करनेवाला, विष्ठा, मूत्र, क्लेद (गीलापन), मेद, वसा (चरबीका स्नेह) और पीच इनका शोषण करनेवाला है । यह कडवा रस इतने गुणवाला है और यही अकेला अत्यन्त सेवन किया हुआ गात्र और मन्याका स्तंभ तथा- आक्षेपक (गिर २ पडना) अर्दितवायु और शिरका दरद, भ्रम, तोद (पीडा), भेद (फूटनसी), छेद (छेदनकीसी पीडा) तथा मुखकी विरसता इत्यादि व्याधि उत्पन्न करता है ॥ २५ ॥

कषायः संग्राहको रोपणः स्तंभनः शोधनो लेखनः शोषणः पीडनः क्लेदोपशोषणश्चेति । स एवंगुणोऽप्येक एवात्यर्थमुपसेव्यमानो हृत्पीडास्यशोषोदराध्मानवाक्यग्रहमन्यास्तंभगात्रस्फुरणचुमचुमायनाकुंचनाक्षेपणप्रभृतीञ्जनयति ॥ २६ ॥

कषाय (कसेला) रस संग्राही है, व्रणरोपण है, स्तंभन (कोमल अंगोंको दृढ करनेवाला), शोधन (व्रणशोधन) है, लेखन (व्रणगत दुष्टमांसको कुरचनेवाला) है, शोषण है, पीडन (हृदय या व्रणकी खेंच करनेवाला) है और गीलेपनेको सुखानेवाला है । यह कसेला रस इतने गुण करनेवाला है और यही एक अत्यन्त सेवन कियाहुआ हृदयमें पीडा, मुख सूखना, उदररोग (वातोदरादि), अफरा. वाक्यग्रह (वचन साफ न बोलाजाना), मन्यास्तंभ, अंगोंका फुरकना और चुमचुमाट, अंग सुकडजाना और आक्षेप (अतिकंप) इत्यादि उत्पन्न करता है ॥ २६ ॥

अतः सर्वेषां द्रव्याण्युपदेक्ष्यामस्तद्यथा ॥ २७ ॥

अब सब रसों (मधुरादि) के द्रव्योंका उपदेश करते हैं वह ऐसे हैं ॥ २७ ॥

मधुरवर्ग ।

काकोल्यादिः क्षीरघृतवसामज्जाशालिषष्टिकयवगोधूममाषशृंगाटककसेरुकत्रपुषैर्वारुककर्कारुकालाबूकालिंदकतकगिलोड्यप्रियालपुष्करबीजकाश्मर्य्यमधूकद्राक्षाखर्जूरराजादनतालनालिकेरेक्षुविकारवलातिबलात्मगुप्ताविदारीपयस्यागोक्षुरकक्षीरमोरटमधूलिकाकूष्मांडप्रभृतीनि समासेन मधुरो वर्गः ॥ २८ ॥

काकोल्यादिक गण तथा दूध, घृत, चरबी, मज्जा, शालि (चावल), षष्टिक (चावल एकप्रकारके), जौं, गेहूँ, उडद, सिंघाडे, कसेरू, त्रपुष (खीरा), ऐर्वा-

(सूत्र २८) पयस्या विदारीभेदः । अथवा पयोजाता शतानिकाख्या च । क्षीरमोरटः किलाटमस्तु पीलुपर्णीत्येके । मधूलिका वृक्षकर्कटः ।

रुक (आर्याफूट), कर्कारु (ककडी), अलाबू (घीया), कालिंद (तरबूज), कतक (पका कतकफल), गिलोठ (पहाडी पृथ्वीमें एक कंद होता है), प्रियाल, (चिरोंजी) कमलके बीज, खंभारी, महुवा, द्राक्षा (दाख किसमिस मुनक्का), छुहारा, खिरनी, तालका फल, नारियल (खोपरा), ईखके पदार्थ गुड, शर्करा आदि, बला (खरेंटी), अतिबला (कंघी), आत्मगुप्ता (कवंचके बीज), विदारी-कंद, पयस्या (विदारीकंदका भेद या दुग्धके विकार रबडी मलाई आदि), गोखरू, क्षीरमोरट (छाछका भेद या पीलुपर्णी), मधूलिका (अरंडकर्कटी) और कूष्मांड (कोहला) इनको आदि लेकर औरभी जैसे मधु (शहत) इत्यादि यह संक्षेपसे मधुरवर्ग कहाहै ॥ २८ ॥

अम्लवर्ग ।

दाडिमामलकमातुलुंगाम्रातककपित्थकरमर्दबदरकोलप्राचीनामलकतिन्तिडीककोशाम्रभव्यापारावतवेत्रफललकुचाम्लवेतसदंतशठदधितक्रसुराशुक्तसौवीरकतुषोदकधान्याम्लप्रभृतीनि समासेनाम्लो वर्गः ॥ २९ ॥

अनार, आँवले, नीबू, आमडे, कैथफल, करमर्द (करोंदे), छोटे बडे बेर, प्राचीनामलक (पानी आमला), तिंतिडीक (अँबली), कोशाम्र (वेपैवंदी आव या आमचूर), भव्या (कमरख), पारावत (फालसा), वैतका फल, लकुच (बड़हल), अम्लवेतस, दंतशठ (जंबीरनीबू), दही, छाछ, मद्य, शुक्त (सिरका या चुक्र), सौवीर (काञ्जीविशेष), तुषोदक (एकप्रकारकी कांजी) तथा धान्याम्ल (यह भी कांजीका भेद है) इनको आदिले और भी यह संक्षेपसे अम्लवर्ग (खट्टे द्रव्योंकासमूह) कहा है ॥ २९ ॥

लवणवर्ग ।

सैंधवसौवर्चलबिडपाक्यरोमकसामुद्रकपक्रिमयवक्षारोषप्रसूतसुवर्चिकाप्रभृतीनि समासेन लवणो वर्गः ॥ ३० ॥

सेंधानमक, कालानमक, बिड (मटियानमक), पाक्य (कचलूण) जिसे मनियारी कहते हैं), रोमक (सांभरनमक), सामुद्रक (समंदरीनमक या खार), पक्रिम (फूलानमक), जवाखार, ऊषप्रसूत (रेहे), सुवर्चिका (सज्जी) इत्यादि और भी सुहागा, सोरा आदि यह संक्षेपसे लवणवर्ग (खारे द्रव्योंका समूह) कहा है ॥ ३० ॥

(सूत्र २९) पारावतः मधुराम्लफलम् । भव्या कर्मणफलम् । (कमरख इति लोके)

कटुक (चरपरा) वर्ग ।

पिप्पल्यादिः सुरसादिः शिग्रुमधुशिग्रुमूलकलशुनसुमुखशीतशिवकुष्ठदेवदारुहरेणुकावल्गुजफलचंडागुग्गुलुमुस्तलांगलकीशुकनासापीलूप्रभृतीनि सालसारादिश्च प्रायशः कटुको वर्गः ॥३१॥

पिप्पल्यादि समस्तगण, सुरसादिगण तथा सोहजना, लाल सोहजना, मूली, लहसन, सुमुख (एक शाकभेद तरातेज), शीतशिव, कपूर, कूठ, देवदारु, हरेणुका (मिरचसमान बीज), वल्गुजफल (बावची), चंडा (खुरासानी अजवायन या देशी अजवायन), गूगल, मुस्त (नागरमोथा), कलहारी शुकनासा (लाल मिरच या श्योनाक) और पीलू तथा प्रायः सालसारादिकगण (सालसारादि गणकी बहुधा औषध) इत्यादि औरभी यह संक्षेपसे कटुकवर्ग (चरपरे द्रव्योंका समूह) कहा है ॥ ३१ ॥

तिक्त (कडवा) वर्ग ।

आरग्वधादिर्गुडूच्यादिर्मंडूकपर्णीवेत्रकरीरहारिद्राद्वयेंद्रयववरुणस्वादुकंटकसप्तपर्णबृहतीद्वयशंखिनीद्रवंतीत्रिवृत्कृतवेधककोंटककारवेल्लकवार्ताककरीरकरवीरसुमनःशंखपुष्प्यपामार्गत्रायमाणाशोकरोहिणीवैजयंतीसुवर्चलापुनर्नवावृश्चिकालीज्योतिष्मतीप्रभतीनि समासेन तिक्तो वर्गः ॥ ३२ ॥

आरग्वधादिगण, गुडूच्यादिगण तथा मंडूकपर्णी (ब्राह्मीभेद), वेतकैर अथवा वेत्रकरीर, वेतके अंकुर, दोनों हलदी, इंद्रजव, बरण, स्वादुकंटक (विकंकत) सतोना, दोनों कटेली, शंखिनी (यवतिक्ताभेद), द्रवंती, निशोथ, कृतवेध (कोशातकी विडाल), ककोडे, करेले, बैंगन, कैर, कनेरके फूल अथवा करीर, करील (डुंडापर्वतवृक्ष), करवीर (कनेर), सुमन (चमेली), शंखपुष्पी (शंखाहूली), अपामार्ग (चिरचटा), त्रायंती, अशोकरोहिणी (कटुरोहिणी कुटकी), वैजयंती (अरणी), सुवर्चला (सूर्यावर्त), साटी, वृश्चिकपत्री और ज्योतिष्मती (मालकाँगनी) इत्यादि औरभी यह संक्षेपसे तिक्तवर्ग (कडवे द्रव्योंका समूह) कहा है ॥ ३२ ॥

(सूत्र ३२) वेत्रकरीरः वेत्राकुरः, स्वादुकटकः विकंकतः, कृतवेधः कोशातकी इति डल्लनः । रोहिणी कटुरोहिणी, वैजयंती तर्कारी इत्यपि डल्लनः । करीर–करवीर–सुमन इति समासशक्त्या करीरकरवीरयोः पुष्पाणि पृथक्पदशक्त्या करीरः करीलः, करवीरः हयमारकः सुमना जाती करीरपदमुभयत्र लिखितं तत्र त्वेकत्र समासे प्रयोक्तव्यमिति ।

न्यग्रोधादिरंबष्ठादिः प्रियंग्वादी रोध्रादिस्त्रिफलाशल्लकीजम्बाम्रबकुलतिंदुकफलानि कतकशाकपाषाणभेदकवनस्पतिफलानि सालसारादिश्च प्रायशः कुरवककोविदारकजीवंतीचिल्लीपालंक्यासुनिषण्णकप्रभृतीनि नीवारकादयो मुद्गादयश्च समासेन कषायो वर्गः ॥ ३३ ॥

न्यग्रोधादिगण, अंबष्ठादिगण, प्रियंग्वादिगण, रोध्रादिगण तथा त्रिफला, शल्लकी (मजभक्ष्या), जामन, आँब, मौलसरी, तेंदूके फल, कतकशाक, पाषाणभेद, वनस्पतिके फल, प्रायः सालसारादिगण, कुरबक, कोविदार, जीवंतीशाक, चिल्लीशाक, पालक, सुनिषण्णक (चौपतियाशाक) इत्यादि औरभी तथा नीवारधान्यादि तथा मुद्गादिधान्य ये संक्षेपसे कषायवर्ग (कसेले द्रव्योंका समूह कहा है ॥ ३३ ॥

तत्रैषां रसानां संयोगास्त्रिषष्टिर्भवंति तद्यथा। पंचदश द्विकाः। विंशतिस्त्रिकाः। पंचदश चतुष्काः। षट् पंचकाः। एकशः षड्रसाः। एकः षट्क इति तेषामन्यत्र प्रयोजनानि वक्ष्यामः ॥३४॥

भवति चात्र--

पूर्वोक्त छह रसोंके संयोगसे ६३ तिरेसठ भेद होते हैं। जैसे-१५ दो दोस मिलकर, और २० तीनं तीन मिलकर, और १५ चार चार मिलकर, और ६ पांच पांच मिलकर, और ६ रस अकेले एक एक और १ छहों रसमिलकर ऐसे ६३ भेद हुए इनका प्रयोजन तथा योजना अगाड़ी और जगह कहेंगे ॥ ३४ ॥ यहांपर श्लोक है-

जग्धाः षडधिगच्छन्ति बलिना वशतां रसाः ॥ यथा प्रकुपिता दोषा वशं यांति बलीयसः ॥ ३५ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

बलवान् मनुष्यके सेवन किये हुए छहों रस वश होजाते हैं (विकार नहीं करते) जैसे बलवान् मनुष्यके कुपितहुए दोषभी प्रायः वशही हो जाते हैं (उग्र और असाध्यरोग पैदा नहीं करते) ॥ ३५ ॥

इति पं० मुरलीधरशर्मवैद्यवि० सुश्रुतस०भा०टी० सूत्रस्थाने द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

(सूत्र ३५) बलिनो मनुष्यस्य जग्धा भक्षिता एकैकशः कृत्वा अभ्यस्ता अपि वशमायांति दोषकारिणो न भवंतीत्यर्थः। (इति डल्हनः)

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३.

अथातो वमनद्रव्यविकल्पविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे वमनद्रव्यों (कै करानेवाली औषधों) के विकल्प (भेद) के विज्ञानीय अध्यायका व्याख्यान करते हैं ॥

वमनद्रव्याणां फलाद्यानां मदनफलानि श्रेष्ठतमानि भवंति। अथ मदनपुष्पाणामातपपरिशुष्काणां चूर्णप्रकुंचं प्रत्यक्पुष्पीसदापुष्पी-निंबकषायाणामन्यतमेनालोड्य मधुसैंधवयुक्तां मात्रां पाययित्वा वामयेत् ॥ १ ॥

फलादि वमनद्रव्योंमें मैनफल अत्यन्त श्रेष्ठ है । धूपमें सुखाये हुए मदनपुष्प (मैनफल) का या मैनफलके फूलोंका चूर्ण प्रकुंच (पलभर या मुट्ठीभर) प्रत्यक्पुष्पी (ओंगा) और सदापुष्पी (बारामासी कपास या आक जिसकी जडलेना) तथा नींब इनमेंसे किसीके क्वाथमें मिलाकर शहत और सेंधानमक डालकर यथोचित मात्रा पिलाकर वमन करावे (वमन करानेकी विधि विस्तारपूर्वक चिकित्सितस्थानके ३३ तेंतीसवें अध्यायमें वर्णन होगी देखलेना) ॥ १ ॥

मदनशलाटुचूर्णान्येवं वा वकुलरम्यकोपयुक्तानि मधुलवणयुक्तान्यभिप्रतप्तानि।मदनशलाटुचूर्णसिद्धां वा तिलतण्डुलयवागूम्॥२॥

कच्चे मैनफलके चूर्णको भी इसी प्रकार (प्रकुंच मुष्टिप्रमाण) मौलसरी और रम्यक (महानिंब बकायन) से उपयुक्तकर शहत और लवण मिला गरम करके पानकरे । अथवा मदनशलाटु (कच्चे मैनफल) के चूर्णसे सिद्ध करीहुई तिल चावलोंकी यवागूको पानकरे तो भी वमन होता है ॥ २ ॥

निर्वृत्तानां वा नातिहरितपांडूनां कुशमूढावबद्धमृद्गोमयप्रलिप्तानां यवतुषमुद्गमाषशाल्यादिधान्यराशावष्टरात्रोषितक्लिन्नभिन्नानां फलानां फलपिप्पलीरुद्धृत्यातपे शोषयेत् ॥ ३ ॥ तासां दधिमधु-

---

(सूत्र १) फलाद्यानामित्यत्राद्यशब्देन कुटजजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकृतवेधनादीनि वामकफलानि गृह्यते । मदनपुष्पाणामिति मदनफलानां पुष्पशब्दोत्र फले वर्तते कारणे कार्योपचारादिति डल्हनः । केचित्तु मदनवृक्षकुसुमानामेव चूर्णं मन्यते तदेव समीचीनं जीमूतादीनामपि पुष्पग्रहणात् चूर्णप्रकुंच पुनरस्य मध्यमा मात्रा प्रकुंचं पलं मुष्टिरित्येके करांगुलिचतुष्कमूलावधिमितचूर्णमित्यपरे (डल्हनः) केषुकेषु रोगेषु वमन कार्यं केषु न कार्यं केन विधिना कार्यमित्यादि व्याख्यानमन्यत्र चिकित्सितस्थाने त्रयस्त्रिंशे चतुस्त्रिंशेऽध्याये च विस्तरेण द्रष्टव्यम् । (सूत्र २) शलाटुः आमं फलम् । रम्यको महानिंबः ।

(सूत्र ३) निर्वृत्तानां निष्पन्नानामतिहरितपाडुत्वेन परिपाकातिपाण्डुत्वे वीर्यातिक्रमः । कुशमूढः कुशावरचितः पुटकः फलपिप्पलीमदनफलबीजानि ।

पल्लविमृदितपरिशुष्काणां सुभाजनस्थानामन्तरनखमुष्टिंमुष्णे-यष्टिमधुककषाये कोविदारादीनामन्यतमे वा कषाये विमृद्य रात्रिपर्युषितं मधुसैंधवयुक्तमाशीर्भिरभिसंत्रितमुदङ्मुखः प्राङ्मुखमातुरं पाययेतानेन मन्त्रेणाभिमंत्र्य ॥ ४ ॥

(पक्के मदनफलोंका प्रधानयोग कहते हैं कि) पकेहुए मैनफलोंको जो न बहुत हरे हों न बहुत पीले पडगये हों उन्हें कुशासे बांधकर (लपेटकर) ऊपर गोबर मिट्टी लगाकर जौके तुष, मूँग, उडद, चावल आदि अन्नकी राशिमें आठ अहोरात्रतक रक्खे जब क्लेदित होकर फूटें तब उन फलोंकी फलपिप्पली अर्थात् अंकुर हुएसे बीज निकालकर धूपमें सुखा ले ॥ ३ ॥ फिर उन बीजोंको दही, शहत तथा मांसमें मृदितकर (भिगोकर) सुखावे और सुंदर पात्रमें रखकर गिरी निकालले फिर गरम मुलहटीके क्राथमें अथवा कोविदारादिक गणमेंसे किसीके क्राथमें दिनरात भिगोकर मलकर शहत और सेंधानमक मिलाकर निम्नलिखित आशिष मन्त्रसे अभिमंत्रित करके उत्तराभिमुख बैठाहुआ वैद्य पूर्वाभिमुख बैठे रोगीको पिलावे और इस मन्त्रसे अभिमंत्रित करे ॥ ४ ॥

आशिषमंत्र ।

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानलानिलाः ॥ ऋषयः सौषधीग्रामा भूतसंघास्तु पांतु ते ॥ ५ ॥ रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ॥ सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥ ६ ॥

ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र (शिवजी), इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु और औषधिग्रामसहित ऋषिगण तथा चतुर्विध भूतसमूह तेरी रक्षा करें ॥५॥ जैसे ऋषियोंको रसायन है और देवताओंको अमृत और उत्तम नागोंको जैसे सुधा आरोग्य और आयु देनेवाले होते हैं वैसे यह औषध तुझे (गुणदायक) हो ॥६॥

विशेषेण श्लेष्मज्वरप्रतिश्यायांतर्विद्रधिष्वप्रवर्तमाने वा दोषे पिप्पलीवचागौरसर्षपकल्कोन्मिश्रैः सलवणैरुष्णाम्बुभिः पुनः पुनः प्रवर्तयेदासम्यग्वान्तलक्षणादिति ॥ ७ ॥

विशेष करके कफज्वर, जुखाम, अन्तर्विद्रधि (भीतरी फोडा) इनमें अथवा दोषोंके अप्रवर्त होनेमें पीपल, वच, सुपेदसरसोंके कल्कके साथ नमक मिलाकर

(सूत्र ४) तासां फलपिप्पलीनाम् । अंतर्नखमुष्टिः अंतर्गतबीजांकुरमव्यगमुष्टिः मज्जा अथवा अंतर्नखानामंकुरितबीजानां मुष्टिः पलपरिमाणम् ।

गरम जलके साथ बार बार लेकर वमन करे । जबतक ठीक वमन हुएके लक्षण हों (तबतक बार २ उपरोक्त मात्रा ले लेकर बार २ वमन करे) ॥ ७ ॥

मदनफलमज्जचूर्णं वा तत्क्वाथपरिभावितं मदनफलकषायेण । मदनफलमज्जसिद्धस्य वा पयसः संतानिकां क्षौद्रयुक्ताम् । मदनफलमज्जसिद्धं वा पयः । मदनफलमज्जसिद्धेन वा पयसा यवागूमधोभवरक्तपित्तहृद्दाहयोः ॥ ८ ॥

अथवा मैनफलकी गिरीका चूर्ण उसीके क्राथमें भावना दियाहुआ मैनफलके क्राथके संग ले अथवा मैनफलकी गिरी दूधमें उबालकर उस दूधकी मलाईको शहत मिलाकर चाटे । अथवा मैनफलकी गिरी दूधमें जोशकरके उस दूधको पीजाय तो वमन हो । अथवा अधोभागमें प्राप्त हुआ रक्त पित्त तथा हृदयमें दाह हो तो मैनफलकी गिरी दूध या पानीमें उबाल उसमें यवागू पकाकर पिलावे तो सम्यक् वमन हो ॥ ८ ॥

मदनफलमज्जसिद्धस्य वा पयसो दधिभावमुपगतस्य दध्युत्तरं दधि वा कफप्रसेकच्छर्दिमूर्च्छातमकेषु ॥ ९ ॥ मदनफलमज्जस्नेहं वा भल्लातकस्नेहवदादाय फाणितीभूतं लेहयेदातपपरिशुष्कं वा मदनफलमज्जचूर्णं जीवंतीकषायेण पित्ते कफस्थानगते ॥१०॥

मैनफलकी गिरी दूधमें जोशदेकर जमादे जब दही जमजाय तब दहीका ऊपरी जल या दही पान करे । मुहसे कफ गिरता हो (राल बहती हो), कै सी बहुत आती हो (जी मिचलाता रहता हो), मूर्च्छा आजाती हो, तमक श्वास हो इतने रोगोंमें उपरोक्त क्रियासे वमन कराना चाहिये ॥ ९ ॥ और जो कफस्थानमें पित्त चलागया हो तो मैनफलकी गिरीका तेल निकालले जैसे भिलावेका तेल निकालते हैं (उसी क्रियासे मदनफलकी गिरीका तेल निकालले) फिर उसे पकाकर फाडकर चाटे अथवा धूपमें सुखायेहुए मैनफलोंकी गिरीका चूर्ण जीवंती (शाक) के क्राथके संग ले तो श्रेष्ठ वमन हो ॥ १० ॥

मदनफलमज्जक्काथं वा पिप्पल्यादिप्रतीवापं तच्चूर्णं वा निंबरूपिकाकषाययोरन्यतरेण संतर्पणं कफव्याधिहरम् । मदनफलमज्जचूर्णं वा मधूककाश्मर्यद्राक्षाकषायेण ॥ ११ ॥ मदनफलविधानमुक्तम् ॥

(सूत्र ९) दध्युत्तरं दधिरसम् । (सूत्र १०) मदनफलमज्जस्नेह भल्लातकस्नेहवदिति द्विव्रणीयोक्तेन विधिना । फाणितीभूतं काकरीभूतम् । (सूत्र ११) सर्वे मिलित्वा मदनफलयोगाः एकत्रिंशदुक्ताः

मैनफलकी गिरीके काथमें पिप्पली आदि डालकर पीवे । अथवा मैनफलका गिरीका चूर्ण नींब या आककी जड इनके काढेमेंसे किसीके साथले तो वमन हो । यह संतर्पण और कफव्याधिका हरनेवाला है । अथवा मैनफलकी गिरीका चूर्ण महुवा, काश्मरी या दाख इनके काथके संगले तो उत्तम वमन हो कफव्याधि मिटे ॥ ११ ॥ यह मैनफलका तो विधान वर्णन करचुके इसके अगाडी अब जीमूतक (विंडाल) का विधान कहते हैं ॥

जीमूतककुसुमचूर्णं वा पूर्ववदेव क्षीरेण निर्वृत्तेषु क्षीरयवागूं रोमशेषु संतानिकामरोमशेषु च दध्युत्तरं हरितपांडुषु दधि तत्कषायसंसृष्टां वा सुरां कफारोचककासश्वासपांडुरोगयक्ष्मसु पर्यागतेषु मदनफलमज्जवदुपयोगः ॥ तद्वदेव कुटजफलविधानम् ॥१२॥

विंडालके पुष्प (सूखे हुओं) का चूर्ण पहलेकी तरह (प्रत्यक्पुष्पीके) काथादिके संग ले तथा दुग्धके साथ ले और पकेहुए विंडालोंको दूधयवागू बनाकर लेनेसे वमन होता है । अथवा रोमश (कठिन कडेसे हों तब) दूधमें उबालकर मलाई ले । तथा अरोमश (रोम झडजानेपर) दूधमें जमाकर दहीका जल लेना । तथा हरितपांडु (अतिपके) अवस्थामें दही बनाकर अथवा विंडालके काथसे सिद्ध करीहुई मदिरा ले तो कफ, अरुचि, खांसी, श्वास, पांडुरोग, राजयक्ष्मा इतने रोगोंमें सम्यक् वमन हो । और पर्यागत (सूखे पके) हुए हों तब मैनफलकी गीरीके तरह इनके बीजोंको भी उपयोग करे । और इसी तरह कुटजफल(इंद्रजौ) का भी विधान समझो ॥ १२ ॥

कृतवेधनानामप्येष एव कल्पः । इक्ष्वाकुकुसुमचूर्णं वा पूर्ववदेव क्षीरेण कासश्वासछर्दिकफरोगेषूपयोगः ॥ १३ ॥

कृतवेधन (कडवी तोरी) क भी येही विधान हैं । तथा इक्ष्वाकु (कडवी तूंबी या कडी घीया) के फूलका चूर्ण पहलेकी तरह दूधके संग ले खांसी, श्वास, छर्दि, कफके रोगोंमें उपयोग करे तो ये रोग नष्ट हों और उत्तम वमन हो ॥ १३ ॥

धामार्गवस्यापि मदनफलमज्जवदुपयोगो विशेषतस्तु गरगुल्मोदरकासश्वासश्लेष्मामयेषु वायौ वा कफस्थानगते ॥ १४ ॥

(सूत्र १२) जीमूतकः देवदाली । रोमशेषु कठिनावस्था प्राप्तेषु । अरोमकेषु वृद्धत्तमेषु । हरितपांडुषु कठिनतमेषु । पर्यागतेषु परिपक्केषु । जीमूतकयोगाः सर्वे मिलित्वा चतुर्विंशतिरुक्ताः । कुटजफलस्यापि जीमूतकवच्चतुर्विंशतियोगाः । (सूत्र १३) कृतवेधनस्य कुटजवच्चतुर्विंशतियोगाः कृतवेधन श्वेतपुष्पकोशातकी । इक्ष्वाकुः कटुकालाबुः इक्ष्वाकुयोगास्त्रयस्त्रिंशदुक्ताः । (सूत्र १४) धामार्गवस्यापि चतुर्विंशतियोगाः । धामार्गव पीतपुष्पकोशातकी ।

धामार्गव (पीले फूलकी कडवी तोरी) काभी मेनफलकी गिरीहीकी तरह उपयोग होता है । विशेष करके विषगुल्म उदररोग, खाँसी, श्वास, कफके रोगोंमें तथा कफके स्थानमें और वायुके चले जानेमें धामार्गवका उपयोग करे ॥ १४ ॥

कृतवेधनफलपिप्पलीनां वमनद्रव्यकषायपरिपीतानां बहुशश्चूर्णमुत्पलादिषु दत्तमाघ्रातं वामयति तत्त्वेनद्रवेद्धदोषेषु यवागूमाकंठात्पीतवत्सु च विदध्यात् ॥ १५ ॥ वमनविरेचनशिरोविरेचनद्रव्याण्येवं वा प्रधानतमानि भवंति ॥ १६ ॥ भवतश्चात्र–

कृतवेधन (सुपेदफूलकी कडवी तोरी) के बीजोंको अन्य वमनद्रव्योंके स्वरसकी भावना देकर (सुखाकर) चूर्ण करले उस चूर्णको कमल आदिमें रखकर सुंघाने मात्रसे वमन हो जाता है वह जब दोषोंका उद्रेक हो तब होता है । और तबही कंठतक यवागू पिलाकर वह चूर्ण सुंघाकर वमन कराना चाहिये ॥१५॥ वमनद्रव्य, विरेचनद्रव्य, शिरोविरेचनद्रव्य अनेक हैं उनमें इस प्रकार (उक्त और वक्ष्यमाण प्रकारके द्रव्य) अत्यंत प्रधान हैं (जैसे वमनद्रव्योंमें मदनफल प्रधान है तथा विरेचनद्रव्योंमें त्रिवृता इत्यादि है) ॥ १६ ॥ यहांपर दो श्लोक हैं कि–

वमनद्रव्ययोगानां दिगियं संप्रकीर्तिता ॥ तां विभज्य यथाव्याधिकालशक्तिविनिश्चयात् ॥ १७ ॥ कषायैः स्वरसैः कल्कैश्चूर्णैरपि च बुद्धिमान् ॥ पेयलेह्याद्यभोज्येषु वमनान्युपकल्पयेत् ॥१८॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

वमनद्रव्योंके प्रयोगोंका यह सिद्धांत है कि, व्याधि, समय, रोगीकी शक्तिके निश्चय (अनुकूलता) से वैद्य आप विभाग करले (योग्य तजवीज करले) जैसे उचित समझे वैसे काथोंसे, स्वरसोंसे, कल्कोंसे चूर्णोंसे, पीनेके पदार्थोंसे, चटनियोंसे, खानेके पदार्थों (आद्यशब्दसे सूंघनेके पदार्थों) से बुद्धिमान् वैद्य वमनकी योगकल्पना करले ॥ १७ ॥ १८ ॥

यूनानी हकीम वमनद्रव्योंको मुकी कहते हैं और डाक्टरीमें वमन लानेवाली औषधको (Emetic) एमेटिक कहते हैं ।

इति प० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतसं० भा० टी० सूत्रस्थाने त्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४३ ॥

(सूत्र १५)कृतवेधनफलपिप्पलीना कृतवेधनबीजानां परिपीतानां भाविताना काथेनात्र स्वरसो ग्राह्यः ।

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

अथातो विरेचनद्रव्यविकल्पविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे विरेचनद्रव्योंके विकल्प (भेद और प्रयोगके) विज्ञानीय अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

अरुणाभं त्रिवृन्मूलं श्रेष्ठं मूलविरेचने ॥ प्रधानं तिल्वकस्त्वक्षु फलेष्वपि हरीतकी ॥ १ ॥ तैलेष्वेरंडजं तैलं स्वरसे कारवेल्लिका ॥ सुधापयः पयःसूक्तमिति प्राधान्यसंग्रहः ॥ २ ॥ तेषां विधानं वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ ३ ॥

मूल (जडरूपविरेचनीय) औषधोंमें सुरखीलिये हुए निशोथकी जड अर्थात् निशोथ श्रेष्ठ है । और वक्कलोंमें तिल्वक (पतलीलोध) प्रधान है और फलों (विरेचनीयफलों) में बड़ी हरड प्रधान है ॥ १ ॥ विरेचनीय तैलोंमें अरंडका तैल श्रेष्ठ है और विरेचनीय स्वरसोंमें करेलेका स्वरस तथा विरेचनीय दुग्धोंमें सेहुंडका दुग्ध प्रधान है । यह प्रधानतासे संग्रह किया है ॥ २ ॥ इनके विधानको क्रमसे यथावत् वर्णन करते हैं । और विरेचन देनेयोग्य रोग तथा विरेचन देनेकी विधि आगे चिकित्सितस्थानमें विस्तारसे वर्णन होगी ॥ ३ ॥

वैरेचनद्रव्यरसानुपीतं मूलं महत्त्रैवृतमस्तदोषम् ॥ चूर्णीकृतं सैंधवनागराढ्यमम्लैः पिबेन्मारुतरोगजुष्टः ॥ ४ ॥ इक्षोर्विकारैर्मधुरै रसैस्तत्पैत्ते गदे क्षीरयुतं पिबेद्वा ॥ गुडूच्यरिष्टत्रिफलारसेन सव्योषमूत्रं कफजे पिबेद्वा ॥ ५ ॥

विरेचनीयद्रव्यों (हरीतकी, त्रिवृता आदि) के रसमें भावना दीहुई मोटी निशोथको निर्दोष करके अर्थात् ऊपरसे छीलकर और भीतरकी गुठली निकालकर बीचकी उत्तम छाल लेकर उसका चूर्ण करले (बारीक पीसले) फिर यदि वायुरोग हो तो उसमें सेंधानमक और सोंठ मिलाकर अम्लरस (अम्ल आदि) से पीवे अर्थात् चूर्ण खाकर ऊंपरसे शुक्त, सौवीर, तुषोदक, धान्याम्लादिक पान करे या मिलाके पीवे ॥ ४ ॥ ईखके पदार्थ शर्करा आदिसे तथा मधुररसोंके साथ दूध

(सूत्र २) 'तैलेष्वेरंडज तैल स्वरसे कारवेल्लिका' इति पदद्वय जैजटाचार्यस्तु पठति तन्नेच्छति गयः । (सूत्र ४) वैरेचनद्रव्यरसानुपीत वैरेचनद्रव्यरसभावितम् । (सूत्र ५) इक्षोर्विकारैः खडादिभिः पुनर्न गुडेन गुडस्योष्णवीर्यत्वात् ।

मिलाकर पित्तरोगोंमें निशोथका पूर्वोक्तचूर्ण विरेचनके अर्थ लेना चाहिये और कफके रोगोंमें वही पूर्वोक्त निशोथका चूर्ण गिलोय, नींब, त्रिफला इनके क्वाथमें त्रिकटु और गोमूत्र मिला इसके संग पीना चाहिये ॥ ५ ॥

त्रिवर्णकत्र्यूषणयुक्तमेतद्गुडेन लिह्यादनवेन चूर्णम् ॥ प्रस्थे च तन्मूलरसस्य दत्त्वा तन्मूलकल्कं कुडवप्रमाणम् ॥ ६ ॥ कर्षोन्मिते सैंधवनागरे च विपाच्य कल्कीकृतमेतदद्यात् ॥ तत्कल्कभागः समहौषधार्द्धः ससैंधवो मूत्रयुतश्च पेयः ॥ ७ ॥

त्रिवर्णक (त्रिजातक-तज, पत्रज, इलायची) और त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पिप्पली) और निशोथका चूर्ण इन्हें पुराने गुडमें मिलाकर अवलेह बनाकर चाटे अर्थात् १ भाग त्रिजातक और त्रिकटुका और एक भाग त्रिवृताका ले। अथवा प्रस्थ (१६ पल) गीली निशोथका रस ले उसमें कुडव (४ पल) निशोथका कल्क डाले और कर्ष २ भर सेंधानमक और सोंठ डालकर पकावे जब गाढा होजाय तब उसमेंसे (जितना अग्निबल, दोष हो उसके अनुसार) खाय। अथवा त्रिवृत्कल्कका आधा भाग सोंठ मिलाकर सैंधव और गोमूत्र युक्तकर पीवे ॥ ६ ॥ ७ ॥

समास्त्रिवृन्नागरकाभयाः स्युर्भागार्द्धिकं पूगफलं सुपक्वम् ॥ विडंगसारो मरिचं सदारु योगैः ससिंधूद्भवमूत्रयुक्तः ॥ ८ ॥

निशोथ, सोंठ, हरडेकी छाल, समान भाग ले और एकसे आधाभाग पकी (मानचंदी) सुपारी ले और विडंगसार (विडंगबीज) मरिच और देवदारु ये (आधा भाग ले) सेंधानमक और गोमूत्रके संग ले ॥ ८ ॥

विरेचनद्रव्यभवं तु चूर्णं रसेन तेषां मतिमान् विमृद्य ॥ तन्मूलसिद्धेन च सर्पिषाक्तं सेव्यं तदाज्ये गुटिकीकृतं च ॥ ९ ॥ गुडे च पाकाभिमुखे निधाय चूर्णीकृतं सम्यगिदं विपाच्य ॥ शीतं त्रिजाताक्तमिदं विमृद्य योगानुरूपा गुटिकाः प्रयोज्याः ॥ १० ॥

विरेचनद्रव्यों (निशोथ, हरीतकी आदि) के चूर्णको उन्हींके रसकी भावना दे। अथवा उनके जडसे साधन कियेहुए घृतमें भरकोवे । अथवा उस घृतमें मिलाकर

(सूत्र ६) त्रिवर्णकं त्रिजातकमेतत् त्रिवृतायाः चूर्णं तत्र त्रिवर्णत्रिकटुगुडानामेको भागः अपरस्त्रिवृतायाः तस्याः प्रधानत्वात् । (सूत्र ७) तत्कल्कभागः त्रिवृताकल्कभागः एतानि कफरोगे विरेचनानि । (सूत्र ९) तेषां विरेचनद्रव्याणां रसेन स्वरसेन क्वाथेन वा विमृद्य भावनां दत्त्वा तन्मूलसिद्धेन विरेचनद्रव्यमूलसिद्धेन घृतेन आर्द्रीकृतम् ।

बुद्धिमान् वैद्य गोली बनाले और विरेचनके लिये दे ॥ ९ ॥ अथवा चासनी होते हुए गुडमें उस चूर्णको डालकर पकावे और ठंढा होते समय उसमें त्रिजातक मिलाकर योगानुरूप (जैसी चाहिये) गुटिका बनाकर उपयोग करे ॥ १० ॥

वैरेकीयद्रव्यचूर्णस्य भागं सिद्धं सार्द्धं क्वाथभागैश्चतुर्भिः ॥
आमृद्नीयात्सर्पिषा तच्छृतेन तत्क्वाथोष्मस्वेदितं सामितं च॥११॥
पाकप्राप्ते फाणिते चूर्णितं तत् क्षिप्तं पक्कं चावतार्य प्रयत्नात् ॥
शीतीभूता मोदका हृद्यगंधाः कार्यास्त्वेते भक्ष्यकल्पाःसमासात्१२॥

विरेचनद्रव्योंका क्वाथ चार भाग लेकर उसमें सिद्धकिये हुए विरेचन द्रव्यों (निशोथ, नीलिकादि) का सार्द्धभाग चूर्ण ले फिर उसे विरेचनद्रव्योंसे सिद्ध किये हुए घृतमें मरकोय (सेककर) उन्हीं विरेचनद्रव्योंके क्वाथमें पिघलायेहुए गुडकी चासनी जब पकावपर आवे तब उस घृतमें सिकेहुए विरेचनद्रव्योंके चूर्णको डाल दे और मिलाकर फिर यत्नसे उतारले, जब ठण्ढा होने लगे तब सुगंधित और हृदयप्रिय गन्धसे युक्त करके मोदक बनावे और ये मोदक यथोचितरीतिसे विरेचनके लिये यथायोग्य मात्रासे खाय ॥ ११ ॥ १२ ॥

रसेन तेषां परिभाव्य मुद्रान् यूषः ससिंधूद्भवसर्पिरिष्टः ॥ वैरेचनेऽन्यैरपि वैदलैः स्यादेवं विदध्याद्वमनौषधैश्च ॥ १३ ॥ भित्त्वा द्विधेक्षुं परिलिप्य कल्कैस्त्रिभंडिजातैः प्रतिबध्य रज्ज्वा ॥ पक्कं च सम्यक् पुटपाकयुक्त्या खादेत्तु तं पित्तगदी सुशीतम् ॥ १४ ॥

विरेचनद्रव्योंके रस (स्वरस या क्वाथ) में मूंगोंको भावना देकर (भिगोकर) उनका यूष बनावे और उसमें सेंधानमक और थोडा घृत मिलाकर पीवे। तथा अन्य आढकी, मकुष्ठ (मोठ) आदि द्विदल धान्योंकोभी इसी भांति विरेचनद्रव्यके रसकी भावना देकर यूष बना सकते हैं। तथा वमनके लिये वमनद्रव्योंकी भावना देकर यूष बना सकते हैं। यहभी मृदुकोष्ठमनुष्योंकेलिये: सामान्ययोग है ॥ १३ ॥ अथवा ईखके गन्नेको बीचसे चीरकर (दो फांककर भीतर गोद)

(सूत्र ११) तच्छृतेन विरेचनद्रव्यशृतेन सर्पिषा । सामितमित्यत्र डल्हनस्तु इत्याह-सामितं भागं गोधूमचूर्णं तुल्यभाग प्रक्षिप्य मर्दयित्वा ऊष्मणा स्वेदयित्वाऽन्यस्मिन् फाणिते पाकप्राप्ते प्रक्षिप्य मोदकाः कार्याः न केचिदित्याहुः । सामितं फेनोद्गमादिवेगरहितं पक्कमिति । फाणिते गुडस्य विकारे-राब इति ख्याते । (सूत्र १२) एते विरेचनयोगाः सामान्याः । (सूत्र १३) अन्यैर्वैदलैः मकुष्ठमसूरादिभिः । (सूत्र १४) त्रिभंडी श्वेतात्रिवृत् ।

विरेचनद्रव्यों (निशोथ आदि) की लुगदीसे लपेट जेवडी बांध (ऊपर मिट्टीलगा) कर पुटपाककी रीतिसे ठीक पकाकर ठंढे होनेपर उन्हें पित्तरोगी चूसले ॥ १४ ॥

सिताजगंधा त्वक्क्षीरी विदारी त्रिवृता समा ॥ लिह्यान्मधुघृताभ्यां तु तृड्दाहज्वरशांतये ॥ १५ ॥ शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं त्रिवृच्चूर्णावचूर्णितम् ॥ रेचनं सुकुमाराणां त्वक्पत्रमरिचांशकम् ॥ १६ ॥ पचेल्लेहं सिताक्षौद्रं पलार्द्धकुडवान्वितम् ॥ त्रिवृच्चूर्णयुतं शीतं पित्तघ्नं तद्विरेचनम् ॥ १७ ॥

सिता (मिश्री), अजगंधा (वनअजवायन), वंशलोचन, विदारी और निशोथ सबके बराबर ले शहत और घृतमें मिलाकर तृषा और ज्वरकी शांतिके लिये विरेचनके वास्ते चाटे ॥ १५ ॥ खांड शहत इनमें निशोथका चूर्ण मिला चौथा भाग दालचिनी, पत्रज, मिरच मिलावे यह कोमल मनुष्यों या बालकोंके लिये विरेचन है ॥ १६ ॥ मिश्री पलभर, शहत आधा कुडव इसमें निशोथका चूर्ण (सबका चौथाई) डालकर अवलेह बनावे ठंढा होनेपर यह पित्तको नाश करनेवाला विरेचन है ॥ १७ ॥

त्रिवृच्छयामाक्षारशुंठीपिप्पलीर्मधुनाऽऽप्नुयात् ॥ सर्वश्लेष्मविकाराणां श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ १८ ॥ बीजाढ्यपथ्याकाश्मर्यधात्रीदाडिमकोलजान् ॥ तैलभृष्टान् रसानम्लफलैरावाप्य साधयेत् ॥ १९ ॥ घनीभूतं त्रिसौगंध्यं त्रिवृत्क्षौद्रसमन्वितम् ॥ लेह्यमेतत्कफप्रायैः सुकुमारैर्विरेचनम् ॥ २० ॥

निशोथ, श्यामा (विधायरा), यवक्षार, सोंठ, पीपल इन्हें मिलाके चाटे तो कफके विकारवालोंके लिये श्रेष्ठ विरेचन है ॥ १८ ॥ पकेहुए बीजोंवाले हरडे, काश्मरी, आंवले, अनार, बेर इन्हें पीस इनके रेशेको विजोरेके रससहित अरंडके तैलसे छोकके पकावे जब गाढा होजाय तब त्रिसुगंध (दालाचिनी, पत्रज, इलायची) डाल निशोथका चूर्ण और शहत मिलादे। यह अवलेह कफव्याप्त कोमल मनुष्यों (बालकों) को श्रेष्ठ विरेचन है ॥ १९ ॥ २० ॥

(सूत्र १६) सिता पल क्षौद्रमर्द्धकुडवे त्रिवृच्चूर्णं लेहस्य चतुर्थांशेन तत्र मधुनोऽग्निसयोगो न विरुध्यते अनवस्थानाच्चेति डल्हनाचार्यः। (सूत्र १८) श्यामा वृद्धदारुः आप्नुयात् लिह्यात् । (सूत्र १९।२०) बीजाढ्येति बीजाढ्यान् सुपक्वान् । तैलभृष्टान् एरंडतैलभृष्टान् । फलाम्लैः बीजपूरादिभिः ।

नीलीतुल्यं त्वगेलं च तैस्त्रिवृत्ससितोपला ॥ चूर्णं संतर्पणं क्षौद्रफलाम्लं सन्निपातनुत् ॥ २१ ॥ त्रिवृच्छयामासिताकृष्णात्रिफलामाक्षिकैः समैः॥ मोदकाः सन्निपातोर्द्ध्वरक्तपित्तज्वरापहाः२२॥

नीली (कालादाना) के समान दालचिनी और इलायची और सबकी बराबर निशोथका मिश्रीयुक्तचूर्ण मधु और बीजपूररसके साथ खानेसे तृप्तिकारक और सन्निपातको नाश करनेवाला विरेचन है ॥ २१ ॥ निशोथ, विधायरा, मिश्री, पीपल, त्रिफला ये समान ले शहतमें मिला मोदक (कर्षभरकी गोली) बनावे यह विरेचन सन्निपात और ऊर्द्धगामी रक्तपित्त तथा ज्वरको नाश करताहै ॥ २२ ॥

त्रिवृद्भागास्त्रयः प्रोक्तास्त्रिफला तत्समा तथा ॥ क्षारकृष्णा विडंगानि संचूर्ण्य मधुसर्पिषा ॥ २३ ॥ लिह्याद्गुडेन गुटिकां कृत्वा वाप्यथ भक्षयेत् ॥ कफवातकृतान् गुल्मान् प्लीहोदरहलीमकान् ॥ हन्त्यन्यानपि चाप्येतन्निरपायं विरेचनम् ॥ २४ ॥

तीन भाग निशोथ, तीनही भाग त्रिफला तथा तीन भाग तीनों यवक्षार, पीपल और विडंग इन्हें पीस शहत और घृतके संग चाटे अथवा गुडमें मिलाकर गोली बनावे और यह गोली खावे तो कफ, वायुका गुल्म और प्लीहवृद्धि, उदररोग तथा हलीमक इतने रोगोंको नाश करे । तथा और रोगोंकोभी यह नाश करता है, यह विरेचन बहुत अच्छा है इसमें कोई हानि नहीं ॥ २३ ॥ २४ ॥

चूर्णं श्यामात्रिवृन्नीली कट्वी मुस्ता दुरालभा ॥ चव्येंद्रबीजं त्रिफलासर्पिर्मांसरसाम्बुभिः ॥ पीतं विरेचनं तद्धि रूक्षाणामपि शस्यते ॥ २५ ॥

विधायरा, निशोथ, कालादाना,कुटकी, नागरमोथा, धमासा, चव्य, इंद्रजौ तथा त्रिफला इनका चूर्णकर घृत तथा मांसरस (शोरवा) तथा जलके संग पियाहुआ यह विरेचन रूक्ष (कृश वातप्रकृति) मनुष्योंकोभी श्रेष्ठ है । (स्निग्धोंको तो श्रेष्ठ है ही) (यह तात्पर्य है कि रूक्षोंको घृतमांसरसके संग देना और स्निग्धोंको जलके संग देना) ॥ २५ ॥

विरेचनीय आसव ।

वैरेचनिकनिक्काथभागाः शीतास्त्रयो मताः ॥ द्वौ फाणितस्य तच्चापि पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ २६ ॥ तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शीतं

(सूत्र २४) निरपायं पथ्यापथ्यादिविचारवर्जितम् ।

कृत्वा निर्वापयेत् ॥ कलशे कृतसंस्कारे विभजयतूं हिमाहिमौ ॥ ॥ २७ ॥ मासादूर्द्ध्वं जातरसमासवं मधुगंधिकम् ॥ पिबेदसा- वेवं विधि क्षारमूत्रासवेष्वपि ॥ २८ ॥

विरेचन द्रव्य (निशोथ) का काथ ठंढा कियाहुआ २ भाग फाणित (गुडकी राब) दो भाग इन्हें मिलाकर फिर अग्निपर जोशदे जब ठीक गढाजाय तब संस्कार किये (धोकर सुखाकर मधु पिप्पली लेपनकर अगरसे धूपेहुए) कलशेमें डालकर ऋतु सरदी गरमीके अनुसार संधान करे । एक माससे ऊपर जब जातरस होजाय (सिद्ध होजाय) और मधुकीसी सुगंध होजाय तब इस आसवको (विरे- चनके लिये) पान करे। इसीप्रकार विरेचनके लिये क्षार, मूत्र (गोमूत्र) और आसवोंकी विधि जानना ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

वैरेचनिकमूलानां काथे माषान् सुभावितान् ॥ सुधौतांस्तत्क- षायेण शालीनां चापि तंडुलान् ॥ २९ ॥ अवक्षुद्यैकतः पिंडान् कृत्वा शुष्कान् सुचूर्णितान् ॥ शालितंडुलचूर्णं च तत्कषायोष्म- साधितम् ॥ ३० ॥ तस्य पिष्टस्य भागांस्त्रीन् किण्वभागविमि- श्रितान् ॥ मंडोदकार्थे काथं च दद्यात्तत्सर्वमेकतः ॥ ३१ ॥ निर्द- ध्यात्कलशे तां तु सुरां जातरसां पिबेत् ॥ एष एव सुराकल्पो वमनेष्वपि कीर्तितः ॥ ३२ ॥

विरेचनद्रव्योंकी जडके काढेमें उडदोंको भावना दे और उसी विरेचनीय काथसे चावलोंको भिगोकर उन्हें कूटले, फिर पिंडीसी बनाकर सुखादे और फिर चूर्णकरले फिर उडद मिलेहुए चावलोंके चूरेको उसी विरेचनीयकाढेमें पकावे ॥ २९ ॥ ३० ॥ फिर उसकी पिट्ठी बना उसके तीनभाग लेकर उसमें किण्व (सुराबीज) का भाग मिलादे और मंडोदकका काथ उसीमें मिलाकर सबको इकट्ठा करले ॥ ३१ ॥ फिर उसे कलशमें रखदे जब सिद्ध होजाय तब इस सुरा (मदिरा) को (विरेचनके लिये) पान करे । इसीप्रकार वमनद्रव्योंके काथमें साधनकरके वमनयोग्य सुराभी सिद्ध होसकती है ॥ ३२ ॥

(सूत्र २७) 'कलशे कृतसंस्कारे' इत्यत्र अंतःक्षालितशुष्कस्य मधुपिप्पलीलेपो गुरुधूपसंस्कारश्च संस्कारः । 'विभजयतूं हिमाहिमौ' इति हिमे मासं धान्यराशौ स्थाप्यम् । अहिमे उष्णकाले पक्षामिति ।

(सूत्र २९ । ३०) अवक्षुद्यैकतः एकीकृत्य क्षोदयेदित्यर्थः ।

मूलानि त्रिवृतादीनां प्रथमस्य गणस्य च ॥ महतः पंचमूलस्य मूर्वाशार्ङ्गेष्टयोरपि ॥ ३३ ॥ सुधा हैमवती चैव त्रिफलातिविषे वचा ॥ संहृत्यैतानि भागौ द्वौ कारयेदेकमेतयोः ॥ ३४ ॥ कुर्य्यान्निष्क्काथमेकस्मिन्नेकस्मिंश्चूर्णमेवं तु ॥ क्षुण्णांस्तस्मिंस्तु निष्क्काथे भावयेद्बहुशो यवान् ॥ ३५ ॥ शुष्काणां मृदुभृष्टानां तेषां भागास्त्रयो मताः ॥ चतुर्थभागमावाप्यं चूर्णानामनुकीर्त्तितम् ॥ ३६ ॥ प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् समस्तं तदनंतरम् ॥ तेषामेवं कषायेण शीतलेन संयोजितम् ॥ पूर्ववत्सन्निदध्यात्तु ज्ञेयं सौवीरकं हि तत् ॥ ३७ ॥

संशोधनीयोक्त त्रिवृतादिककी जड तथा प्रथमगण (विदारिगंधादिगण) की जड, बृहत्पंचमूल, मूर्वा, शार्ङ्गेष्टा (कोठकरंज) इनकी जड ॥३३॥ सुधा (सेहुंड), हैमवती (श्वेतवच या चोक), त्रिफला, अतीस, वच इन सबको लेकर इनके आधे २ दो भाग करे॥३४॥उनमेंसे एकभागका क्वाथ बनावे और एकभागका चूर्ण करले फिर उस क्वाथमें कुटेहुए (छिलका उतरे या छडेहुए) जवोंको कईवार भावनादे ॥३५॥ फिर सुखाकर थोडा भुनवाले फिर वे भुने जौ ३ भाग ले और चौथा भाग उक्त चूर्णका मिलावे ॥३६॥ फिर उनको घडेमें डालकर उन्हीं (त्रिवृतादि)के क्वाथको ठंढा करके डालदे और पूर्वोक्तरीतिसे संधानकरे और जब(अनुमान आठेकदिनमें) सिद्ध होजाय तब इस सौवीर(एक प्रकारकी कांजी)को विरेचनके लिये ग्रहणकरे॥३७॥

पूर्वोक्तं वर्गमाहृत्य द्विधा कृत्वैकमेतयोः ॥ भागं संक्षुद्य संसृज्य यवान् स्थाल्यामधिश्रयेत् ॥ ३८ ॥ अजशृंग्याः कषायेण तानभ्यासिच्य साधयेत् ॥ सुसिद्धांश्चावतार्य्यैतानौषधिभ्यो विवेचयेत् ॥ ३९ ॥ विमृद्य सतुषान् सम्यक् ततस्तान् पूर्वविन्मितान् ॥ पूर्वोक्तौषधभागस्य चूर्णं दत्त्वा तु पूर्ववत् ॥ ४० ॥ तेनैवं सह

(सूत्र ३३ । ३७) त्रिवृतादीना संशोधनसशमनीयोक्तानाम् । प्रथमो गणः विदारिगंधादिगणः । शार्ङ्गेष्टा कोठकरंज. काकजंघा वा । क्षुण्णान् कुट्टितान् । क्वाथं सप्ताह यावत् तेषा यवानामवाप्य निक्षिप्य इति । एषु श्लोकेषु कुत्रचित् पूर्वश्लोकस्थपदैः केषु कुत्राचित्परस्थपदैः कुत्रचित् पूर्वेण परेण वा समस्त श्लोकेन श्लोकैर्वा अन्वयः । योगादिषु तु विशेषनएवमेव । अस्मिन् शास्त्रे पदाना समन्वयः प्रयोजनमात्रेण बोद्धव्यः नतु काव्यरीत्या ।

यूषेण[१०] कलशे[१७] पूर्ववन्न्यसेत्[१८] ॥ ज्ञात्वा जातरसं चापि तत्तुषोदक-
मादिशेत् ॥ ४१ ॥

पूर्वोक्तवर्ग (जो जो पहले सौवीर साधनमें कहे उन्हें) लेकर दो जगह करले उनमेंसे १ भागको कूटकर सतुषजवोंके संग मिलाकर कडाहीमें डालदे ॥ ३८ ॥ फिर मेढासींगीके काढामें डालकर साधन करे (जोशदे) जब जौ सीजजायँ तब उतारकर जवोंको छाटले ॥ ३९ ॥ फिर सतुष उन उवले हुए जवोंको मर्दन करे। फिर उनमें पहलेवाली औषधोंका चूर्ण मिलाकर (पहलेकी तरह) रक्खे ॥ ४० ॥ फिर जिसमें जौ समेत औषध उवाली थी वही मेढासींगीका क्वाथ जवोंसे उवलकर यूषसा गाढाहुआ मौजूद है उसमें उन औषधोंके चूर्ण सहित सीजेहुए जौ मिलाकर पहलेकी तरह घडेमें डाल दे और जब जातरस तुषोदक सिद्ध होजाय तब ऐसा समझकर सेवन करे यह विरेचनीयतुषोदक है ॥ ४१ ॥

तुषांबुसौवीरकयोर्विधिरेष प्रकीर्तितः ॥ षड्रात्रात्सप्तरात्राद्वा ते च पेये प्रकीर्तिते ॥ ४२ ॥ वैरेचनेषु द्रव्येषु त्रिवृन्मूलविधिः स्मृतः ॥ ४३ ॥

तुषांबु (तुषोदक) और सौवीरककी यही विधि है ये दोनों छःदिनमें या सात दिनमें पीनेयोग्य हो जातेहैं ॥ ४२ ॥ विरेचनद्रव्योंके विधानमें त्रिवृतमूल (निशोथ) की विधि वर्णन हो चुकी ॥ ४३ ॥

दंतीद्रवंतीकी विधि ।

दंतीद्रवंत्योर्मूलानि विशेषान्मृत्कुशांतरे ॥ पिप्पलीक्षौद्रयुक्तानि स्विन्नान्युद्धृत्य शोषयेत् ॥ तत्त्रिवृद्विधानेन योजयेच्छ्लेष्मपि-त्तयोः ॥ ४४ ॥ तयोः कल्ककषायाभ्यां चक्रतैलं विपाचयेत् ॥ सर्पिश्च पक्वं वीसर्पकक्षादाहालजीर्जयेत् ॥ ४५ ॥ मेहगुल्मानि-लश्लेष्मविबंधांस्तैलमेव च ॥ चतुःस्नेहं शकृच्छुक्रवातसंरोधजा रुजः ॥ ४६ ॥

दंती (जमालगोटेकी जड) और द्रवंती (संवरी) इनकी जडको खूब मिट्टी और कुशासे लपेटकर स्वेदन (भुरता) करे, फिर निकालकर सुखाले, फिर पिप्पली और शहतके साथ निशोथकी तरह कफ पित्तके रोगोंमें विरेचनके लिये उपयोग करे ॥ ४४ ॥ अथवा इनके कल्क और कषायमें चक्र अर्थात् कोल्हूसे निकाला

(सूत्र४५) चक्रतैलमिति चक्रपीडितं तिलतैलं हस्तादियंत्रपीडननिषेधार्थं चक्रं ह्यभीष्टम् । (इति डल्हनः)

हुआ तिलोंका तैल साधन करे। अथवा इनके कल्क और क्काथमें घृत साधन करले यह तैल अथवा घृत विसर्प, कक्षादाह और अलजीको (लगानेसे) नाश करे। तथा प्रमेह, गुल्म, वात, श्लेष्म और विबंधको विरेचनद्वारा नाश करे। तथा इनके कल्क, क्काथसे साधित चतुःस्नेह (घृत, तैल, वसा, मज्जा) ये चारों स्नेह विडरोध, शुक्ररोध और वायुरोधके रोगोंको नाश करते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

दंतीद्रवन्तीमरिचकनकाह्वयवासकैः ॥ विश्वभेषजमृद्वीकाचित्रकैः मूत्रभावितैः ॥ ४७ ॥ सप्ताहं सर्पिषा चूर्णं योज्यमेतद्विरेचनम् ॥ जीर्णे संतर्पणं क्षौद्रं पित्तश्लेष्मरुजापहम् ॥ अजीर्णपार्श्वरुक्पांडुप्लीहोदरनिबर्हणम् ॥ ४८ ॥

दंती, द्रवंती, मिरच, कनकाह्व (चोक या कंकुष्ठ या नागकेशर), दुरालभा, सोंठ, मुनक्का और चित्रक इन्हें गोमूत्रमें भावना दे ॥ ४७ ॥ (सात दिन) फिर इस चूर्णको घृतके साथ योजना करे। यह श्रेष्ठ विरेचन है जब यह जीर्ण हो (दस्तोंका वेग हो) तब शहतका संतर्पण दे, यह विरेचन पित्त श्लेष्मरोगको नाश करे और अजीर्ण, पसलीका दरद, पांडु, प्लीह, उदररोग इन्हें नाश करताहै॥ ४८॥

गुडस्याष्टपले पथ्या विंशतिः स्युः पलं पलम् ॥ दन्तीचित्रकयोः कर्षौ पिप्पलीत्रिवृतोर्दश ॥ ४९ ॥ कृत्वैतान्मोदकानेकं दशमे दशमेऽहनि ॥ ततः खादेदुष्णतोयसेवी निर्यन्त्रणास्त्विमे ॥ दोषघ्ना ग्रहणीपांडुरोगार्शःकुष्ठनाशनाः ॥ ५० ॥

आठ पल (पुराना) गुड, २० पल हरडेकी छाल, दंती और चित्रक एक एक पल, और पीपल और निशोथ एक एक कर्ष लेकर इनके दश मोदक बनावे ॥ ४९ ॥ दश मोदक बनाकर दशवें दशवें दिन इनमेंसे एक २ मोदक खाय ऊपरसे गरमपानी पीवे। ये मोदक निर्यंत्रण (इनमें हवा, धूप आदिका परहेज कुछ नहीं) हैं, तीनों दोषोंको शान्त करते हैं, ग्रहणीरोग, पांडुरोग, बवासीर और कुष्ठका नाश करते हैं। (यह सौदिनका प्रयोग है) ॥ ५० ॥

व्योषं त्रिजातकं मुस्ता विडंगामलके तथा ॥ नवैतानि समांशानि त्रिवृदष्टगुणानि वै ॥ ५१ ॥ श्लक्ष्णचूर्णीकृतानीह दन्तीभागद्वयं तथा ॥ सर्वाणि चूर्णितानीह गालितानि विमिश्रयेत् ॥५२॥

(सूत्र ४९) गुडस्य अष्टौ पलानि, विंशतिः हरितकीफलानि दंतीमूलचूर्णं पलं, चित्रकमूलचूर्णं च पलं, पिप्पली कर्षः, त्रिवृत् कर्षश्च, दश मोदकान् कृत्वा इत्यर्थः । (इति डल्हनः)

षड्भिश्च शर्कराभागैरीषत्सैंधवमाक्षिकैः ॥ पिंडितं भक्षयित्वा तु ततः शीतांबु पाययेत् ॥ ५३ ॥ वस्तिरुक्तृड्ज्वरच्छर्दिशोषपाण्डुभ्रमापहम् ॥ निर्यंत्रणमिदं सर्वं विषघ्नं तु विरेचनम् ॥५४॥ त्रिवृदष्टकसंज्ञोऽयं प्रशस्तः पित्तरोगिणाम् ॥ भक्ष्यः क्षीरानुपानो वा पित्तश्लेष्मातुरैर्नरैः ॥ भक्ष्यरूपसधर्मत्वादाढ्येष्वेव विधीयते ॥ ५५ ॥

त्रिकटु, त्रिजातक, नागरमोथा, विडंग और आंवले ये नौ वस्तु समभाग ले और निशोथ आठ भाग ले ॥ ५१ ॥ बारीक चूर्ण करके दो भाग दंती मिलावे सबका चूर्णकर छानके सब मिलाले ॥ ५२ ॥ और छह भाग खांड मिला थोडा सैंधव डाल शहत मिलाकर पिंडी बनावे । फिर इनमेंसे खाकर ऊपरसे ठंढा पानी पीता रहे ॥ ५३ ॥ इससे वस्तिके रोग, तृषा, ज्वर, वमन, शोष (राजयक्ष्मा), पांडु, भ्रम इतने रोग नाश होते हैं। यह निर्यंत्रण (बेपरहेजका) विरेचन है । विषरोगको भी नाश करता है ॥ ५४ ॥ यह त्रिवृताष्टकसंज्ञक योग पित्तके रोगियोंको बहुत श्रेष्ठ है । अथवा इसे खाकर ऊपरसे दूध पीवे तो पित्तश्लेष्मरोगी मनुष्यको आरोग्य हो तथा भक्ष्यरूप साधर्म्य होनेसे आढ्यों (स्थूलों या प्रत्यक् दोषाढ्यों) को भी उचितही है ॥ ५५ ॥

तिल्वकविधान ।

तिल्वकस्य त्वचं बाह्यामन्तर्वल्कविवर्जिताम् ॥ चूर्णयित्वा तु द्वौ भागौ तत्कषायेण गालयेत् ॥५६ ॥ तृतीयं भावितं तेन भागं शुष्कं तु भावितम् ॥ दशमूलकषायेण त्रिवृद्वत्संप्रयोजयेत् ॥५७॥ विधानं त्वक्षु निर्दिष्टं फलानामथ वक्ष्यते ॥ ५८ ॥

तिल्वक (पतली सुपेदलोध) की छालको भीतरकी बकली निकालकर दो भाग करे फिर उसीके काथमें भिजोवे ॥ ५६ ॥ फिर तीसरे भागको चूर्णकर उसमें भावना देकर सुखाले । फिर उसे दशमूलके काथमें भावना देवे । फिर इसे त्रिवृताकी भांति प्रयोग करे (जितने विधान त्रिवृताके कहे वे सब प्रायः इसके भी उसी प्रकार हो सकते हैं) ॥ ५७ ॥ त्वचाओंमें जो विधान है वह वर्णन कर दिया अब अगाडी फलों (विरेचनीयफलों) का विधान करते हैं ॥ ५८ ॥

(सूत्र ५६) तिल्वकः सूक्ष्मकटुकश्वेतलोध्रः सलाक्षापसादनस्थूललोध्रादन्यः लाक्षाप्रसादनस्थूललोध्रः अरुणाभः कषायरसः स तु ग्राही ।

हरीतकीविधान।

हरीतक्याः फलं त्वस्थिवियुक्तं दोषवर्जितम् ॥ योऽयं त्रिवृद्विधानेन सर्वव्याधिनिबर्हणम् ॥ रसायनपरं मेध्यं दुष्टांतर्व्रणशोधनम् ॥ ५९ ॥

हरडेका फल गुठली निकालकर निर्दोष करके त्रिवृताके विधानके अनुसार उपयोग करनेसे सब रोगोंको नाश करनेवाला. विरेचन होता है। हरीतकीका प्रयोग परम रसायन और उत्तम है और दुष्ट हुए अंतर्गत व्रणको शोधन करता है ॥५९॥

हरीतकी विडंगानि सैंधवं नागरं त्रिवृत् ॥ मारिचानि च तत्सर्वं गोमूत्रेण विरेचनम् ॥६०॥ हरीतकी भद्रदारु कुष्ठं पूगफलं तथा॥ सैंधवं शृंगवेरं च गोमूत्रेण विरेचनम् ॥ ६१ ॥ नीलिनीफलचूर्णं च नागराभययोस्तथा ॥ लिह्याद्गुडेन सलिलं पश्चादुष्णं पिबेन्नरः ॥ ६२ ॥ पिप्पल्यादिकषायेण पिबेत्पिष्टां हरीतकीम् ॥ सैंधवोपहितः सद्य एष योगो विरेचयेत् ॥ ६३ ॥

हरडेकी छाल, विडंग, सेंधानमक, सोंठ, निशोथ, मिरच इन्हें समभाग ले गोमूत्रके संग लेनेसे विरेचन होता है ॥६०॥ हरडे, देवदारु, कूठ, सुपारी, सेंधानमक, सोंठ इन्हें गोमूत्रके संग लेनेसे भी विरेचन होता है ॥ ६१ ॥ कालादाना चूर्णकर सोंठ और हरडे मिलाकर गुडके साथ चाटे (खाय) ऊपरसे गरम पानी पीवे तो मनुष्यको विरेचन उत्तम हो ॥ ६२ ॥ हरडेकी छालको पिप्पल्यादिगणके क्वाथमें पीस सेंधानमक मिलाकर पीवे तो यह योग सद्यही विरेचन करता है ॥ ६३ ॥

हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा ॥ सैंधवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी ॥ ६४ ॥ वातानुलोमनी वृष्या चेन्द्रियाणां प्रसादनी ॥ संतर्पणकृतान् रोगान् प्रायो हंति हरीतकी ॥६५॥

सोंठ और गुडके संग भक्षण करी हुई हरीतकी अथवा सेंधानमकके संग सेवन करी हुई हरीतकी निरंतर अग्निको दीपन करनेवाली होती है ॥ ६४ ॥ हरीतकी (बडी हरडे) वायुको अनुलोमन करती है, वृष्य है, इंद्रियोंको प्रसन्न करती है और प्रायः संतर्पणकृत (तृप्ति, अधिकभोजन, गुरुभोजन, अतिमात्रायुक्त पदार्थसे उपजे) रोगोंको नाश करती है ॥ ६५ ॥

(सूत्र ६०) विडगानीति बहुत्वेन बहुवचनम्।

शीतमामलकं रूक्षं पित्तमेदःकफापहम् ॥ विभीतकमनुष्णं च कफपित्तनिबर्हणम् ॥ ६६ ॥ त्रीण्यप्यम्लकषायाणि सतिक्तमधुराणि च ॥ त्रिफला सर्वरोगघ्नी त्रिभागघृतमूर्च्छिता ॥ ६७ ॥ वयसः स्थापनं चापि कुर्यात्सततसेविता ॥ हरीतकीविधानेन फलान्येवं प्रयोजयेत् ॥ ६८ ॥

आंवला ठंढा है, रूखा है, पित्त, मेद और कफका नाश करता है । तथा बहेडा अनुष्ण (गरम न ठंढा) है, कफ और पित्तका नाशक है ॥ ६६ ॥ ये तीनों ही खट्टे, कसेले और कडवास और मिठाससे मिले हुए हैं । यह तीनों फलोंका समाहार त्रिफला तीन भाग घृतमें संयुक्त किया हुआ सब रोगोंको नाश करता है ॥ ६७ ॥ और निरंतर सेवन किया हुआ अवस्थाको स्थिर करता है इन तीनों फलों (त्रिफला) को हरीतकीके विधानके अनुसार (विरेचनके लिये) उपयोग करे ऐसेही सब विरेचनीय फलोंको करे ॥ ६८ ॥

विरेचनानि सर्वाणि विशेषाच्चतुरंगुलात् ॥ फलं काले समुद्धृत्य सिकतायां निधापयेत् ॥ ६९ ॥ सप्ताहमातपे शुष्कं ततो मज्जानमुद्धरेत् ॥ तैलं ग्राह्यं जले पक्त्वा तिलवद्वा प्रपीडच च ॥ ७० ॥ तस्योपयोगो बालानां यावद्वर्षाणि द्वादश ॥ ७१ ॥

चतुरंगुल (किरमाल) के विशेषकर सब विरेचनयोग यों हैं कि फलोंके समय उसके फलोंको लेकर रेतमें रक्खे ॥ ६९ ॥ फिर सात दिन तक धूपमें सुखाकर उनकी गिरी निकाल ले फिर पानीमें औटाकर या तिलोंकी तरह कोल्हूमें पेरकर तेल निकालले ॥ ७० ॥ इसका उपयोग बारह वर्षतकके बालकोंके लिये श्रेष्ठ है ॥ ७१ ॥

लिह्यादेरंडतैलेन कुष्ठं त्रिकटुकान्वितम् ॥ सुखोदकं चानुपिबेदेष योगो विरेचयेत् ॥ ७२ ॥ एरंडतैलं त्रिफलाक्वाथेन द्विगुणेन तु ॥ युक्तं पीतं तथा क्षीररसाभ्यां तु विरेचयेत् ॥ ७३ ॥ बालवृद्धक्षतक्षीणसुकुमारेषु योजितम् ॥ फलानां विधिरुद्दिष्टः क्षीराणां शृणु सुश्रुत ॥ ७४ ॥

अरंडके तेलके साथ कूठ और त्रिकटु मिलाकर पानकर ऊपरसे निवाया जल पीवे यह योग विरेचन करता है ॥ ७२ ॥ अथवा अरंडका तैल दुगुने या तिगुने

त्रिफलाके काथसे पीवे । तथा दूधके संग या मांसरसके संग अरंडका तैल पीवे तो उत्तम विरेचन हो ॥ ७३ ॥ यह रस इस प्रकारसे बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण और कोमल मनुष्योंको उपयोग करना चाहिये । फलोंकी विधि दिखलादी हे सुश्रुत ! अब दुग्धोंकी विधि श्रवण करो ॥ ७४ ॥

विरेचनानां तीक्ष्णानां पयः सौधं परं मतम् ॥ अज्ञप्रयुक्तं भवति विषवत्कर्मविभ्रमात् ॥ ७५ ॥ विजानता प्रयुक्तं तु महान्तमपि संचयम् ॥ भिनत्त्याश्वेव दोषाणां रोगान् हंति च दुस्तरान् ॥ ७६ ॥

तीक्ष्णविरेचनोंमें सेहुंड (थोहर) का दूध उत्कृष्ट है वह अनजानके हाथका उपयोग किया हुआ या कर्मविभ्रम (थोडीसी भूल होजाने) से विषके तुल्य होजाता- है ॥ ७५ ॥ और जानकार वैद्यके हाथका उपयोग कियाहुआ दोषोंके भारी संच- यको भी भेदन करदेता है । तथा दारुणसे दारुण रोगोंको भी दूर करसकताहै ॥७६॥

महत्याः पञ्चमूल्यास्तु बृहत्योश्चैकशः पृथक् ॥ कषायैः समभागं तु तदांगारैर्विशोषितम् ॥ अम्लादिभिः पूर्ववत्तु प्रयोज्यं कोलसम्मितम् ॥ ७७ ॥ महावृक्षपयःपीतैर्यवागूस्तण्डुलैः कृता ॥ पीता विरेचयत्याशु गुडेनोत्कारिका कृता ॥ ७८ ॥ लेहो वा साधितः सम्यक् स्नुहीक्षीरसिताघृतैः ॥ भावितास्तु स्नुहीक्षीरे पिप्पल्यो लवणान्विताः ॥ ७९ ॥ चूर्णं कांपिल्लकं वापि तत्पीतं गुटिकीकृतम् ॥ ८० ॥

बृहत्पंचमूलकी पाचों औषधें और दोनों कटीली ये सब (सातों) वस्तु एक एक भाग ले क्काथ बनावे, पीछे उस क्काथमें उन सातोंमेंसे एकके तुल्य थोहरका दूध डालकर उसे अंगारोंपर गाढा करले (सुखाले) फिर उसे १ कोल- मात्र अम्लादि (धान्याम्लादि) के संग पूर्ववत् (निशोथकी विधिके तुल्य) प्रयुक्त करे । यह (तीक्ष्ण विरेचन है) ॥ ७७ ॥ अथवा थोहरके दूधमें भिगोये हुए चाव-

(सूत्र ७७) महती पचमूली बिल्वादिका । बृहत्योः क्षुद्राबृहत्योः कषायैः समभाग तत् सेहुण्डदुग्ध ग्राह्यम् । एतेन पचमूलीबृहतीकषायाणां सप्तभागाः अष्टमस्तु सेहुंडदुग्धस्येति अंगारैर्विशोषयेत् । इति न ज्वलदग्नौ पाकखरत्वभयात् । (सूत्र ७८) महावृक्षपयःपीतैः सेहुंडदुग्धभावितैस्तण्डुलैः कृता यवागूः । गुडेनोत्कारिका कृता गुडेन कृता उत्कारिका लप्सिका वा वाशब्दोत्र लुप्तः । (सूत्र ८०) तत्पीतं सेहु- ण्डदुग्धभावितं कांपिल्लकं चूर्णम् । इति निबंधसंग्रहः ।

लोंकी यवागू बनाकर पीवे तो तत्काल विरेचन (तीक्ष्ण) करावे-अथवा गुडमें उत्कारिका (लप्सी) बनाकर खाई हुई तीक्ष्ण विरेचन करती है ॥७८॥ अथवा थोहरका दूध मिश्री और घृत मिला अवलेह बनाहुआ विरेचन करता है। अथवा थोहरके दूधमें भिगोई हुई पीपल लवणयुक्त विरेचन करती है ॥७९॥ अथवा कमेलेको थोहरके दूधमें भिगोकर गोली बनाले ये गोली भी तीक्ष्ण विरेचनी हैं ॥ ८० ॥

सप्तला शंखिनी दंती त्रिवृदारग्वधं गवाम् ॥ मूत्रेणाप्लाव्य सप्ताहं स्नुहीक्षीरे ततः परम् ॥ ८१ ॥ कीर्णं तेनैव चूर्णेन माल्यं वसनमेव च ॥ आघ्रायावृत्य वा सम्यङ्मृदुकोष्ठो विरिच्यते ॥ ८२ ॥

सप्तला (एकप्रकारका थोहर पीले दूधवाला), शंखिनी (यवतिक्ता) दंती और किरमाल इन्हें गोमूत्रमें सात दिन भावना दे फिर थोहरके दूधमें भावना दे ॥ ८१ ॥ फिर (सुखाकर चूर्ण करले) उस चूर्णको माला या वस्त्रोंमें लगा दे उन्हे सूँघकर या शरीरपर अच्छी तरह लगनेसे मृदुकोष्ठ मनुष्यको विरेचन (जुल्लाब) होजाता है ॥ ८२ ॥

क्षीरत्वक्फलमूलानां विधानैः परिकीर्त्तितैः ॥
अवेक्ष्य सम्यग्रोगादीन् यथावदुपयोजयेत् ॥ ८३ ॥

विरेचनीयदुग्धों, छालों, फलों और मूलोंके वर्णन कियेहुए विधानोंको विचार कर और रोग तथा अवस्था, देश और समय आदि सब बातें देखकर जहां जिस जिसका उपयोग यथावत् उचित हो वहां उस२का ठीक २ उपयोग करे। विशेषकर (थोहरके दुग्धकेसे तीक्ष्ण प्रयोगोंको हरेक मनुष्य नहीं करे इसे याद रखना) ॥८३॥

त्रिवृच्छाणमितास्तिस्रस्तिस्रश्च त्रिफलात्वचः ॥ विडंगपिप्पलीक्षारशाणास्तिस्रश्च चूर्णिताः ॥ ८४ ॥ लिह्यात्सर्पिर्मधुभ्यां च मोदकं वा गुडेन च ॥ भक्षयेन्निष्परीहारमेतच्छ्रेष्ठं विरेचनम् ॥८५॥ गुल्मान् प्लीहोदरं कासं हलीमकमरोचकम् ॥ कफवातकृतांश्चान्यान् व्याधीनेतद्व्यपोहति ॥ ८६ ॥

निशोथ ३ शाण, त्रिफला ३ शाण, विडंग, पीपल, जवाखार तीनों ३ शाण इनका चूर्ण करले ॥ ८४ ॥ घृत और शहतके संग इस चूर्णको चाटे या गुडमें मिलाकर मोदक बनाले और इन्हें विरेचनके लिये खाय इनपर कुछ परहेज नहीं है यह श्रेष्ठ विरेचन है ॥ ८५ ॥ गुल्मको, प्लीहोदरको, खांसीको, हलीमकको, अरुचिको तथा अन्य कफवायुके रोगोंको यह प्रयोग नाश करता है ॥ ८६ ॥

घृतेषु तैलेषु पयःसु चापि मद्येषु मूत्रेषु तथा रसेषु॥भक्ष्यान्नलेह्येषु च तेषु तेषु विरेचनान्यग्रमतिर्विदध्यात् ॥ ८७ ॥ क्षीरं रसः कल्कमथो कषायः शृतश्च शीतश्च तथैव चूर्णम् ॥ कल्पाः षडेते खलु भेषजानां यथोत्तरं ते लघवः प्रदिष्टाः ॥ ८८ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

घृतोंमें, तेलोंमें, दुग्धोंमें, मद्योंमें, मूत्रोंमें, रसोंमें, भक्ष्य अन्नके पदार्थोंमें तथा अवलेहोंमें जैसे जहां उचित हो अग्रमति (बुद्धिमान् वैद्य) वहां उसी भांति विरेचनद्रव्योंका उपयोग करे ॥ ८७ ॥ दुग्ध (वृक्षादिका दूध), रस (स्वरस जो निचोडकर निकालाजाय), कल्क (पानीमें पीसकर वैसेही या उसे घोलकर छानाहुआ), कषाय (सोलहगुने पानीमें औटायाहुआ चौथाभाग रहा), शृत शीत (गरम या ठंढे पानीमें भिगोया हुआ) तथा चूर्ण औषधोंके ये छः६ कल्प हैं इनमेंसे उत्तरोत्तर लघु (हलके) हैं । जैसे दूधसे स्वरस हलका और स्वरससे कल्क इत्यादि ॥ ८८ ॥

यूनानीमें विरेचनको मुसहिल कहते हैं और डाक्टरीमें (Purgative) पुरगेटिव कहते हैं ।

इति पं० मुरलीधरशर्मवि० सुश्रुतस० .भा० टी० सूत्रस्थाने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ४५.

अथातो द्रवद्रव्यविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब यहांसे द्रवद्रव्य (पतले पदार्थोंकी) विधिनामक अध्यायका व्याख्यान करते हैं॥

जलवर्ग ।

पानीयमान्तरिक्षमनिर्देश्यरसममृतं जीवनं तर्पणं धारणमाश्वासजननं श्रमघ्नं क्लमपिपासामदमूर्च्छातन्द्रानिद्रादाहप्रशमनमेकान्ततः पथ्यतमं च । तदेवावनीपतितमन्यतमं रसमुपलभते स्थानविशेषान्नदीनदसरस्तडागवापीकूपचुण्डीप्रस्रवणोद्भिद्विकिरकेदारपल्वलादिषु स्थानेष्ववस्थितमिति ॥ १ ॥

आंतरिक्ष (आकाशीय) जल अव्यक्तरस, अमृत, जीवन, तृप्तिकर्ता, धारणकरनेवाला, आश्वास उत्पन्नकरनेवाला, श्रमनाशक, क्लम (थकान) और प्यास

(सूत्र १) अव्यक्तरसमनिर्देश्यरसमप्रकटरसमित्यर्थः । अमृतममृतमेवेत्यर्थः । अमृतत्वं पुनरस्य दोषप्रकोपस्याकरणात् अमृतं ब्रह्मरूपमित्यन्ये । एकांततः अतिशयेन । तदेवावनीपतितमांतरिक्ष जलं—

तथा मद और मूर्च्छा, तन्द्रा (आंखें झपीसी रहना) और नींद तथा दाहको शांत करनेवाला निरंतर अत्यन्त पथ्य है। वही आंतरिक्षजल पृथिवीमें पडकर किसी न किसी रसको प्राप्त होता है और स्थानविशेष करके नदी, नद, सरोवर, तलाव, बावडी, कूप, चौंड्य, प्रस्रवण (झिरना), उद्भिद (जहां पृथिवीसे पानी उपजता हो), विकिर (जहां बालू खोदनेसे पानी निकले), केदार (जहां झरने आदिका जल ऊपरसे गिरे), पल्वल (आनूपदेशके डोबडे जो चारोंतरफ तृणाच्छादित हों) इन स्थानोंमेंसे कहीं न कहीं स्थित होता है। आदिशब्द करके ह्रद, समुद्र, डहर आदि स्थानभी जानना ॥ १ ॥

तत्र लोहितकपिलपांडुपीतनीलशुक्लेष्ववनिप्रदेशेषु मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषायाणि यथासंख्यमुदकानि संभवंतीत्येके भाषंते। तत्तु न सम्यक्। तत्र पृथिव्यादीनामन्योन्यानुप्रवेशकृतः सलिलरसो भवत्युत्कर्षापकर्षेण ॥ २ ॥

तहां लाल, कपिल (पिंगल), पांडु, पीत, नील तथा शुक्ल पृथ्वीके प्रदेशोंमें मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कसेला जल यथाक्रम होता है। अर्थात् रक्तपृथ्वीमें मधुर और कपिलवर्ण पृथ्वीमें अम्ल (खट्टापनलिये) तथा पांडुवर्ण पृथ्वीमें लवणरसयुक्त (खारा) जल होता है। अर्थात् मिट्टीका रस (स्वाद) होता है इत्यादि। इसप्रकार कई आचार्य मानते हैं और कहते हैं। धन्वंतरिजी कहते हैं कि, यह ठीक नहीं इसमें ऐसा है कि पृथिव्यादि (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) का अन्योन्यानुप्रवेश अर्थात् पृथ्वीमें सबके अंशांशोंका प्रवेश होता है उसके उत्कर्ष (उत्कृष्टत्व) और अपकर्ष (हीनता) से जलका रस (स्वाद) होता है ॥ २ ॥

तत्र स्वगुणभूयिष्ठायां भूमावम्लं लवणं च। अंबुगुणभूयिष्ठायां मधुरम्। तेजोगुणभूयिष्ठायां कटुकं तिक्तं च। वायुगुणभूयिष्ठायां

—भूमिप्राप्तमन्यतम मधुरादिष्वेकतममुपलभते प्राप्नोतीति। नद्यो गंगाद्याः, नदाः सिंधुशोणादयः, सरःपुष्करः, तडागो बद्धसोपानः, वापी बद्धसोपाना कूपादधिका, कूपः प्रसिद्धः, चुंडी अवद्धकूपः, प्रस्रवणं झरना इति लोके। उद्भिद निम्नत ऊर्ध्वोत्तिष्ठज्जलस्थानं विकिर वालुकादिविकीर्यगृह्यमाणोदकस्थानम्, केदारः उपरितो निम्नपतज्जलस्थानम्, पल्वलमानूपदेशजं तृणादिच्छन्नं सूक्ष्मसरः, आदिग्रहणात् ह्रदसमुद्रादिग्रहणम्।

(सूत्र २) "प्रकृत्या दिव्यमुदक कृष्णायां मधुर जलम् ॥ कपिले कटुक तोयमूषरे लवणान्वितम्" (इति चरकः) वृद्धवाग्भटस्तु—"श्वेते कषाय तत्स्वादु कृष्णे तिक्तं च पांडरे ॥ नीले कषायमधुर देशे लवणमूषरे ॥ सक्षार कपिले मिश्रं मिश्रे" इति।

कषायम् । आकाशगुणभूयिष्ठायामव्यक्तरसमव्यक्तं ह्याकाशमित्यतस्तत्प्रधानमव्यक्तरसत्वात् । तत् पेयमांतरिक्षालाभे ॥ ३ ॥

उनमेंसे अपने (पृथ्वीके) गुण विशेषवाली भूमिमें अम्ल (खटाईलिये) अथवा खारा जल होता है । और जलके विशेषगुणवाली पृथ्वीमें मीठा जल होता है । अग्निके विशेषगुणवाली पृथ्वीमें चरपरा (जिसमें चरपराटकी झालसीहो) अथवा कडवा जलका स्वाद होता है । और जिस पृथ्वीमें वायुके गुण प्रधान हों उसके जलका स्वाद कसैला होता है । और आकाशके अधिक गुणवाली पृथ्वीमें जलका स्वाद अव्यक्त अर्थात् अप्रगट (कुछ स्वाद नहीं) होता है क्योंकि, आकाश अव्यक्त (रसवाला) है और उसका अव्यक्तरस प्रधान होनेसे आंतरिक्ष जलके अभावमें वही आकाशगुणभूयिष्ठ भूमिका जल पीनेयोग्य होता है । (वह हलका होता है) ॥३॥

तत्रान्तरिक्षं चतुर्विधं तद्यथा-धारं कारं तौषारं हैममिति । तेषां धारं प्रधानं लघुत्वात् तत्पुनर्द्विविधं गांगं सामुद्रं चेति ॥ ४ ॥

तहां आंतरिक्ष (आकाशीय) जल चार प्रकारका होता है । जैसे १ धार (जो धारसे वर्षा हो उसका जल),२ कार (कर अर्थात् ओले गिरें और गलकर पानी हो जाय), ३ तौषार (जो ओसकी बिंदुवोंसे उत्पन्न हो), ४ हैम (जो बरफका जल हो अर्थात् पर्वतोंपर जो बरफ गिरती है वह पिघलकर जल हो जाय) इन सब (चारों) में धार (मेघधाराका) जल प्रधान है हलका होनेसे । फिर वह दो प्रकारका है १ गांग (आकाशगंगाका जल अथवा गंगाजलके समान गुणदायक अथवा श्रीगंगाजल अति लघु होनेसे सूर्यकी किरणोंसे ऊपरको खिंचकर बहुत ऊँचे चढजाता है) और २ सामुद्र (आकाशके नीचेके भागका जल अथवा समुद्रका जल भारी होनेसे सूर्यकी किरणोंसे खिंचकर बहुत ऊँचे नहीं चढता) ॥४॥

तत्र गांगमाश्वयुजे मासि प्रायशो वर्षति । तयोर्द्वयोरपि परीक्षणं कुर्वीत शाल्योदनपिंडमकुथितमविदग्धं रजतभाजनोपहितं वर्षति देवे बहिष्कुर्वीत स यदि मुहूर्तं स्थितस्तादृश एव भवति तदा गांगं पततीत्यवगंतव्यम् । वर्णान्यत्वे सिक्थक्लेदं च सामुद्रमिति विद्यात्तन्नोपादेयम् ॥ ५ ॥

(सूत्र ५) येनाभिवृष्टममलं शाल्यन्नं राजतस्थितमक्लिन्नमविवर्णं वा तत्तोयं गांगमन्यथा सामुद्रं तन्न पातव्यं मासादाश्वयुजाद्विना इति वाग्भटः । चरके तु गांगसामुद्रयोर्विवेचनं नैव कृतम् । हारीतेन लिखितम् 'आंतरिक्षं तु द्विविधं गांगं सामुद्रिकं पयः' ।

: तहां गांग (आकाशके ऊपरले भागका) जल प्रायः आश्विनके महीनेमें बरसता है-(और आषाढ, श्रावण, भाद्रपद इन महीनोंमें सामुद्र अर्थात् आकाशके नीचेके भागका जल बरसता है) फिरभी उनकी परीक्षा करनी चाहिये कि पकाये हुए शालीचावलोंकी विना किरी और जिसमें चावल जल न गयेहों ऐसी साफ पिंडीसी बनाकर चांदीके पात्रमें रखकर मेहवर्षतेमें बाहर रखदे यदि वह एकमुहूर्त वैसी की वैसी पिंडी बनी रहे (न तो पिंडी विखरे और न घुलकर जल गधला हो) तो जानना चाहिये कि, गांगजल वर्षता है और यदि वर्ण पलटजाय (जल मैला गधला होजाय) अथवा पिण्डी विखरजाय तो जानले कि, सामुद्रजल वर्षता है और यदि सामुद्रजल हो तो वह ग्रहण करने योग्य नहीं ॥ ५ ॥

सामुद्रमप्याश्वयुजे मासि गृहीतं गांगवद्भवति । गांगं पुनः प्रधानं तदुपाददीताश्वयुजि मासि । शुचिशुक्लविततपटैकदेशच्युतमथवा हर्म्यतलपरिभ्रष्टमन्यैर्वा शुचिभिर्भाजनैर्गृहीतं सौवर्णे राजते मृन्मये वा पात्रे निदध्यात्तत्सर्वकालमुपयुंजीत । तस्यालाभे भौमं तच्चाकाशगुणबहुलम् ॥ ६ ॥

सामुद्रजल भी आश्विनके महीनेमें ग्रहण कियाहुआ गांगजलके समान होता है । परंच फिर भी गांगजल प्रधान है वही आश्विनके महीनेमें इकट्ठा करलेना चाहिये जो कि पवित्र साफ सुपेद बडे (फैले हुए चारों कोने किसी ऊँचेपर बँधे हुए) वस्त्रके एकदेशसे गिरता हुआ अथवा पक्के मकानकी साफ छतसे गिरा हुआ अथवा अन्य पवित्र सुन्दर पात्रोंसे इकट्ठा कियाहुआ हो उसे सोने या चांदी या मिट्टीके पात्रोंमें रखले उसका उपयोग सब कालमें करे । यदि वह न हो तो फिर पृथिवीसे निकलाजल उपयोग करना चाहिये पर वह पृथ्वीका जल भी आकाशगुणके अधिकतावाला चाहिये (जिसे पहले कहचुके हैं) ॥ ६ ॥

गांग और सामुद्रजलके गुण-हारीतोक्त (परिशिष्ट.)

तद्धारयेच्च मतिमान्बलयं मेध्यं रसायनम् । श्रमक्लमपिपासाघ्नं कंडूदोषनिवारणम् ॥ लघुमूर्च्छातृषाच्छर्दिमूत्रस्तंभविनाशनम् । गंगोदकस्य वृष्टिः स्याद्दिवसे वा प्रदृश्यते ॥

अर्थ-उस गांगजलको बुद्धिमान् धारण करे वह बलकर्ता पवित्र रसायन है और श्रम, ग्लानि प्यासको नाश करता है, खुजलीके दोषको हरता है, हलका है, मूर्च्छा, तृषा, रोग, वमन, मूत्रघातको दूर करता है यह गंगोदककी वर्षाके गुण हैं तथा सूर्य दीखते हुए वर्षा होनेके भी जलके येही गुण हैं ।

आविलं समलं नीलं घनं पीतमथापि वा। सक्षारं पिच्छलं चैव सामुद्रं तन्निगद्यते॥ सघनं कफकृच्चैव कंडूश्लीपदकारकम्। सवातलं च विज्ञेयं रक्तदोषार्तिकारिणम्॥

अर्थ-गधला, मैला, नीला, भारी अथवा पीला क्षारयुक्त (खरोहा) और गाढा हो वह सामुद्रजल है, वह सामुद्रजल भारी है, कफकारक है, खाज और श्लीपद करता है तथा वादी है (वातव्याधिकारक है) तथा रक्तविकार (कुष्ठ उदर्द आदि फोडे फुन्सी) करता है।

तत्पुनः सप्तविधम्। तद्यथा-कौपं नादेयं सारसं ताडागं प्रास्रवणमौद्भिदं चौण्डयमिति ॥७॥ तत्र वर्षास्वान्तरिक्षमौद्भिदं वा सेवेत महागुणत्वात्। शरदि सर्वं प्रसन्नत्वात्। हेमंते सारसं ताडागं वा वसंते कौपं प्रास्रवणं वा ग्रीष्मेप्येवं प्रावृषि चौण्डयमनवमनभिवृष्टं सर्वं चेति ॥ ८॥

पुनः वह जल सात प्रकारका है। जैसे-१ कौप (कूवेका जल), २ नदीका, ३ सरोवरका, ४ तलावका, ५ प्रस्रवण (झिरनेका), ६ औद्भिद (पृथ्वीसे निकलता हुआ), ७ चौंडय (खावडे कच्ची कुईका जल) जिनमेंसे वर्षामें (वर्षाके अन्तमें) आकाशका जल सेवन करना चाहिये अथवा औद्भिद पृथ्वीसे उपजा। क्योंकि इनमें अधिक गुण होते हैं और शरदृऋतुमें सब जलमात्र श्रेष्ठ हैं (क्योंकि नदी, तडाग आदि सबका जल स्वच्छ और) प्रसन्न होनेसे। तथा हेमन्तमें सरोवरका तथा तलावका पानी पीना ठीक है और वसंतमें कूवे अथवा झिरनेका जल पीना और इसीप्रकार ग्रीष्ममें भी (कूवे या झिरनेका जल पीना चाहिये) और प्रावृड्ऋतुमें चुंडीका जल पीना अथवा जो पुराना और मेघ बरसेका न हो वह सब (अर्थात् कूपका) पीना उचित है॥ ७॥ ८॥

नवीनजलका निषेध।

कीटमूत्रपुरीषांडशवकोथप्रदूषितम्॥ तृणपर्णोत्करयुतं कलुषं विषसंयुतम्॥ ९॥ योऽवगाहेत वर्षासु पिबेद्वापि नवं जलम्॥ स बाह्याभ्यंतरान्रोगान्प्राप्नुयात् क्षिप्रमेव तु॥ १०॥

कीडे, मूत्र, विष्ठा, जीवोंके अंडे, मरेजीवोंके शरीर तथा कोथकरके दूषित और तृण, वृक्षोंके पत्ते तथा उत्कर (कूडा) इन करके संयुक्त तथा गदला (मैला)

(सूत्र ८) तत्र वर्षाशब्दो वर्षान्ते वर्तते आश्वयुजे मासे च, न तु भाद्रपदे तत्रान्तरिक्षजलस्य निषिद्धत्वात्। अनभिवृष्टमनाभसं तच्च कौपमिति (डल्हनः)

विषयुक्त जो वर्षाका नवीन जल होता है उसमें जो मनुष्य स्नान करता है या उस नये पानीको पीता है वह मनुष्य बाहरके त्वचासंबन्धी (फोडे फुंसी नारू आदि) रोग तथा आभ्यन्तर (भीतरके रोग उदरविकार ज्वर अजीर्ण आदि) रोगोंको तत्कालही प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

तत्र यत् शैवालपंकहठतृणपद्मपत्रप्रभृतिभिरवच्छन्नं शशिसूर्यकिरणानिलैर्नाभिजुष्टं गंधवर्णरसोपसृष्टं च तद्व्यापन्नमिति विद्यात् ॥ ११ ॥ तस्य स्पर्शरूपरसगंधवीर्यविपाकदोषाः षट् संभवंति ॥ १२ ॥

इनमें जो काई, कीचड, हठ (एकप्रकारके तृण होते हैं जिनकी जड पानीहीमें रहती है और बहुत छोटी २ पत्ती होती है) और तिनके कवल (सिंघाडे आदि और कई जलकी बेल आदि) के पत्तोंसे व्याप्त हो तथा चन्द्रमा सूर्यकी किरणों और पवन करके वर्जित तथा गन्ध रंग स्वादके विकारोंसहित हो उसे जानले कि यह दूषित जल है ॥ ११ ॥ उसके छह दोष हैं १ स्पर्शदोष, २ रूपदोष (जो बुरा दीखे), ३ रसदोष (जिसका स्वाद खराब हो), ४ गन्धदोष (जिसकी वास खराब हो), ५ वीर्यदोष, ६ विपाकदोष ॥ १२ ॥

तत्र खरता पैच्छिल्यमौष्ण्यं दंतग्राहिता च स्पर्शदोषाः । पंकसिकताशैवालबहुवर्णता रूपदोषाः । व्यक्तरसता रसदोषः । अनिष्टगंधता गंधदोषः । यदुपयुक्तं तृष्णागौरवशूलकफप्रसेकानापादयति स वीर्यदोषः । यदुपयुक्तं चिराद्विपच्यते विष्टंभाद्वा स विपाकदोष इति । त एते आंतरिक्षे न संति ॥ १३ ॥

उनमेंसे खरता (खरखराट), पिच्छलता (तारसे छूटना), गरम होना और दंतग्राहिता (जिससे दांत बंधजायँ) ये स्पर्शके दोष हैं । और कीचड, बालू रेता, शिवाल (और तृणादि) तथा अनेक रंग (काला, पीला, मैला आदि) दीखना यह रूपके दोष हैं । तथा रसकी प्रगटता (अनिष्टरस, कडुवापन, वकबकाहट, खारापन आदि) यह रसके दोष हैं । और बुरी वास आना गंधका दूषण है । तथा जिसके पीनेसे अतिप्यास लगजाय, शरीरमें भारीपन होना, शूल और मुहसे कफ (राल गिरना) आदि विकार उत्पन्न करे तो वह वीर्यके दोष हैं । तथा पिया हुआ जल देरसे पचे या विष्टंभकरके पचे (कडी खट्टी डकारें आवें) तो वह विपाकके दोष हैं । ये ऊपर कहे हुए छहों दोष आश्विनके महीनेके आकाशीय

(सूत्र ११) हठः जलकुम्भिका अभूमिलग्नमूलतृणविशेषः । (डल्हनः)

वर्षाके (गांग) जलमें नहीं होते तथा आकाशगुणाधिक पृथ्वीके जलमें भी प्रायः नहीं होते ॥ १३ ॥

व्यापन्नानामग्निक्वथनं सूर्यातपप्रतापनं तप्तायःपिंडसिकतालोष्टाणां वा निर्वापणं प्रसादनं च कर्तव्यं नागचंपकोत्पलपाटलापुष्पप्रभृतिभिश्चाधिवासनमिति ॥ १४ ॥

दूषितजलका शोधन इसप्रकारसे करे कि, अग्निपर तपाना (औटाना या यथोचित भाग जलादेना) तथा सूर्यकी धूपमें गरम करके रखदेना । तथा लोहका पिंडा, बालू रेता या गंगाजमुनाकी रेणुका तथा लोष्ट (ईंट, कोयले आदि) अग्निमें लाल करके डालना अथवा प्रसादन करना (नितारलेना छानलेना आदि) अथवा (यदि गंधदोष हो या सुगंधित करना हो तो) नागकेशर, चम्पा, कमल, पाडल आदिके पुष्पोंसे (पुष्पोंके मकरंद तथा अर्कोंसे) सुगंधित करना ।(प्रभृतिशब्दसे यहांपर केतक (केवडा) शतपत्री (सेवती गुलाब) आदिके पुष्पादिका ग्रहणकरना)१४

सौवर्णे राजते ताम्रे कांस्ये मणिमये तथा ॥
पुष्पावतंसं भौमे वा सुगंधिसलिलं पिबेत् ॥ १५ ॥

सुवर्णके पात्रमें, चाँदीके पात्रमें, ताँबेके पात्रमें, काँसीके पात्रमें तथा मणिमय (स्फटिक अर्थात् बिल्लौरके)पात्रमें अथवा मिट्टीके पात्रमें रक्खा जल ऊपर लिखे हुए पुष्पोंकी सुगंधसे सुगंधित कियाहुआ ऐसा जल पीना चाहिये ॥ १५ ॥

व्यापन्नं वर्जयेन्नित्यं तोयं यच्चाप्यनार्तवम् ॥ दोषसंजननं ह्येतन्नाददीताहितं तु तत् ॥ १६ ॥ व्यापन्नं सलिलं यस्तु पिबतीहाप्रसाधितम् ॥ श्वयथुं पांडुरोगं च त्वग्दोषमविपाकताम् ॥१७॥ श्वासकासप्रतिश्यायशूलगुल्मोदराणि च ॥ अन्यान्वा विषमान् रोगान्प्राप्नुयात्क्षिप्रमेव च ॥ १८ ॥

जो जल दोषयुक्त हो उसे सदा त्यागना चाहिये । तथा जो बेऋतुका हो उसे भी न पीवे यह दोष उत्पन्न करनेवाला और अहित होता है ॥ १६ ॥ और जो दूषित जलको बिना साधनकिये पीता है तो उसे शोथ, पांडुरोग, त्वचाकी व्याधि (कुष्ठादि) तथा अविपाकता (बेपचाव) होता है ॥ १७ ॥ तथा श्वास,

(सूत्र १४) नागः नागकेशरम् । प्रभृतिशब्दग्रहणात् केतकमल्लिकादिपुष्पाणि ।

(सूत्र १५) पुष्पावतंस पुष्पसुगंधीकृत पात्रे इति शेषः । (सूत्र १६) अनार्तवमिति कृत्यविशेषे पानुपयोग्यम् । अनृतुवृष्टमिति केचिदिति निबंधसंग्रहः ।

खांसी, जुखाम, शूल, गुल्म, उदररोग (प्लीहादि) अथवा और २ विषमरोग (ज्वरादिक) शीघ्रही प्राप्त हो जाते हैं ॥ १८ ॥

जलका निर्मलीकरण ।

तत्र सप्त कलुषस्य प्रसादनानि भवंति । तद्यथा-कतकगोमेदक-बिसग्रंथिशैवालमूलवस्त्राणि मुक्ता मणिश्चेति ॥ १९ ॥

तहां मैले जलके शुद्ध और निर्मल करनेकी सात वस्तुयें हैं । १कतक (कतकके फलोंके बीज जिन्हे निर्मली कहते हैं उनकी गिरी जलमें पीसकर गधले पानीमें मिलादे थोडी देर रखदे तो नीचे सब गधलापन बैठजायगा और जल नितरके स्वच्छ होजायगा),२ गोमेद (एकप्रकार शरवती रंगका रत्न होता है उस रत्नके डाल देनेसे जल निर्मल होजाता है), ३ बिसग्रंथि (कमलकी जड), ४ शैवालमूल (शिवालकी जड इन्हें डालनेसे जल निर्मल होता है), ५ वस्त्र (वस्त्रमें छाननेसे या वस्त्रादिकी वत्तीसी बनाकर चुवालेनेसे जल निर्मल होता है), ६ मुक्ता (मोती), ७ मणि (मरकतमणि) और चकारके ग्रहणसे शंख, सीप आदिसे भी जल निर्मल होता है ॥ १९ ॥

जलपात्र रखनेकी वस्तु ।

पंच निक्षेपणानि भवंति तद्यथा-फलकं त्र्यष्टकं मुंजवलयउदक-मंचिका शिक्यं चेति ॥ २० ॥

जहां जल स्थापन किया (रक्खा) जाता है उसमें पांच वस्तु ठीक योग्य होती- हैं । जैसे १ फलक (पट्टा या चौकी),२ त्र्यष्टक (टिकटी), ३ मुंजवलय(मूंजके बने कंकणाकार ईंढवेसे), ४ उदकमंचिका (वेत या बांसोंकी बनी मंचाकार टट्टी या टांड) और ५ शिक्य (छींके जो मूँजके बने घरोंमें लटके होते हैं) ॥ २० ॥

जल ठंढा करनेकी विधि ।

सप्त शीतीकरणानि भवंति प्रवातस्थापनमुदकप्रक्षेपणं यष्टिका-भ्रामणं व्यजनं वस्त्रोद्धरणं वालुकाप्रक्षेपणं शिक्यावलंबनं चेति२१॥

(सूत्र १९) कलुषस्य मलिनस्य । बिसग्रंथिः पद्ममूलम् । बिसग्रथीत्यस्याग्रे पर्णीमूलमिति पाठांतरं पठत्यन्ये पर्णी पानीयपृष्ठजा तस्या मूल जटा इति निबंधकारः ।

(सूत्र २०) पंच निक्षेपणानीति "निक्षेपणम्" यत्र जल निक्षिप्यते स्थाप्यते तन्निक्षेपणं तेन भूम्यादि-स्पर्शाभावः कीटपिपीलिकादीनामससर्गश्च । फलक काष्ठपट्टकं शाल्मलीकाष्ठादिविराचितम् । त्र्यष्टकमष्टा-स्रदंडत्रयसयोगः । मुंजवलयः मुंजादिरचितो वलयाकारः । उदकमाचिका आकाशांतराले निरंतरनिहितवेत्र-वैणवादिविरचिता । शिक्यं गुजादिविरचित प्रसिद्धम् । (इति डल्हनः) (सूत्र २१) उदकप्रक्षेपण-मित्यत्र उदके उदकपूर्णपात्रे अन्यजलपात्रप्रक्षेपणं, वालुकाप्रक्षेपणमिति उदकपात्रस्य वालुकामध्ये निक्षेपण-मित्यर्थः न तु जलपात्रे वालुकानिक्षेपणम् ।(इति डल्हनः)

जल ठंढा करनेकी सात युक्ति हैं १ प्रवातस्थापन (मिट्टीके पात्रमें भरकर हवामें रखदेना), २ उदकप्रक्षेपण- (ठंढे हिमके जलसे भरेपात्रमें जलपात्र रखना), ३ यष्टिकाभ्रामण (लकडीसे उलट पलट करना या पंखडीदार काठकी फिरकीसे ऊपर नीचे करना), ४ व्यजन (चौडे पात्रमें डालकर पंखेसे पवन करना), ५ वस्त्रोद्धरण (भीगे कपडेमें लपेटकर रखना), ६ वालुकाप्रक्षेपण (जलसे भरे मट्टीके पात्रको वालूमें रखना गाडदेना) और ७ शिक्यावलंबन (जलपात्रको छींकेपर रखकर हिलाते रहना) ॥ २१ ॥

उत्तमजल ।

निर्गंधमव्यक्तरसं तृष्णाघ्नं शुचि शीतलम् ॥
अच्छं लघु च हृद्यं च तोयं गुणवदुच्यते ॥ २२ ॥

गंधरहित, अव्यक्तरसवाला, तृषाको शांत करनेवाला, पवित्र, शीतल और स्वच्छ (साफ), हलका और हृदयको प्रिय ऐसा जल गुणकारक और श्रेष्ठ होता है ॥ २२ ॥

नदियोंके जलके गुण।

तत्र नद्यः पश्चिमाभिमुखाः पथ्याः लघूदकत्वात् । पूर्वाभिमुखास्तु न प्रशस्यंते गुरूदकत्वात् । दक्षिणाभिमुखा नातिदोषलाः साधारणत्वात् ॥ २३ ॥

पश्चिमको बहनेवाली नदी (नर्मदा आदि) पथ्य हैं क्योंकि उनका जल हलका है । और पूर्वको बहनेवाली नदी गोदावरी (आदि) श्रेष्ठ नहीं क्योंकि उनका जल भारी है । और दक्षिणको बहनेवाली (सिंधुआदि) नदी अतिदोषल नहीं हैं क्योंकि उनका जल साधारण है ॥ २३ ॥

तत्र सह्यप्रभवाः कुष्ठं जनयंति । विंध्यप्रभवाः कुष्ठं पांडुरोगं च । मलयप्रभवाः क्रिमीन् । महेंद्रप्रभवाः श्लीपदोदराणि । हिमवत्प्रभवा हृद्रोगश्वयथुशिरोरोगश्लीपदगलगंडान् । प्राच्यावन्त्या अपरावन्त्याश्चार्शांस्युपजनयंति । पारियात्रप्रभवाः पथ्याः कालारोग्यकार्य्यं इति ॥ २४ ॥

(सूत्र २३) पश्चिमाभिमुखा जांगलपश्चिमदेशस्थाः पश्चिमसमुद्रगाः पूर्वाभिमुखा अनूपपूर्वदेशस्थाः पूर्वसमुद्रगा इति । (सूत्र २४) मलयप्रभवा नद्यो द्विविधाः पाषाणसिकतावाहिन्यः पथ्याः । अपाषाणसिकतावाहिन्यः क्रुमीन जनयति । हिमवत्प्रभवा अपि द्विविधाः हिमवदुपरिभागप्रभवाः पथ्याः। 'हिमव-

सह्याद्रिपर्वतसे निकलीहुई नदियें कुष्ठ उत्पन्न करती हैं और विन्ध्याचलसे निकलीहुई कुष्ठ और पांडुरोग करती हैं । और मलयगिरिसे निकलीहुई कृमिरोग करती हैं । तथा महेंद्रपर्वतसे निकली हुई श्लीपद और उदररोग करती हैं। और हिमालयसे निकलीहुई हृद्रोग, शोथ, शिरोरोग, श्लीपद और गलगण्ड उत्पन्न करती हैं। अवंती उज्जायिनीसे पूर्वकी नदियें तथा उज्जायिनीसे पश्चिमकी नदियें बवासीर उत्पन्न करती हैं। और पारियात्रसे निकलीहुई नदियें पथ्य हैं और समय पर आरोग्य करनेवाली हैं ॥ २४ ॥

नद्यः शीघ्रवहा लघ्व्यः प्रोक्ता याश्चामलोदकाः ॥ गुर्व्यः शैवालसञ्छन्ना कलुषा मंदगाश्च याः॥२५॥ प्रायेण नद्यो मरुषु सतिक्ता लवणान्विताः ॥ ईषत्कषायमधुरा लघुपाका बले हिताः ॥ २६ ॥

जो नदियें शीघ्र बहनेवाली हैं तथा निर्मलजलवाली हैं वे हलकी हैं (अर्थात उनका पानी हलका होताहै) और जिनमें शिवाल छाया रहे तथा मैली हों मन्द मन्द बहनेवाली हों वे नदियें भारी होती हैं (अर्थात् उनका पानी भारी होता है) ॥ २५ ॥ प्रायः मरुदेशकी नदियें तिक्तरससहित और कुछ२ लवणरस (खारिसी) हैं तथा कुछ २ कसेली और मीठी होती हैं वे लघुपाक (हलके परिपाकवाली) और बलके लिये हित होती हैं ॥ २६ ॥

भौमजलग्रहणकाल ।

तत्र सर्वेषां भौमानां ग्रहणं प्रत्युषसि तत्र ह्यमलत्वं शैत्यं चाधिकं भवति स एव चापां परो गुण इति ॥ २७ ॥

–त्रप्रभवाः पथ्याः पुण्या देवर्षिसेविताः' इति चरकोक्तेः । वाग्भटोऽप्याह–'हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्यास्ता एव च स्थिराः ॥ कृमिश्लीपदहृत्कंठशिरोरोगान् प्रकुर्वते'' इति । अधोभागप्रभवाः हृद्रोगादीन् जनयति । एवं पारियात्रभवा अपि तडागजाः पथ्याः दरीजा दोषलाः इति निबंधसंग्रहः। प्राच्यावंत्या इति अवंती उज्जयिनी तयोपलक्षितो देशस्तस्य पूर्वस्यां जाताः प्राच्यावंत्याः, अपरावंत्या इति पश्चिमस्यां जाता इति डल्हनः ।

(वक्तव्य सूत्र २५–२६) जो नदियोंके गुण कहे है वे बहुतकालतक सेवनकरनेपर समझने चाहिये तथा जिनकी प्रकृतिके अनुकूल है उन्हे सेवनसेभी प्रायः उपाधियां नहीं होती । तथा निबंधसंग्रह सुश्रुतकी टीकामे लिखा है कि मलयाचलवाहिनी नदी दो प्रकारकी होती हैं १ वह जो पाषाणरेतीमें वहे और २ वह जो पाषाणरेतीमे नहीं वहे उनमेसे पाषाणरेतीमे वहनेवाली पथ्य है और पाषाणरेतीमे न वहनेवाली कृमि पैदा करती हैं। इसी प्रकार हिमालयसे निकलनेवालीभी दो प्रकारकी हैं जिनमेसे जो हिमालयके ऊपरले (ऊंचे) भागसे निकलनेवाली (जैसे गंगा, यमुना आदि) पथ्य हैं और नीचेके भागसे निकलने वाली हृद्रोग, श्वयथु, शिरोरोग, श्लीपदादि पैदा करती है। तथा पारियात्रकी नदीभी दो प्रकारकी हैं उनमे जो सरोवरसे निकले वे पथ्य हैं और दरीसे उत्पन्न होनेवाली दोषयुक्त हैं।

तहां पृथ्वीके सब जलोंका ग्रहण प्रभातसमयमें चाहिये क्योंकि प्रभातजलमें मलता और शीतलता अधिक होती है और यही जलका परमगुण है ॥ २७ ॥

देवार्ककिरणैर्जुष्टं निशायामिंदुरश्मिभिः ॥ अरूक्षमनभिष्यंदि तत्तुल्यं गगनांबुना ॥ २८ ॥ गगनांबु त्रिदोषघ्नं गृहीतं यत् सुभाजने ॥ बल्यं रसायनं मेध्यं पात्रापेक्षि ततः परम् ॥२९॥

जो जल दिनमें सूर्यकी किरणों और रात्रिमें चन्द्रमाकी किरणोंसे प्राप्त हो तथा रूक्ष न हो और अभिष्यंदीभी न हो वह जल आकाशीय (आंतरिक्ष) जलके मान होता है ॥ २८ ॥ आंतरिक्षजल (आश्विनका संगृहीत) त्रिदोषका नाश नेवाला होता है। और यदि वह आंतरिक्षजल अच्छे पात्रमें स्थापन किया हो बलकरता है, रसायन, और पवित्र होता है। और इसके सिवाय जैसे पात्रमें पन किया हो उसके अनुसार गुणभी होते हैं ॥ २९ ॥

चन्द्रकांतीयजल।

क्षोघ्नं शीतलं ह्लादि ज्वरदाहविषापहम् ॥ चंद्रकांतोद्भवं वारि पित्तघ्नं विमलं स्मृतम् ॥ ३० ॥

चन्द्रकांतमणिका जल राक्षसीयविकारनाशक है, शीतल है,आह्लाददायक है,ज्वर ह, विष इनको दूर करता है, पित्तको शांत करता है और निर्मल होताहै॥ ३० ॥

शीतजलपानविधि।

मूर्च्छापित्तोष्णदाहेषु विषे रक्ते मदात्यये॥ भ्रमक्लमपरीतेषु तमके मथो तथा ॥ ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च शीतमम्भः प्रशस्यते ॥ ३१ ॥

मूर्च्छा, पित्तरोग, उष्ण (शरद् और ग्रीष्मऋतुमें), दाह, विषके रोग, रक्तकार, मदात्ययरोग, भ्रम और क्लमयुक्तोंको तथा तमक, श्वास, छर्दिरोग और र्ध्वगामी रक्तपित्तमें शीतजलका पान श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥

शीतजलपाननिषेध ।

पार्श्वशूले प्रतिश्याये वातरोगे गलग्रहे॥ आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यःशुद्धे नवज्वरे॥हिक्कायां स्नेहपीते च शीतांबु परिवर्जयेत्३२।

पसलीके दरदमें, जुखाम (जुखामपके)में, वायुके रोगोंमें, गलग्रहरोगमें, पेट फरजानेमें, कोठा बंदहोने या आमकोष्ठमें, विरेचनादिके पीछे तत्काल (एकदिन)

(सूत्र २९) मेध्यं मेधाजनकं पवित्रं वा। 'पात्रापेक्षि ततः परम्' इति अतिश्रेष्ठभाजने गृहीतमधिकं करोतीत्यर्थः (इति निबंधसंग्रहः) (सूत्र ३१) तमके इति तमकः श्वासभेदे प्रतमके श्वासे मोहे च

तथा नवीन तपमें, हिचकीमें स्नेहपानके पीछे शीतल जलका त्याग रखना चाहिये (किंतु उष्णजल पीना चाहिये) ॥ ३२ ॥

नदी सरोवरादिके जलके गुण ।

नादेयं वातलं रूक्षं दीपनं लघु लेखनम् ॥ तदभिष्यंदि मधुरं सांद्रं गुरु कफावहम् ॥ ३३ ॥ तृष्णाघ्नं सारसं बल्यं कषायं मधुरं लघु ॥ ताडागं वातलं स्वादु कषायं कटुपाकि च ॥ ३४ ॥ वातश्लेष्महरं वाप्यं सक्षारं कटु पित्तलम् ॥ सक्षारं पित्तलं कौपं श्लेष्मघ्नं दीपनं लघु ॥ ३५ ॥

नदीका (सामान्य) जल वातल है, रूक्ष है, दीपन है, हलका है और लेखन होता है । यदि वह गाढा और भारी हो तो अभिष्यंदि और मधुर तथा कफकारक होताहै ॥ ३३ ॥ सरोवरका जल-तृषाहर, बली, कसैला, मीठा और (प्रायः) हलकाभी होता है । तथा तालाबका जल-वातल, मीठा, कषायतायुक्त और विपाकमें कटु होता है ॥ ३४ ॥ बावडीका जल-वातकफनाशक होता है, क्षारापनलिये कटुकसा होता है और पित्तकारक होता है । तथा कूपका जल-कुछ क्षारयुक्त होता है, पित्तकारक, कफनाशक, दीपन तथा हलका होता है ॥ ३५ ॥

चौंडयमग्निकरं रूक्षं मधुरं कफकृन्न च ॥ कफघ्नं दीपनं हृद्यं लघु प्रस्रवणोद्भवम् ॥ ३६ ॥ मधुरं पित्तशमनमविदाह्यौद्भिदं स्मृतम् ॥ वैकिरं कटु सक्षारं श्लेष्मघ्नं लघु दीपनम् ॥ ३७ ॥ कैदारं मधुरं प्रोक्तं विपाके गुरु दोषलम् ॥ तद्वत्पाल्वलमुद्दिष्टं विशेषाद्दोषलं तु तत् ॥ ३८ ॥

चुडीका जल-अग्निकारक, रूक्ष, मधुर है और कफकर्ता नहीं है । तथा झिरनेका जल-कफनाशक, दीपन तथा हृद्य और हलका होता है ॥ ३६ ॥ औद्भिद (पृथ्वीसे उपजा हुआ) जल-मीठा, पित्तनाशक तथा अविदाही होता है । और विकिर (रेतीसे निकाला) जल-कटु, क्षारयुक्त, कफनाशक, हलका तथा दीपन

(वक्तव्य सूत्र ३३-४१) नदियों, सरोवरों, वापियों, झिरनों आदिके जलके साधारण रीतिसे गुण कहे गयेहैं विशेष गुण उस भूमिके संसर्गसे तथा वहांके निकटवर्ती वृक्षादिसे तथा जहांसे वह जल निकले उस जगह किसी धातु आदिकी खान हो तो उससे तथा निकटकी मलिनता आदिसे तथा जहांसे बहकर जल आवे उसमे किसी वस्तुके अधिक अंशाश हो उनसे जलमे बडा अंतर होजाता है इन बातोको वैद्य स्वयं विचार कर निश्चय करसकते है ।

होता है ॥ ३७ ॥ केदारका जल-मधुर होता है विपाकमें भारी और दोषकारक होता है। इसीके तुल्य पल्वल (जोहडी) का जल होता है, विशेष करके यह दोषकारक होता है ॥ ३८ ॥

सामुद्रमुदकं विस्रं लवणं सर्वदोषकृत् ॥ अनेकदोषमानूपं वार्यभिष्यंदि गर्हितम् ॥३९॥ एभिर्दोषै रसंयुक्तं निरवद्यं तु जांगलम् ॥ पाके विदाहि तृष्णाघ्नं प्रशस्तं प्रीतिवर्द्धनम् ॥ ४० ॥ दीपनं स्वादु शीतं च तोयं साधारणं लघु ॥ ४१ ॥

समुद्रका जल-विस्र (गधला), खारा तथा सब दोषोंका कर्ता होता है। आनूपदेश (डावरदेश) का जल-अभिष्यंदी तथा गर्हित (दूषित) होता है ॥ ३९ ॥ और जांगल देशका जल-इन दोषोंसे रहित और निर्विकार होता है। पाकमें विदाही तथा तृषानाशक श्रेष्ठ और प्रीतिका बढानेवाला होता है ॥ ४० ॥ और साधारण देशका जल-दीपन, स्वादु और शीतल तथा हलका होता है ॥ ४१ ॥

उष्णजलके गुण।

कफमेदोऽनिलामघ्नं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ श्वासकासज्वरहरं पथ्यमुष्णोदकं सदा ॥ ४२ ॥ यत्तु क्वाथ्यमानं निर्वेगं निष्फेनं निर्मलं लघु ॥ चतुर्भागावशेषं तु तत्तोयं गुणवत्स्मृतम् ॥ ४३ ॥

उष्ण जल कफरोग, मेदोरोग, वायुके रोग इन्हें नाश करताहै, दीपनहै, वस्तिका शोधन करनेवाला है, श्वास (जो तमकके भेद प्रतमकसे भिन्न हों) तथा खांसी और तपको दूर करता है। उष्णजल सदा पथ्य है ॥ ४२ ॥ जो क्वाथ करने (औटाने) से वेगरहित (उफानबंद) होजाय फेन (झाग या बुलबुले) न रहें, निर्मल हो, हलका हो, चतुर्थांश रहा हो वह जल गुणवाला होता है ॥ ४३ ॥

बासीजलका निषेध।

**न च पर्य्युषितं देयं कदाचिद्वारि जानता ॥
अम्लीभूतं कफोत्क्लेशि न हितं तत् पिपासवे ॥ ४४ ॥**

जाननेवाले वैद्यको चाहिये कि तृषायुक्त मनुष्यको रात्रिका वासी जल नहीं देवे क्योंकि, वह अम्लतायुक्त हो जाता है और कफको उत्क्लेश करनेवाला होता है और तृषितमनुष्यको हित नहीं है ॥ ४४ ॥

(सूत्र ४२) उष्णोदकमर्द्धावशिष्टमुदकमिति डल्लनः। केचित्तु उष्णोदकमुष्णीकृतमेव मन्यते केचित् क्वथितमेव। ज्वरहर नवज्वरहरम्। (सूत्र ४३) क्वाथ्यमाने भावमिश्र इत्याह-"तत्पादहीनं पित्तघ्नमर्द्धहीनं तु वातनुत् ॥ त्रिपादहीनं श्लेष्मघ्नं सग्राहग्निप्रदं लघु" इति।

शृतशीतजल।

मद्यपानसमुद्भूते रोगे पित्तोत्थिते तथा ॥ सन्निपातसमुत्थे च शृतं-शीतं प्रशस्यते ॥४५॥ दाहातीसारपित्तासृग्मूर्च्छामद्यविषार्तिषु ॥ शृतशीतं जलं शस्तं तृष्णाच्छर्दिभ्रमेषु च ॥ ४६ ॥

मद्यपानजनितरोगमें तथा पित्तके रोगोंमें और सन्निपातके रोगोंमें शृतशीत (यथाविहित क्वथितकरके ठंढाकियाहुआ) जल श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥ दाह, अतीसार, पित्तरक्तरोग, मूर्च्छा तथा मद्य और विषकी पीडा इनमें एवं तृषारोग, छर्दिरोग और भ्रम इन रोगोंमें भी शृतशीतजल श्रेष्ठ है ॥ ४६ ॥

नारियलजलके गुण।

स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥ वृष्यं पित्तपिपा-साघ्नं नारिकेलोदकं गुरु ॥ ४७ ॥

प्रसंगवश नारियलके जलके गुणभी कहते हैं–नारियलका जल स्निग्ध है, स्वादु (मीठा) है, ठंढा है, हृदयको आल्हाददायक है, दीपन है वस्तिको शोधन करता है(वृष्य (पौरुषदाता) है, पित्त और प्यासको शांत करता है और भारी है ॥४७॥

अरोचके प्रतिश्याये प्रसेके श्वयथौ क्षये ॥ मंदाग्नावुदरे कुष्ठे ज्वरे नेत्रामये तथा ॥ व्रणे च मधुमेहे च पानीयं मंदमाचरेत् ॥४८॥

इति जलवर्गः।

अरुचि, प्रतिश्याय (जुखाम), प्रसेक (मुहसे पानीआना), शोथ, क्षय (धातुक्षय राजयक्ष्मा), मंदाग्नि, उदरविकार, कुष्ठ, ज्वर, नेत्रविकार, व्रण (घाव) तथा मधुप्रमेह इतने रोगोंमें बहुत कम जल पीना चाहिये (जब नहीं सधे तब थोडासा पीना चाहिये) ॥ ४८ ॥

इति जलवर्गः।

अथ दुग्धवर्गः।

गव्यमाजं तथा चौष्ट्रमाविकं माहिषं च यत् ॥ अश्वायाश्चैव नार्याश्च करेणूनां च यत्पयः ॥ १ ॥ तत्त्वनेकौषधिरसप्रसादं प्राणदं गुरु ॥ मधुरं पिच्छलं शीतं स्निग्धं श्लक्ष्णं सरं मृदु ॥ सर्व-प्राणभृतां तस्मात्सात्म्यं क्षीरमिहोच्यते ॥ २ ॥

(सूत्र ४८) 'मंदमाचरेत्' इति अल्पं पिबेत्, यावत् प्रतिषेधयितुमशक्यं तावदाचरेदिति मंदार्थः। (दुग्धवर्ग सूत्र२) "तत्त्वनेकौषधिरसप्रसादः क्षीरता गतः॥ सर्वप्राणभृता तस्मात्सात्म्य क्षीरमिहोच्यते॥" (इति जैजटः)

गौका दुग्ध, बकरीका दूध, ऊँटनीका दूध, भेडका दूध, भैंसका दूध, घोडीका दूध तथा स्त्रीका दूध और हथिनीका दूध यह ८ प्रकारका दुग्ध होता है। (और चकारकरके मृगीका दूध, गधीका दूध इत्यादिभी हैं) ॥ १ ॥ यहां जो ऊपर कोइ प्रकारका दूध वर्णन किया यह अनेक औषधोंका रस निर्मल तथा प्रसन्नकरनेवाला है, प्राणोंका देनेवाला है, भारी, मीठा गाढा, शीतल, चिकना, रम्य, फैलनेवाला और कोमल है इसीसे सब जीवमात्रको दुग्ध सानुकूल होता है ॥ २ ॥

तत्र सर्वमेव क्षीरं प्राणिनामप्रतिषिद्धं जातिसात्म्यात्। वातपित्तशोणितमानसविकारेष्वविरुद्धम् ॥ ३ ॥

तहां सब दूधमात्र समस्त जीवोंको जातिकी अनुकूलतासे निषेधयोग्य नहीं है अर्थात् सबको ग्राह्य है। और वायु, पित्त तथा रक्तके कई रोगोंमें और मनोविकार (मनके अप्रसन्न रहने) में विरुद्ध नहीं है ॥ ३ ॥

जीर्णज्वरकासश्वासशोषक्षयगुल्मोन्मादोदरमूर्च्छाभ्रममददाहपिपासाहृद्बस्तिपांडुरोगग्रहणीदोषार्शःशूलोदावर्तातिसारप्रवाहिकायोनिरोगगर्भस्रावरक्तपित्तश्रमक्लमहरम् ॥ ४ ॥ पाप्मापहं बल्यं वृष्यं वाजीकरणं रसायनं मेध्यं संधानस्थापनं वयःस्थापनमायुष्यं जीवनं बृंहणं वमनं विरेचनं च तुल्यगुणत्वाच्चौजसो वर्द्धनमिति बालवृद्धक्षतक्षीणानां क्षुद्व्यवायव्यायामकर्षितानां च पथ्यतमम् ॥ ५ ॥

(सामान्य दुग्ध) जीर्णज्वर, खांसी, श्वास, शोष (शुष्कता), क्षय, गुल्म, उन्माद, उदररोग, मूर्च्छा, भ्रम, मद (घुमेर), दाह, तृषा, हृदयरोग, वस्तिरोग, पांडुरोग, संग्रहणीदोष, बवासीर, शूल, उदावर्त, अतीसार, प्रवाहिका, योनिके रोग, गर्भस्राव (गर्भ झिरता बढता हो), रक्तपित्त, श्रम, क्लम (थकान) इतने रोगोंको यथाविहित उपयोग कियाहुआ दुग्ध नाश करता है ॥४॥ पापोंको नाश करता है, बलकर्ता, वृष्य, वाजीकरण और रसायन है, पवित्र है, संधानको (जोडोंको) स्थित

(सूत्र ३) वातपित्तशोणितमानसविकारेष्विति वातपित्तविकारे शोणितपित्ते मनोविकारे रजस्तमःसंसर्गान्मनसो वैकल्ये। (सूत्र ४) कासगुल्मादयोत्र वातपित्तजा ग्राह्या न तु श्लेष्मभवाश्चेति। शोषः कंठमुखतालूनाम्। (सूत्र ५) वृष्यं शुक्रजनकम्। वाजीकरणं शुक्रप्रवर्तकम्। मेध्यं मेधाजनकं पवित्रं वा। पाप्मापहं पापोपशमनं विशेषतो गव्यम्। वमनं वमनद्रव्ये संयोगे। विरेचनं सरत्वान्मृदुकोष्ठस्य रेचनद्रव्यसंयोगात् विरेचनं चेति (डल्हनः)

रखनेवाला, अवस्थाको स्थिर रखनेवाला, आयुवर्द्धक, जीवन, बृंहण (शरीरपुष्टिकर्ता) तथा वमन और विरेचनके समय सहायक है और तुल्यगुण होनेसे ओजको बढानेवाला है, बालक, बूढा, क्षत और क्षीणोंको तथा क्षुधा और व्यवाय तथा व्यायाम करके कर्षितहुए मनुष्योंको अत्यंतही पथ्य है ॥ ५ ॥

गोदुग्धादिके विशेषगुण ।

गोक्षीरमनभिष्यंदि स्निग्धं गुरु रसायनम् ॥ रक्तपित्तहरं शीतं मधुरं रसपाकयोः ॥ जीवनीयं तथा वातपित्तघ्नं परमं स्मृतम् ॥ ६ ॥ गव्यतुल्यगुणं त्वाजं विशेषाच्छोषिणां हितम् ॥ दीपनं लघु संग्राहि श्वासकासास्रपित्तनुत् ॥ ७ ॥ अजानामल्पकायत्वात्कटुतिक्तनिषेवणात् ॥ नात्यंबुपानाद्व्यायामात्सर्वव्याधिहरं पयः ॥ ८ ॥

" गौका दुग्ध " अभिष्यंदी (रसवहा नाडियोंको रोककर गुरुता करनेवाला) नहीं है, स्निग्ध है, भारी है, रसायन है, रक्तपित्तहर्ता है, शीतल है, रसमें और विपाकमें मीठा है, जीवनदाता है तथा वायु और पित्तको परम शांत करनेवाला है ॥ ६ ॥ " बकरीका दूध " गौके दुग्धसमान गुणवाला है, विशेष करके शोष (शुष्कता तथा राजयक्ष्मा) वालोंको हित है, दीपन है, हलका है, संग्राही है, तथा श्वास, खांसी और रक्तपित्तको दूर करता है ॥ ७ ॥ बकरियोंका छोटा शरीर होनेसे और कटु, तिक्त (वृक्षोंके पत्ते) नित्य खानेसे तथा थोडा जल पीनेसे और व्यायाम करने (बहुत उछलनेकूदने चाहे जहां चढजाने) से इनका दूध सब व्याधियोंका हरनेवाला है ॥ ॥ ८ ॥

रूक्षोष्णं लवणं किंचिदौष्ट्रं स्वादुरसं लघु ॥ शोफगुल्मोदरार्शोघ्नं कृमिकुष्ठविषापहम् ॥ ९ ॥ आविकं मधुरं स्निग्धं गुरु पित्तकफावहम् ॥ पथ्यं केवलवातेषु कासे चानिलसंभवे ॥ १० ॥

" ऊँटनीका दूध " रूक्ष और गरम है, कुछ २ खरोंहा है, रसमें स्वादु है, हलका है तथा शोथ, गुल्म, उदररोग और बवासीरका नाश करनेवाला और कृमि, कुष्ठ तथा विषका नाशक है ॥ ९ ॥ "भेडीका दूध" मधुर है, स्निग्ध है, भारी है,

(सूत्र ६) वर्णविशेषे गोदुग्धस्य गुणविशेषः "कृष्णाया गोर्भवेदुग्धं वातहारि गुणाधिकम् ॥ पीताया हरते पित्त तथा वातहर भवेत् ॥ श्लेष्मलं गुरु शुक्लाया रक्ता चित्रा च वातहृत्" (इति भा. प्र.) (अन्यच्च) "बालवत्सविवत्सनां गवां दुग्ध त्रिदोषकृत्॥" छागीदुग्धस्य विशेषगुणाः—"छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहि तथा लघु ॥ रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम्" (भा. मि) 'हंति क्षयार्शोतीसारमदराम्लभ्रमज्वरान्' इति मदनपालः ।

पित्त और कफकारक है, केवल वायुके रोगोंमें पथ्य है तथा वायुके शुष्ककासमें भी पथ्य है ॥ १० ॥

महाभिष्यंदि मधुरं माहिषं वह्निनाशनम् ॥ निद्राकरं शीतकरं गव्यात्स्निग्धतरं गुरु ॥ ११ ॥ उष्णमैकशफं बल्यं शाखावातहरं पयः ॥ मधुराम्लरसं रूक्षं लवणानुरसं लघु ॥ १२ ॥

"महिषीका दूध" बहुत अभिष्यंदी है, मीठा है, जठराग्निको शांत करताहै, निद्रा पैदा करताहै, शीत करता है तथा गौके दुग्धसे अधिक चिकनाईवाला है और भारी है ॥ ११ ॥ एकशफवाले चतुष्पदों "घोडी आदिका दूध" उष्ण है, बलकारक है, शाखावायु (हाथ, पैरोंके वायु) को नाशकरता है, मधुर, कुछ अम्ल रस और लवणानुरस (मीठा तुरशी और खारापन लिये) है, रूक्ष है और हलका है ॥ १२ ॥

नार्यास्तु मधुरं स्तन्यं कषायानुरसं हिमम् ॥ नस्याश्च्योतनयोः पथ्यं जीवनं लघु दीपनम् ॥ १३ ॥ हस्तिन्या मधुरं वृष्यं कषायानुरसं गुरु ॥ स्निग्धं स्थैर्यकरं शीतं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ॥ १४ ॥

"स्त्रीका दूध" मीठा और कसेलापनयुक्त है, शीतल है,नस्य और आश्च्योतन (नेत्रमें टपकाने) में पथ्य है, जीवन है, हलका है और दीपन है ॥ १३ ॥ "हथिनीका दूध" मधुर, कषायरसयुक्त है, वृष्य है, भारी है, स्निग्ध है, स्थिरता करनेवाला है, शीतल है, नेत्रोंको हित है और बलवर्द्धक है ॥ १४ ॥

प्रायः प्राभातिकं क्षीरं गुरु विष्टंभि शीतलम् ॥ रात्रौ सोमगुणत्वाच्च व्यायामाभावतस्तथा ॥ १५ ॥ दिवाकराभितप्तानां व्यायामानिलसेवनात् ॥ वातानुलोमि श्रांतिघ्नं चक्षुष्यं चापराह्णिकम् ॥ १६ ॥

"प्रभातका दूध" रात्रिमें शीतका गुण होनेसे तथा व्यायाम (चलना फिरना) न होनेसे भारी होता है, विष्टंभी और शीतल होता है ॥ १५ ॥ " अपराह्ण (दिनांतभाग) का दूध" सूर्यकी किरणोंसे अभितप्त और व्यायाम तथा पवनके सेवनसे वायुको अनुलोम करनेवाला होताहै, श्रमनाशक और नेत्रोंकेलिये हित होता है ॥ १६ ॥

(सूत्र १२) ऐकशफं पयः अश्वाया गर्दभ्याश्च दुग्धमित्यर्थः ।

कच्चे और पके दूधके गुण ।

पयोभिष्यंदि गुर्वामं प्रायशः परिकीर्तितम् ॥ तदेवोक्तं लघुतर-मनभिष्यंदि वै शृतम् ॥ १७ ॥ वर्जयित्वा स्त्रियाः स्तन्यमाममेव हि तद्धितम् ॥ धारोष्णं गुणवत्क्षीरं विपरीतमतोन्यथा ॥ तदेवातिशृतं सर्वं गुरु बृंहणमुच्यते ॥ १८ ॥

"कच्चा दूध" अभिष्यंदी है, भारी है, प्रायः ऐसा कहा है कि वही यदि औटाया हुआ हो तो बहुत हलका होजाता है और अभिष्यंदी नहीं होता ॥ १७ ॥ परंच स्त्रियोंके दूधके सिवाय सब गरमकरके पीनेयोग्य हैं और स्त्रियोंका दूध कच्चाही श्रेष्ठ है। "धारोष्ण दूध" गुणदायक होता है और इसके विपरीत (बहुत देरका निकाला ठंढा) अवगुणकारक होता है। और सब दूध जितने २ अधिक औटाये हुए होंगे उतनेही उतने भारी और बृंहण (शरीरपुष्टकर्ता) होंगे ऐसे कहा है ॥ १८ ॥

वर्जितदुग्ध ।

अनिष्टगंधमम्लं च विवर्णं विरसं च यत् ॥ वर्ज्यं सलवणं क्षीरं यच्च विग्रथितं भवेत् ॥ १९ ॥ इति दुग्धवर्गः ।

जिसमें बुरीगंध आनेलगे, जो खट्टासा होजाय, जिसका रंग नीला पीलासा पडजाय, जिसमें विरसता उत्पन्न होजाय तथा लवणका योग होगया हो या विग्रथित (फटगया) हो इतने दोषोंसे दूषित दुग्ध कदाचित् पीने योग्य नहीं ॥ १९ ॥

इति दुग्धवर्गः ।

अथ दधिवर्गः ।

दधि तु मधुरमम्लमत्यम्लं चेति । तत्कषायानुरसं स्निग्धमुष्णं पीनसविषमज्वरातिसारारोचकमूत्रकृच्छ्रकार्श्यापहं वृष्यं प्राणकरं मांगल्यं च ॥ १ ॥

दही (सामान्यतासे) मधुर, अम्ल और अतिअम्ल (तीन प्रकारका) होता-है। कषाय, अनुरस, चिकना और गरम होता है। पीनस, विषमज्वर, अतिसार, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र तथा कार्श्यनाशक और वृष्य है, प्राणकर्ता (बलकर्ता) और आह्लादजनक है ॥ १ ॥

महाभिष्यंदि मधुरं कफमेदोविवर्द्धनम् ॥ कफपित्तकृदम्लं स्या-

(सूत्र १) उष्णम् उष्णवीर्यम् । प्राणकरं बलंकरमिति । मांगल्यं मंगलहेतु आह्लादजनकमित्यर्थः ।

दत्यम्लं रक्तदूषणम् ॥ २ ॥ विदाहि सृष्टविण्मूत्रं मंदजातं त्रिदोषकृत् ॥ स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्द्धनम् ॥ ३ ॥

उनमेंसे "मधुर दही" बहुत अभिष्यंदी है, कफ और मेदकी वृद्धि करता है और अम्ल "खट्टा दही" कफपित्तकर्ता है तथा "अतिखट्टा" रुधिरको दूषित करता है ॥ २ ॥ और मंदजात "विनाजमा दही" मलमूत्रका जारी करनेवाला त्रिदोषकृत् (तीनों वात, पित्त, कफ इन्हें उत्पन्न करता) है स्निग्ध है, विपाकमें मीठा है, दीपन है और बलवर्द्धक है ॥ ३ ॥

गौ, महिषी आदिके दधिके गुण ।

वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुचिप्रदम् ॥ ४ ॥ दध्याजं कफपित्तघ्नं लघु वातक्षयापहम् ॥ दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्नेः प्रदीपनम् ॥ ५ ॥

"गौका दही" वातनाशक है, पवित्र है और रुचिका देनेवाला है ॥ ४ ॥ तथा "बकरीका दही" कफपित्तनाशक है, हलका है, वातक्षयका दूर करनेवाला है, बवासीर, श्वास और खांसीमें हित है और जठराग्निको प्रदीप्त करता है ॥ ५ ॥

विपाके मधुरं वृष्यं वातपित्तप्रसादनम् ॥ बलासवर्द्धनं स्निग्धं विशेषाद्दधि माहिषम् ॥ ६ ॥ विपाके कटु सक्षारं गुरु भैयौष्ट्रिकं दधि ॥ वातमर्शांसि कुष्ठानि कृमीन् हन्त्युदराणि च ॥ ७ ॥

"महिषीका दही" विपाकमें मीठा है, वृष्य है, वायु और पित्तको ठीक (प्रसन्न) करता है, कफको बढाता है और अधिक स्निग्ध है (विशेषकरके कफ बढाता है और चिकनाई अधिक रखता है) ॥ ६ ॥ तथा "ऊंटनीका दही" विपाकमें कटु और खारा है, भारी है, वातरोग और बवासीर, कुष्ठ, कृमिरोग तथा उदररोग इन्हें दूर करता है ॥ ७ ॥

कोपनं कफवातानां दुर्नाम्नां चाविकं दधि ॥ रसे पाके च मधुरमत्यभिष्यंदि दोषलम् ॥ ८ ॥ दीपनीयमचक्षुष्यं वाडवं दधि वातलम् ॥ रूक्षमुष्णं कषायं च कफमात्रापहं च तत् ॥ ९ ॥

"भेडका दही" कफवायुको कोप करता है, तथा बवासीरकोभी कोप करता है, रसमें और विपाकमें मधुर है, अत्यंत अभिष्यंदी है और दूषित (विकारकर्ता) है ॥ ८ ॥ "घोडीका दही" दीपन है, नेत्रोंको अहित है, वातल (वादी) है, रूक्ष है, उष्ण है, कसेला है और कफमात्रको नाशकर्ता है ॥ ९ ॥

(सूत्र ६) विशेषादिति पदस्य बलासवर्द्धनं स्निग्धमिति पदद्वयेन संबंधः । (सूत्र ९) कफमात्रं पंचसु स्थानेषु यत् कफं तत्सर्वमेव ।

स्निग्धं विपाके मधुरं बल्यं संतर्पणं गुरु ॥ चक्षुष्यमग्र्यं दोषघ्नं दधि नार्य्या गुणोत्तरम् ॥ १० ॥ लघु पाके बलासघ्नं वीर्योष्णं पक्तिनाशनम् ॥ कषायानुरसं नाग्या दधि वर्चोविवर्द्धनम् ॥ ११ ॥

"स्त्रियोंके दूधका दही" स्निग्ध है, विपाकमें मधुर है, बलकर्ता है, तृप्तिकारक है, भारी है, नेत्रोंके लिये मुख्य हित है, दोषोंको नाश करताहै और गुणोंमें उत्कृष्ट है ॥ १० ॥ "हथिनीके दूधका दही" विपाकमें हलका है, कफनाशक है, उष्णवीर्य है, गौरवनाशक है, कषायानुरस है तथा विष्ठाका भाग अधिक करताहै ॥ ११ ॥

गौके दहीकी सबसे उत्तमता।

दधीन्युक्तानि यानीह गव्यादीनि पृथक्पृथक् ॥
विज्ञेयमेषु सर्वेषु गव्यमेव गुणोत्तरम् ॥ १२ ॥

गौके दहीको आदि ले न्यारे २ जितने प्रकारके दही वर्णन किये हैं उनमें सबमें गौकाही दही श्रेष्ठ और उत्तमगुणवाला है ॥ १२ ॥

निचोडे हुए दहीके गुण।

वातघ्नं कफकृत्स्निग्धं बृंहणं न च पित्तकृत् ॥
कुर्याद्भक्ताभिलाषं च दधि यत् सुपरिस्रुतम् ॥ १३ ॥

कपडेमें बाँधकर लटकानेसे निचोडा हुआ दही वायुको शांत करता है, कफको (वर्द्धित) करता है, स्निग्ध होजाताहै, बृंहण (शरीरपुष्टिकारक) होताहै और पित्त (वृद्धि) कारक नहीं होता, भोजनकी अभिलाषा (रुचि) करता है ॥ १३ ॥

औटाये दूधका दही।

शृतात्क्षीरात्तु यज्जातं गुणवद्दधि तत्स्मृतम् ॥
वातपित्तहरं रुच्यं धात्वग्निबलवर्द्धनम् ॥ १४ ॥

औटाये हुए दूधका जो दही है वही गुणवाला होता है तथा वायु और पित्तको शांत करनेवाला, रुचिकारक तथा धातु (रस, रक्त, मांसादि) और अग्नि तथा बलका बढानेवाला होता है। इससे यह भी प्रयोजन निकलताहै कि बिना औटाये कच्चे दूधका दही गुणकारक नहीं होता ॥ १४ ॥

दहीके सरके गुण।

दध्नः सरो गुरुर्वृष्यो विज्ञेयोऽनिलनाशनः ॥

(सूत्र १०) अग्र्य चक्षुष्यमिति चक्षुष्यद्रव्याणां मध्ये अग्र्यं मुख्यमित्यर्थः। (सूत्र ११) पाके लघुत्वादेव कफघ्नम्। पक्तिनाशनं गौरवनाशनं, पक्तिः गौरवमिति वाचस्पतिः।

वह्निविधमनश्चापि कफशुक्रविवर्द्धनः ॥ १५ ॥

दहीका सर (ऊपरला भाग)भारी है, वृष्य है, वातनाशक है, जठराग्निको धमन (तेज) करनेवाला है तथा कफ और शुक्रका बढानेवाला है ॥ १५ ॥

मस्तुके गुण ।

तृष्णाक्लमहरं मस्तु लघु स्रोतोविशोधनम् ॥ अम्लं कषायमधुरमवृष्यं कफवातनुत् ॥ १६ ॥ प्रह्लादनं प्रीणनं च भिनत्त्याशु मलं च तत् ॥ बलमावहते चापि भक्तच्छंदं करोति च ॥ १७ ॥

"दहीका पानी" जो दहीमेंसे छुटता है उसे मस्तु कहते हैं वह हलका है, द्वारोंको शोधन करताहै, खट्टा, कसेला और मीठा होता है, वृष्य नहीं है तथा कफ और वायुको नाश करता है ॥१६॥आह्लाद देनेवाला, तृप्तिकर्ता होताहै, मलको शीघ्र भेदन करता है, बल करताहै,और भक्तच्छंद (भोजनमें रुचि) करताहै ॥ १७ ॥

दधि त्वसारं रूक्षं च ग्राहि विष्टंभि वातलम् ॥
दीपनीयं लघुतरं सकषायं रुचिप्रदम् ॥ १८ ॥

असारदही (जिसमें मलाई या घृतका भाग न हो) रूक्ष है, ग्राही है, विष्टंभकर्ता है, वातल है, दीपन है, अत्यन्त हलका है, कषायरसयुक्त है और रुचिका देनेवाला है ॥ १८ ॥

दधिसेवन और निषेधकी ऋतु ।

शरद्ग्रीष्मवसंतेषु प्रायशो दधि गर्हितम् ॥
हेमंते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते ॥ १९ ॥

शरद् (भाद्रपद, आश्विन) तथा ग्रीष्म (वैशाख, जेठ) और वसन्त (फाल्गुन, चैत्र) इन तीन ऋतुओंमें दही (अधिक) खाना अनुचित है । और हेमंत और शिशिर तथा वर्षा इन तीन ऋतुओंमें प्रायः दही खाना श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥

स्वाद्वम्लमत्यम्लकमंदजातं तथा शृतक्षीरभवं सरश्च ॥ असारमेवं दधि सप्तधाऽस्मिन्वर्गे स्मृता मस्तुगुणास्तथैव ॥ २० ॥

इति दधिवर्गः ।

इस दधिवर्गमें सातप्रकारसे दहीका वर्णन किया है । १ मीठा, २ खट्टा, ३ अतिखट्टा, ४ मन्द, ५ उबालेदूधका, ६ सर और ७ असार इसप्रकार दही तथा मस्तुके गुण वर्णन किये ॥ २० ॥

इति दधि वर्गः ॥

(सूत्र १५ । १६) दध्नः सरस्य मस्तुनश्च लक्षणम्—"दध्नस्तूपरि यो भागो घनः स्नेहसमन्वितः ॥ स लोके सर इत्युक्तो दध्नो मंडस्तु मस्त्विति" (इति भावमिश्रः) वह्निविधमन इति वह्निनाशनश्च ।

अथ तक्रवर्गः ।

तक्रं मधुरमम्लं कषायानुरसमुष्णवीर्यं लघु रूक्षमग्निदीपनं गरशोफातिसारग्रहणीपांडुरोगार्शःप्लीहगुल्मारोचकविषमज्वरतृष्णाछर्दिप्रसेकशूलमेदःश्लेष्मानिलहरं मधुरविपाकं हृद्यं मूत्रकृच्छ्रस्नेहव्यापत्प्रशमनमवृष्यं च ॥ १ ॥

तक्र (छांछ) मधुर, अम्लरस, कषयानुरस, उष्णवीर्य, हलका, रूक्ष और अग्निको दीपन करनेवाला है । विष, शोथ, अतिसार, संग्रहणी, पांडुरोग, बवासीर, प्लीहवृद्धि, गुल्म, अरुचि, विषमज्वर, तृषा, छर्दि, मुहसे रालबहना, शूल, मेदोरोग, कफरोग और वातरोग इतने रोग हरता है, विपाकमें मधुर है, हृदयको हित है तथा मूत्रकृच्छ्र और स्नेह (चिकनाई) की व्याधिका नाशक है और वृष्य नहीं है॥ १॥

छांछ और घोलके लक्षण ।

मन्थनादिपृथग्भूतस्नेहमर्द्धोदकं तु यत् ॥ नातिसांद्रद्रवं तक्रं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे ॥२॥ यत्तु सस्नेहमजलं मथितं घोलमुच्यते॥३॥

मंथन (रई) आदिसे बिलाकर जिसमेंसे घृत निकाललिया हो और जिसमें आधापानी मिला हुआ हो, जो न बहुत गाढा हो, न बहुत पतला हो, रसमें खट्टारस, मीठारस हो तथा तुवर (तूररस) हो वह यथोक्त तक्र होता है ॥ २ ॥ और जिसमेंसे घृत नहीं निकाला हो और न पानी डाला हो तथा विना जलके रई आदिसे मथदिया हो तो उसे घोल (रईमारमट्ठा) कहते हैं ॥ ३ ॥

छांछका निषेध ।

तक्रं नैव क्षते दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले ॥
न मूर्च्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपैत्तिके ॥ ४ ॥

क्षतरोग (उरःक्षत) में गरमीके समयमें वा दुर्बलको छांछ (अधिक) नहीं देनी चाहिये तथा मूर्च्छा, भ्रम, दाहरोग और रक्तपित्त इन रोगोंमें भी छांछ देनी उचित नहीं ॥ ४ ॥

तक्रकी योजना ।

शीतकालेऽग्निमांद्ये च कफोत्थेष्वामयेषु च ॥
मार्गावरोधे दुष्टे च वायौ तक्रं प्रशस्यते ॥ ५ ॥

(सूत्र १) अवृष्यमशुक्रलं न शुक्रस्य जनकं प्रवर्तकमित्यर्थः ।

शीतकाल और जठराग्निकी मंदतामें, कफके विकारोंमें, द्वारोंके अवरोधमें तथा वायुके दुष्ट होनेमें इतने जगह तक्र देना श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

मधुरादितक्रके गुण ।

तत्पुनर्मधुरं श्लेष्मप्रकोपनं पित्तप्रशमनञ्च ॥ अम्लं वातघ्नं पित्तकरं च ॥ ६ ॥ वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं स्वादु पित्ते सशर्करम् । पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमायुतम् ॥ ७ ॥

और वह छांछ मीठी हो तो कफको कुपित करती है तथा पित्तको शांत करती है। और खट्टी वायुको शांत करती है और पित्तको (पैदा) करती है ॥ ६ ॥ इसलिये वायुकी अधिकतामें खट्टी छांछ सेंधानमक डालकर पीनी चाहिये और पित्तकी अधिकतामें मीठी छांछ खाँड गेरकर पीनी चाहिये। और कफकी अधिकतामें भी त्रिकटु और जवाखार आदि कोई खार डालकर पीनी उचित है ॥ ७ ॥

ग्राहिणी वातला रूक्षा दुर्जरा तक्रकूर्चिका ॥ तक्राल्लघुतरो मण्डः कूर्चिकादधितक्रजः ॥ ८ ॥ गुरुः किलाटोऽनिलहा पुंस्त्वनिद्राप्रदः स्मृतः ॥ मधुरौ बृंहणौ वृष्यौ तद्वत्पीयूषमोरटौ ॥ ९ ॥

कूर्चिका (दहीका पानी अलग हो तथा छांछका पानी नितरकर अलग होनेपर पपड़ायासा पदार्थ जो शेष रहे वह) ग्राहिणी है, वातल है, रूक्ष है, दुर्जर है। तथा कूर्चिका या दही या छांछका मंड (पानी) छांछसे अतिहलका होता है ॥ ८ ॥ तथा किलाट (जो दूध या छांछको जलाकर खोयासा करते हैं वह) भारी है, वायुनाशक है, पुरुषत्व और निद्राका देनेवाला है। तथा पीयूष (सद्यःप्रसूता गौका दुग्ध जो जमकर छेछडेसे होजाते हैं जिसे देशभाषामें खीस कहते हैं वह) तथा मोरट (जो सात दिन पीछे गढाया दूधसा होता है) ये दोनों मधुर हैं, बृंहण हैं, वृष्य हैं ॥ ९ ॥

माखनके गुण ।

नवनीतं पुनः सद्यस्कं लघु सुकुमारं मधुरं कषायमीषदम्लं शीतलं मेध्यं दीपनं हृद्यं संग्राहि पित्तानिलहरं वृष्यमविदाहि क्षयकासश्वासव्रणार्शोर्दितापहं गुरु कफमेदोविवर्द्धनं बलकरं बृंहणं शोषघ्नं विशेषतो बालानां प्रशस्यते ॥ १० ॥

(सूत्र ८) विनष्टतक्रं घनावयव तक्रकूर्चिका । (सूत्र ९) मडः तक्रदधिदुग्धानां पृथग्भूत जलम् । किलाटकः "नष्टदुग्धस्य पक्वस्य पिंडः प्रोक्तः किलाटकः ।" पीयूषः नवप्रसूतायाः गोरासप्तरात्रभवो दुग्धः मोरटः सप्तरात्रोपितक्षीरम् । इति शब्दस्तोमः ।

नवनीत माखन जो ताजा हो वह हलका, कोमल, मधुर, कुछ २ कसेला, कुछ खट्टा है, शीतल है, मेधा (बुद्धि) कारक है, दीपन है, हृदयको हित है, संग्राही (काबिज)है, पित्त और वायुका नाशक है, वृष्य है, विदाहि नहीं (दाहजनक नहीं) है तथा क्षयी, खांसी (जो सूखी हो) श्वास, व्रण, बवासीर (रक्तार्श), अर्दित वायुको दूर करता है, भारी है अर्थात् विपाकमें भारी है (देरसे पचता है) कफ और मेदका बढानेवाला है, बलकर्ता है, बृंहण है, शोष (शुष्कता) को दूर करता है । विशेष करके बालकोंको बहुत श्रेष्ठ है ॥ १० ॥

कच्चे दूधका माखन ।

क्षीरोत्थं पुनर्नवनीतमुत्कृष्टस्नेहं माधुर्ययुक्तमतिशीतं सौकुमार्य्यकरं चक्षुष्यं संग्राहि रक्तपित्तनेत्ररोगहरं प्रसादनं च ॥ ११ ॥

कच्चे दूधसे निकालाहुआ माखन अत्यन्त चिकना, बहुत मधुरतायुक्त, अतिशीतल, कोमलताकारक और नेत्रज्योतिके लिये हित है । संग्राही है, रक्तपित्त और आखोंके रोग दूर करनेवाला और प्रसन्नता करनेवाला है ॥ ११ ॥

संतानिका (मलाई)

संतानिका पुनर्वातघ्नी तर्पणी बल्या वृष्या स्निग्धा रुच्या मधुरा मधुरविपाका रक्तपित्तप्रसादिनी गुर्वी च ॥ १२ ॥

मलाई वातनाशनी, तृप्ति करनेवाली, बल करनेवाली, वीर्यवर्द्धनी, चिकनी, रुचिकारिणी, मधुर (मीठी) और विपाकमें भी मीठी, रक्तपित्तको प्रसन्न करनेवाली और भारी है ॥ १२ ॥

विकल्प एष दध्यादिः श्रेष्ठो गव्योऽभिवर्णितः ॥
विकल्पानवशिष्टांस्तु क्षीरवीर्यात्समादिशेत् ॥ १३ ॥

इति तक्रवर्गः ।

यह जो दधिआदि दुग्धके भेद कहे वे गोदुग्धके श्रेष्ठ होते हैं सोही वर्णन किये हैं । और जो शेष दुग्धोंके विकार (किलाटआदि) हैं उन्हें उन दुग्धोंके वीर्य (या गुण) के अनुसार जानना चाहिये ॥ १३ ॥

इति तक्रादिवर्ग. ।

अथ घृतवर्गः ।

घृतन्तु सौम्यं शीतवीर्यं मृदु मधुरमल्पाभिष्यंदि स्नेहनमुदावर्त्तोन्मादापस्मारशूलज्वरानाहवातपित्तप्रशमनमग्निदीपनम् । स्मृति-

मतिमेधाकांतिस्वरलावण्यसौकुमार्यौजस्तेजोबलकरमायुष्यं वृष्यं मेध्यं वयस्थापनं गुरु चक्षुष्यं श्लेष्माभिवर्द्धनं पाप्माऽलक्ष्मीप्रशमनं विषहरं रक्षोघ्नं च ॥ १ ॥

सामान्यघृत (गव्यघृत) के गुण ये हैं कि, घृत सौम्य है, शीतवीर्य है, मृदु (कोमल) है, मधुर है, थोडा २ अभिष्यंदि है, चिकनाईरूप है तथा उन्माद, उदावर्त, अपस्मार (मृगी), शूल, ज्वर, अनाह (अफारा) और वायुपित्तका शमन करनेवाला, अग्नि दीप्त करनेवाला, स्मृति (स्मरणशक्ति), मति (निश्चयात्मिका बुद्धि), मेधा (धारणाशक्ति), कांति, स्वर और लावण्य (सलोनापन जो रूपमें हो), सुकुमारता (नाजुकपन), ओज, तेज तथा बल इनका करनेवाला, आयु बढानेवाला, वृष्य (वीर्य पैदा करनेवाला), मेध्य (पवित्र), अवस्थाका स्थिर करनेवाला, भारी, नेत्रोंको हित, कफका बढानेवाला, पाप और दरिद्रको नाशकरनेवाला तथा विषके प्रभावको नाश करनेवाला और राक्षसादि (भय) का नाशक है ॥ १ ॥

गोघृतगुण ।

विपाके मधुरं शीतं वातपित्तविषापहम् ॥
चक्षुष्यमग्र्यं बल्यं च गव्यं सर्पिर्गुणोत्तरम् ॥ २ ॥

" गौका घृत " विपाकमें मीठा है, शीतल है, वायु, पित्त और विषका नाशक है, नेत्रहितकारक वस्तुओंमें मुख्य (सबसे श्रेष्ठ) है, बलदायक है, गुणोत्तर (सब घृतोंमें श्रेष्ठ गुणयुक्त) है ॥ २ ॥

बकरीका घृत ।

आजं घृतं दीपनीयं चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ॥
कासे श्वासे क्षये चापि पथ्यं पाके च तल्लघु ॥ ३ ॥

" बकरीका घृत " दीपन है, नेत्रोंको हित है, बलका बढानेवाला है, खांसी, श्वास, क्षयरोग इनमें पथ्य है तथा विपाकमें हलका है ॥ ३ ॥

भैंसका घृत ।

मधुरं रक्तपित्तघ्नं गुरु पाके कफावहम् ॥
वातपित्तप्रशमनं सुशीतं माहिषं घृतम् ॥ ४ ॥

(सूत्र १) ज्वरशब्देनात्र वातज्वरस्य जीर्णज्वरस्य च ग्रहणम् । स्मृत्यादिभिर्बलपर्यंतैः सह करशब्दः केमभिसंबध्यते । स्मृतिः अतीतस्मरणम् । मतिर्निश्चयात्मिका बुद्धिः, मेधा धारण शक्तिः ।

" महिषी (भैंस) का घृत " मधुर है, रक्तपित्तका नाशक है विपाक समयमें भारी है, कफका करनेवाला है, वायु और पित्तका शांत करनेवाला और शीतल है ॥ ४ ॥

ऊंटनीका घृत ।

औष्ट्रं कटुरसं पाके शोफक्रिमिविषापहम् ॥
दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ५ ॥

" ऊँटनीका घृत " विपाकमें चरपरे रसवाला है, शोथ, क्रिमिरोग, विष इन्हें दूरकरता है, दीपन है, कफ वायुका नाश करनेवाला है, कुष्ठ, गुल्म और उदररोगका नाश करनेवाला है ॥ ५ ॥

भेडका घृत ।

पाके लघ्वाविकं सर्पिर्न च पित्तप्रकोपनम् ॥
कफेऽनिले योनिदोषे शोषे कम्पे च तद्धितम् ॥ ६ ॥

"भेडका घृत" विपाकमें हलका है और पित्तको कुपित नहीं करता है। कफके दोषों, वायुके दोषोंमें और योनिके दोषोंमें तथा शुष्कता और कम्प इतने विकारोंमें हित है ॥ ६ ॥

एकखुरपशुका घृत ।

पाके लघूष्णवीर्यं च कषायं कफनाशनम् ॥
दीपनं बद्धमूत्रं च विद्यादेकशफं घृतम् ॥ ७ ॥

एकशफ (एकखुरवाले जीव जैसे घोडीका) घृत विपाकमें हलका है, उष्णवीर्य है, कसेला होता है, कफका नाशक है, दीपन है, मूत्रबन्धकर्ता है ॥ ७ ॥

नारीदुग्धघृत ।

चक्षुष्यमग्र्यं स्त्रीणां तु सर्पिः स्यादमृतोपमम् ॥
वृद्धिं करोति देहाग्न्योर्लघुपाकं विषापहम् ॥ ८ ॥

"स्त्रियोंका घृत" नेत्रहितकारकोंमें सर्वोपरि है, अमृतके तुल्य है, देह और जठराग्निकी वृद्धि करनेवाला है, विपाकमें हलका है, विषनाशक है ॥ ८ ॥

हथिनीके दूधका घृत ।

कषायं बद्धविण्मूत्रं तिक्तमग्निकरं लघु ॥
हन्ति कारेणवं सर्पिः कफकुष्ठविषक्रिमीन् ॥ ९ ॥

"हथिनीका घृत" कसेला है, मलमूत्रका रोकनेवाला है, तिक्त(कडवा) है, जठराग्निकरनेवाला है, हलका है तथा कफ, कुष्ठ, विष और क्रमिको नाशकरता है ॥ ९ ॥

कच्चे दूधके माखनका घृत ।

क्षीरघृतं पुनः संग्राहि रक्तपित्तभ्रममूर्च्छाप्रशमनं नेत्ररोगहितं च ॥ १० ॥

कच्चे दूधसे निकले मक्खनका घृत संग्राही है तथा रक्त, पित्त, भ्रम, मूर्च्छा इनको शांतकरता है, नेत्ररोगोंमें हित है ॥ १० ॥

घृतका मंड ।

सर्पिर्मंडस्तु मधुरः सरो योनिश्रोत्राक्षिशिरसां शूलघ्नो वस्तिनस्याक्षिप्रपूरणेषूपदिश्यते ॥ ११ ॥

ताजेघृतके ऊपर जो पानीसा आजाता है वह घृतका मण्ड है वह मीठा है, सर (फैलनेवाला दस्तावर) है, योनि, श्रोत्र (कान)नेत्र और शिर इन स्थानोंके शूलको नाशकरताहै । वह वस्ति, नस्य और नेत्रपूरण इनमें युक्तकरना कहाहै ॥ ११॥

पुराणा घृत ।

सर्पिः पुराणं सरं कटुविपाकं त्रिदोषापहं मूर्च्छामेदउन्मादोदरज्वरगरशोफापस्मारयोनिश्रोत्राक्षिशिरःशूलघ्नं दीपनं वस्तिनस्याक्षिपूरणेषूपदिश्यते ॥ १२ ॥ भवंति चात्र–

पुरानाघृत सर (फैलनेवाला) है, कटुविपाक है, त्रिदोषनाशक है मूर्च्छा, मेदरोग, उन्माद, उदररोग, ज्वर, गर (विष), शोथ, अपस्मार, योनिशूल, कर्णशूल, नेत्रशूल, शिरशूल इन्हें दूरकरता है, दीपन है, वस्ति, नस्य, नेत्रपूरण इनमें योग्य कहा है ॥ १२ ॥ यहां श्लोक हैं–

पुराणं तिमिरश्वासपीनसज्वरकासनुत् ॥ मूर्च्छाकुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १३ ॥ एकादशशतं चैव वत्सरानुषितं घृतम् ॥ रक्षोघ्नं कुंभसर्पिः स्यात्परतस्तु महाघृतम् ॥ १४ ॥ पेयं महाघृतं भूतैः कफघ्नं पवनाधिकैः ॥ बल्यं पवित्रं मेध्यं च विशेषात्तिमिरापहम् ॥ सर्वभूतहरं चैव घृतमेतत्प्रशस्यते ॥ १५ ॥

इति घृतवर्गः ।

(सूत्र १४) 'एकादश शतं चैव' इति एकवर्षात् दशवर्ष यावत् । तथा एकवर्षात् शतवर्ष यावत् तावदुषितं कुंभसर्पिः स्यादित्यर्थः । तथा च 'एकादशशतं चैव' इति वा पाठे एकादशोत्तरशतवर्षानुषित सर्पिः कुंभसर्पिरिति (नि० सं०)

पुराणा घृत तिमिर, श्वास, पीनस, ज्वर, खांसी इनको नाश करता है । मूर्च्छा, कुष्ठ, विष, उन्माद, ग्रह (बालग्रहादि) की पीडा, अपस्मार (मृगी) इनको दूर करता है (पुराना घृत १ वर्षसे ऊपरका समझाजाता है यह साधारण पुराणाघृत होता है) ॥ १३ ॥ अब पुरानेघृतकी विशेष अवधि कहते हैं कि, एकसे लेकर दशवर्षतक तथा सौवर्षतकका पुराना घृत (अथवा एकादश शतं चैव ऐसा पाठ होनेसे ११ वर्षका पुराना घृत तथा सौ वर्षका घृत होता है) इसमेंसे १० दशवर्षसे ऊपर सौवर्षतकका घृत कुंभसर्पि कहलाता है इससे परे महाघृतसंज्ञा होजाती है । कुंभसर्पि राक्षसोंका नाशक है ॥ १४ ॥ और महाघृत प्राणियोंके पीनेयोग्य है, कफनाशक है, पवनाधिक मनुष्योंको श्रेष्ठ है, बलकर्ता है, पवित्र है, मेधाकारक है, विशेषकरके तिमिरको दूरकरता है, सबभूतों (भूतबाधा) को नाश करता है । यह घृत श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥

इति घृतवर्गः ।

अथ तैलवर्गः ।

तैलं त्वाग्नेयमुष्णं तीक्ष्णं मधुरं मधुरविपाकं बृंहणं प्रीणनं व्यवायि सूक्ष्मं विशदं गुरु सरं विकाशि वृष्यं त्वक्प्रसादनं मेधामार्दव-मांसस्थैर्यवर्णबलकरं चक्षुष्यं बद्धमूत्रं लेखनं तिक्तकषायानुरसं पाचनं मलिनबलासक्षयकरं क्रिमिघ्नमशीतपित्तजननं योनिशि-रःकर्णशूलप्रशमनं गर्भाशयशोधनं च ॥ १ ॥

तैल-तिलोंका तैल आग्नेय (अग्न्यात्मक) है, गरम है, तीक्ष्ण है, विपाकमें मधुर है, बृंहण है, तृप्तिकारक है, व्यवायि (पहले शरीरमें रसरूप व्याप्तहोकर पीछे पचता) है, सूक्ष्म (अर्थात् देहके सूक्ष्मछिद्रों रोममार्गोंमें प्रवेश करनेवाला) है, विशद (साफ फैलनेवाला उज्ज्वल पतला या जिसमेंसे दूसरी ओर दीखे या जिसकी आडसे दृष्टि रुके नहीं ऐसा) है, भारी है, विकाशि (संधिबंधोंको ढीला करके हिलाने चलानेवाला) है, वृष्य (स्त्रीगमनेच्छाकारक) है, त्वचाको प्रसन्न करनेवाला है, मेधा, मृदुता, मांसस्थिरता, वर्ण और बल इनका करनेवाला है, नेत्रोंको हित है, मूत्र रोकनेवाला है, लेखन (देहके धातु, उपधातु, मेद और मलोंको सुखाकर कृशताकरनेवाला है अर्थात् स्थौल्यापकर्षक है और शरीरको सूतकर छडछडीला करनेवाला) है, कडवा रस और कसेला अनुरस है, पाचन है, मलीन,

(सूत्र १) मलिनबलासक्षयकरमिति मलिनस्य दूषितश्लेष्मणः क्षयकरमित्यर्थः । न तु शुद्धकफस्य क्षयकरमिति । अथवा अनिलबलासक्षयकरमिति पाठांतरम् । तत्र वातस्य श्लेष्मणोपि क्षयकर मिलितस्य वातकफस्य क्षयकरमित्यभिप्राय. । न केवलस्य वातस्य न केवलस्य श्लेष्मणः क्षयकरमिति (डल्लनः)

कफका क्षय करनेवाला है, कृमिनाशक है, शीत और पित्त उत्पन्न नहीं होनेदेता है, योनि, शिर, कान इनकी शूलका नाशकरनेवाला है और स्त्रियोंके गर्भाशयको शोधन करनेवाला है ॥ १ ॥

तथा छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टच्युतमथितक्षतपिच्चितभग्नस्फुटितक्षाराग्निदग्धविश्लिष्टदारिताऽभिहतदुर्भग्नमृगव्यालविदष्टप्रभृतिषु च परिषेकाभ्यंगावगाहेषु तिलतैलं प्रशस्यते ॥ २ ॥

तथा छिन्न (छेदित), भिन्न (भेदित), विद्ध (विंधाहुआ), उत्पिष्ट (चूर्णित), च्युत (जोड जो अपनी जगहसे उतरगया हो), मथित (जो विलोयासा गया हो), क्षत (खुरचाहुआ या छिलगया हो), पिच्चित (जो चिपटा होगया हो), भग्न (टूटगया हो), स्फुटित (जो फूटगया हो) इत्यादिका जो जखम हो या चोट हो उसमें तथा क्षार (तेजाब), अग्नि इनसे दग्धाकियाहुआ, विश्लिष्ट (संधिविश्लेष), दारित (कटा या चिरा हो), अभिहत (लट्ठीआदिकी चोट लगीहो), दुर्भग्न (जो टूटभी गया हो पिसभी गया हो), ऐसे अंग और मृगविदष्ट (चौपयोंका काटाहुआ), व्यालविदष्ट (भ्रमर, वृश्चिक, सर्पादिका काटाहुआ) इत्यादि कार्योंमें तथा परिषेक (तरडादेना), अभ्यंग (मालिशकरना), अवगाह (किसी अंगका डुबोयारखना) इत्यादि कार्योंमें भी तिलका तेल श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

तद्वस्तिषु च पाने च नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ॥
अन्नपानविधौ चापि प्रयोज्यं वातशांतये ॥ ३ ॥

वह तिलका तेल वस्तिकर्मोंमें तथा स्नेहपानमें, नस्यमें, कानमें डालनेमें, आखमें डालनेमें, अन्नपानविधिमें अर्थात् पक्वान्नबनाने या छोंक आदि लगानेमें तथा वायुकी शांतिके लिये उपयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

एरंडका तेल ।

एरंडतैलं मधुरमुष्णं दीपनं कटु कषायानुरसं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनं त्वच्यं वृष्यं मधुरविपाकं वयस्थापनं योनिशुक्रविशोधनमारोग्यमेधाकांतिस्मृतिबलकरं वातकफहरमधोभागदोषहरं च ॥ ४ ॥

(सूत्र २) छिन्न द्विधाभूतम् । भिन्न भेदितम्, उत्पिष्टं चूर्णितम्, च्युत स्थानादधोगतम्, क्षतं स्रवद्रक्तपूयादियुक्तव्रगः इति शब्दस्तोमः। डल्हनस्तु क्षतमिति उरःक्षतादि, पिच्चितं चिप्पटीकृतम्, विश्लिष्टं सन्धिविश्लिष्टमात्रम्। (सूत्र ३) अन्नपानविधौ इत्यन्नपानसस्कारे । (सूत्र ४) योनिशुक्रविशोधनं योनिविशोधन शुक्रविशोधन च । अथवा योनिशुक्रस्य विशोधनम् । योनिशुक्रकथनेन आर्तवादतिरिक्तस्त्रीवीर्यस्य ग्रहणम् । तथा चोक्त "योषिताऽपि स्रवत्येव . शुक्र पुंसः समागमे" इति । अधोभागदोषाः पक्काशयमलाशयदोषाः ।

अरण्डका तेल मधुर है, गरम है, तीक्ष्ण है, दीपन है, कटु (चरपरा) रस और कसेलाअनुरस है, सूक्ष्म है, मार्गोंका शोधनकरनेवाला है, त्वचाके लिये हितकारक है, विपाकमें मधुर है, अवस्थास्थापक है, योनिके शुक्रका शोधन करनेवाला है और आरोग्य, मेधा, कांति, स्मृति तथा बलका करनेवाला है और वायु तथा कफका हरनेवाला है और अधोभागके दोषोंको दूर करता है ॥ ४ ॥

निंबातसीकुसुंभमूलकजीमूतकवृक्षककृतवेधनार्ककंपिल्लकहस्तिकर्णपृथ्वीकापीलुकरंजेंगुदीशिग्रुसर्षपसुवर्चलाविडंगज्योतिष्मतीफलतैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिलकफकृतकुष्ठप्रमेहशिरोरोगहराणि चेति ॥ ५ ॥

निंबोलियोंका तेल, अलसीका तेल, कसूंभेके बीजों (करड) का तेल, मूलीके बीजोंका तेल, बिंडालबीजका तेल, वृक्षक (इंद्रयवों)का तेल, कृतवेध (कोशातकी) का तेल, आकका तेल, कमलेका तेल, हस्तिकर्ण (भूपलाश) का तेल, कालेजीरेका तेल, पीलुका तेल, करंजवेका तेल, हिंगोटका तेल, सोहजनेके बीजोंका तेल, सरसोंका तेल, सुवर्चला (सूर्यावर्त) का तेल, वायविडंगका तेल, मालकांगनीका तेल ये सब तेल तीक्ष्ण हैं, हलके उष्णवीर्य हैं, कटुरस और कटुकविपाक हैं, सर (फैलनेवाले) हैं, वायु और कफ कुष्ठनाशक हैं और प्रमेह तथा शिरोरोगके हरनेवाले हैं ५

कुछ न्यारे न्यारे तैलोंके गुण ।

वातघ्नं मधुरं तेषु क्षौमं तैलं बलापहम् ॥ कटुपाकमचक्षुष्यं स्निग्धोष्णं गुरु पित्तलम् ॥ ६ ॥ कृमिघ्नं सार्षपं तैलं कंडूकुष्ठापहं लघु ॥ कफमेदोनिलहरं लेखनं कटु दीपनम् ॥ ७ ॥ कृमिघ्नमिंगुदीतैलमीषत्तिक्तं तथा लघु ॥ कुष्ठामयकृमिहरं दृष्टिशुक्रबलापहम् ॥ ८ ॥ विपाके कटुकं तैलं कौसुंभं सर्वदोषकृत् ॥ रक्तपित्तकरं तीक्ष्णमचक्षुष्यं विदाहि च ॥ ९ ॥

क्षौम (अतसी) का तेल वायुनाशक है, मधुर है, बलका नाशक है, विपाकमें कटुक है, नेत्रोंको अहित है, तरगरम है, भारी है और पित्तल है ॥ ६ ॥ सरसोंका तेल कृमिनाशक है, खाज और कुष्ठहर्ता है, हलका है, कफ, मेद और वायुको नाशकरता है, लेखन है, कटुक है और दीपन है ॥ ७ ॥ हिंगोटका तेल कृमिनाशक

(सूत्र ५)अनिलकफकृतकुष्ठहराणीति वातकफजनितकुष्ठहराणि न तु पित्तजनितकुष्ठहराणीति भावार्थः ।
(सूत्र ६)अत्र भवतीति शेषेणान्वयः एवमेव क्रियापदानुक्तेषु गद्यपद्येषु सर्वेषु शेषेणैवान्वयो बोद्धव्यः ।

है, कुछ २ कडवा है तथा हलका है, कुष्ठरोगके क्रिमियोंका हर्ता तथा दृष्टि, शुक्र और बलका हरनेवाला है ॥ ८ ॥ कसूंभे (कर्ड) का तेल विपाकमें कटुक है, सब दोषोंका करनेवाला और रक्तपित्तकारक है, तीक्ष्ण है, नेत्रोंको अहित है और विदाही है ॥ ९ ॥

किराततिक्तकाऽतिमुक्तकविभीतकनालिकेरकोलाक्षोडजीवंतीप्रियालकर्बुदारसूर्यवल्लीत्रपुषैर्वारुककर्कारुककूष्मांडप्रभृतीनां तैलानि मधुराणि मधुरवीर्यविपाकानि वातपित्तप्रशमनानि शीतवीर्याण्यभिष्यंदीनि सृष्टविण्मूत्राण्यग्निसादनानि चेति ॥ १०॥

चिरायतेके बीजोंका तेल, अतिमुक्तक (अवांतक नधुमाधवी) का तेल, बहेडेका तेल, खोपरेका तेल, बेरकी गुठलीका तेल, अखरोटका तेल, जीवंतीका तेल, चिरोंजीका तेल, कचनारका तेल, सूर्यवल्ली (अर्कपुष्पी) का तेल, खयारेनका तेल, आरीयेके बीजोंका तेल, ककड़ीके बीजोंका तेल, कोहलेके बीजोंका तेल, (प्रभृतिशब्दसे बदामआदिका तेल) ये मधुर रस हैं, वीर्य और विपाकमें भी मधुर हैं, वायु और पित्तनाशक हैं, अत्यंत शीतवीर्य नहीं हैं, अभिष्यंदि हैं, मलमूत्रको निकालनेवाले हैं और अग्निमंद करते हैं ॥ १० ॥

मधूककाश्मर्यपलाशतैलानि मधुरकषायाणि कफपित्तप्रशमनानि ॥ ११ ॥ तुवरकभल्लातकतैले उष्णे मधुरकषाये तिक्तानुरसे वातकफकुष्ठमेदोमेहकृमिहरे उभयतो भागदोषहरे च ॥ १२ ॥

महुआ, खंभारी और पलाशफलके तेल मधुर, कषाय हैं, कफ और पित्तको शांत करते हैं ॥११॥ तुवरक(एक पश्चिम समुद्रतटपर वृक्ष होता है उसका मदरतुल्य फल होताहै) का और भिलावेका तैल गरम हैं, मधुर, कसेलारस हैं और कडवा अनुरस हैं, वायु, कफ, कुष्ठ, मेद, प्रमेह और क्रमि इनको हरनेवाले हैं उभयभागके दोषोंको दूर करते हैं (अर्थात् वमन और रेचन करते हैं) ॥ १२ ॥

सरलदेवदारुगंडीरशिंशपाऽगुरुसारस्नेहास्तिक्तकटुकषाया दुष्टव्रणशोधनाः कृमिकफकुष्ठानिलहराश्च ॥ १३ ॥

(सूत्र १०) शीतवीर्याणीत्यत्र अशीतवीर्याणीति वा पाठः । शीतवीर्याणि सत्यपि नातिशीतवीर्याणीति केचित् । (सूत्र १२) तुवरकं पश्चिमार्णवतीरजातं, तदुक्तं "पत्रैस्तु केशराकारैः कलायसदृशैः फलैः ॥ वृक्षस्तुवरको नाम पश्चिमार्णवतीरजः ॥" इति डल्लनः । (सूत्र १३) सरलवृक्षनिर्यासः तारपीन इति प्रसिद्धः (शब्दस्तोमे वाचस्पति.) सरलादीना सारस्नेहाः (डल्लनः)

सरलका स्नेह (तारपीनका तेल), देवदारुका तेल, गंडीर वृक्षका तेल, शीशमका तेल, अगुरुका तेल ये सब तिक्त, कटु, कसेले हैं। दुष्टव्रणके शोधन करनेवाले हैं। कृमि, कफ, कुष्ठ और वायुके नाशक हैं ॥ १३ ॥

तुंबीकोशाम्रदंतीद्रवन्तीश्यामासप्तलानीलिकाकंपिल्लकशंखिनीस्नेहास्तिक्तकटुकषाया अधोभागदोषहराः कृमिकफकुष्ठानिलहरा दुष्टव्रणविशोधनाश्च ॥ १४ ॥

कडवी तूंबीका तेल, कोशाम्र (क्षुद्र एक वनका आम्रविशेष) का तेल, दंती (जमालगोटे) का तेल, सँवरीका तेल, श्यामा (विधायरे) का तेल, सप्तला (सातला एकभांतिकी थोहर) का तेल, नीलीका (कालेदाने) का तेल, कमेलेका तेल, शंखिनी (यवतिक्ता भेद) का तेल ये सब तिक्त, कटु, कसेले होते हैं और अधोभागके दोषोंको हरते हैं अर्थात् विरेचन करनेवाले हैं। कृमि, कफ, कुष्ठ, वायु इन्हें नाश करते हैं तथा दुष्टव्रणको शोधन करते हैं ॥ १४ ॥

यवतिक्तातैलं सर्वदोषप्रशमनमीषत्तिक्तमग्निदीपनं लेखनं मेध्यं पथ्यं रसायनं च ॥ १५ ॥ एकैषिकातैलं मधुरमतिशीतं पित्तहरमनिलप्रकोपनं श्लेष्माभिवर्द्धनम् ॥ १६ ॥ सहकारतैलमीषत्तिक्तमतिसुगंधि वातकफहरं रूक्षं मधुरकषायं रसवन्नातिपित्तकरं च॥१७

यवतिक्ताका तेल सब दोषोंको शांत करता है, कुछ २ कडवा, अग्नि दीप्त करनेवाला, लेखन, मेधाजनक, पथ्य और रसायन है (यवतिक्ता जवोंके खेतमें होती है कडुवे सात आठतक पत्ते होते हैं) ॥ १५ ॥ तथा एकैषिका (निशोथ) का तेल मीठा, अतिशीतल, पित्तहर्ता, वायुकोप करनेवाला तथा कफवर्द्धक है (एकैषिका अविरुद्धकरणी पाठाको कहते हैं और जैज्जटाचार्य एकैषिका निशोथको मानते हैं) ॥ १६ ॥ आँबका तेल कुछ २ तिक्त, अत्यन्त सुगंधित, वातकफनाशक है, रूक्ष है, मधुर और कसेला है तथा रसकी तरह अतिपित्तकारक नहीं है ॥ १७ ॥

फलोद्भवानि तैलानि यान्यनुक्तानि कानिचित् ॥ गुणान् कर्म च विज्ञाय फलवत्तानि निर्दिशेत् ॥ १८ ॥ यावंतः स्थावराः स्नेहाः समासात्परिकीर्तिताः ॥ सर्वे तैलगुणा ज्ञेयाः सर्वे चानि-

(सूत्र १५) यवतिक्ता यवक्षेत्रेषु जायते तिक्तसप्ताष्टपत्रा इति डल्हनाचार्यः। (सूत्र १६) एकैषिका अविरुद्धकरणी पाठेति लोके, त्रिवृदिति जैजटः।

लैनाशनाः ॥ १९ ॥ सर्वेभ्यस्त्विह तैलेभ्यस्तिलतैलं प्रशस्यते ॥ निष्पत्तेस्तद्गुणत्वाच्च तैलत्वमितरेष्वपि ॥ २० ॥

जो जो फलोंके तैल कोई वर्णन नहीं भी किये हैं उन्हें फलके अनुसार गुण और कर्म जानकर समझलेना चाहिये ॥ १८ ॥ जो जो स्थावर तैल संक्षेपसे कहे वे सब प्रायः तिलके तैलके तुल्य कुछ न कुछ गुण रखतेही हैं तथा सभी वायुको तो नाश करतेही हैं ॥१९॥ जितने तेल हैं सबमें तिलका तेल श्रेष्ठ है क्योंकि तैलका अर्थही तिलसे उत्पन्न हुआ है तथा सब तैलोंमें कुछ २ तिलतैलके गुणधर्मभी होतेही हैं इससे मुख्य तिलका तेल और इसकी साधर्म्यतासे औरोंमेंभी (अर्थात् अन्यस्नेहोंमें भी) तैलशब्दत्व और तैलत्व है ॥ २० ॥

ग्राम्यानूपौदकानां च वसामेदोमज्जानो गुरूष्णमधुरा वातघ्नाः । जांगलैकशफक्रव्यादादीनां लघुशीतकषायाः रक्तपित्तघ्नाः । प्रतुदविष्किराणां श्लेष्मघ्नाः तत्र घृततैलवसामेदोमज्जानो यथोत्तरं गुरुविपाका वातहराश्च ॥ २१ ॥

इति तैलवर्गः ।

ग्रामके जीव तथा जलकिनारेके जीव तथा जलके जीव इनके वसा (मांसस्नेह) मेद (चरबी), मज्जा (अस्थिके भीतरका स्नेह) ये भारी, गरम और मधुर होते हैं और वातनाशक हैं । तथा जंगलके जीव और एक खुरके जीव तथा मांसभोजी पक्षी इनके वसा, मेद और मज्जा लघु, शीतल, कषाय होते हैं । तथा रक्तपित्तनाशक तथा प्रतुद कपोतादिक और विष्किर, लवा, तीतर आदिके वसादिक कफनाशक होते हैं । इन सबमें घृत, तैल, वसा, मेद, मज्जा ये उत्तरोत्तर भारी विपाकवाले और वायुनाशक होते हैं ॥ २१ ॥

इति तैलवर्गः ।

अथ मधुवर्गः ।

मधु तु मधुरं कषायानुरसं रूक्षं शीतमग्निदीपनं वर्ण्यं बल्यं लघु सुकुमारं लेखनं हृद्यं संधानं शोधनं रोपणं वाजीकरणं संग्राहि चक्षुःप्रसादनं सूक्ष्मं मार्गानुसारि पित्तश्लेष्ममेदोमेहहिक्काश्वासकासातिसारच्छर्दितृष्णाकृमिविषप्रशमनं ह्लादि त्रिदोषप्रशमनं च तत्तु लघुत्वात् कफघ्नं पैच्छिल्यान्माधुर्यात् कषायभावाच्च वातपित्तघ्नम् ॥ १ ॥

मधु (शहत) मीठारस और कसेला अनुरस है, रूक्ष है, शीतल है, अग्निको दीप्त करता है । रंग, रूप, सुंदर करता है, बलकारक है, हलका है, कोमल है, लेखन (शरीरको सुखानेवाला) है, हृदयको हित है, संधान (टूटेको जोडनेवाला) है, शोधन करता है, व्रणरोपण है, वाजीकरण है, ग्राहि (काबिज) है, नेत्रोंको प्रसन्न करनेवाला है, सूक्ष्म (रोममार्गमें प्रवेश करनेवाला) है, मार्गोंमें अनुसरण करनेवाला है तथा पित्त, कफ, मेद, प्रमेह, हिचकी, श्वास, खांसी, अतिसार, छर्दि, तृषा, कृमि और विष इन्हें शांत करता है, आह्लादकर्ता है, त्रिदोषको शांत करनेवाला है । यह मधु हलका होनेसे कफको शांत करता है और पिच्छलतासे, मधुरतासे तथा कसैलेपनसे वायु और पित्तको शांत करता है ॥ १ ॥

मधुकी ८ जाति ।

पौत्तिकं भ्रामरं क्षौद्रं माक्षिकं छात्रमेव च ॥
आर्घ्यमौद्दालकं दालमित्यष्टौ मधुजातयः ॥ २ ॥

१ पौत्तिक, २ भ्रामर, ३ क्षौद्र, ४ माक्षिक, ५ छात्र, ६ आर्घ्य, ७ औद्दालक और ८ दाल ये मधुकी आठ जाति हैं । (जिनमें १ "पौत्तिक" उसे कहते हैं जो कालेवर्णकी बड़ी मक्खी होती हैं उन्हें पुत्तिका कहते हैं उनका शहत पौत्तिक होता है । २ "भ्रामर" भौरोंका शहत जो सुपेद मिश्रीसा होता है । ३ "क्षौद्र" पिंगल वर्णकी क्षुद्रा छोटी मक्खियोंका कपिलवर्णका शहत होता है । ४ "माक्षिक" पिंगलवर्णकी साधारण बडी मधुमक्षिकाओंका तैलवर्ण शहत होता है । ५ "छात्र"

(सूत्र २) अष्टाना मधुजातीना लक्षणं तत्र पौत्तिकस्य लक्षणम्—"कृष्णा या मशकोपमा लघुतरा प्रायो महापीडिका वृद्धानां तरुकोटरान्तरगताः पुष्पासवं कुर्वते ॥ तास्तज्ज्ञैरिह पूतिका निगदितास्ताभिः कृतं सर्पिषा तुल्य यन्मधु तद्वनेचरजनः सकीर्तित पौत्तिकम्" इति भावमिश्रः । डल्हनस्तु इत्याह—पिंगला महत्यो मक्षिकाः पुत्तिकाः तद्भवं पौत्तिकामिति । भ्रामरलक्षणम्—"किंचित्सूक्ष्मैः प्रच्छिद्रेभ्यः षट्पदेभ्योऽभिश्चितम् ॥ निर्मल स्फटिकाभं यत्तन्मधु भ्रामरं स्मृतम् ॥" क्षौद्रलक्षणम्—"मक्षिकाः कपिलाः सूक्ष्माः क्षुद्राख्यास्तत्कृत मधु ॥ मुनिभिः क्षौद्रमित्युक्तं तद्वर्णात्कपिलं भवेत् ॥" माक्षिकलक्षणम्—"मक्षिकाः पिंगवर्णास्तु महत्यो मधुमक्षिकाः ॥ ताभिः कृत तैलवर्ण माक्षिक परिकीर्तितम् ॥" छात्रलक्षणम्—"वरटाः कपिलाः पीताः प्रायो हैमवते वने ॥ कुर्वंति छत्रकाकारं तज्ज छात्रं मधु स्मृतम् ॥" आर्घ्यलक्षणम्—"मधूकवृक्षनिर्यास जरत्कार्वाश्रमोद्भवम् ॥ स्रवत्यार्घ्यं तदाख्यात श्वेतकं मालवे पुनः ॥ तीक्ष्णतुंडास्तु याः पीतवर्णाः षट्पदसन्निभाः ॥ अर्घ्यास्तास्तत्कृत यत्तदार्घ्यमित्यपरे जगुः ॥" इति । एतदेव समीचीनमस्मदादिभिर्गृह्यते न मधूकजम् । औद्दालकलक्षणम्—"प्रायो वल्मीकमध्यस्थाः कपिलाः स्वल्पकीटकाः ॥ कुर्वंति कपिल स्वल्प तत्स्यादौद्दालकं मधु ॥" दालस्य लक्षणम्—"संस्रुत्य पतितं पुष्पाद्यत्तु पत्रोपरि स्थितम् । मधुराम्लकषाय च तद्दालं मधु कीर्तितम्" इति भावप्रकाशे । निघण्टुसंग्रहे च-दलं पत्रं तदुपरिस्थितं दालम् । अन्ये तु कपिला एव स्वल्पतरा मक्षिकाः प्रायेण वृक्षकोटरोद्भवा दला इत्युच्यते तद्भव दालमिति (निबंधकारः)

एक प्रकारका वरटनाम परवाला कृमि, हिमालयके वनोंमें होता है वह छत्राकार छत्ता बनाता है उसका पीला गाढा शहत होता है। ६ " आर्घ्य " कइयोंके मतसे महुवा वृक्षका निर्यास जो सुपेद रंगका मालवेमें टपकता है उसे आर्घ्य कहते हैं और कई कहते हैं कि, तीक्ष्णडंकवाले पीले भौरेसे जीव (ततय्ये) होते-हैं उनका सुपेद शहत आर्घ्य कहलाता है और वास्तवमें यह ठीक भी है। ७ "औद्दालक" छोटे परदार कीडे जो बिलोंमें रहते हैं उनका सुनहरा शहत होता-है। ८ " दाल " जो पुष्पोंका रस पत्तोंपर स्वयं टपककर पडता है वह शहत दाल कहलाता है ॥ २ ॥

सब प्रकारके मधुके न्यारे २ गुण।

विशेषात्पौत्तिकं तेषु रूक्षोष्णं सविषान्वयात् ॥ वातासृक्पित्तकृ-च्छेदि विदाहि मदकृन्मधु ॥ ३ ॥ पैच्छिल्यात्स्वादुभूयस्त्वाद्भ्रा-मरं गुरुसंज्ञकम् ॥ क्षौद्रं विशेषतो ज्ञेयं शीतलं लघु लेखनम् ॥ ॥ ४ ॥ तस्माल्लघुतरं रूक्षं माक्षिकं प्रवरं स्मृतम् ॥ श्वासादिषु च रोगेषु प्रशस्तं तद्विशेषतः ॥५॥ स्वादुपाकं गुरु हिमं पिच्छलं रक्तपित्तजित् ॥ श्वित्रमेहकृमिहरं विद्याच्छात्रं गुणोत्तरम् ॥ ६ ॥ आर्घ्यं मध्वतिचक्षुष्यं कफपित्तहरं परम् ॥ कषायं कटु पाके च बल्यं तिक्तमवातकृत् ॥ ७ ॥ औद्दालकं रुचिकरं स्वर्यं कुष्ठविषा-पहम् ॥ कषायमुष्णमम्लं च पित्तकृत्कटुपाकि च ॥ ८ ॥ छर्दिमे-हप्रशमनं मधु रूक्षं दलोद्भवम् ॥ ९ ॥

"पौत्तिकशहत" विशेषकर उनमें रूक्ष है, गरम है और विषयुक्त अंशांश होनेसे वातरक्त और पित्तकारक है, छेदि (मेदग्रंथि आदिको नाश करता) है, दाह पैदा करता है और मदकारक है ॥ ३ ॥ "भ्रामरशहत" गाढा होनेसे और अत्यन्त मीठा होनेसे भारी होता है (और रक्तपित्तनाशक है)-तथा "क्षौद्रशहत" विशेष करके शीतल है, हलका है, लेखन (मेदनाशक) है ॥ ४ ॥ "माक्षिकशहत" क्षौद्रसे भी बहुतही हलका और रूक्ष होता है इससे विशेषकर यह श्रेष्ठ है और श्वास आदिरोगोंमें उपयोग करना उत्तम है ॥ ५ ॥ "छात्रशहत " विपाकमें मीठा है, भारी है, शीतल है, गाढा होता है, रक्तपित्तहर्ता और श्वेतकुष्ठ, प्रमेह और कृमिरोगनाशक तथा गुणमें श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ "आर्घ्यशहत" अत्यन्त नेत्रोंको हित

(सूत्र ३) 'सविषान्वयात्' सविषरसाहारमक्षिकासंभवादिति (नि. सं.) छेदि मेदोग्रन्थ्यादीनाम्।

है, कफपित्तका परम हरनेवाला है, कसेला है, विपाकमें कटु है, बलकारक है, तिक्त है तौ भी वायुकर्ता नहीं है ॥ ७ ॥ "औद्दालकशहत" रुचिकारक है, कंठस्वर सुधारनेवाला है, कुष्ठ और विषका नाशक है, कसेला, गरम और अम्लता लिये होता है, पित्तकारक है और विपाकमें कटुक है ॥ ८ ॥ "दालशहत" छर्दि और प्रमेहको दूर करता है और रूक्ष होता है ॥ ९ ॥

नवीन पुराण पक्के कच्चे शहतके गुण ।

बृंहणीयं मधु नवं नातिश्लेष्महरं सरम् ॥ मेदःश्लेष्मापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम् ॥ १० ॥ दोषत्रयहरं पक्वमाममम्लं त्रिदोषकृत् ॥ ११ ॥

नवीन शहत बृंहण (शरीर पुष्ट और मोटा करनेवाला) है, अत्यन्त कफहर्ता नहीं है तथा सर (फैलनेवाला) है । और पुराना शहत मेद और कफनाशक है, ग्राही (काबिज) है तथा अत्यन्त लेखन (शरीरको सुखाने दुबला करनेवाला) है ॥ १० ॥ पक्का शहत त्रिदोषको शांत करनेवाला है और कच्चा जो खट्टा हो वह त्रिदोषकारक होता है ॥ ११ ॥

तद्युक्तं विविधैर्योगैर्निहन्यादामयान्बहून् ॥
नानाद्रव्यात्मकत्वाच्च योगवाहि परं लघु ॥ १२ ॥

वह मधु नानाप्रकारके योगोंसे युक्त किया हुआ बहुतसे रोगोंको नाशकरता है तथा अनेक द्रव्यमय होनेसे परमयोगवाही अर्थात् गरमके साथ अतिगरम और ठंढेके साथ अतिठंढा होताहै और हलका होता है ॥ १२ ॥

तत्तु नानाद्रव्यरसगुणवीर्यविपाकविरुद्धानां पुष्परसानां सविषमक्षिकासंभवत्वाच्चानुष्णोपचारम् ॥ १३ ॥ उष्णैर्विरुध्यते सर्वं विषान्वयतया मधु ॥ उष्णार्तमुष्णैरुष्णे वा तं निहन्ति यथा विषम् ॥ १४ ॥ तत्सौकुमार्याच्च तथैव शैत्यान्नानौषधीनां रससंभवाच्च ॥ उष्णैर्विरुध्येत विशेषतश्च तथान्तरिक्षेण जलेन वापि ॥ १५ ॥

वह मधु नानाप्रकारके द्रव्योंका रस तथा अनेक गुणवीर्यविपाकविरुद्ध पुष्पोंका रस होनेसे और विषभरी मक्खियोंसे पैदा होनेसे इसको विना गरम कियेही उप-

(सूत्र १०) नवपुराणमधुनः कालव्यवस्थामाह—"मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः॥ एकसंवत्सरेऽतीते पुराणत्वं स्मृतं बुधै" इति (भा.प्र.) (सूत्र ११) पक्वामव्यवस्थामाह-यत् छत्रे मक्षिकास्थाने बहुकालाश्रितमतिमाधुर्ययुतं पक्वं तत्रैवाल्पकालीनं पिंडीभूतमम्लरसं चामं—नत्वत्राग्निसंयोगतः पक्वं ज्ञेयमिति ।

चार करना योग्य है ॥ १३ ॥ सब भांतिका शहत विषयुक्त होनेसे गरम (तत्ते) पदार्थोंसे विरुद्ध है तथा गरमीसे पीडित मनुष्यको तथा उष्णवीर्य पदार्थोंके साथ अथवा उष्णकालमें रोगीको देना उचित नहीं क्योंकि, यह विषतुल्य होकर प्राणनाश करदेता है ॥ १४ ॥ तथा सुकुमारता, कोमलतासे और नानाप्रकारकी औषधोंका रस होनेसे अतिशीतपदार्थोंसे भी विरुद्ध है पर विशेषकर उष्णपदार्थोंसे विरुद्ध है। तथा आकाशीय वर्षाके जलसे विरुद्ध है (और बरफके पानीसेभी विरुद्ध है) इससे इनके संयोगमें उपयोग न करना चाहिये ॥ १५ ॥

उष्णेन मधु संयुक्तं वमनेष्ववचारितम् ॥ अपाकादनवस्थानान्न विरुध्येत पूर्ववत् ॥ १६ ॥ मध्वामात्परतरस्त्वन्यदामं कष्टं न विद्यते ॥ विरुद्धोपक्रमत्वात्तत्सद्यो हंति यथा विषम् ॥ १७ ॥

इति मधुवर्गः ।

उष्णके साथ योग कियाहुआ शहत वमनकी औषधोंमें उपचार किया गया है। वह इसलिये है कि, उसका परिपाक नहीं होताहै और न वह शरीरमें ठहरता है। इससे पूर्वोक्तके अनुसार यहां विरुद्ध नहीं ॥ १६ ॥ मधुके अजीर्णसे अन्य और अजीर्ण इतना कष्टकारी नहीं होता अर्थात् शहतका अजीर्ण अत्यन्त बुरा होता है। क्योंकि, अजीर्णका उपक्रम उष्ण जल, उष्ण पाचनचूर्णादि इसमें उलटे (विरुद्ध) होतेहैं इससे विनापचा शहत विषके समान प्राणनाशक होता है ॥ १७ ॥

इति मधुवर्गः ॥

अथेक्षुवर्गः ।

इक्षवो मधुरा मधुरविपाका गुरवः शीताः स्निग्धा बल्या वृष्या मूत्रला रक्तपित्तप्रशमनाः कृमिकफकराश्चेति । ते चानेकविधाः । तद्यथा ॥ १ ॥ पौण्ड्रको भीरुकश्चैव वंशकः शतपोरकः ॥ कांतारस्तापसेक्षुश्च काष्ठेक्षुः सूचिपत्रकः ॥ २ ॥ नैपालो दीर्घपत्रश्च नीलपोरोऽथ कोशकृत् ॥ इत्येता जातयः स्थौल्याद्गुणान् वक्ष्याम्यतः परम् ॥ ३ ॥

सब प्रकारके इक्षु (इख या गन्ने) मीठे और विपाकमें भी मधुर तथा भारी, शीतल, स्निग्ध, बलकारक, वृष्य (वीर्यवर्द्धक), मूत्र खुलकर लानेवाले और रक्तपित्तको शांतकरनेवाले होतेहैं तथा कृमि और कफकारक हैं। वे ईखके गन्ने कई प्रकारके

होते हैं जैसे कि ॥ १ ॥ १ पौंड्रक (पोंडा), २ भीरुक (छोटा श्याहपोंडा),३ वंशक (बांसियापोंडा),४ शतपोरक (निकट २ बहुतसी जिसमें पोरी हों),५ कांतार (वनका गन्ना),६ तापसेक्षु (मोटा वनका गन्ना), ७ काष्ठेक्षु (काठियागन्ना), ८ सूचिपत्रक (छोटे सूचिसम पत्तोंवाला ईख) ॥२॥ ९ नेपाली (नेपालीईख), १० दीर्घपत्र (जिसके बडेपत्ते हों), ११ नीलपोर (जिसकी गांठोंमें नीलताहो), १२ कोशकृत् (फांसरा अतिरसील गन्ना) ये १२ जाति ईखकी मोटे पतलेपनेसे हैं इसके अगाडी इनके गुण वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

सुशीतो मधुरः स्निग्धो बृंहणः श्लेष्मलः सरः॥अविदाही गुरुर्वृष्यः पौंड्रको भीरुकस्तथा ॥ ४ ॥ आभ्यां तुल्यगुणः किंचित्सक्षारो वंशको मतः ॥ वंशवच्छतपोरस्तु किंचिदुष्णः स वातहा ॥ ५ ॥

पौंड्रक तथा भीरुक दोनों सुन्दर, शीतल, मधुर, स्निग्ध, बृंहण, कफकारक और सर (फैलनेवाले) हैं । तथा दाह उत्पन्न नहीं करते, भारी हैं, वृष्य हैं (इनके नामसे इनका रस समझना चाहिये) ॥ ४ ॥ वंशक इनहीके तुल्य है, कुछ खरोंहा होता है तथा वंशकके तुल्यही शतपोरक होता है पर कुछ २ गरम और वायु-नाशक होता है ॥ ५ ॥

कांतारतापसाविक्षू वंशकानुगुणौ मतौ ॥ एवंगुणस्तु काष्ठेक्षुः स तु वातप्रकोपनः ॥६॥ सूचीपत्रो नीलपोरो नैपालो दीर्घपत्रकः ॥ वातलाः कफपित्तघ्नाः सकषाया विदाहिनः ॥ ७ ॥ कोशकारो गुरुः शीतो रक्तपित्तक्षयापहः ॥ ८ ॥

कांतारेक्षु और तापसेक्षु ये दोनों वंशकके अनुसार गुणवाले होते हैं । तथा काष्ठेक्षुभी इसीके समान गुणवाला होता है परंतु वायुको कोप करनेवाला है ॥६॥ और सूचीपत्र, नीलपोर तथा नैपाल और दीर्घपत्रक ये वातकारक हैं, कफपित्त-नाशक हैं, कसेले हैं और दाह पैदा करते हैं ॥ ७ ॥ और कोशकार (कोशकृत्) भारी है, शीतल है, रक्तपित्त और क्षयका नाश करनेवाला है ॥ ८ ॥

ईखका रस ।

अतीव मधुरो मूले मध्ये मधुर एव तु ॥ अग्रेष्वक्षिषु विज्ञेय इक्षूणां लवणो रसः ॥ ९ ॥ अविदाही कफकरो वातपित्तनिवारणः ॥ वक्त्रप्रसादनो वृष्यो दंतनिष्पीडितो रसः ॥ १० ॥ गुरुर्वि-

दाही विष्टंभी यांत्रिकस्तु प्रकीर्तितः ॥ पक्को गुरुः सरः स्निग्धः स तीक्ष्णः कफवातनुत् ॥ ११ ॥

इक्षु (गन्ना) जडपरसे अतिमधुर होता है और बीचसे मधुर होता है । अग्रभाग और गांठोंमें ईखका रस खरोंहा होता है ॥ ९ ॥ दांतोंसे दबा २ कर निकाला (चूसा) हुआ ईखका रस दाह पैदा नहीं करता है, कफकारक है, वायु और पित्तको शांत करनेवाला है, मुखको प्रसन्न करनेवाला है और वृष्य है॥१०॥ यंत्र (कोल्हू) का निकाला हुआ रस भारी है, दाह पैदा करता है, विष्टंभी है। तथा पकायाहुआ रस भारी है, सर (फैलनेवाला) है, रेचक है, स्निग्ध है, तीक्ष्ण है तथा कफ और वायुनाशक है ॥ ११ ॥

राब और गुडके गुण ।

फाणितं गुरु मधुरमभिष्यंदि बृंहणमवृष्यं त्रिदोषकृच्च । गुडः सक्षारमधुरो नातिशीतः स्निग्धो मूत्ररक्तशोधनो नातिपित्तजि-द्वातघ्नो मेदःकफकरो बल्यो वृष्यश्च ॥ १२ ॥

फाणित (राब) भारी है, मधुर है, अभिष्यन्दी है, बृंहण है, वृष्य नहीं है और त्रिदोषकृत् है । तथा गुड क्षारयुक्त मधुर है, अतिशीतल नहीं है, स्निग्ध है, मूत्र और रक्तका शोधन करनेवाला है, पित्तको अत्यन्त जीतनेवाला नही है, वायु नाशक है, मेद और कफका करनेवाला है तथा बलकारक और वृष्य (वीर्य-कर्ता) है ॥ १२ ॥

पुराने गुडके गुण ।

पित्तघ्नो मधुरः शुद्धो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः ॥
स पुराणोऽधिकगुणो गुडः पथ्यतमः स्मृतः ॥ १३ ॥

जो गुड पुराना होजाता है वह पित्तको शांत करता है, मधुर है, शुद्ध है, वायु नाशक और रक्तको प्रसन्न करनेवाला होता है । इस पुराने गुडमें अधिक गुण होजाते हैं और अतिपथ्य होजाता है ॥ १३ ॥

मत्स्यंडिकाखंडशर्कराविमलजाता उत्तरोत्तरं शीताः स्निग्धा गुरुतरा मधुरतरा वृष्या रक्तपित्तप्रसादनास्तृष्णाप्रशमनाश्च॥१४॥ यथा यथैषां वैमल्यं मधुरत्वं तथा तथा ॥ स्नेहगौरवशैत्यानि सरत्वं च तथा तथा ॥ १५ ॥

(श्लो० ११) यान्त्रिकः यन्त्रनिष्पीडितो रसः ।

मीजाँखाँड, खाँड, बूरा और मिश्री ये उत्तरोत्तर शीतल, स्निग्ध, भारी, अतिमधुर, वृष्य, रक्तपित्तको प्रसन्न करनेवाली और तृष्णा शांत करनेवाली होती हैं। अर्थात् मीजांखाँडसे खांड अधिकशीतल, स्निग्ध, भारी और मधुर होती है। इसी भांति खांडसे बूरा और बूरासे मिश्री जानों ॥ १४ ॥ जितनी २ इनमें विमलता होती है उतनी ही उतनी मधुरता तथा स्नेह (तरावट), भारीपन, शीतलता और सरत्व (फैलनेकी शक्ति) अधिक २ होती है ॥ १५ ॥

यो यो मत्स्यंडिकाखंडशर्कराणां स्वको गुणः ॥ तेन तेनैव निर्देश्यस्तेषां विस्रावणो गुणः ॥ १६ ॥ सारस्थिता सुविमला निःक्षारा च यथायथा ॥ तथातथा गुणवती विज्ञेया शर्करा बुधैः॥१७॥

जो जो मीजा और खांड तथा शर्कराके अपने अपने गुण हैं उन्हीं उन्हींके अनुसार उनके झिराव (चुआव) के गुण होते हैं ॥१६॥ मलरहित और क्षाररहित खांड या बूरा या मिश्री ज्यों २ सारस्थित होगी उतनीही उतनी गुणवती होगी (ऐसा विद्यावान् वैद्योंने जानाहै) ॥ १७ ॥

मधुशर्करा पुनश्छर्द्यतीसारहरा रूक्षा छेदनी प्रह्लादनी कषायमधुरा मधुरविपाका च ॥ १८ ॥ यवासशर्करा मधुरकषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरी सरा चेति ॥ १९ ॥

मधुशर्करा (शहतकी बनी खांड) छर्दि और अतिसारको हरनेवाली होती है, रूक्ष होतीहै, छेदनी (पिंडीभूतकफादिकको भेदनकरनेवाली) और आह्लाददायिनी तथा कसेलापनलिये मीठी होती है और विपाकमें भी मधुर होती है॥१८॥ यवासशर्करा) एकभांतिकी जवासेकी शर्करा जो तुरंजवीनके नामसे प्रसिद्ध है) मधुरकसेली और तिक्तअनुरस है श्लेष्मको हरनेवाली और सरा (मृदुरेचनी है) ॥१९॥

यावत्यः शर्कराः प्रोक्ताः सर्वा दाहप्रणाशनाः ॥ रक्तपित्तप्रशमनाश्छर्दिमूर्च्छातृषापहाः ॥ २० ॥ रूक्षं मधूकपुष्पोत्थं फाणितं

(वक्तव्य सूत्र १९) यूनानी हकीम विरेचनद्रव्योंके साथ इसका बहुत वरताव करते है और इसे पित्तज्वरनाशक, खाँसीहर्ता तथा छातीके दरद दूरकरनेवाली कहते है। और कई यवासशर्करा "शीरखिस्त" को मानते है परंतु मखजनुल अदवियातनामक किताबमे तुरंजवीनको जवासेकी शर्कराही लिखा है परंतु शीरखिस्तको उसी प्रकारके एक और वृक्षका निर्यास लिखा है। ओर कई ऐसा मानते है कि तुरजवीनहीको निर्मल करके मिश्री बनालेनेसे शीरखिस्त बनजातीहै क्योंकि, इन दोनोके गुण समानहीहै। अस्तु ये दोनो एकही प्रकारकी वस्तुके भेद सिद्ध होते हैं जैसे तुरजवीन, कच्ची खाँड और शीरखिस्त मिश्रीरूप समझो।

वातपित्तकृत् ॥ कफघ्नं मधुरं पाके कषायं वस्तिदूषणम् ॥ २१ ॥

इति इक्षुवर्गः ।

जितनी शर्करा (खांड) हैं सब दाहको शांतकरनेवाली, रक्तपित्तको दूर करनेवाली तथा छर्दि, मूर्च्छा और तृषाको शांतकरनेवाली होती हैं ॥ २० ॥ महुवेके फूलकी बनीहुई राब वायु और पित्तको करनेवाली होती है, कफनाशक है, मधुररस होती है और विपाकमें कसेली है तथा वस्तिस्थानको दूषित करती है ॥ २१ ॥

इति इक्षुवर्गः ।

अथ मद्यवर्गः ।

सर्वं पित्तकरं मद्यमम्लं दीपनरोचनम् ॥ भेदनं कफवातघ्नं हृद्यं वस्तिविशोधनम् ॥ १ ॥ पाके लघु विदाह्युष्णं तीक्ष्णमिन्द्रियशोधनम् ॥ विकासि सृष्टविण्मूत्रं शृणु तस्य विशेषणम् ॥ २ ॥

सबप्रकारकी मदिरा (साधारणतासे) पित्तकारक, दीपन, रोचन होती है और भेदन, कफवायुनाशक, हृदयको आनन्ददेनेवाली और वस्तिको शोधन करनेवाली होती है ॥ १ ॥ विपाकमें हलकी और दाह पैदाकरनेवाली गरम होतीहै तथा तीक्ष्ण और इंद्रियोंका बोधकरनेवाली, विकासि (संधिबन्धोंको शिथिलकरनेवाली) होती है । और मलमूत्रको खुलकर लानेवाली होती है । इसके विशेष वर्णनको श्रवण करो ॥ २ ॥

द्राक्षाकी मद्य ।

मार्द्वीकमविदाहित्वान्मधुरान्वयतस्तथा ॥ रक्तपित्तेऽपि सततं स्वुधैर्न प्रतिषिध्यते ॥ ३ ॥ मधुरं तद्धि रूक्षं च कषायानुरसं लघु ॥ लघुपाकि सरं शोषविषमज्वरनाशनम् ॥ ४ ॥

द्राक्षा (मुनक्का किसमिस या अंगूरकी) मदिरा विदाही न होनेसे और मीठे अन्वय (मीठे द्रव्योत्पन्न) होनेसे रक्तपित्तमेंभी पण्डित वैद्योंने बहुधा निषेध नहीं करी है ॥ ३ ॥ यह द्राक्षाकी मद्य रूक्ष है, कसेलाअनुरस है, हलकी और विपाक मेंभी हलकी है, सर (दस्तावर) है, शोष और विषमज्वरनाशक है ॥ ४ ॥

छुहारेकी मद्य ।

मार्द्वीकाल्पांतरं किंचित्खार्जूरं वातकोपनम् ॥ तदेवं विशदं रुच्यं

(वक्तव्य सूत्र २१) खजूर आदि कई वृक्षोंसे शर्करा बनती है उनके गुण उन वृक्षोंके अनुसार जानने चाहिये ।

कफघ्नं कर्षणं लघु ॥ ५ ॥ कषायमधुरं हृद्यं सुगंधींद्रियबोधनम् ॥
कासार्शोग्रहणीदोषमूत्राघातानिलापहम् ॥ ६ ॥

छुहारेकी मदिरा द्राक्षाकी मद्यसे थोडे अन्तरवाली होती है तथा कुछरे वायुको कोपकरनेवाली होतीहै । यह उज्ज्वल और रुचिकारक, कफनाशक, कृशताकारक और हलकी होतीहै ॥ ५ ॥ स्वादमें कसेली और मीठी होतीहै, हृदयको आनन्द-दायक, सुगंधित और इंद्रियोंको बोधनकरनेवाली होतीहै । तथा खांसी, ववासीर-ग्रहणीका दोष, मूत्राघात और अनिलनाशक (वातरोगनाशक) है ॥ ६ ॥

सुराओंके गुण ।

स्तन्यरक्तक्षयहिता सुरा बृंहणदीपनी ॥ कासार्शोग्रहणीश्वासप्रतिश्यायविनाशिनी ॥ ७ ॥ श्वेता मूत्रकफस्तन्यरक्तमांसकरी सुरा ॥ छर्द्यरोचकहृत्कुक्षितोदशूलप्रमर्दनी ॥ ८ ॥ प्रसन्ना कफवातार्शोविबंधानाहनाशिनी ॥ पित्तलाल्पकफा रूक्षा यवैर्वातप्रकोपनी ॥ ९ ॥ विष्टंभिनी सुरा गुर्वी श्लेष्मला तु मधूलिका ॥ रूक्षा नातिकफा वृष्या पाचनी चाक्षिकी स्मृता ॥ १० ॥ त्रिदोषो भेद्यवृष्यश्च कोहलो वदनप्रियः ॥ ११ ॥

सुरा और दूध रुधिरके क्षयमें हित है, बृंहण है, दीपन है, खांसी, ववासीर, संग्रहणी, श्वास और जुखाम इन्हें नाश करती है ॥ ७ ॥ सुपेद सुरा मूत्र, कफ, दूध, रक्त और मांस इनकी वृद्धि करती है तथा छर्दि, अरुचि और हृदय तथा कूखका दरद और शूलको नाश करती है ॥ ८ ॥ प्रसन्नानामक सुरा कफ, वायु, ववासीर, विबंध और अनाह (अफारा) नाशक है । तथा जवोंकी सुरा पित्तकारक, थोडा कफ करनेवाली और वायुकोप करनेवाली है ॥ ९ ॥ मधूलिकानामक सुरा भारी है, विष्टंभनी है, कफकारक है । तथा आक्षिकीसुरा रूक्ष है, अतिकफकारक नहीं है, वृष्य है, पाचनी है ॥ १० ॥ तथा कोहलनामक सुरा त्रिदोषकारक, भेदी और अवृष्य है तथा मुखको प्रिय है ॥ ११ ॥

(सूत्र ७ से ११ तक) "सुरा" लोहितवर्णा पिष्टकिण्वकल्केन किंचित् कलुषा । "श्वेतसुरा" श्वेतपुनर्नवादिमूलशालिपिष्टककिण्वप्रभवा । "प्रसन्ना" सुराया मंडः उपर्य्यच्छोभागः । "यवैः कृता" यवयवकादिकिण्वेन सुरेयम् । "मधूलिका" स्वल्पगोधूमा मध्यदेशे पीशीतिकेति लोके ख्याता तज्जा मधूलिका । अथवा मर्कटहस्ततृणं तत्फलकिण्वं मधूलकं तज्जा मधूलिका । जेजटस्तु मधूकपुष्पोत्था मधूलिका इत्याह । "आक्षिकी" अक्षस्य विभीतकस्य वल्कलैः सह कृता । "कोहलो" यवसक्तुकृत इति डल्हनः ।

जगल और वक्कस ।

ग्राही जगलः पक्ता रूक्षस्तृट्कफशोफहृत् ॥ हृद्यः प्रवाहिकाटोपदुर्नामानिलशोषहृत् ॥ १२ ॥ वक्कसो हृतसारत्वाद्विष्टंभी वातकोपनः ॥ दीपनः सृष्टविण्मूत्रो विशदोल्पमदो गुरुः ॥ १३ ॥

मदिराका जगल (नीचेका द्रवभाग) पकानेवाला है, रूक्ष है, लेपन करनेसे कफ शोथको नाश करता है, हृदयको प्रिय है तथा प्रवाहिका, आटोप, बवासीर, वातरोग और शोष (शुष्कता) नाशक है ॥ १२ ॥ मदिराका वक्कस (खूखस) सार निकलजानेसे विष्टंभी और वायुकोपकारक होता है, दीपन और मलमूत्र खुलासा लानेवाला, विशद (साफ) और थोडे नशेवाला और भारी होताहै ॥ १३ ॥

सीधु ।

कषायो मधुरः सीधुर्गौडः पाचनदीपनः ॥ शार्करो मधुरो रुच्यो दीपनो बस्तिशोधनः ॥ १४ ॥ वातघ्नो मधुरः पाके हृद्य इंद्रियबोधनः ॥ तद्वत्पक्वरसः सीधुर्बलवर्णकरः सरः ॥ १५ ॥ शोफघ्नो दीपनो हृद्यो रुच्यः श्लेष्मार्शसां हितः ॥ कर्शनः शीतरसिकः श्वयथूदरनाशनः ॥ १६ ॥ वर्णकृज्जरणः स्वर्यो विबंधघ्नोर्शसां हितः ॥ आक्षिकः पांडुरोगघ्नो वृष्यः संग्राहको लघुः ॥ १७ ॥ कषायमधुरः सीधुः पित्तघ्नोसृक्प्रसादनः ॥ जांबवो बद्धनिष्यन्दस्तुवरो वातकोपनः ॥ १८ ॥

सीधुनामक मदिरा जो गुडसे बने वह पाचन है, दीपन है तथा खांडका सीधु मधुर है, रुचिकारक है, दीपन है तथा बस्तिका शोधन करनेवाली है ॥ १४ ॥ वायुनाशक है, विपाकमें मधुर है, हृदयको आनन्ददायक है, इंद्रियोंको जगानेवाली है और इसीके अनुसार पके रसका सीधु बल और वर्णका करनेवाला और दस्तावर होता है ॥ १५ ॥ तथा शोथनाशक, दीपन और हृद्य, रुचिकारक और कफार्शके वास्ते हित है। तथा शीतरस सीधु शोथ और उदररोगनाशक होता है ॥ १६ ॥ और वर्ण (रूप) कारक और अन्नादिका जरानेवाला, स्वर-

---

(सूत्र १२ । १३) जगलः मद्याधःस्थितद्रवभागः इति वाग्भटटिप्पणीकारः । निघण्टुसंग्रहे तु जगलः अधः किण्वम् । वक्कसो मद्याधःस्थितघनभागः जगलस्यौषधमात्र वा ।

(सूत्र १४–१८) सीधुः सम्यक् इक्षुरसेन क्वथितेन घृतस्न्यादिदृढपात्रः कालान्तरेण निष्पन्नः बद्धनिष्यंदः बद्धमूत्रः । (नि० सं०)

कारक, विबंधनाशक और बवासीरमें हित है । तथा आक्षिकसीधु पांडुरोगनाशक, व्रणको हित और संग्राहक तथा लघु है ॥ १७ ॥ और जामनका सीधु पित्तहर्ता, स्वादमें कसेला, मीठा, रक्तको प्रसन्न करता है और बद्धनिष्यंद (मूत्ररोकनेवाला) है, तुवर (कषाय) है और वायुको कुपित करता है ॥ १८ ॥

आसव ।

तीक्ष्णः सुरासवो हृद्यो मूत्रलः कफवाततनुत्॥मुखप्रियः स्थिरमदो विज्ञेयोऽनिलनाशनः॥१९॥लघुर्मध्वासवश्छेदी मेहकुष्ठविषापहः॥ तिक्तः कषायः शोफघ्नस्तीक्ष्णः स्वादुरवातकृत् ॥ २० ॥ तीक्ष्णः कषायो मदकृद् दुर्नामकफगुल्महृत् ॥ कृमिमेदोनिलहरो मैरेयो मधुरो गुरुः ॥ २१ ॥ बल्यः पित्तहरो वर्ण्यो मृद्वीकेक्षुरसासवः ॥ सीधुर्मधूकपुष्पोत्थो विदाह्यग्निबलप्रदः ॥ २२ ॥ रूक्षः कषायः कफहृद्वातपित्तप्रकोपनः ॥ निर्दिशेद्रसतश्चान्यान्कंदमूलफलासवान् ॥ २३ ॥

सुराऽऽसव (सुराका खिंचाहुआ आसव) तीक्ष्ण है, हृदयको आनन्ददायक है, मूत्रल है, कफवायुनाशक है,मुखको प्रिय लगता है, स्थिरमद (इसका नशा बहुत समयतक रहता) है, (यह विशेषकर) वायुनाशक है ॥ १९ ॥ मधुका आसव छेदी है, प्रमेह, कुष्ठ और विषनाशक है, तिक्त है, कषाय है, शोथहर्ता और तीक्ष्ण है स्वादु है और वातकारक नहीं है ॥ २० ॥ मैरेयनामक मद्य तीक्ष्ण, कसेला है, मदकारक है, बवासीर और कफगुल्महर्ता, कृमि, मेद और वायुका हरनेवाला, मधुर और भारी है ॥ २१ ॥ द्राक्षा और ईखके रसका आसव बलकर्ता और पित्तनाशक है । तथा महुवेके पुष्पोंका सीधु दाह पैदाकरता है, जठराग्नि और बलका बढानेवाला है ॥ २२ ॥ तथा रूक्ष है, कसेला है, कफहर्त्ता है और वातपित्तको कुपितकरनेवाला है तथा अन्य जो जो कंदमूल और फलोंके आसव होते हैं उन्हें उनके रसके अनुसार गुणकारक समझना ॥ २३ ॥

नव तथा पुराण मद्य ।

नवं मद्यमभिष्यंदि गुरु वातादिकोपनम् ॥ अनिष्टगंधं विरसमहृद्यं च विदाहि च ॥ २४ ॥ सुगंधि दीपनं हृद्यं रोचिष्णु कृमिनाशनम् ॥ स्फुटस्रोतस्करं जीर्णं लघु वातकफापहम् ॥ २५ ॥

(सूत्र १९)सुरया सूयते अथ तोयकार्यं क्रियते यस्मिन् स सुरासवः । (नि. स.)

(सूत्र २५) मद्यमप्यतीतसंवत्सरं जीर्णमाहुः जातरसप्रसादनत्वेन गंधादिसंपत्त्या वा ।

नवीन मदिरा अभिष्यंदि, भारी, वातादिदोषोंको कुपित करनेवाली, दुर्गंधित और विरस तथा हृदयको अप्रिय और दाह पैदाकरनेवाली है ॥ २४ ॥ पुरानी मदिरा सुगंधित होती है, दीपन, हृदयको प्रिय, रुचिकारक, कृमिनाशक, द्वारोंको शुद्धकरनेवाली, हलकी और वातकफनाशक होती है ॥ २५ ॥

अरिष्टो द्रव्यसंयोगसंस्कारादधिको गुणैः ॥ बहुदोषहरश्चैव दोषाणां शमनश्च सः ॥ २६ ॥ दीपनः कफवातघ्नः सरः पित्ताविरोधनः ॥ शूलाध्मानोदरप्लीहज्वराजीर्णार्शसां हितः ॥ २७ ॥ पिप्पल्यादिकृतो गुल्मकफरोगहरः स्मृतः ॥ चिकित्सितेषु वक्ष्यंतेऽरिष्टा रोगहराः पृथक् ॥ २८ ॥ अरिष्टासवसीधूनां गुणान्कर्माणि चादिशेत्॥ बुद्ध्या यथास्वं संस्कारमवेक्ष्य कुशलो भिषक् २९

अरिष्ट द्रव्योंके संयोगके संस्कारसे गुणोंकरके अधिक होता है, बहुतसे दोषोंका हरनेवाला और दोषोंका शांत करनेवाला होताहै ॥ २६ ॥ दीपन है, कफ वायुका नाश करनेवाला और सर (फैलनेवाला) होताहै और पित्तका अधिक विरोधी नहीं है । शूल, अफारा, उदररोग, प्लीहा, ज्वर, अजीर्ण और अर्श (बवासीर) इनकेलिये हित है ॥ २७ ॥ तथा पिप्पल्यादि औषधोंसे साधन कियाहुआ जो अरिष्ट है वह गुल्म और कफके रोगोंका हरनेवाला होता है । और अधिकप्रकारके अनेक अरिष्ट रोगोंके दूर करनेवाले जुदे चिकित्सितस्थानमें वर्णन किये जाँयगे ॥ २८ ॥ अरिष्ट, आसव और सीधु इनके गुण और कर्मादिक संस्कार और द्रव्यादिकके संयोगको देखकर बुद्धिसे चतुरवैद्यको कल्पना करलेनी चाहिये ॥ २९ ॥

दूषित मद्य ।

सांद्रं विदाहि दुर्गंधं विरसं कृमिलं गुरु ॥ अहृद्यं तरुणं तीक्ष्णमुष्णं दुर्भाजनस्थितम् ॥ ३० ॥ अल्पौषधं पर्य्युषितमत्यच्छं पिच्छिलं च यत् ॥ तद्वर्ज्यं सर्वदा मद्यं किंचिच्छेषं तु यद्भवेत् ३१

सांद्र (गाढी), विदाहि (दाहजनक), दुर्गंधित, विरस, कृमिल (जिसमें कीडे पडगये हों), भारी तथा हृदयको अप्रिय, तरुण (ताजा), तीक्ष्ण, उष्ण (स्पर्शमें गरम) तथा निकम्मेपात्रमें धरीहुई ॥ ३० ॥ और जिसमें थोडी औषध हो तथा जो बासी अर्थात् थोडीसी किसी पानपात्रादिमें उघाडी पडी बची रहगई हो और अति निर्मल (जलजैसी) तथा गधली जो हो वह मद्य सदा त्यागनेयोग्य है तथा जो पीनेसे बची पडीरहगई हो वहभी त्याज्य है ॥ ३१ ॥

(सूत्र ३०) अस्य श्लोकस्यापि वर्ज्यमित्यग्रिमश्लोकगतपदेनान्वयः ।

सेव्य मद्य ।

चिरस्थितं जातरसं दीपनं कफवातजित् ॥ रुच्यं प्रसन्नं सुरभि मद्यं सेव्यं मदावहम् ॥ ३२ ॥ तस्यानेकप्रकारस्य मद्यस्य रसवीर्यतः ॥ सौक्ष्म्यादौष्ण्याच्च तैक्ष्ण्याच्च विकासित्वाच्च वह्निना ॥ ३३ ॥ समेत्य हृदयं प्राप्य धमनीरूर्ध्वमागतम् ॥ विक्षोभ्येन्द्रियचेतांसि वीर्यं मदयतेऽचिरात् ॥ ३४ ॥

बहुतदिनकी धरीहुई, अच्छा रस जिससे उत्पन्नहुआ हो, दीपनकरनेवाली, कफवातको जीतनेवाली, रुचिकारक, प्रसन्नताकारक, सुगंधयुक्त और यथोचित मदकरनेवाली मदिरा सदा सेवन करनी चाहिये ॥ ३२ ॥ ये जो अनेकप्रकारकी मदिरा हैं वे रसकरके, वीर्यकरके सूक्ष्म होनेसे, उष्ण होनेसे, तीक्ष्ण होनेसे तथा विकासि (संधिबंधोंको शिथिलकरनेवाली) होनेसे तथा अग्निके संयोगसे व्याप्तहुई, हृदयमें प्राप्त होकर धमनियोंसे ऊर्द्धगामी होकर इंद्रियों और चित्तको निजवीर्यसे क्षोभित करके शीघ्रही मद उत्पन्न करदेती हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

मद ।

चिरेण श्लैष्मिके पुंसि पानतो जायते मदः ॥
अचिराद्वातिके दृष्टः पैत्तिके शीघ्रमेव तु ॥ ३५ ॥

कफप्रकृति मनुष्योंको देरसे नशा होताहै तथा वातप्रकृतियोंको उससे थोडी-देरमें नशा होता है और पित्तप्रकृतियोंको मदिरा पान करतेही शीघ्र नशा होजाता है ॥ ३५ ॥

निजप्रकृतिसे मदभेद ।

सात्त्विके शौचदाक्षिण्यहर्षमंडनलालसः ॥ गीताध्ययनसौभाग्यसुरतोत्साहकृन्मदः ॥ ३६ ॥ राजसे दुःखशीलत्वमात्मत्यागंससाहसम् ॥ कलहं सानुबंधं तु करोति पुरुषे मदः ॥ ३७ ॥ अशौचनिद्रामात्सर्याऽगम्यागमनलोलता ॥ असत्यभाषणं चापि कुर्याद्धि तामसे मदः ॥ ३८ ॥

सात्त्विकप्रकृतिके मनुष्यको मद्य शौच उत्पन्नकरता है और चातुर्य, आनंद और मंडन तथा लालसा और गाना, पढना, सुभगता और मैथुनका उत्साहकारक मद होता है ॥ ३६ ॥ राजसप्रकृतिके मनुष्यको दुःखशीलता, आपेकी सुध न रहना तथा साहस, कलहकी निरंतरता इत्यादिकारक मद होता है ॥ ३७ ॥ और तामसस्वभाव-

वाले मनुष्यको अशौच और निद्रा, मत्सरता, अगम्यास्त्रियोंमें गमनकी लोलता तथा असत्यभाषण करनेवाला मद होता है ॥ ३८ ॥

शुक्त (सिरका)

रक्तपित्तकरं शुक्तं छेदि भुक्तविपाचनम् ॥ वैस्वर्यं जरणं श्लेष्मपाण्डुक्रिमिहरं लघु ॥ ३९ ॥ तीक्ष्णोष्णं मूत्रलं हृद्यं कफघ्नं कटुपाकि च ॥ तद्वत्तदासुतं सर्वं रोचनं च विशेषतः ॥ ४० ॥

शुक्त (सिरका) रक्तपित्तकारक है, छेदी है, भोजनका पचानेवाला है, विस्वरता, जरण करता है, कफ, पांडुरोग, कृमिरोगहर्ता और लघु है ॥ ३९ ॥ तीक्ष्ण गरम है, मूत्रल है, हृदयको हित है, कफनाशक है, विपाकमें कटुक है तथा शुक्तके समान तदासुत (शुक्तसंधित) सबप्रकारका जानना चाहिये । विशेषकरके शुक्तसंधित रोचन होता है ॥ ४० ॥

गौडानि रसशुक्तानि मधुशुक्तानि यानि च ॥ यथापूर्वं गुरुतराण्यभिष्यंदकराणि च ॥ ४१ ॥

गुडके शुक्त, रसके शुक्त, मधुके शुक्त जितने हैं उनमें पूर्व २ (पहले पहले) भारी और अभिष्यंद करनेवाले हैं ॥ ४१ ॥

तुषाम्बु दीपनं हृद्यं हृत्पाण्डुक्रिमिरोगनुत् ॥ ग्रहण्यर्शोविकारघ्नं भेदि सौवीरकं तथा ॥ ४२ ॥ धान्याम्लं धान्ययोनित्वाद्दीपनं दाहनाशनम् ॥ स्पर्शात्पानात्तु पवनकफतृष्णाहरं लघु ॥ ४३ ॥

तुषांबु (कांजीका भेद) दीपन है, हृद्य है, हृदयका रोग, पांडुरोग, कृमिरोगको नाश करता है । ग्रहणी, बवासिरका विकारनाशक और भेदी ऐसा सौवीरसंज्ञक कांजी होता है ॥ ४२ ॥ धान्याम्ल (कांजी) धान्यजन्य होनेसे दीपन है, दाहनाशक है, स्पर्शसे और पीनेसे तथा वायु, कफ, तृषाका हर्ता और हलका है ॥ ४३ ॥

तैक्ष्ण्याच्च निर्हरेदाशु कफं गंडूषधारणात् ॥ मुखवैरस्यदौर्गंध्यमलशोषक्लमापहम् ॥ ४४ ॥ दीपनं जरणं भेदि हितमास्थापनेषु च ॥ समुद्रसाश्रितानां च जनानां सात्म्यमुच्यते ॥ ४५ ॥

इति मद्यवर्गः ।

तीक्ष्णताके कारण शीघ्रही कफको हरता है और मुखमें रखकर कुल्ली करनेसे मुखकी विरसता और दुर्गंधि, मल, शुष्कता तथा क्लम इन्हें नाश करता है ॥ ४४ ॥

(सूत्र ४०) तदासुतं शुक्तसंधितम् ।

दीपन है, अन्नका जरानेवाला और भेदी है तथा आस्थापन वस्तिकेलिये हित है और समुद्रके रहनेवाले मनुष्योंको सानुकूल होता है ॥ ४५ ॥

इति मद्यवर्गः ।

अथ मूत्रवर्गः ।

मूत्राणि गोमहिषाजाविगजहयखरोष्ट्राणां तीक्ष्णानि कटून्युष्णानि तिक्तानि लवणानुरसानि लघूनि शोधनानि कफवातकृमिमेदोविषगुल्मार्शउदरकुष्ठशोफारोचकपांडुरोगहराणि हृद्यानि दीपनानि च सामान्यतः ॥ १ ॥ भवंति चात्र--

गौ, भैंस, बकरी, भेडी, हाथी, घोडा, गधा, ऊँट इनके मूत्र सामान्यतासे तीक्ष्ण होते हैं । कटु (चरपरे), गरम तथा तिक्त (कडवे) और नमकीन अनुरसवाले होते हैं हलके और शोधन करनेवाले होते हैं तथा कफ, वात, कृमि, मेदरोग, विष, गुल्म, बवासीर, उदररोग, कुष्ठ, शोथ, अरुचि, पांडुरोग इन्हें दूर करनेवाले होते-हैं, हृद्य (हृदयको हित) और दीपन होते हैं ॥ १ ॥ यहां श्लोक हैं कि-

तत्सर्वं कटु तीक्ष्णोष्णं लवणानुरसं लघु ॥ शोधनं कफवातघ्नं कृमिमेदोविषापहम् ॥ २ ॥ अर्शोजठरगुल्मघ्नं शोफारोचकनाशनम् ॥ पांडुरोगहरं भेदि हृद्यं दीपनपाचनम् ॥ ३ ॥

सब मूत्र कटुक, तीक्ष्ण, उष्ण और खारी अनुरस और लघु होते हैं । शोधन करनेवाले, कफवायु शांतकरनेवाले, कृमि, मेदरोग और विषनाशक होते हैं ॥ २ ॥ अर्श (बवासीर), जठररोग और गुल्म तथा शोथ और अरुचिनाशक और पांडुरोग हर्ता होते हैं, भेदी हृदयको हित दीपन तथा पाचन होतेहैं ॥ ३ ॥

गोमूत्रके गुण ।

गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं सक्षारत्वान्न वातलम् ॥ लघ्वग्निदीपनं मेध्यं पित्तलं कफवातजित् ॥ ४ ॥ शूलगुल्मोदरानाहविरेकास्थापनादिषु ॥ मूत्रप्रयोगसाध्येषु गव्यं मूत्रं प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

गोमूत्र कटुक है, तीक्ष्ण है उष्ण है, तथा खारापन होनेसे वातल नहीं है, हलका है, जठराग्निदीपन है, मेधाजनक या पवित्र है, पित्तल है, कफवातनाशक है ॥ ४ ॥ शूल, गुल्म, उदररोग, अनाह (अफारा) इन रोगोंमें तथा विरेचन और आस्थापन वस्तिमें हित है, और मूत्रप्रयोग साध्यकार्योंमें प्रायः गोमूत्रका उपयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

महिषीआदिके मूत्र ।

दुर्नामोदरशूलेषु कुष्ठमेहाविशुद्धिषु ॥ अनाहशोफगुल्मेषु पांडुरोगे च माहिषम् ॥ ६ ॥ कासश्वासापहं शोषकामलापांडुरोगनुत् ॥ कटुतिक्तान्वितं छागमीषन्मारुतकोपनम् ॥७॥ कासप्लीहोदरश्वासशोषवर्चोग्रहे हितम् ॥ सक्षारं तिक्तकटुकमुष्णं वातघ्नमाविकम् ॥ ॥ ८ ॥ दीपनं कटुतीक्ष्णोष्णं वातचेतोविकारनुत् ॥ आश्वं कफहरं मूत्रं कृमिदद्रुषु शस्यते ॥ ९ ॥ सतिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं पित्तकोपनम् ॥ तीक्ष्णं क्षारे किलासे च नागं मूत्रं प्रयोजयेत् ॥१०॥

महिषीका मूत्र बवासीर, उदररोग, शूल, कुष्ठ, प्रमेह इन रोगोंमें हित है तथा कोष्ठकी अविशुद्धिमेंभी हित है और अनाह, शोथगुल्म और पांडुरोगमें उचित है ॥ ६ ॥ बकरीका मूत्र खाँसी श्वासनाशक तथा शोष (राजयक्ष्मा), कामला, पांडुरोगहर्ता है तथा स्वादमें कटुक और तिक्ततायुक्त है, कुछ २ वायुको कुपित करताहै ॥ ७ ॥ भेडका मूत्र खांसी, प्लीहवृद्धि, उदररोग, श्वास, शोष (राजयक्ष्मा), मलग्रह (दस्तबन्द होने) में हित है, खारापनलिये हुए तिक्तकटुरस है, गरम है, वायुनाशक है ॥ ८ ॥ अश्वमूत्र दीपन है, कटु तीक्ष्ण, उष्ण है, वायुरोग और चित्तका विकार (उन्मादादि) नाशक है, कफहर्ता, कृमि, दद्रुरोगमें श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ हस्तिमूत्र तिक्ततासहित खारा है, भेदनकरताहै, वायुनाशक है, पित्तकोपकरनेवाला, तीक्ष्ण और क्षारसाधन तथा किलासरोगमें नियोजनकरना उचित है ॥ १० ॥

गरचेतोविकारघ्नं तीक्ष्णं ग्रहणिरोगनुत् ॥ दीपनं गार्दभं मूत्रं कृमिवातकफापहम् ॥ ११ ॥ शोफकुष्ठोदरोन्मादमारुतकृमिनाशनम् ॥ अर्शोघ्नं कारभं मूत्रं मानुषं तु विषापहम् ॥ १२ ॥

गर्दभमूत्र गर (विष), चित्तविकार (उन्मादादि) नाशक है, तीक्ष्ण है, ग्रहणीरोगनाशक है, दीपन है, कृमि, वायु और कफनाशक है ॥ ११ ॥ तथा उष्ट्रमूत्र शोथ, कुष्ठ, उदररोग, उन्माद तथा वायुरोग, कृमि इन्हें नाशकरता है और बवासीरको दूर करता है और मनुष्यका मूत्र विषनाशक है ॥ १२ ॥

परिशिष्टम् । (भा० प्र०)

(श्लोक) गोजाविमहिषीणां तु स्त्रीणां मूत्रं प्रशस्यते ॥
खरोष्ट्रेभनराश्वानां पुंसां मूत्रं हितं स्मृतम् ॥ १ ॥

(सूत्र ६) प्रयोजयेदित्यनुक्तक्रियापदेनान्वयः ।

(अर्थ)-गौ, अज (बकरी), अवि (भेडी), महिषी (भैंस) इनका तो स्त्री-जातिका मूत्र ग्रहणकरना चाहिये और खर (गधे), उष्ट्र (ऊँट), इभ (हाथी), नर (मनुष्य) अश्व (घोडा) इनका पुरुषजातिका मूत्र ग्रहणकरना चाहिये॥ १॥

द्रवद्रव्याणि सर्वाणि समासात्कीर्तितानि तु ॥
कालदेशविभागज्ञो नृपतेर्दातुमर्हति ॥ १३ ॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

जितने द्रवद्रव्य (पतले पदार्थ) हैं वे सब संक्षेपसे वर्णन होचुके हैं। काल और देशके विभाग आदिका जाननेवाला वैद्य राजोंको यथायोग्य द्रवपदार्थ देनेको योग्य है ॥ १३ ॥

इति प० मुरलीधरशर्मवैद्यवि० सुश्रुतस० भा०टी० सूत्रस्थाने पचचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.

अथातोऽन्नपानविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब यहांसे अन्नपानविधि (खाने पीनेकी वस्तुवोंके) विषयेंमें अध्यायकी व्याख्या करते हैं।

धन्वंतरिमभिवाद्य सुश्रुत उवाच प्रागभिहितं प्राणिनां पुनर्मूलमाहारो बलवर्णौजसां च स षट्सु रसेष्वायत्तो रसाः पुनर्द्रव्याश्रयिणो द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकनिमित्ते च क्षयवृद्धी दोषधातूनां साम्यं च ॥ १ ॥

श्रीधन्वंतरि भगवान्‌को प्रणाम करके महर्षि सुश्रुत बोले कि (हे भगवन् आपने) जो पहले वर्णन किया कि, मनुष्य और सब प्राणिमात्रके बलवर्ण और ओजका मूल आहार (भोजन) है वह छहोंरसोंके अधीन है और वे छहोंरस द्रव्योंके आश्रय हैं और दोषों (वातादि) और धातु (रस,रक्त, मांसादि) इनका क्षय और वृद्धि तथा समताका द्रव्य, रस, गुण,वीर्य विपाकही कारणरूप है ॥१॥

ब्रह्मादेरपि च लोकस्याहारः स्थित्युत्पत्तिविनाशहेतुराहारादेवाभिवृद्धिर्बलमारोग्यं वर्णेन्द्रियप्रसादश्च तथाहारवैषम्यादस्वास्थ्यम् २

ब्रह्माको आदिलेकर सम्पूर्णजगत्‌की स्थिति, उत्पत्ति और नाशका कारण आहारही है और आहारहीसे शरीरकी वृद्धि और बल तथा आरोग्य (निरोगता)

(सूत्र १) अन्नं शाल्यादि भोजनं च पानं पेयमनुपान चेति।

होती है। तथा वर्ण और इंद्रियोंकी प्रसन्नताभी आहारहीसे होती है और आहारहीकी विषमता (बिगाड) से अस्वस्थता (बीमारी) होती है ॥ २ ॥

तस्याशितपीतलीढखादितस्य नानाद्रव्यात्मकस्यानेकविधविकल्पस्यानेकविधप्रभावस्य पृथक् पृथग् द्रव्यरसगुणवीर्यविपाकप्रभावकर्माणीच्छामि ज्ञातुम्। नह्यनवबुद्धस्वभावा भिषजः स्वस्थानुवृत्तिं रोगनिग्रहणं च कर्तुं समर्थाः ॥ ३ ॥

उस अशित (भुक्त), पीत (पीयाहुआ), लीढ (चाटाहुआ) और खादित (भक्षण कियाहुआ) जो नानाद्रव्यात्मक और अनेकप्रकारके भेदोंवाला और अनेक प्रकारके प्रभावोंवाला जो आहार है उसके जुदे जुदे द्रव्यरस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव तथा कर्मोंके जाननेकी इच्छा मैं करताहूं। क्योंकि आहारादिके ठीक२ गुण और स्वभाव नहीं जाननेवाले वैद्य स्वस्थका बरताव और रोगीके रोगका निग्रह करनेको समर्थ नहीं होसकते ॥ ३ ॥

आहारमूलाश्च सर्वप्राणिनो यस्मात्तस्मादन्नपानविधिमुपदिशतु मे भवान् ॥ ४ ॥ इत्युक्तः प्रोवाच भगवान् धन्वंतरिरथ खलु वत्स सुश्रुत यथाप्रश्नमुच्यमानमुपधारयस्व ॥ ५ ॥

जो कि समस्तजीवमात्रका मूल आहार है इस कारण हे भगवन्, अन्नपान (खानेपीनेकी) विधिका मेरेको आप उपदेश कीजिये ॥ ४ ॥ सुश्रुतने धन्वंतरिजीसे ऐसे पूँछा तब धन्वंतरि भगवान् बोले कि, हे पुत्र सुश्रुत! निश्चयकरके यहांसे अगाडी जैसा तैने प्रश्न किया है वैसेही (अन्नपानकी विधि में) तेरे प्रति वर्णन करताहूं तू श्रवणकर और धारणकर अर्थात् समझ ॥ ५ ॥

शालिधान्यकी जाति।

तत्र लोहितकशालिकलमकर्दमकपांडुकसुगंधशकुनाहृतपुष्पांडकपुंडरीकमहाशालिशीतभीरुकरोध्रपुष्पकदीर्घशूककांचनकमहिषमस्तकहायनकदूषकमहादूषकप्रभृतयः शालयः ॥ ६ ॥

तहां लोहितकशालि (रक्तशालि), कलमक (कलवी), कर्दमक (जो बहुत पक्के धानसे निकले और कीचडकी पृथ्वीमें होता है), पांडुक (जिसका पीला

(सूत्र ३) अनवबुद्धस्वभावा भिषजः आहारस्य अज्ञातस्वरूपा वैद्याः।

(सूत्र ५) अथ इति मंगले, खलु वाक्यालंकारे। (सूत्र६) शालिजातीनां लक्षणानि निबंधसंग्रहादिटीकासु देशदेशांतरवासिभ्यश्च बोद्ध्यानि टीकायां मयापि निबंधसंग्रहादितःकोशेभ्यश्च समादाय लिखितानि।

तुष होता है), सुगंधक (जो पंजाबमें देवशालि कहलाते हैं), शकुनाहत (जिन्हें उज्जैनप्रान्तमें वक्र कहते और मध्यदेशमें पाशक कहतेहैं), पुष्पांडक (पुष्पोंकी-सी सुगंधवाले कोमल चावल), पुंडरीक (श्वेतकमलवत् वर्ण और गंधवाले होते-हैं), महाशालि (लम्बेशालि), शीतभीरुक (जो शीतसे भयमाने), रोध्रपुष्पक जिनका धान लोध्रके पुष्पके समान हो), दीर्घशूक (जिसका शूक बडाहो), कांच-नक (सुनहरे चांवल), महिषमस्तक (जिन्हें मध्यदेशमें तिलवासी कहते हैं), हायनक (जो वर्षदिनमें उपजें), दूषक और महादूषक (मोटे और बहुतमोटे शालि) इत्यादि और प्रभृतिशब्दसे यवक और नैषधादिक ग्रहणकरने । ये शालिचावलोंके भेद हैं ॥ ६ ॥

मधुरा वीर्यतः शीता लघुपाका बलावहाः ॥ पित्तघ्नाल्पानिल-कफाः स्निग्धाः बद्धाल्पवर्चसः ॥७॥ तेषां लोहितकः श्रेष्ठो दोषघ्नः शुक्रमूत्रलः ॥ चक्षुष्यो वर्णबलकृत्स्वर्यो हृद्यः श्रमापहः ॥ ८ ॥ व्रण्यो ज्वरहरश्चैव सर्वदोषविषापहः॥ तस्मादल्पांतरगुणाः क्रमशः शालयोऽवराः ॥ ९ ॥

ये शालि रसमें मधुर हैं, वीर्यमें शीतल हैं, विपाकमें हलके हैं, बलकारक हैं, पित्तनाशक हैं, थोडा २ वायु और कफ करते हैं, चिकने हैं, बद्ध और थोडा मल उत्पन्न करते हैं ॥ ७ ॥ इन सबमें रक्त शालि (लालशालिचावल) श्रेष्ठ हैं, तीनों दोष नाश करनेवाले हैं, वीर्य और मूत्र उत्पन्न करते हैं, नेत्रोंको हित हैं, वर्ण और बलकारक हैं, स्वरकर्ता हैं, हृदयको हित हैं, श्रमके नाश करनेवाले हैं ॥ ८ ॥ व्रणमें हित हैं, ज्वरहर्ता हैं, सब दोषों (व्याधियों) को और विषको शांत करते हैं इन रक्तशालियोंसे थोडा २ स्वल्प गुणवाले अन्यशालि क्रमसे जानने चाहिये ॥ ९ ॥

षष्टिकके भेद ।

षष्टिककंगुकमुकुंदकपीतकप्रमोदककाकलकासनपुष्पकमहाषष्टि-कचूर्णककुरवककेदारकप्रभृतयः षष्टिकाः ॥ १० ॥

षष्टिकभेद कहते हैं (षष्टिक साठी जो साठदिनमें उपजें) उनके भेद ये हैं, सांठीचांवल, कंगुक (कांगनीसे चांवल), मुकुंदक (मोगदे), पीतक (पीलिसे साठी), प्रमोदक (एकप्रकारके साठी), काकलक, असनपुष्पक, महाषष्टिक,

---

(सूत्र १०) मुकुंदककाकलकासनपुष्पककुरवककेदाराः कृष्णषष्टिकाः शेषाः गौरकृष्णा इति । शालिव्रीहीणामुत्पत्तिकालः तयोर्लक्षणं च "कडनेन विना शुक्ला हैमंताः शालयः स्मृताः॥ वार्षिकाः कडिताः शुक्ला व्रीहयश्चिरपाकिनः" इति (भा. मि.)

चूर्णक, कुरवक, केदारक आदि षष्टिककी जाति हैं (जिनमेंसे मुकुंदक,असनपुष्पक, कुरवक और केदारक ये कालेसाठी होते हैं और शेष गौर) षष्टिक भी व्रीहिके भेदमेंसे होते हैं ये वर्षाऋतु (सावनू खरीफकी फसलमें होते हैं) और शालि हिमऋतु (साठी अर्थात् रवीकी फसल) में होते हैं ॥ १० ॥

रसे पाके च मधुराः शमना वातपित्तयोः ॥ शालीनां च गुणैस्तुल्या बृंहणाः कफशुक्रलाः ॥ ११ ॥ षष्टिकः प्रवरस्तेषां कषायानुरसो लघुः ॥ मृदुस्निग्धस्त्रिदोषघ्नः स्थैर्यकृद्बलवर्द्धनः ॥ १२ ॥ विपाके मधुरो ग्राही तुल्यो लोहितशालिभिः ॥ शेषास्त्वल्पांतरगुणाः षष्टिकाः क्रमशो गुणैः ॥ १३ ॥

सब षष्टि (साठीचांवल) रसमें और विपाकमें मधुर हैं, वात और पित्तनाशक हैं, बृंहण हैं, कफ और शुक्र पैदा करते हैं, गुणमें शालिके तुल्य हैं ॥ ११ ॥ सब जातिके साठी कंगुकादिमें साठीचांवल श्रेष्ठ हैं, अनुरसमें कसेले हैं, हलके हैं, मुलायम हैं, स्निग्ध, त्रिदोषनाशक, स्थिरताकारक और बलवर्द्धक हैं ॥ १२ ॥ विपाकमें मधुर हैं, ग्राही हैं, रक्तशालियोंके तुल्य हैं और शेष जो षष्टिकजातिके हैं वे क्रमसे अल्पगुणवाले हैं ॥ १३ ॥

व्रीहिभेद ।

कृष्णव्रीहिशालामुखजतुमुखनंदीमुखलावाक्षकत्वरितककुक्कुटांडकपारावतकपाटलप्रभृतयो व्रीहयः ॥ १४ ॥

व्रीहितंडुलोंके भेद कहते हैं । कृष्णव्रीहि (कालीनोकके व्रीहि), शालामुख (कालीसुपेद सिलीनोकके व्रीहि), जतुमुख (लाखीनोकके व्रीहि), नंदीमुख (नंदी आटीपक्षीकी चंचुतुल्यनोकके व्रीहि), लावाक्षक (लवापक्षीके नेत्रसमान व्रीहितंडुल), त्वरितक (जो षष्टिकसे भी जलदी पकजाय ऐसे व्रीहितंडुल),कुक्कुटांडक (जो मुरगेके अंडेसमान आकृतिवाले हों), पारावतक (जो कबूतरके तुल्यवर्णवाले हों), पाटल (पाटलके पुष्पतुल्यवर्णवाले) ऐसे ये व्रीहिजातिके चावलोंके भेद हैं और प्रभृतिशब्दसे खंजरीटक (खंजनवत् चितकबरे)आदिभी जानने॥ १४॥
ये व्रीहि धान्यभी वर्षाऋतु (सावनू अर्थात् खरीफकी फसल) में होते हैं ।

कषायमधुराः पाकेऽमधुरा वीर्यतोऽहिमाः ॥ अल्पाभिष्यंदिनस्तुल्याः षष्टिकैर्बद्धवर्चसः ॥ १५ ॥ कृष्णव्रीहिर्वरस्तेषां कषायानुरसो लघुः ॥ तस्मादल्पांतरगुणाः क्रमशो व्रीहयोऽपरे ॥ १६ ॥

ये व्रीहिजातिके चावल रसमें (स्वादमें) कषाय मधुर हैं और पाकमें मधुर नहीं हैं, वीर्यमें शीतल भी नहीं थोडे २ अभिष्यंदी हैं तथा षष्टिकके तुल्य गुणवाले हैं और बद्धवर्चः (अर्थात् मलके बांधनेवाले) हैं ॥ १५ ॥ उन सब प्रकारके व्रीहियोंमें कृष्णव्रीहि श्रेष्ठ होते हैं, कसेले अनुरसमें हैं और हलके हैं और कृष्णव्रीहिसे स्वल्पगुणवाले और भांतिके व्रीहिजातिके चांवल क्रमसे समझने चाहिये ॥ १६ ॥

दग्धायामवनौ जाताः शालयो लघुपाकिनः ॥
कषाया बद्धविण्मूत्रा रूक्षाः श्लेष्मापकर्षणाः ॥ १७ ॥

जलाईहुई पृथिवीमें उपजेहुए शालिचांवल लघुपाकवाले हैं, कसेले हैं, विष्ठा और मूत्रके बंध करनेवाले हैं, रूक्ष हैं तथा कफका कर्षण करनेवाले हैं ॥ १७ ॥

स्थलजाः कफपित्तघ्नाः कषायाः कटुकान्वयाः ॥ किंचित्सतिक्तमधुराः पवनानलवर्द्धनाः ॥१८॥ कैदारा मधुरा वृष्या बल्याः पित्तनिबर्हणाः ॥ ईषत्कषायाल्पमला गुरवः कफशुक्रलाः ॥ १९ ॥ रोप्याऽतिरोप्या लघवः शीघ्रपाका गुणोत्तराः ॥ अदाहिनो दोषहरा बल्या मूत्रविवर्द्धनाः ॥ २० ॥

स्थल (थली) में उपजनेवाले शाली कफ और पित्तनाशक हैं, कसैले, कडुवे वंशके हैं, कुछ २ तिक्त और मधुर हैं, पवन और जठराग्नि बढानेवाले हैं ॥ १८ ॥ केदारतंदुल मधुर, वृष्य, बलकारक और पित्तनाशक होते हैं, कुछ २ कसेले और थोडे मलवाले हैं और भारी हैं, कफ और शुक्र पैदा करते हैं ॥ १९ ॥ रोप्याअतिरोप्या (जो एकठौरसे दूसरी ठौर लगाये जाँय और जिनकी प्योद कई जगह बदलीजाय) हलके हैं, शीघ्र पचनेवाले हैं, गुणमें श्रेष्ठ हैं, दाह पैदा नहीं करते हैं, दोषोंके हरनेवाले हैं, बलकारक हैं और मूत्रके बढानेवाले हैं ॥ २० ॥

शालयश्छिन्नरूढा ये रूक्षास्ते बद्धवर्चसः ॥
तिक्ताः कषायाः पित्तघ्नाः लघुपाकाः कफावहाः ॥ २१ ॥

जो शालि फूटकर उँगनेवाले हैं वे रूक्ष होते हैं और मलके बांधनेवाले तथा तिक्त और कसेले, पित्तनाशक, विपाकमें हलके और कफकारक होते हैं ॥ २१ ॥

(सूत्र १८) स्थलजा जांगलभूमिसंभवाः । (सूत्र १९) कैदारा अनूपजा इत्यर्थः ।
(सूत्र २०) रोप्या अतिरोप्या इति एकवारमुत्पाट्याशु अन्यत्र रोप्यंते ते रोप्याः ये तु द्वित्रिवारमन्यत्र रोप्यते ते अतिरोप्याः । (सूत्र २१) छिन्नरूढा इति पूर्वं छिन्नाः पश्चात् रूढा इति डल्लनः ।

विस्तरेणायमुद्दिष्टः शालिवर्गो हिताहितः ॥
तद्वत्कुधान्यमुद्गादिमाषादीनां च वक्ष्यते ॥ २२ ॥
इति शालिवर्गः ।

यह शालिवर्ग (चावलोंकी जातिके गुणका वर्ग) विस्तारपूर्वक हिताहित वर्णन किया गया है। इसीप्रकार कुधान्य (कोद्रवादि) तथा मुद्गादि और माषादिके गुण वर्णन किये जायंगे ॥ २२ ॥

इति शालिवर्गः ।

अथ कुधान्यवर्गः ।

कोरदूषकश्यामाकनीवारशांतनुतुवरकोद्दालप्रियंगुमधूलिका-नांदीमुखीकुरुविन्दगवेधुकवरुकतोदपर्णीमुकुन्दकवेणुयवप्रभृतयः कुधान्यविशेषाः ॥ १ ॥

कुधान्य (कुत्सितधान्यों) के भेद यहांसे कहतेहैं । कोरदूषक (कोद्रव), शावक, नीवार (नीवाड, तीनी तथा उडिलिका), शांतनु, तुवरक, उद्दालक (वनकोद्रव), प्रियंगु (कांगनी), मधूलिका, नांदीमुखी, कुरुविन्दक, गवेधुक (गरहेडवा), वरुक (वरु), तोदपर्णी, मुकुंदक, वेणुयव (वांसके बीज) इत्यादि ये कुधान्य हैं। इनमेंसे बहुतोंकी देशभाषा हिंदी नहीं मिलती और इससमय प्रायः ये कुधान्य गृहस्थिलोगोंके काममें भी बहुत कम लाये जाते हैं ॥ १ ॥

उष्णाः कषायमधुरा रूक्षाः कटुविपाकिनः॥ श्लेष्मघ्ना बद्धनिष्यंदा वातपित्तप्रकोपनाः॥कषायमधुरास्तेषां शीतपित्तापहाः स्मृताः ॥२॥

ये कुधान्य (साधारणतासे) गरम हैं, कसेले मीठे हैं, रूक्ष हैं, विपाकमें कटुक हैं, कफनाशक, मूत्रके बंद करनेवाले हैं और वायुपित्तको कुपित करते हैं। उनमें भी जो कसेले मीठे (अधिक) हैं वे शीतपित्त नाशक हैं ॥ २॥

कोद्रवश्च सनीवारः श्यामाकश्च सशांतनुः ॥ कृष्णा रक्ताश्च पीताश्च श्वेताश्चैव प्रियंगवः॥ यथोत्तरं प्रधानाः स्यू रूक्षाः कफहराः स्मृताः ॥ ३ ॥ मधूली मधुरा शीता स्निग्धा नांदीमुखी तथा ॥ विशोषी तत्र भूयिष्टं वरुकः समुकुंदकः ॥ ४ ॥

कोद्रव (कोदो) और नीवार (तीनी) तथा श्यामाक और शांतनु एवं काली, लाल, पीली और सुपेद कांगनी इनमें उत्तरोत्तर प्रधान हैं, रूक्ष हैं और

कफहर्ता हैं ॥ ३ ॥ मधूली (छोटी गेहूँ) मीठी और स्निग्ध है इसीभांति नांदीमुखी भी है तथा वरु और मुकुंदक (मकरा) इनमें अधिक शोषण कर्ता है ॥ ४ ॥

रूक्षा वेणुयवा ज्ञेया वीर्योष्णाः कटुपाकिनः ॥
बद्धमूत्राः कफहराः कषाया वातकोपनाः ॥ ५ ॥

वांसके जो (वंशबीज) रूक्ष हैं, वीर्यमें गरम हैं, विपाकमें कटुक हैं, मूत्रको बंद करतेहैं और कफको नाश करते हैं, कसेले हैं तथा वायुको कुपित करतेहैं ॥ ५ ॥

मुद्गवनमुद्गकलायमकुष्ठमसूरमांगल्यचणकसतीनत्रपुटकहरेण्वाढकीप्रभृतयो वैदलाः ॥ ६ ॥ कषायमधुराः शीताः कटुपाका मरुत्कराः ॥ बद्धमूत्रपुरीषाश्च पित्तश्लेष्महरास्तथा ॥ ७ ॥

मूँग, वनमूंग, मटर, मोठ, मसूर, मांगल्य (पीलीमसूर), चना, सतीन (छोटी मटर), त्रपुट (खेसारी), हरेणु (यह भी मटरकाही भेद है), आढकी (अरहड) इनको आदिले और भी (उरदचौरा आदि) वैदल (जिसकी दो दाल होसकें अर्थात् द्विदल हैं ॥ ६ ॥ ये वैदल (साधारणतासे) कसेले मधुर हैं, शीतल हैं, कटुकपाकवाले हैं, वायु पैदा करते हैं, मल और मूत्रको बाँधते हैं, पित्त और कफको हरते हैं ॥ ७ ॥

मुद्गगुण ।

नात्यर्थं वातलास्तेषु मुद्गा दृष्टिप्रसादनाः ॥
प्रधाना हरितास्तत्र वन्या मुद्गसमाः स्मृताः ॥ ८ ॥

इनमें मूँग अत्यन्तवातल नहीं हैं, दृष्टिको प्रसन्नकरनेवाले हैं, उनमें भी हरे मूँग प्रधान हैं तथा वनमूँग (कालेमूँग) भी इन्हींके तुल्य गुणवाले होते हैं ॥ ८ ॥

मसूरादिके गुण ।

विपाके मधुराः प्रोक्ता मसूरा बद्धवर्चसः ॥ मकुष्ठकाः क्रिमिकराः कलायाः प्रचुरानिलाः ॥ ९ ॥ आढकी कफपित्तघ्नी नातिवातप्रकोपणी ॥ वातला शीतमधुरा सकषाया विरूक्षणाः ॥ कफशोणितपित्तघ्नाश्चणकाः पुंस्त्वनाशनाः ॥ १० ॥ हरेणवः सती-

---

(सूत्र ६) वैदलसंज्ञा एवं हि विदलानामिति वैदला इति माषकुलत्थादिष्वपि वैदलत्व स्यात्तेन "वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्शुष्कशाकानि वैदलम्॥ वर्जयेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च" इत्यादिषु वैदलत्वेन मुद्गादिषु निषेधः गुल्मे न च माषकुलत्थादयो निषिध्यते न ते वैदलसंज्ञाः । (इति निबंधसंग्रहः)

नाश्च विज्ञेया वद्धवर्चसः ॥ ऋते मुद्गमसूराभ्यामन्ये त्वाध्मान-
कारिणः ॥ ११ ॥

मसूर विपाकमें मीठा है और मलको बाँधनेवाला है। और मोठ कृमिकारक है और कलाय (मटर) अत्यन्त वातल है ॥ ९ ॥ अरहड कफ पित्तनाशक है और अतिवायुको कोप नहीं करती। तथा चणा वातल हैं, शीतल हैं, कसेले-पनलिये मधुर हैं, रूक्षता करनेवाले हैं तथा रुधिर और पित्तको शांत करते हैं और (स्वल्पवीर्य पैदा करते हैं इससे) (अत्यन्तसेवनकिये हुए) पुरुषत्वको नाश करते हैं ॥ १० ॥ हरेणु और सतीन (दोनों मटरके भेद) मलको बाँधते-हैं। जितने वैदल कहे उनमें मूँग और मसूरके सिवाय अन्य सब आध्मान (अफरा) लाते हैं ॥ ११ ॥

माषगुण।

माषो गुरुर्भिन्नपुरीषमूत्रः स्निग्धोष्णवृष्यो मधुरोऽनिलघ्नः ॥ संत-
र्पणः स्तन्यकरो विशेषाद्बलप्रदः शुक्रकफावहश्च ॥ १२ ॥ कषा-
यभावान्न पुरीषभेदी न मूत्रलो नातिकफस्य कर्ता॥ स्वादुर्विपाके
मधुरोऽलसांद्रः संतर्पणः स्तन्यरुचिप्रदश्च ॥ १३ ॥

उडद भारी है, मल और मूत्रको भेदनकरता है, स्निग्ध (चिकना) है, गरम है, वृष्य है, मधुर है, वायुनाशक है, तृप्तिकर्ता है, स्त्रियोंको दुग्ध पैदा करता है, विशेषकर बलदेनेवाला है और शुक्र और कफकी वृद्धि करता है ॥ १२ ॥ उडद ऐसा है तो भी कसेलापन होनेसे पुरीषको भेदनभी नहीं करता है और न बहुत मूत्रल है और न अत्यन्त कफकर्ता है। विपाकमें मधुर है, आलस्यदेनेवाला है, संत-र्पण है, स्तन्य (दूध) और रुचिदेनेवाला है और कई अलसांद्रका अर्थ राजमाष करते हैं और ये गुण राजमाषहीके समझते हैं ॥ १३ ॥

कवँचबीज शिंबी कुलत्थ वनकुलत्थ गुण।

माषैः समानं फलमात्मगुप्तमुक्तं च काकांडफलं तथैव॥ अरण्य-
माषा गुणतः प्रदिष्टा रूक्षाः कषाया अविदाहिनश्च ॥ १४ ॥
उष्णः कुलत्थो रसतः कषायः कटुर्विपाके कफमारुतघ्नः॥ शुक्रा-

(सूत्र १३) केचित्तु श्लोकममुं माषगुणपरमेव वदति तथा केचित् अलसांद्र इति पदेन राजमाषस्य ग्रहण कुर्वति राजमाषस्यैव गुणपरममुं श्लोक वदत्येव। (सूत्र १४) काकांडफलमम्लिकाबीजमज्जा इति केचित्।

श्मरीगुल्मनिषूदनश्च संग्राहकः पीनसकासहारी ॥ १५ ॥ अनाहमेदोगुदकीलहिक्काश्वासापहः शोणितपित्तकृच्च ॥ कफस्य हन्ता नयनामयघ्नो विशेषतो वन्यकुलत्थ उक्तः ॥ १६ ॥

कवँचके बीजभी उडदके तुल्य गुणकारक जानने । और इसीप्रकार काकांडफल (बडीशिंबीके बीज) के गुण जानने चाहिये । और वनके उडद (रानेउडद) गुणमें रूखे हैं, कसैले हैं, दाह पैदा नहीं करते ॥ १४ ॥ कुलथी गरम है, रसमें कसेली है, विपाकमें कटुक है, कफवायुनाशक है, शुक्र, अश्मरी और गुल्मनाशक है, संग्राहक है, पीनस और खांसी हर्ता है ॥ १५ ॥ वनकुलत्थ (चाकसू) अफरा, मेदरोग, अर्श, हिक्का, श्वास इनका नाशक, रक्तपित्तकर्ता, कफहर्ता, नेत्ररोगनाशक विशेषताकरके वनकुलथी (चाकसू) होता है ॥ १६ ॥

तिलगुण ।

ईषत्कषायो मधुरः सतिक्तः संग्राहकः पित्तकरस्तथोष्णः ॥ तिलो विपाके मधुरो बलिष्ठः स्निग्धो व्रणालेपन एव पथ्यः ॥ १७ ॥ दंत्योऽग्निमेधाजननोऽल्पमूत्रस्त्वच्योऽथ केश्योऽनिलहा गुरुश्च ॥ तिलेषु सर्वेष्वसितः प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तथान्ये ॥ १८ ॥

तिल कुछ२कसेले और तिक्तता लिये मीठे होते हैं,संग्राही हैं, पित्त पैदा करनेवाले और गरम हैं, विपाकमें मीठे हैं, बलकारक हैं, चिकने हैं, व्रणके लेपनमें पथ्य हैं ॥ १७ ॥ दांतोंके लिये हित हैं, अग्नि और बुद्धि उत्पन्नकरनेवाले हैं, मूत्र स्वल्प करते हैं, स्त्रियोंके दूध पैदा करते हैं, बालोंके लिये हित हैं, वायुनाशक हैं और भारी हैं । सबप्रकारके तिलोंमें कालेतिल प्रधान हैं और सुपेद मध्यम हैं तथा अन्यभांतिके (गोमूत्रसन्निभादिक) हीन और निकृष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

जौके गुण ।

यवः कषायो मधुरो हिमश्च कटुर्विपाके कफपित्तहारी ॥ व्रणेषु पथ्यस्तिलवच्च नित्यं प्रबद्धमूत्रो बहुवातवर्चाः ॥ १९ ॥ स्थैर्याग्निमेधास्वरवर्णकृच्च सपिच्छलः स्थूलविलेखनश्च ॥ मेदोमरुत्तृड्हरणो-

---

(सूत्र १९) यवो माधुर्यात् हिमत्वाच्च पित्तहा भवति, कषायत्वाच्च पित्तहा भवति, कषायत्वाद्विपाके कटुकत्वाच्च कफघ्नः । (निबधसंग्रहे तु) प्रबद्धमूत्रः अल्पमूत्रः अत एव प्रमेहिणां हितः । 'बहुवातवर्चाः' इति वातोऽत्र कुक्षिवातोऽभिप्रेतः । अन्यथा तु मेदोमरुत्तृड्हरण इति विरुध्यते । 'प्रबद्धमूत्रः' इत्यत्र 'प्रवृद्धमूत्रः' इति वा क्वचित्पाठातरं तन्न सम्यक् 'मूत्रमेदःपित्तकफान् जयेत्' इति वाग्भटोक्तिः ।

ऽतिरूक्षः प्रसादनः शोणितपित्तयोश्च ॥ २० ॥ एभिर्गुणैर्हीनतरांस्तु किंचिद्विद्याद्यवेभ्योऽतियवान् विशेषैः ॥ २१ ॥

जौ कसेलापनलिये मधुर हैं, शीतल हैं, विपाकमें कटुक हैं, कफ और पित्तनाशक हैं, व्रणलेपनमें तिलकी भांति जौभी पथ्य हैं, मूत्रको बांधते हैं, वायु और मलको बहुत उत्पन्न करते हैं ॥१९॥ स्थिरता, जठराग्नि, बुद्धि और कण्ठका स्वर तथा वर्ण इनको ठीक करते हैं। पिच्छलतायुक्त हैं, स्थूलको कृशकरनेवाले हैं। मेद, वायु तृषाको हरते हैं, अतिरूक्ष हैं और रक्तपित्त इन दोनोंको प्रसन्न करते हैं ॥ २० ॥ और जवोंसे हीनगुणवाले अतियव (जवी) को समझना चाहिये ॥ २१ ॥

गेहूंके गुण ।

गोधूम उक्तो मधुरो गुरुश्च बल्यः स्थिरः शुक्ररुचिप्रदश्च॥स्निग्धोऽति शीतोनिलपित्तहंता संधानकृच्छ्लेष्मकरः सरश्च ॥ २२ ॥

गेहूं मधुर हैं, भारी हैं, बलकर्ता हैं, स्थिरताकारक हैं, शुक्र और रुचि पैदा करते हैं, स्निग्ध हैं, अत्यन्त शीतल हैं, वायु और पित्तनाशक हैं, टूटेको जोडनेवाले हैं, कफकर्ता हैं और सर (दस्तावर) हैं ॥ २२ ॥

फलीके धान्य ।

रूक्षः कषायो विषशोफशुक्रबलासदृष्टिक्षयकृद्विदाही॥कटुर्विपाके मधुरस्तु शिंबः प्रभिन्नविण्मारुतपित्तलश्च ॥ २३ ॥

शिंबी (फलीके अन्न) साधारणतासे रूक्ष हैं, कसेले हैं, विष, शोथ वीर्य और दृष्टि इनको क्षयकरते हैं और दाह पैदा करते हैं, मधुर हैं विपाकमें कटुक हैं, मलको भेदन करते हैं और वायु और पित्त उत्पन्न करते हैं ॥ २३ ॥

सिताऽसिताः पीतकरक्तवर्णाः भवंति येऽनेकविधास्तु शिंबाः ॥ यथोदितांस्ते गुणतः प्रधाना ज्ञेयाः कटूष्णा रसपाकयोश्च ॥ २४ ॥

शिंबी धौले, काले, पीले, लालवर्णके ऐसे अनेकप्रकारके होते हैं। वे जिस प्रकार क्रमसे वर्णनाकिये हैं, उसी प्रकार गुणमें प्रधान जानने चाहिये (जैसे सबसे प्रधान सुपेद उससे अल्पगुण काले इत्यादि) और ऐसेही रस और विपाकमें कटुक और उष्ण हैं ॥ २४ ॥

(सूत्र २२) मधूलिका नांदीमुखी महागोधूम इति गोधूमभेदाः। मधूलिका सूक्ष्मगोधूमाः। नांदीमुखी (खपलेगेहूं इति लोके) महागोधूमा मालवजाः श्वेतस्वच्छस्थूलगोधूमा इति ।

सहाढ्यं मूलकजाश्च शिंबाः कुशिंबिवल्लीप्रभवाश्च शिंवाः ॥ ज्ञेया विपाके मधुरा रसे च बलप्रदाः पित्तनिबर्हणाश्च ॥ २५ ॥ विदाहवंतश्च भृशं च रूक्षा विष्टभ्य जीर्यन्त्यनिलप्रदाश्च ॥ रुचिप्रदाश्चैव सुदुर्जराश्च सर्वे स्मृता वैदलिकास्तु शिंवाः ॥ २६ ॥

सहाढ्य (मुद्गपर्णी माषपर्णीके बीज) और मूलसे पैदा हुई शिंबी (मूलीके बीज) और कई मूलशिंबी (सोहजनेके बीजोंको कहते हैं) तथा कई मूगफलीको मूलकशिंबी कहते हैं और कुशिंबी (क्षुद्रशिंबी) तथा वेलसे उत्पन्नहुई शिंबी रसमें और विपाकमें मधुर है और बलको देनेवाली होतीहै तथा पित्तनाशक है ॥ २५ ॥ ये आर्द्रशिंबीबीजके गुण हैं । तथा सूखीशिंबी विदाह पैदाकरती है और रूक्ष है और विष्टंभताकरके जीर्ण होतीहै (पचती) है तथा वायु पैदा करती है, रुचिकारक है और दुर्जर है ये सबभांतिके द्विदलशिंबी (सूखे) शिंबीधान्यके गुण हैं ॥ २६ ॥

कटुर्विपाके कटुकः कफघ्नो विदाहिभावादहितः कुसुंभः ॥ उष्णातसी स्वादुरसाऽनिलघ्नी पित्तोल्बणा स्यात्कटुका विपाके ॥२७॥ पाके रसे चापि कटुः प्रदिष्टः सिद्धार्थकः शोणितपित्तकोपी ॥ तीक्ष्णोष्णरूक्षः कफमारुतघ्नस्तथागुणश्चासितसर्षपोपि ॥ २८ ॥

कुसुंभेके बीज (करड) कटुक हैं, विपाकमेंभी कटुक हैं, कफनाशक हैं और विदाही होनेसे हित नहीं हैं । तथा अतसी उष्ण है, रसमें स्वादु (मधुर)है,वायुनाशक है, पित्तको उल्बण (तेज) करती है, विपाकमें कटुक है ॥ २७ ॥ सिद्धार्थक (सुपेदसरसों) विपाकमें और रसमें कटुक हैं, तथा रक्त और पित्तको कुपित करते- हैं, तीक्ष्ण हैं, गरम हैं, रूक्ष हैं, कफ और वायुको नाश करते हैं और यही गुण काली सरसोंके भी जानो ॥ २८ ॥

अनार्तवं व्याधिहतमपर्य्यागतमेव च ॥ अभूमिजं नवं चाऽपि न धान्यं गुणवत्स्मृतम् ॥ २९ ॥ नवधान्यमभिष्यंदि लघु संवत्सरोषितम् ॥ विदाहि गुरु विष्टंभि विरूढं दृष्टिदूषणम् ॥ ३० ॥ शाल्यादेः सर्षपांतस्य विविधस्यास्य भागशः ॥ कालप्रमाणसंस्कारमात्राः संपरिकीर्त्तिताः ॥ ३१ ॥ इति धान्यवर्गः ॥

(सूत्र २५) सहाढ्य मुद्गपर्णीमाषपर्ण्यौ । मूलशिंवी मूलकपर्णी शोभाजन इति केचित् । (सूत्र२६) वैदलिकास्तु शिंवामुद्गादीनामार्द्रफलिकाः (इति नि. सं.) (सूत्र २८) सिद्धार्थकः श्वेतसर्षपः ।

अनार्तव (बेफसलके) तथा व्याधिकरके मारे हुए (रोली, कावा लगे) अपर्यागत (विनापके) अभूमिज (जो पृथ्वीमें पैदा न हुए हों छतों या नावों या धमलोंमें पैदा हुए हों) तथा नये ऐसे धान्य गुणकारक नहीं होते ॥ २९ ॥ नये अन्न अभिष्यंदि होते हैं और एकवर्षके पुराने अन्न हलके होजाते हैं और विरूढ (विना बोये या जिनमें सीलसे अंकुर आजायँ) विदाही, भारी, विष्टंभी तथा दृष्टिको दूषित करनेवाले होते हैं ॥ ३० ॥ शालीको आदिलेकर सरसोंपर्य्यंत अनेक प्रकारके धान्योंके विभागसे कालप्रमाण, संस्कार और मात्रा वर्णन कीगई हैं (कृतान्नवर्ग जो इसी अध्यायमें अगाडी है उसमें ये सब वर्णन किये जांयगे) ॥ ३१ ॥

इति धान्यवर्गः ।

अत ऊर्द्ध्वं मांसवर्गानुपदेक्ष्यामः ।

अब यहांसे अगाडी मांसवर्गका उपदेश करते हैं ॥

तद्यथा–ज़लेशया आनूपा ग्राम्याः क्रव्यभुज एकशफा जांगला-श्चेति षण्मांसवर्गास्तेषां वर्गाणामुत्तरोत्तरं प्रधानतमाः ते पुन-र्द्विविधा जांगला आनूपाश्चेति ॥ १ ॥

वह इसप्रकारसे हैं कि १ जलमें रहनेवाले, २ आनूप (जलके किनारे रहने-वाले), ३ ग्रामचारी, ४ मांसभोजी जीव, ५ एकशफ (एक विनाफटे खुरवाले), ६ जांगल (जंगलके वासी) जीव इसभांति छःप्रकारके मांसवर्गोंमेंसे उत्तरोत्तर प्रधान हैं। वे फिर दो प्रकारके हैं एक जांगल (जंगल स्थलके वासी) दूसरे आनूप (जल और जलके किनारेके वासी) ॥ १ ॥

तत्र जांगलवर्गोऽष्टविधः। तद्यथा-जंघाला विष्किराः प्रतुदा गु-हाशयाः प्रसहाः पर्णमृगा बिलेशया ग्राम्याश्चेति ॥ २ ॥

उनमेंसे जांगल (खुश्कीके रहनेवाले) जीवोंका वर्ग (समूह) आठ प्रकारका है। जैसे १ जंघाल (जंघावाले चतुष्पद), २ विष्किर (विखराहुआ पंजोंसे कुरे-दकर चुगनेवाले पक्षी), ३ प्रतुद (जो नोकसे कुरेदकर चुगनेवाले पक्षी),

(सूत्र १) षण्मासवर्गा इति षट्प्रकारेण मांसवर्गः सामान्यतयोत्तरोत्तरप्राधान्यतया चोक्तः विशेषतया तु जांगलानूपभेदेन त्रयोदशधा इति ।

(सूत्र २) जंघालाः प्रशस्तजंघावतो मृगादयः । विष्किरा इति विकीर्य भक्षयंतीति । प्रतुदाः 'प्रतुद्य भक्षयंत्येते तुडेन प्रतुदास्ततः' । गुहाशया गुहास्थायिनः । प्रसहा इति 'प्रसहाः कीर्तिता एते प्रसह्याच्छि-द्यभक्षणात्' । पर्णमृगाः पत्रशाखामृगाः । बिलेशया बिलवासिनः । ग्राम्या ग्रामचारिण इति ।

४गुहाशय (घुर या गुफामें रहनेवाले हिंसकचतुष्पद), ५ प्रसह (उचेडकर मांसा-दिखानेवाले हिंसकपक्षी), ६ पर्णमृग (शाखामृग जो वृक्षोंपर कूदनेवाले जीव), ७ बिलेशय (बिलके वासी), ८ ग्राम्य (नगरमें मनुष्योंके घरोंमें रहनेवाले जीव) ॥ २ ॥

तेषां जंघालविष्किरौ प्रधानतमौ तत्रैणहरिणकुरंगकरालकृतमाल-शरभश्वदंष्ट्रापृषतचारुष्करमृगमातृकाप्रभृतयो जंघाला मृगाः क-षाया मधुरा लघवो वातपित्तहरास्तीक्ष्णा हृद्या वस्तिशोधनाश्च॥३॥

इनमेंसे जंघाल और विष्किर अत्यन्त प्रधान हैं । उनमेंसे एण (कालाहिरण), हरिण (गोरा हिरण), ऋष्य (नीले अंडोंवाला रोहूमृग), कुरंग (चतुरंग चौक-डियामृग), कराल (जिसके दांत नीचेको निकले हों कस्तूरीमृग), कृतमाल (संघातचारीमृग), शरभ (कश्मीरमें एक ऐसा मृग होता है जिसके चारपावँ नीचेको और चारखुर पीठमें ऊपरको होते हैं, ऊपरको दृष्टि होती है, बडे २ सींग होते हैं यह अष्टापद ऊँटके तुल्यसा मृग होता है।) श्वदंष्ट्रा (चारदांत जिसके कुत्तेकेसे अतितीक्ष्ण हों ऐसा मृग), पृषत (जिसके शरीरपर चित्र विचित्र बिंदु हों), चारुष्कर (सुन्दर शरीरवाला छोटामृग) तथा मृगमात्रिका (छोटी और बडे पेटवाली हिरनी) इत्यादि प्रशस्तजंघावाले मृगादिक जंघाल कहलाते हैं वे जंघालजीव (अर्थात् इनका मांस) कसेले, मधुर, लघु (हलके), वायु और पित्तनाशक तथा तीक्ष्ण हृदयको हित और वास्तिशोधन कर्ता हैं ॥ ३ ॥

कषायो मधुरो हृद्यः पित्तासृक्कफरोगहा ॥ संग्राही रोचको बल्य-स्तेषामेणो ज्वरापहः ॥ ४ ॥ मधुरो मधुरः पाके दोषघ्नोऽनलदी-पनः ॥ शीतलो बद्धविण्मूत्रः सुगंधिर्हरिणो लघुः ॥ ५ ॥

एण (कालामृग) कसेला है, मधुर है,हृदयको हित है,पित्त, रुधिर और कफके रोग नाशकरता है, संग्राही है, रोचक है, बलकारक है, ज्वरनाशक है ॥४॥ गोरा हिरण मधुर है, विपाकमें भी मधुर है दोषनाशक है, अग्निदीपन कर्ता है, शीतल है, मलमूत्रको रोकनेवाला है, सुगंधयुक्त है और हलका है ॥ ५ ॥

(सूत्र ३)एणः कृष्णहरिणः। हरिणो गौरमृगः । ऋष्यः नीलाङः रोहूमृगः । कुरंगः चतुरगतिमृगः। करालः अधोनिष्क्रातदतः हिमवदादिपर्वतेषु कस्तूरीमृगः । कृतमालाः संघातचारिणो मृगाः। शरभः अष्टापदः उष्ट्रतुल्यो महामृगः पृष्ठगतचतुष्पादः कश्मीरे प्रसिद्धः। श्वदंष्ट्रा चतुर्दंष्ट्रोतिदुष्टः कर्कटकः। पृषतः बिंदुचित्रितः। चारुष्कचारुशरीरः स्वल्पतनुर्मृगः । मृगमातृका अल्पा पृथूदरा मृगी (इति निबंध.) (सूत्र ४) एणस्तु मेहिनां बहुमूत्राणामहितः ।

एणः कृष्णस्तयोर्ज्ञेयो हरिणस्ताम्र उच्यते ॥ न कृष्णो न च ताम्रश्च कुरंगः सोऽभिधीयते ॥ ६ ॥ शीतासृक्पित्तशमनी विज्ञेया मृगमात्रिका॥सन्निपातक्षयश्वासकासहिक्काऽरुचिप्रणुत्॥७॥

एण, हरिण और कुरंग इनका भेद कहते हैं। इनमेंसे काला एण कहलाता है और ताम्रवर्ण हो उसे हरिण कहतेहैं। और जो न तो काला हो और न ताम्रवर्ण हो उसे कुरंग कहते हैं ॥६॥ और मृगमात्रिका (हिरनी) शीतल है, रक्तपित्त शांत करनेवाली, सान्निपात, क्षयी, श्वास, खांसी और हिचकी तथा अरुचिनाशक है ॥ ७ ॥

विष्किर ।

लावतित्तिरकपिंजलवर्तीरवर्तिकवर्त्तकानप्तृकावातीकचकोरकलविंकमयूरक्रकरोपचक्रकुक्कुटसारंगशतपत्रककुतित्तिरिकुरबाहुकयवलकप्रभृतयस्त्र्याहला विष्किरा लघवः शीतमधुराः कषाया दोपशमनाश्च ॥ ८ ॥

लवातित्तिरि (काला तीतर), कपिंजल (गोरा तीतर), वर्तीर (घरघरा), वर्तिक और वर्तक (दोनों काले धौले बतकके भेद), नप्तृक (घुडरूपक्षी),वातीक (वतका चिडिया जिसे बबेडाभी कहतेहैं),चकोर,कलविंक(लालसिर कालीग्रीवावाली चिडिया) मयूर (मोर), क्रकर (कयापक्षी), उपचक्र (कालीनोकवाला क्रकर), कुक्कुट (मुरगा), सारंग (पपहिया), शतपत्रक (खातीचिडा), कुतित्तिरि (जंगली तीतर), कुरबाहुक (कुरकुरापक्षी), यवलक (यवगुडुकनामपक्षी) इनको आदिले औरभी त्र्याहल अर्थात् दोनों पंजे और तीसरी चंचु इन तीनोंसे कुरेदनेवाले और विष्किर विखराहुआ चुगनेवाले पक्षीहैं ये सामान्यतासे हलके,शीतल,मधुर,कसेले और दोषोंके शांतकरनेवालेहैं८

संग्राही दीपनश्चैव कषायमधुरो लघुः॥ लावः कटुविपाकश्च संनिपाते च पूजितः ॥ ९ ॥ ईषद्गुरूष्णमधुरो वृष्यो मेधाग्निवर्द्धनः ॥ तित्तिरिः सर्वदोषघ्नो ग्राही वर्णप्रसादनः ॥ हिक्काश्वासानिलहरो विशेषाद्गौरतित्तिरिः ॥ १० ॥ रक्तपित्तहरः शीतो लघुश्चापि कपिं-

---

(सूत्र ८) कपिजलः गौरतित्तिरिः । कलविंकः कालचटकः । अन्ये तु रक्तशिरसं कृष्णग्रीवं ग्रामचटकाकारमाहुः। क्रकरः लावाल्पकः कपिंजलात्स्थूलः कय इति लोके । उपचक्रः क्रकरभेदः । सारंगश्चातकः । अन्ये कृष्णकर्बुरचातकाकारो विष्किर इति । शतपत्रः काष्ठकुट्टकः । कुतित्तिरिः तित्तिरिभेदः पांडुकपिलः । कुरबाहुकः कुरुकुरुक इति लोके । यवलकः यवगुड्डक इति (निबंधसंग्रहः) त्र्याहला त्रिभिश्चरणयुगलचंचुभिराहत्य विलिखंतीति त्र्याहलाः (इति डल्हनः)

जलः ॥ कफोत्थेषु च रोगेषु मंदवाते च शस्यते ॥ ११ ॥ वातपित्तहरा वृष्या मेधाग्निबलवर्द्धनाः ॥ लघवः क्रकरा हृद्यास्तथा चैवोपचक्रकाः ॥ १२ ॥

लवा संग्राही है, दीपन है, कसेला और मधुर है, हलका है, विपाकमें कटु (चरपरा) है और संनिपातमें श्रेष्ठ है ॥९॥ कालातीतर थोडा २ भारी और गरम है, मधुर है, वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है, मेधा और अग्नि वढाता है, सबदोषोंको नाशकरता है, ग्राही है, वर्णको प्रसन्नकरता है (खुशरंगकरता है) और गोरातीतर विशेषकर हिचकी, श्वास, वायुरोग हर्ता है ॥१०॥ कपिंजल (भूरातीतर) रक्तपित्तहर्ता, शीतल है, हलका है, कफसे उपजे रोगोंमें और मंदवातमें श्रेष्ठ है ॥११॥ क्रकर पक्षी और उसके भेद वायुपित्तनाशक हैं, वृष्य हैं, मेधा और अग्नि तथा बल बढानेवाले हैं, हलके हैं, हृदयको हित हैं और इन्हींके समान उपचक्रक पक्षीको जानना चाहिये १२

कषायः स्वादुलवणस्त्वच्यः केश्यो रुचिप्रदः ॥ मयूरः स्वरमेधाग्निदृक्श्रोत्रेन्द्रियदार्ढ्यकृत् ॥ १३ ॥ स्निग्धोष्णोऽनिलहा वृष्यः स्वेदस्वरबलावहः॥बृंहणः कुक्कुटो वन्यस्तद्वद्ग्राम्यो गुरुस्तु सः ॥ वातरोगक्षयवमीविषमज्वरनाशनः ॥ १४ ॥

मयूर कसेला, मधुर, सलोना है, त्वचाको और बालोंको हित है, रुचि देनेवाला है, स्वर, मेधा (बुद्धि), जठराग्नि, दृष्टि, कर्ण इंद्रिय इनको दृढता करता है॥१३॥वनका मुरगा स्निग्ध है, गरम है, वायुनाशक है, वृष्य है, पसीना, कंठस्वर और बलकारक है और बृंहण (शरीरपुष्टकरनेवाला) है । इसीके तुल्य ग्रामका मुर्गा (कूकडा) है पर वह भारी है, वायुरोग, क्षयी, वमन और विषमज्वर नाशकरनेवाला है ॥ १४ ॥

प्रतुद ।

कपोतपारावतभृंगराजपरभृतकोयष्टिककुलिंगगृहकुलिंगगोक्षोडकडिंडिमाणकशतपत्रकमातृनिंदकभेदाशिशुकसारिकावल्गुलीगिरिशालट्वालदूषकसुगृहीखंजरीटकहारीतदात्यूहप्रभृतयः प्रतुदाः ॥ १५ ॥

(सूत्र१५) परभृतः कोकिलः। कायष्टिकः कोयंगको दीर्घजंघावान् पक्षी । गोक्षेडः गोनर्दः(नि. सं.) डिंडिमाणको डिंडिमोत्कटध्वनिः । शतपत्रको राजशुकः । भेदाशी इत्यत्र भेकाशीति वा पाठः भेकाशी भेकाशनः । वल्गुली रक्तपुच्छाधोभागः बुलबुल इति लोके । गिरिशो गिरिवर्तिका । सुगृही पीतमस्तकी बया इति लोके । खंजरीटः सिताऽसितवर्णः खंजन इति लोके । हारीतः हरितपीतवर्णो हरिया इति लोके ।

कपोत (जंगलीकबूतर), पारावत (गृहके कबूतर), भृंगराज (केशरीयापक्षी), परभृत (कोकिला), कोयष्टिक (कोपंग), कुलिंग (वनका चिडा), गृहकुलिंग (घरका चिडा), गोक्षोडक (गोनर्दपक्षी), डिंडिमाणक (डिंडिमपक्षी जिसकी वाणी बहुत उत्कृष्ट होती है), शतपत्रक (राजशुक), मातृनिंदक (पुतरंजन), भेदाशि या भेकाशी (मंडूकमाडापक्षी), शुक (तोता), सारिका (मैना), वल्गुली (बुलबुल), गिरिश (पहाडीबतक), आलह्वाल (आलवापक्षी), दूषक (सिचानचं-चूपक्षी), सुगृही (पीतमस्तवालावय्या), खंजरीट (खंजन), हारीत (हरिया), दात्यूह (कालचिडी) इत्यादिपक्षी प्रतुदसंज्ञक कहलाते हैं ॥ १५ ॥

कषायमधुरा रूक्षाः फलाहारा मरुत्कराः ॥
पित्तश्लेष्महराः शीता बद्धमूत्राल्पवर्चसः ॥ १६ ॥

ये प्रतुदसंज्ञकपक्षी सामान्यतासे कसेले हैं, मधुर हैं, रूक्ष हैं, फल खानेवाले हैं, वायु उत्पन्न करते हैं, पित्तकफहर्ता हैं, शीतल हैं, मूत्रको बंद करते हैं और थोडा मल पैदा करते हैं ॥ १६ ॥

सर्वदोषकरस्तेषां भेदाशी मलदूषकः ॥ कषायस्वादुलवणो गुरुः काणकपोतकः ॥ १७ ॥ रक्तपित्तप्रशमनः कषायविशदोपि च ॥ विपाके मधुरश्चापि गुरुः पारावतः स्मृतः ॥ १८ ॥ कुलिंगो मधुरः स्निग्धः कफशुक्रविवर्द्धनः ॥ रक्तपित्तहरो वेश्मकुलिंग-स्त्वतिशुक्रलः ॥ १९ ॥

उनमेंसे भेदाशीपक्षी सब दोषोंका कर्ता और मलका दूषक है । काणकपोत (वनवासी कपोत), कसेला, स्वादु, सलोना होता है और भारी है ॥१७॥ पारावत (कबूतर) रक्तपित्त शांत करता है, कसेला है, विशद है, विपाकमें मधुर है और भारी है ॥ १८ ॥ कुलिंग (जंगलीचिडा) मधुर है, स्निग्ध है, कफ और शुक्रको बढाता है, रक्तपित्तका हरता है और घरका चिडा अत्यन्त वीर्य पैदा करताहै ॥१९॥

गुहाशय (पर्वतकी गुहा या छुरोंमें रहनेवाले) ।

सिंहव्याघ्रवृकतरक्षृक्षद्वीपिमार्जारसृगालमृगेर्वारुकप्रभृतयो गुहाशयाः ॥ २० ॥

(सूत्र २०) वृकः कुक्कुरसदृशः पशुः भाडेना इति लोके । तरक्षुर्मृगशत्रुः क्षुद्रव्याघ्रविशेषः जरख इति लोके । (नि. स.) द्वीपिः द्वीप द्विवर्णं चर्मास्य स द्वीपिः गंडको वा चित्रको व्याघ्रभेदः (श.स्तो.) मार्जारकथनेन वनमार्जार एव । मृगेर्वारुः मृगभक्ष्यश्शृगालाकृतिः ।

सिंह, व्याघ्र (भगेरा), वृक (भेडिया), तरक्षु (तिरघुजरप), रीछ, द्वीपि (गैंडा या चीता), बिलाव (बनका बिलाव), शृगाल (गीदड), मृगेर्वारु (शृगालाकृति मृगशत्रु) इत्यादि जीव गुहाशय कहलाते हैं ॥ २० ॥

मधुरा गुरवः स्निग्धा बल्या मारुतनाशनाः ॥
उष्णवीर्या हिता नित्यं नेत्रगुह्यविकारिणाम् ॥ २१ ॥

ये गुहाशय सामान्यतासे मधुर हैं, भारी हैं, स्निग्ध हैं, बलकारक हैं, वायुनाशक हैं, उष्णवीर्य हैं, नित्य नेत्र और गुदाके विकारवालोंको हित हैं ॥ २१ ॥

प्रसह (शिकारी) पक्षी ।

काककंककुररचाषभासशशघात्युलूकचिल्लिश्येनगृध्रप्रभृतयः प्रसहाः ॥२२॥ एते सिंहादिभिः सर्वे समाना वायसादयः ॥ रसवीर्यविपाकेषु विशेषाच्छोषिणे हिताः ॥ २३ ॥

काग, कंकपक्षी, कुरर (मच्छीका शिकार करनेवाला पक्षी), चाष (इंद्रनीलाकारपक्षवाला शिकारी पक्षी), भास (सुपेद चोटीका गीध), शशघाती (बाज), उल्लु, चील, श्येन (सिकरा), गृध्र (गीध) इत्यादि शिकारीपक्षी प्रसहसंज्ञक कहलाते हैं ॥ २२ ॥ ये प्रसहपक्षी रस, वीर्य और विपाकमें सिंहादिकके समान हैं विशेष करके शोष (यक्ष्मा) रोगवालेको हित हैं ॥ २३ ॥

मद्गुमूषिकवृक्षशायिकाकुशपूतिघासवानरप्रभृतयः पर्णमृगाः॥२४॥ मधुरा गुरवो वृष्याश्चक्षुष्याः शोषिणे हिताः ॥ सृष्टमूत्रपुरीषाश्च कासार्शःश्वासनाशनाः ॥ २५ ॥

मद्गुमूषिक (गिलाहरी), वृक्षशायिक (शरटभेद), अवकुश (लंगूर), पूतिघास (वृक्षविलाव) और वानर (बंदर) इत्यादि पर्णमृग (शाखामृग अर्थात वृक्षोंपर विचरनेवाले जो परंद नहीं हैं चतुष्पद) हैं ॥ २४ ॥ ये पर्णमृगसंज्ञकजीव साधारणतासे मधुर हैं, भारी हैं, वृष्य हैं, नेत्रोंको हित हैं, शोष (राजयक्ष्माको) हितकारक हैं, मूत्र और मलको पैदाकरके निकालनेवाले हैं और खांसी, बवासीर तथा श्वासनाशक हैं ॥ २५ ॥

(वक्तव्य सूत्र २१) यद्यपि इनके गुण यहा इस प्रकार लिखे हैं तोभी हमने बहुतसे शिकारियोसे सुना है कि सिंह व्याघ्रादि जीवोका मांस खाद्य नहीं है किंतु विषके तुल्य होताहै । (सूत्र २२) कंको दीर्घचंचुर्महाप्रमाणः । कुररः चिरबिल्वाकारः नदोत्थीपतमत्स्यग्राही । चाषः इंद्रनीलमणिसदृशपक्षः (इति डल्हनः) (सूत्र २४) अवकुशः गोलांगूलो वानरविशेषः लंगूर इति लोके (नि. सं.)

श्वाविच्छल्यकगोधाशशवृषदंशलोपाकलोमशकर्णकदलीमृगप्रियकाऽजगरसर्पमूषिकनकुलमहावभ्रुप्रभृतयो बिलेशयाः ॥ २६ ॥ वर्चोमूत्रं संहतं कुर्य्युरेते वीर्ये चोष्णाः पूर्ववत्स्वादुपाकाः ॥ वातं हन्युः श्लेष्मपित्ते च कुर्य्युः स्निग्धाः कासश्वासकार्श्यापहाश्च ॥२७॥

श्वावित् (सेह), शल्यक (वृक्षनकुल), गोधा (गोह), शश (खरगोश), वृषदंश (बनका बिलाव), लोपाक (लोमडी), लोमशकर्ण (महाबिलाव व्याघ्राकार जिनकी पोस्तीन बनती है), कदली (बिलवासी मृगभेद),मृगप्रियक (गोनस), अजगर (अतिस्थूलसर्प), सर्प, चूहे, नेवला, महाबभ्रु (न्योल बिलाव) इत्यादि जीव बिल या घुरमें रहनेवाले हैं ॥ २६ ॥ ये बिलवासीजीव साधारणतासे मल और मूत्रको इकट्ठा करनेवाले हैं, उष्णवीर्य हैं और पूर्वके तुल्य मधुरविपाकी हैं, वायुनाशक हैं और कफ और पित्तको करते हैं, स्निग्ध हैं, खांसी, श्वास और कृशताको दूर करनेवाले हैं ॥ २७ ॥

कषायमधुरस्तेषां शशः पित्तकफापहः ॥ नातिशीतलवीर्यत्वाद्वातसाधारणो मतः ॥ २८ ॥ गोधा विपाके मधुरा कषायकटुका स्मृता ॥ वातपित्तप्रशमनी बृंहणी बलवर्द्धनी ॥ २९ ॥ शल्यकः स्वादुपित्तघ्नो लघुः शीतो विषापहः ॥ प्रियको मारुते पथ्योऽजगरस्त्वर्शसां हितः ॥ ३० ॥ दुर्नामानिलदोषघ्नाः क्रिमिदूषीविषापहाः ॥ चक्षुष्या मधुराः पाके सर्पा मेधाग्निवर्द्धनाः ॥ ३१ ॥ दार्वीकरा दीपकाश्च तेषूक्ताः कटुपाकिनः ॥ मधुराश्चातिचक्षुष्याः सृष्टविण्मूत्रमारुताः ॥ ३२ ॥

शश (सुसा अर्थात् खरगोश) इनमेंसे कसेला है, मधुर है, पित्तकफनाशक है, वीर्यमें अतिशीतल न होनेसे वायुको सामान्य रखता है ॥ २८ ॥ गोह विपाकमें मधुर है और रसमें कसेली चरपरी है, वायु और पित्तको शांतकरती है तथा बृंहणी और बल बढानेवाली है ॥२९॥ शल्यक स्वादु (मधुर) है, पित्तनाशक है,हलका है, शीतल है, विषनाशक है । प्रियक वायुरोगोंमें पथ्य है और अजगरका मांस बवासीरके लिये हित है ॥३०॥ और सर्पोंका मांस बवासीर और वायुके दोषको दूर करता है, कृमियोंका दूषी है तथा (स्थावर) विषका नाशक है, नेत्रोंको हित है, विपाकमें मधुर है, मेधा और अग्निको बढाताहै (अथवा कृमि और दूषीविष-

हर्ताहै)॥३१॥ दार्वीकर (चौडेफनवाले) तथा दीपक(राजिमंत) इनमें कटुपाकी हैं, मधुर हैं, चक्षुवोंके लिये अतिहित हैं तथा मलमूत्र और वायुको निकालते हैं॥३२॥

अश्वाश्वतरगोखरोष्ट्रबस्तोरभ्रमेदःपुच्छकप्रभृतयो ग्राम्याः॥३३॥ ग्राम्या वातहराः सर्वे बृंहणाः कफपित्तलाः॥ मधुरा रसपाकाभ्यां दीपना बलवर्द्धनाः॥ ३४ ॥

अश्व (घोडा), अश्वतर (खिच्चर), गो (वृष), खर (गधा), ऊंट,बस्त (बकरा), उरभ्र (मेंढा भेंड), मेदःपुच्छक (दुम्बा) इत्यादि जीव चतुष्पद ग्राम्य (ग्रामवासी) कहलातेहैं ॥३३॥ ग्राम्य (ग्रामवासी)साधारणतासे सब वायुनाशक हैं, बृंहण हैं, कफपित्तकारक हैं,रस और विपाकमें मधुरहैं तथा दीपन हैं और बलवर्द्धक हैं॥३४॥

नातिशीतो गुरुः स्निग्धो मंदपित्तकफः स्मृतः॥ छगलस्त्वनभिष्यंदी तेषां पीनसनाशनः॥ ३५ ॥ बृंहणं मांसमौरभ्रं पित्तश्लेष्मावहं गुरु॥ मेदःपुच्छोद्भवं वृष्यमौरभ्रसदृशं गुणैः॥ ३६ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायविषमज्वरनाशनम्॥ श्रमात्यग्निहितं पथ्यं पवित्रमनिलापहम्॥ ३७ ॥ औरभ्रवत्सलवणं मांसमेकशफोद्भवम्॥ ३८ ॥

इन ग्राम्य पशुओंमेंसे छेली (बकरी बकरा) अति शीतल नहीं है, भारी है, स्निग्ध हे, पित्त और कफ मंद (स्वल्प) उत्पन्न करताहै,अभिष्यंदि नहीं है और पीनसको नाशकरताहै ॥३५॥ औरभ्र (मेंढा या भेंड) बृंहण है, पित्त और कफ पैदा करताहै तथा मेदपुच्छ (दुम्बा) भी मेंढेके समान गुणवाला और वृष्य है ॥३६॥ श्वास, खांसी, जुखाम,विषमज्वर इन्हें नाशकरताहै । श्रम और अत्यग्नि (भस्मकरोग) इनमें हित है, पवित्र है और वायुनाशक है॥ ३७ ॥ एकशफ (खर, अश्व) का मांस भी मेंढेके समान और सलोना है ॥ ३८ ॥

अल्पाभिष्यंद्ययं वर्गो जांगलः समुदाहृतः॥ ३९ ॥ दूरे जनांतनिलया दूरे पानीयगोचराः॥ ये मृगाश्च विहंगाश्च तेऽल्पाभिष्यंदिनो मताः॥ ४० ॥ अतीवासन्ननिलयाः समीपोदकगोचराः॥ ये मृगाश्च विहंगाश्च महाभिष्यंदिनस्तु ते ॥ ४१ ॥

यह जांगल (खुश्कीके वासी) जीवोंका वर्ग थोडा२ अभिष्यंदि कहा है॥३९॥ जो २ मृग (पशु) और पक्षी मनुष्योंसे दूर २ रहते हैं तथा जलसे दूर २ रहते-

हैं वे वे उतनेही उतने अल्प अभिष्यंदि (थोडे भारी) होते हैं ॥ ४० ॥ और जो पशु पक्षी मनुष्योंके तथा जलके जितने जितने निकट रहते हैं वे उतनेही उतने महा अभिष्यंदि (अतिगुरुताकारक) होते हैं ॥ ४१ ॥

आनूप ।

आनूपवर्गस्तु पंचविधः ॥ तद्यथा कूलचराः प्लवाः कोशस्थाः पादिनो मत्स्याश्चेति ॥ ४२ ॥

आनूप (जल और जल किनारेके जीवोंका) वर्ग पांच प्रकारका है। जैसे १ कूलचर (जलकिनारेकी पृथ्वीपर विचरनेवाले), २ प्लव (जलके परंद), ३ कोशस्थ (कोथमें रहनेवाले शंख, सीपी आदिके जीव), ४ पैरोंवाले (जैसे मेडक कछवे आदि), ५ मत्स्य (मच्छी, मगर आदि) ॥ ४२ ॥

कूलचर ।

तत्र गजगवयमहिषरुरुचमरसृमररोहितवराहखड्गिगोकर्णकालपुच्छकौद्रन्यंकरण्यगवयप्रभृतयः कूलचराः पशवः ॥ ४३ ॥

जिनमें हाथी, गवय (नीलगाय), महिष (भैंसा), रुरु (चित्रमृग), चमर (चौरी जिसे चांवरी गौका भेद कहते हैं), सृमर (सावर), रोहित (रोझ), वराह (शूकर), खड्गि (गैंडा), गोकर्ण (गौकेसे कानोंवाला मृगभेद), कालपुच्छ (काली और बडीभारी पूँछवाला पशु), औद्र (जलबिलाव जिसे उदबिलाव कहते हैं), न्यंकु (न्योगल अनेक सींगका मृगभेद) तथा अरण्यगवय (बनका रोझ) इत्यादि पशु जलके किनारे या डहरी डाबरमें रहनेवाले कहाते हैं ॥४३॥

वातपित्तहरा वृष्या मधुरा रसपाकयोः ॥
शीतला बलिनः स्निग्धा मूत्रलाः कफवर्द्धनाः ॥ ४४ ॥

ये जलकिनारे चरनेवाले पशु सामान्यतासे वायु और पित्तनाशक हैं, वृष्य हैं, रस और विपाकमें मधुर हैं, शीतल हैं, बलकारक हैं, स्निग्ध हैं, मूत्रल हैं और कफके बढानेवाले हैं ॥ ४४ ॥

विरूक्षणो लेखनश्च वीर्योष्णः पित्तदूषणः ॥
स्वाद्वम्ललवणस्तेषां गजः श्लेष्मानिलापहः ॥ ४५ ॥

(सूत्र ४२) अनुगता आपोऽस्मिन्निति जलस्थलात्मको देश आनूपः । (सूत्र ४३) रुरुः शरद्धि शृगत्यागी मृगभेदः । चमरः केशभृत्पुच्छो गोसदृशः यस्य पुच्छकेशाः चामरत्वेन प्रसिद्धाः । सृमरः महाश्वाकारः सावर इति लोके । औद्रः पानीयबिडालः मोंदर इति लोके । न्यंकुः न्यंगुणः (नि. सं.)

इनमें हाथी रूक्ष करनेवाला, लेखन (दुबला करनेवाला), वीर्यमें उष्ण है, पित्तको दूषित करता है, मधुर, अम्ल और सलौना है, कफ और वायु-नाशक है ॥ ४५ ॥

गवयस्य तु मांसं हि स्निग्धं मधुरकासजित् ॥ विपाके मधुरं चापि व्यवायस्य तु वर्द्धनम् ॥ ४६ ॥ स्निग्धोष्णमधुरो वृष्यो महिषस्तर्पणो गुरुः ॥ निद्रापुंस्त्वबलस्तन्यवर्द्धनो मांसदार्ढ्यकृत् ॥ ४७ ॥ रुरुमांसं समधुरं कषायानुरसं स्मृतम् ॥ वातपित्तोपशमनं गुरु शुक्रविवर्द्धनम् ॥ ४८ ॥ तथा चमरमांसं तु स्निग्धं मधुरकासजित् ॥ विपाके मधुरं चैव वातपित्तप्रणाशनम् ॥४९॥ सृमरस्य तु मांसं च कषायानुरसं स्मृतम् ॥ वातपित्तोपशमनं गुरु शुक्रविवर्द्धनम् ॥ ५० ॥

गवय (नीलगाय अथवा रोझ) का मांस स्निग्ध है, मधुर है, खांसीका जीत-नेवाला है, विपाकमें मधुर है, मैथुनका बढानेवाला है ॥ ४६ ॥ महिष (भैंसा) स्निग्ध है, उष्ण है, मधुर है, वृष्य है, तृप्ति करता है, भारी है, निद्रा और पुरुषत्व बल और दुग्ध बढानेवाला है, मांसको दृढकरता है ॥ ४७ ॥ रुरु (चित्रमृग) का मांस मिठासके साथ कसेला अनुरस है, वायुपित्त शांतिकर्ता है, भारी है, शुक्र-वर्द्धक है ॥ ४८ ॥ चमर (चामरी) का मांस स्निग्ध है, मधुर है, खांसीका जीतनेवाला है, विपाकमें मीठा है, वायुपित्तनाशक है॥४९॥सृमर (सावरमृग) का मांस अनुरसमें कसेला है, वायुपित्तशामक है, भारी है, वीर्य बढाता है ॥ ५० ॥

स्वेदनं बृंहणं वृष्यं शीतलं तर्पणं गुरु ॥ स्निग्धं श्रमानिलहरं वाराहं बलवर्द्धनम् ॥ ५१ ॥ कफघ्नं खड्गिपिशितं कषायमनिलापहम् ॥पित्र्यं पवित्रमायुष्यं बद्धमूत्रं विरूक्षणम् ॥ ५२ ॥ गोकर्णमांसं मधुरं स्निग्धं मृदु कफावहम् ॥ विपाके मधुरं चापि रक्तपित्तविनाशनम् ॥ ५३ ॥

शूकरका मांस पसीना लाता है, बृंहण है, वृष्य है, शीतल है, तृप्तिकर्ता है, भारी है, स्निग्ध है, श्रम और वायुनाशक है, बलवर्द्धक है ॥ ५१ ॥ खड्गि (गैंडा) का मांस कसेला है, वायुनाशक है, पित्रोंको (श्राद्धमें) हित है, पवित्र है, आयु देनेवाला है, मूत्रबद्धकर्ता है और रूक्ष है ॥ ५२ ॥ गोकर्णपशुका मांस मधुर है, स्निग्ध है, मृदु है, कफकारक है, विपाकमें मधुर है, रक्तपित्त नाश करताहै ॥५३॥

हंससारसक्रौंचचक्रवाककुररकादंबकारंडवजीवंजीवकबलाकापुंडरीकप्लवशरारीमुखनंदीमुखमद्गूत्क्रोशकाचाक्षमल्लिकाक्षशुक्लाक्षपुष्करशायिकाकोनालकांबुकुक्कुटिकामेघरावश्वेतचरणप्रभृतयः प्लवाः संघातचारिणः ॥ ५४ ॥

हंस, सारस, क्रौंच (कौंचबक), चक्रवाक (चकवाचकवी), कुरर (मच्छीकी शिकारकरनेवाला पक्षी), कादंब (कलहंस), कारंडव (शुक्लहंस), जीवंजीवक (एकप्रकारका बगला होता है जो विषको देखतेही मरजाताहै । विषकी शंकाके-लिये पुराने राजालोग इसे रखते थे और नित्य उसे दिखाकर खानपानकरतेथे) बलाका (पंक्तिबांधकर उडनेवाले बकभेद), पुंडरीक (कमलवत्नेत्रवाला बक), प्लव (लमढीक), शरारीमुख (गिरगाटीपक्षी), नंदीमुख (पत्राटी), मद्गु (जलका काक), उत्क्रोश (कुररका भेद), काचाक्ष (बहुडी), मल्लिकाक्ष (सुपेदनेत्र मल्लिकासदृश जिसके होतेहैं ऐसा जलपक्षी), शुक्लाक्ष (जिसके अतिश्वेत नेत्र हों), पुष्करशायिका (कमलवासीपक्षी), कोनालक (टटीहरी),अंबुकुक्कुटिका (मुर्गाबी), मघराव (पपहिया), श्वेतचरण (बडाबकभेद) इत्यादि जलचरपक्षी हैं ॥५४ ॥

रक्तपित्तहराः शीताः स्निग्धा वृष्या मरुज्जितः ॥ सृष्टमूत्रपुरीषाश्च मधुरा रसपाकयोः ॥ ५५ ॥ गुरूष्णमधुरः स्निग्धः स्वरवर्णबलप्रदः ॥ बृंहणः शुक्लस्तेषां हंसो मारुतनाशनः ॥ ५६ ॥

ये जलचर पक्षी सामान्यतासे रक्तपित्तहर्ता, शीतल हैं, स्निग्ध हैं, वृष्य हैं, वायुको जीतनेवाले हैं, मलमूत्रको पैदा करके निकालतेहैं, रस और विपाकमें मधुर हैं ॥ ५५ ॥ उनमेंसे हंस भारी गरम है, मधुर है, स्निग्ध है, स्वर, वर्ण और बलको देनेवाला है, बृंहण है, वीर्य पैदा करताहै और वायुनाशक है ॥ ५६ ॥

शंखशंखनखशुक्तिशंबूकभल्लूकप्रभृतयः कोशस्थाः ॥ ५७ ॥ कूर्मकुंभीरकर्कटककृष्णकर्कटकशिशुमारप्रभृतयः पादिनः ॥५८॥ शंखकूर्मादयः स्वादु रसपाका मरुन्नुदः ॥ शीताः स्निग्धा

(सूत्र ५४) कुररः तस्य प्रसहेष्वपि पाठः । अन्ये तु कंकमल्लसदृश जलचरं कुररमाहुः । कादम्बः कलहंसः । कारंडवः शुक्लहंसभेदः । जीवजीवकः विषदर्शनमृत्युकः । पुंडरीकः नलिननयनः । प्लवः महाप्रनाणः प्रसेवकगलः लम्बढीक इति लोके । शरारिमुखः खदिरवर्णो गिरगिटीति लोके । नंदीमुखः पत्राटी । मद्गुः जलकाकः । उत्क्रोशः कुररभेदः । काचाक्षः बहुडीति लोके । कोनालकः श्यामपृष्ठः श्वेतोदरः । मेघरावः चातकः (इति निबंधसं.)

हिताः पित्ते वर्चस्याः श्लेष्मवर्द्धनाः ॥ ५९ ॥ कृष्णकर्कटकस्तेषां बल्यः कोष्णोऽनिलापहः ॥ मुक्तसंधानकृत्सृष्टविण्मूत्रोऽनिलपित्तहा ॥ ६० ॥

शंख (बडे शंख), शंखनख (छोटे शंख), शुक्ति (सीप), शंबूक (घोंघे), अल्लूक (भेले) इत्यादि जीव कोशस्थ अर्थात् कोथमें (खोलरीमें) रहनेवाले जलजन्तु हैं ॥५७॥ और कछवा, कुंभीर (घडियाल), कर्कट (ककेडा), कृष्णकर्कट (कालाककेडा) और शिशुमार (नाकु) इत्यादिक पावों (पञ्जों) वाले जलजन्तु हैं और प्रभृतिशब्दसे यहां मेडक, ग्राहआदि जानना ॥५८॥ सामान्यतासे ये शंखादि तथा कच्छपादिक रसमें और पाकमें स्वादु (मधुर) हैं और वायुनाशक हैं, शीतल हैं, स्निग्ध हैं, पित्तमें हित हैं, विष्ठाकारक हैं और कफबढातेहैं॥५९॥ उनमेंसे कालाककेडा बलकारक है, कुछ२ गरम है, वायुनाशक है,टूटेको जोडताहै, विष्ठा और मूत्रका निकालनेवाला है और वातपित्तहर्ता है ॥ ६० ॥

मत्स्य ।

मत्स्यास्तु द्विविधा नादेयाः सामुद्राश्च ॥ ६१ ॥ तत्र रोहितपाठीनपाटलाराजीववर्मिगोमत्स्यकृष्णमत्स्यवागुंजारमुरलसहस्रदंष्ट्रप्रभृतयो नादेयाः ॥ ६२ ॥ नादेया मधुरा मत्स्या गुरवो मारुतापहाः ॥ रक्तपित्तकराश्चोष्णा वृष्याः स्निग्धाल्पवर्चसः ॥६३॥

मत्स्य (मछली और मगर) दोप्रकारके हैं । एक नदियोंके मत्स्य, दूसरे समुद्रोंके मच्छ ॥६१॥ उनमेंसे रोहित (रोही मछली), पाठीन (बडी और पुष्ट निर्मल मच्छी) ,पाटला (श्वेतरक्त मछली), राजीव (कमलोंमें रहनेवाली मछली), वर्मी (सर्पाकार मछली), गोमत्स्य (मोटी मछली), कृष्णमत्स्य (काली मछली), वागुंजार (वाहसमछली), मुरल (सफामछली), सहस्रदंष्ट्र (मगरमच्छ) इत्यादि नदियोंके मत्स्य हैं॥६२॥नदीके मत्स्य मधुर हैं, भारी हैं, वायुहर्ता हैं, रक्त,पित्तकर्ता, गरम, वृष्य, स्निग्ध हैं और अल्पमल करतेहैं ॥ ६३ ॥

कषायानुरसस्तेषां शष्पशैवालभोजनः ॥ रोहितो मारुतहरो नात्यर्थं पित्तकोपनः ॥ ६४ ॥ पाठीनः श्लेष्मलो वृष्यो निद्रालुः पिशिताशनः ॥ दूषयेदम्लपित्तं तु कुष्ठरोगं करोत्यसौ ॥ ६५ ॥ मुरलो बृंहणो वृष्यः स्तन्यः श्लेष्मकरस्तथा ॥ ६६ ॥ सरस्तडा-

(सूत्र ६३) रोहितः वनशकलः । पाठीनः पुनरशकल एव दीर्घो निर्मलश्च । वर्मी सर्पाकारो मत्स्य इति ।

गसंभूताः स्निग्धाः स्वादुरसाः स्मृताः ॥ महाह्रदेषु बलिनः स्वल्पेऽभस्यबलाः स्मृताः ॥ ६७ ॥

उनमेंसे तृण और सिवालखानेवाली मछली कषायानुरस होतीहै तथा रोहित मछली) वायुनाशक है और अत्यन्त पित्तकोपकर्ता नहींहै ॥६४॥ और पाठीन (बडी मछली कफकारक है, वृष्य है और निद्राजनक है और मांसभोजी मछली अम्लपित्तको दूषित करती है और कुष्ठरोग करती है ॥ ६५ ॥ मुरलसंज्ञक मछली बृंहण है, वृष्य है, स्तन्य (दुग्ध) और कफकर्ता है ॥ ६६ ॥ और जो २ मछली सरोवर तथा तालावमें होती हैं वे स्निग्ध हैं तथा रसमें स्वादु हैं और महाह्रद (बडे सरोवरों) में होनेवाली बलवान् होती हैं और थोडे पानीकी निर्बल होतीहैं ६७

तिमितिमिंगिलकुलिशपाकमत्स्यनिरालकनंदिवारलकमकरगर्गरकचन्द्रकमहामीनराजीवप्रभृतयः सामुद्राः ॥ ६८ ॥

तिमि (बडामच्छ), तिमिंगिल (इससे भी बडामच्छ), कुलिश (गुडिरा), पाकमत्स्य (पंकामच्छ), निरालक (केशबालादि शून्य मत्स्यभेद), नन्दिवारलक (समुद्रसिंबाक), मकर (मगर), गर्गरक (गागरा), चन्द्रक (जिसके पसवाडोंमें बहुत कांटेसे होते हैं), महामीन (मोटी बडी मछली), राजीव (नादेयराजीवके तुल्य बडी होती है वह सामुद्र राजीव है) इत्यादि समुद्रवासी मच्छ हैं ॥ ६८ ॥

सामुद्रा गुरवः स्निग्धा मधुरा नातिपित्तलाः ॥
उष्णा वातहरा वृष्या वर्चस्याः श्लेष्मवर्द्धनाः ॥ ६९ ॥

समुद्रके मत्स्य सामान्यतासे भारी हैं, स्निग्ध हैं, मधुर हैं, अतिपित्तकर्ता नहीं हैं, उष्ण हैं, वायुहर्ता हैं, वृष्य हैं, मलकर्ता हैं और कफवर्द्धक हैं ॥ ६९ ॥

बलावहा विशेषेण मांसाशित्वात्समुद्रजाः ॥ तेषामप्यनिलघ्नत्वाच्चौड्र्यकौप्यौ गुणोत्तरौ ॥ ७० ॥ स्निग्धत्वात्स्वादुपाकत्वात्तयोर्वाप्या गुणोत्तराः ॥ नादेया गुरवो मध्ये यस्मात्पुच्छास्यचारिणः ॥ ७१ ॥ सरस्तडागजानां तु विशेषेण शिरो लघु ॥ अदूरगोचरा यस्मात्तस्मादुत्सोदपानजाः ॥ किंचिन्मुक्त्वा शिरोदेशमत्यर्थं गुरवस्तु ते ॥ ७२ ॥ अधस्ताद्गुरवो ज्ञेया मत्स्याः सर-

(सूत्र ६८) तिमिः महत्तमो मत्स्यः तिमिंगिलः ततोऽपि महत्तमः । नंदिवारलकः समुद्रसिवाकः । चद्रकः पार्श्वेषु कंटकवलयितो वर्तुलो मत्स्यः । (इति नि. सं.)

सिंजाः स्मृताः ॥ उरो विचक्षणात्तेषां पूर्वमंगं लघुं स्मृतम् ॥७३॥
इत्यानूपो महाभिष्यंदिमांसवर्गो व्याख्यातः ॥ ७४ ॥

समुद्रके मत्स्य मांसभोजी होनेसे विशेष करके बलकारक होते हैं और चुंडी और कूपके मत्स्य (मछली) वायुनाशक होनेसे उन समुद्रमत्स्योंसे गुणमें उत्तम होते हैं ॥ ७० ॥ और स्निग्ध होनेसे और विपाकमें स्वादु (मधुर) होनेसे वापी (बावड़ी) की मछली इन दोनोंसे श्रेष्ठ गुणवाली होती हैं । तथा नदीके मत्स्य इस कारण बीचसे (धड) भारी होते हैं कि उनकी पूँछ और मुख अधिक चलायमान रहते हैं (इससे पूँछ और मुख हलके होते हैं) ॥ ७१ ॥ और सरोवर तथा तलावकी मछलियोंका विशेष करके शिर हलका होता है । अतिदूर नहीं विचरते हैं इससे उत्सोदपानज अर्थात पर्वतके झिरनेकी मछली कुछ शिरको छोडकर शेष भारी हैं । और जोहडकी मछली नीचेसे भारी होती हैं परंतु पेटसे विचरनेसे उनका पूर्व (शिरकी और छाती तकका) अंग हलका होता है ॥७२॥ ॥ ७३ ॥ यह जलचारी जीवोंका अत्यन्त अभिष्यंदी (कफ और गुरुताकारक) मांसवर्ग वर्णन कियागया ॥ ७४ ॥

दूषितमांस ।

तत्र शुष्कपूतिव्याधितविषसर्पहतदग्धविद्धजीर्णकृशबालानामसात्म्यचारिणां मांसान्यभक्ष्याणि यस्माद्विगतव्यापन्नापहतपरिणताल्पासंपूर्णवीर्यत्वाद्दोषकराणि भवंति ॥ ७५ ॥

तिनमें सब प्रकारके मांसोंमेंसे सूखामांस, बुरा, व्याधियुक्त जीवका, विष और सर्पसे मरेका मांस, जलेहुएका मांस, विंधे हुएका मांस, जीर्ण (वृद्ध) का मांस, दुबले बालक जीवोंका मांस तथा प्रतिकूल भोजियोंका मांस ये मांस भक्षण करने योग्य नहीं क्योंकि,इनमें किसीका वीर्य (पराक्रम) नष्टहुआ होता है, किसीका व्याधियुक्त, किसीका दूर होगया, किसीका पकगया, किसीका स्वल्प होगया,किसीका सम्पूर्ण नहीं हुआ इससे इनका मांस दोष उत्पन्न करनेवाला होता है ॥७५॥

अरोचकं प्रतिश्यायं गुरुं शुष्कं प्रकीर्त्तितम् ॥ विषव्याधिहतं मृत्युं बालं छर्दिं च कोपयेत् ॥ ७६ ॥ कासश्वासकरं वृद्धं त्रिदोषं व्याधि दूषितम् ॥ क्लिन्नमुत्क्लेशजननं कृशं वातप्रकोपनम् ॥ ७७ ॥

सूखामांस भारी होता है, अरुचि और प्रतिश्याय (जुखाम) करता है, तथा विषके रोगसे मरेहुएका मांस मृत्यु करता है तथा बालकका मांस छर्दिको कुपित

(सूत्र७६) अरोचक प्रतिश्यायमरोचकप्रतिश्यायकरमित्यर्थः।अथवा प्रकोपयेदिति क्रियापदेन सहान्वयः।

करता है ॥ ७६ ॥ वृद्धका मांस खांसी और श्वास करता है तथा व्याधिसे युक्तका मांस त्रिदोष उत्पन्न करता है, क्लेदितमांस उत्क्लेश (जी मिचलना) पैदा करता-है तथा दुर्बले जीवका मांस वायुकोप करता है ॥ ७७ ॥

एभ्योऽन्येषामुपादेयं मांसमिति ॥ ७८ ॥ स्त्रियश्च पश्वादिषु पुमांसो विहंगेषु महाशरीरेष्वल्पशरीरा अल्पशरीरेषु महाशरीराः प्रधानतमा एवमेकजातीयानां महाशरीरेभ्यः कृशशरीराः प्रधानतमाः ॥ ७९ ॥

जो पहले कहेगये उनसे अन्योंका मांस ग्रहण करना चाहिये ॥ ७८ ॥ पशुआदिजीवोंमें स्त्रीजातिका मांस श्रेष्ठ है और पक्षीआदिमें पुरुषोंका इसीप्रकार बडेशरीरवालोंमें छोटे ठिगनेजीवोंका और छोटेशरीरवालोंमें बडे और मोटेजीवोंका मांस प्रधान है । ऐसेही एकभांतिकी जातिके जीवोंमें बडे शरीरवालोंमें हलके शरीरवाले जीव प्रधान हैं ॥ ७९ ॥

स्थानादिकृतं मांसस्य गुरुलाघवमुपदेक्ष्यामः । तद्यथा । रक्तादिषु शुक्रांतेषु धातुषूत्तरोत्तरास्सुगुरुतरास्तथा सक्थिस्कंधक्रोडशिरःपादकरकटीपृष्ठचर्मकालेयकयकृदंत्राणि ॥ ८० ॥

स्थानादिके अनुसार मांसकी गुरुता और लघुताका उपदेश कियाजाता है । जैसे रक्तको आदिले वीर्यपर्यंत धातुओंमें उत्तरोत्तर भारीसे भारी होते हैं (रक्तसे मांस भारी, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा, मज्जासे वीर्य) तथा साथल, कंधे, करवट, शिर, पाव, हाथ, कमर, पीठ, चर्म, कालेयक (वृक्क), यकृत् (जिगर) और अंत्र (अँतडी) इनमेंसे दोदोमें एक २ उत्तरोत्तर भारी हैं (और कई साथल आदि दो २ में पूर्वपूर्वको भारी मानते हैं) ॥ ८० ॥

शिरः स्कंधं कटी पृष्ठं सक्थिनी चात्मपक्षयोः ॥ गुरु पूर्वं विजानीयाद्धातवस्तु यथोत्तरम् ॥ ८१ ॥ सर्वस्य प्राणिनो देहे मध्यो गुरुरुदाहृतः ॥ पूर्वभागो गुरुः पुंसामधोभागस्तु योषिताम् ॥ ॥ ८२ ॥ उरो ग्रीवं विहंगानां विशेषेण गुरु स्मृतम् ॥ पक्षोत्क्षेपात्समो दिष्टो मध्यभागस्तु पक्षिणाम् ॥ ८३ ॥

(सूत्र८१) शिरस्कंध इति स्कंधात् शिरो गुरुः पृष्ठात् कटी गुरुः । 'सक्थिनी चात्मपक्षयो.' इति सक्थिनी द्वे च आत्मपक्षयोः स्वाङ्गयोर्यथापूर्वं गुरुणी ज्ञेये इति (डल्हन.)

शिर, कंधा, कमर, पीठ, दोनों साथल ये पूर्वपूर्व भारी होते हैं । और दोनों साथलोंमेंसे उनमें भी पूर्वपूर्वका भाग भारी है तथा रक्तादिधातुओंके उत्तरोत्तर भारी हैं ॥ ८१ ॥ सबप्राणिमात्रोंके शरीरमें मध्यभाग (मदला अर्थात् धड) भारी होता है और फिरभी पुरुषका ऊपरला भाग भारी होताहै और स्त्रियोंका नीचेका भाग भारी होताहै॥८२॥ पक्षीजातिके उर (पेट) और ग्रीवा विशेष करके भारी होतेहैं और पाखोंके क्षेपण करनेस पक्षियोंका मध्यभाग समान(न भारी न हलका)दिखाई देताहै८३

अतीवरूक्षं मांसं तु विहंगानां फलाशिनाम् ॥ बृंहणं मांसमत्यर्थं खगानां पिशिताशिनाम् ॥ मत्स्याशिनां पित्तकरं वातघ्नं धान्यचारिणाम् ॥ ८४ ॥

फलखानेवाले पक्षियोंका मांस अतिरूक्ष होताहै और मांसखानेवाले परंदोंका मांस अत्यंत बृंहण (पुष्ट) होता है । तथा मछलीखानेवालोंका मांस पित्तकारक होता है और धान्यचारियोंका मांस वायुनाशकरनेवाला होता है ॥ ८४ ॥

जलजानूपजा ग्राम्याः क्रव्यादैकशफास्तथा ॥ प्रसहा बिलवासाश्च ये च जंघालसंज्ञकाः ॥ ८५ ॥ प्रतुदा विष्किराश्चैव लघवः स्युर्यथोत्तरम् ॥ अल्पाभिष्यंदिनश्चैवं यथापूर्वमतोन्यथा ॥ ८६ ॥

जलके जीव, जलके किनारे (डहर) के जीव, ग्रामके जीव, मांसभोजी जीव, एकखुरके जीव, शिकारी परंद और बिलवासी तथा जंघावाले जीव ॥८५॥ तथा प्रतुद और विष्किर ये जीव उत्तरोत्तर हलके होते हैं (जैसे जलजीवोंसे किनारके जीव हलके होते हैं इत्यादि) और इसीप्रकार उत्तरोत्तर स्वल्प अभिष्यंदि होतेहैं और इससे विपरीत पूर्वपूर्व क्रमसे भारी भारी होते हैं ॥ ८६ ॥

प्रमाणाधिकास्तु स्वजातौ चाल्पसारा गुरवश्च । सर्वप्राणिनां सर्वशरीरेभ्यो ये प्रधानतमा भवंति यकृत्प्रदेशवर्तिनस्तानाददीत प्रधानलाभाभावे मध्यमंवयस्कं सद्यस्कमक्लिष्टमुपादेयं मांसामिति ॥ ८७ ॥ भवति चात्र–

अपनी जातिके अनुमानमें जो प्रमाणसे अधिक होतेहैं वे स्वल्पसारवाले और भारी होतेहैं । सब जीवोंमें पूरे शरीरवालोंमेंसे जो २ प्रधान हैं वेभी यकृत्प्रदेशवर्ती (जिगरके निकटकी पूरी २ हों वेही) लेने चाहिये और जो प्रधान नहीं मिल

(सूत्र ८७) यकृत्प्रदेशवर्तिशब्देन यकृत्प्रदेशे दीर्घाकारा मांसवर्तयो भवंति ता इह गृह्यंते एतेन समस्तशरीरप्राप्तावपि विशिष्टशरीरावयवग्रहणमुक्तम् इति (डल्हनः) ।

तो मध्यमवयवाले ताजा जो क्लेदित न हुआ हो ऐसे जीवका मांस लेना ॥ ८७ ॥
यहाँ श्लोक है कि–

वयःशरीरावयवाः स्वभावो धातवः क्रियाः ॥ लिंगं प्रमाणं संस्कारो मात्रा चास्मिन्परीक्षिता ॥ ८८ ॥

इति मांसवर्गः।

(मांसमें अवस्था, शरीर, अंग, प्रत्यंग और स्वभाव (प्रकृति), धातु (रक्त, मांस, मेदआदि) तथा क्रिया, चिह्न प्रमाण और संस्कार तथा मात्रा इनकी परीक्षा रखनी चाहिये (इनकी परीक्षासे गुणागुण निश्चितहुए जानने चाहिये) ॥ ८८ ॥

इति मांसवर्गः ॥

अत ऊर्द्ध्वं फलवर्गानुपदेक्ष्यामः । तद्यथा ।

यहांसे अगाड़ी फलवर्गका उपदेश करते हैं वह यों है कि–

दाडिमामलकवदरकोलकर्कंधुसौवीरसिंवीतिकाफलकपित्थमातुलुंगाम्राम्रातककरमर्दपियाललकुचभव्यपारावतवेत्रफलप्राचीनामलकतिंतिडीकनीपकोशाम्राम्लीकानारंगजंबीरप्रभृतीनि ॥ १ ॥

दाडिम (अनार), आमलक (आंवले), वदर (बडे बेर), कोल (गोले बेर), कर्कन्धु (झाड़ीके छोटेबेर), सौवीर (एकप्रकारका बेर जो मरुभूमिमें होताहै), सिंवीतिका फल (सेव या नासपाती), कपित्थ (कैथ), मातुलुंग (विजौरानींबू), आँब, आमरा, करोंदा, पियाल (चिरौंजीका फल जिसकी गुठलीकी गिरी चिरौंजी है), लकुच (बढल), भव्य (कमरख), पारावत (एक खटमिट्ठाफल कामरूपदेशमें होता है), वेतका फल, प्राचीन आमलक (पानी आँवला), तिंतिडीक (अम्लफल), नीप (कदंबफल), कोशाम्र (कोसीम), अमली, नारंगी, जंबीर (नींबू) इत्यादि ॥ १ ॥

अम्लानि रसतः पाके गुरूण्युष्णानि वीर्यतः ॥
पित्तलान्यनिलघ्नानि कफोत्क्लेशकराणि च ॥ २ ॥

(सूत्र ८८)अस्मान्निति अस्मिन्मासकर्मणि । (सूत्र १) वदरं महत्, कोल मध्यप्रमाणम्, कर्कंधूः स्वल्पम् । सौवीरम् आमपक्वावस्थासु मधुरं मरुदेशजम्, सिवीतिकाफलम् तद्भेद एव अतिमधुरो मुष्टिप्रमाण उत्तरापथजः । भव्यं लोमफल । अन्ये तु कर्मरंगफलमाहुः । पारावतः कामरूपे फल पाककाले धवललोहित मधुराम्ल च इति डल्हनाचार्य. । (सूत्र २ अस्य पूर्वेण सहान्वयः ।

ये (ऊपर लिखे फल) सामान्यतासे रसमें और विपाकमें खट्टे हैं, भारी हैं, उष्णवीर्य हैं, पित्तकारक हैं, वायुनाशक हैं और कफको उत्क्लेश करनेवाले हैं ॥ २ ॥

कषायानुरसं तेषां दाडिमं नातिपित्तलम् ॥ दीपनीयं रुचिकरं हृद्यं वर्चोविबंधनम् ॥ ३ ॥ द्विविधं तत्तु विज्ञेयं मधुरं चाम्लमेव च ॥ त्रिदोषघ्नं च मधुरमम्लं वातकफापहम् ॥ ४ ॥

इनमेंसे "अनार" अनुरसम कसेला है, अतिपित्तल नहीं है, दीपन है, रुचिकारक है, हृदयके लिये हित है और पुरीषको बांधनेवाला है॥३॥ यह अनार दो प्रकारका होताहै । एक मीठा दूसरा खट्टा तिनमेंसे मीठा तीनों दोषोंको शांत करता है और खट्टा वायु और कफको शांत करता है ॥ ४ ॥

अम्लं समधुरं तिक्तं कषायं कटुकं सरम् ॥ चक्षुष्यं सर्वदोषघ्नं वृष्यमामलकीफलम् ॥ ५ ॥ हंति वातं तदम्लत्वात्पित्तं माधुर्यशैत्यतः ॥ कफं रूक्षकषायत्वात् फलेभ्योऽभ्यधिकं च तत् ॥ ६ ॥

"आंवला" अम्ल मधुरतालिये कडुवा, कसेला, चरपराटयुक्त है, सर है, नेत्रोंको हित है, सब दोषोंको नाश करताहै, वृष्य है आंवलेके ये गुण हैं ॥ ५ ॥ यह आंवला खट्टा होनेसे वायुको नाश करता है और मधुरता तथा शीतलतासे पित्तको शांत करता है और रूक्षता तथा कसेलेपनसे कफको शांत करताहै इससे यह सब फलोंसे अधिक गुणवाला है ॥ ६ ॥

कर्कंधुकोलबदरमामं पित्तकफावहम् ॥ पक्वं पित्तानिलहरं स्निग्धं समधुरं सरम् ॥ ७ ॥ पुरातनं तृट्शमनं शमघ्नं दीपनं लघु ॥ सौवीरं बदरं स्निग्धं मधुरं वातपित्तजित् ॥ ८ ॥

"छोटे,बडे और गोले बेर" कच्चे,पित्त और कफकारक हैं तथा पकेहुए येही पित्त और वायुनाशक होजातेहैं, स्निग्ध होतेहैं, मधुरतायुक्त और सर होते हैं ॥७॥पुराने (सूखेसलवटदार) तृषाको शांत करते हैं, दीपन हैं, हलके हैं तथा "सौवीरबेर" स्निग्ध हैं, मधुर हैं वायु और पित्तको जीतनेवाले हैं ॥ ८ ॥

कषायं स्वादु संग्राहि शीतं सिंबीतिकाफलम् ॥ आमं कपित्थमस्वर्यं कफघ्नं ग्राहि वातलम् ॥ ९ ॥ कफानिलहरं पक्वं मधुराम्लरसं गुरु ॥ श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कंठशोधनम् ॥ १० ॥ लघ्वम्लं दीपनं हृद्यं मातुलुंगमुदाहृतम् ॥ त्वक् तिक्ता

दुर्जरा तस्य वातकृमिकफापहा ॥ ११ ॥ स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं मांसं मारुतपित्तजित् ॥ मेध्यं शूलानिलच्छर्दिकफारोचकनाशनम् ॥ १२ ॥ दीपनं लघु संग्राहि गुल्मार्शोघ्नं तु केसरम् ॥ शूलाजीर्णविबंधेषु मन्दाग्नौ कफमारुते ॥ १३ ॥ अरुचौ च विशेषेण रसस्तस्योपदिश्यते ॥ पित्तानिलकरं बालं पित्तलं बद्धकेशरम्॥१४॥

"सिंबीतिका फल" कसेला है, मधुर है, ग्राही है, शीतल है, कच्चा कैथ (कवीठ) स्वरको विगाड़ता है, कफनाशक है, ग्राही है, वातल है॥९॥ "पका कैथ" (कवीठ) कफ वायुनाशक है, रसमें मीठा और तुरस है, भारी है, श्वास, खांसी, अरुचि हरता है, तृषानाशक और कंठशोधन है॥१०॥ "और मातुलुंग" (बिजौरा) हलका है, खट्टा है, दीपन है, हृदयको हित है, उसका छिलका कडवा है, दुर्जर है तथा वायु, कृमि, कफनाशक है॥११॥उसका गूदा मधुर, शीतल, गुरु, स्निग्ध है, वायु और पित्तको जीतनेवाला है, मेधा (बुद्धि) जनक है और शूल, वायु, छर्दि, कफ और अरुचिनाशक है॥१२॥उसका केसरा (जीरा) दीपन है, हलका है, ग्राही है, गुल्म, बवासीरनाशक है। शूल, अजीर्ण, विबंध और मंदाग्नि तथा कफवायुके रोगोंमें और विशेषकरके अरुचिमें इसका रस लेना श्रेष्ठ कहा है और कच्चा बिजौरा तथा जिसका जीरा खिला न होवे पित्तवातकर्ता तथा पित्तल है ॥ १३ ॥ १४ ॥

हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम् ॥ कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं बृंहणं गुरु ॥ १५ ॥ पित्ताविरोधि संपक्वमाम्रं शुक्रविवर्द्धनम् ॥ बृंहणं मधुरं बल्यं गुरु विष्टभ्य जीर्यति ॥१६॥ आम्रातकफलं वृष्यं सस्नेहं श्लेष्मवर्द्धनम् ॥ त्रिदोषविष्टम्भकरं लकुचं शुक्रनाशनम् ॥ १७ ॥ अम्लं तृष्णापहं रुच्यं पित्तकृत्कफमर्दकम् ॥ वातपित्तहरं वृष्यं पियालं गुरु शीतलम् ॥ १८ ॥

"आँब" हृदयको हित है, वर्णकारक है, रुचिकारक है, रक्त, मांस और बलको प्रसन्नकरनेवाला है, कसेला अनुरस होकर स्वादु (मीठा) है, वायुनाशक है, बृंहण (शरीरपुष्टिकर्ता) है, भारी है ॥ १५ ॥ और खूब पकाहुआ आँब पित्तका विरोधी नहीं है, वीर्यको बढाता है, बृंहण है, मधुर है, बलकारक है, भारी है, विष्टंभता करके पचता है ॥१६॥ "आम्रातक" (आमरा) वृष्य है, स्निग्धतायुक्त है, कफवर्द्धक है तथा "लकुच" (बढल) त्रिदोष और विष्टंभकारक और वीर्यनाशक है

(सूत्र १५) आम्रमिति शेषेणान्वयः ।

॥ १७ ॥ "करमर्द" (करोंदा) खट्टा है, तृषानाशक है, रुचिकारक है, पित्तकर्ता है तथा "पियाल" (चिरोंजीका फल) वायु और पित्तहर्ता है, वृष्य है, भारी है और शीतल है ॥ १८ ॥

हृद्यं स्वादु कषायाम्लं भव्यमास्यविशोधनम् ॥ पित्तश्लेष्महरं ग्राहि गुरु विष्टंभि शीतलम् ॥ पारावतं समधुरं रुच्यमत्यग्निवातनुत् ॥ १९ ॥ गरदोषहरं नीपं प्राचीनामलकं तथा ॥ वातापहं तिंतिडीकमामं पित्तबलासकृत् ॥ ग्राह्युष्णं दीपनं रुच्यं संपक्वं कफवातनुत् ॥ २० ॥

"भव्य" (कमरख) हृदयको हित है, मीठा, कसेला, तुरश है, मुखशोधनकर्ता है, पित्तकफकर्ता है, ग्राही है, भारी है, विष्टंभी और शीतल है, "पारावतफल" मिठासयुक्त है, रुचिकारक है, अत्यंत अग्नि और वायुनाशक है ॥ १९ ॥ तथा "कदंबफल" गरदोष (विष) नाशक है और इसीके अनुसार "पानी आमला" जानो और "तिंतिडीकफल" कच्चा पित्त और कफकर्ता है, ग्राही है, गरम है, दीपन है, रुचिकारक है और पक्का तिंतिडीकफल कफवायुनाशक है ॥ २० ॥

तस्मादल्पांतरगुणं कोशाम्रफलमुच्यते ॥ अम्लीकायाः फलं पक्वं तद्वद्भेदि तु केवलम् ॥ अम्लं समधुरं हृद्यं विशदं भक्तरोचनम् ॥ २१ ॥ वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नारंगस्य फलं गुरु ॥ तृष्णाशूलकफोत्क्लेशच्छर्दिश्वासनिवारणम् ॥ २२ ॥ वातश्लेष्मविबंधघ्नं जंबीरं गुरु पित्तकृत् ॥ ऐरावतं दंतशठमम्लं शोणितपित्तकृत् ॥ २३ ॥

"कोशाम्र" तिंतिडीकफलसे स्वल्प उसीके अनुसार गुण करता है तथा "अमलीका फल" पकाहुआ केवल भेदी है, मिठासयुक्त खट्टा होता है, हृदयको प्रिय है, साफ है और भोजनमें रुचिकरता है ॥ २१ ॥ "नारंगफल" (शंतरा) वायुनाशक है, दुर्जर है, भारी है, तृषा और शूल, कफ, उत्क्लेश, छर्दि, श्वास इन्हें दूर करताहै ॥ २२ ॥ "जंबीर" (नींबू) वायु, कफ और विबंधनाशक है, पित्तकारक है, तथा "ऐरावत" (एक भांति नारंगीका भेद) और "दंतशठ" (काठे नींबू) ये दोनों अम्ल (खट्टे) हैं और रक्तपित्त करनेवाले हैं ॥ २३ ॥

क्षीरवृक्षफलजांबवराजादनतोदनतिंदुकबकुलधन्वनाश्मंतकाश्व-

(सूत्र २४) तोदनं राजप्रियं शीतफलम्, कश्मीराम्लिफेल्येके इति डल्हनः। अश्मंतकः यमलपत्रकः आपत इति लोके इति डल्हनः । वाचस्पत्ये तु अम्लोटकवृक्षः अम्लपत्रः कोविदारश्च। अश्वकर्णः पूर्वदेशे गंधमुंडोऽश्वत्थसदृशः पुष्करवर्ती आमोदमिति उत्तरापथे (नि. सं.)

कर्णफल्गुपरूषकगांगेरुकीपुष्करवर्तिबिल्वबिम्बीप्रभृतीनि ॥२४॥ फलान्येतानि शीतानि कफपित्तहराणि च ॥ संग्राहकाणि रूक्षाणि कषायमधुराणि च ॥ २५ ॥

क्षीरवृक्षफल (गूलर, वटवंटी, पीपलवंटी आदि) जामन, राजादन (खिरनी), तोदन (कश्मीरी अमली), तिंदुक (तेंदू), बकुल (मौलसरीफल), धामन, अश्मंतक (अम्लोटक), अश्वकर्ण (पूर्वमें पीपलसा वृक्ष होता है उसका फल), फल्गु (अंजीर), परूषक (फालसे), गांगेरूकी (गंगोट), पुष्करवर्ती (आमोदफल), बिल्व (बील), बिंबी (कंदूरी) इत्यादि ॥ २४ ॥ ये फल शीतल हैं, कफपित्तहर्ता हैं, संग्राहक हैं, रूक्ष हैं और कसेले मीठे हैं ॥ २५ ॥

क्षीरवृक्षफलं तेषां गुरु विष्टंभि शीतलम् ॥ कषायं मधुरं चाम्लं नातिमारुतकोपनम् ॥२६॥ अत्यर्थं वातलं ग्राहि जाम्बवं कफपित्तजित् ॥ स्निग्धं स्वादु कषायं च राजादनफलं गरु ॥ २७ ॥ कषायं मधुरं रूक्षं तोदनं कफवातजित् ॥ अम्लोष्णं लघु संग्राहि स्निग्धं पित्ताग्निवर्द्धनम् ॥ २८ ॥ आमं कषायं संग्राहि तिन्दुकं वातकोपनम् ॥ विपाके गुरु संपक्कं मधुरं कफपित्तजित् ॥ २९ ॥ मधुरं च कषायं च स्निग्धं संग्राहि बाकुलम् ॥ स्थिरीकरं च दन्तानां विशदं फलमुच्यते ॥३०॥ कषायं च हिमं स्वादु धान्वनं कफवातजित् ॥ तद्वद्गांगेरुकं विद्यादश्मंतकफलानि च ॥ ३१ ॥

इनमेंसे दूधवाले वृक्षोंके फल " गूलर वटवंटी आदि " भारी और विष्टंभी होते हैं, शीतल हैं, कसेले हैं, मधुर हैं, कोई खट्टे हैं, वायुको अतिकोप नहीं करते ॥ ॥ २६ ॥ " जामन " अतिवातल है, ग्राही है, कफपित्तको जीतनेवाली है तथा "खिरनी" स्निग्ध है, मीठी है, कुछ कसेलापन है और गरिष्ठ है ॥ २७ ॥ "तोदन" (कश्मीरी अमली) कसेली है, मीठी है, रूक्ष है, कफवायुनाशक है, खट्टी है, गरम है, हलकी और ग्राही है, स्निग्ध है, पित्त और अग्निवर्द्धक है ॥२८॥ कच्चा " तेंदू " कसेला है, ग्राही है, वायुकोपकारक है, विपाकमें भारी है और "पका-तेंदू " मीठा और कफपित्त जीतनेवाला है ॥ २९ ॥ और "बकुल"(मौलसरीका फल) मीठा कसेला है, स्निग्ध है, ग्राही है, दांतोंको स्थिरकर्ता है और विशद

(सूत्र २८) तोदनं कषायत्वे रूक्षम् अम्लत्वे स्निग्धमित्यर्थः ।

है ॥ ३० ॥ "धान्वन" (धामण) कसेला है, शीतल है, स्वादु (मीठा) है, कफ और वायुनाशक है । और इसीके अनुसार गुणवाला "गांगेरुक" (गंगोट) जानना चाहिये । तथा "अश्मंतक" (अम्लोटकफल या कोविदारफल) भी इसीके अनुसार गुणवाला जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

विष्टंभि मधुरं स्निग्धं फल्गुजं तर्पणं गुरु ॥३२॥ अत्यम्लमीषन्मधुरं कषायानुरसं लघु ॥ वातघ्नं पित्तजननमामं विद्यात्परूषकम् ॥ ३३ ॥ तदेवं पक्वं मधुरं वातपित्तनिबर्हणम् ॥ विपाके मधुरं शीतं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ पौष्करं स्वादु विष्टंभि बल्यं कफकरं गुरु ॥ ३४॥ कफानिलहरं तीक्ष्णं स्निग्धं संग्राहि दीपनम् ॥ कटुतिक्तकषायोष्णं बालबिल्वमुदाहृतम् ॥ ३५ ॥ तदेवं विद्यात्सुपक्वं मधुरानुरसं गुरु ॥ विदाहि विष्टंभकरं दोषकृत्पूतिमारुतम् ॥३६॥ बिंबीफलं साश्वकर्णं स्तन्यकृत्कफपित्तजित् ॥ तृड्दाहज्वरपित्तासृक्कासश्वासक्षयापहम् ॥ ३७ ॥

"फल्गुज" (अंजीर) विष्टंभी है, मीठा है, स्निग्ध है, तृप्तिकर्ता है, भारी है ॥ ३२ ॥ "कच्चेफालसे" अत्यन्त खट्टे तथा कुछ २ मीठासयुक्त होते हैं और अनुरसमें कसेले हैं, हलके हैं, वायुनाशक हैं और पित्त उत्पन्न करते हैं ॥ ३३ ॥ वेही पकेहुए फालसे मीठे होजाते हैं, वायु और पित्तको शांत करते हैं, विपाकमें मधुर हैं, शीतल हैं, रक्तपित्तको प्रसन्न करते हैं ॥ ३४ ॥ "पौष्करफल" (कमलगट्टे) सिंघाड आदि) मीठे होते हैं, विष्टंभी और बलदायक हैं, कफकर्ता और भारी हैं । तथा "कच्चा बिल्वफल" कफ और वायुनाशक है, तीक्ष्ण है, स्निग्ध है, ग्राही है, दीपन है, कटुक और तिक्त कसेला और गरम है ॥ ३५ ॥ पका बिल्वफल मिठास लिये और भारी है, दाहजनक है, विष्टंभकर्ता है, दोषकारक है और वायुमें पवित्रता या सुगंधिकर्ता है ॥ ३६ ॥ "बिंबीफल" (कंदूरी) और "अश्वकर्णफल" दूधकारक हैं तथा कफ और पित्तको शांत करते हैं, तृषा, दाह और ज्वर तथा पित्तरक्त, खांसी, श्वास और क्षय इन्हें दूर करते हैं ॥ ३७ ॥

तालनारिकेलपनसमोचप्रभृतीनि ॥३८॥ स्वादुपाकरसान्याहुर्वातपित्तहराणि च ॥ बलप्रदानि स्निग्धानि बृंहणानि हिमानि च॥३९॥

(सूत्र ३९) पूर्वेण सहान्वेतव्य. ।

तालफल, नारियल, पनस (कठाल), मौच (कदलीफल केला) इत्यादि ॥ ॥ ३८ ॥ ये फल सामन्यतासे रसमें और विपाकमें मधुर कहेहैं और वायु तथा पित्तके हरनेवाले हैं, बलदेनेवाले हैं, स्निग्ध हैं, बृंहण (शरीरपुष्टकर्ता) हैं और शीतल हैं ॥ ३९ ॥

फलं स्वादुरसं तेषां तालजं गुरु पित्तजित् ॥ तद्बीजं स्वादुपाकं च मूत्रलं वातपित्तजित् ॥ ४० ॥ नारिकेलं गुरु स्निग्धं पित्तघ्नं स्वादु शीतलम् ॥ बलमांसप्रदं हृद्यं बृंहणं वस्तिशोधनम् ॥४१॥ पनसं सकषायं तु स्निग्धं स्वादुरसं गुरु ॥ मौचं स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम् ॥ रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरु ॥ ४२ ॥

तालफल रसमें मधुर है, भारी है, पित्त जीतनेवाला है और इसका बीज विपाकमें मधुर है, मूत्रल है, वायु और पित्तको नाश करता है ॥ ४० ॥ नारियल (खोपरा) भारी है, स्निग्ध है, पित्तनाशक है, मधुर है, शीतल है, बल और मांसका देनेवाला है, हृदयको प्रिय है, बृंहण है और वस्तिको शोधन करता है (यह हरे खोपरेके गुण हैं सूखा खोपरा गरम और पित्तकारक होता है) ॥ ४१ ॥ पनस (कठल) रसमें कसेलापनयुक्त मधुर है, स्निग्ध है, भारी है तथा मौच (केला) रसमें मधुर है, कुछ कसेला है, अत्यन्त शीतल नहीं है, रक्तपित्तहर्ता है वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है, कफकारक और गरिष्ठ है ॥ ४२ ॥

द्राक्षाकाश्मर्यमधूकपुष्पखर्जूरप्रभृतीनि ॥४३॥ रक्तपित्तहराण्याहुर्गुरूणि मधुराणि च ॥ ४४ ॥ तेषां द्राक्षा सरा स्वर्या मधुरा स्निग्धशीतला ॥ रक्तपित्तज्वरश्वासतृष्णादाहक्षयापहा ॥४५॥ हृद्यं मूत्रविबंधघ्नं पित्तासृग्वातनाशनम् ॥ केश्यं रसायनं मेध्यं काश्मर्यफलमुच्यते ॥४६॥ क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरु ॥ रसे पाके च मधुरं खर्जूरं रक्तपित्तजित् ॥ ४७ ॥ बृंहणीयमहृद्यं च मधूककुसुमं गुरु ॥ वातपित्तोपशमनं फलं तस्योपदिश्यते॥४८॥

(सूत्र ४५) द्राक्षायां विशेषमाह—"द्राक्षा पक्का सरा शीता चक्षुष्या बृंहणी गुरुः ॥ हंति तृष्णा ज्वरश्वासवातवातास्रकामलाः ॥ कृच्छ्रास्रपित्तसंमोहदाहशोषमदात्ययान् ॥ आमा स्वल्पगुणा गुर्वी सैवाम्ला रक्तपित्तकृत् ॥ वृष्या स्याद्गोस्तनी द्राक्षा गुर्वी च कफपित्तनुत् ॥ अबीजान्या स्वल्पतरा गोस्तनीसदृशी गुणैः ॥ द्राक्षा पर्वतजा लघ्वी साम्लाश्लेष्माम्लपित्तकृत् ॥" (इति भा. मि.)

द्राक्षा (दाख, मुनक्का, अंगूर), काश्मर्य (खंभारी खुम्बानी) तथा महुवेके फूल और खजूर (पिंडखजूर छोहारा) इत्यादि ॥ ४३ ॥ ये फल सामान्यतासे रक्तपित्तनाशक हैं, भारी हैं और मधुर हैं ॥ ४४ ॥ इनमेंसे द्राक्षा (दाख, अंगूर, मुनक्का) दस्तावर हैं, स्वर श्रेष्ठकरनेवाली हैं, मधुर हैं, स्निग्ध हैं, शीतल हैं, रक्तपित्त, ज्वर, श्वास, तृष्णा, दाह और क्षय इन्हें दूर करते हैं ॥ ४५ ॥ काश्मर्यफल हृदयको हित हैं, मूत्र और विबन्धको दूर करते हैं, पित्तरक्त और वायुनाशक हैं, केशों (बालों) के लिये हित हैं, रसायन है, बुद्धि बढाते हैं ॥ ४६ ॥ पिंडखजूर और हराछुहारा क्षत और क्षयनाशक हैं, हृदयको हित है, शीतल है, तृप्तिकर्ता है, भारी है, रस और विपाकमें मधुर है, रक्तपित्तको शांतकरता है ॥ ४७ ॥ महुवाके पुष्प बृंहण (शरीरपुष्टिकर्ता) हैं, हृदयको हित नहीं हैं और भारी हैं, और महुवेका फल वायु और पित्तको शांत करता है ॥ ४८ ॥

वातामाऽऽक्षोडाभिषुकनिचुलपिचुनिकोचकोरुमाणप्रभृतीनि४९॥ पित्तश्लेष्मकराण्याहुः स्निग्धोष्णानि गुरूणि च ॥ बृंहणान्यनिलघ्नानि बल्यानि मधुराणि च ॥ ५० ॥

वाताम (बादाम), अक्षोड (अखरोड), अभिषुक (काजू), निचुल (चिलगोजे), पिचु (बिनोलेकी गिरी), निकोच (पिस्ते), कोरुमाण (कुरमानि), इत्यादि ॥४९॥ ये फल सामान्यतासे पित्तकफकर्ता हैं, तरगरम हैं, भारी हैं, शरीर पुष्ट करनेवाले हैं, वायुनाशक हैं, बलदायक हैं और मधुर हैं ॥ ५० ॥

कषायं कफपित्तघ्नं किंचित्तिक्तं रुचिप्रदम् ॥ हृद्यं सुगंधि विशदं लवलीफलमुच्यते ॥ ५१ ॥ वसिरं शीतपाक्यं च सारुष्करनिबंधनम् ॥ विष्टम्भि दुर्जरं रूक्षं शीतलं वातकोपनम् ॥ ५२ ॥ विपाके मधुरं चापि रक्तपित्तप्रणाशनम् ॥ ऐरावतं दंतशठमम्लं शोणितपित्तकृत् ॥ ५३ ॥ शीतं कषायं मधुरं टंकं मारुतकृद्गुरु ॥ स्निग्धोष्णं तिक्तमधुरं वातश्लेष्मघ्नमैंगुदम् ॥ ५४ ॥ शमीफलं गुरु स्वादु रूक्षोष्णं केशनाशनम् ॥ गुरुः श्लेष्मातकफलं कफकृन्मधुरं हिमम् ॥ ५५ ॥

(सूत्र ५३) 'ऐरावतं दतशठमम्ल शोणितपित्तकृत्' इति द्विरुक्तपाठो डल्लनेनापि मन्यते आर्षत्वात् ऐरावतदतशठादीनामनेकविधत्वाच्च ।

लवलीफल (हरफारेवडी) कसेला है, कफपित्तनाशक है, कुछ २ तिक्त (कडवा) है, रुचिदेनेवाला है, हृदयको हित है, सुगंधित है, उज्ज्वल है ॥५१॥ वसिर (सूर्यावर्तफल) तथा शीतपाक्य (बलाफल) तथा सारुष्करनिबंधन (भल्लातफलका गुच्छा) ये विष्टंभी हैं, दुर्जर हैं, रूक्ष हैं, शीतल हैं और वायुको कोपकरते हैं ॥ ५२ ॥ ऐरावत (नींबूका भेद) विपाकमें मधुर है और रक्तपित्तनाशक है तथा दंतशठ (खट्टा काठ या नींबूजम्बीरभेद) खट्टा है और रक्तपित्तकारक है ॥५३॥ टंक (कश्मीरमें इसी नामसे प्रसिद्ध है) शीतल है, कसेलामीठा है, वायुकर्ता है, भारी है तथा ऐंगुद (हिंगोट) तरगरम है,मधुरतायुक्त कडवा है,वायुकफनाशक है, ॥ ५४ ॥ शमीफल (सांगरपक्का झिंझ) (या सांगरका फल) भारी है, मधुर है, रूक्ष है, गरम है, बालोंको उडा देता है । तथा श्लेष्मांतकफल (लहेसुवा) गरिष्ठ है, कफकारक (और कफशांतिकर्ता भी) है, मधुर है, शीतल है (यह कफ पैदा करता है पर उखडे कफको जमा देता है) ॥ ५५ ॥

करीराक्षकपीलूनि तृणशून्यफलानि च ॥ स्वादुतिक्तकटूष्णानि कफवातहराणि च ॥ ५६ ॥ तिक्तं पित्तकरं तेषां सरं कटुविपाकि च ॥ तीक्ष्णोष्णं कटुकं पीलु सस्नेहं कफवातजित् ॥ ५७॥ आरुष्करं तौवरकं कषायं कटुपाकि च ॥ उष्णं कृमिज्वरानाहमेहोदावर्तनाशनम् ॥५८॥ कुष्ठगुल्मोदरार्शोघ्नं कटुपाकि तथैव च ॥ करंजकिंशुकारिष्टफलं जन्तुप्रमेहनुत् ॥ ५९ ॥ रूक्षोष्णं कटुकं पाके लघु वातकफापहम् ॥ तिक्तमीषद्विषघ्नितं विडंगं कृमिनाशनम् ॥ ६० ॥

करीर (कैरफल टंट पीचू), आक्षिक (रंजकफल), पीलु (पील) तथा तृणशून्यफल (केतकी केवडाका फल) ये कुछ२ मधुर,कडवे, चरपरे हैं, गरम हैं और कफवातनाशक हैं ॥ ५६ ॥ इनमेंसे पीलु (पील) रसमें कुछ तिक्त है, पित्तकर्ता है, दस्तावर है, विपाकमें कटु (चरपरी) है, तीक्ष्ण गरम है, कटुक (चरपरी) है, कुछ २ स्नेहयुक्त है, कफवायुको जीतनेवाली है ॥ ५७ ॥ तोवरकफल (आरुष्कर) व्रणकारक है, कसेला है, विपाकमें कटुक है, गरम है, कृमि, ज्वर, अनाह, प्रमेह और उदावर्त्त नाशक है ॥ ५८ ॥ करंजवा, ढाकका फल (पलाशपापडा), अरिष्टफल (निंबोली) ये तीनों कुष्ठ, गुल्म, उदररोग, बवासीर इन्हें नाश करते हैं और जन्तु (कृमि) और प्रमेहनाशक हैं ॥ ५९ ॥ विडंगके दाने रूक्ष हैं, गरम

हैं, विपाकमें कटुक हैं, हलके हैं, वायु कफनाशक हैं, कुछ तिक्त हैं, विषरोगमें हित हैं और कृमिनाशक हैं ॥ ६० ॥

व्रण्यमुष्णं सरं मेध्यं दोषघ्नं शोफकुष्ठनुत् ॥ कषायं दीपनं चाम्लं चक्षुष्यं चाभयाफलम् ॥ ६१ ॥ भेदनं लघु रूक्षोष्णं वैस्वर्यकृमिनाशनम् ॥ चक्षुष्यं स्वादुपाक्यक्षं कषायं कफपित्तजित् ॥ ६२ ॥

अभयाके फल (बडी हरडे) व्रणको हित हैं, गरम हैं, दस्तावर हैं, बुद्धिजनक हैं, दोषोंको हरनेवाली हैं, शोथ और कुष्ठनाशक हैं, कसेली हैं, दीपन हैं, अम्ल भी हैं, नेत्रोंको हित हैं ॥ ६१ ॥ अक्ष (बहेडा) भेदन है, हलका है, रूक्ष और गरम है, स्वरविकार और कृमिनाशक है, नेत्रोंको हित है, विपाकमें मधुर है, कसेला है, और कफपित्तनाशक है ॥ ६२ ॥

कफपित्तहरं रूक्षं वक्त्रक्लेदमलापहम् ॥ कषायमीषन्मधुरं किंचित्पूगफलं सरम् ॥ ६३ ॥ जातीकोशोऽथ कर्पूरं जातीकटुकयोः फलम् ॥ कंकोलकं लवंगं च तिक्तं कटु कफापहम् ॥ लघु तृष्णापहं वक्त्रक्लेददौर्गंध्यनाशनम् ॥ ६४ ॥ सतिक्तः सुरभिः शीतः कर्पूरो लघुलेखनः ॥ तृष्णायां मुखशोषे च वैरस्ये चापि पूजितः ॥ ६५ ॥ लताकस्तूरिका तद्वच्छीता बस्तिविशोधिनी ॥ ६६ ॥

पूगफल (सुपारी) कफपित्तहर्ता है, रूक्ष है, मुखका गीलापन और मलको दूर करती है, कसेली है, कुछ २ मधुर है, कुछ दस्तावर भी है ॥ ६३ ॥ जातीकोश (जावित्री) और कपूर तथा जातीफल, कटुकाफल तथा कंकोलफल और लवंग तिक्त और कटु (चरपरे) हैं, कफनाशक हैं, हलके हैं, तृषाको शांत करते हैं, मुखकी क्लेदनता और दुर्गंधिको दूर करते हैं ॥ ६४ ॥ कपूर विशेषकरके तिक्ततायुक्त है, सुगंधित है, शीतल है, हलका है, लेखन (शोषकर कृशकर्ता), तृषा और मुखके सूखने और विरसतामें श्रेष्ठ है ॥ ६५ ॥ और लताकस्तूरी (वेद-मुश्क) इसीके अनुसार गुणवाली है तथा शीतल है, और वस्ति (मूत्रस्थान) को शोधन करती है ॥ ६६ ॥

पियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ॥ वैभीतको मदकरः कफमारुतनाशनः ॥ ६७ ॥ कषायो मधुरो मज्जा कोलानां पित्त-

नाशनः ॥ तृष्णाछर्द्यनिलघ्नश्च तद्वच्चामलकस्य च ॥ ६८ ॥ बीजपूरकसंपाकमज्जा कोशाम्रसंभवः ॥ स्वादुपाकोग्निबलकृत्स्निग्धः पित्तानिलापहः ॥ ६९ ॥ यस्य यस्य फलस्येह वीर्यं भवति यादृशम् ॥ तस्य तस्यैव वीर्येण मज्जानमपि निर्दिशेत् ॥ ७० ॥

पियालमज्जा (चिरोंजी) मधुर है, वीर्यकर्ता है, पित्त और वायुनाशक है तथा बहेडकी मींगी मदकारक है, कफ वायुनाशक है ॥ ६७ ॥ बेरोंकी मींगी कसेली है, मीठी है, पित्तनाशक है, तथा आंवलेकी गुठलीके भीतरकी गिरी तृषा, छर्दि और वायुको नाश करती है ॥ ६८ ॥ बिजोरेके बीजोंकी गिरी और किरमालेके बीजोंकी गिरी तथा कोशाम्र (कोसुमेंआंब) की गुठलीकी गिरी विपाकमें मधुर है, अग्नि और बलकारक है, स्निग्ध है, पित्त और वायुनाशक है ॥ ६९ ॥ जिस जिस फलका जैसा वीर्य होता है उसके अनुसार ही उसकी मज्जा (गुठलीकी गिरी) को जानना चाहिये ॥ ७० ॥

फलेषु परिपक्वं यद्गुणवत्तदुदाहृतम् ॥ बिल्वादन्यत्र विज्ञेयमामं तद्धि गुणोत्तरम् ॥ ग्राह्युष्णं दीपनं तद्धि कषायं कटुतिक्तकम् ॥ ७१ ॥

फलोंमें जो जो खूब पके हों वेही गुणकारक होतेहैं। बिल्वके सिवाय यह बात जाननी क्योंकि, बिल्व तो कच्चाही गुणकारक होताहै यह कच्चा बिल्वफल ग्राहीहै, गरम है, दीपन है, कसेला है, कटु (चरपरा) और तिक्त (कडवा) है ॥ ७१ ॥

व्याधितं कृमिजुष्टं च पाकातीतमकालजम् ॥
वर्जनीयं फलं सर्वमपर्यागतमेव च ॥ ७२ ॥

इतिफलवर्गः ।

व्याधियुक्त (गलासडा) तथा कृमियुक्त(काना जिसमें कीडे हों) तथा जो पककर मुरझागया हो तथा बेसमयका फल तथा अतिकच्चा फल इतने दोषोंसे दूषितफल त्यागनेयोग्य हैं (खानेयोग्य नहीं) ॥ ७२ ॥

इति फलवर्गः ।

अथ शाकवर्गः ।

शाकान्यत ऊर्द्ध्वं वक्ष्यामः॥ तत्र पुष्पफलाऽलाबुकालिंदकप्रभृतीनि ॥१ ॥ पित्तघ्नान्यनिलं कुर्य्युस्तथा मंदकफानि च ॥ सृष्टमूत्रपुरीषाणि स्वादुपाकरसानि च ॥ २ ॥

यहांसे अगाडी शाकोंका वर्णन करते हैं । यहां पुष्पफल (कूष्मांड), अलाबु (घीया), कालिंदक (तरबूज) इनको आदिलेके ॥१॥ ये जो कहे सो (साधारणतासे) पित्तनाशक हैं, वायु पैदा करते हैं तथा थोडा कफ करते हैं और मलमूत्रकी प्रवृत्ति करते हैं, विपाक और रसमें प्रायः मधुर हैं ॥ २ ॥

पित्तघ्नं तेषु कूष्मांडं बालं मध्यं कफापहम् ॥ पक्वं लघूष्णं सक्षारं दीपनं बस्तिशोधनम्॥सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यं चेतोविकारिणाम्॥३॥ दृष्टिशुक्रक्षयकरं कालिंदं कफवातकृत् ॥ अलाबुर्भिन्नविट्का तु रूक्षा गुर्वतिशीतला॥ ४ ॥ तिक्तालाबुरहृद्या तु वामनी वातपित्तजित् ॥ ५ ॥

उनमेंसे छोटा (कच्चा) पेठा पित्तनाशक है और मध्य (अधपका) कफकारक है तथा खूब पकाहुआ हलका, गरम, कुछ २ खरोंहा होता है, दीपन है और बस्ति (मूत्रस्थान) को शोधन करता है और सब दोषों (वायुपित्तकफ) को शांत करता है, हृदयको हित है और पित्तके विकार (मृगी, उन्माद आदि) के रोगवालोंको पथ्य (सेवन करने योग्य) है ॥ ३ ॥ कालिंद (तरबूज) दृष्टि शुक्र इन्हें क्षय करता है, और कफ वायु पैदा करता है । तथा अलाबु (घीया) मलको भेदन करनेवाली है, रूक्ष है, भारी है, अतिशीतल है ॥ ४ ॥ तथा कडवी घीया हृदयको अहित है, वमन लाती है, वायुपित्तको जीतती है ॥ ५ ॥

त्रपुसैर्वारुककर्कारुकशीर्णवृंतप्रभृतीनि ॥ ६ ॥ गुरुविष्टंभिशीतानि स्वादूनि कफकृन्ति च ॥ सृष्टमूत्रपुरीषाणि सक्षारमधुराणि च ॥७॥

(सूत्र १ । २) पुष्पफल कूष्मांडकम् । सृष्टमूत्रपुरीषाणि मूत्रपुरीषप्रवृत्तिकराणीति । बालं कूष्मांडमपक्वं मध्यं शुक्लं कफावहं कार्पासवर्णं परिपक्वमित्यर्थः। 'सर्वदोषहरम्' इत्यत्र सर्वग्रहणं रक्तोपसंग्रहार्थम्। चेतोविकारा उन्मादापस्मारमूर्च्छामदादयः (इति डल्लनः)

त्रपुस (ककडी), एर्वारु (आरिया), कर्कारुक (खीरा) और शीर्णवृंत (कूचरे) इत्यादि ॥ ६ ॥ ये सामान्यतासे गरिष्ठ हैं, विष्टंभि हैं, शीतल हैं, मधुर हैं, कफकारक हैं और खरोहापनयुक्त मधुर होनेपर मलमूत्रके प्रवर्तक होतेहैं ॥७॥

बालं सुनीलं त्रपुसं तेषां पित्तहरं स्मृतम् ॥ तत्पांडु कफकृज्जीर्णमम्लं वातकफापहम् ॥ ८ ॥ एर्वारुकं सकर्कारु संपक्वं कफवातकृत् ॥ सक्षारं मधुरं रुच्यं दीपनं नातिपित्तलम् ॥ ९ ॥ सक्षारं मधुरं चैवं शीर्णवृंतं कफापहम् ॥ भेदनं दीपनं हृद्यमानाहाष्ठीलनु लघु ॥ १० ॥

कच्चीककडी (हरी) नीली होती है और पित्तको शांत करती है। और अच्छी पकी (पिलोंही) कफकारक है। कमपकी खटासयुक्त वायुकफनाशक है ॥ ८ ॥ आरया और खीरा पकेहुए कफवायुकारक हैं और खारयुक्त, मधुर, रुचिकारक हैं, दीपन हैं, अतिपित्तकारक नहीं हैं ॥ ९ ॥ शीर्णवृंत (कचरे) खारापनयुक्त मधुर होते हैं, कफनाशक होते हैं, भेदन हैं, दीपन हैं, हृदयको हित हैं, अनाह और वाताष्ठीलाको नाश करते हैं और हलके हैं ॥ १० ॥

पिप्पलीमरिचशृंगवेरार्द्रकहिंगुजीरककुस्तुंबुरुकजंबीरकसुमुखसुरसाऽर्जकभूस्तृणसुगंधककासमर्दककालमालकुठेरकक्षवकखरपुष्पशिग्रुमधुशिग्रुफणिज्जकसर्षपराजिकाकुलाहलवेणुगंडीरतिलपर्णिकावर्षाभूचित्रकमूलकपोतिकालशुनपलांडुकलायप्रभृतीनि ॥११॥ कटून्युष्णानि रुच्यानि वातश्लेष्महराणि च ॥ कृतान्नेषूपयुज्यंते संस्कारार्थमनेकधा ॥ १२ ॥

(सूत्र ८ । ९ । १०) त्रपुसं सुवावासः तेरसा इति लोके कर्कटिकेति कथ्यते । एर्वारुकम्, लोमशा रोमयुक्ता आरया इति लोके। कर्कारुकः क्षुद्रकर्कटी खीरा इति लोके। अन्ये तु त्रपुसं क्षुद्रकर्कटी, कर्कारुक कर्कटीति वदंति । शीर्णवृंतं सुरोमकं त्रपुसभेदमाहुः। (फूट इति) अन्ये तु शीर्णवृंत कचुरमाहुः (कचरा इति) तथा चान्ये कचुरभेद खुरदपुत्रकमाहुः (खुरपुजा इति)

(सूत्र ११ । १२) पिप्पल्यादीनि वर्गीकृत्य पठति तत्र किंचित्खरकार किंचिच्छाक किंचिद्द्रेरजं किंचिदाहारमिति । (नि. स) जंबीरः हरितशाकमुत्तरापथे जंबीरगंधि किंचिदम्लमिति डल्हनः । केचित्तु निंबूकमेव वदंति । सुमुखः वनबर्बरिका । सुरसा तुलसी । अर्जकः श्वेतकुठेरकः । कालमालः वर्वरिका । कुठेरकस्तद्भेद एव । क्षवकः छिकरणीति लोके । खरपुष्प क्षवकभेदः मधुशिग्रु लोहितपुष्पोऽल्पविटप-

पिप्पली, मिरच, शृंगवेर (शुंठी), आर्द्रक, हींग, जीरा, कुस्तुंबुरु (धनिया), नीबू, सुमुख (वनबर्बरी), सुरसा (तुलसी), अर्जक (सुपेदबर्बरी जिसे नगंदबावरी कहते हैं) भूस्तृण (रोहिष),सुगंधक (सुगंधतृण), कासमर्द (कसोंदी), कालमाल (कालीनगंदबावरी) (कई इसठौर "कालशाक" ऐसा पाठ मानते हैं) कुठेरक (कालमालका भेद है), क्षवक (छीकनी), खरपुष्प (नकछीकनीका भेद), शिग्रु (सोहजना), मधुशिग्रु (लालफूलका सोहजना), फणिज्जक (मरुवा), सर्षप (सरसों), राई, कुलाहल (कुररसोंगाशाक), वेणु (बांस), गंडीर (हरितशाक), तिलपर्णी, वर्षाभू (साठी पुनर्नवा), चित्रक, मूलक (मूली), पोतिका (पोईका शाक और कई इसे पोदीना मानते हैं और कई मूलकपोतिका एकमानकर बालमूलक (कच्चीमूलीको) कहते हैं) लशुन, पलांडु (प्याज) कलाय (मटरका शाक) इत्यादि ॥ ११ ॥ ये प्रायः चरपरे तथा उष्ण (गरम), हैं, रुचिकारक हैं, वायु और कफनाशक हैं, इनमेंसे कई तो पदार्थोंमें संस्कारके लिये (मसालारूपसे) उपयोग होते हैं (और कई शाकरूप तथा कई औषधरूप तथा कई और प्रकारसे भक्ष्यरूपवस्तु हैं) ॥ १२ ॥

तेषां गुर्वी स्वादुशीता पिप्पल्यार्द्रा कफावहा ॥ शुष्का कफानिलघ्नी सा वृष्या पित्ताविरोधिनी ॥ १३ ॥ स्वादुपाक्यार्द्रमरिचं गुरु श्लेष्मप्रसेकि च ॥ कटूष्णं लघु तच्छुष्कमवृष्यं कफवातजित् ॥ १४ ॥ नात्युष्णं नातिशीतं च वीर्यतो मरिचं सितम् ॥ गुणवन्मरिचेभ्यश्च चक्षुष्यं च विशेषतः ॥ १५ ॥ नागरं कफवातघ्नं विपाके मधुरं कटु ॥ वृष्योष्णं रोचनं हृद्यं सस्नेहं लघु दीपनम् ॥ १६ ॥ कफानिलहरं स्वर्यं विबंधानाहशूलनुत् ॥ कटूष्णं रोचनं हृद्यं वृष्यं चैवार्द्रकं स्मृतम् ॥ १७ ॥

इनमेंसे गीली (हरी) पीपल भारी है, स्वादु (मधुर) और शीतल है, कफकारक है । तथा सूखीपीपल कफ वायुनाशक है, वृष्य (पुरुषार्थमें तेजीकरनेवाली) है, (और चरपरी है) तथा पित्तकी विरोधी नहीं है ॥ १३ ॥ गीली हरी स्याहमि-

---

-शोभांजनभेदः । फणिज्जकः मरुवकः । (नि. स.) कुलाहलो डल्हनमते तु मुंडितकः । शब्दस्तोमे तु कुलमाहलति स्पर्द्धते इति कुलाहलः "कुररसोंगा" वृक्षभेदः गंडीरस्थलजो जलजो द्विविधस्तत्र स्थलजो हरितशाकः (इति निघंटः.) पोतिका शाकभेदः पोदीना इति लोके । केचित्तु उपोदिका (पोईशाक)

१ दति तत्तु न सम्यक् तस्य पृथक् दर्शनात् । अनयोरपि द्वयोः सहान्वयः । केचित् मूलकपोतिकामेकत्वेन बालमूलकमाहुः ।

रच विपाकमें मधुर है, भारी है, कफको टपकानेवाली है तथा सूखी चरपरी, गरम और हलकी है और वृष्य नहीं है, कफ वायुको जीतनेवाली है ॥ १४ ॥ और सुपेदमिरच वीर्यमें न बहुत गरम है, न शीतल है और सब मिरचोंमें गुणवाली है विशेषकरके यही नेत्रोंके लिये हित है ॥ १५ ॥ शुंठी कफवायुनाशक है, विपाकमें मधुर है, रसमें चरपरी है, वृष्य है, उष्ण है, रोचन है, हृदयके लिये हित है, सुस्निग्ध (तर) है, लघु (हलकी) और दीपन है ॥ १६ ॥ आर्द्रक कफवायुनाशक है, स्वर शुद्ध करनेवाली है, विबंध, अफरा और शूल इनको नाश करती है, चरपरी और गरम है, रुचिकारक है, हृदयके लिये हित है और वृष्यभी है ॥ १७ ॥

लघूष्णं पाचनं हिंगु दीपनं कफवातजित् ॥ कटु स्निग्धं सरं तीक्ष्णं शूलाजीर्णविबंधनुत् ॥ १८ ॥ तीक्ष्णोष्णं कटुकं पाके रुच्यं पित्ताग्निवर्द्धनम् ॥ कटु श्लेष्मानिलहरं गंधाढ्यं जीरकद्वयम् ॥ १९ ॥

हिंगु हलका है, गरम है, पाचन है, दीपन है, कफवायुनाशक है, रसमें चरपरा है, स्निग्ध है, सर (दस्तावर) है, तीक्ष्ण है तथा शूल, अजीर्ण और विबंधनाशक है ॥ १८ ॥ दोनों जीरे (सुपेद और स्याह) तीक्ष्ण हैं, गरम हैं, विपाकमें चरपरे हैं, रुचिकारक हैं, पित्त और अग्निको बढाते हैं, रसमें भी चरापराट हैं, कफवायु नाशक हैं और सुगंधयुक्त हैं ॥ १९ ॥

कारवी करवी तद्वद्विज्ञेया सोपकुंचिका ॥ भक्ष्यव्यंजनभोज्येषु विविधेष्ववचारिता ॥ २० ॥ आर्द्रा कुस्तुंबुरी कुर्यात्स्वादुसौगंध्यहृद्यताम् ॥ सा शुष्का मधुरा पाके स्निग्धा तृड्दाहनाशनी ॥ दोषघ्नी कटुका किंचित्तिक्ता स्रोतोविशोधिनी ॥ २१ ॥ जंबीरः पाचनस्तीक्ष्णः कृमिवातकफापहः ॥ सुरभिर्दीपनो रुच्यो मुखवैशद्यकारकः ॥ २२ ॥ कफानिलविषश्वासकासदौर्गंध्यनाशनः ॥ पित्तकृत्पार्श्वशूलघ्नः सुरसः समुदाहृतः ॥ २३ ॥ तद्वत्तु सुमुखो ज्ञेयो विशेषाद्गरनाशनः ॥ २४ ॥

कारवी (सौंफ) और करवी (अजवायन) तथा उपकुंचिका (कलोंजी) ये भी इसीप्रकार हैं भक्ष्य (अपूपादि), व्यंजन (शाकादि), भोज्य (संयावादि) नानाप्रकारके ऐसे पदार्थोंमें उपयोग कीहुई जीरेके समान गुणकरती हैं ॥ २० ॥ हरी गीली धनिया पदार्थको स्वादु, सुगंधियुक्त और हृद्यतायुक्त करती है और वही सूखी धनिया विपाकमें मधुर है, स्निग्ध है, तृषा और दाहनाशक है, सबदोषों (वायु, पित्त, कफ

और रक्त) को शांत करती है, कुछ चरपराट और तिक्ततावाली है और द्वारोंको शुद्ध करती है ॥२१॥ जंबीर (नींबू) (शाकमें युक्त किया) पाचन और तीक्ष्णताकारक होता है, कृमि, वायु और कफनाशक है, सुगंधित और दीपन तथा रुचिकारक होता है, मुखको साफकरता है ॥ २२ ॥ सुरस (तुलसीपत्र) कफ, वायु, विष, श्वास, खांसी, दुर्गंधिता इन्हें नाशकरता है, पित्तकारक है और पासूँके दर्दको दूर करता है ॥२३॥ इसीप्रकार सुमुख (नगंदबावरी) के भी गुण हैं विशेषकरके विषको दूर करती है ॥ २४ ॥

कफघ्ना गुरवो रूक्षा तीक्ष्णोष्णाः पित्तवर्द्धनाः ॥
कटुपाकरसाश्चैव सुरसार्जकभूस्तृणाः ॥ २५ ॥

सुरसा (दूसरी तुलसी), अर्जक (बर्बरी), भूस्तृण (रोहिष) ये कफनाशक, भारी, रूक्ष, तीक्ष्ण, गरम, पित्तवर्द्धक, रस और पाकमें कटु (चरपरे) हैं ॥२५॥

मधुरः कफवातघ्नः पाचनः कंठशोधनः ॥ विशेषतः पित्तकरः सतिक्तः कासमर्दकः ॥ २६ ॥ कटुः सक्षारमधुरः शिग्रुस्तिक्तोथ पिच्छलः ॥ मधुशिग्रुः सरस्तिक्तः शोथघ्नो दीपनः कटुः ॥ २७ ॥ विदाहि बद्धविण्मूत्रं रूक्ष तीक्ष्णोष्णमेव च ॥ त्रिदोषं सार्षपं शाकं गांडीरं वेगनाम च ॥ २८ ॥ चित्रकस्तिलपर्णी च कफशोफहरे लघू ॥ वर्षाभूः कफवातघ्नी हिता शोफोदरार्शसाम् ॥ २९ ॥ कटुतिक्तरसा हृद्या रोचनी वह्निदीपनी ॥ सर्वदोषहरा लघ्वी कंठ्या मूलकपोतिका ॥ ३० ॥

कासमर्द (कसोंधी) मधुर है, कफवायुनाशक है, पाचन है, कण्ठ शुद्ध करतीहै, पित्तकारक विशेषकरके है, तिक्तता (कडवापन) युक्त है ॥ २६ ॥ सोहजन (की फली) चरपरा, खरोंही, मधुर, कुछ कडवा और पित्तकारक है तथा मधुशिग्रु दस्तावर है, तिक्त है, शोथनाशक, दीपन और कटु (चरपरा) है ॥ २७ ॥ सरसोंका शाक दाह पैदा करता है, पुरीष तथा मूत्रको रोकता है, रूक्ष है, तीक्ष्ण है, गरम है, त्रिदोषकर्ता है इसीप्रकार गांडीर वेगनामक शाकभी जानो ॥२८॥ चित्रक और तिलपर्णी कफ और शोथ हरनेवाले हैं, हलके हैं । तथा वर्षाभू (पुनर्नवा साटी) कफवायुनाशक, शोथ, उदररोग और बवासीरमें हित है ॥ २९ ॥ मूलक (मूली) तथा पोतिका (पोदीना) ये रसमें चरपरे, कुछ तिक्त हैं, हृदयको हित

(सूत्र ३०) मूलकपोतिका पृथक्त्वेन तु मूलकं मूली इति, पोतिका इति पोतिकाशाकभेद इत्याहुः केचित् एकत्वेन मूलकपोतिका इति बालमूल वदति ।

हैं, रुचिकारक हैं, अग्निको दीपन करते हैं, सबदोषोंको हरनेवाले हलके हैं, कंठको हित हैं। (और कई मूलकपोतिका कच्ची मूलीको कहते हैं) ॥ ३० ॥

महत्तद्गुरु विष्टंभि तीक्ष्णमामं त्रिदोषकृत् ॥ तदेव स्निग्धसिद्धं तु पित्तनुत्कफवातजित् ॥ ३१ ॥ त्रिदोषशमनं शुष्कं विषदोषहरं लघु ॥ विष्टंभि वातलं शाकं शुष्कमन्यत्र मूलकात् ॥ ३२ ॥

बडीमूली भारी है और विष्टंभी है तथा पतली (कच्चीमूली) तीक्ष्ण है, त्रिदोषकारक है और वही स्नेहसे सिद्धकरी हुई पित्तनाशक और कफवायुको जीतनेवाली है ॥३१॥और सूखीमूली त्रिदोषको शांत करती है, विषदोषहरनेवाली और हलकी है (मूली सूखी श्रेष्ठ है) और मूलीके सिवाय सब सूखे शाक विष्टंभी तथा वातल होते हैं ॥ ३२ ॥

पुष्पं च पत्रं च फलं तथैव यथोत्तरं ते लघवः प्रदिष्टाः ॥ तेषां तु पुष्पं कफपित्तहंतृ फलं निहन्यात्कफमारुतौ च ॥ ३३ ॥

पुष्प, पत्र और फल ये यथोत्तर हलके हैं उनमेंसे पुष्प तो कफ और पित्तनाशक है तथा फल कफवायुहर्ता है ॥ ३३ ॥

स्निग्धोष्णतीक्ष्णः कटुपिच्छलश्च गुरुः सरः स्वादुरसश्च बल्यः ॥ वृष्यश्च मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्नास्थिसंधानकरो रसोनः ॥३४॥ हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलविबंधगुल्मारुचिकासशोषान् ॥ दुर्नामकुष्ठानलसादजंतुसमीरणश्वासकफांश्च हंति ॥ ३५ ॥

रसोन (ल्हसन) स्निग्ध है, तीक्ष्णगरम है, कटु (चरपरा) है, पिच्छल (चिकना) है, भारी है, सर(दस्तावर या फैलानेवाला) है,रसमें कुछ मधुरभी है, बलकारक है, वृष्यहै,मेधा, स्वर और वर्ण तथा नेत्र इनको हित है तथा टूटेको जोडता है (रसोनइसका नाम यों है कि इसमें पांचरस हैं केवल एकरस(अम्लता) से रहितहै)

(सूत्र ३३) पुष्पमिति मूलकविपयोयं यादृङ्मूलकंदेषु वालमध्यवृद्धस्निग्धसिद्धशुष्केषु फलनिर्देशस्तद्वत् पुष्पपत्रफलेष्वपि वाच्यः । (इति डल्लनः) (सूत्र ३४ । ३५) रसोन इति रसेनैकेनोनः रसोनः तदुक्तं भावमिश्रेण "पंचभिश्च रसैर्युक्तो रसेनाम्लेन वर्जितः ॥ कटुकश्चापि मूलेषु तिक्तः पत्रेषु संस्थितः ॥ नाले कषाय उद्दिष्टो नालाग्रे लवणः स्मृतः ॥ वीजे तु मधुरः प्रोक्तो रसस्तद्गुणवेदिभिः" इति। रसोनोत्पत्तिः "यदामृतं वैनतेयो जहार सुरसत्तमात् ॥ तदा ततोऽपतद्बिंदुः स रसोनोऽभवद्भुवि" इति। ननु अमृतोत्पन्नस्य रसोनस्य कथं ब्राह्मणादिभिरभोज्यत्वमेव तत्राह भावमिश्रः "मद्यं मांसं तथाम्लं च हितं लशुनसेविनाम्" रसोनसेविना मद्य मास हितम्। मद्यमांसत्यागिनां रसोनो व्याधिकारको भवत्यनेनाऽमांसमद्यभोजिना ब्राह्मणादीनां वर्जितः दुर्गंधवशाच्चापि वर्जित एवेति ।

हृदयरोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, विबंध, गुल्म, अरुचि, कास(खाँसी),शोष(क्षय), बवासीर, कुष्ठ तथा अनलसाद (अग्निमांद्य), जंतु (कृमि), समीर (वायुरोग), श्वास और कफके विकार इनको दूर करता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

नात्युष्णवीर्योऽनिलहा कटुश्च तीक्ष्णो गुरुर्नातिकफावहश्च ॥
बलावहः पित्तकरोऽथ किंचित्पलाण्डुरग्निं च विवर्द्धयेच्च ॥ ३६ ॥
स्निग्धो रुचिस्थः स्थिरधातुकर्त्ता बल्योऽथ मेधाकफपुष्टिदश्च ॥
स्वादुर्गुरुः शोणितपित्तशस्तः सपिच्छिलः क्षीरपलाण्डुरुक्तः ॥ ३७ ॥

पलांडु (प्याज) अत्यंत उष्णवीर्य नहींहै, वायुनाशक है, कटु (चरपरा) है, तीक्ष्ण है, भारी है, अत्यंतकफकारकभी नहीं है, बलकारक है, पित्तकर्ता स्वल्प है तथा अग्निको बढाताहै ॥ ३६ ॥ तथा क्षीरपलांडु (जलकी प्याज) स्निग्ध है, रुचि रखताहै, धातुओंको स्थिर करता है, बलदायक है, बुद्धि, कफ और पुष्टिदेनेवाला है, स्वादु, है भारी है, रक्तपित्तमें श्रेष्ठ है और पिच्छलतायुक्त है ॥ ३७ ॥

कलायशाकं पित्तघ्नं कफघ्नं वातलं गुरु ॥
कषायानुरसं चैव विपाके मधुरं च तत् ॥ ३८ ॥

कलायशाक (मटरका शाक) पित्तनाशक है, कफहरताहै, वायुकारक है, भारी है, कसेलाअनुरस है और विपाकमें मधुर है ॥ ३८ ॥

चुच्चूयूथिकातरणीजीवंतीबिंबीतिकानन्दीभल्लातकच्छगलांत्रीवृक्षादनीफंजीशाल्मलीशेलुवनस्पतिप्रसवशणकर्बुदारकोविदारप्रभृतीनि ॥ ३९ ॥ कषायस्वादुतिक्तानि रक्तपित्तहराणि च ।
कफघ्नान्यनिलं कुर्युः संग्राहीणि लघूनि च ॥ ४० ॥

चुच्चू (चंचुशाक), यूथिका (जूईका साग), तरणी (सेवंती), जीवंतीशाक, बिंबीतिका (कंदूरीपत्र), नंदी (नंदीवृक्षका शाक), भल्लातक (भिलावेके पत्ते), छगलांत्री (वृद्धदारुपत्र), वृक्षादनी (बंदा), फंजीशाक, शाल्मलीशाक, शेलु(ल्हेसुवेके पत्र)तथा वनस्पतिप्रसव (अनेक वनस्पतिके कोमलपत्ते), शण (शणकी डोंडी) कर्बुदार (ल्हेसुवेका भेद) तथा कोविदार(कचनाल)इत्यादि ॥ ३९ ॥ ये कसेले, मधुर और तिक्त हैं, रक्तपित्तनाशक हैं, कफ हरनेवाले, वायुकारक, ग्राही और हलके हैं ॥ ४० ॥

(सूत्र ३९) तरुणी स्वनामप्रसिद्धा अन्ये वरुणकमाहु इति डल्हनः। वाचस्पतिस्तु तरुणी घृतकुमार्यां दंतीवृक्षे सेवंतीवृक्षे च । शेलुः श्लेष्मातकः । वनस्पतिप्रसवाः वनस्पति उदुंबरादिस्तस्य प्रसवाः । कर्बुदार. श्लेष्मातकभेदः । कोविदारः काचनारः (इति डल्हनः)

लघुः पाके च जन्तुघ्नः पिच्छलो व्रणिनां हितः ॥ कषायमधुरो ग्राही चुच्चूस्तेषां त्रिदोषहा ॥ ४१ ॥ चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती समुदाहृता ॥ वृक्षादनी वातहरा फंजी स्वल्पबला मता ॥४२॥

इनमेंसे चुचूशाक विपाकमें हलका है, कृमिनाशक है, पिच्छल है, व्रणवालोंके लिये हित है, कसेला है, मधुर है, ग्राही है और त्रिदोषनाशक है ॥ ४१ ॥ जीवंतीशाक नेत्रोंको हित है, सब दोषों (वायु, पित्त, कफ और रक्त) इनको शांत करता है। तथा वृक्षादनी (बंदा) वायुनाशक है और फंजीका शाक अल्पबलकारक है ॥ ४२ ॥

क्षीरवृक्षोत्पलादीनां कषायाः पल्लवाः स्मृताः ॥
शीताः संग्राहिणः शस्ता रक्तपित्तातिसारिणाम् ॥ ४३ ॥

दूधवाले वृक्ष (गूलर आदि) तथा कमलआदिके पत्ते कसेले हैं, शीतल हैं, ग्राही हैं, रक्तपित्त और अतिसारवालोंको श्रेष्ठ हैं ॥ ४३ ॥

पुनर्नवावरुणतर्कार्युरुबूकवत्सादनीबिल्वशाकप्रभृतीनि ॥ ४४ ॥ उष्णानि स्वादुतिक्तानि वातप्रशमनानि च ॥ तेषु पौनर्नवं शाकं विशेषाच्छोफनाशनम् ॥ ४५ ॥

पुनर्नवा (साठी), वरुणेके पत्र, तर्कारी (अरणी), उरुबूक (अरंड), वत्सादनी (गिलोय) और बिल्वशाक इत्यादि ॥ ४४ ॥ ये सामान्यतासे गरम हैं, मधुर तथा कडवे हैं, वायुको शांत करते हैं इनमेंसे साठीका शाक विशेष करके शोथनाशक है ॥ ४५ ॥

तंडुलीयकोपोदिकाऽश्वबलाचिल्लीपालंक्यावास्तूकप्रभृतीनि ॥४६॥ सृष्टमूत्रपुरीषाणि सक्षारमधुराणि च ॥ मंदवातकफान्याहू रक्तपित्तहराणि च ॥ ४७ ॥

तंडुलीयक (चौलाई), उपोदिका (पोईका शाक), अश्वबला (आसबल), (और कई अश्वबला मेथीको कहते हैं सो ठीक नहीं) चिल्ली (चिल्लीशाक), पालंक्या (पालक), वास्तूक (बथुवा) इत्यादि ॥ ४६ ॥ ये सामान्यतासे मलमूत्रके प्रवर्तक हैं, खारसहित मीठे हैं, थोडा २ वायु और कफ पैदा करते हैं तथा रक्तपित्तको हरते हैं ॥ ४७ ॥

(सूत्र ४५) अस्य श्लोकस्य पूर्वार्द्धः पूर्वसूत्रेण सहान्वेतव्यः। (सूत्र ४६) अश्वबला मेथिका इत्यन्ये तन्न अश्वबला तुरुष्कदेशे बृहत्पत्रमेथिकाभेद एवेति डल्लनः।

मधुरो रसपाकाभ्यां रक्तपित्तमदापहः ॥ तेषां शीततमो रूक्षस्तंडुलीयो विषापहः ॥ ४८ ॥ स्वादुपाकरसा वृष्या वातपित्तमदापहा ॥ उपोदिका सदा स्निग्धा बल्या श्लेष्मकरी हिमा ॥४९॥ कटुर्विपाके कृमिहा मेधाग्निबलवर्द्धनः ॥ सक्षारः सर्वदोषघ्नो वास्तूको रोचकः सरः ॥ ५० ॥ चिल्ली वास्तूकवज्ज्ञेया पालंक्यो तंडुलीयवत् ॥ वातकृद्बद्धविण्मूत्रा रूक्षा पित्तकफे हिता ॥ ५१ ॥ शाकसाश्ववलं रूक्षं बद्धविण्मूत्रमारुतम् ॥ ५२ ॥

इनमेंसे तंडुलीय (चौलाई) रस और विपाकमें मधुर है, रक्तपित्त और मदनाशक है, अतिशीतल है, रूक्ष है, विषनाशक है ॥ ४८ ॥ उपोदिका (पोई) रस और विपाकमें स्वादु (मधुर) है,वृष्य(वीर्यकारक) है, वायु,पित्त, मद हरनेवाली है, सदा स्निग्ध है,बलकारिणी है और कफकारिणी तथा शीतल है॥४९॥वास्तूक(बथुवा) विपाकमें चरपरा है, कृमिनाशक है तथा बुद्धि, अग्नि और बलवर्द्धक है, क्षारयुक्त है, सब दोषोंको नाश करता है, रोचक है और सर है ॥ ५० ॥ चिल्लीका शाक बथुवेके समान जानना और पालकको चौलाईके समान जानो । विशेषकर पालक वायुकारक है, मलमूत्रको रोकता है (और कई बद्धकी जगह सृष्टविण्मूत्र मानते हैं कि पालक मलमूत्रको प्रवृत्त करता है) रूक्ष है, पित्त और कफमें हित है ॥५१॥ अश्वबलाका शाक रूक्ष है मलमूत्र और अधोवायुको रोकता है ॥ ५२ ॥

मण्डूकपर्णीसप्तलासुनिषण्णकसुवर्चलाब्रह्मसुवर्चलापिप्पलीगुडूचीगोजिह्वाकाकमाचीप्रपुन्नाडावल्गुजसतीनवृहतीकंटकारिकाफलपटोलवार्ताकुकारवेल्लककंटकिकाकेबुकोरुबूकपर्पटककिराततिक्तककोंटकारिष्टकोशातकीवेत्रकरीराटरूषकार्कपुष्पीप्रभृतीनि५३ रक्तपित्तहराण्याहुर्हृद्यानि सुलघूनि च ॥ कुष्ठमेहज्वरश्वासकासारुचिहराणि च ॥ ५४ ॥

मंडूकपर्णी (ब्राह्मी), सप्तला (थोहरभेदके पत्र), सुनिषण्णक (चौपातिया), सुवर्चला (हुलहुल), ब्रह्मसुवर्चला (हुलहुलका भेद), पिप्पलीके पत्र, गिलोयके पत्र, गोजिह्वा (जंगलीगोभी), काकमाची (मकोह), प्रपुन्नाड (पवाड), अवल्गुज (बाकुची), सतीन (छोटीमटरका शाक), बृहती (बडी कटेली), कंटकारिका (छोटी कटेली) इनके फल, पटोल (परवल), वार्ताकु (वृंताक), कारवेल्लक

(सूत्र ५४) अस्यापि पूर्वेण सहान्वयः ।

(करेला), कंटकिका (वनकी कसोंधी), केवुक (केवका या ककुआँ), उरुबूक (रक्त अरंड), पर्पटक (पित्तपापडा), किराततिक्त (चिरायता), कर्कोटक (ककोडे) अरिष्ट (नींमकी कोंपल), कोशातकी (तोरी), वेत्रकरीर (वेतकी कोंपल), आटरूषक (अडूसा), अर्कपुष्पी इत्यादि ॥ ५३ ॥ ये शाक रक्तपित्त-नाशक हैं, हृदयको हित हैं, हलके हैं, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास, खांसी और अरुचि इन्हें हरते हैं ये सामान्यतासे इनके गुण हैं ॥ ॥ ५४ ॥

कषाया तु हिता पित्ते स्वादुपाकरसा हिमा ॥ लघ्वी मंडूकपर्णी तु तद्वद्गोजिह्विका मता ॥ ५५ ॥

मंडूकपर्णी (ब्राह्मी) कसेली है, पित्तमें हित है, विपाक और रसमें कुछ मधुर है, शीतल है, हलकी है और इसीके अनुसार गोजिह्वा (गोभी और कई गाजुवाँ मानते हैं) गुणकारिणी है ॥ ५५ ॥

अविदाही त्रिदोषघ्नः संग्राही सुनिषण्णकः ॥ अवल्गुजः कटुः पाके तिक्तः पित्तकफापहः ॥ ५६ ॥ ईषत्तिक्तं त्रिदोषघ्नं शाकं कटु सतीनकम् ॥ नात्युष्णशीतं कुष्ठघ्नं काकमाच्यास्तु तद्विधम् ॥ ॥ ५७ ॥ कंडूकुष्टकृमिघ्नानि कफवातहराणि च ॥ फलानि बृहती-नां तु कटुतिक्तलघूनि च ॥ ५८ ॥ कफपित्तहरं व्रण्यमुष्णं तिक्त-मवातलम् ॥ पटोलं कटुकं पाके वृष्यं रोचनदीपनम् ॥ ५९ ॥

सुनिषण्णक (चौपतिया) विदाही नहीं है, त्रिदोषनाशक है, संग्राही है तथा अवल्गुज विपाकमें कटुक है, तिक्त है, पित्त और कफनाशक है ॥ ५६ ॥ सतीन (छोटीमटरका शाक) थोडा २ तिक्त है, त्रिदोषहर्ता है, कटु (चरपरा) है, अति-गरम और शीतल नहीं है, कुष्ठनाशक है और इसीके अनुसार काकमाची (मकोह) का शाक है ॥ ५७ ॥ बडी और छोटी कटेलीके फल खुजली, कुष्ठ और कृमिको नाश करते हैं, कफ वायुके हरनेवाले हैं, चरपरे, कडवे और हलके हैं ॥ ५८ ॥ पटोल (परवल) का शाक कफपित्तको शांत करता है, व्रणको हित है, गरम है, तिक्त है तो भी वातल नहीं है, विपाकमें कटुक है, वृष्य (वीर्यदाता) है, रोचन है और दीपन है ॥ ५९ ॥

कफवातहरं तिक्तं रोचनं कटुकं लघु ॥ वार्ताकं दीपनं प्रोक्तं जी-र्णं सक्षारपित्तलम् ॥ ६० ॥ तद्वत्कर्कोटकं प्रोक्तं कारवेल्लकमेवं

र्चे ॥ आटरूषकवेत्राग्रगुडूचीनिम्बपर्पटाः ॥ किराततिक्तसहितास्तिक्ताः पित्तकफापहाः ॥ ६१ ॥

वार्ताक (बेंगन) कफवायुनाशक है, तिक्त (रसमें कुछ कडवा) है, रुचिकारक है, कुछ चरपरा है, हलका है, दीपन है और पका हुआ जीर्ण (पीले बेंगन) खरोहा है और पित्तकारक है ॥ ६० ॥ और इसीके समान ककोडे और करेले जानने । तथा अडूसाका शाक अर्थात् (पत्र) तथा बेतकी कोंपल गिलोयके पत्ते, नींबके पत्ते और पर्पट (स्याहतरे) के पत्ते जानने चाहिये । ये आटरूषकको आदिले चिरायते पर्यंत रसमें तिक्त हैं और पित्तकफनाशक हैं ॥ ६१ ॥

कफापहं शाकमुक्तं वरुणप्रपुनाडयोः ॥ रूक्षं लघु च शीतं च वातपित्तप्रकोपणम् ॥ ६२ ॥ दीपनं कालशाकं तु गरदोषहरं कटु ॥ कौसुंभं मधुरं रूक्षमुष्णं श्लेष्महरं लघु ॥६३॥ वातलं नालिकाशाकं पित्तघ्नं मधुरं च तत् ॥ ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी साम्ला वातकफे हिता ॥ उष्णा कषायमधुरा चांगेरी चाग्निदीपनी ॥ ६४ ॥

वरुण और पवाडका शाक कफनाशक है, रूक्ष है, हलका है, शीतल है, वायु और पित्तको कुपित करता है ॥ ६२ ॥ और कालशाक दीपन है, विषदोषहर्ता है, कटुक है और कुसुंभेका शाक मधुर है, रूक्षगरम है, कफनाशक और हलका है ॥ ६३ ॥ तथा नाली या नाडीका शाक वातल है, पित्तनाशक है, मधुर है तथा चांगेरीशाक ग्रहणी और अर्शविकारनाशक है, अम्लतायुक्त है, वायु और कफमें हित है, गरम है, कसेला मधुर है और अग्निदीपन है ॥ ६४ ॥

लोणिकाजातुकपर्णिकापत्तूरजीवकसुवर्चलाकुरुवककाठिंजरकुंतलिकाकुरंटिकाप्रभृतीनि ॥ ६५ ॥ स्वादुपाकरसाः शीताः कफघ्ना नातिपित्तलाः ॥ लवणानुरसा रूक्षाः सक्षारा वातलाः सराः ॥६६॥

लोणिका (नुणखी), जातुक (शुक्रशालपर्णी), पर्णिका (दुद्धी), पत्तूर (शिरवालीका भेद), जीवकके पत्र, सुवर्चला (सूर्यावर्त भेद या डोडी), कुरुवक

(सूत्र ६५) जातुकं शुक्रशालपर्णी । पर्णिका दुग्धिका वनकार्पासीत्यपरे । पत्तूरं शिरवालिकाभेदो महापत्रः । सुवर्चला सूर्यावर्तभेदः डोडी भाषायाम्, कुरुवकः द्रोणपुष्पः कठिजरः कुरहंजन कोलसुआ इति लोके । कुंतलिका सुच्चुसहगा दीर्घफला (नि. स.) (सूत्र ६६) अस्य श्लोकस्य एते उपर्युक्ताः शाकविशेषाः इत्यनुक्तपदैः सहान्वयः। अथवा पूर्वसूत्रे कुरंटिकाप्रभृतयः इति वा पाठः तस्मादुभयोः मिलित्वा सुगमान्वयः शाकशब्दस्य पुनपुंसकलिंगत्वात् ।

(द्रोणपुष्पी या पियावासेका भेद), कठिंजर (कलसुवा), कुंतलिका (चुच्चूके समान-पत्रों और दीर्घफल,) कुरंटिका (कुरंड या पियावासा) इत्यादि ॥ ६५ ॥ ये सब विपाक और रसमें मधुर हैं, शीतल हैं, कफनाशक हैं, अतिपित्तल नहीं हैं, अनुरसम खारे हैं, रूक्ष हैं, खारयुक्त वातल हैं और सर (दस्तावर) हैं ॥ ६६ ॥

स्वादुतिक्ता कुंतलिका सकषाया कुरंटिका ॥ संग्राहि शीतलश्चापि लघु दोषाविरोधि च ॥ राजक्षवकशाकं च शठीशाकं तु तद्विधम् ॥ ६७ ॥ स्वादुपाकरसं शाकं दुर्जरं हरिमन्थजम् ॥ भेदनं मधुरं रूक्षं कलायमतिवातलम् ॥६८॥ स्रंसनं कटुकं पाके लघु वातकफापहम् ॥ शोफघ्नमुष्णवीर्यं च पत्रं पूतिकरंजकम् ॥६९॥

कुंतलिका मधुर तिक्त है और कुरंटिका कसेली है । तथा राजक्षवक (बडी-छिक्नी) का शाक ग्राही है, शीतल है, हलका है, दोषोंका विरोधी नहीं है और इसीप्रकार शठीशाक जानो ॥ ६७ ॥ चनेका शाक रसमें और विपाकमें स्वादु है और दुर्जर है । तथा मटरका शाक भेदन है, मधुर है, रूक्ष है और अतिवातल है ॥ ६८ ॥ और पूतिकरंजके पत्रोंका शाक स्रंसन (मलको खुरचकर निकालने-वाला) है, विपाकमें चरपरा है, हलका है, वायुकफनाशक है, शोथनाशक है और उष्णवीर्य है ॥ ६९ ॥

ताम्बूलपत्रं तीक्ष्णोष्णं कटु पित्तप्रकोपनम् ॥ सुगंधि विशदं तिक्तं स्वर्यं वातकफापहम् ॥ ७० ॥ स्रंसनं कटुकं पाके कषायं वह्निदीपनम् ॥ वक्त्रकंडूमलक्लेददौर्गंध्यादिविशोधनम् ॥ ७१ ॥

इति पत्रशाकवर्गः ।

तांबूलपत्रका शाक या तांबूलपत्र तीक्ष्णगरम है, चरपरा है, पित्तको प्रकोप करता है, सुगंधित है, विशद है, तिक्त है, स्वरकर्ता (आवाजखोलता) है, वायु और कफनाशक है ॥ ७० ॥ स्रंसन है, विपाकमें कटुक है, कसेला है, अग्निको दीपन करता है, मुहकी खाज, मल तथा खाज और दुर्गंधिता आदिको शुद्धकरता है (यही कच्ची हरी सुपारीके शाकके गुण हैं) ॥ ७१ ॥

इति पत्रशाकवर्गः ।

अथ पुष्पवर्गः ।

कोविदारशणशाल्मलीपुष्पाणि मधुराणि मधुरविपाकानि रक्तपित्तहराणि च । वृषागस्त्ययोः पुष्पाणि तिक्तानि कटुविपाका-

नि क्षयकासापहानि । मधुशिग्रुकरीरकुसुमानि कटुविपाकानि वातहराणि सृष्टमूत्रपुरीषाणि च ॥ १ ॥

कोविदार (कचनाल) के फूल, शणके फूल, शाल्मली (सिंभल) के फूल ये तीनों (सामान्यतासे) मधुर हैं और विपाकमेंभी मधुर हैं तथा रक्तपित्तनाशक हैं । और वृष (बाँसे) और अगस्त्यके फूल रसमें तिक्त (कडवे) हैं और विपाकमें कटुक (चरपरे) हैं, क्षय और खांसीको दूर करतेहैं । मधुशिग्रु (रक्त.सोहजना) और कैरके फूल (बाडिये) विपाकमें कटुक है, वायुनाशक हैं तथा मलमूत्रको प्रवृत्त करतेहैं ॥ १ ॥

आगस्त्यं नातिशीतोष्णं नक्तांधानां प्रशस्यते ॥ रक्तवृक्षस्य निंबस्य मुष्कककार्कासनस्य च ॥ २ ॥ कफपित्तहरं पुष्पं कुष्ठघ्नं कुटजस्य च ॥ सतिक्तं मधुरं शीतं पद्मं पित्तकफापहम् ॥ ३ ॥ मधुरं पिच्छलं स्निग्धं कुमुदं ह्लादि शीतलम् ॥ तस्मादल्पांतरगुणे विद्यात्कुवलयोत्पले ॥ ४ ॥

अगस्त्यका फूल न तो अति शीतल है, न उष्ण है और रतौंधावालोंको श्रेष्ठ है और रक्तवृक्ष (कौसुंभ) और निंब, मुष्कक (मोष), अर्क (आक), असन (विजैसार) इनके फूल ॥ २ ॥ कफपित्तहर्ता और कुष्ठनाशक हैं । तथा कुटज (कूण) के फूल कडवासंयुक्त, मधुर और शीतल हैं । तथा कमलके पुष्प पित्तकफनाशक हैं ॥ ३ ॥ कुमुद (कमोदनी नीलोफर) या पाडर मधुर है, पिच्छल है, स्निग्ध है और आह्लाददायक तथा शीतल है और इससे अल्पगुणभेदवाले कुवलय (कुमुदभेद) और उत्पल (कमलभेद) जानों ॥ ४ ॥

सिंदुवारं विजानीयाद्धितं पित्तविनाशनम् ॥ मालतीमल्लिके तिक्ते सौरभ्यात्पित्तनाशने ॥ ५ ॥ सुगंधि विशदं हृद्यं वाकुलं पाटलानि च ॥ श्लेष्मपित्तविषघ्नं तु नागं तद्वच्च कुंकुमम् ॥ ६ ॥ चम्पकं रक्तपित्तघ्नं शीतोष्णं कफनाशनम् ॥ किंशुकं कफपित्तघ्नं तद्वदेव कुरंटकम् ॥ ७ ॥

सिंदुवार (सिंभालू) के फूल रक्तपित्तके नाशकरनेमें हित जानने चाहिये तथा मालती (पीलीचँबेली) और मल्लिका (मोगरा) ये रसमें तिक्त हैं और अपनी सुगंधसे पित्तको नाश करते हैं ॥ ५ ॥ बाकुल (मौलसिरीका फूल) सुगंधित है, विशद (साफ) है, हृदयको हित है तथा पाटलाका पुष्पभी ऐसेही जानो । तथा

(सूत्र ५) सिंदुवारं निर्गुंडीपुष्पम् । (सूत्र ६) नागं नागकेशरम् । (सूत्र ७) कुरंटकं सहचरपुष्पं पियावासा इति लोके ।

कफ पित्त और विषका नाशक नागकेशरका पुष्प है। और इसीके अनुसार हरिकेशरको जानो (सूखीकेशर वायुकफनाशक, पित्तकारक है) ॥ ६ ॥ चंपाका फूल रक्त पित्तनाशकहै और शीतोष्ण (मोतदिल) है, कफनाशक हैतथा केसू (ढाक) के फूल कफपित्तनाशकहैं और इन्हींके समान कुरंट (पियावाँसे पतिपुष्प) के फूल जानो॥७॥

मधुशिग्रुकरीराणि कटुश्लेष्महराणि च ॥
यथावृक्षं विजानीयात्पुष्पं वृक्षोचितं तथा ॥ ८ ॥

मधुशिग्रु (लालसोहजने) के फूल और कैरके फूल कटुक (चरपरे) हैं तथा कफनाशक हैं। और यह समझो कि जैसा वृक्षका गुण होता है उसके पुष्पभी सामान्यतासे वैसेही होते हैं ॥ ८ ॥

क्षवककुलेचरवंशकरीरप्रभृतीनि कफहराणि सृष्टमूत्रपुरीषाणि ॥९॥ क्षवकं कृमिलं तेषु स्वादुपाकं सपिच्छलम् ॥ विस्पंदि वातलं नातिपित्तश्लेष्मकरं च तत् ॥ १० ॥ वेणोः करीराः कफला मधुरा रसपाकयोः ॥ विदाहिनो वातहराः सकषायाः विरूक्षणाः ॥११॥

क्षवक (चक्रक), कुलेचर (बबुखंडक), वंशकरीर (बांसकी कोंपल या कली) इत्यादि कफहर्ता हैं, मलमूत्रको प्रवृत्त करते हैं ॥ ९ ॥ विशेष करके क्षवक (चक्रक) कृमिकारक है, विपाकमें मधुर है, पिच्छलतायुक्त है, विस्यंदि (कफस्रावण) हैं, वातल है, अत्यन्त पित्तकफकारक भी नहीं है ॥ १०॥ बांसकी गोभ या कली कफकारक है, रसमें और विपाकमें मधुर है,विदाही है,वायुनाशक है,कषायतायुक्त है और रूक्षता करनेवाली है (डल्लनाचार्य इन्हें उद्भिद लिखता है)॥११॥

उद्भिदानि पलालेक्षुकरीषवेणुक्षितिजानि ॥ १२ ॥ तत्रपलालजातं मधुरं मधुरविपाकं रूक्षं दोषप्रशमनं च ॥ १३ ॥ इक्षुजं मधुरं कषायानुरसं कटुकं शीतलं च ॥ १४ ॥ तद्वदेवोष्णं कारीषं कषायं वातकोपनं च ॥ १५ ॥ वेणुजातं कषायं वातकोपनं च ॥ १६ ॥ भूमिजं गुरु नातिवातलं भूमितश्चास्यानुरसः ॥ १७ ॥

उद्भिद अर्थात् (छत्राकादि) पलाल (भूसाआदि), इक्षुकी जूठन, करीष (गोमयादि), वेणु (बांस, लकडी आदि) और पृथ्वी इनमें उत्पन्न होते हैं ॥ ॥ १२ ॥ उनमेंसे पलाल (भूसे) आदिके पैदाहुए उद्भिदशाक मधुरविपाकी, रूक्ष

(सूत्र ८) 'मधुशिग्रुकरीराणि' इत्यत्र पुनरुक्तिरार्षा । केचित्तु पूर्वपाठं न मन्यते इति (नि. सं.) वृक्षोचितं वृक्षानुसारेणेत्यर्थः ।

और दोषोंको शांत करते हैं ॥ १३ ॥ ईखके उद्भिद मधुर हैं, कषायानुरस हैं, कटुक और शीतल होते हैं ॥ १४ ॥ करीष (गोमयादि) के उद्भिद गरम और रसमें कसैले तथा वायुकोपकारक होते हैं ॥ १५॥ बांस आदिके उद्भिद कसैले और वातकुपित करनेवाले होते हैं ॥ १६ ॥ और साफ पृथ्वीके उद्भिद भारी होते हैं, अतिवातल नहीं होते और भूमिके अनुकूल उनका अनुरस होता है ॥ १७ ॥

पिण्याकतिलकल्कस्थूणिकाशुष्कशाकानि सर्वदोषप्रकोपणानि ॥ १८ ॥ विष्टंभिनः स्मृताः सर्वे वटका वातकोपनाः ॥ सिंडाकी वातला सांद्रा रुचिष्यानलदीपनी ॥ १९ ॥ विड्भेदि गुरु रूक्षं च प्रायो विष्टंभि दुर्जरम् ॥ सकषायं च सर्वं हि स्वादुशाकमुदाहृतम् ॥ २० ॥ पुष्पं पत्रं फलं नालं कंदाश्च गुरवः क्रमात् ॥२१॥ कर्कशं परिजीर्णं च कृमिजुष्टमदेशजम् ॥ वर्जयेत्सर्वशाकं तद्यदकालविरोहि च ॥ २२ ॥

इति पुष्पवर्गः ।

पिण्याक (खल), तिलका कल्क, स्थूणिका बडी, सूखेशाक ये सब सामान्यतासे सब दोषोंके कोप करनेवाले हैं ॥ १८ ॥ और सब प्रकारके वटक (मुगोडी, उडदी आदि) विष्टंभि हैं तथा वायुको कुपित करते हैं और सिंडाकी (मूली, आलु आदिकी फुलौरी या पकोडी) वातल हैं, सांद्र हों तो रुचिकारिणी हैं और अग्निको दीपन करती हैं ॥ १९ ॥ सब शाक विष्ठाको भेदन करनेवाले, भारी और रूक्ष होते हैं । और कोई कोई मधुरशाक विष्टंभि और दुर्जरभी होते हैं ॥ ॥ २० ॥ पुष्पशाक, पत्रशाक, फलशाक और नालीशाक तथा कंदशाक ये क्रमसे एकसे एक भारी (गरिष्ठ) होते हैं ॥ २१ ॥ करडे अत्यन्त पककर पीले पडगये हों, जिनमें कृमि हों, जो अपने उत्पत्तिके देशसे अन्यदेशोंमें पैदाहुए हों या जो बेसमयमें पैदाहुए हों ऐसे सब शाक खाने योग्य नहीं त्यागने योग्य होते हैं (और कई "सर्वशाक" की जगह "पत्रशाक" ऐसाही मानते हैं और ऐसा अर्थ करते- हैं कि, ऊपरके दोषोंसे दूषित पत्रशाक वर्जित हैं परंतु ऐसा ठीक नहीं क्योंकि उक्त- दोषदूषित तो सभी शाक वर्जित हैं) ॥ २२ ॥

इति पुष्पवर्गः ।

(सूत्र १८) पिण्याकतिलकल्कस्थूणिका इत्यत्र पिण्याकीतिलपत्रस्थूणिका इति वा पाठांतरमाहुः । केचित् तत्र पिण्याकीशाकं कच्छविषये प्रायशः । तिलपत्रं तिलविटपपत्रम् स्थूणिका अरुणशुष्कशाकानि स्थूणिकारूपाणि शुष्कशाकानि इति वार्थः ।

अथ कंदवर्गः ।

विदारीकंदशतावरीबिसमृणालशृंगाटककशेरुकपिंडालुकमध्वालु-
कहस्त्यालुककाष्ठालुकशंखालुकरक्तालुकेंदीवरोत्पलकंदप्रभृतीनि॥
॥ १ ॥ रक्तपित्तहराण्याहुः शीतानि मधुराणि च ॥ गुरूणि बहु-
शुक्राणि स्तन्यवृद्धिकराणि च ॥ २ ॥

विदारीकंद, शतावरी, बिस (पद्ममूल), मृणाल (कमल जडमेंसे और नालीसी फूटती है), शृंगाटक (सिंघाडे), कसेरु, पिंडालू (मोटा अरवीके आकार होता है), मध्वालु (मधुरआलु अर्थात् आलू), हस्त्यालुक (हस्त्यालु बडा कचालूसा होता है), काष्ठालुक (कचालु), शंखालुक (संखालु), रक्तालुक (रतालू), इंदीवर (नीलाकमल) और उत्पल (रक्तोत्पल) इनकी जड इत्यादि ॥ १ ॥ ये कंदशाक सामान्यतासे रक्तपित्तहर्ता हैं, शीतल हैं, मधुर हैं, भारी (गरिष्ठ) हैं, बहुतवीर्य उत्पन्न करनेवाले हैं और स्त्रियोंके दूधको बढाते हैं ॥ २ ॥

परिशिष्ट ।

यद्यपि यहां पिंडालुकादि कई आलूके भेदके शाक कहे हैं इनमेंसे कई तो मध्वालुको आलू बताते हैं, कई हस्त्यालुकको और कई शंखालुकको परन्तु भावप्रकाशमें केवल आलुकनामसे यों लिखा है कि "आरूकमव्यालुकं तत् कथितं वीरसेनकम्" अर्थात् जो आरूकनामककंद आलुकसंज्ञक है उसे 'वीरसेन' कहते हैं—और अरईको आलुकी लिखा है जैसे "रक्तालुभेदे या दीर्घा तन्वी च प्रथितालुकी" इति इसके गुण यों लिखे हैं कि "आलुकी बलकृत्स्निग्धा गुर्वी हृत्कफनाशिनी" अर्थात् आलुकी (अरई) बलकारिणी, स्निग्ध और भारी (गरिष्ठ) है और हृदयका कफ नष्ट करती है ।

मधुरो बृंहणो वृष्यः शीतः स्वर्योऽतिमूत्रलः ॥ विदारिकंदो ब-
ल्यस्तु पित्तवातहरस्तु सः ॥ ३ ॥ वातपित्तहरी वृष्या स्वादु-
तिक्ता शतावरी ॥ महती चैव हृद्या च मेधाग्निबलवर्द्धिनी ॥४॥
ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी वृष्या शीता रसायनी ॥ कफपित्तहरास्ति-
क्तास्तस्या एवांकुराः स्मृताः ॥ ५ ॥ अविदाहि बिसं प्रोक्तं
रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ विष्टंभि दुर्जरं रूक्षं विरसं मारुतापहम् ॥ ६ ॥

इनमेंसे विदारीकंद मधुर है, बृंहण (शरीरपुष्टिकर्ता) है, वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है, शीतल है, स्वरको ठीक करता है, अतिमूत्रल है, बलकारक है, पित्त और वायुनाशक है ॥ ३ ॥ शतावरी वायुपित्तनाशक है, वृष्या (वीर्यवर्द्धनी) है, मधुर तिक्त है । और बडी शतावरी हृदयको हित है, बुद्धि, अग्नि और बल बढानेवाली

है । और ग्रहणी, बवासीरके विकारकी नाशनी, वृष्य और शीतल है तथा रसायन है और उसके अंकुर कफपित्तहर्ता हैं और तिक्त हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ बिस (पद्म-मूल) दाह पैदा नहीं होनेदेता, रक्तपित्तको प्रसन्नकरता है, विष्टंभी है, रूक्ष है, विरस है और वायुनाशक है ॥ ६ ॥

गुरू विष्टंभिशीतौ च शृंगाटककसेरुकौ ॥ पिंडालुकं कफकरं गुरु वातप्रकोपणम् ॥७॥ सुरेंद्रकंदः श्लेष्मघ्नो विपाके कटुपित्तकृत् ॥ वेणोः करीरा गुरवः कफमारुतकोपनाः ॥ ८ ॥

शृंगाटक (सिंघाडे) और कसेरु ये दोनों गरिष्ठ हैं, विष्टंभि हैं, शीतल हैं तथा पिंडालू कफकारक है, भारी है, वायुकोपकारक है ॥ ७ ॥ सुरेंद्रकंद (रक्तकंद) कफनाशक है और विपाकमें कटुक है, पित्तकारक है तथा बांसकी जडके अंकुर भारी हैं कफ और वायुको कुपित करते हैं ॥ ८ ॥

स्थूलसूरणमाणकप्रभृतयः कंदा ईषत्कषायाः कटुका रूक्षा विष्टंभिनो गुरवः कफवातलाः पित्तहराश्च ॥ ९ ॥

मोटाकंद (ग्रामकन्द), सूरण (जमीकंद), माणककंदको आदि लेकर जो कंद हैं वे कुछ २ कसेले हैं, कटुक हैं, रूक्ष हैं, विष्टंभी हैं, गरिष्ठ हैं, कफवायुकारक हैं और पित्तके हरनेवाले हैं ॥ ९ ॥

माणकं स्वादु शीतं च गुरु चापि प्रकीर्त्तितम् ॥ स्थूलकंदस्तु नात्युष्णः सूरणो गुदकीलहा ॥ १० ॥ कुमुदोत्पलपद्मानां कंदा मारुतकोपनाः ॥ कषायाः पित्तशमना विपाके मधुरा हिमाः ॥ ॥ ११ ॥ वराहकंदः श्लेष्मघ्नः कटुको रसपाकतः ॥ मेहकुष्ठकृमिहरो बल्यो वृष्यो रसायनः ॥ १२ ॥

माणककंद मधुर है, शीतल है, गरिष्ठ है । तथा स्थूलकंद अतिगरम नहीं है और सूरण (जमीकंद) बवासीरनाशक है ॥१०॥ कुमुद, उत्पल और पद्म (ये सब कमलके भेद हैं) इनके कंद वायुको कुपित करते हैं, कसेले हैं, पित्त शांत करते हैं, विपाकमें मधुर हैं, और शीतल हैं ॥ ११ ॥ वाराहीकंद कफहर्ता है, रसमें और विपाकमें कटु (चरपरा) है, प्रमेह, कुष्ठ और कृमि इनको हरनेवाला है, बलदायक है, वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है और रसायन है ॥१२॥

तालनालिकेरखर्जूरप्रभृतीनां मस्तकमज्जानः ॥१३॥ स्वादुपाकरसानाहुः रक्तपित्तहरांस्तथा ॥ शुक्रलाननिलघ्नांश्च कफवृद्धिकरानपि ॥ १४ ॥

(सूत्र ९) स्थूलकंदो ग्रामकंदः ।

ताल (ताड), नारियल और खजूर इत्यादि वृक्षोंके सिरेकी गिरी (केभी प्रसंगसे गुण कहते हैं) ॥१३॥ ये रस विपाकमें स्वादु (मधुर) हैं, रक्तपित्तहर्ता हैं, वीर्यकारक हैं, वायुनाशक हैं तथा कफकी वृद्धिकरनेवालेभी हैं ॥१४॥

बालं ह्यनार्तवं जीर्णं व्याधितं कृमिभक्षितम् ॥

कंदं विवर्जयेत्सर्वं यो वा सम्यक् न रोहति ॥ १५ ॥

इति कंदवर्गः ।

बाल (कच्चा) बेऋतुका जिसमें झुरी पडगई हो, व्याधित हो, गला सडा हो, कीडोंका खायाहुआ हो और जो ठीक नहीं उगें ऐसे कंद त्यागनेयोग्य होते हैं खाने योग्य नहीं होते ॥१५॥

(परिशिष्ट भावप्रकाशोक्त)

प्रसंगवशसे अन्यकंदोंके गुणागुण ग्रंथांतरसे कहते हैं-

गाजर ।

गाजरं गृंजनं प्रोक्तं तथा नागरवर्णकम् ॥ गाजरं मधुरं तीक्ष्णं तिक्तोष्णं दीपनं लघु ॥ संग्राहि रक्तपित्तार्शोग्रहणीकफवातजित् ॥ १ ॥

गाजरको गृंजनभी कहते हैं तथा नागरवर्णकभी कहते हैं । गाजर मधुर है, तीक्ष्ण है, तिक्त गरम है, दीपन है, हलकी है, ग्राही है, तथा रक्तपित्त, बवासीर, संग्रहणी और कफवायुके रोगोंको जीतनेवाली है ॥१॥

केलाकंद ।

शीतलः कदलीकंदो बल्यः केश्योऽम्लपित्तजित् ॥

वह्निकृद्दाहहारी च मधुरो रुचिकारकः ॥ २ ॥

केलाकंद शीतल है, बलदायक है, केशोंको हित है, अम्लपित्तको जीतता है, अग्निकारक है, दाहका हरनेवाला है, मधुर है और रुचिकारक है ॥ २ ॥

इति कंदवर्गः ।

अथ लवणवर्गः ।

सैंधवसामुद्रबिडसौवर्चलरोमकोद्भिदप्रभृतीनि लवणानि यथोत्तरमुष्णानि वातहराणि कफपित्तकराणि यथापूर्वं स्निग्धानि स्वादूनि सृष्टसूत्रपुरीषाणि चेति ॥ १ ॥

(सूत्र १) "सैंधवम्" सिंधुदेशोद्भवं प्रसिद्धम् । "सामुद्रम्" समुद्रभवम् । "बिडम्" कृत्रिमं स्वनाम्ना ख्यातं तच्च प्रसारणीकल्कभक्तलवणसंयोगादग्निदाहेन निर्वृत्तम्।"सौवर्चलम्" तदेव निर्गंधं काललवणमित्युच्यते । "रोमकम्" शाकम्भरीदेशोत्थं रुमासरसंभवमित्यन्ये । भूमिमुद्भिद्योत्पन्नस्य क्षारोदकस्य सूर्यरश्मिभिर्वह्निना वा क्वथनात् यल्लवणमुत्पद्यते तत् "औद्भिदम्" (नि. सं.)

सैंधव (सेंधानमक), समुद्रका नमक, बिड़लवण, सौवर्चल (सोंचरनमक) रोमक (सांभर), उद्भिद (रेहीका नमक) इत्यादि कईप्रकारके लवण होते हैं । ये लवण यथोत्तर (उत्तरोत्तर) गरम हैं, वायुनाशक है, कफपित्तकर्ता हैं, यथापूर्व (पूर्वपूर्वके पहले २ से) स्निग्ध हैं, स्वादु, कुछ मधुर स्वादु हैं, मलमूत्रको प्रवृत्तकरनेवाले हैं ॥ १ ॥

चक्षुष्यं सैंधवं हृद्यं रुच्यं लघ्वग्निदीपनम् ॥ स्निग्धं समधुरं वृष्यं शीतं दोषघ्नमुत्तमम् ॥ २ ॥ सामुद्रं मधुरं पाके नात्युष्णमविदाहि च ॥ भेदनं स्निग्धमीषच्च शूलघ्नं नातिपित्तलम् ॥ ३॥ सक्षारं दीपनं रूक्षं शूलहृद्रोगनाशनम् ॥ रोचनं तीक्ष्णमुष्णं च विडं वातानुलोमनम् ॥ ४ ॥

सैंधानमक नेत्रोंको हित है, हृदयको प्रिय है, रुचिकारक है, हलका है, अग्निदीपनकरता है, स्निग्ध है, कुछ मधुरतायुक्त है (औरोंसे कुछ मधुर है) वीर्यवर्द्धक है, शीतल है, दोषोंको नाशकरताहै तथा उत्तम है ॥ २ ॥ समुद्रका नमक विपाकमें मीठा है, अतिगरम नहीं है, दाह पैदा नहीं करता, भेदन है, कुछ २ स्निग्ध है, शूलनाशक और पित्तकारक है ॥ ३ ॥ रोमक क्षारयुक्त है, दीपन है, रूक्ष है, शूल और हृद्रोगनाशक है । तथा बिड़लवण रोचन है, तीक्ष्ण है,- गरम है और वायुको अनुलोमनकरनेवाला है ॥ ४ ॥

लघु सौवर्चलं पाके वीर्योष्णं विशदं कटु ॥ गुल्मशूलविबंधघ्नं हृद्यं सुरभि रोचनम् ॥ ५ ॥ रोमकं तीक्ष्णमत्युष्णं व्यवायि कटुपाकि च ॥ वातघ्नं लघु विस्यंदि सूक्ष्मं विड्भेदि मूत्रलम् ॥ ॥ ६ ॥ लघु तीक्ष्णोष्णमुत्क्लेदि सूक्ष्मं वातानुलोमनम् ॥ सतिक्तं कटु सक्षारं विद्याल्लवणमौद्भिदम् ॥ ७ ॥ कफवातकृमिहरं लेखनं पित्तकोपनम् ॥ दीपनं पाचनं भेदि लवणं गुटिकाह्वयम् ॥ ॥ ८ ॥ ऊषसूतं वालुकेयं शैलसूलाकरोद्भवम् ॥ लवणं कटुकं छेदि विहितं कटु चोच्यते ॥ ९ ॥

सौवर्चल (सौंचर कालानमक) विपाकमें हलका है, वीर्यमें उष्ण है, विशद है, चरपरा है, गुल्मशूल, विबंध इन्हें दूरकरता है, हृदयको हित है, सुगंधित है, रुचि-

(सूत्र ८) गुटिकालवणं गुडिकालवणं वा पाकाभिनिर्वृत्तत्वाद्गुटिकाभूतमेव गुटिकालवणम् । ऊषप्रसूतम् उपरजातम् । वालुकेयमित्यत्र वालुकेलमिति वा पाठांतरम् । वालुकाभवं वालुकेयम् । अथ वा वालुकाभिर्युता इला पृथ्वी तत्र सभव वालुकेलम् (नि. स.) कटुलवणं केचित्तु क्षारलवणमेव वदति । टङ्कनस्तु प्रशस्ततुरगमोत्पत्तिभूमिः तत्रोद्भवं कटु उच्यते कटुलवणमित्यर्थः ।

कारक है ॥५॥ रोमक तीक्ष्ण है, अतिगरम है, व्यवायि (पहले शरीरमें व्याप्त होकर पीछे पचनेवाला) है, कटुपाकी है, वायुनाशक है, हलका है, मुहसे पानी टपकानेवाला है, सूक्ष्म (शरीरके रोमोंमें घुसनेवाला) है, मलका भेद करनेवाला है और मूत्रल है ॥६॥ औद्भिदलवण हलका है, तीक्ष्ण है, गरम है, क्लेदना करनेवाला है, सूक्ष्म है, वायुको अनुलोमन करनेवाला है, तिक्ततायुक्त है, चरपरा खारेपनयुक्त है ॥ ७ ॥ गुटिकाह्वय (गोलीका नमक) कफवायुहर्ता, कृमिहर्ता है, लेखन है, पित्तकोपकारक है, दीपन है, पाचन है, भेदन करनेवाला है ॥ ८॥ ऊषसूत (कल्लरका) नमक तथा वालू (रेती) का नमक पहाडोंकी जडमें खानोंसे निकला नमक ये नमक तथा कटुलवण ये सब छेदी हैं, विहित हैं तथा कटु (चरपरे) हैं ॥ ९ ॥

यवक्षारस्वर्जिकाक्षारपाकिमटंकणक्षाराः॥१०॥गुल्मार्शोग्रहणीदोषशर्कराश्मरिनाशनाः॥क्षारास्तु पाचनाः सर्वे रक्तपित्तकराः स्मृताः११

जवाखार, सज्जीखार, पाकिम (शोरा), टंकण (सुहागा) ये भी खारही हैं ॥१०॥ ये सब खार गुल्म, बवासीर, संग्रहणीदोष, शर्करा (प्रमेहका भेदहै), अश्मरी (पथरी) इनको नाश करते हैं और पाचन हैं तथा रक्तपित्त करनेवाले हैं ॥११॥

ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ ॥ शुक्रश्लेष्मविबंधार्शोगुल्मप्लीहविनाशनौ ॥ १२ ॥ उष्णोऽनिलघ्नः प्रक्लेदी ऊषक्षारो बलापहः ॥ मेदोघ्नः पाकिमः क्षारो मूत्रवस्तिविशोधनः ॥ ॥ १३ ॥ विरूक्षणोऽनिलकरः श्लेष्मघ्नः पित्तदूषणः ॥ अग्निदीप्तिकरस्तीक्ष्णष्टंकणः क्षार उच्यते ॥ १४ ॥ इति लवणवर्गः ॥

जवाखार और सज्जीखार ये दोनों अग्निके तुल्य (गरम) हैं, वीर्य, कफ, विबंध और बवासीर, गुल्म तथा प्लीहा इनको नाश करतेहैं ॥ १२ ॥ ऊषका(कल्लरका) खार गरम है, वायुनाशक है, क्लेदना करता है, बलनाशक है तथा पाकिम (शोरा) क्षार मेदनाशक है, मूत्रस्थान वस्तिको शोधनकरनेवाला (मूत्रल) है ॥१३ ॥टंकण क्षार (सुहागा) रूक्षण करनेवाला है, वातकर्त्ता है, कफनाशक है, पित्तको दूपितकरता है, अग्निको दीपनकर्ता है, तीक्ष्णक्षार है ॥ १४ ॥

परिशिष्ट ।

नवसार और फटकडीको ग्रथांतरसे कहतेहैं:-

श्लोक-औष्ट्रं वा माहिषं गव्यं पुरीषं भस्मतां गतम् ॥ क्षारपाकविधानेन नृसारं सिद्धमुच्यते ॥१॥(निघंटुः) (वाग्भटीयरसरत्नसमुच्चये तु) करीरपीलुकाष्ठेषु पच्यमानेषु चोद्भवः ॥ क्षारोसौ नवसारः स्याच्चुल्लिकालवणाभिधः ॥२॥ (तथा चोक्तं तत्रैव) इष्टिकादहने जातं पांडुरं लवणं च यत्॥तदुक्तं नवसाराख्यं चुल्लिकालवणं च तत्॥३॥

अर्थ-(एक निघंटुमें लिखाहै कि) ऊँट या महिष या गौके गोमयको जलाकर क्षारपाकके विधानसे जो बनायाजाय उसे नृसार (नौसादर) कहते हैं॥ १॥ (और वाग्भटोक्तरसरत्नसमुच्चयग्रंथमें यों लिखा है कि) कैर तथा पीलुके काष्ठको पकाकर (जलाकर) जो उससे बनाया जाय उसे नवसार (नौसादर) कहते हैं। तथा चुल्लिकलवणभी कहते हैं॥ २॥(और वहांही यूंभी लिखा है कि) ईंटें पकानेका जो पजावा होता है उसके ऊपर जो पीलापीला खंगरसा खार आजाता है वह (साफ कियाहुआ) नवसार(नौसादर) कहलाता है और उसेही चुल्लिकालवण कहते हैं॥ ३॥

श्लोक-रसेंद्रजारणं लोहद्रावणं जठराग्निकृत्॥ गुल्मप्लीहास्यशोषघ्नं भुक्तमांसादिजारणम्॥ ४॥

अर्थ-यह नौसादर रसेंद्र (पारे) को जारण करता है, लोह (सबधातुवों) को पिघला देता है और जठराग्निको करता है, गुल्म, प्लीहा, मुहका सूखना इनको दूर करता है और खायाहुआ मांसादिक जारण करता (पचादेता)है॥ ४॥

श्लोक-स्फटी च स्फटिका प्रोक्ता श्वेता शुभ्रा च रंगदा॥ स्फटिका तु कषायोष्णा वातपित्तकफव्रणान्॥ निहंति चित्रवीसर्पान् योनिसंकोचकारिणी॥ ५॥

अर्थ-स्फटी, स्फटिका तथा श्वेता, शुभ्रा और रंगदा ये सब फटकडीके नाम हैं। यह फटकडी कसेली है, गरम है, वायु, पित्त, कफ, व्रणको नाश करती है, चित्र (कुष्ठ) और विसर्पको नष्ट करती है और स्त्रियोंकी योनिको संकुचित करती है (और "योनिसंकोचकारिणी" की जगह मांससंकोचकारिणी" ऐसा पाठांतर मानते हैं सो भी ठीक है क्योंकि दन्तमूलके मांसको भी संकुचित करके दांतोंको दृढ करती है)॥५॥

सुवर्णादि धातुओंके गुण।

सुवर्णं स्वादु हृद्यं च बृंहणीयं रसायनम्॥ दोषत्रयघ्नं शीतं च चक्षुष्यं विषसूदनम्॥ १५॥ रूप्यमम्लं सरं शीतं सस्नेहं पित्तवातनुत्॥ ताम्रं कषायं मधुरं लेखनं शीतलं सरम्॥ १६॥ तिक्तं कांस्यं लेखनं च चक्षुष्यं कफवातजित्॥वातकृच्छीतलं लोहं तृष्णापित्तकफप्रणुत्॥ कटुकिम्पिचे लेखने त्रपुसीसे विलेखने॥ १७॥ मुक्ताविद्रुमवज्रेंद्रवैडूर्यस्फटिकादयः॥ चक्षुष्या मणयः शीता लेखना विषसूदनाः॥ पवित्रा धारणीयाश्च पाप्मालक्ष्मीमलापहाः॥१८॥

(वक्तव्य सूत्र १८) इस समयके बहुवा वैद्योंमे धातुओंकी भस्म, रसादिककी बडी प्रवृत्ति है हमारी संमतिमे (विना युक्तिके) धातुओंकी अयोग्यभस्म कच्चे पक्के कुवैद्यके हाथकी कभी खानी नहीं चाहिये क्योंकि अशुद्ध और अपक्व (अधकचडी) धातु लाभकी जगह तीक्ष्ण हानिकी भयदायनी है, हां सुवर्ण और चांदीके वरक कच्चे हानिकारक प्रायः नहीं है देखो इसीका २८ वॉ अध्याय कि सुवर्णादि (कच्चे सोने चांदी आदि) के शल्यभी शरीरमे पित्ततेजसे पककर धातुओंमे मिलजाते हैं इस युक्तिसे कच्ची धात्वादि-

सुवर्ण रसमें मधुर है, हृदयको हित है, बृंहण(शरीरपुष्टकर्ता) है, रसायन (जराव्याधिनाशन) तीनों दोषोंको शांत करनेवाला है, शीतल है, नेत्रोंको हित है, विषका चूसने (नष्टकरने) वाला है ॥ १५ ॥ रूप्य (चांदी) रसमें अम्ल है, सर है, शीतल है, स्निग्धतायुक्त है, पित्त और वायुको नाशकरनेवाली है ! तथा ताम्र (तांबा) रसमें कसेला मधुर है, लेखन (खुरचनेवाला) है, शीतल है, सर है ॥१६॥ कांस्य (कांसी) रसमें तिक्त है, लेखन है (और 'तिक्तं कांस्यं लेखनं च' इसकी जगह 'यशदं लेखनं तिक्तं' ऐसा पाठ मानते हैं कि यशद (जस्त) रसमें तिक्त है, लेखन है) नेत्रोंको हित है, कफवायुनाशक है । तथा लोह वायुकारक है, शीतल है, तृषा, पित्त और कफनाशक है । और त्रपु (राँगकली) तथा सीसा ये दोनों धातु रसमें कटु (चरपरे) और खारे हैं, कृमिनाशक हैं और लेखन हैं ॥ १७ ॥ मोती, मूँगा, वज्र (हीरा), इंद्रनील, वैदूर्य (पन्ना), स्फटिक (बिल्लोर) इत्यादि मणि नेत्रोंके लिये हित हैं, शीतल हैं, लेखन हैं, विषको खेंचनेवाली पवित्र हैं, धारण करने योग्य हैं, पाप और दरिद्र तथा मलको दूर करती हैं ॥ १८ ॥

प्रकीर्णिउपदेश ।

धान्येषु मांसेषु फलेषु चैवं शाकेषु चानुक्तमिहाप्रमेयात् ॥
आस्वादतो भूतगुणैश्च मत्वा तदादिशेद्द्रव्यमनल्पबुद्धिः ॥१९॥

धान्योंमें, मांसोंमें, फलोंमें तथा शाकोंमेंसे जो यहां वर्णन नहीं होसके क्योंकि संसारमें वस्तु असंख्य हैं (सब कहांतक लिखीजायँ) इससे विना कहे हुओंको चाखकर पृथिव्यादि तत्त्वोंके गुणोंके अनुसार समझकर गुणागुण जानलेने चाहिये १९॥

षष्टिकायवगोधूमा लोहिता ये च शालयः ॥ मुद्गाढकीमसूराश्च
धान्येषु प्रवरा मताः॥२०॥ लावतित्तिरिसारंगकुरंगैणकपिंजलाः ॥
मयूरवर्मिकूर्माश्च श्रेष्ठा मांसगणेष्विह ॥२१॥ दाडिमामलकं द्राक्षा
खर्जूरं सपरूषकम् ॥ राजादनं मातुलुंगं फलगवे प्रशस्यते ॥ २२ ॥

धान्योंमें षष्टिक (चावल) तथा रक्तशाली चावल और जौ, गेहूँ, मूँग, अरहर तथा मसूर ये श्रेष्ठ हैं ॥ २० ॥ और मांसमें लवा, तित्तिरि, सारंगपक्षी, कुरंग, एण (कालाहिरण), कपिंजल, मोर, वर्मि (मछलीभेद) तथा कच्छप ये श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ फलोंमें अनार, आंवले, दाख (अंगूर), पिंडखजूर, फालसे, खिरनी, मातुलुंग (बिजौरा) ये श्रेष्ठ हैं ॥ २२ ॥

—हानिकारक उतनी नहीं जितनी अयोग्य भस्म हानि करती है और जो ध्यान आदिकी भस्म तथा रसादिकी यथोक्तविधि देखनी हो तो वाग्भट्टीय—रसरत्नसमुच्चयमे सविस्तारपूर्वक लिखी है।यदि कोई पूर्ण वैद्य प्रामाणिकयुक्तीसे धात्वादिकी भस्म तथा रसादिक वरतावमे लावे तो कुछ चिंता नहीं ।

सतीनो वास्तुकश्चुंच्चु चिल्ली मूलकपोतिका ॥ मण्डूकपर्णी जीवंती शाकवर्गे प्रशस्यते ॥ २३ ॥ गव्यं क्षीरं घृतं श्रेष्ठं सैंधवं लवणेषु च ॥ धात्री दाडिममम्लेषु पिप्पली नागरं कटौ ॥२४॥

शाकोंमें सतीन (छोटी मटरका शाक), बथुवा, चुचूका शाक, चिल्लीशाक, मूली तथा पोतिका, पोदीना और (कई पोई कहते हैं) तथा ब्राह्मी और जीवंती ये श्रेष्ठ और प्रधान हैं ॥ २३ ॥ घृत और दुग्धोंमें गौका घृत दुग्ध श्रेष्ठ है, लवणोंमें सैंधव लवण प्रधान (श्रेष्ठ) है, अम्लफलोंमें आंवले और अनार श्रेष्ठ हैं।तथा कटु (चरपरे पदार्थों) में पीपल और सोंठ श्रेष्ठ हैं ॥ २४ ॥

तिक्ते पटोलवार्ताके मधुरे घृतमुच्यते॥ क्षौद्रं पूगफलं श्रेष्ठं कषाये सपरूषकम् ॥२५॥ शर्करेक्षुविकारेषु पाने मध्वासवौ तथा ॥ परिसंवत्सरे धान्यं मांसं वयसि मध्यमे ॥ २६ ॥ अपर्य्युषितमन्नं तु संस्कृतं मात्रया शुभम् ॥ फलं पर्य्यागतं शाकमशुष्कं तरुणं नवम्॥२७॥

तिक्त पदार्थों (शाकों) में पटोल (परवल) और बैंगन श्रेष्ठ है। मधुर पदार्थोंमें घृत तथा शहत श्रेष्ठ है। और कसेले पदार्थोंमें सुपारी और फालसे श्रेष्ठ हैं॥२५॥ ईखके पदार्थोंमें खांड श्रेष्ठ है। और पान (मदिरा आसवादिक) में मधु (माद्वीकदाखोंकी मदिरा) तथा द्राक्षासव श्रेष्ठ है और एक वर्षका पुराना अन्न श्रेष्ठ है और जवान जीवका मांस श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥ तथा अन्न (भोजन) ताजा जो बुसा बासी न हो वह श्रेष्ठ है और ठीक संस्कारसे संस्कृत (ठीक पका, सिंका, छोंका आदि) हो तथा जिसमें सब विभाग मात्रा (तोल) में ठीक २ हों तथा सुन्दर हो वह भोजन श्रेष्ठ है। और ठीक पकाहुआ फल श्रेष्ठ है। तथा जो सूखा न हो, ताजा हो नवीन हो, ऐसा शाक खाना श्रेष्ठ है ॥२७॥ इति प्रकीर्णोपदेशः ॥

अथ कृतान्नवर्गः ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि कृतान्नगुणविस्तरम् ॥

यहांसे जगाडी कृतान्न (बनेहुए खाद्य पेयपदार्थोंके) गुण विस्तारपूर्वक वर्णन किये जाते हैं।

लाजमंडो विशुद्धानां पथ्यः पाचनदीपनः ॥ वातानुलोमनो हृद्यः पिप्पलीनागरायुतः ॥ १ स्वेदाग्निजननी लघ्वी दीपनी व-

(सूत्र २३) मूलकपोतिका बालमूलमिति डल्लनः। केचित्तु पृथक्तया मन्यते। (सूत्र१) "लाजमंडः" तस्य लक्षणम् "जले चतुर्दशगुणे तडुलानां चतुष्पलम् ॥ विपचेत्स्रावयेन्मंडं तद्भक्तमधुरं लघु ॥ [illegible] रुच्यं सुगंधि कफहल्लघु ॥ वातास्थापितमदाग्निविरिक्तानां प्रशस्यते" (इति भावमिश्रः)

स्तिशोधनी ॥ क्षुत्तृट्श्रमग्लानिहरी पेया वातानुलोमनी ॥ २ ॥ विलेपी तर्पणी हृद्या ग्राहिणी बलवर्द्धिनी ॥ पथ्या स्वादुरसालघ्वी दीपनी क्षुत्तृषापहा ॥ ३ ॥

लाजमण्ड (धानकी खीलोंका मांड जो चौदागुने उष्णजलमें खीले पकाकर बना हो) विरेचन कियेहुए मनुष्योंको पथ्य है, पाचन है, दीपन है, वातानुलोमन है, हृदयको हित है यह खीलोंका मांड पीपल और शुंठीसे युक्तकरके उपयोग करना चाहिये ॥ १ ॥ पेया (चौदहगुने जलमें रक्तशालीआदि चावल डालकर खूब पकावे उसको मांडकी भांति छाने नहीं वह जलसहित तंडुलोंका पदार्थ पेया होता है) यह (गरम २) पीयीहुई पसीना लाती है, जठराग्नि पैदा करती है, हलकी है, दीपन है, वस्तिको शोधन करती है, क्षुधा, तृषा, श्रम और ग्लानिको दूर करती है और वायुको अनुलोमन करती है ॥ २ ॥ विलेपी (चारगुणे जलमें तंडुल तथा यवादि (की दलिया) साधन कीहुई गाढी विलेपी कहलाती है) तृप्ति करनेवाली है, हृदयको हित है, संग्राहिणी है, बलबढानेवाली है, पथ्य है, रसमें मधुर है, हलकी है, दीपन है, क्षुधा और तृषाको दूर करती है ॥ ३ ॥

यवागू ।

हृद्या संतर्पणी वृष्या बृंहणी बलवर्द्धनी ॥
शाकमांसफलैर्युक्ता यवाग्वस्ताश्च दुर्जराः ॥ ४ ॥

यवागू (जो छहगुने जलमें साधित तंडुल यवादि धान्योंका द्रवभक्त) हृदयको हित है, तृप्तिकारिणी है, वृष्य है, बृंहण है, बलबढानेवाली है । और जो शाक, मांस तथा फलोंसे युक्तयवागू हैं वे दुर्जर होती हैं ॥ ४ ॥

सिक्थैर्विरहितो मंडः पेया सिक्थसमन्विता ॥
विलेपी बहुसिक्था स्याद्यवागूर्विरलद्रवा ॥ ५ ॥

पके तंडुलादिके घनभागमेंसे ऊपरका द्रवभाग पृथक् (छानकर) निकालाजाय वह मंड (मांड) कहलाता है और जो वह घनभाग छुलकर द्रवभागमें मिलजाय वोह घनभागसहित द्रवपदार्थ हो उसे पेया कहते हैं । तथा जिसमें गाढाभाग अधिक हो वह विलेपी है और जिसमें थोडा द्रवभाग हो और घनभाग बहुत छुलकर मिल नहीं जाय वह यवागू है ॥ ५ ॥

(सूत्र २) "पेया" तल्लक्षणं च "चतुर्दशगुणे नीरे रक्तशाल्यादिभिः कृता ॥ द्रवाधिका स्वल्पसिक्था पेया प्रोक्ता भिषग्वरैः" इति । (सूत्र ३) "विलेपी" तल्लक्षण च "चतुर्गुणाम्बुसंसिद्धा विलेपी घनसिक्थका ॥ पृथग्द्रवेण रहिता ख्याता शिथिलभक्तिका" इति भावमिश्रः । (सूत्र ४) 'अन्नं पञ्चगुणे तोये यवागू षड्गुणे पचेत्' इति । अन्नं भक्तम् ॥

विष्टंभी पायसो बल्यो मेदःकफकरो गुरुः ॥ कफपित्तकरी बल्या कृशरानिलनाशनी ॥६॥ धौतस्तु विमलः शुद्धो मनोज्ञः सुरभिः समः ॥ स्विन्नः सुप्रस्रुतस्तूष्णो विशदस्त्वोदनो लघुः ॥ ७ ॥ अधौतोऽप्रस्रुतोऽस्विन्नः शीतश्चाप्योदनो गुरुः ॥ ८ ॥

पायस (खीर) विष्टंभी है, बलदायक है, मेद और कफकारक है, भारी है। और कृशरा (खिचरी चावल दालकी बनीहुई और कई तिल, तंडुल, माष या मूँगकी खिचडीको कृशरा कहते हैं) यह कफपित्त करनेवाली है, बलकारिणी है और वायुनाशनी है ॥ ६ ॥ भात धोयेहुए चावलोंका शुद्ध, मनोहर, सुगंधित, ठीक पकाहुआ और मांडनिकाला हुआ और गरम २ उज्ज्वल है और हलका है ॥ ७ ॥ और विना धुले चावलोंका तथा जिसका मांड़ नहीं निकालाजाय या ठीक नहीं पका हो तथा ठंढा होगया हो ऐसा भात भारी (गरिष्ठ) होता है ॥८॥

लघुः सुगंधिः कफहा विज्ञेयो भृष्टतंडुलः ॥ स्नेहैर्मांसैः फलैः कंदैर्वैदलाम्लैश्च संयुताः ॥ गुरवो बृंहणा बल्या ये च क्षीरोपसाधिताः ॥ ९ ॥ सुस्विन्नो निस्तुषो भृष्ट ईषत्सूपो लघुर्हितः ॥१०॥

घृतसे भुने तंडुल (भुनवा चावल) हलके हैं, सुगंधित हैं, कफनाशक हैं, (और कई भृष्टतंडुल भुनेहुए चावल चिडवे आदिको कहते हैं) तथा घृतादिसे, मांससे फलोंसे, कंदोंसे, वैदल (माषादि) से, अम्ल पदार्थोंसे युक्त तथा दुग्धादिसे उपसाधित भात (पुलावादि) भारी है, बृंहण है, बलकारक है, तथा खूब उबालाहुआ तुषरहित थोडा पका (खिलवां) भात हलका है (या थोडे भुनवाकर छिलका उतारकर फिर पकायेहुए धान (चावल) हलके हैं) ॥ ९ ॥ १० ॥

स्विन्नं निष्पीडितं शाकं हितं स्यात्स्नेहसंस्कृतम् ॥ अस्विन्न स्नेहरहितमपीडितमतोन्यथा ॥ ११ ॥

शाक खूबपका (गला रँधा) हो, निचोडा या बनायागया हो, घृतादिका संस्कार (छोंक) दियाहुआ हो तो हित है और जो पका रँधा न हो, घृतादिसे संस्कार न किया हो, बनाय निचोडा नहीं गया हो वह शाक हित नहीं है ॥ ११ ॥

मांसं स्वभावतो वृष्यं स्नेहनं बलवर्द्धनम् ॥ स्नेहगोरसधान्याम्लफलाम्लकटुकैः सह ॥ सिद्धं मांसं हितं बल्यं रोचनं बृंहणं गुरु ॥ १२ ॥ तदेव गोरसादानं सुरभिद्रवसंस्कृतम् ॥ विद्यात्पित्त-

कफोद्रेकि बलमांसाग्निवर्द्धनम् ॥ १३ ॥ परिशुष्कं स्थिरं स्निग्धं हर्षणं प्रीणनं गुरु ॥ रोचनं बलमेधाग्निमांसौजःशुक्रवर्द्धनम् ॥१४॥

मांस स्वभावहीसे वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है, स्निग्धताकारक है, बलवर्द्धक है और फिर वह गोरस (दहीआदि), धान्याम्ल (कांजी), फलाम्ल (दाडिमादि), कटु (मरिचादिके संग साधनकियाहुआ) मांस हित है, बलकारक है, रोचन है, बृंहण है और भारी है ॥ १२ ॥ और वही मांस गोरसके डालनेसे सुगंध और द्रव पदार्थोंसे संस्कारकिया हो वह पित्त और कफका उद्रेक करनेवाला, बल, मांस और अग्निवर्द्धक है ॥ १३ ॥ और यदि द्रवसंस्कृत न हो, परिशुष्क (खुश्क) हो तो स्थिर और स्निग्ध है, आनंददायक है, तृप्तिकारक है, भारी है, रुचिकारक है तथा बल, बुद्धि, मांस, ओज और वीर्य बढानेवाला है ॥ १४ ॥

तदेवोल्लुप्तपिष्टत्वादुल्लुप्तमिति पाचकाः॥ परिशुष्कगुणैर्युक्तं वह्नेः पक्वमतो लघु ॥ १५ ॥ तदेव शूलिकाप्रोतमंगारे परिपाचितम् ॥ ज्ञेयं गुरुतरं किंचित्प्रदिग्धं गुरु पाकतः ॥ १६ ॥ उल्लुप्तं भर्जितं पिष्टं प्रतप्तं कंदुपाचितम् ॥ परिशुष्कं प्रदग्धं च शूल्यं यच्चान्यदीदृशम् ॥ १७ ॥ मांसं यत्तैलसिद्धं तु वीर्योष्णं पित्तकृद्गुरु ॥ लघ्वग्निदीपनं हृद्यं रुच्यं दृष्टिप्रसादनम् ॥ अनुष्णवीर्यं पित्तघ्नं मनोज्ञं घृतसाधितम् ॥ १८ ॥

उसी मांसको उल्लुप्त (कूटनेसे) और पिट्ठीसा बनाकर साधन करनेसे पाचकलोग उल्लुप्त (कोफ्ता) कहते हैं। और वह (कोफ्ता) खुश्कमांसके गुणसे युक्त है और जो वह अंगारे (कोयलों) से पका हो तो इससेभी हलका होता है ॥१५॥ और वही कुटा पिसा मांस लोहेकी सींखपर लगाकर कोयलोंकी आंचपर पकायाहुआ (कवाब) अतिभारी होता है और मुलायम सिकाहुआ विपाकमें भारी है ॥ १६ ॥ कुटा, पिसा, भुना तथा भाडमें सिका, खुश्क सिकाहुआ, सींखचेमें लगाहुआ यहभी शूल्य (कवाब) हीका भेद है ॥ १७ ॥ जो मांस तैलमें साधन कियाहुआ होता है वह वीर्यमें गरम है, पित्तकारक है, भारी है और जो घृतमें साधन किया मांस है वह हलका है, अग्निको दीपन करता है, हृदयको हित है, रुचिकारक है, दृष्टिको प्रसन्नकरता है, वीर्यमें अनुष्ण (मातदिल) है, पित्तनाशक है और मनोज्ञ (मनको प्रिय) है ॥ १८ ॥

(सूत्र १३) गोरसादान गोरसस्य आदानं यस्मिन् तत् सुरभिद्रवसंस्कृत हिंगुमरिचादिद्रवपदार्थैः संस्कृतम्। अथवा 'सुरभिद्रव्यसंस्कृतम्' इति वा पाठः। (सूत्र १५) उल्लुप्तपिष्टत्वादिति निरंतरं छेदनातिशयेन बहुशश्छिन्नत्वात् पिष्टमिव उल्लुप्तपिष्टम् उल्लुप्तमिति पाचका वदंति इति शेषः। (नि. सं.)

प्रीणनः प्राणजननः श्वासकासक्षयापहः ॥ वातपित्तश्रमहरो हृद्यो मांसरसः स्मृतः ॥ १९ ॥ स्मृत्योजःस्वरहीनानां ज्वरक्षीणक्षतोरसाम् ॥ भग्नविश्लिष्टसंधीनां कृशानामल्परेतसाम् ॥ २० आप्यायनः संहननः शुक्रौजोबलवर्द्धनः ॥ स दाडिमयुतो वृष्यः संस्कृतो दोषनाशनः ॥ २१ ॥ यन्मांसमुद्धृतरसं न तत्पुष्टिबलावहम् ॥ विष्टंभि दुर्जरं रूक्षं विरसं मारुतापहम् ॥ २२ ॥ दीप्ताग्नीनां सदा पथ्यः खानिष्कस्तु परं गुरुः ॥ २३ ॥

मांसरस (मांसका जल) तृप्तिकारक है, प्राणोंका देनेवाला है, श्वास, खांसी, क्षय इन्हें दूरकरता है, वायुपित्त और श्रमका हरनेवाला है, हृदयको हित है ॥१९॥ स्मृतिकरके, ओजकरके, स्वरकरके जो हीन मनुष्य हैं तथा जो ज्वरसे क्षीण हैं तथा उरःक्षतवाले हैं तथा जिनकी संधि टूटगई हो या स्थानसे डिगगई हो तथा जो कृश (दुबले) हैं, अल्पवीर्य हैं उनको तृप्त और पूर्णकरनेवाला है, (टूटेको) जोडनेवाला है, वीर्य, ओज और बलका बढानेवाला है तथा अनारकी खटाई आदिसे संस्कारकियाहुआ, वृष्य और दोषोंका शांतकरनेवाला है ॥२०॥२१॥ और जिसमांसका रस निकाललिया हो वह पुष्टि और बलकारक नहीं है, विष्टंभी और दुर्जर (देरहजम) है, रूक्ष है विरस है, वायुनाशक है ॥ २२ ॥ तथा खानिष्क (शुष्क-मांसका भेद) दीप्ताग्नि मनुष्योंको सदा पथ्य है और अतिगरिष्ठ है ॥ २३ ॥

मांसं निरस्थि सुस्विन्नं पुनर्दृषदि चूर्णितम् ॥ पिप्पलीशुंठिमरिचगुडसर्पिःसमन्वितम् ॥ २४ ॥ एकत्र पाचयेत्सम्यग् वेसवार इति स्मृतः ॥ वेसवारो गुरुः स्निग्धो बल्यो वातरुजापहः ॥२५॥ प्रीणनः सर्वधातूनां विशेषान्मुखशोषिणाम् ॥ क्षुत्तृष्णापहरः श्रेष्ठः सोरावः स्वादुशीतलः ॥ २६ ॥

जो मांस अस्थिनिकाला हुआ और जोशदेकर फिर पत्थरपर चूर्ण किया हो (कुचला हो) और पीपल, सोंठ, मिरच, गुड और घृत मिलाकर इकट्ठा पकाया जाय उसे वेसवार कहते हैं। वेसवार भारी है, स्निग्ध है, बलकारक है, वायुरोग-नाशक है ॥ २४ ॥ २५ ॥ सोराव (शोरवा) सब धातुओंकी तृप्ति करता है, विशेषकर मुखशुष्कतावालोंको (हित है), क्षुधा और तृषाको दूर करता है, श्रेष्ठ है, स्वादु और शीतल है (कई इस श्लोकको इक्कीसवें श्लोकसे अगाडी मांसरसके प्रसंगमें पढतेहैं और कई इसे पढतेही नहीं) ॥ २६ ॥

यूष ।

कफघ्नो दीपनो हृद्यः शुद्धानां प्राणिनामपि ॥ ज्ञेयः पथ्यतमश्चापि मुद्गयूषः कृताकृतः ॥ २७ ॥ स तु दाडिममृद्वीकयुक्तः स्याद्रागखांडवः ॥ चक्षुष्यो लघुपाकश्च दोषाणामविरोधकृत् ॥२८॥

मुद्गयूप (दोपल मूगोंको उबलेहुए आधे आढक पानीमें साधनकिया पेय जिसे यूनानी हकीम मुकताब कहते हैं) यह कफनाशक है, दीपन है, हृदयको हित हैं और शुद्ध अर्थात् विरेचन कियेहुए मनुष्योंको अत्यंतश्रेष्ठ पथ्य है । यह कृताकृत अर्थात किसी प्रकार संस्कारोंसे संस्कृत हो या किसीसे संस्कृत न हो (कृत और अकृतके लक्षण अगाडी कहे जायँगे) ॥२७॥ और वही अनार, मुनक्कासे युक्त रागखांडव होवे सो नेत्रोंको हित है, विपाकमें हलका है और दोषोंका विरोधकरनेवाला नहीं है ॥ २८ ॥

मसूरमुद्गगोधूमकुलत्थलवणैः कृतः ॥ कफपित्ताविरोधी स्याद्वातव्याधौ च शस्यते ॥ २९ ॥ मृद्वीकादाडिमैर्युक्तः स एवोक्तोऽनिलार्दिते ॥ रोचनो दीपनो हृद्यो लघुपाक्युपदिश्यते ॥ ३० ॥

मसूर, मूँग, गेहूं, कुलथी इनका लवणयुक्त यूष कफ और पित्तका विरोधी नहीं है और वातव्याधिमें श्रेष्ठ है ही ॥ २९ ॥ और मुनक्का, अनारसे युक्त वही यूष वातरोगीको देना ठीक है, रोचन हैं, दीपन है, हृदयको हित है, लघुपाकी है ॥ ३० ॥

पटोलनिंबयूषौ तु कफमेदोविशोषणौ ॥ पित्तघ्नौ दीपनौ हृद्यौ कृमिकुष्ठज्वरापहौ ॥ ३१ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायप्रसेकारोचकज्वरान् ॥ हंति मूलकयूषस्तु कफमेदोगलामयान् ॥३२॥ कुलत्थयूषोऽनिलहा श्वासपीनसनाशनः ॥ तूणीप्रतूणीकासार्शोगुल्मोदावर्तनाशनः ॥ ३३ ॥ दाडिमामलकैर्यूषो हृद्यः संशमनो लघुः ॥ प्राणाग्निजननो मूर्च्छामेदोघ्नः पित्तवातजित् ॥ ३४ ॥

(सूत्र २७) यूषलक्षणम् "अष्टादशगुणे नीरे शिम्बीधान्यशृतो रसः ॥ विरलानो घनः किंचित्पेयातो यूष उच्यते ॥" मुद्गयूषलक्षणम्–'मुद्गानां द्विपलं तोये शृतमर्द्धाढकोन्मिते' (भा. प्र.) (सूत्र२८) "चक्षुष्यो रुचिष्यो" इति वा पाठांतरम् । (सूत्र ३२) मूलकयूष इति केचित्तु शुष्कबालमूलकयूष इत्याहुः तथैव डल्लनः । जैज्जटस्तु यद्यपि बालमूलं त्रिदोषघ्न तथापि तस्य न यूषप्रकरणे श्रुतिरस्तीति अयमपि मुद्गादिसहितो ज्ञेय इत्याह (नि. स.) केचित् पंचमूलकयूष इत्याहुः । (सूत्र ३४) दाडिमामलकैर्यूषः दाडिमामलकैः कृतो यूष इत्यर्थः । दाडिमामलकैर्युक्तो मुद्गादियूष इति वा ।

पटोल और नींबूके यूष कफ और मेदके शोषणवाले हैं, पित्तनाशक हैं, दीपन हैं, हृदयको हित हैं तथा कृमि, कुष्ठ और ज्वरनाशक हैं ॥ ३१ ॥ सूखे मूलक (बालमूलक)का यूष श्वास, कास, प्रतिश्याय (जुखाम), मुहसे पानीआना, अरुचि और ज्वर इनको नाशकरता है । तथा कफ, मेद और गलके रोगोंको दूर करता है॥ ३२॥ कुलथीका यूष वायुनाशक है, श्वास और पीनस (नासिकारोग) इनको नष्ट करताहै, तूणी और प्रतूणीसंज्ञक वातरोगोंको नाश करताहै । तथा खाँसी, बवासीर, गुल्म और उदावर्तको नाश करता है ॥ ३३ ॥ अनार और आंवलोंका यूष हृदयको हित है, दोषोंको शमन करता है, हलका है, प्राण (बल) और अग्निको उपजाता है, मूर्च्छारोग और मेदरोगको नष्ट करता है, पित्त और वायुको जीतता है ॥ ३४ ॥

मुद्गामलकयूषस्तु ग्राही पित्तकफे हितः ॥ यवकोलकुलत्थानां यूषः कंठ्योऽनिलापहः ॥ सर्वधान्यकृतस्तद्वद्बृंहणः प्राणवर्द्धनः ॥ ३५ ॥

मूंग और आंवलोंका यूष ग्राही है, पित्त और कफमें हित है । तथा जौ, कोल (बेर), कुलथी इनका यूष कंठको हित है, वायुनाशक है । तथा सब धान्योंका यूष ऐसेही बृंहण है और प्राण (बल) को बढानेवाला है ॥ ३५ ॥

खलकांबलिकौ हृद्यौ तथा वातकफे हितौ ॥ बल्यः कफानिलौ हंति दाडिमाम्लोऽग्निदीपनः ॥ ३६ ॥ दध्यम्लः कफकृद्बल्यः स्निग्धो वातहरो गुरुः॥ तक्राम्लः पित्तकृत्प्रोक्तो विषरक्तप्रदूषणः ३७

खलकांबलिक (दो प्रकारके होतेहैं ये यूषकेही भेद हैं एकमें छाछ और शमीधान्य पडताहै दूसरेमें छाछ और शाक होताहै) ये दोनों हृदयको हित हैं तथा वायु और कफमें हित हैं और जिसमें अनारकी खटाई हो वह कफवायुको नाश करता है, दीपन है और बलकारक है ॥ ३६ ॥ जिसमें दहीकी खटाई हो वह कफकारक है, बलदायक है, स्निग्ध है, वायुनाशक है, भारी है । और जिसमें छाछकी खटाई हो वह पित्तकारक है, विष और रक्तको दूषित करताहै ॥ ३७ ॥

खंडाः खंडयवाग्वश्च खांडवाः पानकानि च ॥ एवमादीनि चान्यानि क्रियंते वैद्यवाक्यतः ॥ ३८ ॥ अस्नेहलवणं सर्वमकृतं कटुकैर्विना ॥ विज्ञेयं लवणस्नेहकटुकैः संयुतं कृतम् ॥ ३९ ॥ अथ गोरसधान्याम्लफलाम्लैरन्वितं च यत् ॥ यथोत्तरं लघु हितं संस्कृतासंस्कृतं रसे ॥ ४० ॥

(सूत्र ३६) खलकांबलिकौ यूषविशेषौ तत्र खलो द्विविधः सतक्रशमीधान्यः सतक्रशाकश्च कांबलिकस्य लक्षणमग्रे वक्ष्यते ।

खंड (अम्लतायुक्तान्नपेय अर्थात् कढी), खण्डयवागू (खंडयुक्तयवागू), खांडव (जिसमें अम्लता, माधुर्य, कषायता, लवण और ऊषण (चरपराट) ये स्पष्ट हों केवल तिक्तता (कडवास) न हो) तथा पानक (पन्ने) इत्यादि और पदार्थ भी वैद्यके वाक्योंसे किये जातेहैं ॥ ३८ ॥ ये सब यदि स्नेह और लवण कटुकसें रहित हों तो उन्हें अकृत कहतेहैं । और यदि इनमें लवण, स्नेह और कटुक (चरपराट) हो तो उसे कृत कहतेहैं ॥ ३९ ॥ गोरस (दध्यादि), धान्याम्ल(कांजी), फलाम्ल (खटाई) इनसे युक्तरस जो संस्कार किया हो या संस्कार नहीं किया हो ये उत्तरोत्तर हलके हैं ॥ ४० ॥

दधिमस्त्वम्लसिद्धस्तु यूषः कांबलिकः स्मृतः ॥ तिलपिण्याकविकृतेः शुष्कशाकं विरूढकम् ॥ ४१ ॥ सिंडाकी च गुरूणि स्युः कफपित्तकराणि च ॥ तद्वच्च वटकान्याहुर्विदाहीनि गुरूणि च ॥ ४२ ॥ लघवो बृंहणा वृष्या हृद्या रोचनदीपनाः ॥ तृष्णामूर्च्छाभ्रमच्छर्दिश्रमघ्ना रागखांडवाः ॥ ४३ ॥

दही मस्तु (दहीका तोडपानी) की खटाईसे सिद्ध कियाहुआ यूष कांबालिक कहलाता है । तथा तिलखलीके विकारसे शुष्कशाक (अम्लतासिद्ध) विरूढक है ॥ ४१ ॥ सिंडाकी (बडी, पकोडी, फलोरी) भारी हैं, कफपित्तकरनेवाली हैं और इसीप्रकार बडेभी विदाही हैं और भारी हैं ॥ ४२ ॥ तथा रागखांडव (जो एकप्रकारका वृक्षाम्ल जंबूफलादिके रससे युक्त राईसे मिश्रित राग होता है तथा खांडव मीठे, खट्टे, लवणके संयोगसे कई प्रकारके होते हैं) ये रागखांडव सब हलके हैं, बृंहण हैं, वृष्य हैं, हृदयको हित हैं, रोचन हैं, दीपन हैं और तृषा, मूर्च्छा, भ्रम, छर्दि, श्रम इनको दूर करते हैं ॥ ४३ ॥

रसाला बृंहणी बल्या स्निग्धा वृष्या च रोचनी ॥ स्नेहनं गुडसंयुक्तं हृद्यं दध्यनिलापहम् ॥ ४४ ॥ सक्तवः सर्पिषाभ्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ॥ नातिद्रवा नातिसांद्रा मंथ इत्युपदिश्यते ॥४५॥ मंथः सद्यो बलकरः पिपासाश्रमनाशनः ॥ साम्लस्नेहगुडो मूत्रकृच्छोदावर्तनाशनः ॥ ४६ ॥

रसाला (शिखरन) बृंहण (शरीरपुष्टिकारिणी) है, बलदेनेवाली है, स्निग्ध है, वृष्य (वीर्यवर्द्धिनी) है, रोचनी है, तथा गुडयुक्त दही स्नेहन है, हृद्य है, वायु-

(सूत्र ४३) रागखाडवलक्षणं-"सितारुचकसिंधूत्थैः सवृक्षाम्लपरूषकैः ॥ जंबूफलरसैर्युक्तो रागो राजिकया कृतः ॥" खांडवाः पुनर्मधुराम्ललवणसंयोगजा नानाविधाः (इति डल्हनः)

नाशक है ॥४४॥ भुनेसत्तू घृतमिले, ठंढेपानीमें घुले, न बहुत पतले न गाढे हों उसे मंथ कहते हैं ॥४५॥ मंथ सद्यःबलकर्ता है, प्यास और श्रमनाशक है तथा खटाई और चिकनाईसे युक्त गुड मूत्रकृच्छ्र और उदावर्तनाशक है ॥ ४६ ॥

शर्करेक्षुरसद्राक्षायुक्तः पित्तविकारनुत् ॥ द्राक्षामधूकसंयुक्तः कफरोगनिवर्हणः ॥४७॥ वर्गत्रयेणोपहितो मलदोषानुलोमनः ॥ गौडसम्लमनम्लं वा पानकं गुरु मूत्रलम् ॥ ४८ ॥ तदेवं खंडमृद्वीकाशर्करासहितं पुनः ॥ साम्लं सुतीक्ष्णं सहिमं पानकं स्यान्निरत्ययम् ॥ ४९ ॥ मार्द्वीकं तु श्रमहरं मूर्च्छादाहतृषापहम् ॥ परूषकाणां कोलानां हृद्यं विष्टंभि पानकम् ॥ ५० ॥

शर्करा, ईखका रस, दाख इनसे युक्त पदार्थ पित्तविकारनाशक हैं तथा दाख और महुवासे युक्त कफरोग नाशकर्ता है ॥ ४७ ॥ वर्गत्रय (त्रिफला, त्रिकटु, त्रिजातक) करके संयुक्त पेय मलदोषोंका अनुलोमन है तथा गुडका पानक (पन्ना) खटाई युक्त हो चाहे बिनाखटाईका हो भारी है, मूत्रल है ॥ ४८ ॥ और खांड, दाख और शर्करासहित जो पानक (शरबत) है सो खटाईयुक्त और सुतीक्ष्ण (मिरचादियुक्त, ठंढा और निर्दोष है ॥ ४९ ॥ मुनक्का या अंगूरका शरबत श्रमहर्ता, मूर्च्छा, दाह, तृषा इनको दूर करताहै तथा फालसोंका शरबत और बेरोंका पन्ना हृदयको हित है, विष्टंभी है ॥ ५० ॥

द्रवसंयोगसंस्कारं ज्ञात्वा मात्रांश्च सर्वतः ॥ पानकानां यथायोगं गुरुलाघवमादिशेत् ॥ ५१ ॥

द्रव्योंका संयोग और संस्कार तथा सबप्रकार मात्रा जानकर पानको (पन्ने तथा शरबतों)का यथायोग भारीपन,हलकापन(गुणागुण) निश्चय करना चाहिये॥५१॥इति॥

अथ भक्ष्यवर्गः ।

वक्ष्याम्यतः परं भक्ष्यान् रसवीर्यविपाकतः ॥ भक्ष्याः क्षीरकृता बल्या वृष्या हृद्याः सुगंधिनः ॥ अदाहिनः पुष्टिकरा दीपनाः पित्तनाशनाः ॥ १ ॥ तेषां प्राणकरा हृद्या घृतपूराः कफावहाः ॥ वातपित्तहरा वृष्या गुरवो रक्तमांसलाः ॥ २ ॥

इससे अगाडी भक्ष्यपदार्थों (जो दांतोंसे तोडकर खायेजायं जैसे लड्डू आदि) को वर्णन करते हैं। रससे, वीर्यसे, विपाकसे इनके गुण कहते हैं। क्षीरकृतभक्ष्य

(गेहूंका चूर्ण या पिट्टी दूधमें गूंदकर बनाये जायँ) ये बल्य हैं, वृष्य हैं, हृदयको हित हैं, सुगंधिवाले हैं, दाह पैदा नहीं करते, पुष्टिकारक हैं, दीपन हैं, पित्त नाश करनेवालेहैं ॥ १ ॥ उनमेंसे घृतपूर (घेवर) प्राण (बल) कारक हैं, हृदयको हित हैं, कफकारक हैं, वायुपित्तहर्ता हैं, वृष्य हैं, भारी हैं, रक्त और मांस पैदा करते हैं ॥ २ ॥

बृंहणा गौडिका भक्ष्या गुरवोऽनिलनाशनाः ॥ अदाहिनः पित्तहराः शुक्रलाः कफवर्द्धनाः ॥ ३ ॥ मधुमस्तकसंयावाः पूपा ह्येते विशेषतः ॥ गुरवो बृंहणाश्चैव मोदकास्तु सुदुर्जराः ॥ ४ ॥

गुडके भक्ष्यपदार्थ बृंहण हैं, भारी हैं, वायुनाशक हैं, दाहजनक नहीं हैं, पित्तहर्ता हैं, शुक्र पैदा करते हैं, कफ बढाते हैं ॥ ३ ॥ मधुमस्तक संयाव (हलवा), अपूप (पूआ) ये विशेष करके भारी हैं, बृंहण हैं तथा मोदक (लड्डू) दुर्जर होते हैं॥४॥

रोचनो दीपनः स्वर्यः पित्तघ्नः पवनापहः ॥ गुरुर्भृष्टतमश्चैव सट्टकः प्राणवर्द्धनः ॥ ५ ॥ हृद्यः सुगंधिर्मधुरः स्निग्धः कफकरो गुरुः ॥ वातापहस्तृप्तिकरो बल्यो विष्यंदनः स्मृतः ॥ ६ ॥ बृंहणा वातपित्तघ्ना भक्ष्या बल्यास्तु सामिताः ॥ हृद्याः पथ्यतमास्तेषां लघवः फेनकादयः ॥ ७ ॥ मुद्गादिवेसवाराणां पूर्णा विष्टंभिनो मताः ॥ वेसवारैः सपिशितैः संपूर्णा गुरुबृंहणाः ॥ ८ ॥

सट्टक (साटे) रोचन हैं, दीपन हैं, स्वरकर्ता हैं, पित्तनाशक हैं, वायुहर्ता हैं और जो जादा सिकजायँ वे अतिभारी हैं, बलवर्द्धन हैं (सट्टक गुलगुलेका भेद होता है) ॥ ५ ॥ तथा विष्यंदन (भी गुलगुलेहीका भेद है ये कुछ छिदडे होते हैं) हृदयको हित हैं, सुगंधित हैं, मधुर हैं, स्निग्ध हैं, कफकारक हैं, भारी हैं, वायुनाशक हैं, तृप्तिकर्ता हैं और बलकारक हैं ॥ ६ ॥ सामितभक्ष्य (गूझी, फेनी आदि) बृंहण हैं, वायुपित्तनाशक हैं, बलकारक हैं, हृदयको हित हैं उनमें फेनी अतिपथ्य है और हलकी है ॥ ७ ॥ मूँगआदिकके वेसवारोंसे पूर्ण जो गूझी है वह विष्टंभी है तथा मांसयुक्त वेसवारसे जो पूर्ण है वह भारी और बृंहण है ॥ ८ ॥

पाललाः श्लेष्मजननाः शष्कुल्यः कफपित्तलाः ॥ वीर्योष्णाः पैष्टिका भक्ष्याः कफपित्तप्रकोपणाः ॥ ९ ॥ विदाहिनो नातिबला

(सूत्र ४) मधुमस्तकास्ते एव मधुशीर्षका उच्यते, केचिन्मधुमस्तकशब्देन सजकमाहुः । गुलगुला इति भाषायाम् । (सूत्र ९) अस्योत्तरार्द्ध एव अग्रिमस्य पूर्वार्द्धेन सहान्वेतव्यः ।

गुरवश्च विशेषतः ॥ वैदला लघवो भक्ष्याः कषायाः सृष्टमारुताः॥१०॥

मांसयुक्त भक्ष्य कफकारक हैं तथा कचोरी (पूरी) कफपित्तकारक है । पिट्ठीके पदार्थ वीर्यमें उष्ण हैं, कफ और पित्तको कुपित करते हैं तथा विदाही हैं, अतिबलकारी नहीं हैं, विशेषकर भारी हैं और मुद्गादिके भक्ष्य हलके, कसेले और अपानवायुके प्रवृत्त करनेवाले हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

विष्टंभिनः पित्तशमाः श्लेष्मघ्ना भिन्नवर्चसः ॥ बल्या वृष्यास्तु गुरवो विज्ञेया माषसाधिताः ॥ ११ ॥ कूर्चिका विकृता भक्ष्या गुरवो नातिपित्तलाः॥ विरूढककृता भक्ष्या गुरवोऽनिलपित्तलाः॥ ॥ १२ ॥ विदाहोत्क्लेशजननेना रूक्षा दृष्टिप्रदूषणाः ॥ हृद्याः सुगंधिनो वृष्या लघवो घृतपाचिताः ॥ १३ ॥ वातपित्तहरा बल्या वर्णदृष्टिप्रसादनाः ॥ विदाहिनस्तैलकृता गुरवः कटुपाकिनः ॥१४॥

उडदके बडे विष्टंभी हैं, पित्तशामक हैं, कफहर्ता हैं, मलको भेदन करते हैं, बलकारक हैं, वृष्य हैं, भारी (गरिष्ठ) हैं ॥ ११ ॥ कूर्चिका (चीले आदि विकाररूप) भक्ष्य भारी हैं, अतिपित्तल नहीं हैं तथा भिगोये (अंकुरित) धान्यके भक्ष्य भारी हैं, वायुपित्त पैदा करते हैं ॥ १२ ॥ घृतके बडे चीले आदि विदाह और उत्क्लेश (उबाकी) पैदा करते हैं, रूक्ष हैं, दृष्टिको दूषित करते हैं तथा हृदयको हित हैं, सुगंधित हैं, वृष्य हैं, हलके हैं ॥ १६ ॥ तेलके बने वायुपित्तहर्ता हैं, बलकारक हैं, वर्ण और दृष्टिको प्रसन्न करते हैं, विदाही हैं, भारी हैं और विपाकमें चरपरे हैं ॥ १४ ॥

उष्णा मारुतपित्तघ्नाः पित्तलास्त्वक्प्रदूषणाः ॥ फलमांसेक्षुविकृतितिलमाषोपसंस्कृताः ॥ १५ ॥ भक्ष्या बल्यास्तु गुरवो बृंहणा हृदयप्रियाः ॥ कपालांगारपक्वास्तु लघवो वातकोपनाः ॥ १६ ॥

फल, मांस, ईखविकार (गुडआदि), तिल, उडद इनसे संस्कार कियेहुए बडे आदि गरम हैं, वायु और तृप्तिनाशक हैं, पित्तकारक हैं, त्वचाको दूषित करते हैं, वे भक्ष्य बलकारक हैं, भारी हैं, बृंहण हैं, हृदयको प्रिय हैं तथा ठेकरे और अंगारोंपर पके भक्ष्य हलके हैं, वायुको कुपित करते हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥

सुपक्वास्तनवश्चापि भूयिष्ठं लघवो मताः ॥ सकिलाटादयो भक्ष्या गुरवः कफवर्द्धनाः ॥ १७ ॥ कुल्माषा वातला रूक्षा गुरवो

(सूत्र १४)अस्य पूर्वार्द्धः पूर्वेण सहान्वेतव्यः ।

भिन्नवर्चसः ॥ उदावर्तहरो वाट्यः कासपीनसमेहनुत ॥ १८ ॥ धानोलुंबास्तु लघवः कफमेदोविशोषणाः ॥ सक्तवो बृंहणा वृष्यास्तृष्णापित्तकफापहाः ॥ १९ ॥ पीताः सद्योबलकरा भेदिनः पवनापहाः ॥ गुर्वी पिंडी खरात्यर्थं लघ्वी सैव विपर्ययात् ॥ सक्तूनामाशु जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका ॥ २० ॥

अंगारों ठेकरेपर ठीक २ खूब पके भक्ष्य जो पतले हों वे अति हलके होते हैं। तथा किलाट (दधिकूर्चिका तक्रादि) से पके पदार्थ भारी और कफ बढानेवाले होते हैं ॥ १७ ॥ कुलमाष (यव, गेहूँ आदिकी वाकली) वातल होती है, रूक्ष और भारी होती है तथा मलको भेदन करती है। तथा वाट्य (दलिया) उदावर्तहर्ता है, खांसी और जुखाम तथा प्रमेह नाशक है ॥ १८ ॥ धान (धाणी भुने जौ), उलुंवा (होले भुने छोले आदि) हलके हैं, कफ और मेदको शोषण करते हैं। तथा सत्तू बृंहण हैं, वृष्य हैं, तृषा पित्त और कफनाशक हैं ॥ १९ ॥ पियेहुए तत्काल बल करते हैं, भेदी हैं, वायुनाशक हैं, जो बहुत गाढे पिंडीरूप हों वे भारी हैं, अतिखर (खरखराट पैदा करनेवाले) हैं तथा इसके विपरीत सत्तुवोंका अवलेह (पतला) हलका है और कोमलतासे शीघ्रही पचजाता है ॥ २० ॥

लाजाश्छर्द्यतिसारघ्ना दीपनाः कफनाशनाः ॥ बल्याः कषायमधुरा लघवस्तृणमलापहाः ॥ २१ ॥ तृट्छर्दिदाहघर्मार्तिनुदस्तत्सक्तवो मताः ॥ रक्तपित्तहराश्चैव दाहज्वरविनाशनाः ॥ २२ ॥

लाजा (धानकी खील), छर्दि (कै) अतिसारनाशक हैं, दीपन हैं, कफनाशन हैं, बलकारक हैं, कषाय मधुर हैं, हलकी हैं, तृषा और मलहर्ता हैं ॥ २१ ॥ इनके सत्तू तृषा, वमन, दाह, गर्मी, धूप, लूकी, पीडा दूर करते हैं, रक्तपित्तनाशक हैं, दाह और ज्वरको हरते हैं ॥ २२ ॥

पृथुका गुरवः स्निग्धा बृंहणाः कफवर्द्धनाः ॥ बल्याः सक्षीरभावात्तु वातघ्ना भिन्नवर्चसः ॥ २३ ॥ सुदुर्जरः स्वादुरसो बृंहणस्तंडुलो नवः ॥ संधानकृन्मेहहरः पुराणस्तंडुलः स्मृतः ॥ २४ ॥

पृथुक (चिडवे) भारी हैं, स्निग्ध हैं, बृंहण हैं, कफवर्द्धक हैं, दूधिया होनेसे बलकारक हैं, वायुनाशक हैं, मलभेदनकर्ता हैं ॥ २३ ॥ नये (हरे ताजे) चावल

(सूत्र १८) वाट्यो डल्हनमते यवगोधूमादिभिर्दलितैः कृताः। अन्ये तु भृष्टयवकृतो भक्ष्य इत्याहुः। अपरे चागारपक्कां गोधूमचूर्णसाधितचिप्पटीभूतमोदकाकारा "वाटीम्" इति वदति। (सूत्र १९) धाना भृष्टयवाः। उलुंबा होलका अत्र मुद्गकलायादिशिंवा अग्निपक्का अपि होलका उच्यते।

दुर्जर हैं, रसमें मधुर हैं, बृंहण हैं पुराने चावल टूटेको जोडनेवाले और प्रमेह नाशक होते हैं ॥ २४ ॥

द्रव्यसंयोगसंस्कारविकारान्समवेक्ष्य तु ॥ यदा कारणमासाद्य भोक्तृणां छन्दतोऽपि वा ॥ अनेकद्रव्ययोगित्वाच्छास्त्रतस्तान् विनिर्दिशेत् ॥ २५ ॥

इति भक्ष्यवर्गः ।

द्रव्योंका संयोग तथा संस्कार, और विकार इन्हें देखकर और उसके हेतुको समझकर तथा खानेवालेकी अभिलाषा (प्रकृति, बल आदि) को भी विचारकर तथा यह भी विचारकर कि भोजन अनेकद्रव्योंसे बनता है ऐसी सब बातें विचारकर शास्त्रसे उनके गुणागुण देखकर (विना कहे असंख्य भक्ष्य भोज्यादिके) गुणागुण जानलेने चाहिये ॥ २५ ॥

इति भक्ष्यवर्गः ।

अथानुपानवर्गः ।

अतः सर्वाण्यनुपानान्युपदेक्ष्यामः ॥

यहांसे अगाडी सब अनुपानोंका उपदेश करते हैं।

अम्लेन केचिद्विहता मनुष्या माधुर्ययोगे प्रणयीभवंति ॥ तथाम्लयोगे मधुरेण तृप्तास्तेषां यथेष्टं प्रवदंति पथ्यम् ॥ १ ॥ शीतोष्णतोयासवमद्ययूषफलाम्लधान्याम्लपयोरसानाम् ॥ यस्यानुपानं तु हितं भवेद्यत्तस्मै प्रदेयं त्विह मात्रया तत् ॥ २ ॥

अम्लरस (खटाई) से अकुलाये हुए मनुष्य मधुररससे सुखी (प्रसन्न) हो जाते हैं । और जिसने मधुर (मिठाई) को अत्यन्त खाया हो और उससे अकुलागया हो उसे खटाई खिलानी चाहिये । और इनसे या इनके सिवाय किसी और रससे अकुलागया हो तो उसके पीछे जिस रसको जी चाहे वही पथ्य है ॥ १ ॥ शीतलपानी, गरमपानी, आसव, मद्य, यूष, फलाम्ल (नींबू आदिका रस), धान्याम्ल (कांजीआदि) तथा दुग्ध और रस (मांसरस या किसी औषधका स्वरसादि) इनमेंसे जौन जौनसा अनुपान जिस जिसके लिये हित हो वही उसे प्रमाणसे देना चाहिये ॥ २ ॥

व्याधिं च कालं च विभाव्य धीरैर्द्रव्याणि भोज्यानि च तानि तानि ॥ सर्वानुपानेषु वरं वदंति मेध्यं यदंभः शुचिभाजनस्थम् ॥ ३ ॥

धीरवैद्यको चाहिये कि, व्याधिको और समयको समझकर तथा भोज्य द्रव्यों-को विचारकर सबके योग्य अनुपान देवे और सामान्यतासे सब अनुपानोंमें श्रेष्ठ आंतरिक्ष आश्विनकी वर्षाका जल है जो शुद्ध बरतनमें रक्खा हो ॥ ३ ॥

लोकस्य जन्मप्रभृति प्रशस्तं तोयात्मकाः सर्वरसाश्च दृष्टाः ॥ संक्षेप एषोऽभिहितोऽनुपानेष्वतः परं विस्तरतो विधास्ये ॥ ४ ॥

सब प्राणिमात्रको जन्मसमयसे लेकर (मरणपर्यंत) यही जल अनुपानमें सबसे श्रेष्ठ है और समस्त रसभी जलमयही दिखाई देतेहैं। यह अनुपानकी संक्षेपता वर्णन की गई है इससे अगाडी विस्तारसे वर्णन करते हैं॥ ४ ॥

उष्णोदकानुपानं तु स्नेहानामेवं शस्यते ॥ ऋते भल्लातकस्नेहात्स्नेहात्तौवरकात्तथा ॥५॥ अनुपानं वदंत्येके तैले यूषाम्लकांजिके॥ शीतोदकं माक्षिकस्य पिष्टान्नस्य च सर्वशः ॥ ६ ॥ दधिपायसमद्यार्तिविषजुष्टे तथैव च ॥ केचित्पिष्टमयस्याहुरनुपानं सुखोदकम् ॥ ७ ॥ पयो मांसरसो वापि शालिमुद्गादिभोजिनाम् ॥ युद्धाध्वातपसंतापविषमद्यरुजासु च ॥ ८ ॥

भिलावेके तेल और तुवरके तेलके सिवाय और सब प्रकारकी चिकनाईपर गरमजलका अनुपान श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ और कई ऐसा कहते हैं कि, तैलके ऊपर यूषाम्ल तथा कांजीका अनुपान चाहिये और शहतपर शीतलपानीका अनुपान चाहिये। तथा सब प्रकारके पिष्टान्न (पिट्ठी) परभी ठंढा पानी पीना चाहिये ॥ ६ ॥ दही, खीर, मदिराकी पीडा तथा विषजुष्ट परभी शीतलपानी पीना चाहिये और कइ पिष्टमय (पिट्ठीकी वस्तु) पर सुखोदक (निवाया पानी पीना) अनुपान बतलाते-हैं ॥ ७ ॥ शालि (चावल) और मूँग खानेवाले तथा युद्धसे थके, मार्गसे थके, धूपके अकुलाये, सन्तापसे दुःखी, विषयुक्त ऐसे मनुष्योंको दूधका अथवा मांसरसका अनुपान देना चाहिये और मद्यके रोगीको मांसरसका अनुपान देना चाहिये ॥८॥

माषादेरनुपानं तु धान्याम्लं दधिमस्तु वा ॥ मद्यं मद्योचितानां तु सर्वमांसेषु पूजितम् ॥ ९ ॥ अमद्यपानामुदकं फलाम्लं वा प्रशस्यते ॥ क्षीरं घर्माध्वभाष्यस्त्रीक्लांतानाममृतोपमम् ॥ १० ॥ सुरा कृशानां स्थूलानामनुपानं मधूदकम् ॥ निरामयानां चित्रं तु भक्तमध्ये प्रकीर्तितम्॥ ११ ॥

(सूत्र४)अस्य श्लोकस्य प्रथमचरणस्य पूर्वेण सहान्वयः।(सूत्र८)अत्र अनुपान भवतीति शेषेणान्वयः।
(सूत्र ९ । १०) नवमश्लोकस्योत्तरार्द्धो दशमस्य पूर्वार्द्धेन सहान्वेतव्यः ।

माषआदिपर धान्याम्ल (कांजी) अथवा दहीका पानी अनुपान है और मदिरा पीनेवालोंको सबप्रकारके मांसोंपर मदिरा पीनाही अनुपान है ॥ ९ ॥ और जो मदिरा नहीं पीते उन्हें पानी या फलोंकी खटाईका अनुपान श्रेष्ठ है तथा धूप-मार्ग और पठन और स्त्रीसंगमसे थके हुए मनुष्योंको दूधका अनुपान अमृतके तुल्य है अर्थात् इन्हें दूध पीना अतिगुणकारी है ॥ १० ॥ दुर्बलमनुष्योंको सुरा (एकप्रकारकी मदिरा) और स्थूल (मोटे) मनुष्योंको शहत पानी मिलाकर पीना चाहिये । तथा स्वस्थमनुष्योंको भोजनमें चित्र विचित्र (सबरस सबवस्तु) खाना चाहिये ॥ ११ ॥

स्निग्धोष्णं मारुते पथ्यं कफे रूक्षोष्णमिष्यते ॥ अनुपानं हितं चापि पित्ते मधुरशीतलम् ॥१२॥ हितं शोणितपित्तिभ्यो क्षीरमिक्षुरसं तथा ॥ अर्कसेलुशिरीषाणामासवास्तु विषार्तिषु ॥१३॥

वायु और वायुके रोगोंमें स्निग्ध और उष्ण (तरगम) पदार्थ पथ्य हैं । और कफमें रूक्षउष्ण (खुश्कगरम) पदार्थ हित हैं । तथा पित्तमें मधुर और शीतल अनुपान हित होता है ॥ १२ ॥ तथा रक्तपित्तके रोगियोंको दूध और पौंडेका रस अनुपानमें हित है । और विषकी पीडामें अर्क (आक), सेलु (ल्हेसुवा) और सिरस इनके आसव हित हैं (जैसे वायवीय वातविषपीडापर अर्कासव, पैत्तिक विषपीडापर सेलुका आसव और श्लैष्मिक विषपीडापर शिरसका आसव अनुपानमें हित है) ॥ १३ ॥

अतः परं तु वर्गाणामनुपानं पृथक् पृथक् ॥
प्रवक्ष्याम्यानुपूर्वेण सर्वेषामेव मे शृणु ॥ १४ ॥

यहांसे अगाडी वर्गोके जुदे जुदे अनुपान वर्णन करे जाते हैं (धन्वंतरिजी कहते-हैं हे सुश्रुत !) मुझसे तुम सबको क्रमसे श्रवण करो ॥ १४ ॥

तत्र पूर्वशस्यजातीनां बदराम्लं वैदलानां धान्याम्लं जंघालानां धन्वजानां च पिप्पल्यासवः ॥ विष्किराणां कोलबदरासवः । प्रतुदानां तु क्षीरवृक्षासवः । गुहाशयानां तु खर्जूरनालिकेरासवः प्रसहानामश्वगंधासवः ॥ १५ ॥

तहां पूर्वोक्त शस्यजाति (सबप्रकारके अन्नों) पर बदराम्ल (बेरोंकी कांजी) का अनुपान श्रेष्ठ है । और विदलधान्योंपर धान्याम्ल तथा जंघाल (जंघावाले चतुष्पद) पशुओंके मांसपर तथा मरुस्थलीके पशुओंपर पिप्पलीका आसव अनुपान है । विष्किरसंज्ञक पक्षियोंपर कोलबदरका आसव पीना चाहिये और प्रतुद पक्षि-

योंपर दूधके वृक्षों (गूलरआदि) का आसव श्रेष्ठ है। और गुफाके वासी जीवों (वृकादि) पर खजूर और नारियलका आसव पीना तथा प्रसह (शिकारी पक्षियों) पर असगंधका आसव पीना चाहिये ॥ १५ ॥

पर्णमृगाणां कृष्णगंधासवः। बिलेशयानां फलसारासवः॥ एकशफानां त्रिफलासवः। अनेकशफानां खदिरासवः॥१६॥ कूलचराणां तु शृंगाटककशेरुकासवः। कोशवासिनां पादिनां च तदेव। प्लवानामिक्षुरसासवः।नादेयानां मृणालासवः।सामुद्राणां मातुलुंगासवः१७

पर्णमृगों (वानरादि) पर कृष्णगंधा (सोहजने) का आसव और बिलवासियोंपर फलसारासव। और एकखुरवालों (अश्व, खरादि) पर त्रिफलाका आसव। और जो एकखुरीवाले नहीं हैं उनपर खदिरका आसव श्रेष्ठ अनुपान है॥ १६ ॥ (अनूपोंमेंसे) जलके तीरपर विचरनेवालोंपर सिंघाडे और कसेरूका आसव। और कोशवासी जलजंतुओंपर तथा पैरोंवाले जलजंतुओंपरभी वही सिंघाडे कसेरूका आसव ठीक है। और जलके पक्षियोंपर ईखके रसका आसव श्रेष्ठ है। तथा नदीकी मछलियोंपर मृणाल (कमलकी डंडी) का आसव श्रेष्ठ है। और सामुद्र-मछलियोंपर मातुलुंग (नींबू) का आसव हित है ॥ १७ ॥

अम्लानां फलानां पद्मोत्पलकंदासवः । कषायाणां दाडिमवेत्रासवः।मधुराणां त्रिकटुकयुक्तः कंदासवः। तालफलादीनां धान्याम्लम्। कटुकानां दूर्वानलवेत्रासवः। पिप्पल्यादीनां श्वदंष्ट्रावसुकासवः।कूष्मांडादीनां दार्वीकरीरासवः। चुच्चूप्रभृतीनां लोध्रासवः१८॥

खट्टे फलोंपर सुपेद कमलकंदका आसव और कसैले फलोंपर अनार और बेतका आसव हित है। और मीठे फलोंपर त्रिकटुसहित कंदोंका आसव उचित है। तथा ताडके फलआदिपर धान्याम्ल श्रेष्ठ है। और कटुक (चरपरे) फलोंपर दूब, नरसल, वेत इनका आसव हित है। तथा पिप्पल्यादिकपर श्वदंष्ट्रा (गोखरू) का आसव तथा वसुक (वगहल) का आसव हित है। और कूष्मांडआदिपर दारुहलदी और कैरका आसव हित है। तथा चुच्चूआदि शाकोंपर लोधका आसव श्रेष्ठ अनुपान है॥ १८ ॥

जीवन्त्यादीनां त्रिफलासवः। कुसुंभशाकस्य स एव। मंडूकपर्ण्यादीनां महापंचमूलासवः। बालमुस्तकादीनामम्लफलासवः। सैंधवादीनां सुरसासवः, आरनालं च। तोयं वा सर्वत्रेति ॥ १९ ॥

भवंति चात्र--

जीवंतीआदि शाकोंपर त्रिफलाका आसव श्रेष्ठ है। और कुसुंभेके शाकपर भी यही त्रिफलाका आसव श्रेष्ठ है। और मंडूकपर्णी आदिके ऊपर महापंचमूलका आसव हित है। तथा ताडके ऊपरके सिरेकी गिरीपर अम्लफलोंका आसव और सेंधवलवण आदिपर सुरसा(तुलसी)का आसव श्रेष्ठ है। तथा आरनालका अनुपान करना चाहिये अथवा इनसबके ऊपर जलकाही अनुपान मुख्य है॥ १९॥ यहांपर श्लोक कहे हैं-

सर्वेषामनुपानानां माहेंद्रं तोयमुत्तमम् ॥ सात्म्यं यस्य तु यत्तोयं तत्तस्मै हितमुच्यते ॥२०॥ उष्णं वाते कफे तोयं पित्ते रक्ते च शीतलम्॥ दोषवद्गुरु वा भुक्तमतिमात्रमथापि वा ॥ यथोक्तेनानुपानेन सुखमन्नं प्रजीर्यति ॥२१॥ रोचनं बृंहणं वृष्यं दोषसंघातभेदनम्॥तर्पणं मार्दवकरं श्रमक्लमहरं सुखम्॥२२॥ दीपनं दोषशमनं पिपासाच्छेदनं परम्॥ बल्यं वर्णकरं सम्यगनुपानं सदोच्यते ॥२३॥

सब अनुपानोंमें उत्तम अनुपान आश्विनकी वर्षाका जल है। तथा जिसको जैसा जल अनुकूल और सुखदायी या प्रकृतिके अनुसार हो उसको वैसाही देना हित है ॥२०॥ वायु और कफमें गरमपानी देना चाहिये और पित्त तथा रक्तदोपमें शीतलजल हित है। दोषयुक्त अथवा भारी (गरिष्ठअन्न) अथवा अतिमात्रावाला भोजन किया हो ये सब यथोक्त अनुपानसे सुखपूर्वक पचजाते हैं ॥२१॥भोजनादिपर अनुपान (जलपीना) रुचिकारक है, बृंहण (शरीरपुष्टिकारक) है, वृष्य (वीर्यवर्द्धक) है और दोषोंके समूहका भेदन करनेवाला है, तृप्तिकर्ता, मृदुताकारक तथा श्रम और ग्लानिको दूर करनेवाला और सुखदायक है ॥ २२ ॥ दीपन है, दोषोंको शांत करता है, प्यासको दूर करनेमें परमयुक्त है, बलकारक है, वर्ण (रूप) करनेवाला है ठीक२ अनुपान सदा उचित है ॥ २३ ॥

तदादौ कर्षयेत्पीतं स्थापयेन्मध्यसेवितम् ॥ पश्चात्पीतं बृंहयति तस्माद्वीक्ष्य प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥ स्थिरतांगतमक्लिन्नमन्नमद्रवपायिनाम् ॥ भवत्याबाधजननमनुपानमतः पिबेत् ॥ २५ ॥

खानेके पदार्थके पहले पियाहुआ जल शरीरको कृश (दुबला) करता है और भोजनके बीचमें पियाहुआ यथावत् स्थिर रखता है और पीछे भोजनांतमें पियाहुआ शरीरको बढाता है, तिससे समझकर उपयोग करे ॥ २४ ॥ जो भोजनके पीछे द्रवपदार्थ (जल) नहीं पीते उनके विना क्लेदितहुआ अन्न स्थिरताको प्राप्त होजाता है (पिंडेसे बँधजाते हैं) और बद्धोदरादिकी तीक्ष्णपीडा उत्पन्न करनेवाले होते हैं। इसकारण भोजनके साथ जल पीना चाहिये ॥ २५ ॥

न पिबेच्छ्वासकासार्तो रोगे चाप्यूर्ध्वजत्रुगे॥ क्षतोरस्कः प्रसेकी च यस्य चोपहतः स्वरः ॥ २६ ॥ पीत्वाऽध्वभाष्याऽध्ययनगेयस्वप्नान्न शीलयेत् ॥ प्रदूष्यामाशयं तद्धि तस्य कंठोरसि स्थितम्॥ स्यंदाग्निसादच्छर्द्यादीनामयाञ्जनयेद्बहून् ॥ २७ ॥

श्वासरोगवाला, खांसीवाला तथा जिसके ऊर्द्ध्वजत्रुगत रोग हो, उरःक्षतका रोगी, जिसके मुहसे पानी आता हो तथा जिसका स्वरभंग हो ऐसे मनुष्य खानेके साथ जल न पीवें ॥ २६ ॥ और भोजनपर जल पीकर या वैसेही पानी पीकर मार्ग चलना, पुकारकर बोलना, पढना, गाना, सोना ये काम नहीं करने चाहिये यदि ऐसा करे तो इससे (अनुपान) पिया जल आमाशयको दूषित करके कंठ या हृदयमें स्थित हुआ मुहसे पानी (राल) बहना, मंदाग्नि, वमन इत्यादि अनेक रोगपैदा करता है॥ २७॥

गुरुलाघवचिंतेयं स्वभावं नातिवर्तते ॥ तथा संस्कारमात्रान्नं कालांश्चाप्युत्तरोत्तरम् ॥ २८ ॥ मंदकर्मानलारोग्याः सुकुमाराः सुखोचिताः ॥ जंतवो ये तु तेषां हि चिंतेयं परिकीर्तिता ॥ ॥ २९ ॥ बलिनः खरभक्ष्या ये ये च दीप्ताग्नयो नराः ॥ कर्मनित्याश्च ये तेषां नावश्यं परिकीर्त्यते ॥ ३० ॥

इत्यनुपानवर्गः ।

यह गुरु और लघुताकी चिंता स्वभावको अतिक्रमण करके नहीं वर्तती है । तथा संस्कार और मात्रा और अन्न तथा समय ये उत्तरोत्तर (गुरुता, लघुता करनेवाले हैं) अर्थात् गुरुता, लघुता इन्हें भी उल्लंघन नहीं करती है॥ २८॥ जिसकी मंदक्रिया हो, जो मन्दाग्निवाला हो, जिसकी स्वस्थता मंद हो तथा जो सुकुमार (कोमलमनुष्य) हो, या सुखमें सदा रहते हों उनको यह गरिष्ठता, लघुता तथा अनुपान आदिकी चिंता करनी चाहिये॥ २९ ॥ और जो बलवान् हों, तीक्ष्ण २ वस्तु खाते रहते हों, जिनकी जठराग्नि दीप्त हो या जो मनुष्य नित्य परिश्रम करते हों, उनको गारिष्ठता, लघुता और अनुपान आदिकी उतनी चिंता करनी आवश्यक नहीं है॥ ३० ॥

इत्यनुपानवर्गः ।

अथाहारविधिः ।

अथाहारविधिं वत्स विस्तरेणाखिलं शृणु ॥ आप्तान्वितं समं कीर्णं शुचि कार्यं महानसम् ॥ १ ॥ तत्रासैर्गुणसंपन्नमन्नं भक्ष्यं

(सूत्र १) "आप्तः" रागद्वेषादिवर्जितो यथार्थोपदेष्टा भ्रमादिशून्यो यथार्थज्ञाता चेति । "कीर्णम्" आच्छन्नमिति शब्दस्तोमः । (सूत्र २) गुणसंपन्नं भक्ष्यमन्नमिति इष्टरसगंधवर्णस्पर्शोपेतम् ।

सुसंस्कृतम् ॥ शुचौ देशे सुसंगुप्तं समुपस्थापयेद्भिषक् ॥ २ ॥
विषघ्नैरगदैः स्पृष्टं प्रोक्षितं व्यजनोदकैः ॥ सिद्धैर्मन्त्रैर्हृतविषं सिद्धमन्नं निवेदयेत् ॥ ३ ॥

श्रीयुत भगवान् धन्वंतरिजी कहते हैं कि-हे वत्स ! सुश्रुत अब यहांसे अगाड़ी आहारकी विधि सम्पूर्ण विस्तारपूर्वक श्रवण करो कि (प्रथम) ऐसा महानस अर्थात् रसोईका स्थान नियत करना चाहिये जहां आप्त (समझदार वैद्य और पाकक्रियामें निपुण रसोइया मौजूद हों) तथा स्थान सम और कीर्ण (आच्छन्न) तथा पवित्र हो ॥ १ ॥ उस रसोईके स्थानमें यथार्थ गुणयुक्त मनुष्योंसे संस्कार किया (बनायाहुआ) गुणकारी भक्ष्यभोज्यादि अन्न पवित्रस्थान (चौकीआदिपर) सुगुप्त (ढकने अँगोछे आदिसे ढकाहुआ) वैद्यको रखना चाहिये ॥ २ ॥ फिर विष दूर करनेवाली औषधोंसे स्पष्ट कियाहुआ (जिन २ पदार्थोंमें जो २ अंश हानिकारक हैं उन्हें दूर करके या उनका विषप्रभाव दूर करनेवाले पदार्थोंका उपयोग करके) और पंखेआदिसे ठीक २ ठंढा करके और सिद्ध मन्त्रोंकरके जलादिसे मार्जन करके और विषप्रभावकी परीक्षा करके यदि हो तो उससे बचायाहुआ सिद्धअन्न (राजा या अमीरके सामने भोजनके लिये) निवेदन करे ॥ ३ ॥

वक्ष्याम्यतः परं कृत्स्नमाहारस्योपकल्पनाम् ॥ ४ ॥

इससे अगाड़ी आहारकी सम्पूर्ण उपकल्पनाको वर्णन करते हैं कि किसप्रकार परोसना चाहिये और किस क्रमसे भोजन करना चाहिये ॥ ४ ॥

भोजनपात्रविवेचन ।

घृतं कार्ष्णायसे देयं पेया देया तु राजते ॥ फलानि सर्वभक्ष्यांश्च प्रदद्याद्वै दलेषु च ॥ ५ ॥ परिशुष्कप्रदिग्धानि सौवर्णेषु प्रकल्पयेत् ॥ प्रद्रवाणि रसांश्चैव राजतेषूपहारयेत् ॥ ६ ॥ कट्वराणि खडांश्चैव सर्वाञ्छैलेषु दापयेत् ॥ दद्यात्ताम्रमये पात्रे सुशीतं सुशृतं पयः ॥ ७ ॥ पानीयं पानकं मद्यं मृन्मयेषु प्रदापयेत् ॥ काचस्फटिकपात्रेषु शीतलेषु शुभेषु च ॥ दद्याद्वैडूर्यपात्रेषु रागखांडवसट्टकान् ॥ ८ ॥

(सूत्र ३) प्रोक्षितं व्यजनोदकैरिति अथर्वमंत्रैरभिमन्त्रितम् । अन्ये तु व्यजनोदकैरिति अगदस्यैव विशेषणं कथयंति तेषां मते अगदोदकक्षालितव्यजनैर्वीजितमविषीभवत्यन्नं सिद्धैः मंत्रविशारदैः कुरुकुल्लाभेरुडाप्रभृतिभिर्हृतविषमन्नामिति संबंधः । (निबंधसंग्रहः) (सूत्र ४) स्वभावसंयोगसंस्कारमात्रादेशकालोपयोगव्यवस्थाः सप्ताहारकल्पनाः इति वाग्भटः । (सूत्र५) कृष्णायसे कांतलोहपात्रे । वैदलेषु इत्यत्र वै पादपूरणेऽव्ययम्, दलेष्विति पत्रेषु । ताम्रपात्रे पय इत्यत्र पयःशब्देन जलस्यैव ग्रहणं ताम्रपात्रे दुग्धस्य विकारकारित्वात् । अथवा पयःशब्देन दुग्धस्यैव ग्रहणं तदा ताम्रमये पात्रे ईषत्ताम्रमये पात्रेपि पित्तलजे कांस्यजे वा दुग्धं देयमिति भावार्थः ।

कृष्णायस (कांतलोह) के पात्रमें घृत परोसना (रखना) चाहिये और पेयापदार्थ (यूषादि) चांदीके पात्रमें रखकर देने चाहिये । फल सबप्रकारके भक्ष्यपत्रों (ढाक कमलआदिके पत्रों) पर रखने चाहिये ॥५॥ खुश्कपदार्थ और घृतके सिके पदार्थ सुवर्णके पात्रमें रखकर देने चाहिये । और द्रव (पतले) पदार्थ और रस ये भी चाँदीके पात्रमें देने चाहिये ॥ ६ ॥ कट्वर (छाछ, कांजी आदि) तथा खंड (कढी) ये पत्थरके पात्रमें परोसनी चाहिये और खूब उबालाहुआ फिर शीतल कियाहुआ दूध ताँबेके पात्रमें देना (और कई ऐसा कहते हैं कि गरम करके ठंढा किया ऐसा पानी यदि देना हो तो ताँबेके पात्रमें देना चाहिये और यही अर्थ ठीक है क्योंकि ताँबेके पात्रमें दूधका कई ठौर निषेध किया है और ताँबेमें दूध शीघ्र बिगडभी जाताहै) ॥७॥ पीनेका पानी तथा पानक (पन्ने) (अमलीके पन्ने जीरेके पन्ने आदि) तथा मद्य ये मिट्टीके पात्रमें देने चाहिये । अथवा काच या बिल्लोरके गिलासोंमें देने चाहिये । अथवा और किसी वस्तुके शीतल उज्ज्वलपात्रमें देने चाहिये । तथा रागखांडव और सट्टक (मीठे पन्ने) वैडूर्य (जमुरुद) के पात्रोंमें देने चाहिये ॥ ८ ॥

पुरस्ताद्विमले पात्रे सुविस्तीर्णे मनोरमे॥सूदः सूपौदनं दद्यात्प्रदेहांश्च सुसंस्कृतान् ॥९॥फलानि सर्वभक्ष्यांश्च परिशुष्कानि यानि च ॥ तानि दक्षिणपार्श्वे तु भुंजानस्योपकल्पयेत् ॥ १० ॥ प्रद्रवाणि रसांश्चैव पानीयं पानकं पयः ॥ खाडान्यूषांश्च पेयांश्च सव्ये पार्श्वे प्रदापयेत् ॥११ ॥ सर्वान्गुडविकारांश्च रागखांडवसट्टकान्॥ पुरस्तात्स्थापयेत्प्राज्ञो द्वयोरपि च मध्यतः ॥ १२ ॥

अच्छे, निर्मल, चौडे, मनोहरपात्र (थालमें) सामने भात परोसकर रसोइया रक्खे और सामनेही संस्कारकिये हुए प्रदेह (नरमपदार्थ हलवा आदि) को स्थापन करे ॥ ९ ॥ फल और सबप्रकारके भक्ष्यपदार्थ और जो सूखेपदार्थ हों उन्हें भोजन करनेवालेके दाहनी तरफ रखदे ॥ १० ॥ द्रव (पतले) पदार्थ और रस (मांसरसादि) तथा पानी और पन्ने, दूध तथा कढी विशेष और यूष तथा इतर पीनेके पदार्थ सव्य (बाईतरफ) को रखने चाहिये ॥ ११ ॥ सबप्रकारके गुडविकार (खांड शक्कर) आदि भोजन तथा रागखांडव और सट्टक इन्हें दोनोंके मध्यमें बुद्धिमान् सन्मुख रक्खे ॥ १२ ॥

(सूत्र ११) यद्यपि कुत्रचिद्धर्मशास्त्रग्रंथे पानीयपात्रं दक्षिणे पार्श्वे स्थाप्यमिति दृश्यते परं तु वैद्यकशास्त्रग्रंथेषु सर्वत्र वामपार्श्वे स्थाप्यमिति निश्चीयते तत्राह वाग्भटः–'दक्षिणे पार्श्वे भक्ष्यं स्थापयेत् सव्ये पेयम्' इति । सव्ये वामे ।

एवं विज्ञाय मतिमान्भोजनस्योपकल्पनाम् ॥ भोक्तारं विजने रम्ये निःसंबाधे शुभे शुचौ ॥ १३ ॥ सुगंधिपुष्परचिते समे देशेऽथ भोजयेत्॥विशिष्टमिष्टसंस्कारैः पथ्यैरिष्टै रसादिभिः॥१४॥

ऐसे बुद्धिमान् वैद्य या रसोइया भोजनकी उपकल्पना (परोसगारी) करके (या समझकर) भोजन करनेवाले महाशयको एकांत, रमणीक, निःशंक, सुन्दर और पवित्रस्थानमें जहां सुगंधियुक्त पुष्पोंसे रचित समान जगह हो विशेषकर वांछित या मिष्टसंस्कार कियेहुए मनोभिलषितपदार्थों और पथ्यभोजनों और यथेच्छरसादिकरके भोजन करावे ॥ १३ ॥ १४ ॥

मनोज्ञं शुचि नात्युष्णं प्रत्यग्रमशनं हितम् ॥ पूर्वं मधुरमश्नीयान्मध्येऽम्ललवणौ रसौ॥ पश्चाच्छेषान्रसान्वैद्यो भोजनेष्ववचारयेत् १५॥

भोजन करनेवालेको चाहिये कि, जो पदार्थ मनको भावे और पवित्र हो तथा अतिगरम न हो और ताजा हो उसे भोजन करे तो हित होताहै। पहले मधुर भोजन करना चाहिये और बीचमें खट्टा और नमकीन रस खावे इसके पीछे वैद्यको चाहिये कि, भोजनमें और कटुतिक्तादिरसभी परोसे ॥ १५ ॥

आदौ फलानि भुंजीत दाडिमादीनि बुद्धिमान् ॥ ततः पेयांस्ततो भोज्यान्भक्ष्यांश्चित्रांस्ततः परम् ॥ १६ ॥ घनं पूर्वं समश्नीयात्केचिदाहुर्विपर्ययम् ॥ १७ ॥ आदावंते च मध्ये च भोजनस्य तु शस्यते ॥ निरत्ययं दोषहरं फलेष्वामलकं नृणाम् ॥ १८॥ मृणालबिसशालूककंदेक्षुप्रभृतीनि च ॥ पूर्वं योज्यानि भिषजा न तु भुक्ते कथंचन ॥ १९ ॥

यदि दाडिमआदि फल भोजनमें हों तो उन्हें बुद्धिमान् पहले खाय उसके पीछे पेय (पतले) पदार्थ, फिर भोज्य (खीर, हलवा आदि), फिर भक्ष्य (लड्डू, कचौरी, फुलके आदि), फिर चित्रविचित्र (पापड, करेली आदि) खाने चाहिये १६॥

(सूत्र १४) विशिष्टमिष्टसस्कारैरिति विशिष्टा ये इष्टसंस्कारा: तैः । अथवा इष्टसंस्कारैर्विशिष्टम् ।

(सूत्र १५) प्रत्यग्रमभिनवम् । कालक्रमभेदेनाहारविधि दर्शयति पूर्वं मधुरमिति । बुभुक्षिते पुरुषे वातपित्तप्रशमनाय प्रथमं मधुरो रसः अम्ललवणौ भोजनमध्यस्थौ पित्ताशये चाग्निदीप्ति कुरुतः अते कफजयाय कट्वादयः इति डल्हनः। केचित्तु भोजनावसाने दुग्धं पेयमिति वदंति तथा चोक्तं भावमिश्रेण "विदाहीन्यन्नपानानि यानि भुक्ते हि मानवः ॥ तद्विदाहप्रशांत्यर्थं भोजनांते पयः पिबेत्" तत्रैवान्यच्च "कुर्यात्क्षीरांतमाहारं दध्यंत न कदाचन ॥ लवणाम्लकटूष्णानि विदाहीन्यति यानि तु ॥ तद्दोषं हर्तुमाहारं मधुरेण समापयेत्" इति ।

पहले गाढा या कडा पदार्थ खाना चाहिये पीछे पतले और कई इसके विपरीत पहले पतले पछि गाढे पदार्थ खाने चाहिये ऐसा कहते हैं ॥ १७ ॥ भोजनके आदिमें और मध्यमें तथा अन्तमें किसी समय खावो फलोंमेंसे आँवलेका खाना निरोगकारक और मनुष्योंके वातादि दोषका हरनेवाला है ॥१८॥ और कमलकी डंडी, जड तथा शालूक और कंद, इक्षु इत्यादि ये यदि हों तो वैद्यको चाहिये कि भोजनसे पहले देवे भोजनके पीछे कभी तुरतही नहीं देवे ॥ १९ ॥

भोजननियम ।

सुखमुच्चैः समासीनः समदेहोऽन्नतत्परः ॥ काले सात्म्यं लघु स्निग्धं क्षिप्रमुष्णं द्रवोत्तरम् ॥ बुभुक्षितोऽन्नमश्नीयान्मात्रावद्विदितागमः ॥ २० ॥ काले भुक्तं प्रीणयति सात्म्यमन्नं न बाधते ॥ लघु शीघ्रं व्रजेत्पाकं स्निग्धोष्णं बलवह्निदम् ॥ २१ ॥ क्षिप्रं भुक्तं समं पाकं यात्यदोषं द्रवोत्तरम् ॥ सुखं जीर्यति मात्रावद्धातुसाम्यं करोति च॥२२॥

सुखपूर्वक ऊँचा बैठकर देहको समान करके (कोई दाहनी बाँईओर नीचा ऊँचा न रहे) और भोजनमें चित्त लगाकर (भोजन करे) और समयपर (भूखके समय) भोजन करे । और जो शरीर, प्रकृति, देश, काल, व्याधि आदिको सानुकल हो और हलका हो, स्निग्ध (थोडा २ गरम) हो ऐसा भोजन करना चाहिये । और क्षिप्र अर्थात् शीघ्र २ भोजन करे (बहुत देरतक नहीं चिगलाकरे पर ऐसी शीघ्रताभी नहीं करे जिससे साबत टुकडेही निगले जायँ) और भोजन करके पीछेसे पतले वस्तु दुग्ध, जल आदिभी पीवे । समझदारको चाहिये कि, जब ठीक २ क्षुधा हो तबभी प्रमाणका भोजन करे ॥ २० ॥ क्योंकि (भूखके) समयका भोजन कियाहुआ ठीक तृप्ति करता है और सानुकूल अन्नका भोजन बाधा नहीं करता । हलका भोजन शीघ्र पचजाता है और स्निग्ध बलदायक है । तथा उष्ण जठराग्नि दीप्त करताहै ॥ २१ ॥ और शीघ्र खायाहुआ समानतासे पाकको प्राप्त होता है । और ऊपरसे द्रवपदार्थ पीनेसे (पूर्वकृत सघनअन्नका) दोष शांत होताहै । और प्रमाणका भोजन कियाहुआ सुखसे पचजाता है और सबधातुवोंके (रक्त, मांस आदि । में साम्यता करता है । वृद्धि, क्षय अयोग्य नहीं होनेदेता है ॥ २२ ॥

(सूत्र २०) अन्नतत्पर इति न कामादिव्यग्रमना भुञ्जीत । काले इति कालो द्विविधः नित्यगः आवस्थिकश्च । नित्यगस्तु 'याममध्ये न भोक्तव्य यामयुग्म न लघयेत्' इत्याद्युपलक्षितः । आवस्थिकस्तु "क्षुत्संभवति पक्वेषु रसदोषमलेषु च ॥ काले वा यदि वाऽकाले सोऽन्नकाल उदाहृत." इत्याद्युपलक्षितः । क्षिप्रं नातिद्रुतं नातिविलंबितामिति (निबंधकारः) (सूत्र २१) स्निग्धोष्ण बलवह्निदमित्यत्र स्निग्धं बलप्रदमुष्णं वह्निप्रदमित्यर्थः (इति डल्लनः) ॥

अतीवायतथामास्तु क्षपा येष्वृतुषु स्मृताः ॥ तेषु तत्प्रत्यनीकाढ्यं भुंजीत प्रातरेव तु ॥२३॥ येषु चापि भवेयुश्च दिवसा भृशमायताः॥ तेषु तत्कालविहितमपराह्णे प्रशस्यते॥२४॥ रजन्यो दिवसाश्चैव येषु चापि समाः स्मृताः॥कृत्वा सममहोरात्रं तेषु भुंजीत भोजनम्॥२५॥

जिन ऋतुओंमें रात्री बडी होती हैं उन ऋतुओंमें (सरदीके मौसममें) ऋतु-दोषके प्रतीकारके अनुसार तरगरम प्रातःकाल (सवापहर दिनचढे) भोजन करना चाहिये ॥ २३ ॥ और जिन ऋतुओंमें दिन बडे हों (गरमी बरसातमें) उन ऋतुओंमें उस समयके अनुसार (पतला ठंढ) अपराह्णकालमें (साढे तीन पहर दिनचढे तीसरे पहरके भी पीछे) भोजन करना श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥ और जिन ऋतु-ओंमें दिन रात्रि समान होते हैं उनमें दिन रात्रिके समान भाग करके (मध्याह्नमें) भोजन करना चाहिये ॥ २५ ॥

(वक्तव्य)यह नियम एकवार भोजन करनेवाले यति वनवासी,मनुष्योंके लिये हैं और गृहस्थियोंके लिये दोवारका भोजन इस,भांतिसे है कि-(देखो भावमिश्रका लेख)

श्लोक-प्रातः सायं मनुष्याणां भोजनं श्रुतिबोधितम् ॥ नांतरा भोजनं कुर्यादग्नि-होत्रसमो विधिः ॥ १ ॥ याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मं न लंघयेत् ॥ याममध्ये रसोत्पत्तिर्यामयुग्माद्बलक्षयः ॥ २ ॥

अर्थ-प्रातःकाल और सायंकाल मनुष्योंको दो समयका भोजन वेदसे बोधित होता है इसकारण बीचमें भोजन नहीं करना चाहिये यह भी अग्निहोत्रके समान विधि है ॥१॥ तिसमें प्रभातका भोजन पहले पहरमें न करना और दोपहर उल्लंघन नहीं करने क्योंकि, पहले पहरमें खानेसे रसाजीर्णकी उत्पत्ति होती है और दोप-हर लांघजानेसे बलक्षय होता है (इससे प्रभातका भोजन वही सवापहर दिनचढे करना उचित है) ॥ २ ॥

श्लोक-रात्रौ तु भोजनं कुर्यात्प्रथमप्रहरांतरे ॥

अर्थ-रात्रिमें पहले पहरहीमें भोजन करना चाहिये अधिक रातगये नहीं यह सामान्य समय कहा है ॥

नाप्राप्तातीतकालं वा हीनाधिकमथापि वा ॥ २६ ॥ अप्राप्त-काले भुंजानः शरीरे ह्यलघौ नरः ॥ तांस्तान्व्याधीनवाप्नोति

(सूत्र २३) तत्प्रत्यनीकाढ्यं बृंहणं स्निग्धं च । (सूत्र २४) तत्कालविहितं द्रवस्निग्धशीतमधुरप्रायम्। (सूत्र २३-२५) अयमेकाशनस्य पुरुषस्य विधिः । द्विरश्नतः पुनः प्रातर्भोजनमात्रया अर्द्धमात्रं त्रिभागं वा भोज्यं रात्रौ तत्र प्रातर्भोजनं सपादे प्रहरे द्वितीयं भोजनं त्वर्द्धचतुर्थप्रहरोपरि इति पंजिकाकारः। पंजिका सुश्रुतस्य प्राचीनटीका।

मरणं वा नियच्छति ॥ २७ ॥ अतीतकाले भुंजानो वायुनोपहतेऽनले ॥ कृच्छ्राद्विपच्यते भुक्तं द्वितीयं च न कांक्षति ॥ २८ ॥ हीनमात्रमसंतोषं करोति च बलक्षयम् ॥ आलस्यगौरवाटोपसादांश्च कुरुतेऽधिकम् ॥ २९ ॥ तस्मात्सुसंस्कृतं युक्त्या दोषैरेतैर्विवर्जितम् ॥ यथोक्तगुणसंपन्नमुपसेवेत भोजनम् ॥ विभज्य कालदोषादीन् कालयोरुभयोरपि ॥ ३० ॥

भोजनके समयसे पहले और समयसे पीछे भोजन नहीं करना चाहिये । तथा हीन (क्षुधासे अतिस्वल्प) और अधिक (क्षुधासे अतिजादा) भोजन भी उचित नहीं ॥ २६ ॥ क्योंकि, भोजनके समयसे पहले जब कि शरीर ठीक हलका न हो उससमय खानेसे उसप्रकारकी व्याधि (अजीर्णादि) को प्राप्त होवे अथवा मृत्यु होजाय ॥ २७ ॥ और भोजनके समयसे पीछे जब वायु बढकर जठराग्निको नष्ट करदेता है तब भोजन कियाहुआ कष्टसे पचता है और दूसरेवार भोजनकी इच्छा नहीं होती ॥ २८ ॥ क्षुधासे हीन (अल्प) मात्रा भोजन करनेसे संतोष नहीं होता और बलको क्षय करता है । तथा अधिक भोजन आलस्य, भारीपन, आटोप (अफारा) और मन्दाग्नि करता है ॥ २९ ॥ तिसकारणसे संस्कार कियाहुआ युक्तिपूर्वक इन उपरोक्त दोषोंसे वर्जित और यथोक्त गुणसे युक्त भोजनको समय और दोषादिककी विवेचना करके दोनों समय (तडके, सांझ अर्थात् सवापहर अनुमान दिनचढे और घडी चारेक रातगये) भोजन करना उचित है ॥ ३० ॥

अचोक्षं दुष्टमुच्छिष्टं पाषाणतृणलोष्टवत् ॥ द्विष्टं व्युषितमस्वादु पूति चान्नं विवर्जयेत् ॥ ३१ ॥ चिरसिद्धं स्थिरं शीतमन्नमुष्णीकृतं पुनः ॥ अशांतमुपदग्धं च तथा स्वादु न लक्ष्यते ॥ ३२ ॥ यद्यत्स्वादुतरं तत्तद्विदध्यादुत्तरोत्तरम् ॥ प्रक्षालयेदद्भिरास्यं भुंजानस्य मुहुर्मुहुः ॥ ३३ ॥ विशुद्धरसने तस्मै रोचतेऽन्नमपूर्ववत् ॥ स्वादुना तस्य रसनं प्रथमेनापि तर्पितम् ॥ न तथा स्वादयेदन्यत्तस्मात्प्रक्षाल्यमंतरा ॥ ३४ ॥

(सूत्र २८) द्वितीयं रात्रिभोजनम् । (सूत्र ३०) 'कालयोरुभयोरपि' इति कथनेन वारद्वयमेव-भोजनं सूचितम् । भोजनमात्रां केचिदेवमाहुः "अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशौ पानेनैकं तु पूरयेत् ॥ वायोः संचारणार्थाय चतुर्थमवशेषयेत्" इति । (सूत्र ३१) अचोक्षमपवित्रम् । दुष्टं दूषितम् । द्विष्टं मनःप्रतिघाति । (सूत्र ३२) चिरसिद्धमित्यादि तथा यत्स्वादु न लक्ष्यते तदपि वर्जयेदित्यन्वयः । (सूत्र ३३) आस्यं प्रक्षालयेदिति गडूषं कारयेत् ।

अचोक्ष (मलीनअन्न), दुष्ट (दूषित), उच्छिष्ट (जूठा), तथा कंकर, मिट्टी, चूना, छिन और तृण (घास, फूस, तिनके) तथा लोष्ट, (लोहेकी कील, सूई तथा धातुओंके टुकडे) इत्यादि जिसमें हों तथा द्विष्ट (जिसे जी नहीं चाहे), व्युषित (बासी), अस्वादु (जो सवादहीन) तथा पूति (शढित या दुर्गंधित)इतने प्रकारका भोजन वर्जित है ॥३१॥ बहुतदिनका बनाहुआ, स्थिर (जो कडा होगया हो) तथा बहुत शीतल अन्न, फिर गरम कियाहुआ तथा अशांत (जो ठीक नहीं बना हो), उपदग्ध (जो जलगया हो) और जिसका स्वाद मालूम न पडे ऐसे पदार्थ भी खानेमें वर्जित हैं ॥ ३२ ॥ जो जो अधिक २ स्वादु पदार्थ हों उन्हें उत्तरोत्तर भोजन करे और भोजनके बीचमें एक रस या पदार्थ खाकर बीचमें मुहको जलके कुल्हे आदिसे साफ करना चाहिये ॥३३॥ क्योंकि, जब मुह साफ होजायगा तब दूसरा पदार्थ पहलेके भांति रुचिकारक होगा यदि कुल्हे न करें तो पहले स्वादु भोजनसें रसना भरी हुई रहती है (और दूसरेका ठीकस्वाद नहीं आता) इसीसे बीच २ में मुँह साफ करना चाहिये और इसके सिवाय (विना मुह साफ किये) अन्यपदार्थ नहीं खाना चाहिये ॥ ३४ ॥

सौमनस्यं बलं पुष्टिमुत्साहं हर्षणं सुखम् ॥ स्वादु संजनयत्यन्नमस्वादु च विपर्ययम् ॥ ३५ ॥ भुक्त्वा च यत्प्रार्थयते भूयस्तत्स्वादु भोजनम् ॥ अशितश्चोदकं युक्त्या भुंजानश्चांतरा पिबेत् ॥ ॥ ३६ ॥ दंतांतरगतं चान्नं शोधनेनाहरेच्छनैः ॥ कुर्यादनाहृतं तद्धि मुखस्यानिष्टगंधताम् ॥ ३७ ॥

स्वादु (सवाद) भोजन मनकी सुन्दरता करता है, बल और पुष्टि तथा उत्साह हर्ष और सुख पैदा करता है । और अस्वादु भोजन इससे विपरीत अवगुण करता-है ॥ ३५ ॥ जिसे भोजन करके बार बार फिर उसकी आकांक्षा हो वह भोजन स्वादु है और भोजन करके पिछाडी मात्रायुक्त जल पीना चाहिये ॥ ३६ ॥ फिर दांतोंमें मसूडों आदिमें जो अन्न लगा हो शनैः शनैः (जलादिसे और दाँतकुरेदनीसे) खूब शुद्ध करे क्योंकि, यदि दांतों आदिका लगा अन्नमैल नहीं शुद्ध किया जाय तो मुखमें दुर्गंध पैदा करदेता है ॥ ३७ ॥

जीर्णेऽन्ने वर्द्धते वायुर्विदग्धे पित्तमेव तु ॥
भुक्तमात्रे कफश्चापि तस्माद्भुक्ते हरेत्कफम् ॥ ३८ ॥

अन्नके पचजानेपर वायु वर्द्धित होता है और पचतेसमय पित्त वर्द्धित होता है। तथा भोजन करतेही कफ बढता है।इससे भोजन करतेही कफहरण क्रिया करनी चाहिये ३८॥

(सूत्र ३६) अशितः कृतभोजनः युक्त्या उदकं पिबेत् । तथा च भुंजानः भोजनं कुर्वन् अंतरा मध्ये चापि उदकं पिबेत् इत्यर्थः ।

धूमेनापोह्य हृद्यैर्वा कषायकटुतिक्तकैः ॥ पूगकंकोलकर्पूरलवंग-
सुमनःफलैः ॥ ३९ ॥ कटुतिक्तकषायैर्वा मुखवैशद्यकारकैः ॥
तांबूलपत्रसहितैः सुगंधैर्वा विचक्षणः ॥ ४० ॥

भोजन पीछे धूमपान करके अथवा हृदयको हित ऐसे कसेले, चरपरे, कडवे पदार्थोंसे सुपारी, कंकोल, कपूर, लवंग, जायफलआदिसे कफकी शांतिकरे॥ ३९॥ तथा मुखको साफकरनेवाले कटु, तिक्त, कसेले पदार्थोंसे तथा तांबूल सहित सुगंधद्रव्योंसे चतुरमनुष्य मुखको साफ करे ॥ ४० ॥

भुक्त्वा राजवदासीत यावदन्नक्रमो गतः ॥ ततः पदशतं गत्वा
वामपार्श्वे तु संविशेत् ॥४१॥ शब्दरूपरसान्गंधान्स्पर्शांश्च मनसः
प्रियान् ॥ भुक्तवाननुसेवेत तेनान्नं साधु तिष्ठति ॥ ४२ ॥
शब्दरूपरसस्पर्शगंधांश्चापि जुगुप्सिताः ॥ अशुच्यन्नं तथा
भुक्तमतिहास्यं च वामयेत् ॥ ४३ ॥

भोजन करके राजाकी तरह सुखपूर्वक आराम करे जबतक अन्नका क्रम (भारीपन) रहे। फिर शतपद (अनुमान सौ कदम चहलकदमी करके) टहलके बाँयी करवट लेटजाना चाहिये ॥ ४१ ॥ और भोजन करके मनभावते हुए शब्द सुनने, रूप देखने, रस सेवन करने, गंध सूंघने तथा स्पर्श करने चाहिये। जिससे ठीक २ अन्न आमाशयमें स्थित रहकर पचनेलगे ॥ ४२ ॥ और खराब, खोटे शब्द, भयानक या गन्धे पदार्थ देखने, बुरेरस खाने, खोटी वस्तु छूने, दुर्गंध सूंघने तथा अशुद्धअन्न खाने और अत्यन्त हँसनेसे वमन होजाता है ॥ ४३ ॥

शयनं चासनं वापि नेच्छेद्वापि द्रवोत्तरम् ॥ नाग्न्यातपौ न
प्लवनं न यानं नापि वाहनम् ॥ ४४ ॥ न चैकरससेवायां प्रस-
ज्येत कदाचन॥ शाकावरान्नभूयिष्ठमम्लं च न समाचरेत् ॥
एकैकशः समस्तान्वा नाप्यश्नीयाद्रसान् सदा ॥ ४५ ॥

भोजनके पीछे शयन (ग्रीष्मके सिवाय नींदभर सोना) तथा देरतक एक आसन बैठना इनकी भी इच्छा न करे और द्रवोत्तर (द्रवाढ्य बहुतपतलाही पतला) बहुत नहीं खाया करे। तथा भोजनके पीछे अग्निसे तपना, धूपमें फिरना तथा जलमें तैरना, घोडे आदिपर चढना, रथआदिमें बैठना (यदि होसके तो) न करे ॥ ४४ ॥ और हमेशा या अधिक एकही रसके सेवनमें प्रवृत्त न हो तथा अत्यन्त

(सूत्र ३९-४०) धूमेन धूमपानेन हृद्यैर्वा आपोह्य कफ स्फोटयित्वा राजवदासीत इति परेणान्वयो द्रष्टव्य.। (सूत्र ४५) एकरसं सदा न भुंजीत समस्तान् रसान् मेलयित्वा अपि नाश्नीयादित्यर्थः।

शाक और विदलअन्न तथा खटाईभी प्रायः नहीं खावे और ऐसाभी न करे कि कुछ दिन अकेला एक २ ही रस खावे । और ऐसा भी न करे कि हमेशा (भावते बेभावते) सभी रस जरूर खावे और कई ऐसा अर्थ करते हैं कि, सब रसोंको मिलाकर नहीं खाना चाहिये सो यही अर्थ ठीक है क्योंकि खानेकी तो आज्ञा और विधि सब लिखचुके हैं ॥ ४५ ॥

प्राग्भुक्ते त्वविविक्तेऽग्नौ द्विरन्नं न समाचरेत् ॥ पूर्वभुक्ते विदग्धेऽन्ने भुंजानो हंति पावकम् ॥ ४६ ॥ मात्रागुरुं परिहरेदाहारं द्रव्यतश्च यः ॥ पिष्टान्नं नैव भुंजीत मात्रया वा बुभुक्षितः ॥४७॥ द्विगुणं च पिवेत्तोयं सुखं सम्यक् प्रजीर्यति॥पेयलेह्याद्यभक्ष्याणां गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ॥ ४८ ॥ गुरूणामर्द्धसौहित्यं लघूनां तृप्तिरिष्यते ॥ द्रवोत्तरो द्रवश्चापि न मात्रागुरुरिष्यते ॥ ४९ ॥

पहलेका भोजन कियाहुआ जठराग्नि करके ठीक २ नहीं पचा हो तब दूसरा भोजन करना उचित नहीं क्योंकि, जब पहलेका आहार विन पचा हो उसपर भोजन करनेसे जठराग्नि नष्ट होता है ॥ ४६ ॥ और मात्रा (प्रमाण) से भारी तथा द्रव्यसे भारी तथा पिष्टान्न अर्थात् संस्कारसे भारी भोजन करना भी उचित नहीं । यदि पिष्टान्न आदि (पिट्ठीकी वस्तु आदि) क्षुधाके समय भोजन भी करे तो प्रमाणसे (स्वल्पमात्रा) करे ॥ ४७ ॥ (पिष्टान्नादि भोजन किया हो तो) दूना जल पीना चाहिये जिससे सुखपूर्वक पचजाय और पीनेकी वस्तु, चाटनेकी वस्तु आद्यशब्द करके भोज्यवस्तु तथा भक्ष्यवस्तु ये उत्तरोत्तर भारी (गरिष्ठ) हैं ॥४८॥ गरिष्ठ (भारी) भोजन करे तब आधीतृप्ति करनी चाहिये (या पादशेष) इसीसे तृप्ति होजाती है । और लघुभोजन हो तो तृप्तिपर्यंत भोजन करलेना चाहिये । और जो पतली वस्तु पहले खाई हो तो उसपर और पतली ही खाना मात्रागुरु नहीं होता है ॥ ४९ ॥

अजीर्णका कारण ।

द्रवाढ्यमपि शुष्कं तु सम्यगेवोपपद्यते ॥ विशुष्कमन्नमभ्यस्तं न पाकं साधु गच्छति ॥ ५० ॥ पिंडीकृतमसंक्लिन्नं विदाह-

---

(सूत्र ४६) अविविक्तेऽग्नौ अविवेचनकृते जठरानले जठराग्निना न सम्यक् पाक गतेऽन्ने इत्यर्थः । द्विरन्नं द्वितीयभोजनम् । विदग्धे किंचित्पक्के किंचिदामे । (सूत्र ४७) मात्रागुरुं लघूनां मुद्गादीनामपि मात्रया गुरुमाहारं न कुर्यादिति । द्रव्यतः गुरुं माषमहिषवराहपिशितादिकम् । संस्कारगुरुं पिष्टान्नम् । यदि कथंचित् पिष्टान्नादिकं सेवेत तदा बुभुक्षित एवापि मात्रया स्वल्पमेव भुंजीत नान्यथेति । (सूत्र ४८) पिष्टान्नादिभोजने वा द्विगुणं जलं पिवेदिति । (सूत्र ४९) गुरूणामर्द्धसौहित्यमिति गुरूणामर्द्धतृप्तिपर्यंतमेव भुंजीत नाधिकमेव भुंजीतेति ।

मुपगच्छति ॥ स्रोतस्यन्नवहे पित्तं पक्तौ वा यस्य तिष्ठति ५१ ॥
विदाहि भुक्तमन्यद्वा तस्याप्यन्नं विदह्यते ॥ शुष्कं विरुद्धं
विष्टंभि वह्निव्यापदमावहेत् ॥ ५२ ॥

पतले आहारसे मिलाहुआ शुष्क (खुश्क) आहार ठीक २ पचता है और केवल खुश्क आहार सेवनकियाहुआ अच्छी भांति नहीं पचता है ॥ ५० ॥ किंतु केवल खुश्क आहार पिंडीभूत तथा आर्द्रभावरहित होकर विदाहको प्राप्त होजाता-है (कारण यह कि) अन्नवहानाडियोंके द्वारपर (आमाशयमें) अथवा पक्ति (पक्काशय) में पित्त स्थित होजाता है (उल्वण होकर विदाह उत्पन्न करदेता-है) ॥ ५१ ॥ विदाह पैदा करनेवाला भोजन अथवा और प्रकारका भोजन जिसको विदाह उत्पन्न करे तथा शुष्क (सूखा) भोजन, विरुद्धभोजन और विष्टंभी (कब्जी करनेवाला) भोजन ये जठराग्निमें विकार उत्पन्न करते हैं ॥ ५२ ॥

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ॥
अजीर्णं केचिदिच्छंति चतुर्थं रसशेषतः ॥ ५३ ॥

आमअजीर्ण, विदग्धसंज्ञक अजीर्ण और विष्टब्ध अजीर्ण ये यथाक्रम कफ, पित्त और वायुसे होते हैं अर्थात् कफकृत जठराग्निविकार होनेसे आम (कच्चा भोजन रहना) संज्ञक अजीर्ण होता है । और पित्तकृत जठराग्निविकारसे विदग्ध (जिसमें भुक्तपदार्थ जलकर किट्ट बँधजाय ऐसा) अजीर्ण (या लाल पीला द्रव-रूप हो ऐसा अजीर्ण) होता है । और वायुकृत जठराग्निविकारसे विष्टब्ध (मल रुकजाना, बन्ध पड़जाना, दस्त रुकजाना या थोड़ा २ मल आना या कब्जरहना ऐसा) अजीर्ण होता है । इनके सिवाय चौथा रसशेष अजीर्णभी कई मानते हैं । (रसशेष अजीर्णमें भोजनका रस बहुतसमयतक शेष रहता है जब कफ और वायुके विकारोंसे आमाशय या पक्काशय निर्बल होता है तबही शीघ्रभोजनका रस नहीं पचता है या अतिभोजनादिसे भी यह होजाता है) ॥ ५३ ॥

अत्यंबुपानाद्विषमाशनाद्वा संधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ॥ कालेपि
सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ ५४ ॥
ईर्षाभयक्रोधपरिक्षतेन लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीडितेन ॥ प्रद्वेषयुक्तेन
च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिणाममेति ॥ ५५ ॥

अत्यन्त जल पीनेसे तथा विषम भोजन करनेसे (कई ऐसा भी कहते हैं कि विषम आसनमें बैठ रहनेसे) संधारण (वेगोंके रोकने) से तथा स्वप्नविपर्यय

(सूत्र ५४) संधारणात् वेगविधारणात् ।

(दिनमें अतिसोने और रात्रिको अतिजागने) से समयपर सानुकूल और हलका भोजन कियाहुआ भी मनुष्योंका ठीक नहीं पचता है ॥ ५४ ॥ शारीरक कारणोंके सिवाय अजीर्णके मानसहेतुभी कहते हैं। ईर्षा, भय, क्रोध तथा परिक्षत (चिंता) करनेसे, लोभसे, रुग्णतासे, दैन्य (गरीबी दरिद्रकी असह्यता) से इनकरके पीडित मनुष्योंका तथा द्वेषयुक्त मनुष्योंका भोजन कियाहुआ पदार्थ ठीक २ परिणामको प्राप्त नहीं होता अर्थात् मनमें इतनी बातोंकी उपाधि हो तो कैसाभी भोजन करो उससे ठीक २ रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य और ओजआदि नहीं बनते। जिससे शरीर दुबला और रोगीही रहता है ॥ ५५ ॥

च्यारप्रकारके अजीर्णके संक्षिप्तलक्षण ।

माधुर्यमन्नं गतमामसंज्ञं विदग्धसंज्ञं गतमम्लभावम् ॥ किंचिद्विपक्वं भृशतोदशूलं विष्टब्धमावद्धविरुद्धवातम् ॥ ५६ ॥ उद्गारशुद्धावपि भक्तकांक्षा न जायते हृद्गुरुता च यस्य ॥ रसावशेषेण तु सप्रसकं चतुर्थमेतत्प्रवदन्त्यजीर्णम् ॥ ५७ ॥

आमाजीर्णमें भोजन किया अन्न मधुरताको प्राप्त होता है (और नहीं पकता) और विदग्धअजीर्णमें भोजनकिया अन्न अम्लताको प्राप्त होजाता है (और दग्ध होजाता है) तथा विष्टब्धअजीर्णमें कुछ पका कुछ विनपका भोजनकिया अन्न रहकर अफरा, शूल, कबजीयत और वायुबंध होजाना या विरुद्ध होना (ऊपरको चढना) होता है ॥ ५६ ॥ शुद्ध डकार आनेपरभी भोजनकी इच्छा नहो और हृदयमें भारीपन हो तथा मुहसे पानीसा भरा आवे ये लक्षण रसशेषअजीर्णसे होते हैं इसे चौथा अजीर्ण कहते हैं ॥ ५७ ॥

अजीर्णका उपद्रव ।

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ॥
उपद्रवा भवंत्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ॥ ५८ ॥

मूर्च्छा (बेहोशी), प्रलाप (अस्तव्यस्त वचन कहना), वमथु (छर्दि), प्रसेक (मुहसे पानी भरभरआना), सदन (थकान, आलस्य, निर्बलता) तथा भ्रम अजीर्णसे ये उपद्रवभी होजाते हैं तथा मृत्युभी होजाती है ॥ ५८ ॥

अजीर्णका संक्षिप्तप्रतिकार ।

तत्रामे लंघनं कार्यं विदग्धे वमनं हितम् ॥ विष्टब्धे स्वेदनं पथ्यं

(सूत्र ५६) माधुर्यं गतमामसंज्ञं तत्र तु गौरवश्लेहकंडूप्रभृतीनि च द्रष्टव्यानि विदग्धसंज्ञं किंचिद्विपक्वम्। अत्रापि तिक्ताम्लोद्गारादीनि पित्तकार्याणि द्रष्टव्यानि । आवद्धविरुद्धवात विष्टब्धमत्रापि आवद्धः अप्रवृत्तः विरुद्धः विशेषेण रुद्धः वातो यस्मिन् अत्रापि जृंभादीनि वातकार्याणि द्रष्टव्यानि (नि. सं)

रसशेषे शयीत च ॥ ५९ ॥ वामयेदाशु तं तस्मादुष्णेन लवणांबुना ॥ कार्यं चानशनं तावद्यावन्न प्रकृतिं भजेत् ॥ ६० ॥ लघुकायमतश्चैनं लंघनैः समुपाचरेत् ॥ यावन्न प्रकृतिस्थः स्याद्दोषतः प्राणतस्तथा ॥ ६१ ॥

आमाजीर्णमें लंघन करना चाहिये और विदग्धअजीर्णमें वमन हित है । तथा विष्टब्धअजीर्णमें स्वेदन (स्नेहनयुक्त उष्णजलसे शरीर स्वेदन करना) पथ्य है और रसशेषअजीर्णमें सोना (शयनकरना) हित है (और चकारशब्दसे पाचनचूर्णादि भी हित हैं) ॥ ५९ ॥ अजीर्णमें वमन कराना हो तो शीघ्रही मनुष्यको लवणसहित गरम जलसे वमन कराना चाहिये और लंघन कराना हो तो जबतक अजीर्ण शांत होकर स्वस्थता हो तबतक लंघन कराना चाहिये ॥ ६० ॥ यदि हलका शरीर हो तो वमनादि न करावे किंतु जबतक दोषोंसे और बलसे स्वस्थ न हो लंघनोंसेही अजीर्णका उपचार करे ॥ ६१ ॥

समशन विषमाशन तथा अध्यशनके लक्षण ।

हिताहितोपसंयुक्तमन्नं समशनं स्मृतम् ॥ बहुस्तोकमकाले वा विज्ञेयं विषमाशनम् ॥ ६२ ॥ सजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते ॥ त्रयमेतन्निहंत्याशु बहून्व्याधीन्करोति वा ॥ ६३ ॥

हित और अहितसे मिलाहुआ सब प्रकारका भोजन समशन कहलाता है और कभी थोडा कभी अधिक और बेसमयपर (कभी हित कभी अहित) भोजन किया विषमाशन कहलाता है ॥ ६२ ॥ और पहलेका किया भोजन विनापचे और भोजन कियाजाय (अजीर्णमें किया भोजन) अध्यशन कहलाता है। यह तीनोंप्रकारका अनुचित भोजन शीघ्रही मृत्युकारक होता है।अथवा बहुतसी व्याधियां उत्पन्न करदेता है॥ ६३॥

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं शीतांबुना वै परिपाकमेति ॥ तद्ध्यस्य शैत्येन निहंति पित्तमाक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात् ॥६४॥ विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रे दह्येत हृत्कोष्ठगलं च यस्य ॥ द्राक्षाभयां माक्षिकसंप्रयुक्तां लीढ्वाभयां वा स सुखं लभेत ॥ ६५ ॥

यदि मनुष्यको विदग्धअन्न (का अजीर्ण) हो तो वह शीतलजल पीनेसे पच जाताहै क्योंकि, वह शीतलता करके उस मनुष्यके बढे पित्तको शांत करदेताहै और आर्द्रभावकरके उसको नीचेको प्रवृत्त करदेताहै (दस्तके राह निकालकर मनुष्यको स्वस्थ करदेताहै) ॥ ६४ ॥ और जिसमनुष्यके भोजन करतेही (आमाशय)

जलने लगजावे और हृदय, कोष्ठ और गल (कंठ) जलते हों उसे बडी हरडेकी छाल मुनक्काके संग खानी चाहिये अथवा हरडेकी छाल शहतमें मिलाकर चाटनेसे सुखको प्राप्त होता है ॥ ६५ ॥

भवेदजीर्णं प्रति यस्य शंका स्निग्धस्य जंतोर्बलिनोऽन्नकाले ॥ प्रातः स शुंठीमभयामशंको भुंजीत संप्राश्य हितं हितार्थी ॥६६॥ स्वल्पं यदा दोषविबद्धमामं लीनं न तेजःपथमावृणोति ॥ भव-त्यजीर्णेऽपि तदा बुभुक्षा सा मंदबुद्धिं विषवन्निहंति ॥ ६७ ॥

यदि किसी बलवान् मोटे ताजे मनुष्यको अजीर्णकी शंका होजाय तो उसको चाहिये कि, प्रातःकाल शुंठीसहित हरीतकी (अनुमान एककर्ष) खाकर फिर निःशंक भोजनके समय हितार्थी मनुष्य हितकारक (थोडासा पथ्य) भोजन करलेवे ॥ ६६ ॥ और यदि थोडासा आम दोषोंसे विबद्ध (बंधा) हुआ शरीरमें लीन होजाय और तेजका मार्ग (जठराग्निका मार्ग) नहीं रोके तो मनुष्यको अजीर्णमें भी बुभुक्षा अर्थात् भूख लगती है और वह भूख उस मंदबुद्धि मनुष्यको (भोजन करनेसे) विषके तुल्य मृत्यु करनेवाली होजाती है ॥ ६७ ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि गुणानां कर्मविस्तरम् ॥
कर्मभिस्त्वनुमीयंते नानाद्रव्याश्रया गुणाः ॥ ६८ ॥

यहांसे अगाडी शीतउष्णादि गुणोंके कर्म (कार्य) विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं क्योंकि, कार्योंहीसे नानाद्रव्योंके आश्रयभूत गुण अनुमान किये जासकतेहैं ॥ ६८ ॥

ह्लादनः स्तंभनः शीतो मूर्च्छातृट्स्वेददाहजित् ॥ उष्णस्तद्वि-परीतः स्यात्पाचनश्च विशेषतः ॥ ६९ ॥ स्नेहमार्दवकृत्स्निग्धो बलवर्णकरस्तथा ॥ रूक्षस्तद्विपरीतः स्याद्विशेषात्स्तंभनः खरः ॥ ७० ॥ पिच्छलो जीवनो बल्यः संधानः श्लेष्मलो गुरुः ॥ विशदो विपरीतोऽस्मात्क्लेदाचूषणरोपणः ॥ ७१ ॥ दाहपाककर-स्तीक्ष्णोऽस्त्रावणो मृदुरन्यथा ॥ सादोपलेपबलकृद्गुरुस्तर्पणबृंहणः ॥ लघुस्तद्विपरीतः स्याल्लेखनो रोपणस्तथा ॥ ७२ ॥

"शीतगुण" आनन्द देनेवाला और स्तंभन (मलादिको गाढा करनेवाला) है । मूर्च्छा, तृषा, स्वेद और दाह इन्हें नाश करनेवाला है और "उष्ण" इससे विपरीत (अर्थात् आह्लादनाशक, द्रावण और मूर्च्छा, तृषा, स्वेद, दाह इन्हें उत्पन्न

(सूत्र ६६) 'भवेदजीर्णं प्रति यस्य शंका' इत्यत्र 'यदा भवेत्प्रातरजीर्णशंका' इति वा पाठांतरम् ।

करनेवाला) है और विशेष करके पाचन है ॥ ६९ ॥ "स्निग्ध" गुण स्नेह (चिक्कणता), मृदुता, बल और वर्णकर्ता है । तथा "रूक्ष" इससे विपरीत है और विशेष करके स्तंभन है और खर (कर्कश खुरदरा) है ॥ ७० ॥ "पिच्छिल" गुण जीवन है, बलकारक है, टूटेको जोडनेवाला है, कफकारक है और भारी है "विशद" गुण इससे विपरीत है और गीलापनको चूसनेवाला और रोपण है ॥ ॥ ७१ ॥ "तीक्ष्ण" गुण दाह और पाक करनेवाला तथा अस्रावण (शोषण) है । और "मृदु" गुण इससे विपरीत है । और "गुरु" (भारी या गरिष्ठ) थकान करता है, उपलेप (मलकी वृद्धि) करता है, तृप्तिकारक है और शरीर-पुष्टिकर्ता है । और "लघु" हलका इसके विपरीत फल करता है, लेखन (कर्षण) है तथा रोपण है ॥ ७२ ॥

दशाद्याः कर्मतः प्रोक्तास्तेषां कर्म विशेषणैः ॥ दशैवान्यान् प्रवक्ष्यामि द्रवादींस्तान्निबोध मे ॥ ७३ ॥

दशआद्यके शीतादिगुण कर्मों (कार्यों) के अनुसार वर्णन कियेगये अब दश और द्रवादिकगुण उनके कर्म विशेषणों करके मुझसे सुनो ॥ ७३ ॥

द्रवः प्रक्लेदनो व्यापी शुष्कः स्याद्बंधकारकः ॥ श्लक्ष्णः पिच्छलवज्ज्ञेयः कर्कशो विशदो यथा ॥ ७४ ॥ स्थिरो वातमलस्तंभी सरस्तेषां प्रवर्त्तकः ॥ आशुकारी तथाशुत्वाद्धावत्यंभसि तैलवत् ७५ ॥ मंदस्तद्विपरीतः स्याच्छिथिलः सर्वकर्मसु ॥ सूक्ष्मस्तु सौक्ष्म्यात्सूक्ष्मेषु स्रोतस्स्वनुसरः स्मृतः ॥ ७६ ॥ स्थूलस्तद्विपरीतः स्यात्स्रोतसामवरोधकृत् ॥ गुणा विंशतिरित्येवं यथावत्परिकीर्तिताः ॥ ७७ ॥

"द्रव" गुण प्रक्लेदन तरावट करनेवाला और व्यापी (फैलनेवाला) है । और "शुष्क" (इससे विपरीत शोषण) बंधकारक है "श्लक्ष्ण" गुण भी पिच्छलके

(सूत्र ७४) 'शुष्कः स्याद्बंधकारकः' इति शोषणत्वेनावयवपृथक्त्वमित्यर्थः । 'श्लक्ष्णः पिच्छलवत्' इत्यत्र श्लक्ष्णपिच्छलयोर्भेदमाह–"श्लक्ष्णः स्नेहं विनापि स्यात्कठिनोपि हि चिक्कणः ॥ पिच्छलस्तंतुलो बल्यः संधानः श्लेष्मलो गुरुः" इति भावमिश्रः । तथैव कर्कशविशदयोरपि को भेद इत्याह–"क्लेदच्छेदकरः ख्यातो विशदो रोपणो लघुः ॥ कर्कशस्तु गुरुः प्रोक्तो रूक्षश्च कठिनः खरः" इति । केचित्तु ७४ सूत्राग्रे वक्ष्यमाणपाठं पठंति–"सुखानुबंधी सूक्ष्मश्च सुगंधो रोचनो मृदुः । दुर्गंधो विपरीतोस्माद्धृल्लासारुचिकारकः ॥ व्यवायी चाखिलं देहं व्याप्य पाकाय कल्पते । विकासी विकसन्नेव धातुबंधान् विमोक्षयेत् ॥" इति पाठे विंशतिगुणस्थाने गुणाधिक्यं तत्तु न सम्यक् यद्यपि डल्हनेनैवाप्यत्रांगीकृतोयं पाठः परंतु पूर्वनिबंधकारैर्नांगीकृतस्तथा च भावमिश्रेणैव सुश्रुतोक्तविंशतिगुणपठनेपि नैवांगीकृताः सुगंधादयो गुणाः ।

समान है । और " कर्कश " विशदके तुल्य प्रायः है ॥ ७४ ॥ " स्थिर " वायु और मलरक्तादिका स्तंभन करनेवाला है । और "सर" इनको प्रवृत्तकरनेवाला है "आशुकारी" शीघ्रतासे ऐसे फैलता है जैसे जलपर तैल दौडता है ॥ ७५ ॥ और "मंद" इसके विपरीत सब कर्मोंमें शिथिल है । तथा "सूक्ष्म" गुण सूक्ष्मता करके सूक्ष्म छिद्रों (रोममार्ग) में प्रवेश करनेवाला है ॥ ७६ ॥ और "स्थूल" इसके विपरीत छिद्रमार्गका अवरोध करनेवाला है । इसप्रकार ये बीसगुण यथावत् वर्णन किये हैं ॥ ७७ ॥

परिशिष्टं-तंत्रांतरात्.

दीपनपाचनादिक ।

अथ गुणप्रस्तावाद्दीपनादयो गुणाः सलक्षणा लिख्यन्ते।

श्लोक-पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिसिः ॥ पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् ॥ नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः ॥ १ ॥ न शोधयति यद्दोषान्समान्नोदीरयत्यपि ॥ समीकरोति संवृद्धाञ्छमनं तद्यथामृता ॥२॥ कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्त्वा बंधमधो नयेत् ॥ तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥ ३ ॥

अर्थ-जो आमको नहीं पकावे और अग्निको (जठराग्निको) वृद्धि करे उसे "दीपन" कहते हैं जैसे मिसि (सौंफ) और जो आमको पकावे और जठराग्निको दीप्त नहीं करे उसे "पाचन" कहतेहैं जैसे नागकेशर । और जो दोनों प्रभाव करे वह "दीपनपाचन" है जैसे चित्रक ॥ १ ॥ जो न तो शोधन (रेचनवमनादि) करे और न समान दोषोंको उल्वण करे किंतु बढे दोषोंको समान करे उसे "शमन" कहते हैं जैसे गिलोय ॥ २ ॥ जो मलादिका परिपाक करके बंधको भेदन करके नीचेको प्रवृत्त करे वह "अनुलोमन" कहलाता है जैसे हरीतकी (बडीहरड) ॥३॥

श्लोक-पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ॥ नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात्कृतमालकम् ॥ ४ ॥ मलादिकमबद्धं यद्बद्धं वा पिंडितं मलैः ॥ भित्त्वाधः पातयति तद्भेदनं कटुकी यथा ॥ ५ ॥ विपक्वं यदपक्वं वा मलादिद्रवतां नयेत् ॥ रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥ ६ ॥

अर्थ-जो पकने योग्य मलादिक कोठेमें लिहसेहुए हों उन्हें नीचेको (विरेचन) द्वारा प्रवृत्त करे वह " स्रंसन " कहलाता है जैसे किरमाला (अमलतास)॥४॥ जो विन बंध (द्रवरूप) मलादिक हों या मलादिके पिंड (लोढे) से बंधगये हों उन्हें भेदनकरके नीचेको गिरावे उसे " भेदन " कहते हैं जैसे कटुकी ॥ ५ ॥ विनापके हुए या पकेहुए मलादिकको पतला करके विरेचन करावे वह " रेचन " जैसे त्रिवृता (निशोथ) ॥ ६ ॥

श्लोक–अपक्कं पित्तश्लेष्मान्नं चयमूर्द्ध्वं नयेत्तु यत् ॥ वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥ ७ ॥ स्थानाद्बहिर्नयेदूर्द्ध्वमधो वा मलसंचयम् ॥ देहे संशोधनं तत्स्याद्देवदालीफलं यथा ॥ ८ ॥

अर्थ–विनापके संचित कफपित्त तथा अन्नको जो ऊपरको (मुखमार्गसे) निकाले उसे "वमन" कहते हैं जैसे मयनफल ॥ ७ ॥ जो मलादिके संचयको अपने स्थानसे हटाकर ऊपरको (मुखद्वारा) अथवा अधः (मलसूत्रके द्वारा) बाहर निकाले वह " शोधन " कहलाता है जैसे देवदाली (विंडाल) ॥ ८ ॥

श्लोक–दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम् ॥ ग्राहि तच्च यथा शुंठी जीरकं गजपिप्पली ॥ ९ ॥ रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत् ॥ वातकृत्स्तंभनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुंटुकौ ॥ १० ॥ श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ॥ छेदनं तद्यथा क्षारा मरिचानि शिलाजतु ॥ ११ ॥ धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च तत् ॥ लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः ॥ १२ ॥

अर्थ–जो दीपन हो और पाचन भी हो तथा उष्णतासे पतले मलादिको शोषण करनेवाला हो वह " ग्राही " कहलाता है जैसे सोंठ, जीरा, गजपीपल ॥ ९ ॥ रूखेपनेसे, शीतलपनेसे, कसैलेपनेसे तथा हलका विपाक होनेसे जो वायु पैदा करनेवाला हो वह " स्तंभन " कहलाता है जैसे वत्सक (कुटज) और टुंटुक (अरलू) ॥ १० ॥ जो लिहसेहुए कफादिक दोषोंको बलसे उखाडे वह "छेदन" या छेदी कहलाता है जैसे क्षार (यवक्षारादि), मिरच और शिलाजतु ॥ ११ ॥ जो शरीरके धातु, उपधातु और मलादिको शोषण करके कृशता करे वह "लेखन" कहलाता है जैसे क्षौद्र (शहत), गरमजल, वच तथा जौ ॥ १२ ॥

श्लोक–यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं हि तत् ॥ यथाश्वगंधा मुशली शर्करा च शतावरी ॥ १३ ॥ यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं तन्निगद्यते ॥ यथा नागबलाद्याः स्युर्बीजं च कपिकच्छुजम् ॥ १४ ॥ दुग्धमाषाश्च भल्लातफलमज्जामलानि च ॥ एतानि जनकानि स्यू रेचकानि च रेतसः ॥ १५ ॥

अथ–जिस पदार्थसे स्त्रियोंमें प्रेम (मैथुनशक्ति) अधिक उत्पन्न हो वह "वाजीकरण " कहलाता है जैसे अश्वगंधा, मुशली, खांड और शतावरी ॥ १३ ॥ जिससे शुक्रकी वृद्धि हो वह "शुक्रल" कहलाता है जैसे नागबला (गुलसकरी), कवंचके बीज इत्यादि ॥ १४ ॥ और दुग्ध, माष (उडद) तथा भिलावेकी मींगी (गिरी) तथा आँवले ये वीर्यके उत्पन्न करनेवाले हैं और वीर्यके रेचक (प्रवृत्तकरके निकालनेवाले अर्थात् स्त्रीसंगमकी इच्छा करानेवाले) हैं ॥ १५ ॥

श्लोक–प्रवर्तिनी स्त्री शुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम् ॥ जातीफलं स्तंभनं स्यात्कालिग क्षयकारि च ॥१६॥ रसायनं तु तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् ॥ यथामृता रुदंती

च गुग्गुलुश्च हरीतकी ॥ १७॥ पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति॥ व्यवायि तद्यथा भंगा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥ १८ ॥

अर्थ-वीर्यको शुक्रधराकलामें प्रवृत्त करनेवाली स्त्री होती है । अर्थात् स्त्रीजनोंके दर्शनस्पर्शादिसे समस्त शरीरका शुक्र निचड २ कर शुक्रधराकलामें प्रवृत्त होताहै जिसीसे पुरुषकी मेढइंद्रियमें स्थूलता और कठोरता होजाती है और बृहतीफल वीर्यका रेचनकरनेवाला है और जातीफल वीर्यस्तंभन करनेवाला है । और कलिंग (तरबूज) वीर्यको क्षयकरता है ॥ १६॥ जो बुढापे और व्याधियोंको नष्टकरनेवाला है वह "रसायन" कहलाता है जैसे गिलोय, रुदंती, गूगल तथा हरीतकी ॥ १७॥ जो प्रथम समस्तशरीरमें व्याप्त होकर अपना प्रभाव करे पछि परिपाक हो उसे "व्यवायि" कहते हैं जैसे भंगा तथा अफीम ॥ १८ ॥

श्लोक-संधिबंधांस्तु शिथिलान्यत्करोति विकासि तत् ॥ विशोष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवौ ॥ १९॥ बुद्धिं लुंपति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ॥ तमोगुणप्रधानश्च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥ २०॥ व्यवायि च विकासि स्यात्सूक्ष्मं छेदि मुहावहम् ॥ आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ॥ २१ ॥

अर्थ-जो समस्तशरीरकी धातुवोंसे ओजको शोषण करके संधिबंधोंको शिथिल करदे वह "विकासि" कहलाता है जैसे सुपारी और कोद्रव ॥ १९ ॥ जो द्रव्य बुद्धिको नष्ट करे उसे "मदकारी" कहते हैं यह तमोगुणप्रधान होताहै जैसे सुरा-आदिक मद्य ॥ २० ॥ जो व्यवायिभी हो और विकासिभी हो और सूक्ष्म (रोममार्गमें प्रवेशकरनेवाला) तथा छेदी (आशय धमन्यादिको छेदन करनेवाला) और मुहावह (अतिमोहकारक) आग्नेय (अधिकअग्निके भागवाला) तथा मृत्यु-कारक और योगवाही (शीतके संग अतिशीत और उष्णके संग अतिउष्ण) ऐसे सब लक्षण जिसमें हों वह "विष" कहलाता है ॥ २१ ॥

श्लोक-निजवीर्येण यद्द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम्॥ निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥ २२ ॥ पैच्छिल्याद्गौरवाद्द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः ॥ धत्ते यद्गौरवं तत्स्यादभिष्यंदि यथा दधि ॥ २३ ॥

अर्थ-जो द्रव्य अपने वीर्यकरके शरीरके छिद्रोंद्वारा वातादिदोषोंके संचयको निकाले उसे "प्रमाथि" कहते हैं जैसे मिरच और वचा ॥ २२ ॥ जो अपनी पिच्छलता (गाढापन) से और भारीपनसे रसके वहनेवाली नाडियोंको रोककर भारीपन उत्पन्न करे वह "अभिष्यंदि" कहलाता है जैसे दधि ॥ २३ ॥

श्लोक-विदाहि द्रव्यमुद्गारमम्लं कुर्यात्तथा तृषाम् ॥ हृदि दाहश्च जनयेत्पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥ २४॥ गृह्णाति योगवाहि द्रव्यं संसर्गि वस्तुगुणान् ॥ पच्यमानं यथैतन्मधुजलतैलाज्यसूतलोहादि ॥ २५ ॥

अर्थ-"विदाहि" उसे कहते हैं जो द्रव्य खट्टीडकार और तृषा उत्पन्न करे और हृदयमें दाह पैदाकरे और देरसे परिपाकको प्राप्तहो ॥ २४ ॥ "योगवाहि" उसे कहते-हैं जो परिपाकके समय साथके द्रव्यके गुणोंको ग्रहण करे (शीतके साथ शीतल होजाय उष्णके साथ उष्ण इत्यादि) जैसे शहत, जल, तैल, घृत, पारद और लोहादि संपूर्णधातु ॥ २५ ॥

श्लोक-सर्वान्धातूञ्छरीरस्य बलं यदभिवर्द्धयेत् ॥ तद्द्रव्यं बृंहणं प्रोक्तं यथा दुग्धं नवं मधु ॥ २६ ॥ अस्माद्विपर्ययं ज्ञेयं कर्षणं क्रमुको यथा ॥ हृदयाय हितं हृद्यं बल्यं स्याद्बलवर्द्धनम् ॥ २७ ॥ वृष्यं वीर्यस्य यद्वृद्धिं प्रवृत्तिं च करोति तत ॥ यथा तु वानरीबीजं सुधामूली शतावरी ॥ २८ ॥

अर्थ-जो द्रव्य शरीरकी सबधातु उपधातुओंको और बलको बढावे उसे "बृंहण" कहते हैं जैसे दुग्ध और नया शहत ॥ २६ ॥ और इसके विपरीत जो शरीरकी धातुओं और बलको घटावे उसे "कर्षण" कहते हैं जैसे सुपारी। और जो पदार्थ हृदयके लिये हित तथा प्रिय है उसे "हृद्य" कहतेहैं । और जो बलको बढानेवाला पदार्थ है उसे "बल्य" कहते हैं ॥ २७ ॥ जो वीर्यकी वृद्धि और प्रवृत्ति करे उसे "वृष्य" कहते-हैं जैसे कवँचके बीज और सुधामूली (सालममिश्री) तथा शतावरी ॥ २८ ॥ इति।

संप्रवक्ष्याम्यतश्चोर्द्धमाहारगतिनिश्चयम् ॥ पंचभूतात्मके देहे आहारः पांचभौतिकः ॥ विपक्वः पंचधा सम्यग्गुणान्स्वानभिवर्द्धयेत् ॥ ७८ ॥ अविदग्धः कफं पित्तं विदग्धः पवनं पुनः ॥ सम्यग्विपक्वो निःसार आहारः परिबृंहयेत् ॥ ७९ ॥ विण्मूत्रमाहारमलः सारः प्रागीरितो रसः ॥ स तु व्यानेन विक्षिप्तः सर्वान्धातून्प्रतर्पयेत् ॥ ८० ॥

अब यहांसे अगाडी आहारकी गतिका निश्चय वर्णन करते हैं । पंचभूतात्मक-शरीरमें पंचभूतात्मक भोजन पाँचप्रकारसे ठीक २ परिपाकको प्राप्त होकर अपने२ गुणोंको बढाता है (पार्थिवअंश पार्थिवके और आप्यअंश जलके भागको इत्यादि) ॥ ७८ ॥ यदि आहार विनापचा रहता है तो कफकी वृद्धिकरता है और विदग्धहुआ (परिपाकसमय) पित्तकी वृद्धिकरता है। और ठीकपचाहुआ निःसारभूत (मलाशयांतर्गतविड्रूप) पवन (वायु) की वृद्धि करता है ॥ ७९ ॥ आहारका विशेषमल विष्ठा और मूत्र है तथा उसका सार रसरूप जो पहले वर्णन होचुका है वही रस व्यानवायुकरके प्रेरितहुआ संपूर्ण धातुओंकी तृप्ति करता है ॥ ८० ॥

(सूत्र ७८) पांचभौतिक आहारः स्वान् गुणान् अभिवर्द्धयेत् इति । भूमिगुणाधिकः पार्थिवगुणान् वर्द्धयति जलगुणाधिकः जलगुणानित्यादि ।

कफः पित्तं मलः खेषु स्वेदः स्यान्नखरोम च ॥ नेत्रविट्त्वक्षु च स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः ॥ ८१ ॥

अव क्रमसे सातों धातुओंके मल कहते हैं । कफ (खखार) रसका मल है, पित्त (पीले २ जो गिरा करते हैं वे) रक्तका मल है, छिद्रों (कर्णादि) का मैल मांसका मल है, स्वेद (पसीना) मेदका मल है और नख (नखून) तथा रोम ये अस्थि (हाडों) का मल है, नेत्रकी वीठ मज्जाका मल है तथा त्वचाकी चिकनाईकोभी मज्जाका मल कहते हैं । और कई त्वचाकी चिकनाईको शुक्रका मल कहते हैं (कई शुक्रको सहस्रवार तपाये सुवर्णके तुल्य निर्मलही कहते हैं) तथा कई श्मश्रु (डाढीमूछों) को वीर्यका मल कहते हैं ॥ ८१ ॥

दिवा विबुद्धे हृदये जाग्रतः पुंडरीकवत् ॥ अन्नमक्लिन्नधातुत्वादजीर्णेपि हितं निशि ॥ ८२ ॥ हृदि संमीलिते रात्रौ प्रसुप्तस्य विशेषतः ॥ क्लिन्नविस्रस्तधातुत्वादजीर्णे न हितं दिवा ॥ ८३ ॥

दिनके समय जागनेके कारणसे कमलके समान हृदय खुला रहनेसे और समस्तधातु अक्लिन्न होनेसे कुछ अजीर्ण हो तोभी रात्रिको भोजन करना हित है॥८२॥ और रात्रिको सोतेमें हृदयके मुँदजानेसे विशेषकर धातुओंके क्लेदित होनेसे और विस्रस्त(विश्रामयुक्त) होनेसे प्रभात अजीर्ण हो तो दिनमें भोजन करना हित नहीं ८३

इमं विधिं योऽनुमतं महामुनेर्नृपर्षिमुख्यस्य पठेद्धि यत्नतः ॥ स भूमिपालाय विधातुमौषधं महात्मनां चार्हति सूरिसत्तमः॥८४॥

इति सुश्रुतसंहितायां सूत्रस्थाने षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

श्रीमहामुनि राजर्षियोंमें मुख्य धन्वंतरि भगवान्‌की अनुमत इस विधिको जो यत्नसे पठन करेगा वह वैद्य राजाओं और महात्माओंकी औषध करनेके योग्य होगा और विद्वानोंमें श्रेष्ठ होकर पूज्य और शिरोमणि कहलावेगा ॥ ८४ ॥

इति श्रीप० मुरलीधरशर्मवैद्यविरचितायां सुश्रुतसहितायाः सान्वयसपरिशिष्ट-भाषाटीकायां सूत्रस्थाने षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

समाप्तमिदं सूत्रस्थानम् ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-मुंबई.

(सूत्र ८१) धातूनां मला इति मज्जातानां मलाः शुक्रं पुनरमल सहस्रधाध्मातसुवर्णवदिति । अपरे आरूढकोमरय पुंसः श्मश्रुपातात् श्मश्रु एव शुक्रमल इति (नि. सं.) त्वक्षु स्नेहः शुक्रमलमिति केचित्।